

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY****KOTA (Raj)**

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER S No	DUE DTATE	SIGNATURE

॥ श्रीः ॥

काशी संस्कृत ग्रन्थमाला

९८



महाकविश्रीत्रिविक्रमभट्टविरचिता

नलचम्पूः

अथवा

दमयन्ती-कथा

प्राग्वाटवंशीयश्रीचण्डपालकृत-

‘विपमपदप्रकाश’ संस्कृतनट्याख्यासहिता

सम्पादक, हिन्दीव्याख्याकारः —

श्री कैलाशपति त्रिपाठी

एम. ए., व्याकरण-साहित्याचार्य, लघ्वस्वर्णपदक,

प्राध्यापक : संस्कृत विभाग

भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

(१-२ उच्छ्वास)



चौरवम्भा संस्कृत संस्थान

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा विक्रेता

पो० बा० चौरवम्भा, पो० बा० नं० १३९

जडाव भवन के ३७/११६, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी (भारत)

प्रकाशक : चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी

मुद्रक - विद्याविलास प्रेस, वाराणसी

संस्करण : तृतीय, वि० संवत् २०३३

मूल्य . १-२ उच्छ्वास ६-००, सम्पूर्ण



हमारे प्रकाशनो की एकमात्र वितरक संस्था .—

चौखम्भा ओरियन्टालिया

प्राच्यविद्या एवं दुर्लभ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा विप्रेता

पो० आ० चौखम्भा, पो० बा० नं० ३२

शोकुल भवन, के ३७/१०९, गोपाल मन्दिर लेन

वाराणसी-२२१००१ (भारत)

टेलीफोन — ५२९३९, ६२६९५, ६३०२२

प्रधान शाखा —

चौखम्भा विश्वभारती

पौक (चित्रा सिनेमा के सामने) वाराणसी

फोन नं० ६५४४४

THE
KASHI SANSKRIT SERIES



OR
DAMAYANTĪ-KATHĀ
OF
ŚRĪ TRIVIKRAMA BHATṬA

WITH

The Viṣamapada Prakāśa Sanskrit Commentary

BY

ŚRĪ CHANDAPĀLA

(1260 A. D)

Edited with his own commentary

By

Prof. KAILĀSPATĪ TRIPĀTHĪ

M. A., Vyākaraṇa-Sāhityāchāry, Gold Medalist, Lecturer in Sanskrit,
Bhagalpur University, Bhagalpur-7

(1-2 Chapters)

CHAUKHAMBHA SANSKRIT SANSTHAN

Publishers and Book Sellers

P. O. Chaukhambha, Post Box No 139

Jadav Bhawan, K. 37/116, Gopal Mandir Lane-
VARANASI (INDIA)

Also Can be had of —
CHAUKHAMBHA VISVABHARATI
Chowk (Opposite Chitra Cinema)
VARANASI-221001
Phone . 65444

© *Chaukhambha Sanskrit Sansthan, Varanasi*
Third Edition 1976
Price : 1-2 Chapters Rs. 6-00
Complete Rs ~~6-00~~

Sole Distributors .—
CHAUKHAMBHA ORIENTALIA
A House of Oriental and Antiquarian Books
P. O Chaukhambha, Post Box No 32
Gokul Bhawan, K 37/109, Gopal Mandir Lane
VARANASI-221001 (India)
Telephones — 52939, 62695, 63022.



निवेदन

ग्रन्थादिभूषदीहेनोर्ष्वोऽयं त्रिविक्रमः ।

निर्मलं विमलं व्योम्नि यत् परं अनुनामपि ॥

सम्पूर्ण वाङ्मय न केवल साहित्य में बल्कि समय और काल-गौरव दोनों दृष्टियों में प्रधान है। मधुरतर ज्योतिष्मास तथा अनुकूल भावभूति के कारण इस ग्रन्थ ने सहृदय सनातन में अगतिम स्वाति अर्जित की है। भाव-सर्वशक्ति कलाप्रौढ़ वाच्यों ने इसका दठा स्वाध्यायीय स्थान है। प्रसिद्ध राजाश्रय में रहने के कारण त्रिविक्रम शास्त्र ही को तरह लोकविद्या में भी निष्ठात हो गये थे। उनके ग्रन्थ में वाङ्मय न साथ ही लोकविद्या तथा इतिवृत्त-तत्त्वों की भी प्रचुर सामग्री उपलब्ध है, किन्तु सहृदयस्नेह तत्त्वों के इस दिव्य माध्यम को बहुविध ज्योतिषों के कारण उन्होंने सर्वगुण नहीं रहने दिया है। इसकी श्लेषबहुल गद्यार्थप्रौढ़ को ध्यान में रखकर ही विभिन्न विश्वविद्यालयों ने इसे एन० ए० तथा साहित्याचार्य की परीक्षाओं में पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में निर्धारित किया है।

सम्प्रति सम्पूर्ण मध्य ग्रन्थ पर दो टिप्पणियाँ उपलब्ध हैं—श्री चण्डपाल का विषयपदप्रकाश और ए० नन्दकिशोर शर्मा जी की भावबोधिनी। निर्णय-सागर में प्रकाशित संस्करण में उद्भूत विषयपद-प्रकाश छाया है और काशी उद्भूत सौरीय संस्करण ने विषयपदप्रकाश न साथ भावबोधिनी भी मुद्रित है। ये दोनों ही टिप्पणियाँ दिष्ट-ग्रन्थियों को नियमित करने में बहुत सहायक हैं किन्तु कठिनाई यह है कि ये ग्रन्थ न समग्र अथ पर नहीं लिखी गयी हैं। कतिपय दिष्ट या भावप्रधान पद्यों तथा अनुच्छेदों तक ही सीमित हैं। अतः संहृत में भी कोई ऐसा विस्तार उपलब्ध नहीं है जो ग्रन्थ के समग्र अथ पर प्रकाश डाल सके।

विभिन्न नृचीरनों में जात होता है कि इस ग्रन्थ पर और भी कई व्याख्याएँ कभी की गई थीं। आचार्य चण्डपाल ने अपने विषय-पद-प्रकाश में एक विवृति

नामक टीका का उल्लेख किया है।^१ डा० हीरालाल जी ने अपने सूचीपत्र सरया २१४७ में पाँच टीकाओं में युक्त दमयन्तीचम्पू नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। ये कौन पाँच टीकाएँ थी, बिसने की थी इसका कुछ पता नहीं है, क्योंकि उक्त सूचीपत्र में इस सम्बन्ध में और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है।

निर्णयसागर सस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका में एक 'बृहट्टीका' का संकेत है जो कभी जयपुर-राजगुरु नरहरि शर्मा जी के पास थी। डा० बर्नेल सूचीपत्र—१५९ (३) में नागदेव कृत एक टीका का उल्लेख है किन्तु इस सम्बन्ध में वहाँ और कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। आर्पेट सूचीपत्र—२११ में भी इसकी एक टीका का उल्लेख है। उनके कर्ता का नाम वहाँ नहीं लिखा है। निर्णयसागर सस्करण वाले नलचम्पू की भूमिका में एक और टीका का संकेत मिलता है जिसके कर्ता दामोदर थे। यह टीका भी कभी जयपुर-राजगुरु नरहरी शर्मा जी के पास थी। गुणविन्द्य गणि में दमयन्ती-चम्पू-वृत्ति नामक टीका लिखी थी।^२ मालूम पड़ता है चण्डपाल के विषमपदप्रकाश ने जिन पदों का विस्लेषण छोड़ दिया था उन्हीं की व्याख्या इसने की गयी थी।^३

भावबोधिनी और विषमपदप्रकाश को छोड़कर उपर्युक्त टीकाओं में से एक भी उपलब्ध नहीं है। विभिन्न सूचीपत्रों में इनका केवल संकेत भर मिलता है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ अति प्राचीन काल में लोकप्रिय रहा है। बहुत से विद्वानों ने इस पर मध्यासमय व्याख्याएँ लिखी जो दुर्दैववश काल-प्रस्त हो गयीं, आज उपलब्ध न रही।

सम्पति विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत ग्रन्थ के पाठ्य पुस्तक रूप में निर्धारण से प्राप्त सांस्कृतिक तत्त्वा के अनुसन्धितसुओं की इस ग्रन्थ की ओर उत्सुकता में इसके एक नये संस्करण का अभाव बहुत दिनों से खटक रहा था।

१ नलचम्पू—विषमपदप्रकाश, पृ० २८९

२ प० भन्दविशोर शर्मा—नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ९

३ श्री चण्डपालजी कियत्पदाना यत्प्यनिर्वा विवृति चकार ।

तथाऽपि तच्छेद पदार्थ सार्थ-प्रकाशनात्ता विवृतिमि चम्पू ॥

टीका का प्रारम्भिक पद्य । का० स० सी० संस्करण, नलचम्पू उपोद्घात, पृ० ११ में उद्धृत ।

इस संस्करण में मूल ग्रन्थ के हिन्दी अनुवाद तथा सापेक्ष विश्लेषण के साथ चण्डपाल विषमपदप्रकाश भी सम्पादित है। मूत्र ग्रन्थ तथा विषमपद-प्रकाश के पाठों को भी यथासम्भव शुद्ध करने का प्रयास किया गया है। हिन्दी अनुवाद में मूत्र भावों के साथ मधटना-मोन्दर्ष की सुरक्षा का ध्यान रखा गया है। भावमोन्दर्ष के साथ बन्धसौन्दर्य का भी आम्वाद पाठको का मिल सके, इन लक्ष्य में हिन्दी अनुवाद तथा विश्लेषण लिखा गया है। ऐसा करने में कहीं-कहीं हिन्दी की जबहुप्रचलित शैली का अवलम्ब लेना पड़ा है।

हिन्दी में लिट्ट गद्यबन्धों को प्रस्तुत करते समय या विशिष्ट करते समय हिन्दी की प्रचलित शैली से कोई भिन्न मार्ग अपनाना स्वाभाविक हो जाता है, क्योंकि सस्कृत के विभक्तिश्लेष, प्रत्ययश्लेष आदि प्रकारों को हिन्दी के सीमित शब्दों में विशिष्ट करना मुश्किल हो जाता है। ऐसे स्थलों को व्याख्यत करते समय अनुवाद वाले कथाप्रसङ्ग के प्रवाह के साथ कहीं-कहीं कोष्ठकबद्ध विश्लेषण के कतिपय अनुच्छेदों को भी जोड़ना पड़ा है। श्लेष के इन विविध तालों को खोलने के लिये ये बन्धकार कोष्ठक कुञ्जियाँ बहुत आवश्यक प्रतीत हुईं। मुद्रण में इन कोष्ठकों का कहीं-कहीं अनुचित विन्यास हो गया है। इनके यथासम्भव मार्जन के लिये ग्रन्थ के अन्त में एक शुद्धिपत्र लगा दिया गया है। सहृदय पाठको से निवेदन है कि अष्टमऽवस्र के हर स्थलों पर शुद्धि पत्र का उपयोग करेंगे।

१९५९ में जब मैं बारापनेम बिरला सस्कृत महाविद्यालय बारापसी के साहित्य विभाग में अध्यापक था, इस ग्रन्थ पर एक विश्लेषण तथा एक समीक्षा लिखने के लिये सोचा था, किन्तु यह कार्य बारापसी में न होकर भागलपुर में पूर्ण हुआ। इस ग्रन्थ के छपने समय में अने शोध कार्य में व्यस्त था। प्रूफ देखने की व्यवस्था मुद्रणालय की जार में की गयी थी। जहाँ कहीं मुझे अशुभप्रति प्रतीत हुई उसका संयोजन मैंने शुद्धिपत्र भाग में कर दिया है।

भूमिका भाग में त्रिविक्रम भट्ट के समय, निवास तथा कृति के साथ चम्पू-काव्यलक्षणा, कथावस्तु, समाज-विधान तथा भौगोलिक स्थलों का भी अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

इस कार्य में साक्षात् या परम्पराया जिन विद्वानों की कृतियों में मुझे सहयोग मिला है मैं उन सबका आभार मानता हूँ। अनुवाद तथा विश्लेषण भाग में

चण्डपाल तथा प० नन्दकिशोर शर्मा एवं भूमिका के भौगोलिक विवरण वाले छण्ड म हा० भगवत चरण उपाध्याय जी से मुने बहुत सहायता मिली है। मैं इन सभी विद्वानों का परम कृतज्ञ हूँ।

वाराणसेय बिरला संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी के प्रधानाचार्य गुरुवर्य पण्डित रामानुज जी ओषा, न्याय-व्याकरण-साहित्याचार्य का मैं सर्वाधिक कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मुझे इस कार्य में प्रवृत्त किया और इसकी पूर्णता के लिये सदा प्रेरित करते रहे। चौखम्बा विद्याभवन के व्यवस्थापक श्री मोहनदास जी गुप्त को साधुवाद देता हूँ जिन्होंने बड़ी तत्परता से इस ग्रन्थ को प्रकाशित किया है।

भागलपुर विश्वविद्यालय
गणतन्त्र दिवस १९६५ }

—कैलासपति त्रिपाठी

नलचम्पू : कथावस्तु

प्रथम उच्छ्वास

चन्द्रशेखर भगवान् शकर तथा अमृतवर्षी कवियों के वाग्जिह्वा की शुभाशमा में ग्रन्थ का आरम्भ हुआ है। पदास्वी कवियों के वाग्बैभव के साथ ही अमृत के उद्भवमण्डल काम तथा तत्त्वियों के नेत्रविभ्रम की सर्वोत्कृष्टता समर्पित की गयी है और विद्वानों के आनन्दमन्दिर, सरस्वती के मधुर प्रवाह को नमस्कार किया गया है। तदनन्तर जगत् शक्तियों तथा अमर गोष्ठियों की निन्दा और मूर्क्तियों तथा मूर्खत्वियों की प्रशंसा की गयी है। मुख्यतः बालमीकि, व्यास, गुणाक्ष्य तथा बाण को बड़े आदर के साथ स्मरण किया गया है।

इन महान् कवियों की हृत्तियों के समक्ष अपनी बातों के सम्मान के सम्यन्ध में कवि को बड़ा सन्देश होता है, फिर भी वह काव्यनिर्माण का साहस हमलिये करता है कि विद्वान् लोग सर्वविध शक्तियों का समादर करते हैं। समझरत्न से सम्पन्न उक्तिवैचित्र्य की ओर अपनी प्रवृत्ति का संकेत देता हुआ वह अपने वश का परिचय देता है।

श्री त्रिविक्रम मट्ट ने अपने आप को महर्षि शाण्डिल्य के वस में उत्पन्न श्रीधर का पौत्र तथा देवादित्य का पुत्र बताया है। इस परिचयारम्भ आमुक्त के बाद वर्ण्यवस्तु का वर्णन आरम्भ होता है—

सम्पूर्ण भूमण्डल की शोभा में नवानता उपस्थित कर देने वाला, गङ्गा तथा चन्द्रभागा जैसी नदियों से अलङ्कृत, पुण्यपुरुषों से सनायित, स्वर्णवासियों को भी लुभा लेने वाला अर्थावतं नाम का देश है। वहाँ निपचा नाम की नगरी है। उसकी गगनचुम्बी प्राकारमिति इन्द्रनीलमणि से बनी है। उससे निकलती हुई सहस्रों फिरनों की श्रेणियों नवीन रुच के अङ्गुरों की तरह प्रतीत होती हैं। भवनों के प्राङ्गण स्फटिक मणि की शिलाओं से निषद् हैं। वहाँ धूमती हुई खियों के लावारजित पैरों के प्रतिगिब को कमल समक्ष कर अमरमण्डल ललचा जा रहा है। नगरी के अन्तरङ्ग एवं बहिरङ्ग भाग अपेक्षित समस्त सामग्रियों से मण्डित होने के कारण स्वर्ग की सुपमा से स्पर्धा करते हैं।

इसी नगरी में महाराज नल रहते हैं। उन्होंने अपने बाहुबल से विषम-मण्डल को नष्ट कर दिया है। शत्रुपक्षियों के नेत्रकमल से गिरती हुई अश्रुधारा में उनका प्रताप राजहंस तर रहा है। समुद्रान्त पृथ्वी की रक्षा करता हुआ उनका कीर्तिस्तम्भ सम्पूर्ण भूमण्डल को अलङ्कृत कर रहा है।

उनके मन्त्री का नाम श्रुतिशील है। वह समस्त विद्याओं का आधारस्तम्भ है। नल का द्वितीय प्राण है। उसकी मन्त्रणा से होने वाले प्रशासन से प्रजामण्डल अच्युत बन्तुष्ट है। उसके मन्त्री पद पर रहने से नल को राज्य-व्यवस्था की चिन्ता बहुत कम करनी पड़ती है। अतः विहार, आखेट, विनोद-गोष्ठी आदि में ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होता है।

एक समय जब कदम्ब की छालियों पर भँरि मड़रा रहे हैं, कामदेव के भट्टहास की तरह घाड़ों की ध्वनि से आकाश मुखरित हो रहा है, पके हुए जामुन के फलों से वन की आभ्यन्तरिक शोभा नितान्त खामल हो चली है, राहियों को उत्कण्ठित कर देने वाली मयूरों की मधुर ध्वनि चारों ओर गूँज उठी है। वर्षाकाल ने वनधी की मादकता में एक नवीन अप्पाय जोड़ दिया है, एक वन-पालक राजा को वह सूचना देता है कि उनके विहार-वन में एक भयंकर जल्लोरी सुकर भा गया है। उसके दौंठ बड़े चमकीले हैं। काला तो वह इतना है कि अजन पर्वत या जलराशि से मेदुर मेघ की आग्लि उत्पन्न कर देता है। अपनी मरती में किसी की चिन्ता नहीं करता। लीला सरोवर को मथ कर अस्त व्यस्त कर दिया है। ऋषिद्वारण्य में अकण्ड-ताण्डव प्रस्तुत कर दिया है।

इस उद्दण्ड एवं विप्लवकारी सुकर के आगमन की सूचना पाते ही राजा उस वनस्थली को देखने के लिये उत्कण्ठित हो उठता है जा ताते के पक्षों की तरह हरित घासों से मण्डित हो गयी है तथा जलानधों का जल दूध की तरह प्राञ्जल हो गया है।

राजा की आज्ञा से सेनापति बाहुक शिकार की सारी सामग्री प्रस्तुत कर देता है। नल एक प्रशस्त भक्ष्य पर आरुढ़ हो जाता है। जाल आदि शिकार की सामग्रियों से मण्डित व्याधों का समूह राजा के पीछे यमराज के दूतों की तरह चल रहा है। वन में घुसते ही व्याधों ने सारी वनस्थली को व्यथित कर दिया है। हाथियों का दल चिमवाड़ने लगा है। मृगों का दल व्याधसैन्य के क्रूर कोलाहल से ही निष्प्राण होने लगा है। बाघों के आपात से पूर्णित भँसे पृथ्वी पर धक्काधक्का छोटने लगे हैं। अपने वेग में अर्धों को भी नोछा दिया देने वाले कुरङ्ग लम्बी छल्लों में भरते हुए मानो आकाश में ही नैर रहे हैं। हमी चीच नासिका को टेढ़ा कर बाहुल की तरह गड़गड़ाता हुआ, पूँछ के गुच्छे को हिलाता

हुआ, एक पट्टिल अन्तराक्ष पर दावानल से अने हुए पर्वत की तरह एक सूख दिगम्बर पड़ जाता है।

उसे दमते ही राजा सावधान हो जाता है। विविध पक्षों से मरिटा बाग की वना उस सूख पर बेम ही करने लगता है जग वार राखन राखन-द राखन पर कर रहे थे। दशकों को यह वना नहीं चलाते कि युद्धकौशल में निपुण उस अथ नया अग्रन्त चक्षु हाथों से आग्रतापूर्वक दागों का परसाते हुए उस राज और धीरम के समित उस सूख में से किसी ठाढ़तम माना जाय।

उन दाग के इन्द्रयुद्ध न गन्धी में करन उपच कर दिया है, पर्वतों में चक्षुता ला दी है। मगवान् मूर्धने मी उनक नम शीर्ष मर्दान का देखने के लिये कुछ समय के लिये अपने पाँव मानो गढ़ कर दिये हैं। चिरकाल तक युद्ध में पराक्रम मर्दान के बाद उस सूख सम्राट पर नरेन्द्र नल की विजय होती है।

विजय के बाद भारी की परेगानियों से एक बुर राजा विधाम के लिये एक मालवृष्ट के भीचे बैठा है। वनपक्षों तथा लताओं को कम्पित करती हुई, कुञ्ज पक्ष कदम्ब के मकरन्द बिन्दुओं से घोसिल हवा के मधुर स्पर्श से उसकी ओंखें सपही ले रही हैं। परिवन वन अभी मृगधनुओं को बेधव्य दीवा देने में ही लगा हुआ है। मृगों के विनाशमूलक शोक से वनद्वतार्थ होपहर के समय पुष्प लोचना से गरम-गरम मकरन्दों के बहान ओंखें बरमा रही हैं। तरंग मञ्जरियों के लुलित हो जाने के कारण भ्रमरमण्डल नैरस्य लिये दूसरे वनों की ओर प्ररिपत हो रहा है।

हमी बीच एक राही उसी मालवृष्ट के पास आता है। लता की टाल से उसने अपने पंके वालों को बाँध रखा है। कंधे पर एक कण्टा लिये है। गले में मिट्टी की गोलीयों से बनी माला पहने है। कैय रह का एक कीवीन लगाये है। पैरों में फटा बिपदा बाँधे है और हाथ में एक बाण का निषापात्र लिये है। यह शरीर से अग्रन्त दुर्गन्ध दिगामी पड़ता है।

राज ॥ अलोकमान्य मीन्द्र्य को ही देरा कर उसे यह मालूम पड़ जाता है कि निधय ही यह काई मदापन्न है। यह निधय के अनुसार यह आगे बढ़ कर कहता है—'कामविचयिन्, आगच्छ मद्रल हो।'

राजा भी आग्रय से निर उठता है और बड़े सादर के साथ पथिक का अभिनन्दन करता हुआ चला है—

'कटिये कहीं से आपकी सामाजना की जाय ? मार्ग का कितना अंग अधगिट रह गया है ? आइये, बटिये, मोड़ा विधाम कर लीजिये तो जाइयेगा। अनेक

विदेशों में भ्रमण करने वाले लोग विविध आश्रयों को देखते रहते हैं। बहुत सी अद्भुत बातें उनकी जानकारी में रहती हैं। आप भी ऐसे व्यक्तियों में से ही हैं। कुछ सुनाइये। प्रथम परिचय के कारण आप से स्पर्श स्नेह है, ऐसी आशङ्का नहीं कीजियेगा। प्रथम दर्शन होने पर भी मणि अपनी कान्ति नहीं छिपाते।”

पथिक भी राजा की जिज्ञासा को सम्मानित करता हुआ बोलता है—

“सम्पूर्ण ससार में अपनी दर्शनीयता के लिये प्रसिद्ध, दक्षिण दिशा में भगवान् शङ्कर के पवित्र चरणों से अधिष्ठित, श्रीशैल नाम का पर्वत है। वहीं आकर्षक फूलों एवं फलों से सम्पन्न वादावरी के तट पर देवों और दानवों की मोक्षी में समान-रूप से पूजे जाने वाले भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये भेजा था।

वहाँ से लौटते समय लम्बा रास्ता तय करने के कारण थक कर एक विशाल बरगद के पेड़ के नीचे विश्राम करते समय मैंने जिस एक आश्रय को देखा उसे कृपया आप सुनें—

एक राजा की अद्भुत सुन्दरी लक्ष्मी उसी पेड़ के नीचे आयी। वह अपने मधुमय पद विन्यास से गजेन्द्रबधू के भी चित्तविलास को मात कर रही थी। चारों ओर से सहेलियों से घिरी हुई थी। डुलाये जा रहे चँबर की हवा से उसकी अलकवस्त्ररी स्पन्दित हो रही थी। वह सुधा माधुरी से भी स्पर्धा करने वाली गीत-ध्वनि में कान लगाये थी। मुझे तो उसे देखकर ऐसा लगा कि तारायण के चर-स्थल से विलग होकर लक्ष्मी ही आ गयी हैं। उसका मुख चन्द्रमा की आभादकता प्रस्तुत कर रहा था। ओखें कमल से स्पर्धा कर रही थीं। अपनी यौवनलक्ष्मी के अद्भुत विलास से वह कामदेव की विजयवैजयन्ती बनी हुई थी। युवकों के मानस को तो वह अनायास ही उद्धेलित कर रही थी। उसके सौन्दर्य तथा अतिमानव सौभाग्य को एक-एक कर वही वर्णन कर सकता है जिसे शेषनाग की तरह महल जिह्वार्ये हो।

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं वैसे ही वह भी दक्षिण दिशा के लिये प्रस्थित एक उत्तर दिशा के पथिक से कुछ पूछनी हुई वहाँ कुछ समय तक टहरी।

उत्तर देश के किसी प्रशंसनीय गुण वाले राजा के सम्बन्ध में बातें चल रही थी। मैं भी उस चाण्डालोद् के सारस्वतप्रवाह से घञ्जित न रहा। वह कह रहा था—

‘ये ओंठें धन्य हैं जो उस कामविजयी राजा के मुरमण्डल को देख कर घुस होती हैं। तुम कामदेव की मञ्जरी हो और वह युवक उसका आस्वादक भ्रमर है। तुम्हारे ही लिये वह उपयुक्त है। तुम दोनों के मिलन से ब्रह्मा की कला साकार हो उठेगी।’

मालूम नहीं वह कौन पुण्याना है जिसके विषय में सुनने मात्र से उसे रोमाञ्च हो गया। आश्चर्य के मारे मेरा भी विवेक समाप्त हो गया था। इसीलिये मैं पूछ नहीं सका कि वह किसकी लक्ष्मी थी। कहीं और किम स्थान में आयी थी। आकस्मिक विद्वलता की बहुलता में इन्द्रियों के समस्त बाह्य व्यापार शान्त हो गये थे। स्तब्ध होकर बहुत दूर तक चुप बैठा रहा। अब मैं यही सांचता हूँ कि सम्पूर्ण समार की सर्वोत्तम सुन्दरी उस राजपुत्री को देखकर उस दिशा की मेरी यात्रा मकल रही। अब मैं आप जैसे अतिमानव मौन्दर्य की मूर्ति को देख कर मैं कृतकृत्य हो गया। देशाटन का प्रयास संकट हो गया। अग्नि, आग्नी होशिय, मैं अपना रास्ता तय करूँ।”

पथिक की बातें सुनकर राजा मोचने लगता है—“निश्चय ही वह देश की-रकों का अद्भुत स्वप्नाना है। यह पथिक भी यथार्थ ब्रह्मा है। ब्रह्मा का निर्माग-कौशल बहुविध आश्चर्यों को समार में प्रस्तुत किया करता है। उसके लिए क्या सम्भव नहीं है। खेद यही है कि मैंने उस मौन्दर्य की प्रतिमा, रमणीरस को नहीं देखा। बड़े आश्चर्य की बात है, केवल सुनने मात्र से ही मेरा उच्च मनोवश गिरता जा रहा है। मैंने अपनी नेत्राञ्जलि में उसकी रूपसुषा का पान नहीं किया, उसके नाम पढ़व क’ करने कामों का मूष्य नहीं बनाया, फिर भी शुम्भक की तरह उसकी लावण्यकान्ति मुझे नीचनी आ रही है। मन धैर्यद्वार को तोड़ कर दम्भी की ओर भागा जा रहा है।

अप्राप्य धनु में पुरुषों का अनुराग हुआ ही करता है। मुझ तो उसे सुनते ही बिना उबर का अस्वस्थता आ गयी है। बिना बुझापा आये ही जड़ता छा गयी है। कानों के रहने बहारा हा गया हूँ। नमस्कार है उस मनोजन्मा काम-देव को जो सज्जनों का भी दुर्जन में परिवर्तित कर दिया करता है।”

इस तरह सोचता हुआ राजा उस पथिक को विविध उपहारों से सम्मानित कर विदा देता है और स्वयं भी व्याघ्र परिवर्जनों के साथ घर के लिये चल देता है। घर पर उसके मन की उदासी बढ़ जाती है। उसके चेहरे को देख कर इस बात का पता चल जाता है कि उसके मानस के मृगकुटीर में कहीं काम की चिनगारी सुलग चुकी है। उसके वर्षाकालीन वे दिन पथिकों से उस राजपुत्री-विषयक समाचार पूछने में ही बीतते हैं।

द्वितीय उद्घाटन

वर्षों का समय समाप्त हो रहा है। शरत् के आगमन के उपलक्ष्य में अमर एवं हमों ने स्वागत-गान शुरू कर दिया है। नल एक निकटवर्तीवन में विहार कर

रहा है। किन्नर-मिथुन अत्यन्त ललित स्वर में कुछ श्लोक गा रहे हैं। उनकी गीतलहरी नल की उत्कण्ठा को और उड़ीस कर देती हैं। इस बीच कुछ वन-पालिकाएँ आती हैं और वन के विविध दृश्यों को दिखाती हुई सभी पदार्थों का वर्णन छिष्ट शब्दों में करती हैं। उनकी उत्सवकृता पर वह बहुत सन्तुष्ट होता है और अज्ञों के भूषणों को देकर बड़ी खुशी के साथ उन्हें विदा करता है।

अभी मनोविनोद के हेतु घूम ही रहा है तब तक उसके सामने ही अपने सफेद पक्षों से धरती को मण्डित करती हुई हंसों की एक अत्यन्त सुन्दर मण्डली आ गिरती है जो भूल की सृष्टि के लिये कमलमाल को तोड़ने लगती है। कौतुक घटा नल उन्हें पकड़ने का प्रयत्न करता है। अन्ततः एक को पकड़ ही लेता है। लाल कमल के मध्य भाग की तरह सुन्दर उसके करपल्लव पर वह इस पक्ष रागमणि की शक्ति पर रखे गये सफेद कमल की तरह प्रतीत होता है या उदया-चल की लाल मणिषों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह लगता है। हाथों में आते ही वह चाँदी की झाल की तरह मधुर स्पर्श में अत्यन्त विस्मय शब्दों में राजा को आशीर्वाद देता है।

इस की निर्भीकता तथा चालमाधुरी उसे आश्चर्य के साथ उत्कण्ठा का एक झोंका और लगा देती हैं। मन ही मन वह सोचने लगता है कि निश्चय ही पक्षों के वेप में वह कोई देवता है। मन से भी किसी प्राणी का अपमान नहीं करना चाहिये, क्योंकि कार्य से, दुष्टता से या शाप से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाकर घूमते फिरते हैं। ऐसा सोचकर वह बड़े स्नेह के साथ इस का स्वागत करता है। "आपके दर्शन से ही मृत हूँ।" यह कह कर इस राजा को और अनुरागसम्पन्न कर देता है। इसी बीच अपने सहचर को पकड़ा गया देख कर इस पक्ष आसू गिराती हुई राजा के सम्मुख आती है और रत्नेपमरी बाणी में बहुत तरह की उलाहनाएँ सुनाती है। नल भी छिष्ट उक्तियों में ही उसका उत्तर देता है। इस नल से निवेदन करता है कि वह उसकी पक्षी को अपने कटु स्वप्नों से नाराज न करे। अभी इन तीनों का मनोविनोद चल ही रहा है तब तक आकाशवाणी होती है—“राजन्, इस हंस को छोड़ दो। यही दमयन्ती को तुम्हारी ओर आकृष्ट करने में सहायक होगा और दूत कार्य करेगा।”

‘दमयन्ती’ नाम सुनते ही नल रोमाञ्चित हो जाता है और “यह कौन सी दमयन्ती? कौन सा यह आश्चर्यमय पक्षी? कौन यह आकाशवाणी? विस्तार से जानने लायक ये सब चीजें हैं।” यह सोचता हुआ एक छायादार वृतामण्डप में पहुँचकर इस से कहता है—“कल्याणमित्र! यह दमयन्ती कौन है? क्या इसकी उत्पत्ति है? कैसी सौन्दर्य-लक्ष्मी है?”

राजा की उद्वेग्य मरी जिज्ञासा को जानकर 'शत्रु' के स्वर्गकलश ! यदि जानना ही चाहते हैं तो लीजिये, दमयन्ती के समजीवनम परिचय-पञ्चव को अपने कानों का अलङ्कार बनाइये ।" इस ने कहा—

"गङ्गा और गोदावरी के अयन्न पवित्र प्रवाह में दुरित दावानल को मूलतः शान्त कर देने वाला सब देशों में सर्वाधिक महावशील दक्षिण देश है । उर्मी दश के मङ्गलपूर्ण भाग में वैदर्भमण्डल को अलङ्कृत करने वाला कुण्डिन नाम का नगर है । वहाँ के राजा महाराज भीम हैं । उनकी पटरानी त्रियङ्गुमञ्जरी अपने सौन्दर्य के लिये विश्वविख्यात हैं । पहले उन्हें कोई सम्मान नहीं था । एक दिन वनविहास करते समय एक वन्दरी के डरचे को देख कर इन दम्पती को अपनी सन्तानहीनता के कारण बड़ा दुःख हुआ । रानी त्रियङ्गुमञ्जरी तथा महा राज भीम अभी विचार ही कर रहे थे तब तक अभेस हो गया । अन्त में भीम ने पत्नी का यह युक्ति बनायी कि वह कामवर्षी भगवान् शङ्कर की आराधना करे । पति की आज्ञा से मन्थ्याकाल में भगवान् शङ्कर की उपासना के लिये वह देवी समाधिरूप हो गयी ।



॥ श्री ॥

नलचम्पूः

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता

प्रथम उच्छ्वासः

जयति गिरिसुताया कामसन्नापगाहि
न्युरसि रसनिपेक्षानन्दनधन्तनौलि ।
तदनु च विजयन्ते कीर्तिमाजा कपीना-
मस्तदृदमृतविन्दुस्यन्दिनो वाग्विलासाः ॥ १ ॥

सुहृदप्रबन्धे चतुराननस्य भावानन्दवान्विलसद्दिनेषान् ।
विदूषवती स्वेन वचनं येन स्यादावली बोधविबुद्धये च ॥

शक्तिविक्रमस्यैव जीवाहोकाविलङ्घनी ।

वृमयन्तीप्रबन्धेन सदा वलिमनोदिता ॥

वैविध्यमात्रि विद्यमानि वदन्ति यानि

तेषा प्रकाशमनिनन्दनि चण्डपालः ।

य स्यापिभावघटनात्पटुहृदिभाज

सप्राप्य विमलितरी रसनिर्मलत्वम् ॥

मङ्गलैर्गन्धिका रघुगिरि सद्गुहमन्दिरम् ।

सम्यग्दर्शनिबिम्बे निबन्धोऽयं विधीयते ॥

प्रथममुपमेयमस्मिन्नुपमानमतो विचार्यते सम्यक् ।

अविरोधविरोधावपि यस्यादेव क्रमेणैव ॥

छन्दनविशेषेण मया ययोचितसमासकारकप्रवृत्ति ।

सुगमत्वाच्च यदुक्त तन्मविमद्भि स्वयं श्रेयम् ॥

सूक्ष्मायां प्रस्तुरिच्यन्ते कुशाग्राग्रपधिया स्वतः ।

तदुभ्याक्यापोषता प्रायः सचेपाव ततो मया ॥

सकलमङ्गलकारण दुरितनिवारणमभिधायोपयोगि चावरयमेव शास्त्रादौ कविता
किमपि प्रपेय तदेतन्मनसि कृत्वाभीष्टद्वयताप्रणतिपूर्वकमेव समारब्धमिति पूर्वा-
चार्यप्रणीतसमाचारमयांदानुसङ्गन सूक्ष्मलनिधिरपि खडैरलम्बमभ्यो विचित्र-
पदपङ्क्तिपरित्यायोर्बोधिमघट श्रीत्रिविक्रममष्ट प्रतिपादनीयसर्वरसकयोपक्रमे सदा-

शृङ्गारस्वादिश्रादीनेकान्तशान्तःस्वाद्गीतरागप्रभृतीनपदाय सर्वरसार्थकं परमेश्वरं
 शंकरमेव प्रणुवन्नाह—नयनोत्थादि ॥ हैमवत्याः संवन्धिनि काममतापवादिनि कदपं-
 देवपीठां दधान उरसि चान्दनो रसनिपेक इव सनापापहरणाद्रौहणदुमरसाभिपेक
 इव योऽसौ भगवाश्चन्द्रमौलि सुधाशुशेसरः स जयति सर्वोत्कृष्टो भवति । 'सर्वो-
 त्कृष्टश्च सर्वथा नमस्य स्यात्' इति नमस्कारः प्रतीयते । नमस्कारेण च प्रबन्ध-
 कर्तृव्याख्यातृश्रोतृणामिष्टफलमपत्ति । रसा निविच्यन्तेऽस्मिन्निति रसनिपेको रसा-
 धार इत्यप्येकदेशेन प्रतिपत्तव्यम् । रसाश्च शृङ्गारादयः । तांश्च कवय एव व्यक्ती-
 कर्तुं प्रभवन्ति । अतस्तदनु रसाधारस्य भवन्त पश्चादस्यैकनिमित्तानां
 कवीनां वाक्मीकित्यासनालिदासप्रभृतीनां निरन्तररसाविष्कारिणो वाग्विलासा
 विजयन्ते ॥ अथ च पूर्वार्धेन वक्ष्यमाणप्रबन्धचार्योऽपि सूच्यते । 'गिरिर्भीमनृप' ।
 'गिरिर्भीमनृपे सूर्ये स्वभावे पर्वते जले' इत्युक्ते । तस्य सुताया दमयन्त्या दुर्वार-
 स्मरविचारमनस उरसि मलमन्दपरसनिपेको भविष्यति । स च चन्द्रवश्यानां
 मौलिमुकुटापमान इति ॥ १ ॥

पर्वत पुत्री (पावती) के काम-सन्तप्त वक्षस्वत् पर चन्दन रस के सिंचन
 सद्युग (शीतल लगने वाले) चन्द्रशेखर (भगवान् शिव) सर्वोत्कृष्ट हैं । इसके
 बाद यशस्वी कवियों के निरन्तर सुधा-विन्दु बरसाने वाले वाणी के विलास भी
 उत्कृष्टताशाली हैं ।

["ज्ञानमिच्छेत्तु शङ्करात्" ज्ञान की कामना तो भगवान् शंकर ने करनी
 चाहिये । हम नियम के अनुसार कवि समस्त भक्तियों के भूत तथा समस्त रसों
 के निकेतन भगवान् चन्द्रमौलि को नमस्कार करता है । इसके बाद यशस्वी
 कवियों के वाग्विलास के प्रति श्रद्धा व्यक्त करता है । वाग्विलास पद से उक्ति-
 वैचित्र्य की ओर संकेत किया गया है । किन्तु केशव वाणी की वक्रता ही कवि
 की ईप्सित नहीं है । वह वैसे वाग्वैचित्र्य की प्रशंसा करना चाहता है जिससे
 निरन्तर सुधा-माधुरी की वर्षा होती रहती है ।

"जयति" पद का अर्थ "सर्वो वर्णो वर्तते" किया जाता है । जिस व्यक्ति
 से सर्वोत्कृष्टता आ जाती है वह अनायास ही प्रणम्य बन जाता है । इमोलिये
 प्रणाम के अर्थ में यह पद प्रयुक्त हुआ करता है ।

प्रस्तुत पद्य के पूर्वार्ध भाग में वर्णयिष्यमाण कथातत्त्व की ओर भी संकेत
 किया गया है ।

"गिरिर्भीमनृपे सूर्ये स्वभाव पर्वत जले" हम उक्ति के आधार पर गिरि
 शब्द का "राजा भीम" अर्थ भी जाना है । चन्द्रमौलि शब्द का दूसरा अर्थ
 मल भी है, क्योंकि नल चन्द्र (चन्द्रवर्णियों में) मौलि (घेठ) था ।

अर्थात् राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के काम-सन्तप्त वक्षस्वत् पर चन्दन-
 रस के सिंचन-सद्युग नितान्त शीतल प्रणीत होने वाले चन्द्रमौलि नल
 सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ १ ॥

जयति मधुसहायः सर्वमंसारवहो-
जननजरटकन्दः कोऽपि कन्दर्पदेवः ।
तदनु पुनरपाहोत्संगसंचारितानां
जयति तदणयोपिहोचनानां विलासः ॥ २ ॥

॥ किमहायः किमूलः किमुपकरणञ्च कामो यो जयतः शिवतानिभ्यां शिवाम्भ्या-
मपि स्वीकृत इत्याह—जयतीति । कोऽप्यद्भुतवैभवः कंदर्पदेवो जयति । किमूलः ।
मधुमहायो जयन्तसत्त्वः । नहि सन्ध्यामन्तरेण कश्चिन्नृणाकार्यकरणाय प्रवर्तते ।
तथा सर्वस्याः संसारवक्ष्या उपादनाय कठिनकन्दः । कठिनकन्दाद्यविद्युत्वा
शौर्यदृष्टिः । कंदर्पदेवादनन्तरं पुनः पुनर्नेत्रापाङ्गप्रदेशक्रोचे कामुकजनकषयीकरणाय
प्रवर्तितानां मदवपःसुन्दरीनेत्राणां कटाक्षदिविभ्रमो जयति ॥ २ ॥

सम्पूर्ण संसाररूप लता को उत्पल करने में कठिन कन्द, वसन्त (जैसे)
मित्रवाले असौमिक शक्ति-सम्पन्न कामदेव उत्कृष्टताशाली हैं । तदनन्तर
सुदुर्गमों के नेत्रप्रान्तरूप क्रोड से संचालित होनेवाले आँखों के (कटाक्ष
आदि) विनाश सर्वोत्कृष्ट है ।

[जैसे कठिन कन्द होनहार लता को उत्पल करता है । वैसे वसन्त की
सहायता प्राप्त किया हुआ अनौकिक महिमावाला कामदेव इस होनहार संसार
को उत्पल करता है । इसीलिये उसे संसाररूप लता को उत्पल करनेवाला
कठिन कन्द कहा गया है । कटाक्ष आँखों का विनाश है । वह नेत्रों के प्रान्त
भागरूप गोद में उत्पल होता है । और वहीं विलसित होता है । दन्वे जैसे
जतनी की गोद में खेलते हैं वैसे आँखों में उत्पल होने वाले कटाक्ष अपनी
जतनी आँखों के अपाङ्ग रूप गोद में खेल रहे हैं । अर्थात् कामुक जनों को
लस्य कर छोड़े गये कामिनिर्मों के कटाक्ष भी उत्कृष्टताशाली हैं ॥ २ ॥]

अगाधानःपरिस्पन्दं विबुधानन्दमन्दिरम् ।

यन्दे रसान्तरप्रौढं श्रौतं सारस्वतं वदन् ॥ ३ ॥

अथ यदवाचि 'तदनु च विजयन्ते वाग्विलासाः' इति तद्गुणान्नेत्र श्लोकत्रये-
णाह—अगाधेति ॥ सरस्वती भारती नदीविशेषश्च । तस्या इदं सारस्वतम् । स्रोतः
प्रवाहं वन्दे नमस्तुवे स्तुवे वा । नदीपथे प्रवाहस्य तदमत्वाद्य किंचिद् दुर्घटम् ।
परं भारतीपथेऽप्यधर्मस्यान्यद्वारोपलक्ष्यमाधिरा गिरां नैरन्तर्येऽपि स्रोतः
शब्दः । यथा 'उन्मिमील कमलं सस्मीना केरवं च निमिमील मुहूर्तात्' इत्यश्रो-
न्मीलननिमीलने नेत्रधर्मावपि कमलद्वयमुद्योरारोपिते किं कुर्वत् । बद्धप्रवर्तमानम् ।
पथे प्रसरत् । तथा अगाधो महायन्तपालव्यमण्योऽन्तर्मध्ये प्रकरणात्मनमि परिस्प-
न्दब्रमकाकारी स्मृतिविशेषो यस्य । पथेऽगाधो यस्मीरोऽन्तर्मध्ये परि समन्तात्स्प-
न्दबलनमावर्तविशेषो यस्य तथा । विबुधानां देवानां पण्डितानां वा हर्षस्यानम्

भारतीविलासेन हि सुराणामपि प्रमोदः सपद्यते । पद्मे धीनां पद्मिणां मध्ये बुधा राजहसास्तेषां हर्षस्थानम् । तथा रसाना शृङ्गारादीनामन्तरेण विदोषेण प्रौढं प्रगदभम् । पद्मे रसाया मूमेरन्तरे मध्ये प्रवहति स्म । कर्तारि च । सरस्वती किञ्च ग्लेच्छदेशे श्वाभूय तदन्ते पुनरुद्भवतीति लोकश्रुतिः ॥ ३ ॥

सरस्वती नदी पक्ष—अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले, देवताओं के आनन्द के निवेदन रमा-न्तर (पृथ्वी के बीच) में बड़ी प्रगल्भता से बहने वाले सरस्वती नदी के प्रवाह को नमस्कार करता हूँ ।

वाणीपक्ष—हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाले, विद्वानों और देवताओं के हर्षस्थान (शृङ्गार आदि) विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध सरस्वती (वाणी) के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता हूँ ।

[सरस्वती नदी देवताओं को अधिक प्रिय है इसका प्रवाह पृथ्वी के भीतर ही है । वह प्रत्यक्ष नहीं है । कहा जाता है कि प्रयाग में सरस्वती और यमुना तथा से मिलती है । यमुना की धारा तो प्रत्यक्ष है किन्तु सरस्वती परोक्ष रूप से ही मिली हुई है ।

नदीपक्ष के श्लिष्ट शब्द—अगाधान्त परिस्पन्द (अथाह गहराई के बीच तरङ्गित होने वाले), विबुधानन्दमन्दिर (देवताओं के आनन्द-निकेतन), रसांतरप्रौढ (रसा-पृथ्वी-के भीतर प्रौढ) बहते हुये सारस्वत (सरस्वती नदी के) प्रवाह (धारा) को प्रणाम करता हूँ ।

वाणीपक्ष—अगाधान्त परिस्पन्द (हृदय में विशिष्ट चमत्कार उत्पन्न करने वाला), विबुधानन्दमन्दिर (विद्वानों के आनन्द का निकेतन), रसांतर-प्रौढ (शृङ्गार आदि विभिन्न रसों की विविधताओं से समृद्ध) सरस्वती के विकसनशील प्रवाह को प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

प्रसन्नाः कान्तिहारिण्यो नानाश्लेषविचक्षणाः ।

भयन्ति कस्यचित्पुण्यैर्मुखे याचो गृहे स्त्रियः ॥ ४ ॥

प्रसन्ना इति ॥ कीदृशो वाच । नानानेकधा प्रसन्नाः प्रसादगुणोपेताः । शब्द-गुण प्रसाद ओजोमिश्रितसौधिकात्म्याः । अर्धगुणस्तु प्रसादो पैमवयं सटिश्वकोप-मोचराशम् । तथा च काव्यप्रकाशकारः—“श्रुतिमात्रेण शब्दानां धेनार्थप्रत्ययो भवेत् । साधारण समग्रणा स प्रसादो गुणः स्मृतः” ॥ इति । यद्वा प्रसन्ना समाससंहिता’ उक्तः—“माधुर्यमभिवान्द्यन्तः प्रसादश्च भुमेधसः” । समासवन्ति मूयांसि न पदानि प्रयुज्यते” इति । तथापि कथा कान्तिगुणेन दत्तं मनो वसीकृतं शीले यामाम् । शब्दगुणः कान्तिरौज्यवयम् । ग्राम्यादिभिरनभिप्रयुक्तैरिति यावत् । अर्धगुणस्तु कान्तिर्दासराशवम् । तथा नाना शब्दगुणार्थगुणार्थलङ्कारशब्दालङ्कार-रूपचतुर्विधं श्लेष विरोधेण चसते वा । शब्दगुणो मधुगन्ध श्लेष । अर्धगुणस्तु श्लेषो धरना । शब्दकृत शब्दालङ्कारः श्लेष । अर्धकृतस्तु श्लेषोऽर्थालङ्कारः ।

स्त्रियस्तु प्रसन्नान्मोहान्विताः । तथा कान्त्या वपुषो गुणविशेषेण मनोज्ञाः । तथा नानानेकविधे स्पृष्टक-विद्रुक्-उद्गुष्ट-पांडन लतावेष्टक-वृक्षाधिरूढ-तिलतण्डुल-दीर्-नीर-उरूपगूढ जवनीपरलेख-स्वनाटिङ्गन-लटारिक-रूपे ह्लादयविध आलिङ्गने विव-रणा दद्यात् ॥ ४ ॥

वाणीपक्ष—प्रसन्न (प्रसाद गुण से सम्पन्न), कान्ति गुण के कारण मनोहर तथा विभिन्न श्रेणों को प्रकट करने वाली वाणी किसी अशौकिक मुग्ध से ही मुख में आती है ।

स्त्रीपक्ष—प्रसन्न (पूर्ण प्रसुद्धि), कान्ति (सौन्दर्य) में मनोहर तथा विभिन्न श्रेणों (आलिङ्गन विधियों) में प्रवीण स्त्रियाँ किसी अशौकिक मुग्ध से ही घर में आती हैं ।

[प्रसन्न, कान्ति और श्रेय शब्द प्रसाद, कान्ति एवं श्रेय गुणों की ओर संकेत करते हैं ।

आचार्य वामन के अनुसार प्रसाद (शब्द) गुण वहाँ होता है, जहाँ वक्त्र की यावता के साथ गिथितता भी वर्तमान है । यावता और गिथितता दोनों ही विरुद्ध धर्म हैं । दोनों का एक जगह अवस्थान प्रतिकूल सा लगता है । किन्तु रस रस के नाटकों में जैसे सुख और दुःख का अमृत सम्मिश्रण होता है वैसे ही प्रसाद गुण में भी जोर गुण का मिश्रण रहता है :—

रसग्रेसनीयेषु सम्मिश्र सुखदुःखयोः ।

ययान्मुमवता सिद्धस्तयैवोक्तप्रसादयो ॥ रा. सू. वृ. ३. १. ६.

प्रसाद (अर्थ) गुण वहाँ होता है जिस पद से शीघ्र ही अर्थ-प्रतीति हो जाती है ।

कान्ति (शब्द) गुण वहाँ होता है जहाँ रचना में उग्ग्वत्ता (नरीयता) होती है । कान्ति (अर्थ) गुण वहाँ होता है जहाँ रस की दीप्ति लक्षित होती है ।

श्रेय शब्द गुण और जनद्वार दोनों ओर संकेत कर रहा है । अर्थात् शब्द और अर्थ श्रेय गुण एवं शब्दरूपालङ्कार तथा अर्थरूपालङ्कार ।

इन गुणों तथा अलंकारों से मुक्त वाणी किसी भी भाष्यवान् के मुख में आती है ।

स्त्रीपक्ष में कान्ति और प्रसन्न शब्द सामान्यतः 'सौन्दर्य एवं प्रसन्नतापूर्ण' अर्थ को व्यक्त करते हैं । श्रेय शब्द का आलिङ्गन अर्थ है । आचार्य वग्गनात ने बारह प्रकार की आलिङ्गन-विधियों का निर्देश किया है ॥ ४ ॥

किं कवेस्तेन काव्येन किं काण्डेन धनुष्मतः ।

परस्य हृदये लग्नं न धूर्णयति यच्छिरः ॥ ५ ॥

तात्पर्य यह कि विद्वानों के बीच पड़ा हुआ साधारण काव्य भी उनकी आलोचनाप्रवण प्रतिभा के योग से नवीन-नवीन व्याख्याओं से सम्पन्न होकर चल्लसित हो उठता है ॥ ३ ॥

अत्रिजातस्य या मूर्तिः शक्तिः सज्जनस्य च ।

क सा वै रात्रिजातस्य तमसो दुर्जनस्य च ॥ ९ ॥

भारता सज्जनदुर्जनयोः सीलेन माध्यम् । यावन्मूर्त्तौपि महदन्तरमिति निरूप-
यन्नाह—अत्रोनि ॥ अत्रिमुनिजातस्य शशाङ्कस्य न त्रिभिर्जातस्य सज्जनस्य च या
मूर्तिः सर्वाभीष्टा सा वै स्फुरं रात्रिजातस्य नमपश्चिनातस्य दुर्जनस्य च क । यतो
दुर्जनस्य वैरा वैर प्रधाना । सज्जनस्य स्ववैरा ॥ ९ ॥

अत्रि ऋषि से उत्पन्न होने वाले (अत्रिजात) अन्धकार यथा नील से न
उत्पन्न होने वाले (अ + त्रिजात) सज्जन की (प्रसन्न एवं कल्याणमयी) मूर्ति
कहाँ और रात्रि से उत्पन्न होने वाले (रात्रिजात) अन्धकार तथा वैरप्रधान
(वैरा) एव नील से जन्म लेने वाले (त्रिजात) दुर्जन की (अपङ्गलमयी)
मूर्ति कहाँ ?

[चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि से है इसीलिए उन्हें अत्रिजात कहा जाता है ।
सज्जन भी अत्रिजात हैं क्योंकि उनकी उत्पत्ति वैध विद्या से ही हुई रहती है ।
किमी तीसरे व्यक्ति अर्थात् जार से उनकी उत्पत्ति नहीं होती । तात्पर्य यह कि
वे वर्णसङ्कर नहीं होते ।

अन्धकार और दुर्जन दोनों ही वै रात्रिजात होने हैं । अन्धकार अ + रात्रि-
जात (त्रिभिन्न रूप से रात्रिद्वारा उत्पन्न) होना है । दुर्जन की मूर्ति वैरा
(वैर प्रधान) और त्रिजात (नील से उत्पन्न) होनी है । सज्जन और दुर्जन में
उत्पत्ति ही अन्तर है जितना प्रकाश और अन्धकार में । सज्जन और दुर्जन में
स्वरूपन महान् भेद हुआ करना है । गुण में कितना भेद होना है, यह कल्पना-
शील बात है ॥ ६ ॥]

निश्चितं ससुरः कोऽपि न कुलीनः समेऽमतिः ।

सर्वपासुरसंघदं काव्यं यो नाभिनन्दति ॥ १० ॥

निश्चितमिति ॥ सुष्ठु रसा शृङ्गारादयो यत्र तथा बद्ध रचितं काव्यं ग्रन्थं यो
नाभिनन्दति स निश्चितं सर्वं ससुरं मयः कोऽपि । न च कुलीनः नाभिजातः ।
सर्वपा समे सावावमति । अमुरे. मयस्य मिलिते काव्यं सुष्ठु (?) यो न नन्दति
स सुर देव कोऽपि । तथा न को भूयो लीन आरिक्कह रसं एव तस्यावस्थानात् ।
तथा मा लक्ष्मी इः काम, तावदा सहितः समेर्विष्णुस्तत्र मेवनाय मनिर्यस्य ।
विष्णुपत्नी इति भावः ॥ १० ॥

काव्यपन्न—सुन्दर (शृङ्गारादि) रसों से युक्त काव्यवग्ग (काव्य-रचना) का अभिनन्दन जो आदमी नहीं करता है वह निश्चय ही मनुष्य, मत्स्य तथा मज्जन से स्नेह नहीं रखता है ।

भृगुरस—जो सर्वदा बभ्रुरो से सम्बद्ध काव्य (कविपुत्र भृगुमुनि) से सम्बन्ध नहीं रखता है वह निश्चय ही कोई सुर (देवता) है । वह कु (पृथ्वी) में लीन नहीं रहता तथा मा (लक्ष्मी) और ई (कामदेव प्रद्युम्न) के साथ रहने वाले विष्णु में मति (विश्राम) रखता है ।

[काव्यपन्न—सुरस—सुन्दर रसों में सम्पन्न, बद्ध—निर्मित । सुर—सुरा रखने वाला या सुरा पीन बाना । काव्य—कवि (मुक्ताचार्य) का पुत्र भृगुमुनि । मुक्ताचार्य दानवों के गुरु थे । भृगु उनके योग्य पुत्र (?) थे । अमुरों से संबंधा सम्बद्ध रहने वाले भृगुमुनि का अभिनन्दन रस लोग नहीं करते हैं । देव लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करते । कु (पृथ्वी) में लीन नहीं रहने हैं । लक्ष्मी तथा प्रद्युम्न सहित भगवान् विष्णु में ध्यान लगाये रहते हैं ॥ १० ॥

सदृपणापि निर्दोषा सखरापि सुकोमला ।

नमस्तस्मै कृता येन रम्या रामायणी कथा ॥ ११ ॥

समिति चाविच्छासाभारानुदाराववासीकिप्रभृतीन्कतिचिरकवीन्वर्णयन्नाह—सदृपणे ॥ अपिर्विरोधे । स स दूषणखरभोर्दोषार्थकठिनार्थकत्वे भवेत् । परिहारस्तु दूषणाखरौ राक्षसौ यत्र वर्जितौ । इहानुक्तेऽपि बावमीकिं प्रतीयते । 'मौढचितोपेग-योगाद्विरोधप्रतिपत्तिः' इति बध्नात् । किं चामी भगवत्कर्मण्यलोके बाम्पद्वि-प्रथमवेद्या मिहुरमरमगीयकरामायणनिर्माप्रवीणतयैव निर्दिश्यमानः प्रकृत्यते । न चितरसाधारणसज्ञामाप्रनिर्देशेन । अत एव कवितोरुत्पत्तमाकृतेन बाव्यममार्तिं प्रतीचिनुमद्यमेग चिक्किमेग बाव्यममार्तिं तस्मै नमः इति मक्तिप्रकर्षप्रकाशन-मुक्तम् । अर्थयोर्ध्यातवात्पाठे तु गर्मितदोषार्थकैश्च न श्यात् ॥ ११ ॥

दूषणयुक्त होने पर भी निर्दोष, खर (रुक्ष) होने पर भी कोमल रमणीय रामायण की कथा जिनने बनायी उस (महाकवि वाल्मीकि) की प्रणाम है ।

[दूषण और खर शब्द आपातत्र विरोध की प्रतीति कराते हैं । परिहार पक्ष में तो खर और दूषण शब्द में खर और दूषण नामक राक्षसों से तात्पर्य है । विभिन्न राक्षसों के उग्रानाममन्त्र एवम् अनौचित्य-रूप चरित्रों को चित्रित करने हुए भी काव्य की रमणीयता जिन कवि ने सुरक्षित रखी वह निश्चय अभिनन्दनीय है ॥ ११ ॥

व्यासः क्षमाभृतां श्रेष्ठो बन्धः स सिमजानिय ।

सृष्टा नौरीदृशी येन भवे विस्मारिमारता ॥ १२ ॥

व्यास इति ॥ ॥ कृष्णद्वैपायनो बन्ध । किंभूत । सान्त्वानो मध्येऽतिशयेन प्रदायः । तथा येवेदशी सर्वत्र विख्याता । विस्तरणशीलं भारतं यस्यां सा भवे संसारे गौर्वाणमृष्टा । क इव । हिमवानिव । किंभूतः स । यमामृतां भूमृतां श्रेष्ठः । तथा येन भवे शिवे रतानुरक्तैवभूना गौरी सृष्टा । किंभूता । विस्तारिणी मा कान्तिर्यस्याः ॥ १२ ॥

व्यासपक्ष—क्षमाशील व्यक्तियों में श्रेष्ठ महर्षि व्यास हिमालय की तरह वन्दनीय है, जिन्होंने सत्कार में विनाश भारत (महाभारत) रूप वाणी की रचना की ।

हिमालयपक्ष—पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय वन्दनीय है, जिसने ऐसी विकसनशील कान्ति वाणी गौरी का निर्माण किया जो भगवान् शंकर में अनुरक्त है ।

[व्यासपक्ष—क्षमाभूताम् + श्रेष्ठ—पर्वतों में श्रेष्ठ । गौरीदृशी—गौ + ईदृशी—इस तरह की वाणी । भवे—भसार में । विस्तारिभारता—विशाल भारत की रचना जिस वाणी में हुई वह वाणी ।

हिमालयपक्ष—क्षमाभूता श्रेष्ठ—पर्वतों में श्रेष्ठ । विस्तारिभा—विकसन कान्तिवाली । गौरीदृशी—ईदृशी गौरी—इस तरह की गौरी । भवे—शंकर भगवान् में । रता—अनुरक्त है ॥ १२ ॥

कर्णान्तविभ्रमभ्रान्तरुष्णार्जुनविलोचना ।

करोति कस्य नाह्लादं कथा कान्तेय भारती ॥ १३ ॥

वर्णैति ॥ कर्णश्च शयैवस्यान्ते विमोक्षे सति विभ्रमेण विस्मयेन वेगं हृदस्य भ्रमेण वाऽनिच्छाद्येन भ्रान्ता विचरितुं प्रवृत्ता कृष्णपार्षणराज्ञा यस्याम् । केव । कान्तेव । किंभूता । अन्नगपर्यन्ते विलासेन भ्रान्ते स्फुरिते कृष्णार्जुने ययामवलक्षे विलोचने नेत्रे यस्या ॥ १३ ॥

भारतीयपक्ष—(कुन्तीपुत्र) कर्ण का अन्त (मृत्यु) हो जाने पर विस्मय में कारण चल कृष्ण जीर अर्जुन के नेत्रों का वर्णन जिसमें किया गया है वह कान्तासदृश भारती (महाभारत की) कथा किसको आनन्दित नहीं करती ?

कान्तापक्ष—(बटाक्ष आदि) विलास में चल एवं कान्तेय तब फँसे हुए कृष्ण (नीली बनीनिवाओ) और अर्जुन (सफ़ेद भागयुक्त) नेत्रों वाली कान्ता किसे नहीं आनन्द देती ?

[महाभारत की कथा कान्ता की तरह आनन्द उत्पन्न करती है । इस श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरण कान्ता और कथा दोनों पक्ष में लगते हैं । शाब्दी समानता के ही आधार पर यहाँ उपमा दी गयी है ॥ १३ ॥]

शब्दद्राणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।

धनुषेव गुणादनेन निक्षेपो रञ्जितो जनः ॥ १४ ॥

इति ॥ वाग्वि शब्दः । गुणाद्विर्बृहत्कयाकारो गुणेन यथा युक्तरव । न मदाकारं स्तम्भवाविरूपं भरतीरेवशीलः कविः । वाग्विर्बृहत्कया न मदाकारं धरतीरेवशीलं धनुः । रञ्जितः प्रभोऽं प्रापितः । अरमत्यर्थं विनो जनः प्रनिर्दोषः ॥ १४ ॥

कृष्ण (मदाकार) को न धारण करने वाले (महान्वि) वाग्वि की भी सदा द्वितीय स्थान देने वाले (कविवर) गुणाद्वि न सब लोगों को रञ्जित (अनुरञ्जित) किया-जैसे ।

धनुषपक्ष—सदा वाग्वि को अपने साथ रखने वाले, नमिन द्वितीय आहूति (नमदाकार) धारण करने वाले, गुण (प्रत्यवा) में आहूति (मज्जुन) धनुष सम्पूर्ण प्रनिर्दोषों को पूर्ण रूप से जीत लेना (अरम् + विज) है ।

[मर मिथिलता भा देना है । विवेक शक्ति कुञ्जित हो उठती है, लेकिन महाकवि गुणाद्वि इस दुर्गम से दूर है । महाकवि वाग्वि जैसा यगम्बी कवि भी विनोके सम्मुख द्वितीय स्थान प्राप्त करना है, उनमें अपनी बृहत्कया से सब लोगों को अनुरञ्जित किया है । धनुष केवल प्रत्यक्ष सम्मानता के आधार पर गुणाद्वि का सम्मान देना है ।

धनुष सदा वाग्वि द्वितीय (वाग्वि के साथ रहना) है, नमदाकारधारी (नमिन द्वितीय आहूति को धारण करता) है और वह गुणाद्वि (गुण—प्रत्यवा के कारण आहूति—मज्जुन) है ।

निर्जयो रञ्जितो जनः—का अन्वय धनुषपक्ष न निक्षेप-जन अरम्-विज—करना चाहिये । अरम् शब्द का प्रयोग यहाँ पराजित व्यर्थ में हुआ है । कवि गुणाद्विपक्ष में निक्षेपो और रञ्जित के बीच में शब्दाकार (ः) नहीं है । अर्थात् वह कवि सब लोगों का अनुरञ्जन करता है ॥ १४ ॥]

इत्थं काव्यकथाकथानकरसैरेषां कवीनाममी

विद्वांसः परिपूर्णकर्षहृद्याः कुम्भाः पयोमिर्यया ।

वाचो वाच्यविवेकविक्रयवियामीदृग्विधा मादृशां

लप्स्यन्ते क विलावकाशमयवा सर्वसदाः सूरयः ॥ १५ ॥

इत्थं कविवर्गं मंचितब्राह्म इत्यर्थः ॥ तर्हि कथाप्रथमप्रकरणेन किमिष्याह—अथेति ॥ १५ ॥

इन तरह इन (महाकवियों) की काव्य-कथा एवम् आख्यानों के सम से इन (समनामयिक) विद्वानों के दान तथा हृदय दूष से भरे घड़े की तरह

भर चुके हैं । (ऐसी स्थिति में) वस्तुव्य वस्तु के उपस्थापन में विवेकशून्य बुद्धिवाले मेरे जैसे लोगों की इस तरह की तुच्छ वाणी वहाँ स्थान पा सकेगी ? (फिर भी निराश होने की कोई बात नहीं है क्योंकि) विद्वान् सबका समादर करने हैं ॥ १५ ॥

वाच काठिन्यमायान्ति भङ्गश्लेषविशेषतः ।

नोद्वेगस्तत्र कर्तव्यो यस्माच्चैको रसः कवेः ॥ १६ ॥

भङ्गरूपमुक्तिविशेषेण सङ्गुह्यन्माह—वाच इति ॥ यतो हेतो कवे काव्यकर्तु-
र्नैको रसो नैका रुचिः प्रसत्तिलक्षणा श्रुत्युत्पत्तिलक्षणाप्यस्ति ॥ १६ ॥

विशेषतः सभङ्ग श्लेष में वाणी कठिन हो जाती है (फिर भी) उसमें उद्विग्न नहीं होना चाहिये क्योंकि कवि के लिये एक ही रस नहीं है ।

[श्री त्रिविक्रम भट्ट जैसे कवि को शिष्ट काव्य-निर्माण में ही रसानुभूति होती है ॥ १६ ॥]

काव्यस्याम्रफलस्येव कोमलस्येतरस्य च ।

यन्मच्छायाविशेषेण रसोऽप्यन्यादृशो भवेत् ॥ १७ ॥

अनु प्रसत्तिमार्गेण कोमलमेव काव्य निबद्धयताम् , किमितरेण श्रुत्युत्पत्तिमार्गेण भङ्गरूपकृतकाठिन्येनोद्वेगहेतुनेत्यत आह—काव्यस्येति ॥ कोमलस्य प्रसन्नस्येतरस्य श्रुत्युत्पन्नस्य काव्याय रचनाचाङ्गत्वेन रसोऽपि शृङ्गारादिरसोऽप्यन्यादृशोऽन्यरूपो श्रुत्युत्पत्तिचर्यया सोऽकर्ष इव इत्यात् । कस्येव । आम्रफलस्येव । यथाप्रफलस्याकार-
वैसादर्य वग्नस्य घृन्तस्य नीलपीठादिच्छायायाश्च विशेषेण यावद्भूतः सत्त्वाद्भोऽ-
प्यन्यादृशमवति । वग्नतेऽनेनेति कृत्वा वग्नो घृन्त फलारम्भकरसकणिकारूपो वा ।
काव्यपक्षे वग्नो रचना ॥ १७ ॥

आम्रफल की तरह प्रसादगुणसम्पन्न कोमल काव्य तथा उसमें भिन्न शिष्ट काव्य के रस में रचना-चानुरी के दृष्टिपट्ट से अन्तर आ ही जाता है ।

[प्रसाद गुण युक्त सरल वाक्यों में अभिव्यक्त होने वाले रस में भीर शिष्ट वाक्यों से व्यक्त होने वाले रस में पदमधटनामूलक (यन्मच्छाया के) विचित्रता के कारण अन्तर पड जाता है । आम के फल को तोड़ कर पकने के लिये भूमा म रख कर बमरे में बन्द कर देने हैं तो उसका रस अत्यन्त मधुर हो जाता है । यदि उसी तरह के आम को खुली जगह में रख दें तो उसका स्वरूप तो दर्जन के सामने हमेशा रहेगा और बालकम से हवा एवं धूप के साधारण सम्पर्क से वह पक्व भी जायगा लेकिन उसका रस वैसा नहीं होगा जैसा भूमा आदि में बन्द कर पकाये गये आम का ।]

प्रौढ रचना के आवरण में आवृत काव्य का रस परिपक्व हो जाता है । अतएव उनकी माधुरी भी बट जाती है । प्रमादयुक्त रचना से स्फुटना के कारण विद्वान् सहृदय के लिये आकर्षक रसमय्यति नहीं रहती ॥ १७ ॥

अस्मि समस्तमुनिप्रनुजवृन्दवृन्दारकवन्दनीयपादारविन्दस्य भगवतो विवेचिभ्वध्यापिव्यापारवद्याध्वतीर्णस्य संसारचक्रे क्रतुक्रियाकाण्डशौण्डस्य शाण्डित्यनाम्नो महर्षेर्वशः ।

समस्त मुनियो एव मानव-समूहों के श्रेष्ठ व्यक्तियों द्वारा वन्दनीय चरण कमल वाले, भगवान् ब्रह्मा के दिव्यध्यापी व्यापार की परवर्गता से इस संसारचक्र में बाधे हुए, यज्ञ करने न निजान महर्षि शाण्डित्य का वश है ।

[ब्रह्मा अपने ध्यापार का विषय सबको बना बैठे हैं । भगवान् नारायण को भी राम-कृष्ण-वामन आदि अवतार धारण करना पड़ता है और इस संसारचक्र में जाना होता है । इसी तरह महर्षि शाण्डित्य भी अतीविक्रमतिमम्बन्त देवगौटि के प्राणी थे किन्तु ब्रह्मा ने उन्हें भी अपने व्यापार का विषय बना ही दिया । अतएव इस समार में उन्हें जाना पड़ा ॥]

अयन्ते च यत्र भवणोचिताश्चन्दनपल्लवा इव केचिद्वृक्षानाः शुचयः सत्यवाचो विरज्जिवर्चसोऽर्चनीयाधारा ब्रह्मविद्गो ब्राह्मणाः । पुण्यजनाश्च न च ये लङ्कापुरुषाः, ससूत्राश्च न च ये लम्पटाः, प्रसिद्धाश्च न च ये लम्गकाः, कामवर्षाश्च न च ये लहनाः सन्मार्गिन्यः, नववयसोऽपि न च ये लम्बालकाः, महामार्पिकाश्च न च ये रङ्गोपजीविनः, सेविताप्सरसोऽपि न च ये रम्भयाम्बिताः ।

अयन्त इति ॥ यत्र महर्षेर्वश ईहता ब्राह्मणाः अयन्त इत्यन्वयः । कीहता । अवग आकर्णनं वचिता योग्याः । पुण्यरूपत्वात् । चन्दनपल्लवास्तु भवणयोः कर्णयोरवतत्सौकर्याय योग्याः । पुण्यजना यातुधाना लङ्कावासिनो नेति विशेषः । पुण्याः पवित्रा जना लोका अष्टमत्यर्थं न कापुरुषा इति विशेषपरिहारेण ब्राह्मणाः प्रशस्यन्ते । एवमग्रेऽपि । तथा सूत्रेण तन्तुना सहिता अप्यत्यन्तं पटामावन्त । सूत्रेणोपवीतेन वेदपाटेन वा युक्ता अपि न लम्पटा लालसाः । तथा प्रकर्षेण सिद्धा अभिमर्शकारे निष्ठां प्राप्ता अपि पूषाद्यास्ते कथमलं न पश्यन्ते स्म । प्रसिद्धा विख्याता न लम्गका लम्पटाः । तथा कामवर्षिणोऽपि नालं मेधाः । अभिलषितदानारोऽपि सम्मार्गस्य लहना न । तथावरावस्था अपि जालं शिखरः । तद्गोबन्ध्या अपि न दीर्घकंशाः । अभिहोत्रिणात् । तथा महान्तो नटा अपि न नृत्यभूषणपजीविनः । महान्तो मारताक्यायका अपि नात्यर्थं योपान्नुपाजोवन्ति । 'राजान्म तेज आदत्ते' इति दीर्घवचनात् । तथा मुक्तदेवाङ्गना अपि न रम्भया युताः । सेवितावि जलप्रधानानि सराणि यैस्तयाविधा अपि न च येरम्भयाम्बिताः ॥

उस महवि वश में कानों में चन्दनपल्लव सदृश प्रिय लगने वाले, विद्वान् (अनूषान), पवित्र, सत्यवादी, ब्रह्मज्ञान में युक्त, अभिनन्दनीय आचरण वाले, कुछ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण मने जाते हैं। वे पुण्यजन हैं, व्यर्थ के कायर नहीं हैं। यज्ञोपवीत महित हैं, सम्पट नहीं हैं। प्रसिद्ध हैं, लम्पाक (धूर्त) नहीं हैं। समस्त कामनाओं को देने वाले हैं, उचित मार्ग का अतिक्रमण करने वाले नहीं हैं। तद्वत् अवस्था के हैं लेकिन उनके बान लम्बे-लम्बे नहीं हैं। विद्याल भारत के निवासी हैं किन्तु वहाँ महान राजा (गोपबल्लभ) में कुछ नहीं तेते। जलपूर्ण सरोवर से स्नान करते हैं, डरते नहीं हैं।

[इस अनुच्छेद में सभ्य श्लेष देखने में ही चमत्कार है।

पुण्यजन (राक्षस) होते हुए भी अकानिवासी नहीं हैं। विरोध।

वे पुण्य जन (पवित्र पुरुष) हैं और अस (व्यर्थ के) कापुरुष (कायर पुरुष) नहीं हैं। परिहार।

आचार्य खण्डपाल ने अलं का "पर्याप्त" अर्थ किया है। इस अर्थ में आपत्ति यह दीखती है कि वाक्य का अर्थ होगा—पर्याप्त या अत्यधिक कायर नहीं है। अर्थात् कुछ कायरता तो है ही। अतः यह अर्थ प्रशंसा के बड़ले निन्दा की ओर सकेत करने लगता है, जो कि कवि का विवक्षित नहीं है।

ससूत्र (तन्त्रयुक्त) है किन्तु उनके पास पर्याप्त (अलम्) पट (वस्त्र) नहीं। सूत्र से ही वस्त्र बनता है। सूत्र होते हुए भी उन्हें वस्त्र का समाव है। विरोध।

ससूत्र (यज्ञोपवीत तथा कटिसूत्रयुक्त) हैं किन्तु सम्पट (धूर्त) नहीं हैं। इस पक्ष में वे और सम्पट के बीच खण्डाकार (S) की कल्पना नहीं करनी चाहिये। परिहार।

प्र + निष्ठ (पूर्ण रूप में एक कर सिद्ध) हो जाने पर भी जन (पूर्ण रूप में) पाक नहीं हो पाया है। विरोध।

प्रसिद्ध (विख्यात) हैं किन्तु लम्पाक (धूर्त) नहीं हैं। परिहार।

कामवर्ष (यथेच्छ वरसने वाले) हैं किन्तु अलघन (पर्याप्त यादल) नहीं हैं। विरोध।

कामवर्ष (कामनाओं को देने वाले) हैं किन्तु (उत्तम मार्गों का) लङ्घन करनेवाले नहीं हैं। परिहार।

नववयस्—प्रारम्भिक अवस्था वाले हैं किन्तु सम्बालक (लम्बे-लम्बे बालों वाले) नहीं हैं। तद्वत् अवस्था में सुन्दरता के लिए लम्बे-लम्बे बाल

होने चाहिये थे । अथवा नवीन अवस्था है फिर भी लोग जल-वातक (पूर्ण मिश्र) नहीं हैं । विरोध ।

अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं, अब हमें वातों को छिनवा दिना करत हैं । इन्द्रो निय उनके वात सम्ब सम्ब नहीं हैं । परिहार ।

महाभारतिक (प्रसिद्ध नद) हैं फिर भी रङ्गोपजीवी (रङ्गनक्ष से जीविका खाने वाले) नहीं हैं । विरोध ।

महाभारतिक (विज्ञान भारत के रहनवाले) हैं किन्तु अरम् + गोपजीवी (पूर्णतः राजा से जीविका ग्रहण करने वाले) नहीं हैं । गो गन्ध का पृथ्वी अर्थ है, उसका प्राप्त करने वाले राजा को मोदकहृत हैं । राजा का अन्न तेज खींच लेता है । इसीलिये तेजस्वी ब्राह्मण राजा की दक्षिणा नहीं लेत । परिहार ।

संवित्ताप्सरस (देवरनदियों का उपभोग करने) हैं किन्तु रम्भयाऽम्बित (रम्भा नामक मुख्य अप्सरा से उनके सम्पर्क) नहीं हैं । विरोध ।

संवित्ताप्सरस (जल सरोवरों का सेवन करने वाले) हैं किन्तु अरम् + मया-म्बित (व्यर्थ के भय से मुक्त) नहीं हैं । अर्थात् तपस्या से उद्देश्य से निर्भीकता-पूर्वक जलसमाधि लेने हैं । ठीी लगने का भय उन्हें नहीं रहता । परिहार ।]

किं बहुना ।

जानन्ति हि गुणान्वक्तुं तद्विधा एव तादृशाम् ।

वेत्ति विश्वंमरा भारं गिरीणां गरिमाश्रयम् ॥ १८ ॥

अधिक कहने से क्या—बैस सोंगों के गुणों का विश्वंवन उन्हीं के सद्गुण श्लोक कर सकते हैं, सम्पूर्ण विश्व को धारण करने वाली पृथ्वी ही पर्वतों के सम्भीरतामूलक भार को जानती है ॥ १८ ॥

तेषां यंशे विशदयसा अधिरस्यात्मजोऽमृद्-

देवादितयः स्वमतिविकसद्देविद्याविवेकः ।

उत्कल्लोलां दिशि दिशि जनाः कीर्तिपयूपसिन्धुं

यस्याद्यापि श्रवणपुटकैः कृपिताक्षाः पियन्ति ॥ १९ ॥

देवानिति । अग्निवाचा. सुधास्किधन्विमोलितवेद्या ॥ १९ ॥

उन्हीं निर्मल वात ब्राह्मणों के वश में श्रीगुरु जी के लडकें देवादित्य हुए । अपनी प्रतिभा से (ही) वे वेद विद्या के सम्बन्ध से विशेषज्ञता प्राप्त कर चुके थे । उनके उमड़ने हुए कीर्तिमुषासागर को लोग आज भी प्रत्येक दिशा में आनन्द के मारे आँखा को निर्भीकित कर श्रवणरूपी अञ्जलि से पी रहे हैं ॥ १९ ॥

तैस्तैरात्मगुणैर्येन त्रिलोक्यास्तिलकायितम् ।

तस्मादस्मि सुतो जातो जाड्यपात्रं त्रिविक्रमः ॥ २० ॥

अपने उन-उन अलौकिक गुणों के कारण तीनों लोकों में जो तिलक सदृश थे, उन्हीं में समस्त जडताओं का पात्र मैं त्रिविक्रम जन्मा हूँ ॥ २० ॥

सोऽहं हंसायितुं मोहाद् बकः पङ्कुर्ययेच्छति ।

मम्बधीस्तद्वदिच्छामि कविवृन्दारकायितुम् ॥ २१ ॥

सौजमिति ॥ मोहादज्ञानाद्गतिमानपि बकः स्वभावसुभगगतेर्हंसस्यापेक्षया पङ्कुः अथवा दैवाकर्षेणैकप्रचरणत्वाद्बकः पङ्कुः ॥ २१ ॥

जैसे कोई खंगडा बगुना हम बनना चाहता है वैसे ही मन्दबुद्धि मैं कवियों में मुख्य बनना चाहता हूँ ॥ २१ ॥

भङ्गश्लेषकथाग्रन्थं दुष्करं कुर्यना मया ।

दुर्गन्तरीतुमारब्धो बाहुभ्यामम्भसां पतिः ॥ २२ ॥

भङ्गति ॥ यथा बाहुभ्यां दुस्तरः समुद्रगतया भङ्गरश्लेषकथाग्रन्थोऽपि दुष्कर इत्यौपरदाहस्तुमन्वन्धः । 'अभयन्वस्तुमन्वन्ध उपमा परिकल्पकः' इति ॥ २२ ॥

भङ्गश्लेषयुक्त एक अत्यन्त कठिन (दुष्कर) कथाग्रन्थ की रचना करने जा रहा हूँ। यह मेरी इच्छा हाथ से अग्राह्य एवं दुस्तर सागर तैरने (के साहस) की तरह है ॥ २२ ॥

उत्कुल्लगलैरालापाः क्रियन्ते दुर्मुखाः सुखम् ।

जानाति हि पुनः सम्यक्विरेव कवेः धमम् ॥ २३ ॥

वाकुलेति ॥ दुष्टमुखाः क्रियमाणत्वाद्दालापा अपि दुष्टा निन्दाकरा । 'वज्रापाः' इति पाठे काकुभाषितानि । दुर्मुखैः स्वैर क्रियन्ते । गल्लगल्लो प्राग्भ्योऽप्यत्र दुर्मुखाः नामकवीनां प्राग्भाषां निन्दाभिधाने प्रयुक्तः समुचितः एव ॥ २३ ॥

निन्दा करने वाले (दुर्मुख) लोग बड़े सुख के साथ गला फाड़कर (दुष्टों पर बटु) व्यङ्ग्य कसा करते हैं किन्तु कवि के (सराहनीय) धर्म को अच्छी तरह कवि ही समझ सकता है ॥ २३ ॥

संगता सुरमार्थेन रम्या मेरुचिराश्रया ।

मन्दनोद्यानमालेख स्वस्थैरालोक्यतां कथा ॥ २४ ॥

संगतेति ॥ रुचिरो रम्य आश्रयो नलोपाख्यानलक्षणो यस्याः सेव प्रम स्वस्थैर-व्यग्रैरालोक्यतां विमृश्यताम् । स्वस्थे चित्ते सुखं सञ्चरन्ति । किमृता । शोभनो रस शृङ्गारादियंत्र तथोपेक्षायेन समतोषिता । औचित्यं हि रसस्य परमरहस्यम् । उक्तं च—'अनौचित्यादते नान्यद्रसमयस्य कारणम् । प्रमिदौचित्यबन्धो हि रस-स्योपनिषत्ता ।' तथा रम्या भङ्गरश्लेषोक्तिर्मर्मनोहरा । पश्ये रसं रसगं तिष्ठन्तीति कृत्वा स्वस्थे भवर्गवासिभिः ॥ "सर्वे सति वा विसर्गलोपः" ॥ किमृता । सुराणां साधो पृन्दं तेन संगता कृतसद्भा । तथा मेरुः सुरगिरिचिरमाश्रयो यस्याः ॥ २४ ॥

सुन्दर (शृङ्गार आदि) रसमय कथों के कारण औचित्यसम्पन्न मनोहर (नन्दनमयनी का) कथा पर आधारित नन्दनवनपतिमदूत मरी रस रमणीय कथा को सुस्थिर चित्तवाला लो० देखें ।

नन्दनवन पक्ष — इन्द्र के विहार वन का नाम नन्दनवन है । नन्दनवन माला सुर + नाय (देव समूह) म सम्मन युक्त है । यह रमणीय एवं मन्- चिराश्रया (मध्यवत पर चिरकाल स स्थित) है । स्वस्थ (स्वगस्थित भागा) द्वारा दृष्टी जाती हैं ।

कथा पक्ष — सुरस + अथ (शृङ्गार आदि सुन्दर रसमय कथों) व सान (औचित्य-सम्पन्न) मरी रमणीय कथा को स्वस्थ (सुस्थिर चित्तवाला) नाय विचारपूर्वक देख ॥ १४ ॥

उदात्तनायकोपेता गुणवद्वृत्तमुक्ता ।

चम्पूश्च हारयष्टिश्च केन न क्रियते हृदि ॥ १५ ॥

उदात्ति । उदात्तेन महात्मना नायकेन भलेनोपेता । तथैव प्रसादादिगुणयुक्त वृत्त चम्पूवद्वृत्त मुक्तक गद्यात्मक च यस्या सा चम्पूर्यधारयमयी साङ्गोष्णमा कथं दात्तेन महात्मना नायकेन हारमध्यरत्नेनापेता । तथा तन्तुमयौ वृत्तमुक्ता वर्तुलमौलिद्वानि यस्या सा मुक्ताहारलता च केन चित्ते बहसि च न क्रियते ॥ १५ ॥

चम्पू पक्ष — उदात्तनायकापेता (धीरोदात्त नायक से युक्त) गुणवद् + वृत्त मुक्तका (प्रमाद ओज माधुर्य आदि गुणों से युक्त) गद्यपद्यात्मक चम्पू ।

उदात्त नायक से युक्त, (प्रमाद, ओज, माधुर्य आदि) गुणा न समन्वित पद्य तथा गद्य से युक्त चम्पू और उज्ज्वल मध्यमणिवाली सूत्र में प्रयुक्त हार- लता को कौन नहीं हृदय से लगाता ।

हारलता पक्ष — उदात्तनायकोपेता-उज्ज्वल और मध्यमणि से युक्त गुणवद्वृत्तमुक्तका-तन्तु में शिरोयी हुई मोतीवाली हारलता को कौन नहीं हृदय से लगाता ॥ १५ ॥

अस्ति समस्तविद्यमरामोगमास्त्रह्यल्लामलीलायमान समान सेव्यतया नाकलोकस्य, आम्यकविरुथारन्ध इव नीरसस्यमनोहर, भीम इव भारतालकारमृत, कान्ताकुचमण्डलस्पर्श इवाप्रणी. सर्व- विषयाणाम् । अनघीतध्याकरण इवाहप्रकृतिनिपातोपसर्गलोपवर्ण- धिकारः पशुपति जटाधन्ध इव विकसितकनककमलकुवलयोच्छलित- रज पुञ्जपिञ्जरितहेसावतंसया प्रचुरचलच्चकोरचक्राककारणद्व- मण्डलीमण्डिततीरया मगीरथमूपालकीतिपताक्या स्वर्गगमनसोपान धीर्यायमानरिङ्गत्तरङ्गया गङ्गया पुण्यसलिलैः प्लावितश्चन्द्रमागा- लंहृतैकदेशश्च, सारः सकलसंसारचरस्य, शरण्य पुण्यकारिणाम्,

आरामो रामायणीयककदलीवनस्य, धाम धर्मस्य, आस्पदं संपदाम्,
आश्रयः श्रेयसाम्, आकरः साधुव्यवहाररक्षानाम्, आचार्यभवनमार्य-
मर्यादोपदेशानामार्यावर्तो नाम देशः ॥

अस्मोति । 'आ समुद्रात्तु चै पूर्वादा समुद्राच्च पश्चिमात् । तयोरेवान्तर तिर्यो-
रायावर्तं विदुर्बुधाः ॥' इति मनुस्मृत्युक्तं आर्यावर्तो नाम प्रसिद्धो देशोऽस्ति ।
किंभूत । नीरेण धान्येन च मनोज्ञः । पक्षेऽरसिकस्य मनोज्ञः । तथा भारनवर्षस्य
मण्डनभूतः । पक्षे भारतस्येति ह्यमस्य । तथा विषयो देशः । पक्षे इन्द्रियार्थः । तथा
न दृष्टः प्रकृतीनां निपातः स्वपदारपतनम्, उपसर्गो घनापहारादिरुपद्रवः, लोपो
वेदवाद्यद्वयदायापदाजन्यः, वर्णविकारआतुर्वर्ण्यव्यवस्था यस्मिन् । पक्षे प्रकृतयो
आवाद्य, निपातावाद्यः उपसर्गाः, प्राद्व्य लोपः प्रमत्तस्यादर्शनम्, वर्ण-
विकारोऽक्षरविकृतिः । तथा चन्द्रभागया नद्या चन्द्रखण्डेन च भूपितैकदेशः ॥

आर्यों की प्रतिष्ठा के अनुरूप उपदेशों का भव्य भवन आर्यावर्त नामक
देश है । वह समस्त भूमण्डल में चमकते हुए तिलक सदृश है । स्वर्ग लोक की
सरह संवनीय है । प्राग्य (साधारण) कवियों के कथा-ग्रन्थ जैसे नीरस
(अरमिक) लोगों के लिये मनोहर होना है वैसे वह भी नीर (जल) और
सस्य (धन्न) में मनोहर है । भीम जैसे भारत (महाभारत) काव्य के
अलङ्कार हैं वैसे वह भारत देश का अलंकार है । रमणी का स्तन स्पर्श जैसे
सभी (भोग्य) विषयों में अग्रणी (मुख्य) है वैसे यह भी सभी विषयों (देशों)
में मुख्य है । जैसे जो लोग व्याकरण शास्त्र नहीं पढ़ते उन्हें प्रकृति, निपात,
उपसर्ग, लोप तथा वर्णगत विकारों का ज्ञान नहीं रहता है वैसे ही यहाँ प्रकृति
(प्रजा) का निपात (पतन), उपसर्ग (उपद्रव), वेद-विहित नियमों का लोप
एव आतुर्वर्ण्य-व्यवस्था में कोई विकार नहीं देखा जाता । भगवान् शङ्कर का
जटाबन्धन जैसे एक अक्ष में चन्द्रभाग (चन्द्रखण्ड) में अन्वहृत है तथा ऐसी
पुष्पसलिला गङ्गा द्वारा नहलाया गया है जिसमें खिने हुए पीत एक नील
कमलों के झरने हुए परागपुञ्ज से (रंग जाने के कारण) केशरिया रंगबाले
हम अलङ्कारमय प्रतीत हो रहे हैं । वर्णित मात्रा में विचरती हुई चकोर,
हंस, चक्रवाक और वारणदेव-मञ्जक पक्षियों की मण्डली से उस (गंगा) का
सटीकभाग अलङ्कृत हो गया है । वह (गंगा) राजा भगीरथ की कीर्ति-पताका
है । उसकी जगदानी तरंगें स्वर्ग जानवाली सीढ़ियों की गलियों की तरह
प्रतीत होती हैं, वैसे ही हम (आर्यावर्त का भी) एक अक्ष चन्द्रभागा नदी से
अलङ्कृत है और गङ्गा ने पवित्र जल से आप्लावित है । सम्पूर्ण भूमण्डल का
एक तत्त्वभूत अक्ष है । पवित्र कार्य करने वालों का शरण है । मनोहर वदली-
वनो का उपवन है । धर्म की भूमि है । सम्पत्तियों का स्थान है । मङ्गलों का
निवेदन है । सज्जनों के व्यवहाररूप रत्नों की निधि है ॥

यस्मिन्ननवरतधर्मकर्मोपदेशशान्तसमस्तव्याधिष्यतिकराः पुरुषा-
युयजीविन्यः सकलसंसारसुखमाजः प्रजाः । तथाहि । कुप्टयोगी गान्धि-
कापणेषु, स्फोटप्रवादो वैयाकरणेषु, संनिपातस्नालेषु, ग्रहसंक्रान्ति-
ज्योतिःशास्त्रेषु, भूतविकारवादः सांख्येषु, सयस्तिथिषु, गुल्मवृद्धिर्वन-
भूमिषु, गलग्रहोमत्स्येषु, गण्डकोत्थानं पर्वतवनभूमिषु, शूलसंवन्ध-
श्चण्डिकायतनेषु दृश्यते न प्रजासु ॥

वस्मिन्निति ॥ कुप्टमौषधविशेषो रोगविशेषश्च । स्फुट्यते व्यस्यतेऽर्थोऽनेनेति
स्फोटो वैयाकरणप्रसिद्धं वाददन्त्य । ॥ च वाक्स्फोटः पदस्फोटश्चेति द्विधा निरव्यह ।
तस्य प्रकरणेन वादः कथनम् । स्फोटस्य पिटकस्य प्रवादश्च । संनिपात उभयद्वस्त-
घोत्रनम् । यदुक्तम्—यस्यां दक्षिणहस्तेन तालं बामेन योजयेत् । उभयोर्हस्तयोः
पातः संनिपातः स दृश्यते ॥ वातपित्तश्लेष्मगामेकत्र योगो रोगविशेषश्च । ग्रहणां
सूर्यादीनां नेपादिराशौ संक्रान्तिः । ग्रहो बन्धनं तस्य संक्रान्तिरश्च । मूलः प्रधानाख्यं
तत्त्वं मूलप्रकृतिः । ततो महान् महत्तमस्माद्विकारः । अहंकाराख्यं पञ्च तन्मा-
त्राणि (पृथिव्यादिवृत्ततन्मात्राणि) । एषमहौ । तत एकादशेन्द्रियाणि पञ्च भूतानि
चेति षोडश विकाराः । पञ्च चतुर्विंशतितराणि । पञ्चविंशस्तु पुरुषः । तथा च—
'मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिर्विकृतयः सप्त । षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्म
विकृतिः पुरुषः ॥' इति संख्याः । तत्रैव तेष्वेव भूतविकाराणां वादः प्रमाणतर्क-
साधनोपात्मः सिद्धान्ताविद्वाः पञ्चाववचोपपन्नः पञ्चप्रतिपञ्चपरिग्रहः । पञ्चे
भूतस्य प्रेतस्य विकारः । चयः सूर्योदयकालवृत्तिः रोगविशेषश्च । गुल्मः स्तम्भो
रुग्णा । गले ग्रहणं घट्टिरोन रोगविशेषश्च । गण्डकाः क्षत्रिपशवो हस्तस्फोटका
वा । शूल आयुर्विशेषो रोगविशेषश्च ॥

जिम्मे निरन्तर धर्म एव कर्म (मार्ग) के उपदेशों से सब तरह की
(भाष्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक) विपत्तियाँ शान्त कर दी
गयी हैं । प्रजा पूर्णायु तक जीविन रह कर सत्तार के समस्त सुखों का उपभोग
करनी है । क्योंकि—

गन्धद्रव्य बेवनेवाली की दुकानों में ही कुछ (नामक औरत्रि) है ।
(कोई प्राणी कुछ रोग से पीड़ित नहीं है) । व्याकरण शास्त्र के जानकार तथा
अध्ययन लोग ही स्फोट (सिद्धान्त) का प्रवचन करते हैं । जन-भामान्य में
स्फोट (फोडा, फुन्सो या मतभेद) नहीं है । (मगीत के प्रसङ्ग में) ताल देते
समय ही सन्निपात (दोनों हाथों का सवर्ण) होता है । (वात, पित्त तथा कफ
की विकृति से किमी को सन्निपात ज्वर नहीं होता) । ग्रहों की संक्रान्ति की चर्चा
ज्योतिषशास्त्र में ही पायी जाती है । [कोई प्राणी बन्धन से आक्रान्त नहीं
होता है ।] माध्यमार्ग में ही भूतों (पृथ्वी, जल, तेज आदि) की विकृति
देखी जाती है । प्राणियों में भूत (प्रेत) आदि का प्रकोप नहीं देखा जाता ।)

तिथियो में ही क्षय (न्यूनाधिक्य) पाया जाता है । [कोई प्राणी क्षय रोग से ग्रस्त नहीं है ।] गुल्म (सता) की वृद्धि वनस्पतियो में पायी जाती है । [कोई गुल्म (नामक रोग) से पीडित नहीं है ।] मूत्रतियो के ही गने का ग्रहण किया जाता है । [किसी प्राणी को गलग्रह नामक रोग नहीं है ।] पर्वतीय वनमूमि में ही गण्डकोत्थान (गेंडो का उछाल) होता है । [किसी प्राणी को गण्डक (फोडा-फुसो) नहीं उठने है ।] शूल (अस्त्र) का सम्बन्ध चण्डो के मन्दिर में ही है, प्रजा में शूल नामक रोग नहीं है ॥

यत्र चतुरगोपशोभिताः सङ्ग्रामा इव प्रामाः, तुङ्गसकलभचनाः
सर्वत्र नगा इव नगरप्रदेशाः, सदाचरणमण्डनानि नूपुराणीव पुराणि,
सदानभोगाः प्रभजना इव जनाः, प्रियालपनसाराणि यौवनानीव
घनानि, विटपिहितच्छेटिका इव धापिकाः, निर्वृतिस्थानानि सुकल-
प्राणीवेक्षुक्षेत्रसत्प्राणि, जलाधिलक्षणाः पशुपुरुषा इवाप्रमाणास्तडाग-
मागाः, कुपितकपिकुलाकुलिता लङ्केभ्ररकिंकरा इव भग्नकुम्भकर्ण-
घनस्थापाः कूपाः, पीवरोचसः स्रस्ति इव नायः, सतीव्रतापक्षोपाः
सूर्यघृतय इव कुलस्त्रियः ॥

वक्षेति ॥ यत्र देश एते पदार्थाः । तथा । तेषु परिवर्त्मणश्चेतेषु प्रामदृष्टा
उपविशन्ति ते चतुरास्तैस्तथा गोपैरुपशोभिताः । यद्वा चतुरैर्द्वेगोवैः पशुपुत्र-
कीदृभिरेवशोभिताः । गोशब्दस्य पशुपुत्रश्चनत्वात् । सङ्ग्रामपक्षे 'च' इति
जैदनीयम् । तुङ्गान्युच्चानि सकलानि संपूर्णानि वा भवनानि गृहा यन् । नगाश्च
तुङ्गे पुनर्गौरपलक्षित कलभैरिमिहिर्यै सहित वय यत्र । पुनागकरिपोतपुता
इत्यर्थः । यद्विधप्रकाशः — 'तुङ्गः पुनागनागयो । तुङ्गः स्वादुहतेऽप्यवत्' । पुराणि
शोभनमाचरणमेव मण्डनं यत्र । नूपुराणि सर्वथा चरणभूषणानि । दानभोगाभ्यां
सहिता जनाः । शब्दप्रभोगावायवः । दयितानां सकामोच्छापेन साराणि प्रीयमानानि ।
घनानि प्रियालपनसाराणि पत्रसं चेषन्ति प्राप्नुवन्ति । विटपिम्पस्तस्यो दित्ता
वाटिका । चेटिका दारदारतु विटैः पिहित्ता चेटिता । इषुवेष्टे सत्राणि दानशालाः ।
निर्वृत्त्या एतेरभावैर्न स्थण्डन्द स्थोचते यत्र । निर्वृतेः सुखस्यापदानि कलत्राणि ।
सडागमागा जलाधिला जलार्थिभिः सदा सेव्यतया जलपिप्पुलाः । पणाः,
भवतारादितीरप्रदेशा यत्र । यद्वा जलैराधिला भीरुभ्याः पूर्णा पणाः यातकानि
यत्र । भगाभाः । पशुपुरुषास्तु जडा विलपणा व्यपेतशाखा । यद्वा भविभिर्मण्डे-
र्लप्यन्ते । यद्वा ज्वाल्मेज्जोऽल्लपन्ति । यत्रात्मवर्षादयः प्रत्यङ्गदिप्रमाण-
रहितश्च । कूपा भग्नकुम्भकर्णाः स्फुटितघटकण्टाः । घनाः प्रचुराः स्वाः
स्वकीया पातालमूलोत्था न तु प्रकाशादिपूरिता आपः पानीयानि येषु । यद्वा
घनस्वा यद्वा द्रव्या आपो येषु । वारीकूपादौ हि ओर्णोद्धारार्थं निधिर्भवतीति
व्यानिः । किंकरास्तु भग्नः शीरामातमनकथनेन कुम्भकर्णस्य रक्षो घनः प्रचुरः

यन्मासावधिकः स्वान्नं दायनं येः । यावः पीवरं च तदूषश्च पीवरोघस्तरमाशु-
पीवरोघसो हेतोः सरित इव । यद्वा पीवरमूष आपीनं येषाम् । अत्र 'गोशब्दो
धेन्वयोऽपि स्त्रीरल्लिङ्' इति व्याप्तिः । ततः पुस्वादनञ्च न । सरितस्तु पीव-
रमूलं रोषस्तदं यामाशु । कुलसिद्धिः सतीवनेनापगतता नष्टा दोषाः कलङ्का यामाशु ।
सूर्यस्तनयस्तु तीव्रतापदोषेण महिता ॥

और जहाँ च + तुरलोदभोगित (अग्नो से अलङ्कृत) सग्राम की तरह
चतुर + गो + भोगित (बुद्धिमान ग्राहो से मुगोमित) ग्राम है । पुन्ताओं
और हादियों के बच्चों ने मुक्त (तुल्ल + मरलम + वन) पर्वत की तरह
(तुल्ल + वन + मरन) ऊँचे-ऊँचे समस्त भवनों वाला नगर प्रदेश है ।

नदा (हनेगा) चरण को अलङ्कृत करने वाले नूपुरों की तरह ननु
(सुन्दर) आचरणरूप अलङ्कार से युक्त नगर प्रदेश हैं ।

सदा + नमोष (हमेशा जाकाश की ओर जाने जाने) प्रमञ्जन (वायु)
की तरह लोप स + दान + भोग (दान और भोग से मुक्त) है । प्रिया +
नपन + सार (कान्ता के साथ बातचीत करना ही मुख्य तत्त्व है जिस अवस्था
में ऐसे) यौवन की तरह वन भी प्रियाल + वनस + वर (प्रियाल और वनस
पत्तों की उपलब्धि से मुक्त) हैं । विट + पिहित (धूर्तों से घिरी हुई) चोटियों
की तरह वाटिकायें भी विटपि + हित (वृत्तों की धारण की हुई) हैं ।
निर्वृति + स्थान (सुख के केन्द्र रूप) सुन्दर पत्नी की तरह ईश के क्षेत्र में
चलने वाली गर्वत की दानमालामें निर्वृति स्थान (प्रतिबन्धरहित) हैं ।
[रस पीने वाले जब चाहते हैं, रस पी लेते हैं । उन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं
है । रस की दानमालामें सदा चनती रहती है ।] जल (जड़) पशुनृप्य
पुरुष जैसे विलक्षण (नम्रय-शास्त्रज्ञानगूण्य) तथा अग्रमान (अनुनात आदि
प्रमाणज्ञानगूण्य) होते हैं वैसे वहाँ के सामान्य नज्जाविल + क्षण (जल से
पिच्छिल स्थान जाने) तथा अग्रमाण (विनाश) हैं ।

क्रुद्ध बानरों द्वारा व्याकूल किये गये राखण के नौकर जैसे भग्न कुम्भकर्ण-
स्वाप (कुम्भकर्ण की निद्रा भङ्ग कर दिये) से वैसे यहाँ के वृक्ष भग्नकुम्भकर्ण
+ स्वाप (घड़े के मुहकड़ को फोड़ दिये हैं और सुन्दर जल से मुक्त) हैं ।
नदिमां जैसे पीव + रोपस् (विमान तटवासी) होजी हैं वैसे यहाँ की गायें
पीवर + ऊपस् (प्रितान बनो वाली) हैं ।

मूत्रों को किरने जैसे स + तीव्र + तान + दोष (तीव्र ज्वालाकृत दोष से
मुक्त) होजा है अथवा मनीषा के गरम अपशय (दोषरहित) होजी हैं
अथवा तीव्र होने के कारण रात्रि को समाप्त कर देती हैं । वैसे वहाँ की
बुनाङ्कनायें मजी + व्रत धारण करने के कारण अपशय (दोषरहित) हैं ॥

यत्र च मनोहारिसारसद्वन्द्वस्तत्पुरुषेण द्विगुना चाधिष्ठिता
कादम्बरीगलयन्धा इव दृश्यमानबहुव्रीहय केदारा ॥

येति । किमुना केदारा । मनोहारीणि सारसानां द्व द्वानि येषु । तथा तत्पुरु
षेण तत्स्वामिना द्विगुना गौयुगयुक्तेनाधिष्ठिता बहुव्रीहय गाव सन्ति । द्विगुनेति
चोपलक्षणम् । अथवा चकारोऽप्यथ । द्विगुनापि तत्पुरुषेणाधिष्ठिता । तथा दृश्य
माना बहुव्रीहयो येतिवति भूमे सस्यसपदुक्ता । गद्यव्यवहारतु मनोहारिण
सारस श्रेष्ठा । सद्वन्द्व द्वन्द्वसमामसहिता । तथा तत्पुरुषेण द्विगुना च समासेना
धिष्ठिता । तथा दृश्यमानबहुव्रीहिसमासा । तथा च द्वन्द्वसपदपद्विगुबहुव्रीहि
समासबहुला इत्यर्थः ॥

कादम्बरी का गद्यव घ्र जस मनोहारि + भार + सद्वन्द्व (मनोहर तथ्यो
तथा द्वन्द्व समासो से युक्त) है तत्पुरुष तथा उसक प्रभद्व द्विगु से सनापित
है और बहुव्रीहि समाम स समावित है जैसे यहाँ के खेत मे मनोहारि +
सारस + द्वन्द्व सुन्दर सारस पक्षी के जोड़ द्विगुतत्पुरुष (अपने दो गायो वाले
स्वामी) की देख रेख मे है और वहाँ बहुव्रीहि (पर्याप्त धान) दिखायी पड़
रहा है ॥

किं घटुना ।

नास्ति सा नगरी यत्र न वापी न पयोधरा ।

दृश्यते न च यत्र स्त्री नवापीनपयोधरा ॥ २६ ॥

अस्ति चेति । यत्र देशे सा कापि नगरी नास्ति । यस्यां न वापी निपातम् । न
पयोधरा पय प्रधाना भूमि । नच तरुणी पीनस्तनी स्त्री दृश्यते । यदि पुनस्त
त्रयमपि अतुर्धपादन विशेषणीकर्तुमाशङ्क्यते हि पयोभूयोरेव व्याख्यायते । 'शु
स्तुती । नच श्रुतिमाप्नुतोऽभीष्टमिति नवापिनी । तथाभूते हनपयसी स्वामिन्मले
धरतीति तथोक्तं वापी । मृतुतु यत्पयोधरमिति वापिनः कर्पकारतेपामिना
आनीयहेतुत्वात्स्वामिनः । पयोधरा अथा यस्यां तथाभूता । पश्चात्प्रत्ययः ।
अवृष्टिनिष्पाद्यसस्येति भावः । अन्यमर्थस्तेनार्हः । प्रसस्तस्वामिपयस्का वापी,
अवृष्टिनिष्पादितसस्या भूमि तरुणी पीनस्तनी च का ता, यस्यां दृश्यते सेव
नगरी यत्र दशोऽस्तीति अथवा यत्र दशे सा नगरी नास्ति यस्यां नगरी वापी स्त्री
च न दृश्यते । कीदृशी वापी । न न पयोधरा । अति तु पयोधरा । नन्द्वयस्य
प्रकृतार्थसूचकत्वात् । स्त्री च किमुना । नवा तरुणी । तथा पीनपयोधरा ।
सर्वास्वपि नगरीषु पयोधरा आप्यस्तरुण्य पीनस्तन्यश्च स्त्रियो दृश्यन्ते इति
भावः ॥ २६ ॥

वहाँ कोई ऐसी नगरी नहीं है जहाँ पयोधरवापी (जनपूर्ण जलाशय) न
हो और जहाँ कोई ऐसी रमणी नहीं देखी जाती जिसका पयोधर (स्तन)
पीन विशाल न हो ॥ २६ ॥

अपि च ।

भवन्ति फाल्गुने मासि वृक्षशाखा विपल्लवाः ।

जायन्ते न तु लोकस्य कदापि च विपल्लवाः ॥ २७ ॥

भवन्तीति ॥ शाखा विगतपल्लवा यत्र भवन्ति । जनस्य विपदां एषा अपि न स्युः ॥ २७ ॥

फाल्गुन के महीने में वृक्षों की शाखाएँ विपल्लव (पल्लवहीन) हो जाती हैं किन्तु जनता पर कभी विपल्लव (विपत्ति का अंग) नहीं आता ॥ २७ ॥

यत्र सौरान्यरजितमनसः सकलसमृद्धिवर्धितमहोत्सवपरम्परा-
रम्भनिर्भराः, सततमकुलीनं कुलीनाः, प्राप्तविमानमप्राप्तविमानमङ्गा,
कतिपयघसुधिराजितमनेकघसघः, समुपहृस्तान्त स्वर्गवासिनं जनं
जनाः । कथं चासौ स्वर्गाग्र विशिष्यते ।

इति ॥ यत्र जना स्वर्गिणमपि न्यवकुर्वन्ति । कुलीना अभिजाता । विमानता
तिरस्कारः । वसु धनम् । पदे कु पृथ्वी तस्या लीला । विमानं देवपानम् ।
वसवोऽष्टौ द्रुवाद्यः । देवभट्टाद्वरदृष्टार्थं स्वाकपेयः ॥ कथं चायं स्वर्गाग्रपिकः ॥

जहाँ के लोग स्वर्गवासियों का भी उपहास करते हैं । उनका मन (वहाँ
के) सुन्दर राज्य में अनुरक्त है । सर्वविध सम्पन्नताओं के कारण बड़े-बड़े
वत्सवों के मनाने में सोत्साह लगे रहते हैं ।

उपहान पक्षः—स्वर्गवासी अकुलीन हैं, ये लोग कुलीन हैं । वे (देव)
प्राप्तविमान (विशेष प्रकार के अहंकार से युक्त) हैं और ये अप्राप्त-विमान-
मङ्ग (विशेष अहङ्कारजन्य वञ्चनाओं से दूर हैं) । वे (देव) कुछ (जाठ)
ही वस्तुओं से युक्त हैं ये लोग अनेकविध वस्तुओं (सम्पत्तियों) से युक्त हैं ।

वास्तव पक्षः—स्वर्गवासी सदा अकुलीन (पृथ्वी में लीन नहीं) हैं,
क्योंकि देवता लोग पृथ्वी का स्पर्श नहीं करने हैं । ये लोग कुलीन (विविध
वश में उत्पन्न हुए) हैं । (देव) प्राप्तविमान (देवस्य प्राप्त किये) हैं, और
यहाँ के लोग विमान (अहङ्कार) के कारण उत्पन्न होने वाली वन्ताओं से
दूर हैं । देव द्रुव आदि आठ ही वस्तुओं से मण्डित हैं ये लोग अनेकविध वस्तुओं
(सम्पत्तियों) से विराजित हैं । स्वर्ग से यह क्यों न आगे बढ़ जाय—॥

यत्र गृहे गृहे गौर्यः स्त्रियः, महेश्वरो लोकः सखीका हरयः पदे पदे
घनदाः सन्ति लोकपाला । केवलं न सुराधिपो राजा । न च विनायकः
कश्चित् ॥

इति ॥ गौर्यो गौराक्षश्च शुद्धीभयान्वया वा स्त्रियः । महानीश्वरोऽतिसमृद्धः ।
सहस्रि वा शोभना सखीका । हरयोऽग्रा । कनभदा नृपा । स्वर्गे त्वेकस्मिन्नेव

गृहे गौरी उमा । एह एव महेश्वरः शिवः । सलक्ष्मीको विष्णुरेक एव । न बहवः । धनदः कुबेर एव हिमन्नेव स्थान एक एव । केवल परम् । अधिविजयीश्वरः । सुराया मघस्याधिपः सुराधिपो न राजा । न च कोऽपि विरुदनायकः । सुरामधिपिषतीति वाक्ये लक्ष्यदूषणमप्यसद्वात् । सुराप्रवावर । स्वर्गे तु सुराणामधिप इन्द्रः । विनायको गणेशः ॥

जहाँ घर-घर में गौरी (गौर वर्ण की) स्त्रियाँ हैं, पूरा लोक ही महेश्वर (ऐश्वर्य-सम्पन्न) है, अनेक हरि (घोड़े) श्रीयुक्त (श्रीभासम्पन्न) पद-पद पर धन देने वाले लोकपाल (प्रजापालक) लोग हैं, सुराधिप (मघ का स्वामी) ही केवल राजा नहीं है और कोई विनायक (दुष्ट नेता) नहीं है ।

[स्वर्ग में तो एक ही गौरी (पार्वती) है, एक ही महेश्वर (शिव) हैं, श्री (लक्ष्मी) सहित एक ही विष्णु हैं, धनद (कुबेर नामक) लोकपाल भी एक ही हैं, सुराधिप (देवताओं का स्वामी इन्द्र) ही केवल राजा है और विनायक (गणेश) भी हैं । स्वर्ग में तो गौरी, महेश्वर, धनद आदि एक ही हैं जब कि उस नगरी में ये भीत्र अनेक हैं । इसीलिये यह स्वर्ग से भी विशिष्ट है ॥]

यत्र च लतासम्बन्धः कलिकोपक्रमश्च पाद्वेषु दृश्यते न पुष्पेषु ॥

यत्रेति ॥ लतासम्बन्धो घञ्जोयोगः । कलिकाया उपक्रमः । पदे 'चलतासम्बन्धः' इति समुदितं पदम् । चलता लोचयम् । कलिः कलहः । कोपः क्रुधः । तपोः क्रमः ॥

और जहाँ (च) लता + सम्बन्ध (बल्लारियों का सम्पर्क) और कलिका (कलियों) का उपक्रम (उद्भव) वृक्षों में देखा जाता है । पुरषों में चलता + सम्बन्ध (चलताना का योग) और कति + कोप + क्रम (कलह एव क्रोध की परम्परा) नहीं दृष्ट है ॥

यत्र चमरकवार्ता परमहिमोपघातश्च तुहिनाचलस्य चोपु ध्रुयते न प्रजासु ॥

यत्रेति ॥ चमरका गोविशेषः । परममुत्कृष्ट हिम तुहिनम् । पदे मरको मरण बाहुल्यम् । परस्य महिमा माहात्म्यम् । तन्त्रोपघातः ॥

जहाँ चमरक + वार्ता (चमरी गाय की चर्चा) और परम + हिमोपघात (अत्यधिक वर्ष के कारण हानि) हिमालय में ही श्रुत है । प्रजा में (च) मरक + वार्ता (मृत्युसम्बन्धी वार्ता) और प्रर + महिमोपघात (दुमरे की प्रतिष्ठा का हनन) नहीं गुना जाना ॥

यश्च नीतिमत्पुरुषाविष्टितोऽप्यनोतिः, सट्रोऽप्यवटसंकुलः, कारुप-युतोऽप्यगतरूपशोभः ॥

दत्तेति ॥ न विद्यत ईतिरूपद्रव्योऽस्तिस्मिन्नानीतिः । वटा न्यप्रोधाः । अवदा कृपादिगताः । कारव सिद्धिनः । तथा न यता न अष्टा रूपशोभा यम्य । अयौर्नो-
स्तरुभिश्चोपशोभा यस्येति वा । अपि विरोधः । य च नुस्वार्थव्याख्या । कुम्भिन-
मीपद्मा रूपं कारूपम् ॥

जो नीतिम् (न्यायनम्पन) पुरखो से युक्त रह कर भी अनोत्र
(जन्माय) युक्त है, विरोध । नीतिसम्पन्न पुरखों से युक्त है और अनोत्रि (निति
(उपद्रव) रक्षित) युक्त है । परिहार ।

सटा (जटा) से युक्त हान पर भी जबट (बटवृक्ष से युक्त नहीं) है ।
विरोध, (बटवृक्ष की बानियो से जटा की तरह कुछ बट्टे (बरोह) टटन्ती हुई
पृथ्वी तक पानी हैं । [जटा बटवृक्ष रहेंगे वही इस तरह की बट्टे रहेंगी । ऐसी
जट्टों से युक्त होकर भी बटवृक्ष ने हीन है यह बट्टना विरोध का बीज है ।]

सटा (मूलों) से युक्त है और अन्ट (गर्दने) से सम्पन्न है । [जगह-
जगह पर वृक्षों के मूल हैं और न्यान-न्यान पर खाडियाँ भी दिखायी
पड़ती हैं] परिहार ।

कारूप + युक्त (कुम्भित रूप बानि) है फिर भी उसकी रूप शोभा नष्ट
नहीं हुई है । विरोध ।

कार (मिल्पकारों) से उपयुक्त (युक्त) है इसीलिये उसकी रूपशोभा
(सौन्दर्य-रक्षणी) नष्ट नहीं हुई है । परिहार ॥

यत्र च गुरुम्यविनमं मक्षधराशयः, मात्राकलहं लेखशालिका,
मिश्रोदपद्वीपमुलुका, यपत्पस्याम कोकिला, वन्धुजीवविघातं मीन-
द्विषसा, कुर्वन्ति न जनाः ॥

यत्र वेति ॥ इदमेते कुर्वन्ति न जनाः । गुरुर्बृहस्पतिः । मात्रा वर्णावयवाः । मिश्रः
सूर्यः । वन्धुजीवं वन्धूकम् पदे सुगमम् । मात्रा जनन्या नष्ट ॥

जहाँ शायों के समूह ही गुरु + व्यतिक्रम (बृहस्पति ग्रह का परिवर्तन) करत
हैं । मत्पन्न गुरु + व्यतिक्रम (जाचार्य परिवर्तन) नहीं करते । लेखशास्त्रिकार्यो
मात्रा + कलह (वर्णों के सम्पर्क से कलह) उपस्थित — नी है कोई जादमी
माना के साथ कलह नहीं करता । मिश्रादय (सूर्योदय) से मिश्र केवल उल्लू
करते हैं कोई जादमी मिश्रोदय (सुन्दर न्याय) से विद्रोह नहीं करता है ।
अपनी मत्पन्न का परिवर्तन केवल कामने करता है और मनुष्य अपनी मत्पन्न
नहीं छोड़ता । वन्धुजीव (नामक पुत्र) का विनाश जीवन नष्ट हो करता है ।
कोई जादमी वन्धु + जीव (बधन वन्धु का जीवन) नष्ट नहीं करता है ॥

[गुरु-व्यतिक्रम—तारे अपने बीच कभी शुक्र कभी शनि आदि ग्रहों की मुख्यता देने रहते हैं। ग्रहों की स्थिति सदा बदलती रहती है। तात्पर्य यह कि गुरु-व्यतिक्रम (बृहस्पति का परिवर्तन) तारों के ही बीच होता है। आदमी जिन गुरु को एक बार चुन लेते हैं उसे बदलते नहीं क्योंकि भारतीय सभ्यता के अनुसार एक बार किसी को गुरु बना लेने के बाद उसे छोड़ कर दूसरे को गुरु नहीं बनाना चाहिये। वहाँ के निवासी इस नियम का यथावत् पालन कर रहे थे।

मात्रा + कलह—मानृ शब्द के तृतीया का एकवचन अर्थात् माता के साथ लोग कलह नहीं करते। लेखशालिका पक्ष में मात्रा शब्द के साथ कलह शब्द समस्त है।

मित्रोदय—उल्लू पक्षी सूर्योदय होने पर अन्धे हो जाते हैं। इसलिये वे चाहते नहीं कि सूर्योदय हो।

अपत्यत्याग—कोयल अपना जण्डा कौवे के घोंसले में देती है। उसके अण्डे का पालन भी कौवे ही करते हैं। कौवे और कोयल के अण्डे में इतनी समानता रहती है कि कौवे कोयल के अण्डे को अपना ही समझ कर पालते हैं। इसीलिये कोयल को परभृत् (दूसरों के द्वारा पाला हुआ) कहते हैं।

वधुजीव—वधुजीव नामक फूल धीमे ऋतु में नष्ट हो जाता है।]
किं बधुना ।

देश. पुण्यतमोदेशः कस्यासौ न प्रियो भवेत् ।

युक्तोऽनुक्रोशसंपन्नैर्यो जनैरियं योजनैः ॥ २८ ॥

देश इति ॥ अनुक्रोशेन कृपया सपक्षैर्भुक्तोऽसौ देशः सर्वस्यापि प्रियः । पक्षे-
ऽनुक्रोशे सपक्षाम्यन्नजलतृष्णादिभिः सम्पन्नानि । अथवानुगतता परस्परसबद्धाः
क्रोशाः अनुक्रोशास्तैः संपन्नानि ॥ २८ ॥

[अनुक्रोश + सम्पन्न योजन की तरह अनुक्रोश (दया) सम्पन्न मनुष्यों से युक्त वह अत्यन्त पुण्यशाली (तीर्थ) स्थानों वाला देश जिसे प्रिय न होगा ॥

[अनुक्रोश सम्पन्न शब्द योजन शब्द का विशेषण है। आठ मीलों का एक योजन होता है और दो मीलों का एक क्रोश (कोस) होता है अर्थात् चार क्रोश जहाँ रहेंगे वहाँ एक योजन रहेगा। योजन सदा अनुक्रोश (क्रोश-सहित ही रहेगा)। अनुक्रोश-सम्पन्न-योजन-शब्द का यह भी अर्थ लिया जा सकता है—प्रत्येक योजन का क्रोश अन्न, तृण, जल आदि से सम्पन्न है। अर्थात् देश का प्रत्येक भाग सम्पन्न है। देश पक्ष में योजन शब्द को “य + जन” इस तरह मङ्गल करना चाहिये। अर्थात् अनुक्रोश + सम्पन्न (प्रत्येक क्रोश पर अन्न-

जल-सम्पन्न) योदन का वह देन भी अनुकूल (दया सम्पन्न मनुष्यों से युक्त है] ॥ २८ ॥

तस्य विषयमध्ये निषधो नामास्ति जनपदः प्रथितः ।

तत्र पुरी पुरयोत्तमनिवासयोग्यास्ति निषधेति ॥ २९ ॥

इत्येति ॥ पुरयोत्तमो विष्णुः पुष्येयाश्च ॥ २९ ॥

उत्त (सार्यादितं नामक) देव के बीच निषध नाम का जनपद है । वही नरसिंह व्यक्ति के निवास योग्य निषध नाम की नगरी है ॥

[पुरयोत्तम शब्द का विष्णु अर्थ भी है । अर्थात् वह नगरी वैकुण्ठ-सदृश है अतः पुरयोत्तम भगवान् विष्णु) के निवास लायक भी है ।] ॥ २९ ॥

जननीतिमुदितमनसा सततं सुस्वामिना कृतानन्दा ।

सा नगरी नमतनया गौरीय मनोहरा भाति ॥ ३० ॥

जनेति ॥ जनस्य नीत्या इष्टमनसा सुप्रमुखा कृतवर्षा तथा न अष्टमया अपि तु सञ्जीविमती । सा पुरी रम्या भाति । यत एवामष्टमया अतएव जनो नीतिमात् । गौरी तु नगरस्य हिमाद्रेशमनया । तथा जननी भातेति हेतोर्इष्टमनसा । अतएव शोभनेन हर्षोचिताकृतिमुन्दरेण स्वामिना स्कन्धेन कृतानन्दा । तथा मनसि हरो यस्या ॥ ३० ॥

नगरी पक्ष—जननामग्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले, सुन्दर स्वामी से आनन्दित एवं ग्याय्य सम्पन्न (न + गत + नया) वह नगरी नय + तनया (पर्वतपुत्री) गौरी की तरह मनोहर है ।

पार्वती पक्ष :—जननी होने के कारण प्रसन्न चित्त वाली, अपने सुस्वामी (काठिकेय) से आनन्दित तथा हर (शम्भु भगवान्) की मन में रखने वाली गौरी है ।

[नगरी पक्ष के विग्रह शब्द.—जन + नीति + मुदित + मनसा (जन सामान्य के व्यवहार से प्रसन्न चित्तवाले) सुस्वामिना (सुन्दर राजा से आनन्दित और न + गत + नया (न्याय से अहीन) वह नगरी गौरी की तरह है ।

पार्वती पक्ष :—जननी + इति + मुदित + मनसा, सुस्वामिना—(माता है, इसनिसे प्रसन्नचित्त काठिकेय द्वारा) आनन्दित नय + तनया (पर्वतपुत्री) गौरी है] ॥ ३० ॥

यस्यामम्रंलिङ्गेऽनीलशालशिखरसहस्रनिभृतांशुजालयालशाल-
लाङ्कुशप्रप्रासलाहसाः स्खलन्तः स्ते स्तेद्यन्ति मध्येदिनं सादिनं
रचिरयतुरङ्गमाः ॥

एवमिति ॥ शालः प्राकारः । इन्द्रनीलमणिकिरणाञ्जीलतृणनुवर्णोद्विलिख्य
सप्तसप्तमस्य खलन्ति ॥

उस नगरी के गगनचुम्बी, नीलमणि की बनी हुई चहारदीवारी की चोटी पर उठने हुए हजारों किरणजाल उगते हुए नवीन तृणों के अकुर-सदृश प्रतीत होते हैं । उन्हें खाने की उत्कट इच्छा वाले सूर्य-रथ के घोड़े दोपहर के समय नीचे खिसक कर सारथि को कष्ट पहुँचा रहे हैं ॥

[उस नगरी की चहारदीवारी नीलमणि से बनी हुई है । उससे निकलने वाली नील किरणें नवीन तृण की तरह प्रतीत हो रही हैं । दोपहर के समय सूर्य के घोड़े मानो उन किरणरूप तृणों को खाने के लिये नीचे की ओर आने के लिये जोर मार रहे हैं । ऐसी स्थिति में बेचारा, सूर्यसारथि उन अश्वों को नियन्त्रित करने में बलेश का अनुभव कर रहा है ।] ॥

यस्यां च स्फटिकमणिशिलानिबद्धभवनप्राङ्गणगतास्तु संवरद्व-
गृहीणीशरणाशक्तपदपङ्क्तिषु पतन्ति निर्मलसलिलाभ्यन्तरतरत्तरुणा-
रुणकमलकाङ्क्षया मुग्धमधुपपटलानि ॥

यस्या चेति ॥ स्फटिकस्य सलिल पदपङ्क्तेश्च कमलमुपमानम् ॥

और जहाँ स्फटिक मणि की चट्टानों से बनी हुई आँगन की भूमि पर घूमती हुई रमणियों के अस्ता से रंगे गये शरणों की चिह्न-पक्तियों को निर्मल जल के भीतर तैरते हुए पूर्ण विकसित लाल कमल समझ कर मत्त भ्रमरों के मूय मडरा रहे हैं ॥

स्फटिक मणि से निर्मित आँगन की भूमि निर्मल जल की तरह लग रही है । रमणियों के साधारण्णिक पदचिह्न पूर्ण विकसित कमल की छान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं । लाल पदचिह्नों की कमल समझ कर भ्रमर भनभना रहे हैं ।] ॥

यस्यां च विविधमणिनिर्मितवासमयनप्रवृत्तिषु स्वरुतास्तु स्यां
छायामयलोकयन्त्यः कृतापरस्त्रीशङ्काः कथमपि प्रस्थानीयन्ते प्रियैः
प्रियतमाः ॥

जिस (नगरी) में विविध मणियों से बने हुए अरवन्त सुन्दर निवास-भवनो की स्वच्छ और सुन्दर दीवारों पर अपनी छाया देखकर अन्य स्त्री की आशङ्का से (मानिनी बनी हुई) प्रिय-प्राप्य प्रियों के द्वारा किसी किसी तरह लौटाई जाती है ॥

[नायिकायें अपने प्रिया व साथ भवन प्राङ्गण में घूम रही हैं । दीवार पर अपने और पति का प्रतिबिम्ब देखकर उन्हें आशङ्का हो जाती है कि

उनका पति किसी दुजरी स्त्री के साथ अमन बन रहा है। अतः अब वे मान बन बैठती हैं और पति उन्हें बड़ी कठिनाई में मना पाता है।] ॥

यस्यां च दिव्यदेवकुलालङ्कृताः स्वर्गा इव भार्गाः, सततमपांसु-
वसनाः सागरा इव नागराः, समस्तधारणानि वनानीय भवनानि,
सुरसेनान्विताः स्वर्गभूगा इव कूपाः अविन्यस्योद्देशमुद्रासयन्तो
हारा इव विहाराः ॥

यस्या चेति ॥ दिवि अवैरिव दिव्यै रम्यैर्देवकुलैर्देवगृहैः पद्मे दिव्यै स्वर्गोद्भवै-
कक्षत्रजुनादिभिर्देवानां कुलैरन्वयैर्वालङ्कृताः । अपासुरेशुरहितं वक्ष्यं येषाम् ।
पद्मे सुष्ठु वसन्त्येति सुवसनः । 'अपाम्' इति कर्त्तरि पठ्यते । अलापारा
इत्यर्थः । सततवारणोऽपात्रयोर्मत्सेमश्च । सुरसेन सुमन्त्रेण । स्वर्गभूपास्तु सुरसेनया
त्रिरात्रैर्भ्येनाग्विताः । अधिकमिति क्रियाविशेषणम् । चरोद्देशः, वृत्तीप्रदेशः ।
विहाराश्चैषानि । पद्मे कचरोद्देश इत्यधिक चरोद्देशम् । विमलवर्णैर्ममयमाभा ॥

जहाँ के रमणीय भवनो से जनङ्गुन मार्ग कल्पवृक्ष और देववश से
मनविन स्वर्गसदृश है । निरन्तर अपामु + वसन (धूलिहीन (निर्मल) वस्त्र
वाले) नामरिक अपा + सुवसन (रम-निमित्त सुन्दर भवन) वाले सागर सदृश
हैं । मनवाने हाथियों से युक्त भवन मन हाथियों से समन्वित वन सदृश हैं ।
सुरसेन + वन्वित (सुन्दर जन से युक्त) रूप (इनारा) सुरसेना (दिनेसेना) से
अन्वित स्वर्गीय वीरो की तरह है, अधिकन्धरोद्देश कचे को सुगोभित करने वाले
हार की तरह विहार (बोझन) अधिकन्धरोद्देश (धरोद्देश) भूतल को अधिक
सुगोभित कर रहे हैं ॥

[अपामुवसना—सावर पक्ष में अपाम् अप् शब्द का पठ्यते बहुवचन रूप
है । "जल ही है सुन्दर घर जिसका" इस विग्रह में जल शब्दवाची अप् शब्द
का प्रयोग प्रथमा में होना चाहिये । अतः यहाँ यही मानना चाहिये कि कर्त्ता
में पठ्यते हुई है । वहाँ के सोय धूलिहीन अर्थात् निर्मल वस्त्र धारण करते हैं
और सागर अपामुवसन अर्थात् जलमय भवनवाला है । अपामुवसनत्व
साधारण धर्म है ।

सुरसेनान्वित—रूप पक्ष में सुरस शब्द का तृतीयान्त रूप सुरसेन है वह
अन्वित शब्द के साथ दीर्घ सन्धि द्वारा जुड़ा हुआ है । भूप पक्ष में सुरसेना
शब्द के साथ अन्वित शब्द का अन्वय है ।

— अधिकन्धरोद्देश—हार अधिकन्धरोद्देश (स्वन्ध स्थल) की शोभा बढ़ाता
है । विहार (बोझन) भी धरोद्देश (भूतल) की अधिक शोभा बढ़ाते हैं ।
हार पक्ष में कन्धरोद्देशे इति अधिकन्धरोद्देशम् अव्ययी भाव समास है । विहार
पक्ष में धरोद्देश शब्द एक है और अधिक शब्द क्रियाविशेषण है ॥

यस्यां च बहुलश्रणाः सुधावन्तो दृश्यन्तेऽन्तः प्रचुराः प्रासादा
 वहिश्च वारणेन्द्राः । सुशोभितरङ्गाः समालोक्यन्तेऽन्तः संगीतशाला
 वहिश्च फ्रीडाकमलदीर्घिकाः । बहुधान्यनिबद्धाः क्यमप्यभिगम्य-
 न्तेऽन्तः पण्यस्त्रियो वहिश्च क्षेत्रभूमयः । नानाशुकविभूषणाः
 शोभन्तेऽन्तः सभा वहिश्च सहकारवनराजयः । ससौगन्धिकप्रसारा
 विराजन्तेऽन्तविषणयो वहिश्च सहकारवनराजयः । ससौगन्धिकप्रसारा
 विराजन्तेऽन्तविषणयो वहिश्च सलिलाशयाः ॥

यस्यां चेत ॥ जगो भूमिका । सुधा लेपविशेषः । पक्षे बहुभि हृष्यगानि येषाम् ।
 तया सुष्ठु धावन्तः । रङ्गो नर्तनस्थानम् । पक्षे सुशोभितरङ्गा येषु । बहुधेति
 भिन्न पद्म् । भग्यैर्विद्वैर्निबद्धा । पक्षे बहुभिर्धान्यैर्निबद्धा । आशुकविः शीघ्रकविः ।
 पक्षे शुकः पक्षिणः । सुगन्धीनि द्रव्याणि पण्यमेवं ते सौगन्धिका वणिजः
 कषहराणि वा । प्रसारो छ्वापणो विस्तरश्च ॥

जिस नगरी के भीतर बहुत + क्षणा (पर्याप्त भूमिवाले) और सुधावन्त
 (घुले से पुले हुए) बहुत से भवन हैं और बाहर की ओर बहु + लक्षण (विविध
 शुभ लक्षणों से युक्त) और सुधावन्ता (अच्छी तरह से शींते हुए) हाथी हैं ।
 भीतरी भाग में सुशोभित + रङ्गा (सुन्दर रङ्गमय से युक्त) संगीतशालाएँ
 और बाहर की ओर सुशोभि + तरङ्गा (सुन्दर तरङ्गों से युक्त) कमलों से
 भरे हुए फ्रीडा सरोवर दिखायी देने हैं ।

भीतरी भाग में वाराङ्गनाएँ बहुधा + अन्य + निबद्ध (अधिकतर घूँटों द्वारा
 घिरी) रहती हैं अतः उनके पास किसी-किसी तरह जाया जा सकता है और
 बाहर की ओर कृषिभूमि बहु + धान्य + निबद्ध (अधिक धान से घिरी हुई) हैं
 (अतः उत्तम की बड़ी कठिनाई से) जाया जाता है ।

भीतर सभी नाना + आशु + कवि (शीघ्र कविता प्रस्तुत करने वाले
 कवियों) में विभूषित हैं और बाहर नाना + शुक + विभूषण (विविध तीतों
 से अलङ्कृत) भूमि की वनपङ्क्तियाँ हैं ।

भीतर सुगन्धित द्रव्य बेचने वाले बनियों की छोटी-छोटी दुकानों से बाजार
 सुगन्धित हो रहे हैं और बाहर सुन्दर गन्ध व्यक्त करने वाले कमलों से युक्त
 सरोवर हैं ॥

किं यदुना ।

भूमयो बहिरन्तश्च नानारामोपशोभिताः ।

कुर्वन्ति सर्वदा यत्र विचित्रचक्षसां मुदम् ॥ ३१ ॥

भूमय इति ॥ बाह्ये आरामोपशोभिताः । यस्यां रम्यवपसां पूर्वा
 विचित्रचक्षिणा च मुदं कुर्वन्ति । यपुष्पतां कालकृतावस्था पक्षो च यय ॥ ३१ ॥

विभिन्न रामाओं (स्त्रियों) ने सुशोभित नगर के अन्तरङ्ग भाग विविन्न-
वयम् (द्रव्यवस्था वाले) लोगों को हमें आनन्द देते हैं और विभिन्न
आरामों (वर्गों) ने सुशोभित उसके बहिरङ्ग भी विविन्न + वयम् (विविध
पक्षियों) को मदा आनन्द देने हैं ॥ ३१ ॥

यस्यां च भक्तमाजो देवतायतनेषु देवताः संनिधाना दृश्यन्ते
दृष्टेषु वर्णिज्जनाः । अक्षरसावधानाः कविगोष्ठीषु कथयो विलोक्यन्ते
द्युतस्थानेषु द्युतकाराः । कान्तारागप्रियाः करिणो राजद्वारेषु संवरन्ति
वैश्याङ्गणेषु भुजङ्गाः ॥

यस्या वेदि ॥ भक्तो भक्तिमान् । भक्त बाह्यम् । संनिधानम् मैकत्र्यम् । सम्पद्-
निधिश्च । अक्षरं वर्णः । पदे भक्त पाशकः । अक्षरसे स्थितमवधानं येषाम् । कान्तारे
धने अग्राः सङ्घस्यादिवृक्षस्तत्प्रियाः । पदे काम्ता वधूः ॥

जिस नगरी में देवताओं के आयतन (मन्दिरों) में भक्तमाज् (भक्त युक्त)
देवता संनिहित दिखायी पड़ने हैं और हट्ट (बाजार) में भक्तमाज् (भक्त
वेचने वाले) बनियाँ संनिहित दिखायी पड़ने हैं । कविगोष्ठी में कवि लोग
अक्षर-विन्यास (वर्णविन्यास) में सावधान दिखायी देने हैं और जुवा
खेलने की जगह पर जुवाड़ी लोग अक्ष + रस (पाशा फेंकने) में अवधान
(सावधान) रहने हैं । राजद्वार पर कान्तार (जंगल) के अग (वृक्षों) से
प्रेम रखने वाले हाथी भ्रमण कर रहे हैं और वैश्याओं के आँगन में काम्ता +
राग को प्रिय मानने वाले विट धूम रहे हैं ॥

[भक्तमाज — भक्त शब्द के अन्न और भक्तिमुक्त पूजन दो अर्थ हैं ।
मन्दिरों में भक्तों (पूजकों) से युक्त देवता हैं और बाजार में भक्त (भक्त)
युक्त वर्णिजन है । भक्त-माज् साधारण धर्म है ।

अक्षर + सावधान — कवि लोग सभा में जब अपनी कविता प्रस्तुत करते
हैं तब अक्षर-अक्षर पर सावधान रहने हैं कि कहीं अशुद्धि न हो जाय ।
जुवाड़ी लोग अक्ष + रस + अवधान हैं । पाशा फेंकने में पर्याप्त सावधानी रखने
हैं । अक्षरसावधानत्व साधारण धर्म है ।

कान्तारागप्रिय — बरों (हाथी) पक्ष में कान्तार + अग + प्रिय (जंगल
के पेड़ों की प्रिय मानने वाले) और विट पक्ष में काम्ता + राग + प्रिय
(रमणी स्नेह) को रमणीय मानने वाले यह अर्थ करना चाहिये ।] ॥

यस्यां च चतुर्दशिवेलाधिराजितसकलधराचरुचूडामणौ मणि-
कर्मनिर्मितरम्यहर्म्यतया सुरपतिपुत्रीपरामवकारिण्याम् । अन्ययभावो
व्याकरणोपसर्गेषु न धनिनां धनेषु, दानविच्छित्तिरुन्माद्यत्करिकपोल-

मण्डलेषु ॥ त्यागिगृहेषु, भोगभङ्गो भुजङ्गेषु न विलासिलोकेषु-
स्नेहक्षयो रजनोविरामविस्मयदीपपात्रेषु न प्रतिपन्नजनहृदयेषु
कूटप्रयोगो गीततानविशेषेषु न व्यवहारेषु, वृत्तिकम्प्लवो वैयाकरण-
चलात्रेषु न स्वाभिभूत्येषु, स्थानकभेदध्वजकेषु न सत्पुरुषेषु ॥

यस्यां चेति ॥ अथयथाभावोऽन्यथावत् ॥ एषे एवमो दानादिभोपयोगस्तदभावः ।
दानविशिष्टिर्मन्त्रोमा त्यागविच्छेदश्च । भोगः सर्ववपुर्विलासश्च । भङ्ग आभर्ष-
नम् । भुजङ्गवधश्चतुर्दश । भुजमेकोनपञ्चाशत् । तेषां विशेषेषु कूटशब्दप्रयोगः ।
पक्षे कूट कपटं प्रयोगे व्यापारः । वृत्ति साधविचारणम् । लाजीवन च । स्थानक-
भेद मनुष्यं परादुमुख संपूर्णावलीकरणमिति यावत् । व्यावस्तश्च । स्नेहस्तेटादि-
प्रेमाश्च । प्रतिपन्नाणि परस्परप्रभातानि च तानि जनहृदयानि च । गीतस्य गाना-
द्वयं । एके कूटाक्षयः पञ्चत्रिंशत् । अन्ये च शुद्धायवरूपं पाशोतनम् । ततो भोग-
द्वयेनैकतः पतनाभ्यन्तरे च चरता क्रमेण ऋतु चर्यागतद्वयार्थाचार्यश्चतुर्दशानि
चेति स्थितस्यावकाशमिति पञ्च । पावनमालीहृत्परिमं त्रिभङ्गमि-यावयानि च चाचारि-
रावद्धःस्थानकानोति । पृथं च प्रधाना स्थानकानां भेदध्वजेषु । एषे स्थानकस्य
रक्षणप्रकारादेर्भेदः चतुर्दशो न सत्पुरुषेषु मर्यादा ॥

चारो समुद्रो के तट रूप मे मुनोपिन सम्पूर्ण भूषणहल म सर्वोत्तम, मणियो
से निर्मित रमणीय महानो के कारण नुरपति (इन्द्र) की नगरी को भी परास्त
करने वाली उम नगरी मे अव्ययभाव -एदि पाया जाता है तो व्याकरणशास्त्र
के ऋषियों में, धनियो के धन मे नहीं । दान-विशिष्टि यदि कही है तो मतवाले
हादियों के कपासमण्डल मे, रणायियो के घर मे नहीं । भोग की श्रद्धता
छपों मे हैं, विलासी लोग मे नहीं । स्नेहक्षय (तेल का अभाव) रात्रि की
समाप्ति के समय झुलते हुए दोषपात्रो मे हैं, प्रतिपन्न जन (भक्त लोगो) के
हृदय मे स्नेहक्षय (प्रेम का अभाव) नहीं है । कूट का प्रयोग सगीत के
तानो मे होता है, व्यवहार मे कूट (छल) का प्रयोग नहीं होता । वृत्ति
(पाणिनि सूत्रों के अर्थ-विवेचन) के प्रसङ्ग मे वैयाकरण के विद्याधियो मे
बलह होता है, वृत्ति (वेगन) के प्रसङ्ग मे स्वामी और लोकर के बीच कलह
नहीं होता । स्थानकभेद (किसी को सीखा, किसी को उतरा बताया) जिनों
मे देखा जाता है, मनुष्य लोग स्थानकभेद (नगर के दार्शनिक या रक्षणीय
स्थानों) का विनाश नहीं करते ॥

[व्याकरणोपमार्गेषु —व्याकरणशास्त्र के प्र परा आदि उपसर्गों मे
निमित्तित्व्य किसी तरह का विचार नहीं होता । उनके मूल स्वरूप का व्यय
नहीं होता । कवि इस बात को धोतित करना चाहता है कि न व्यय होने की
बात या स्थिति नहीं है तो केवल व्याकरणशास्त्रीय उपसर्गों मे, धनियो के
धन मे नहीं । धनी लोग उदार हैं । उदारतापूर्वक धन का व्यय करते हैं ।

दानविच्छिन्नि—दानविच्छिन्नि के दो अर्थ हैं—मदबल की शोभा और दान का त्याग । मदबल की शोभा से हाथियों का कर्पण मन्त्रित है किन्तु त्यागियों के घर में दान विच्छेद नहीं है । वे लोग सदा दान करते रहते हैं ।

मोघमङ्ग—मोघ शब्द सात्त्विक विषाद और सर्व शरीर अर्थ का माघन है । सर्वमोघ अपने शरीर को मङ्ग (दंष्ट्रा) करते हैं विनाशियों का विषाद मङ्ग (मष्ट) नहीं होता ।

स्नेहशयः—स्नेह शब्द तेल और प्रेम दोनों का वाचक है । रात्रि के विराग के समय स्नेह (तेल) के समाप्त हो जाने पर दीनक बुझ जाते हैं नगर के लोग रात्रभर शीत बसाने से । दीन के प्रशान्त होने के समय में ही स्नेह शय होता था किन्तु स्नेही व्यक्ति के हृदय में स्नेह का अभाव नहीं होता ।

कूटप्रयोगः—कमीज के प्रसङ्ग में व्यंग्यत जयं जाने कूट शब्दों का प्रयोग होता है । व्यवहार में कूट (छप) का प्रयोग नहीं होता ॥

किं बहुना

त्रिविधपुरसमृद्धिस्पर्धया भान्ति यस्यां
सुरसदनशिखाम्रेष्वाग्रहप्रग्नियनदाः ।

ममसि पवनवेष्टस्पर्ध्वैष्टसद्भिः

परमनिह बहन्त्यो वैभवं वैजयन्त्यः ॥ ३२ ॥

त्रिविदेष्ट ॥ सुराणां मदनानि प्राप्ताद्वा विनानानि च । आगृह्यन्त पृथिरित्या-
ग्रहा बहुदकारतेषु ये प्रग्नियनैर्नदाः । वेष्टपद्मवैष्टदृष्टैः । वृष्टसमी राजन्तिः ।
वैनवं प्राङ्गम्यम् । सर्वोऽपि त्रिविधोपुर्बदपरिकरः पत्राकां दर्शयतीतिमात्रः ॥ ३२ ॥

देव नगरी स्वर्ग की सम्मति की प्रतिद्वन्द्विता से देव गृहों के आगे गाँठ बाँधी हुई, आकाश में फलकवाते हुए बन्वाकनों से युक्त अनुप ऐश्वर्य को प्रकट करती हुई पत्राकायें सर्वथा सुशोभित हो रही हैं ।

[नगरी की पत्राकायें स्वर्ग की सम्मति से लम्बा करती हैं । उसी क्षण में दंडपरिकर हो कर स्वर्ग के नामने खड़ी हैं । प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति बनने प्रति-
स्पर्धियों के कान्ते आकर नहने के बिन्दे विज्जुल सुप्रधान हो कर उठा रहता है और अपने ऐश्वर्य को हर तरह से प्रकट करना चाहता है । ये पत्राकायें भी अपने ऐश्वर्य को व्यक्त करती हुई स्वर्ग के सामने खड़ी हुई हैं । जिस दंडे में पत्राकायें रहती हैं, उसके अप्रमाण को खूब अच्छी तरह बाँध देते हैं । उसी गाँठ को लेकर कवि पत्राकायों में बद्धपरिकरता देव रहा है ।] ॥ ३२ ॥

अपि च ।

धार्मी सदा सदाचारसज्जसज्जनसेविता ।

नगरी न गरीयस्या संपदा सा विवर्जिता ॥ ३३ ॥

चावीति । धार्मी मनोज्ञा । सततं साध्याचारप्रद्वमाधुश्रिता सा नगरी पुरी गरीयस्या श्रिया न त्यक्ता ॥ ३३ ॥

निरन्तर पवित्र आचरण मे सज्ज (तत्पर) मज्जनो द्वारा सेवित यह नगरी विशाल सम्पत्ति से परित्यक्त नहीं है ॥

[यह प्रसिद्ध सा है कि सज्जनो के यहाँ सदमी नहीं रहती हैं किन्तु इस बात की प्रतिकूलता उस नगरी मे है सज्जन लोग अपने सौजन्य पूर्ण कार्य मे तत्पर हैं फिर विपुल सदमी से सम्पन्न हैं] ॥ ३३ ॥

तस्यामासीन्निजमुजयुगलवलविदलितसकलवैरिवृन्दसुन्दरीनेत्र-
नीलोत्पलगलद्वद्वलबाष्पपूरप्लवमानप्रतापराजहंसः, सकलजलनिधि-
वेल्लावननिष्ठातकीर्तिस्तम्भभूषितभुवनयलयः, विद्वन्मरामोग इव बहु-
धारणक्षमः, प्रासाद इव नवसुधाहारी, रविरिवानेकधामाश्रयः । दनुज-
लोक इव सधानधः स्त्रीजनस्थ, यसिष्ठ इव विश्वामित्रप्रासजननः जन-
मेजय इव परीक्षितनयः, परशुराम इव परशुमासितः, राघव इवालयु-
क्तोदण्डभङ्गरजितजनकः ॥

तस्यामिति ॥ शत्रुकान्ताश्रुपूरे तरन्प्रताप इव राजहंसो यस्य । तथा जयस्तम्भ-
भूषितभूमण्डलाः । तथा स्तम्भोपमदोर्दण्डे भ्यस्ता शालभञ्जिकेव जयलक्ष्मीर्यस्य ।
■ बीरसेनसूनुर्नल इति प्रसिद्धो मृग आसीत् । बहुधानेकशो रणे चम । पक्षे
बहुना भारणे चमः । आभोग पूर्णता । वसुधा देवद्विजसंघर्षा हरयेवदीलो न ।
पक्षे नवया सुधया लेपविशेषेण हारी रम्यः । वनेकथा सप्ताक्षरवाहबुधा माया
लक्ष्या आश्रयः । पक्षेऽनेकस्थ प्रचुरस्य धाम आश्रय । सदा निरर्थं भवो रम्य-
तया पूर्वं पृथ । पक्षे दानवै सह विश्वेयाममित्राणां प्रासहृत् । पक्षे विश्वामित्रो
मुनिः । परीक्षितो नयः पादगुण्यं येन । पक्षे परीक्षेरभिमन्युसुतस्य सुतः । पर-
स्मिन्दुमी आसितः । पक्षे परशु । कुठारः । अलघुसो गौरवाहः । तथा दण्डस्य ध-
परिवलेशार्थहरणलक्षणस्य भङ्गेन मुक्ता रजितलोकः ॥ पक्षे मुह्यदनुभङ्गद्वितजन-
काव्यनुपः ॥

उस नगरी मे नल नामक राजा रहता था । उसने अपने बाहु युगल के
बल से शत्रु दल को नष्ट कर दिया था ।

इस लिये उन (शत्रुओं) को मुन्दर रमणियों के नेत्र कमल से गिरती
हुई पर्याप्त बाणियों की धारा मे उस (नल) का प्रताप रूप राजहंस तैर

रहा था । [प्रतापी नल ने अपने शत्रुओं को बट कर दिया था वत शत्रुओं की श्मिदाँ बँधन्य दुःख से खिन्न होकर रो रही थीं] सम्पूर्ण ममूद्र ठट की रक्षा के निम्ने अपने कीर्तिव्यन्मों को बड़ा कर दिया है जिससे पूरा का पूरा भूमन्जन सुगोमित हो रहा था । वनप्ररा (पृथ्वी) विस्तार जैसे बह्यारण क्षम (वट्ट सी चीशों का धारा करने में समर्थ) है वैसे राजा नल भी बहृषा + रणक्षम (दिवित्र प्रकार से युद्ध सामर्थ्य रखे) थे । भवन जैसे नव + मुप्राहारो (नवीन चुन्ने के नेत्र के कारण मनोहर) होता है वैसे नल भी (इस समार म) नव + मुप्राहारो (नवीन मुखशान्तिरूप अपृत की लाने वाले) थे अर्थात् न + बमुषा + हारो (बाह्या या देव निमित्त दी हुई भूमि का अपहरण करने वाले नहीं) थे । मूर्ध जैसे अनेक + घामाश्रय (विभिन्न लोकों में आश्रय लेने वाले) हैं वैसे वह भी अनक्या + मा + आश्रय (कई प्रकार की मन्मो का वान् ध्यान) थे । दनुजलाक जैसे सदानव (राजनों से युक्त) है वैसे नल भी क्षी जनों के निम्ने मदा + नव (निन्धनया) दीखते थे । बसिष्ठ जैसे विश्वामित्र + वास + जनन (विश्वामित्र ऋषि की दरान वाले) थे वैसे नल भी विश्वामित्र व्राम जनन (समार के बमित्रकों की व्राम दिवाने वाले) थे । अनमेजय जैसे परीक्षित + तनय (राजा परीक्षित का लडका) है वैसे नल भी परीक्षित + नय (सब तरह से अपनी नीति को परीक्षित कर लिने) थे । परगुलम जैसे परगु + भासिन (परगुनामः अल्प में सुगोमित) हैं वैसे नल भी पर + शुभ + भासिन (इनरों के शुभ में आस्था रखने वाले), थे । जयदा उत्कृष्ट पुन की कामना करने वाले थे या पर (दुश्मनों की भी दुर्बुद्धि को समाप्त कर पुन की कामना करने वाले थे । राघव (भगवान् राम) जैसे अन्नु को दण्ड भद्र रन्जित (विनाश घनुय की तोड कर जनक राजा को प्रमन्न करने वाले) हैं वैसे नल अन्नुक (गौरव पान) है और दण्ड + भद्र + रन्जित जनक (शत्रु आदि कठिन दण्ड को समान कर जनक (प्रना) को अनुरन्जित कर देने वाले) थे ॥

[भगवान् राम ने जैसे विनाश घनुय की तोड कर जनक की बिन्दा को दण्ड कर उन्हें प्रवन्न कर दिया था वैसे राजा नल भी नवधूव (गौरव पान) थे और अपराधियों के कभी-कभी दण्ड को समान कर प्रना को प्रमन्न कर दे रहे थे । यहाँ जनधूव की दण्डादि के साथ सन्धि हो गयी है । राघव पक्ष में घनुय अर्थ का दावक कोदण्ड शब्द एक है । न्यायाधिकरण से किसी को मृत्यु आदि महान् दण्ड निन जाने पर राजा से प्रार्थना की जा सकती थी और वह अपनी इच्छा के अनुसार उसे क्षमा कर सकता था ॥]

सुमेरुरिव जातरूपसम्पत्तिः, तुहिनाचल इव पुण्यभागीरथी-
सहितः, चिन्तामणिः प्रणयिताम्, अग्रणीः सांग्रामिकाणाम्, उपा-
ध्यायोऽध्यायधिदाम्, आदर्शो दर्शनानाम् आचार्यः शौर्यशालिनाम्
उपदेशकः शस्त्रशास्त्रस्य, परिवृद्धो दृढप्रहारिणाम्, अग्रगण्यः पुण्य-
कारिणाम्, अपरिचिन्तो विपश्चिताम्, अपाश्वात्यस्त्यागवताम्, अचर-
मश्चातुर्याचार्याणाम्, अपर्यन्तभूभारधारस्तम्भभूतभुजकाण्डकीलित-
शालमञ्जिकायमानधिजयधीः, श्रीवीरसेनसूनुः, समस्तजगत्प्रासाद-
शिरः शैवरीभूतकान्तकीर्तिध्वजो, राजा, राज्यलक्ष्मीकरेणुकाचापल-
संयमनशृङ्खलः, खलधुन्दकन्दलदायानलो नलो नाम ॥

जाता रूपसम्पत्तिर्यस्य । एषे जातरूपं सुवर्णं सम्पत्तिर्यस्य ॥ पुष्पमञ्जनशीला ।
रथवान् । हितैः सह । एषे पुण्यगङ्गान्वितः । प्रणयितामधिनां चिन्तनप्रदो
मणिरिव । जगतः प्रासादः कीर्तेश्च ध्वज उपमायम् ॥

सुमेरु (पर्वत) जैसे जानरूप सम्पत्ति (भुवने सम्पत्ति से युक्त) है वैसे
वह (नल) भी जातरूप सम्पत्ति (मौन्दर्व सम्पत्ति से युक्त) है । तुहिनाचल
(हिमालय) जैसे पुण्य + भागीरथी सहित (पवित्र गंगा नदी से युक्त) है
वैसे वह भी पुण्य भागी, रथी, सहित (पुण्यात्मा, महारथी और हित की
भावना से युक्त) है । प्रणयी (याचक जन) के लिये वह चिन्तामणि (समस्त
मानाङ्गित पदार्थों को देने वाले) है । योद्धाओं में अग्रसर है । अध्ययन
प्रकार के विशेषज्ञों में भी अध्यापक है । वेदान्तादि दर्शनों के आदर्श (निर्मल
दर्शन) है । वीरता ही जिनकी शोभा है ऐसे लोगों के भी आचार्य है । शस्त्र
एव शस्त्र दोनों ही विद्याओं के शिक्षक है । दृष्टापूर्वक प्रहार करने
वाले लोगों की ओर भी सोत्साह आगे बढ़ने वाले है । पुण्यात्माओं में
अग्रणी है । विद्वानों में सर्वोच्च है । त्यागियों में अपाश्वात्य (सबसे आगे)
है । वतुरता के उपदेश देने वाली में भी वह सर्वोत्कृष्ट है । समग्र भूषण्डल के
भार को धारण करने वालों उसकी भुजाओं आधार स्तम्भ (धम्मे) की
तरह थीं । उसके ग्राहस्तम्भ में विजयनरुओ कठपुतली की तरह
पिरो दी गयी थी । वह वीरसेन के पुत्र है । सम्पूर्ण ससार रूप भव्य भवन
के उच्चतम भाग पर उसकी भास्वर कीर्तिपताका फहरा रही थी । राज-
लक्ष्मी रूपी हविनी को बाँधने के लिये वह बन्धन-शृङ्खला है । दुष्ट जन
समूह के लिये दावानल (जलनाभि) है ॥

यस्येन्दुकुन्दमुदकान्तयः सकलल्लोकरुक्मिप्रातिथयो गुणाः
सततमेकग्रहाण्डसंपुटसंकीर्णनिवासव्यसनविपादिनः पुनरनेकग्रहाण्ड-

कोटिघटनामभ्यर्थयमाना इव भगवतो विश्वसृजः कमलसंभवस्य कर्ण-
लग्नाः स्वर्गलोचनमधिवसन्ति स्म ॥

एन्देति ॥ यस्य नलस्य प्राचुर्यादेकस्मिन्नवस्थापेऽन्तःप्रेक्ष्यमाणदनिर्माणं
कारयिष्यन्त इव स्वर्गिनिर्निर्णयमेव सहाप्यमानत्वात्कर्णलग्नः भुक्तौ विज्ञापनार्थं
निकटीभूताः ॥

राजा नल के पुत्र चन्द्र, कुन्द और कुन्दुद की कान्ति की तरह निर्मल थे ।
सोनों के कानों के प्रिय अतिथि थे । हनैशा एक ही ब्रह्माण्ड में सपुट (बन्द)
होकर मञ्जीरों के निदान करने के कारण दुःख का अनुभव करते हुए
मानो अनेक करोड़ ब्रह्माण्ड निर्माण करने के लिये विश्व के निर्माता एवं कमल
से जन्म लेने वाले भगवान् के कानों में नमस्कर प्रार्थना करते हुए स्वर्ग लोक में
रहने थे ।

[माहाराज नल के मुख एक ही ब्रह्माण्ड में नहीं बट पा रहे हैं । उन्हें अच्छी
तरह रहने के लिये अनेक ब्रह्माण्ड चाहिये । इसीलिये । ब्रह्माण्ड के निर्माता
ब्रह्मा के पास जानकर उनके कानों में कहने थे, “हमारे रहने के लिये करोड़ों
ब्रह्माण्ड का निर्माण कीजिये ॥”]

अस्मिन् राजनि जनितजनानन्दे नन्दयति मेदिनीम्, गीतेषु
जातिसंकराः, तालेषु नानालयभङ्गाः, नृत्येषु विषयकरणप्रयोगाः,
वाद्येषु दण्डकरप्रहाराः पुण्यकर्मारम्भेषु प्रबन्धाः, सारिधूतेषु पादा-
प्रयोगाः, पुष्पितकेतकीषु हस्तच्छेदाः, न्यग्रोघेषु पादकल्पनाः कञ्चुक-
मण्डनेषु नेत्रविकर्तनानि, आसन् । न प्रजासु ॥

एन्देति ॥ गीतादिष्वेव जातिमङ्गरादीनि च प्रग्राह्यति परिसंख्ययाव-
धारणम् । गीतेषु नन्दयन्तीप्रभृतयो जातयोऽष्टादश । तानु सङ्गरो मिश्रप्रतीतिः ।
एते जातयो विप्राणाः । सङ्गरोऽनुचिन्तयन्त्येव विष्टवः । तालसङ्गपुटादि । लया
नृत्यमप्यविहङ्गनलङ्घना । एते जालयो गृहम् । करणानि तलपुष्पपरादीन्य-
द्योषरशतसंख्यानि । एते विपमार्थार्थे च । रगो सुदम् । दण्ड-कोणः । कर-
पाणि । एते दण्डो वधादि । करो राज्ञे देवोऽस्य । प्रहारी जातनम् । प्रबन्धाः
सातरयानि प्रकृष्टवन्धाश्च । पाशो दण्डो वन्धनरज्जुश्च । सारयो हि दायैर्वध्यन्ते ।
कञ्चुर्यस्तु पाशक एव प्रतीतः । हस्तः केतकीयान् पाणिश्च । पादस्य मूलस्य
रचना । न्यग्रोघपादश्च पादात्रचयति कल्पयति । एते पादस्याङ्ग्रेः कल्पना
कर्तनम् । नेत्रं वस्त्रविशेषो नयनं च । विशेषेणाङ्गप्रमाणेन कर्तनं विकर्तनं
विचण्डनं च ॥

जिनके राज्य-जाल में प्रजा आनन्द मग्न थी, पृथ्वी प्रसन्न थी । गीतों में
ही नन्दयन्ती आदि जातीयों का नाट्य था । आदमियों में वर्ण साधने नहीं
था । संगीत के बदलते धर ताल देने समय नाना-नय भङ्ग (विभिन्न स्वरों

का उतार चढ़ाव होता था किसी आदमी का नाना + आलम + मज्ज (विजित गृह स्वस) नहीं होता था ।

तृप्त के अवसर पर ही विषमकरण (तेल, पुष्प, घट, आदि १०८ करणों) का प्रयोग होता था, विषमक (भयङ्कर) रण (युद्ध) नहीं होता था । बाजे बजाते समय ही दण्ड (सफाई का प्रयोग अथवा हाथ) का प्रहार किया जाता था, प्रजा में किसी को मृत्यु आदि दण्ड अथवा रर (मालगुबारी) आदि से पीड़ित नहीं किया जाता था । पुण्यकर्म सम्बन्धी प्रयासों में ही बहुत से प्रबन्ध किये जाते थे, अथवा पुण्यकर्म (यज्ञ आदि कार्यों) में ही बड़े-बड़े प्रबन्ध (भागवत आदि महापुराणों) का पाठ किया जाता था । किसी प्रजा के ऊपर प्रबन्ध (प्रकृष्टबन्धन) नहीं लगाया जाता था । सारीधून में ही पाशों का प्रयोग होता था, किसी प्राणी को फसाने के लिये पाश (जाल का प्रयोग नहीं होता था । विकसित केबड़े का हस्तछेद (मध्यभाग का मोटन) होता था, किसी आदमी का हस्तछेद (मुक्तकतन) नहीं होता था । व्यग्रोघ (घट) का वृक्ष ही पादकल्पन (नवीन जटों या बरीहों की सृष्टि) करने थे । किसी आदमी का पादकल्पन (चरण कर्तन) नहीं किया जाता था । कञ्चुकमण्डन (खोली) आदि सोने के सप्रम ही नेत्र (नायक वस्त्रों) का विवर्तन (छेदन) होता था, किसी प्राणी का नेत्रविवर्तन (नेत्र निष्कासन) नहीं किया जाता था ॥

[नेत्र विवर्तन—नेत्र एक चमकीले वस्त्र का नाम है । चौली आदि के निर्माण के समय दर्जी लोग वस्त्र को बाँटते हैं । कोई प्रजा अपराध नहीं करती जिसके दण्ड के उपसङ्घ में किसी की आँख निकाली जाय ॥

यश्च कोऽप्यन्योदृश एव लोकपालः । तथाहि । अपूर्वो विबुध-पतिः, अदण्डकरो धर्मराजः, अजघन्यः प्रचेताः अनुसरो धनदः ॥

यच्चेति ॥ कोऽपि विरमयहेतुः । लोकं जगत्पालयन्ति ये तेभ्योऽन्योदृशो विस-दृश एव लोकं प्रज्ज् पालयतीति कृत्वा लोकपालः । स्वोक्तमेव व्रणति—तथाही-त्यादिना । यतो विबुधानां सुराणां पतिः स पूर्वं पूर्वदिशुक्तवात् । नलस्तत्पूर्वं सादृशो विबुधानां विदुषां पतिः । दण्डपात्रिर्धर्मः । अलस्तु न दण्डो वधादि, करो राशे द्यौःशो परमादिभ्यदण्डकरः । तथा धर्मप्रधानराजा धर्मराजः । धर्मविजय-त्वात् । प्रचेता चरणः सह अजघन्यया पश्चिमया वर्तते । नलस्तत्पूर्वजघन्योऽङ्कुरितः प्रकृष्टचेताश्च । यदुक्तम्—'अजघन्य चरमे दिशे जघन्य गहिंतेऽन्यथात्' । धनदः कुपेरः सहोत्तरया दिशा वर्तते । नलस्तु न विद्यत उत्तर उत्तरादृशोऽस्यादिपुनरुत्तरः । तथा धनं ददातीति धनदः ॥

यह एक दूसरे ही ढंग का अतीतिक सोनपान था । [ससार के पालक यमकुंवर आदि सोनपाल से भिन्न ही यह प्रजापालक सोनपाल था]

कपोनि विबुधपति (देवताओं के स्वामी इन्द्र) तो पूर्व दिशा में रहते हैं किन्तु यह तो विबुध पति (पण्डितों का पति) होता हुआ भी अपूर्व (अद्भुत) था । धर्मराज (धर्मराज) हमेशा दण्डकर (हाथ में दण्ड लिया करते) हैं । किन्तु यह नर तो अदण्डकर (वध आदि दण्ड और कर नहीं लगाता) है फिर भी धर्मराज (धर्म प्रधान राजा है । प्रचेता (वध) तो जघन्य (पश्चिम दिशा में रहने वाले) हैं नर तो अजघन्य (अनुत्तिष्ठ) है और प्रचेता (स्तम्भित चित्त वाला) भी है । धनद (कुवर) उत्तर दिशा में रहते हैं । नर तो धनद (धन देने वाला) किन्तु अनुत्तर (सर्वान्कृष्ट) है ॥

[नर भिन्न शैली का हो लोकपाल था, कपोनि इन्द्र भी एक लोकपाल हैं जो नपूर्व हैं, किन्तु नर अपूर्व था । धर्मराज दण्डकर हैं नर अदण्डकर था । वरुण जघन्य हैं नर अजघन्य था । कुवर उत्तर हैं नर अनुत्तर था । इसलिये उसकी भिन्नता सिद्ध हो गयी ॥]

येन प्रचण्डदोर्वण्डमण्डलीविभ्रान्तविजयधिया अचणोत्पलदलाय-
मानमानिनीमानलुण्डाकलोचनेन पृथ्वी प्रिया च कामरूपधारिणी सा
तेन मुक्ता ॥

यैनेवि ॥ विजयता मुनेत्रेय येन भू' काम्ता च सातेन मुक्तेन निर्विष्टा मुक्ता ।
सातेन मुक्ताम् । यस्मिन्मिह—'शर्ममातमुत्तानि च' इति । कामरूपो देशविशेषः ।
प्रिया तु काम्यत इति कामममिलपणीय रूपम्, कामममिलपणीय रूपं वा धरतीत्ये-
वंशीला ॥

उसने अपने बलशाली बाहुमण्डल में विजयलक्ष्मी को विघ्न का अवसर दिया था । कानों के ऊपर लगे हुए कमलदल मद्ग उसकी आँखें मानिनी-
नायिकाओं के मान को लूट लेने वाली थीं । उसने कामरूप देश की भूमि और कामरूप (सौन्दर्यविशेष) धारण करने वाली कान्ता का योग किया ॥

यस्या सफलजनमनोहारिविशेषकम्, पृथुललाटमण्डलम्,
अभिलषणीयफान्मयः कुन्तलाः, श्लाघनीयो नासिस्यभागः, घटुल-
घटीकः सरोमालिकालंकारश्च मध्यदेशः, प्रकटितकामकोटिचिलासः
काञ्चीप्रदेशः ॥

यस्या इति ॥ यस्या सुव' विशेषक-लाटकुन्तल नामिकय मध्यदेश काञ्ची इत्येवं
रूपा देशाः । लघली लताविशेष । सरसां मालिका श्रेणी । कामकोटिनामनी रेवी ।
प्रियापदे वितोषक मिलकम् । ललाटमलकम् । कुन्तला केशा । नासिकार्पा भवो
नामिकयः । मध्यदेश उदरम् । घटुला बहुयो वक्ष्य उदरेखा यत्र तथा सह रोम-
पट्टिमण्डनेन । प्रकटितानङ्गोरकर्षविहासः काञ्चीप्रदेश ओणी ॥

जिस प्रिया का विशेषक (तिलक) सब मनुष्यों के चित्त का हरण कर लेता था । सलाट भाग बड़ा ही विशाल था, कुन्तल (चाली) की कान्ति नितान्त स्पृहणीय थी । नासिक्य (नाक का भाग) अत्यन्त प्रशस्तनीय था । उसका मध्य भाग बहुल + वलीक (त्रिवलियों में युक्त) तथा रोमपक्ति रूप अनङ्कारो से युक्त है ।

काञ्चीप्रदेश (करघनी पहनने का स्थान) करोड़ों कामों के विलास को प्रकट कर रहा है ।

पृथ्वी पक्ष — उस पृथ्वी की विशेष शोभा बढ़ाने वाला विशाल लाट देश था । स्पृहणीय कान्ति से समन्वित कुन्तल देश था । नासिक्य प्रदेश बड़ा ही प्रशस्तनीय था । सबली वृक्षों तथा सरोमानिकाओं (सरवरों) से युक्त मध्य देश था । कामकोटि नाम की देवी से अनङ्कृत काञ्ची प्रदेश था ।

किं बहुला ।

यस्याः कृष्णागरचन्दनामोदयहुलकुक्षामोगभूषणा नृत्यतीचाङ्ग-
रङ्गे रमणीयतया निरुपमा नवा यौवनधीः ॥

यस्या इति ॥ अङ्गेऽङ्गाव्यदेश एव रङ्गे नर्तनस्थाने निरुपमवापी सति वनश्री-
नृत्यतीक्ष्ण । आततरलकमेव नर्तनम् । कृष्णा पिप्पली । अगरचन्दनी वृक्षविशेषो
तेजामोदः । बहुला लकुक्षानामामोगो विस्तारः । सौ भूषणं यस्याः । पक्षे चर्चा-
वशात्काङ्गाग्रचन्दनयोरोमोदेन व्याप्तस्तनविस्तारमण्डला । नयेति यौवनश्रीरिति
च भिन्नम् ॥

कृष्णागर (अगर) और चन्दन की गन्ध और विशाल स्तनों की व्यापकता से अनङ्कृत, रमणीयता के कारण अनुपम एवं नवीन यौवन लक्ष्मी जिसके अङ्ग रूप रङ्गमन्त्र पर नाच भी रही थी ।

पृथ्वी पक्ष — कृष्णागर (अगर) चन्दन वृक्षों की गन्ध तथा बहु + लकुष (अधिकांश लकुष) वृक्षों की व्यापकता से अनङ्कृत वनलक्ष्मी अनुपम वायु के बहते रहने पर अङ्ग देश रूप रङ्गमन्त्र पर नाच भी रही थी ॥

[पृथ्वी पक्ष में निरुपमा नवा यौवनश्री शब्द का विच्छेद, निरुपमान + वापी + वनश्री करना चाहिये । अर्थात् अनुपम वायु के बहते रहने पर वनश्री अङ्ग देश के रङ्गमन्त्र पर नाच रही थी ।]

किं चाम्यम् ।

अन्य एव नवावतारः स कोऽपि पुण्योत्तमो यो न मीनरूपदूषितः
नाङ्गीकृतविश्वविद्यमरामोऽपि कूर्मीकृतात्मा, न घटाद्वयपुष्पाफलेदोन
पृथ्वीं धमार, न च नरसिद्धः समुत्सन्नद्विरण्यकशिपुः, न यस्मिन् राज-

अन्धनविधौ घामनो दैन्यमकरोन्, नापि रामो लङ्केस्वरक्षियमपाहरत्,
नापि बुद्धः कल्किकुलावतारी ॥

किं चेत् ॥ कोऽप्यपरिच्छेदमहिमा । तथा नवः पूर्वविलङ्घनोऽवतारो जन्म
यस्य स तदामृतः । यदि वा 'पु स्तुतौ' इत्यस्य नवाः स्तुतयोऽवतार्यन्ते यस्मि-
न्नि स्तवाररम् । सर्वोर्ध्वपतिभ्योऽन्योऽमाघाण एव स नलो राज्ञा । पुरन्दर-
पुत्रमः । तथा अमो रोगोऽस्यास्तीत्यमी । जज्ञी अमयी नीतोयः । यदि वा अमयति
अत्रनवरयमिति कृत्वा नमी । प्रतापान्तरिक्ष इत्यर्थः । तथा न रूपे दूषित ।
तथा स्वोक्तधरापुरोऽपि न कूर्मिर्नह्वरः । कुम्भनोमिः पीडा यस्य स कूर्मिः । अग्नी-
ह्वनमारी हि पीडावाग्भवति । यदुक्तम्—'कूर्मिः पीडात्रयोऽप्यष्टमङ्गप्रकार-
धीषिणु' । तथा वरमादृवं पुष्पता क्लेशेन न धरामपि तु सुखेनेत्यर्थः । नरेषु सिंह-
शीर्षात् । न च यमुत्पन्नं हिरण्यं धनं कशिपु मीनानां द्वादनानां धरमात् । तथा
वलिना राज्ञा अन्धने विधाने वा अमोदैन्यं न पादरोत् । रामः सुन्दरः । अल-
मत्यर्थं कस्य अलम् ईश्वरस्य सम्मोहं क्षियं नापि न च इतवान् देवरापहारी
नेत्यर्थः । अक्षौषी देवानामुपलक्षणम् । बुद्धो विद्वान् वापि कुलोपधः, अन्य एव
पुराणपुराणवाच्यतारादिसदृश एव नवावतारो नवसंख्यावतारः । कोऽप्ययं
पुद्गलममो विष्णुरिष्टुल्लेखः । तस्यै मीनकूर्मवराहनरसिंहधामनरामबुद्धकल्कि-
नोऽवताराः । हिरण्यकशिपुवलिदेवरास्त्यप्रतिपदाः । अम यश्चामोऽपि । तद्वा ।
अलमिति मिथा कु ईश्वरीश्वरः केशरः सहस्राहुर्नो अमरसिंहोमाहुर्नीमात्रहराणां ।
रामः कृष्णः तथा केन बापुनेष्टे समर्थो भवति एवमाश्रितत्वात् । यद्वा कस्य
पानीयस्य यमुनाद्वलङ्घनस्येश्वरः स्वामी केशरः काटीयमर्षस्य श्रियमपञ्चहारः ॥

और यह कोई दुष्टरा ही नहीं अवतार था । पुद्गलमम (विष्णु) होजा
हूजा भी मीन रूप (मत्स्यावतार) धारण कर करने को दूषित नहीं किया ।
यद्यपि विश्व (समस्त) विश्वम्भरा (पृथ्वी) के वीर को स्वीकार कर जिना
है फिर भी कूर्म का रूप धारण नहीं किया । वराह (सूकर) का शरीर
धारण कर केश के साथ पृथ्वी को धारण नहीं किया । नरसिंह या विष्णु
हिरण्यकशिपु का दिनाग नहीं किया । वलिराज अन्धन (बली राजानों को
बांधने के लिये बामन रूप धारण कर दीनता नहीं दिखाया । राम होकर भी
सङ्क्षेपश्री (रावण की राजतन्त्री) को नष्ट नहीं किया । (बुद्ध होजा
हूजा भी बन्धि कुल से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

[पुरपोत्तम—वो पुद्गलमम (विष्णु) होगा वह मत्स्य रूप अवश्य धारण
जिना होगा । नल पुद्गलमम या नेकिन मीनरूपधारी नहीं था । वह पुद्गलमम
(नरसिंह) था और अनमी (रोग हीन) और न रूप दूषित (दूषित रूप
वाना न) था । अय का अर्थ रोग है । रोग बिना रहेगा उसे अमी कहेंगे ।
या अनमी (रोगी नहीं होगा वह अनमी कहलावेगा । यः और नमी के बीच

एक खण्डाकार का प्रश्लेष माना जायगा। गुण सन्धि होने के बाद 'एङः पदान्तादति' (पा. सू.) से पूर्वरूप हो गया है। अर्थात् नल रोगहीन और दूषित सौन्दर्य वाला नहीं है। इस पक्ष में पुरुषोत्तमो य + अनमो + न + रूप + 'दूषिता' पदच्छेद है। यदि अकार प्रश्लेष की कल्पना न की जाय तो नमो पद रह जायगा। उसका अर्थ होगा अपने प्रताप से शत्रुओं को नवा देता है।

नवावतार—ये णु स्तुती घातु से निष्पन्न नव शब्द का स्तुत्य अर्थ होगा। अर्थात् राजा नल स्तुत्य है।

कूर्मीकृतात्मा—पृथ्वी का भार धारण करने के लिये भगवान् विष्णु कच्छप का अवतार धारण किये थे। किन्तु नल सम्पूर्ण पृथ्वी का सरक्षण रूप भार धारण कर रहा था लेकिन कु + ऊर्मि (कुत्सित पीडा) से आत्मा को सवलित नहीं किया था। अर्थात् विष्णु कूर्मी कृतात्मा है किन्तु नल कूर्मीकृतात्मा नहीं थे।

वराहवपुषा—भगवान् नारायण वराह का अवतार धारण कर बड़े क्लेश के साथ पृथ्वी का भार धारण किये थे। किन्तु नल वर (विशाल) आहव (युद्ध) पोषित करने वाले क्लेश से पृथ्वी का भार धारण नहीं किये थे। अर्थात् पृथ्वी के सरक्षण के अवसर पर कोई विशाल शत्रु नहीं मिले दवाने के लिये महान् युद्ध करना पड़े और उसके लिये कष्ट उठाना पड़े। शत्रु हीनता की वजह से वह अनायास राज्य संचालन करता था।

हिरण्यकशिपु—नरसिंहरूप धारण कर भगवान् नारायण हिरण्यकशिपु का विनाश किये थे किन्तु नल नरसिंह (पुरुषों में सिंह सदृश) था किन्तु हिरण्य (धन) और कशिपु (भोजन वस्त्र) का विनाश नहीं किया था।

वामन—भगवान् नारायण वामन रूप धारण कर बली राजा को बाँधने के लिये भिक्षा माँगने के लिये उसके पास गये थे किन्तु नल बलिराज (बलिष्ठ राजाओं) को बाँधने के लिये मनोदैत्य (मानसिक दोष) नहीं दिखाता था। बड़े उत्साह के साथ बली राजाओं पर आश्रमण कर देता था। नल पक्ष में मनोदैत्यम् विच्छेद कर वा पद का अन्वय न शब्द के साथ करना चाहिये। अर्थात् बलिराज बन्ध विधो नवा मनोदैत्यमकरोत्।

लक्ष्मेश्वर धियम्—भगवान् राम ने रावण की राज्यलक्ष्मी नष्ट की थी। नल राम (अत्यन्त सुन्दर) है। अलम् (व्यर्थ ही) व (ब्रह्मा) और ईश्वर (शिवजी) की श्री (सम्पत्ति) का हरण नहीं करता था। यहाँ भी रामो और लक्ष्मेश्वर के बीच अकार की कल्पना नल पक्ष में की जाती है। नल पक्ष में राम शब्द सुन्दर अर्थ का वाचक है। तात्पर्य यह कि ब्रह्मा और शिव आदि के निमित्त दी गयी सम्पत्ति का अपहरणरूप कुटृत्य नल के राज्य में नहीं होता था।

राम (परशुराम) होता हुआ भी केश्वर (दुष्ट राजा सहस्रार्जुन) की राजलक्ष्मी का अपहरण नहीं किया । अथवा—राम (वृष) या तो भी क (ममुना जल) के ईश्वर (कालीय नाग) की श्री का अपहरण नहीं किये । वे विरोध पक्ष अर्थ हैं । इनका परिहार ब्रह्मा और शिव वाले अर्थ में पूर्ण हो जाता है ।

बुद्ध —मगवान् के दश अवतारों में से कल्की भी एक अवतार है । बुद्ध के बाद दशम अवतार कल्की का ही हान वाला है । इनलिये आवश्यक है कि बुद्ध की आत्मा का सम्बन्ध अपने दूसरे जन्म वाले कल्की से हो । बुद्ध होता हुआ भी कल्कि कुछ से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, विरोध । बुद्ध (विद्वान्) है । कल्कि ब्रह्म (पापी दश) में उसका जन्म नहीं हुआ है, परिहार ।

इस अनुच्छेद में दशों अवतारों का वर्णन किया गया और राजा नल को सभी अवतारों से विलक्षण बताया गया इसीलिये कवि ने कहा था, “अन्य एक नवावतार” ।]

किं धनुना ।

धन्यान्ते दिवसाः स येषु सममूढ भूपालचूणामणि-

ल्लोकालोकगिरीन्द्रमुद्रितमहोधिध्रान्तकीर्तिर्नलः ।

लोकास्तेऽपि चिरन्तनाः सुहृतिनस्तद्वरूपपद्मेदहे

यैर्विस्फारितनेत्रपद्मपुटकैर्लाघन्यमास्थायितम् ॥ ३४ ॥

वे दिन धन्य थे जब लोक और मानोक नामक पर्वतों से घिरी हुई पृथ्वी पर जपनी कीर्ति को विमृष्ट करन वाले राजरत्न नल हुए थे । वे पुण्यात्मा प्राचीन लोग भी धन्य थे जो अपनी आँखों के पत्र रूप पुट के (दोनें) में महाराज नल के मौन्द्य को लेकर आन्वाहित किये ॥ - ४ ।,

अपि च ।

ये कुन्दधुतयः समस्तभुवनैः कर्णावर्तसोहना

यैः सर्वत्र शलाक्येव लिखितैर्दिग्भिचयश्चित्रिताः ।

यैर्वस्तुं हृदि कल्पितैरपि वयं हर्षण रोमाञ्चिता

स्तेषां पार्ययपुङ्गवः स नन्दनामेको गुणानां निधिः ॥ ३५ ॥

कुन्द कान्ति सद्गुण जिन गुणों को समस्त लोगों ने अपने कानों के अलङ्कार बना लिये, जिन (गुणों) से दिना रूप भित्तियाँ दत्त तरह बिल उठों जैने शलाका (चित्र की तुला) (कूची) से किमी भित्ति पर चित्र खींचा जाय, मन में जिन (गुणों) की कल्पना में भी प्रमत्तता के मारे रोमाञ्च हो जाता था, ऐसे समस्त गुणों का एकमात्र स्थान नल राजाओं में सर्वथेष्ट था ॥ ३५ ॥

यस्य च युधिष्ठिरस्येव न कचिदपार्थो वचनक्रमः मरुमण्डल-
मिवापापं मानसम्, महानसमिव सूपकारसारं कर्म, कार्मुकमिव
सत्कोटिगुणं दानम्, दानवकुलमिव दृष्टवृषपर्वोत्सवं राज्यम्, राजीय-
मिव भ्रमरहितं सर्वदा हृदयम् ॥

यस्य चेति ॥ अर्थादपेतोऽपार्थः । अन्यत्र पृथाया अपायात्वात् । अपापं निष्पा-
पम् । पचेऽपेता आपो यस्मात् । सुष्टु उपकारेण सारम् । पचे सूपकारे' सुदै
सारम् । सारपात्रप्रतिपादनादानं सच्छोभनम् । कोटि संख्या । पचे कोटिरटनि' ।
गुणो ज्या । वृषो धर्मः । पर्वं पूर्णिमास्यादि उत्सवः । पुत्रजन्मविवाहादिरते दृष्टा
अनुष्ठिता यत्र । पचे वृषपर्वं दानवः । भ्रमः संशयः । पचे भ्रमरेभ्यो हितम् ॥

युधिष्ठिर की तरह जिसका वचन क्रम अपार्थ (अर्थरहित) नहीं था ।
मरुमण्डल (मरुभूमि) जैसे अपाय (अप + आप = जल रहित) हैं वैसे ही
नल अपाय (पाप रहित) हृदय का था ।

रसोई घर में जैसे सूपकार (पाचक) का कर्म ही सार (मुख्य) उत्पन्न
होता है वैसे नल में भी सूपकार (सुन्दर उपकार) रूप कर्म ही मुख्य अंग
है । धनुष जैसे सत्कोटि गुण (सुन्दर यष्टि और प्रत्यश्वा से युक्त होता है वैसे
नल का दान सत्कोटि गुण (करोड़ों गुणों से युक्त है या और राजाओं की
अपेक्षा करोड़ गुणित है । दानव कुल (राक्षस वंश) जैसे दृष्ट वृष पर्वोत्सव
(वृषपर्व नामक राक्षस के उत्सव को देख चुका) है वैसे नल का राज्य भी
दृष्ट वृष पर्वोत्सव (वृष (धर्म) पर्व (पूर्णिमा) उत्सव (पुत्र जन्म, विवाह
आदि) को देखा है । कमल जैसे सदा भ्रमर + हित (भ्रमरो से घिरा) रहता
है वैसे उसका हृदय भी भ्रमर + रहित (सन्देह रहित) था ॥

यश्च परमहेलाभिरतोऽप्यपारदारिकः । शान्तनुतनयोऽपि न
कुरुपयुक्तः ॥

यश्चेति ॥ हेला गृहारक्षेष्टा । यद्वा पर उत्कृष्टो मह उत्सवो यस्या तस्या-
मिलायां पृथिष्ठा इति । राजन्वती हि मही सधुस्तवा । विरोधे महेला स्त्री शान्त-
श्चासौ नुतनयश्च । शान्तो जितेन्द्रियः । तथा नुनः स्तुतो नयो नीतिर्यस्य । तथा
न कुसितरूपयुक्तः । पचे शान्तनुपुत्रो याज्ञेयः । कुरूणां पत्रियाणामुपयोगी ॥

पर + महिला (दूसरे की स्त्री) में अनुरक्त है फिर भी उसकी अपार
दारिकार्य (अनेक कन्यायें) हैं । विरोध ।

पर + मह + इला (उत्कृष्ट उत्सवों से युक्त पृथ्वी) में अनुरक्त है अतः
अपारदारिकाओं (कन्याओं) वाला है । परिहार ।

शान्तनु + तनय (धीष्म) है फिर भी कुरु + उपयुक्त (कुरुओं के उपयोग
में) नहीं है, विरोध ।

मान् + नुत् + नय (जिनेन्द्रिय और प्रगमित्र नीति दाता) है और कु + स्त + युक्त (खराब स्त बाता) नहीं है । परिहार ।

[परमहिता—जो हमारे को श्री में अनुरक्त रहेगा उनकी अपनी अनक लक्ष्मियां कहीं से जायेंगी । विरोध बीज । वह अन्धव सम्पन्न उत्कृष्ट पृथ्वी का सम्राट् है । अपने राज्य में सर्वदा अनुरक्त है । प्रजा की समस्त बातिकाओं को अपनी लक्ष्मी समझता है । इसीलिए उनकी अपनी अनार दारिकाएं (कन्दाएं) हैं । परिहार बीज ।

मान्नुत्तनय (भीष्म) श्रद्धा के उपयोग में नहीं थे । मान्नुत्तनय होते हुए भी कृद्धानों के उपयोग में न होना बड़ी विरोध का बीज है ।

परिहार पक्ष—मान् स्वभाव वाला और प्रगमित्र नीति दाता है तब उसने कुरूपता का अभाव है ।]

किं बहुना ।

सदाहंसाकुलं विभ्रन्मानसं प्रचलज्जलम् ।

मूढप्रायोऽपि नो याति यस्य साम्यं हिमाचलः ॥ ३६ ॥

सदेव ॥ मूढतो गिरयो मुग्धाश्च । तच्चायत्नं द्वयोरपि । संप्रत्येवं हिमाचलो यस्य साम्यं नायाति । यतः । सदाहं सत्वेदम् । साकुलं व्यग्रम् । प्रचलज्जलमानसं जडं व्यामृदम् । मानसं चेतः । विभ्रति । विद्वान्ते तु मानसं मरः । सदेति निष्ठम् । प्रचलज्जलं यत्र । दोष प्रतीकम् । आकुलशब्दो भावप्रधानो यथा "तिष्ठन्ति च निराकुला" ॥ ३५ ॥

निरन्तरे चञ्चल जल जाले तथा हंसा से भरे हुए मानसरोवर को धारण करने वाले भूभृन्नाय (पर्वतों का स्वामी) हिमालय भी उसकी समानता नहीं करता ।

[क्योंकि हिमालय सदाह (श्रेष्ठ पूर्वक) साकुल (व्यग्रता के साथ प्रचलन् (कर्पित हुए) ।

जलम् मानस (जड हृदय को या जट मानसरोवर को) धारण करता है ।

राजा नन सदाह, सत्कृत, कम्प युक्त, तथा जड हृदय को धारण नहीं करता भूभृन्नाय नन भी है और हिमालय भी । किन्तु सदाह और साकुल मानस को जैसे हिमालय धारण करता है वैसे नन सदाह और साकुल मानस को धारण नहीं करता । नन के पास दाह और व्याकुलता की कोई स्थिति नहीं है । उ और त में अभेद माना जाता है इसीलिए अन्वय से जड अर्थ लिया जाता है ।] ॥ ३६ ॥

अपि च ।

नक्षत्रभूः क्षत्रकुलप्रसूतेर्युक्तो नमोगैः खलु भोगभाजः ।

सुजातरूपोऽपि न याति यस्य समानतां काञ्चनाकाञ्चनाद्रिः ॥३७॥

नक्षत्रेति ॥ यस्य नलस्य काञ्चनाद्रिर्मेरु काञ्चन काञ्चिदपि समानतां नायाति । सुष्ठु जातरूप सुवर्णं यत्र । नलपदे रूप सौन्दर्यम् । अतो द्वयोरपि सुजातरूपत्वात्साम्ये निषेधः । यतो नाय चत्वारोदवति स्म । तथा भोगैर्न युक्तः । नलस्य क्षत्रप्रसूतिर्भोगभाजः । सिद्धान्ते तु नक्षत्राणां भूः स्थानम् । तथा नभसि गच्छन्ति ये तैर्नभोगैर्वैर्युक्तः ॥ ३७ ॥

भु + जातरूप (स्पर्शमय) काञ्चनाद्रि (सुमेरु) भी नल से कोई समानता नहीं रखता, क्योंकि काञ्चनाद्रि न + क्षत + भू (क्षत्रिय कुल में उत्पन्न नहीं) है जब कि नल क्षत्रकुल प्रसूति (क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुआ) है । काञ्चनाद्रि न + भोग + युक्त (भोग युक्त नहीं) है जबकि नल भोगभाज (सुख ऐश्वर्य आदि पदार्थों से सम्पन्न है । इसीलिये काञ्चनाद्रि से नल की कोई समानता नहीं है ।

गिद्धास्तपक्ष — काञ्चनाद्रि नक्षत्र भू (नक्षत्रों का उत्पत्ति स्थान) है । नभोग (आकाश मार्ग से जाने वाले देवताओं से) युक्त है ॥ ३७ ॥

तस्य च महामहोपतेरस्ति स्म प्रशस्तिस्तम्भः सरलश्रुतिशास्त्र-
शासनाक्षरमालिकानाम्, न्यग्रोधपादपः पुण्यकर्मप्ररोहानाम्, आकरः
साधुव्यवहाररत्नानाम् ।

उत्त महा महीपाल (राजा नल) का मन्त्री श्रुतशील नाम का ब्राह्मण था । वह समस्त श्रुतिग्रंथ, शास्त्रों एवं शासन (नीति) विद्याओं का प्रशस्ति स्तम्भ (आधारस्तम्भ) था । समस्त पुण्यकर्म रूप कर्मों के प्ररोह (अद्भुत) के लिये बटवृक्ष था । मुन्दर व्यवहार रूप रत्नों का आकर (समुद्र) था ।

प्रशस्तिस्तम्भ — जैसे किसी की प्रशंसा किसी शुभ पत्थर पर लिखकर स्थायी कर दी जाती है वैसे ही उत्त ब्राह्मण के हृदय पर समस्त विद्यायें अक्षय्य स्पष्ट ढंग से सत्रान्त हो गई थी ।

न्यग्रोधपादप — बटवृक्ष से जैसे कई प्ररोह (वरोह) निकलते हैं और उड़कते-सड़कते पृथ्वी से सम्पर्क कर एक नया मूल ही स्थापित कर देते हैं वैसे श्रुतशील से अनेक नवीन पुण्य व्यापार प्रतिदिन हुआ करते थे ।]

इन्दुः पार्थिवनीतिज्योत्स्नायाः, कन्दः सकलकलाङ्कुरकलापस्य,
सागरः समस्तपुरुषगुणमणीनाम्, आलागस्तम्भश्चपलराजपलक्ष्मी-
करेणुकायाः, सकलभुवनव्यापारपातावारनौकर्णधारः, सुधाम्मोनिधि-

डिण्डीरपिण्डपाण्डुरयशः कुशेशयघण्डमण्डितसकलसंसारसराः,
सरागीकृतसमस्नपार्थिवानुर्जीवी, जीवितसमः, प्राणसमः, हृदयसमः,
शरीरमात्रमित्रो द्वितीय इवात्मा, कुलक्रमागतः, संक्रान्तिदर्पणः
सुखदुःखयोः, स्वभावानुरक्तः, शुचिः, सत्यपूतवाक्, कृतघ्नः, ब्राह्मणः
सालङ्कायनस्य सन्तुः श्रुतशीलोनाम महामन्त्री ॥

तस्य चेति ॥ तस्य भरणेः श्रुतशीलो नाममाख्योऽस्ति रम आसीद् । यशसा
कुशेशयानि, संसारस्य सर उपमानम् ॥

राजनीति की किरणों (दिव्य सिद्धान्तों) के लिये इन्दु (चन्द्र) था ।
समस्त कलाएँ इन अङ्कुर मूलका मूल था । मनुष्य में रहने वाले समस्त गुण-
रत्नों का सागर था । जबल राजलक्ष्मी रूप करेणु (हृयिनी) के लिये आलान
(वज्रत स्तम्भ) था । समस्त मसार के व्यापार सागर में चलने वाली
(प्रजाजन के जीवन र्थी) नौका का कर्णधार था । अमृत समुद्र के तरङ्गों से
उत्पन्न होने वाले फेन पुञ्ज की तरह अमर्यत स्वच्छ यश रूप कमल समूह से
सम्पूर्ण मसार सरोवर की अलङ्कृत कर दिया था । सम्पूर्ण सामन्त राजाओं की
अपने में अनुरक्त कर लिया था । राजा नल के लिए वह (मन्त्री) जीवन के
सञ्चाल था । हृदय के तुल्य था । केवल शरीर ही भिन्न था । वस्तुतः राजा
की दूसरी आत्मा ही था । कुल क्रम (कई पुस्त) में मन्त्री पद पर उत्तम बग
काम करता आ रहा था । सुख और दुःख दोनों स्थितियों में दर्पण की तरह
प्राज्ञ था । राजा के स्वभाव से स्नेह रखने वाला, पवित्र, सत्य में पवित्रित
बाणों बालन वाला वह सालङ्कायन पुन था ॥ -

मित्रं च मन्त्री च सुहृत्प्रियश्च विद्याधियःशीलगुणैः समानः ।

यमूय भूपस्य स तस्य विप्रो विभ्वम्भराभासहः सहायः ॥३८॥

वह ब्राह्मण उस राजा का मित्र, मन्त्री, प्रिय एवं सुहृद् था । विद्या,
अवस्था आदि में समान था और पृथ्वी का भार धारण करने में सहायक
था ॥ ३८ ॥

अपि च ।

ब्रह्मण्योऽपि ब्रह्मविज्ञापहारो स्त्रायुक्तोऽपि प्रायशो विप्रयुक्तः ।

सद्वेषोऽपि द्वेषनिर्मुक्तचेताः को वा सादृग्दृश्यते श्रूयते वा ॥३९॥

ब्रह्मण्य इति ॥ ब्राह्मणे द्वितो ब्रह्मण्यः । तथा ब्रह्म वेत्ति । तथा आपहारी । तथा
विप्रेर्द्विजैर्युक्तः । तथा शत्रुभोगमनो जेषो यस्य । विरोधोऽस्य सुपम एव । ब्रह्मविज्ञं
ब्रह्मस्वम् । विप्रयुक्तो विप्रयुक्तः ॥ ३९ ॥

ब्रह्मण्य — (ब्राह्मणों का द्वित्व चिन्तक) होता हुआ भी ब्रह्मविज्ञापहारी
(ब्राह्मणों की सम्पत्ति का हरण करने वाला) था । विरोध ।

ब्रह्मण्य (विप्रो का हित चिन्तक) या और ब्रह्माविन् + तापहारी (ब्रह्म-
विद्या का जानकार और प्रजाजन के ताप का हरण करने वाला) या । परिहार ।

स्त्री युक्त रहता हुआ भी प्राय विप्रयुक्त (वियोगी) बना रहता था ।
विरोध ।

स्त्री युक्त या विप्र + युक्त (ब्राह्मणो से युक्त) भी था । परिहार ।

सद्वेष (द्वेष सहित) था फिर भी द्वेष निर्मुक्त चित्त वृत्ति वाला था ।
विरोध ।

सद्वेष (सुन्दर वेष युक्त) था और उसको चित्त + वृत्ति द्वेष रहित थी ।
परिहार ।

[यह ब्रह्मण्य होता हुआ भी ब्रह्म वितापहारी, स्त्री युक्त होकर भी
विप्रयुक्त (वियोगी), सद्वेष होता हुआ भी द्वेष त्रियुक्त था, ऐसा कौन देखने
या सुनने में आता है ॥ ३६ ॥]

अथ स पार्श्विस्तस्मिन्मन्त्रास्त्ये परिजनपरिवृद्धे प्रौढप्रेमणि निगूढ-
मन्त्रे मन्त्रिणि तृणीकृतस्त्रैणविषयरसे सौराज्यरागजनने जननीयमाने
जनस्थ, सर्वोपधाशुद्धबुद्धौ निधाय राज्यप्राज्यचिन्ताभारमभिनय-
यौवनारम्भरमणीये रम्यरमणीजननयनहृदयप्रिये प्रियङ्गुभासि जित-
मदनमदस्यपदसितसुरासुरसौभाग्ययशसि विस्मापितसमस्तजन-
मनसि लसल्लायण्यपुञ्जपराजितसकलसमुद्राम्भसि कान्तिकटाक्षित-
चन्द्रमसि वयसि धर्तमानो मानितमानिनीजनयौवनसर्पस्यः स्वयम-
नयतं सकलसंसारसुखसन्वोदमम्यभूत् ॥

अथेति ॥ अथानन्तरमेवं वर्णनीयेऽमात्ये राज्यभारं निवेरयैव वर्णनीये वयसि
धर्तमानो राजा सुखातिशयं सिपेवे ॥

वह (मन्त्री) परिजन समूह से दूर था । प्रगाढ़ प्रेमी था । मन्त्रो (राज-
कीय गुप्त मन्त्रणाओं) को गुप्त रखता था । स्त्री सम्बन्धी विषय रस को तृण
ममजना था । सुन्दर राज्य निर्माण में ही राग रखता था । प्रजाजन को जननी
की तरह प्रतीत होता था । समस्त उपधाओं (कपट आदि दुष्टताओं) से
रहित था । अतः उस पर राज्य विषयक विशिष्ट चिन्ता का भार सौंपकर वह
राजा नवीन यौवन प्राप्त करने के कारण रमणीय, मनोहर रमणीयो के नेत्रों
और हृदयों को प्रिय, प्रियङ्गु पुष्प की तरह सुकान्त, कामदेव की कान्ति को
भी जीतने वाले, देवों और दानवों के सौन्दर्य यक्ष को तिरस्कृत कर देने वाले,

अपने उनहले हुए सावप्य (सौन्दर्य) पुञ्ज से सम्पूर्ण समुद्रों के जल को भी परास्त कर देने वाले, अपनी कान्ति से चन्द्रमा को भी तन्त्रित कर देने वाले वय (अवस्था) में आकर भागिनी नायिकाओं के भौवन की ही सर्वस्व मानता हुआ स्वयं निरन्तर नसार के समस्त सुख समूह का अनुभव करने लगा ॥

[ननस्तावप्यपुञ्ज — समुद्र पक्ष में सावप्य का अर्थ क्षारत्व है और सौन्दर्यावस्था के पक्ष में सौन्दर्य है । मकस समुद्रजल क्षारत्व रूप सावप्य से सम्पन्न है और सौन्दर्यावस्था सौन्दर्योत्पन्नरूपी सावप्य से सम्पन्न है । लेकिन उनहना हुआ सौन्दर्यावस्था सावप्य समुद्र जल सावप्य को परास्त कर दिया था ।] ॥

तथाहि ।

कदाचिदनुत्पन्नविषमरणो गच्छ इवाहितकारी हरिवाहन-
विलासमकोरत् ॥

कदाचिदिति ॥ समजायविषमयुद्धभीरुदिवानामपकारी । हरिश्चरस्य वाहनं बाह्यालीप्रवाहनम् । स एव विलासः । पदे विषमरणमयम् । अहिः सर्पः । हरे-
विष्णोर्बाहनविलासो यानलीला ॥

गच्छ जैसे अनुत्पन्न :—विषमरण (विष के कारण मरण की उत्पत्ति न होने देने वाले) हैं जैसे ही नन भी अनुत्पन्न + विषम + रण (कभी भी कठिन लड़ाई की स्थिति उत्पन्न होने देने वाले नहीं) थे । गच्छ जैसे अहि + राप + कारी (सर्पों को राप दण्डन करने वाले) हैं जैसे नन भी अहित + अपकारी (अहित करने वालों को कष्ट देनेवाले) थे । गच्छ जैसे हरिवाहन + विलास (विष्णु के वाहन सोला) को प्राप्त किये हैं जैसे नन भी हरिवाहनविलास (अथ वाहन विलास) प्राप्त किये थे ॥

कदाचिच्चन्द्रमौलिरिव मदनवाणासनातिमुक्तशरसंछादितायां
पर्यंतमुवि विजहार ॥

कदाचिदिति ॥ मदनो वाणोऽएनोऽतिमुक्तक शरश्च मुक्त एमिवृचैः सम्पन्नद्वि-
तायां पर्वतशोण्याम् । पदे मदनः कामस्तस्य वाणासनं धनुस्तथदिनैः शरैर्वाजै-
र्विधुरायां पर्वतमुवि । पर्यंतमुवि स्मेति पार्वत्याम् ॥

चन्द्रमौलि (अकर) जैसे मदन (कामदेव) के वाणासन (धनुष) से छूटे हुए वाणों से ढकी हुई पर्वत भूमि पर भ्रमण किये जैसे जल भी ऐसी पर्वतीय भूमि पर भ्रमण किये जो मदन, वाण, असन, अविमुक्तक तथा शर (मुञ्ज) आदि पदों से आच्छादित थी ॥

[भगवान् शंकर को पार्वती से सम्बद्ध करने के लिये हिमालय के एकदेश में कामदेव वाण छोड़ा था । पार्वती से परिणय होने के बाद वही कामवाण वर्षा की भूमि शिवजी की विहार भूमि बनी ।]

कदाचिदच्युत इव शिशिरकमलाकरावगाहनोत्पन्नपुलककोरकित-
स्तनुरन्तर्भोगभाक्सुखमन्वतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ कमलाजामाकरो घनम् । पक्षे कमलायाः श्रियः करः पाणिः ।
अन्तर्भोगोऽनेकविलासः शोषाद्दिवपुष्पम् ॥

विष्णु जैसे शिशिर ऋतु में कमला + कर (लक्ष्मी के हाथों) का आलिङ्गन करने से रोमाञ्चित होकर असह्य भोग (फणामो) की धारण करने वाले शेषनाग के शरीर पर मुख पूर्वक विधाम करते हैं, वैसे ही नल भी कभी शिशिर काल में कमलाकर (कमल सरोवर में अवगाहन (स्नान) करने के कारण शरीर में रोमाञ्च आदि का अनुभव करता हुआ असह्य सुखों का अनुभव करता था ॥

कदाचन नलिनयोनिरिव राजसभावस्थितः प्रजाव्यापारम-
चिन्तयत् ॥

कदाचनेति ॥ राज्ञः सभा । पक्षे रक्ता गुणेन निर्बुद्धे भावे स्थितः ॥ व्यापारो
व्यवहारो निर्माणं च ॥

जैसे नलिनयोनि (कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्मा) राजस + भाव (रजोगुण सम्बन्धी भाव) से पूर्ण होकर प्रजा सृष्टि के व्यापार की चिन्ता करता है वैसे नल भी राज + सभा (राजगोष्ठी) में अवस्थित होकर प्रजा कार्य के विषय में विचार करता था ॥

कदाचिन्मयूर इव कान्तोन्नमत्पयोधरमण्डलिविलासेन हर्षम-
भजत् ॥

कदाचिदिति ॥ कान्ताङ्गना काव्या च । पयोधरः स्तनो मेघश्च । विलास उप-
भोगः स्फुरणं च ॥

जैसे मयूर (मोर) कान्त (सुन्दर) उन्नमत्पयोधर (उमड़ते हुए बादलों के समय में मण्डलिविलास (गोलाकार होकर नृत्य) करता हुआ आनन्द का अनुभव करता है वैसे वह भी कभी कान्ता (रमणी) के उन्नमत्पयोधर (उन्नत स्तनो) के साथ मण्डलिविलास (आलिङ्गन) कर सुख का अनुभव करता था ॥

[मयूर उमड़ते हुए बादलों के मण्डलि विलास (धक्कर लगाने) के समय पूर्ण प्रसन्न हो जाते हैं । मण्डलिविलास मेघ भी करता है । वर्षा के

दिनों में इधर उधर चक्कर लगाता है। मरुत भी मँडलाकार होकर नृत्य विलास करता है। मरुत का अपना विलास भी उसक तब आनन्दकर है और मय का विलास भी उसक तब आनन्दकर है] ॥

कदाचिन्नक्षत्रादिरिवाश्विन्या सेनया समन्वितौ मृगानुसारी बहुशपवनमार्गं यन्नाम ॥

कदाचिदिति ॥ अथा सन्यस्या तथा सेनया युक्तं तथा मृगानुसारी बहुशपवनमार्गं यन्नाम ॥ एते अश्विनीमृगौ नक्षत्रे । इनेन रविगः सह सेनयेत्यश्विनीविशेषः पदम् । बहुश इति मिश्रम् । पवनमार्गाद्यौ । अत्र प्रकाराश्राग्विषयवर्णीय उपपत्तानीयो वा । शप्यपदे तु प्रकार एव । तदेव रूपमेवेऽपि श्रुतिमाग्याश्च दोष इति कविसमयः । मया च अष्टदशमहते श्रीवृष्टिवाचरित महाकाव्ये—'पुष्पादपामिह सशधिगमे समृद्धया पुष्पादपः फलमराध विनम्रमावहम् । पुष्पादपामिह इत्यतो मुनिवासुजन्मा पुष्पादपामि मनु माषु मधुनतौघा, अस्वार्थ—मया खलानाम् । अधिगमे प्राप्ती सायाम् । पुष्पादपमुमत् । फलमराधलातिशयात् च या समृद्धिस्तया । पक्ष्मादपराध विनम्रमावहम् । समृद्धौ हि नम्रता स्यात् । खलाधिगमे पुष्पादपला हेतुः । तानि च समृद्धे । मया च नम्राशया इति । तथा पुष्पागामनक्षत्रं यत्र । तथाऽपि पापरहितम् । शामन जन्म तथा मुनयो दधति । तद्वदेवेऽपि मनु-नतौघा मुज्जन्म धारयन्त सन्ता मनु मकरन्दमपु पिबन्ति स्म । पादिरद्विभि पादेपु मूलेषु वा पतन्मयीधगमितयेन मापुत्रासुर्योक्तिः । अत्रापुष्पादपः प्रकार एव । युक्तादपस्तु विमर्जनीयापमानीयान्यतर एव न तु प्रकारः । परश्रुतिमाग्याश्च दोषः । एवमेव विमर्जनीयविद्वान्मूलीयपकारेष्वपि तथा 'ये सहजनिष्कलङ्कावरा अपि' भामि निष्कलङ्कमात् । मुचिय काष्ठादशकधराधिक सपरि तेऽनुवत । अस्वार्थ—सहजोऽदृष्टिर्मा निष्कलङ्को निर्दोष आचारो यथा ठ मुचिय काष्ठादशक दिक्कलङ्कधरे पर्वतैरधिकमशनुवत स्वाप्नुवन्ति । खीणामभावो निधिः । कृष्ट द्रव्य । तस्य गमा अतः ममाहारद्वन्द्वः । पतन निवन्निपत्यवाकिः । अपिविराधः । यथा किल सहजस्वर्गाया लङ्काया चारो गतिः । ते कथं त्रिष्टुल्लगमनामावेन भामि । दशकम्बरो रावण काष्ठा दिशः । अत्र स्वर्गार्थनिष्कलङ्क पकार एव निष्कलङ्कान् विद्वान्मूलीयविमर्गो इति बोध्यम् ॥

असं नयत्रा का मरुत सन (स + इन् = जन (मृत् संहित या मृत् मिन्य) अश्विनी नयत्र स अश्विनी होकर मृगारि नयत्र का अनुगमन करता हुआ मृगानुसारी पवन मार्ग (आकाश) में भ्रमण करता है वैसे वन भी वनो वाश्विनी सना (अथ वदन् सना) स मुक्त होकर (आखेट के प्रसङ्ग) में मृगा का पीछा करता हुआ बहुशपवन (अश्विनी वाता स मुक्त वन) में परिभ्रमण करता था ॥

रदाचिदाञ्जनेय इवाक्षयिनोदमन्यतिष्ठत् ॥

कदाचिदिति ॥ अथै एताकै विनोद औदात्तम् । एते अक्षय रावणे । विनोद पदम् ॥

जैसे आज्ञनेय (अञ्जनि पुत्र हनुमान्) अक्ष (रावण पुत्र अक्षय कुमार) का विनोद (वध) किये जैसे नर भी कभी अक्ष (चूत श्रीका) ने विनोद करता था ॥

कदाचिद्वानरेश्वर इव सुग्रीवो वैदेहीति प्रयाणस्यालघुकाकुस्थ-
स्थार्थिनः प्रार्थना क्रियतां सफलेति वानरपुङ्गवानादिदेश ॥

कदाचिदिति ॥ जोभना ग्रीवा यस्य । वै स्फुटार्थे । मह्यं देहीति प्रमाणस्य । तथा
आ समन्ताच्चक्षुरां काको मिश्रकण्ठश्चनौ तिष्ठतीत्यलघुकाकुस्थस्तस्य पाद्व्या-
वसास्वरभेदवतोऽर्थिनो याचकस्य प्रार्थना सफला क्रियतामिदमुना । प्रकारेण नर-
पुङ्गवाश्चरभ्रेष्ठानादिहवान् । वा समुच्छये । पक्षे वैदेही सीतेति प्रलपतोऽलघोगुरो
रामस्य काकुस्थस्य समयोजनस्य प्रार्थना सफला क्रियतामिति वानरपुङ्गवान्कपीशः
सुग्रीवो नियुक्तवान् ॥

जैसे वानरेश्वर (बन्दरो के स्वामी) सुग्रीव “वैदेही (सीता सीता) वह
वर प्रलाप (क्रन्दन) करते हुए अतः काकुस्थ (विशाल महत्त्व वाले)
भगवान् राम रूप धर्मी (याचक) की प्रार्थना सफल करो” यह आज्ञा वानर
श्रेष्ठो को दे रहे थे उसी तरह सुग्रीव (सुन्दर गर्दन वाला) नरेश्वर (नल) भी
“वै + देहि (निश्चित रूप से दो) यह आज्ञा (अत्यन्त गम्भीरता पूर्ण) काकु-
(ध्वनि) से बोलने वाले धर्मी (याचको) की प्रार्थना को सफल करो” यह
आज्ञा अपने नरपुङ्गवो (वरिष्ठ वर्मचारियों) को देता था ॥

[वानर राज सुग्रीवपक्ष में वानरेश्वर और वानर पुङ्गव ज्यों के स्थो हैं
किन्तु नल पक्ष में वा हटा दिया गया है । अतः नरेश्वर और नरपुङ्गव अव-
शिष्ट रह जाते हैं ।] ॥

कदाचिन्मकरकेतन इव सुमनसो मार्गणान् विधाय स्वगुणं
कर्णपूरीचकार ॥

कदाचिदिति ॥ मार्गणान् याचकान् । इष्टार्थसंप्रदानेन सौमनस्ययुक्तान् विधाय स्व-
गुणं त्यागार्थं जगतोऽपि कर्णो पूर्यन्ते ध्वनेनेति कर्णपूरः । यत्र कर्णपूरीचकार ।
पक्षे सुमनसः पुष्पाणि । मार्गणा वाणा । गुणो जवा । कर्णपूरः कर्णाभ्यस्तकर्णम् ॥

जैसे मकरकेतन (कामदेव) सुमनस (फूलो) को मार्गण (याण) बनाकर
अपने गुण (धनुष की प्रत्यक्षा) को वानो तत्र पीच कर छोड़ता है जैसे नल
भी मार्गण (याचको) को सुमनस (सन्तुष्ट चित्त वाला) बनाकर अपने (त्याग
रूप) गुण से (ज्वन् के) कान को भर दिया ॥

[कामदेव पक्ष में “सुमनसो मार्गणान् विधाय” यह अन्वय करना है और
नल पक्ष में ‘मार्गणान् सुमनसो विधाय’ यह अन्वय करना है । अर्थात् कामदेव

पक्ष में "दूनों की" बाण दनाकर अर्थ है और नच रक्ष में "याचकों की सन्तुष्ट बना कर" मह अर्थ है] ॥

कदाचिदम्भोनिधिरिवोच्चेस्तननाभिरम्याः, कृतानिमेपतयन-
विभ्रमाः, सकन्दर्पाः, सिपेवे विलासिलासिनीः ॥

कराचिदिति ॥ उच्चैः स्तनाभ्यां भाग्या च रम्या । तथा निर्निमेपनेत्रलीला-
सकामाः । विलासां वारके विलसन्ति भोगापोपतिष्ठन्त इत्येवंलीला वारली । सिपेवे
अम्भोनिधिरिवोच्चेऽम्भोवृद्धी । कीदृशीस्ताः । उच्चैः स्तननेन शब्देनाभिरम्याः ।
तथा कृतानिमेपानां मस्यानां मयनं प्रापणं यैस्तयोक्ता विविधा भ्रमा आवर्ता
यामु । तथा क जलं तस्य दर्पेण मोक्षेण सह । इपेर्मोचनार्थवात् । तथा विलसन्म-
भोगाम् ॥

समुद्र जैसे उच्चैः स्तन (अग्रिक गर्जन) के कारण अभिरम्य (रमणीय)
अनिमेप (मछलियों) के नयनों एवं विगिष्ट दन्त के भ्रमों (तहरो) वाली, के
(जल) के दर्प (स्वाग) रूपकार्य में समन्वित बेना (किनारा) रूप विलासिनी
(नायिका) का मेहन करता है उसी तरह सभी नच भी उच्चैः स्तन (उन्नत
स्तन) एवं सुन्दर नाभि के कारण रम्य निर्निमेप भाँवों के विभ्रम (विज्ञास)
की उत्पन्न करने वाली, सकन्दरं (नकाम) बेला (उचित समय) पर बिनासिनी
(नायिकाओं) का उपभोग करता था ।

[अर्थात् समुद्र जैसे अग्रिक गर्जन के कारण रमणीय मछलियों के नयनों एवं
विगिष्ट दन्त की तहरो वाली, जलस्वाग रूप कार्य में समन्वित तटी रूप
विलासिनी का मेहन करता है वैसे नच भी उन्नत स्तन एवं नाभि के कारण
रम्य निर्निमेप भाँवों के विज्ञास की व्यक्त करने वाली नकाम बेला
बिनासिनी (वारान्नाजों) का उपभोग करता था ।] ॥

कदाचिदशरथ इवायोध्यायां पुरि स्थितः सुमित्रोपेतो रममाण-
रामभरतप्रेक्षणैर्धनमाहादमन्वभूत् ॥

प्रथमस्य सकलजीवलोकसुखसन्तानमनुभवतो यान्ति दिनामि ॥

कदाचिदिति ॥ न चोद्धु शक्याऽयोध्या सञ्जा च । तस्या पुरि । सुमित्रैरुपेत-
सुमित्रया कलत्रेण । विलासन्त्यो रामा विलासिन्यो यत्र तेन भरतसङ्गीतेन
विन्नीड्यरामभरतयोर्वलोकनेन च हार्दं नलो दशरथस्य भेजे ॥

जैसे रावा दशरथ सुमित्रा नामक पत्नी के साथ अयोध्या नगरी में स्थित
हाकर खेजते हुए राम और भरत को देखकर कुछ क्षण तक आनन्द का
अनुभव करते थे उसी तरह नच भी अपनी अयोध्या (अविज्ञेय) नगरी में
सुमित्रोपेत (सुन्दर मित्रों से समन्वित) होकर विलासपूर्ण रामाओं (नायिकाओं)

के भरत (शास्त्रीय सगीत) को सुनकर एक क्षण आह्लाद का अनुभव करता था ॥ इस तरह सम्पूर्ण सप्ताह की सुख परम्परा के अनुभवों के साथ इससे दिन बीत रहे थे ॥

[मानो वर्षा रूप नायिका महाराज नल को देखने के लिये आ रही थी । इस पूर्णानुच्छेद का अर्थ वर्षा और नायिका दोनों पक्षों में करना होगा ।]

अथ कदाचिदुधमत्पयोधरान्तरपतद्द्वारावलीविराजिताः, कमलदलकान्तनयनाः, सुरचापचक्रवक्रमुखाः, विद्युन्मणिमेखलालङ्कारधारिण्यः, शिञ्जानामुक्कलहंसकाः, प्रौढरुरेणुसञ्चारहारिण्यः, कम्पकन्धराः, तिरस्कृतशयाङ्गकान्तिकलापोद्धचमुपमण्डलाः सकलजगज्जेगीयमानगुणमिमनुपमरुपलायण्यराशिराजितं राजानमवलोकयितुमिष तरन्ति स्म वर्षाः ॥

अथेति ॥ अन्तर कस्मिन्नपि समये नृपमवेचितुं वर्षां अवातरन् । वर्षां शब्द-रातस्त्रीत्वेन वर्षाणां सापत्नीरथमव्यवसितम् । ततश्च पयोधरा मेघाः स्तनाश्च । पतद्वारावली पतन्ती धाराभ्रेणी चलन्ती हारावली च । यद्वा पयोधरयो स्तनयोरन्तर्मध्येऽपतन्तीऽतिसंहतावाद्यविशक्तो हारा वासाम् । तथा वलीभिरुदरे लेखाभिरविराजिताः । कमलदलानां कान्तमिदं नयनमतिवाहनं यासाम् । वर्षाणां छति-वाहने कमलानामुल्लासः । पथे कमलदलकान्तनेत्राः । इन्द्रधनुमक्रमेण वक्रे भ्रूवौ यासाम् । पथे सुरचापचक्रवक्रमुखाः । विद्युदेव मणिमेखला ता तथा लमयथं कस्य जलस्यार वेग धारयन्ति । यद्वा करस्य राज्ञे देवाशस्य धारिण्यः । वर्षा हि सस्यादिसाधकयाः करस्यापि साधनम् । पथे विद्योतमानमणिकाञ्चीभूषणधारिण्यः । शिञ्जाना गर्जनपरतथा मुक्ताः मानसं प्रणि प्रस्थापितहंसका याभिः । यद्वा मुक्त हंसानि कानि जलानि यासु । तत्समये हंसानां मानसे शमनात् । पथे शिञ्जाने शब्दायमाने आमुक्ते नन्दे इसके चरणाभरणे यासाम् । प्रकर्षणोद कं जल तेन राजसंचाररोधिका । पथे प्रगल्भगजगमनमोक्षाः । कजल धरन्तीति कथरा मेघारते कक्षा रम्या यासु । पथे कथरा प्रीया ॥ छादितशशाङ्ककान्तयः । तथा काय पानी-पाय लापाः । कलापाः । कुटुम्बिनीजननीयमानरासकाः । तैरुचमुत्वा मेघालोक-नायोन्मुखा मण्डला देशा यासु । पश्चात्कर्मधारय पथे मिजितेन्दुदीप्यतिशयमुच्च-सुहृऽष्टमुन्नतकपोल वा सुखचिम्ब यासाम् ॥

वर्षापक्ष — उमड़ते हुए बादलों के मध्य से गिरती हुई धारा के समुह से थलद्वृत्त कर्मन दलों के लिये वा-त + नयन (प्रिय आगमन वाले), इन्द्र के धनुर्मण्डल रूप टेढ़ी मोड़ी वाली, विद्युद्रूप मणिनिर्मित मेखलाश्लङ्कार (कटि-भूषण) की धारण की हुई, शिञ्जान (गर्जन) से बलहंस (सुन्दर हंस) की मानमरोवर की ओर आमुक्त (छोड़ देने) वाली, प्रौढ (धारा प्रवाह) के (जल) के धारण रेणु (घूमि) के संचार (उड़ान) को नष्ट कर देने वाली कम्प कन्धर (सुन्दर जल की धारण करने वाले मेघों) वाली शशाङ्क (चन्द्रमा) की कान्ति

को तिरस्कृत (आच्छादित) कर देने वाली, तथा क (जल) के साप (आवाज गर्जन) से लोगों के मुख मण्डल को ऊपर उठा देने वाली वर्षा पूरे सत्कार के द्वारा वर्षा पुनः वाले अद्वितीय दृश्य के सौन्दर्य राशि से सुगोभित उस राजा को देखने ही के लिए मानो उत्तर रही थी ।

नायिका पक्ष — उन्नत पयोधर (स्तनों) के बीच लोटती हुई हारपट्टिक से मुगोभित, कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, विद्युत् सदृश मणिमय नटि भूषण धारण करन वाली, जिज्ञान (मधुर शब्द करन हुए) हसक (नूपुर) की चरणी में आमुक्त (बन्धन) करन वाली, प्रौढ वरेणु (बल्लट्ट हृषिनी) के सञ्चार (गमन) को भी (अपने समन से) न्यवहृत कर देने वाली सुन्दर बन्धी वाली, शशाङ्क (चन्द्रमा) की कान्ति को अपनी आल्लासकता से तिरस्कृत कर देने वाली, उन्नत मुखमण्डल को धारण की हुई नायिका ।

वर्षापक्ष — पतञ्जारावली—पतञ्ज + धारावली—धारा पङ्क्ति जिनमे गिर रही हैं । कमलकान्तनयना — यहाँ नयन शब्द आगमन अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । वर्षात् कमलों को कान्त (प्रिय) है नयन (आगमन) जिनका । वर्षा का आगमन कमलों को बहुत प्रिय है । सुरसाप — इन्द्र धनुष रूप टेंटी भौंहों वाली । वर्षात् वर्षा रूप नायिका की भौंह इन्द्र धनुष ही है । विद्युत् — विजली ही उसकी मणिमय चरणी है । जिज्ञान—बादल जब गरजने मगते हैं तो हंसों को समस्त में बा जाता है कि अब उन्हें अपना स्थान छोड़ कर मानसरोवर चला जाना चाहिये । वर्षा के दिनों में हंस मानसरोवर चले जाते हैं । प्रौढ + क + रेणु + सञ्चार + हारिणी- प्रौढ जल से धूलि सञ्चार को नष्ट कर देने वाली, जब वर्षा पर्याप्त हो जाती है तो धूलि उड़ना बन्द हो जाता है । कधर — क का अर्थ जल है । अतः कधराद्यन्त्र अन्धकार का अर्थ में प्रयुक्त होता है । तिरस्कृत—बादल चन्द्रमा की किरणों को रोक लेते हैं । चन्द्रमा उदित रहने हैं फिर बादलों के रहने पर अशेष रहता है । उच्च मुख मण्डला का कलापान्त पूर्व पद से कर्मधारय समाप्त हुआ है । बादल आकाश में एक अनियमित पदार्थ है । अनियमित पदार्थ हठात् आदमी की कौतूहल में डाल देता है । बादलों को देखने के कौतूहल से लोग गिर ऊपर उठा लेते हैं ।

नायिका पक्ष — वर्षा के प्रायः सभी विशेषण नायिका पक्ष में लगते हैं । पतञ्ज + धारावली—स्तनों के बीच हार पङ्क्ति लोट रही है । कमलदनकान्त-नयना — कमल दल की तरह सुन्दर नेत्रों वाली । टेंटी भौंहें इन्द्रधनुष की तरह हैं । विद्युत् सदृश मणिमय काशी धारण की हैं । जिज्ञान—ध्वनि करते हुए सुन्दर हंस को (नूपुरों) की बाँधी हैं । उन्नत मुख मण्डल वाली हैं ।]

यत्र च ।

आकर्ण्य स्मरयौवराज्यपटङ्गं जीमूतनूतनध्वनि
नृत्यत्केकिङ्कुरुम्बकस्य दधतं मन्द्रां मृदङ्गक्रियाम् ।
उन्मीलघ्ननीलदलकन्दन्याजेन रोमाञ्जिता
हर्षणेव समुच्छ्रिता वसुमती दधे शिलीघ्रध्वजान् ॥ ४० ॥

आकर्ण्येति ॥ युवा चासौ राजा चेति युवराजस्तस्य भावो यौवराज्यम् । कामस्य
सहगराज्यपटङ्गोपमं नृत्यत्केकिर्ना च मृदङ्गावधि दधान घनगर्जित ध्रुवा मुदेव
त्रिकसरकन्दलङ्गुलेन पुलकित मूरभूत् । शिलीघ्रध्वजानधारयत् ॥ ४० ॥

और उसी वर्षा समय मे—

काम के यौवराज्याभिषेक के अवसर पर नाचते हुए मयूर परिवार की
गम्भीर ध्वनि रूप मृदङ्गध्वनि से समन्वित जीमूत (बादल) के नवीन ध्वनि
रूप पटङ्ग (नगाड़े) की सुन कर अङ्कुरित होते हुए नवीन एव नीले कन्दली
(अङ्कुरो) के बहाने रोमाञ्च व्यक्त करती हुई वसुमती (पृथ्वी) मानो हर्ष
से शिलीघ्र-ध्वजों (गोबरछत्ते) को धारण कर रही थी ।

[वर्षा काल मे काम युवराज बन रहा है । मयूरो की ध्वनि मृदङ्ग का
काम दे रही है । बादल का गर्जन नगाड़े का कार्य पूर्ण कर रहा है । नवीन
अङ्कुरो के बहाने वसुमती रोमाञ्च व्यक्त कर रही है और प्रसन्नता के मारे
शिलीघ्रध्वजों को धारण कर रही है ॥ ४० ॥]

अपि च ।

पर्णैः कर्णपुटायितैर्नवरसप्राग्भारविस्फारितैः
शृण्वन्ती मधुरं घुमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितम् ।
शाग्नाग्रप्रथमानसौरभभरभ्रान्ताल्लिपालिध्वजा-
स्तोपेणेव घहन्ति गुष्पपुलकं धाराकदम्बद्रुमाः ॥ ४१ ॥

पर्णैरिति ॥ वसन्ते शुष्प्यन्ति ते धूलीकदम्बा वर्षासु च धाराकदम्बा ॥ शालामे-
मिलन्तः औरभभराद्भ्रान्ता उपर्युपर्वन्तश्च तेऽलवश्च त एव पालिध्वजाः प्रविद्ध-
चिह्नानि येषां ते धाराकदम्बद्रुमाः शुष्पमेव पुलकं मदेन घहन्ति ॥ हर्षहेतुर्गर्जन-
ध्वनमेव । रसो जलं रागश्च । अन्योऽपि घुमण्डलमिलन्मेघावलीगर्जितम् । शरदं
ध्रुवैवविधो भवति 'ग्रन्थवन्धन' इति यौगधिकाहिरुचिपते निचि प्रधितुं श्रील-
म्बेवामिति चानति प्रथमाना । यत्कविरहस्ये 'पाथां ग्रन्थवति प्रथमविरतं श्लोकाश्च
श्लोकोत्तरागार्धं प्रापयति स्फुटार्थललितं यो नाटकं ग्रन्थति । ग्रन्थाति मुतिशास्त्रपो-
दिवरणं ग्रन्थाननेकोऽथः स्वच्छं यस्य मनः स्वमात्रसरलं न ग्रन्थते कृषिचित्' इति ।
अस्मादामनेपद्मपि । तथा च । 'बहुनि जलमिव दिनहि रागानिधमिधमुद्ग्रथते
स्रजो विचित्रा' । सुसलमिधमियं च पाठकाळे सुदुरनुयाति कलेन हृद्कृतेन'
इति ॥ ४१ ॥

और—नवीन रस के उत्तम भार से प्रसृष्टित पत्र रूप वानो से लावाग मन्दन से मिलती हुई नेत्र पङ्क्ति के मधुर वर्णन को सुनने हुए, हासियों के वप्रभाग ने सलग्न सौरभ (पराग) पूर्ण (छूर्ण) ने आनन्द विभोर होकर भनभनाते हुए प्रमरी की पङ्क्ति रूप ध्वजा वाले पङ्क्ति बद्ध वदम्ब के पंड मानो प्रसन्नता के कारण पुष्प रूप रोमाञ्च को धारण कर रहे हैं ।

[दर्रा के दिनों में वदम्ब के पत्रे सरन हो गये हैं । बाताव के मधुर वर्णन को वे अपने पत्र रूप वानो से सुनने हैं । शाखाओं के वप्रभाग में पराग पूर्ण छूर्ण पर मौरे महरा रहे हैं । उन प्रमरी की पङ्क्ति ध्वजे की तरह प्रतीत होती है । वदम्ब के छूर्ण के प्रति अवि की धारणा है कि वे पुष्प रूप रोमाञ्च हैं जो मानो प्रसन्नता के कारण प्रकट हुए हैं ॥ ४१ ॥]

अथ क्रमेण ।

नीरं नीरजनिर्मुक्तं नीरजस्कं मुचललम् ।

आतं आतिलतापुष्पगन्धान्धनधुपं वनम् ॥ ४२ ॥

नीरनिवि ॥ नीरं ललमममोजमुक्तं मूलं निपत्तु वन च आतीपुष्पसीरमाञ्च-
नृज्जातम् ॥ ४१ ॥

नीर (जल) नीरज निर्मुक्त (वनतो मे निर्मुक्त) हैं । भूमण्डल नीरजस्क (मूल रहित) हो गया है । आतिलता के छूर्णों की गन्ध से नीर अञ्च (मन्त्र) हो गये हैं । इन तरह की शोभा से वन सग्न हो गया है ॥ ४२ ॥

अपिच ।

धुनकदम्बकदम्बनिष्पतश्रवपरागपरागममन्यराः ।

इतुपारतुषा रतिरागिणां प्रियतमा मरुतो मरुतो वजुः ॥ ४३ ॥

पुत्रेति ॥ कम्पितकदम्बद्रुमममृहाद्रि सरन् योज्यौ नव परागस्ताम्रामेन मग्धरा मग्धः ॥ तथा ऊदमीकरकणाः तथा रतिरागोऽस्ति येषां तेषामतिद्विषिता मरुतो बाता मरो पर्वताद्रान्ति स्म ॥ परागमेति परापूर्वः पर वजुष्ट वीर्यमो वा ॥ ४३ ॥

धुत (हिलने हुए) वदम्ब वृक्ष के वदम्ब (पङ्क्ति) ने निकलते हुए नवीन पराग के परागम (उत्तम आगमन) के कारण मग्धर (मन्द) तुषार (गीत) के दुग् (वर्णों) को निरे हुए रतिरागियों (कामुकों) के अत्यन्त प्रिय मरुतामक पर्वत से (मरुतः) मरु (पवन) बह रहा था ॥ ४३ ॥

ततश्च । तिरस्कृततरणित्विषि, विगलद्वारिविषुषि, शान्तचातक-
रुषि, निर्वाणवारणवपुषि, मानिनी मात्रप्रदप्रन्यमुषि, जमितजवासर-
शुषि, विधपवधूविद्विषि, चर्चितमण्डूकद्विषि, मुद्रितचन्द्रमसि, विद्राण-
पङ्कजसरसि, स्वाधीनप्रियप्रेयसि, प्रोषितकलहंसवयसि, तदनक्षत्र-

मण्डलमहसि, मेचकितममसि, निष्पतघ्नीपरजसि, स्फुटकुटजरजःपुञ्ज-
 पिञ्जरिताष्टदिग्भासि, भासुरसुरचापचक्रमृति, मयूरमदकृति महिय-
 शोपहृति, विस्तरत्सरिति, विद्योत्तमानविद्युति, वदन्मन्दमेघद्वूरमरुति,
 हृष्यत्कृपाणयोपिति, पुण्यत्केतकीगन्धपानमत्तमधुलुति, प्रोद्भुतभूरुहि,
 दरिद्रनिद्राद्रुहि, सगर्वगोदुहि, कदम्बस्तम्बालम्बिमधुलिहि, मुदितमद-
 नाट्टहासायमानघननादमुचि, पच्यमानजम्बूफलश्यामलितनवनान्तर-
 रुचि, रचितपान्यसार्थशुचि, ध्रुवमाणमदमधुरमयूरवाचि, विनिद्र-
 कोशातकोशालिनि, यूधिकाजालिनि, नवमालिकामालिनि, कन्दलभाजि,
 पच्यमानजम्बूतद्वयनराजिभ्राजि, मिश्राक्षणक्षपितपरिधाजि शान्त-
 सारङ्गरुजि, मीढनिर्माणाकुलवलिभुजि, साम्नेन्द्रगोपयुजि, शच्योत्त-
 समालघारागृहसहस्रि, श्यामायमानदशदिशि, दिवापि ध्रुवमाणरजनि-
 शङ्काकुलचक्रवाकचक्रकुशि, शकटसञ्चाररुधि, पल्लवितवीरुधि, विधा-
 म्भतजिष्णुक्षमापालयुधि, क्षीणोक्षभुधि, क्षीरसमुद्रनिद्राणयाणयाहुच्छिदि,
 सिन्धुरोधोभिदि, दवदहननुदि, विरहिमनस्तुदि, जनितजनमुदि,
 तापिच्छच्छायानुच्छेदिनि, छन्नकुटीमध्यवध्यमानवाजिनि, विकसित-
 पकुलवनविराजिनि, सीरसीमन्तितग्रामसीमनि, विजयमानमनोजन्मनि
 जाते जगज्जोषिनि, जीमूतसमये कदाचिद्भ्यसि दिवसे भृगयावन-
 पालकः प्रविश्य राजानं विहापयामास ॥

तरवेति ॥ तिरस्कृता रविस्त्रियो येन । इन्द्रगोपा वर्षासु जाता शुद्रजन्तव-
 श्चयोयत्तरत्तमालानां सवन्धि पदारागृहं तस्य सहस्रि ॥ चोरोद्धौ निद्राय-
 मानो धागासुरबाहुषिद्धिष्णुयन्त्र ॥ सीमन्त इव सीमन्तः । तत् करोतिष्यन्तात्
 के तारकादिवादितचि वा रूपम् ॥ तस्मिन्निष्ठभूते मेघसमय आखेटकारण्यपालको
 नृप ध्यशापयत् ॥

(प्रस्तुत अनुच्छेद मे वर्षा काल का वर्णन है)—

तरणि (सूर्य) की कान्ति को तिरस्कृत (आच्छादित) करने वाले,
 वारि (जल) के विप्रुप् (वणो) को गिराने वाले, चातक की व्यास को
 शान्त करने वाले, निर्वाण (आकाश) मे वारण (हाथी) का रूप प्रदर्शित
 करने वाले, मानिनी स्त्रियो के मान ग्रहण रूप गाठ को चुरा लेने वाले या
 खोल देने वाले, उपजे हुए जवास के पोषो को मुखा देने वाले, पनिहीन वधुओ
 का शत्रु, मण्डूक (मेढक) के आनन्द को बढ़ा देने वाले, चन्द्रमा को मुद्रित
 (आच्छादित) कर देने वाले, कमल बनो को विप्राण (विकसित) कर देने
 वाले, स्वाधीनपतिता स्त्रियो को अत्यन्त प्रिय प्रतीत होने वाले, बलहस
 पक्षी को (मानसरोवर के लिये) प्रस्थित कर देने वाले, नक्षत्रमण्डल

(तारक समूह) के मह (तेज) को नष्ट कर देने वाले, आकाश को अन्ध-काराच्छन्न कर देने वाले, वदम्ब के पराग का आविष्ट करने वाले, खिले हुए कुटज पुष्प के पराग राशि की पिञ्जरता (पीलापन) से आठों दिशाओं को घिरा देने वाले, भासुर (चमकीले) इन्द्र धनुष को धारण करने वाले, मयूरो को मतवाला बना देने वाले, महिष (भैंसों) की दुर्बलता (शोष) का हरण करने वाले, सरित् (नदियों) का विस्तार करने वाले, चमकती हुई विजलियों वाले, मन्द-मन्द वहनी हुई हवा से सम्पृक्त, किसानों की मृत्तियों को प्रमत्त करने वाले, खिले हुए केवड़े के गन्धपान से भ्रमरों को मत्त बना देने वाले, भूरुह (बृशो) को उत्पन्न करने वाले, दरिद्र निद्रा से द्रोह करने वाले (गाड़ी निद्रा लाने वाले) अथवा दरिद्रों के घर के अभाव में उन्हें निद्रा से द्राह कराने वाले, समर्थ (उच्छल) गायों को भी दुर्बल देने वाले, वदम्ब की ढालियों पर भ्रमरों को लटकने देने वाले, प्रसन्न कामदेव के उन्नत हास की तरह बादलों की ध्वनि को ध्वस्त करने वाले, पकते हुए जामुन के फलों की कान्ति से वन की आन्तरिक कान्ति को श्यामल बना देने वाले, पान्पसार्य (पपिक समूह) को शोक में डाल देने वाले, मदस्वी मयूरो की ध्वनि सुनान वाले, कोशातकी नामक फलों के विकसित होने के कारण सुन्दर लगने वाले, धूमिका (जूरी) लता के आस को (पल्लवित) करने वाले, नव मालिका की मालाओं वाले, अट्टकुरो को धारण कराने वाले, पकते हुए जामुन फल के पंखों की पक्ति से सुशोभित होने वाले, सन्यासियों के भिक्षा + क्षण (भाजन विषयक आनन्द) को समाप्त कर देने वाले, मृगों के रोगों को शान्त करने वाले, वलिभुज् (कौबो) को नींद निर्माण के लिये व्याकुल कर देने वाले, सान्द्र + इन्द्र (वर्षा युक्त इन्द्र) और ग्वालों की एकत्रित करने वाले, खूनी हुई तमाल द्वारा वाले धर सद्गुण, दशो दिशाओं को श्यामल बना देने वाले, दिन में भी रात की धागड़ा से व्याकुल चक्रवाकियों को रुला देने वाले, शकट (गाड़ी) की गति को कीचड़ के कारण रोक देने वाले, वृक्षों को पल्लवित करने वाले, जिष्णु (विजय की इच्छा रखने वाले) इमापाल (पृथ्वी पालक) राजाओं की यात्रा को विघ्नान्न (रोक) देने वाले, उस (साँड़ों) की सुघ्रा (मूख) को क्षीण कर देने वाले, वापासुर के बाहुओं के छिन्न-कर्ता (विष्णु) को क्षीरसागर में सोने देने वाले, सिन्धु (नदियों) के रोध (विनारा) को तोड़ देने वाले, वनाग्नि को प्रेरित करने वाले, विरहियों के मन को दुःखित करने वाले, बादलियों के मन में प्रसन्नता ला देने वाले, तापिच्छ वृक्ष की छाया का अनुकरण करने वाले, अच्छी तरह से छापी हुई कटी में बँधे हुए घोड़े वाले, खिले हुए वकुल वन से सुशोभित सीर (हल) से ग्राम की सीमा को चिह्नित

दो दाँतों के कारण भयङ्कर काल सदृश मुख वाला एक कोल (सूकर) कहीं से (जगल में) आ गया है।

[सूकर के दोनों दाँत अत्यन्त शुभ्र हैं और बाकी शरीर अत्यन्त कृष्ण है। इन्हीं दो वर्णों तत्त्वों के विभिन्न उपमान संकलित किये गये हैं। इस सूकर को देखकर यह भ्रान्ति हो जाती है कि वह दो बड़े स्फटिकों को धारण करता हुआ अजन पर्वत या जलाकाशों से युक्त काल मेघ है या गुण्ड विहीन हाथी है। मेघ, अञ्जन पर्वत, और हाथी सूकर शरीर के उपमान हैं और स्फटिक, जलाका और हाथी के दाँत सूकर के दाँतों के उपमान हैं ॥ ४४ ॥]

ततश्चासौ

भिन्नाङ्गदकसेदकन्दलभृतः स्निग्धप्रदेशान् भुयो

भञ्जमत्तनशैलशृङ्गसदृशः फुल्लतामण्डपान् ।

मन्दं मन्दरलीलयाभिषेदशं मय्यन्ध लीलासरः

कोढः क्रीडति भाषयन्निव भवत्कीडावने रक्षकान् ॥ ४५ ॥

भिन्दति ॥ मन्दरलीलया करणभूतया भाषयन् ॥ अत्र करणाद्वेनाश-
माभनेपद् पुराणमत्र न भवति ॥ ४५ ॥

इनके अनिरुक्त,

अञ्जन पर्वत सदृश वह (सूकर) कन्द एव कसेल घास के शृङ्गों को उपजाने वाले आर्द्र स्थानों को खोद रहा है। खिले हुए लता मण्डपों की तीव्र रहा है। मन्दराचन की तरह समुद्र सदृश लीला सरोवर की धीरे से मग रहा है और आप के क्रीडावन में रक्षकों को डराता हुआ खेल रहा है ॥ ४५ ॥

राजा ॥ तदाकर्ण्य विस्मितवान्—

'अच्छाच्छलेः शुक्रपिच्छगुच्छहरितैश्छन्ना वनान्तास्तृणैः

सेव्याः सम्प्रति सान्द्रचन्द्रकिमुल्लेखताण्डयैर्मण्डिताः ।

येषु क्षीरविषाण्डुपल्लवपयः कल्लोलयन्तो मनाप

पाता चान्नि विनिद्रकेतकवनस्कन्धे लुडन्तः शनैः ॥ ४६ ॥

मन्त्राङ्गेरिति ॥ चन्द्रकिणो मयूराः । पल्लवमरात सरः ॥ ४६ ॥

यह सुन कर राजा ने मोचा—

अच्छ अच्छ (सुन्दर सुन्दर) तोतों के पंखों के गुच्छों की तरह हरे तृणों से ढकी हुई तथा इस समय प्रसन्न चन्द्रनिकृत (मयूरों) के उद्घात नृत्य से भलदृष्ट (वह) वनस्पती सेवनीय है, जहाँ दूध की तरह स्वच्छ पल्लवों

(छोटे जवानों) के साथ सेतनी हुई और धिये हुए बेवड़े के मन से टपरागो हुई हवा धीरे-धीरे बह रही है ॥ ४६ ॥

माचन्ति च तेषु सम्प्रति मोधिनाः । तद्युज्यते विद्वर्तुम्' इत्ययं धार
यन्नाह्वय बाहुकनामानं सेनापतिमादिदेश ॥

माचन्तीति ॥ मोधिनाः शूकराः ॥

'यहाँ हम समय शूकर उमरत हो जाते हैं, इनलिये यहाँ विहार करना उपयुक्त है।' ऐसा मोचना हुआ राजा बाहुक नामक सेनापति को बुलाकर आज्ञा दिया ॥

'मद्र द्रुतमनुष्ठायताम्, समादिश्यन्तां कृतपेरियिपस्तया, पस्तया,
पर्याप्यन्तां मनस्तुरगास्तुरगाः, सज्जीक्रियन्तां निजधेगनिर्जित-
मातरिभ्यान् श्वानः, समारोप्यन्तामपनीतादिगायूंषि धनूंषि, गृह्यन्तां
निर्मथितमोमियूषपाशाः पाशाः' इति ॥

मद्रेति ॥ पर्याणं करोष्यन्तामाम् । 'ताकरोति तद्वचये' इति निधि पर्याणदाय-
न्ताम् । पश्चात्प्राग्वन्निवृत्तौ श्वाकरणं गृह्यतीति तिल्लोकीं तिल्लव्यतीति वक्रम-
न्ताम् । मन इव तुराः क्षीमा गच्छन्तीति । निर्मथिताः मोमियूषपाशाः बरादयूष-
पाशास्ताः इत्यादि ॥

"मद्र, जल्दी कीजिये । शत्रुओं पर विजय सा देने वाली पति (सेना) को
आदेश दीजिये कि मैं को तरह तुरग वेग से जाने वाले) तुरग (घोड़े) को
साँवें । अपने तेम से मातरिभ्या (हवा) को भी जोत सेने वाले आ (कुत्ते)
को तैमार कीजिये । अहित चारने वाली के प्राणों को गुरा सेने वाले अनुवी
को चड़ादये । प्रायि यूपप (शूकर समूह) को आजा को मय डालो वाले
पाश (जालों) को ग्रहण कीजिये ।"

अथ मौल्लिमिल्लमुकुलितकरकमलयुगलेन सेनापतिना 'यदाहा-
पयति श्वेद' इत्याभिधाय स्वरथा तथा कृते सति ॥

अपने दोनों कर कमलों को मुकुलित (जोड़) कर शिर से लगाता हुआ
सेनापति "जैती आप को आजा" यह कह कर शीघ्र हो राजा के कंधा के
अनुसार कार्य कर लिया ॥

स्थयमपि

निर्मासं मुखमण्डले परिमितं मध्ये लघुं कर्णयोः

स्कन्धे बन्धरमप्रमाणमुरसि सिग्धं च रोमोद्गमे ।

पीनं पश्चिमपार्श्वयोः पृथुतरं पृष्ठे प्रधानं जये

राजा याजिनमाकरोद् सकलैर्पुच्छं प्रशस्तेर्गुणैः ॥ ४७ ॥

राजा स्वयं भी

ऐसे घोड़े पर आरुढ़ हुए जिसका मुखमण्डल मोटा नहीं था । बीच का भाग परिमित (मुडौल) था । छोटे-छोटे कान थे, गर्दन बन्दुर (सुन्दर) थी । छाती अप्रमाण (विशाल) थी । रोम समूह कोमल थे । अगला पुट्टा पूर्ण रूप से पीन (मोटा) था । दौड़ने में बड़ा प्रशस्त था । समस्त प्रशस्तनीय गुणों से युक्त था ॥ ४७ ॥

आरुह्य च क्रमेण कार्दमिककर्पटान्नदमूर्धजैर्दण्डखण्डगणिभिः क्रूरकर्मोचिताकारैर्वागुरावाहिभिरनन्तैः कृतान्तदूतैरिव पाशदस्तैः पापद्विकैरनुगम्यमानः, दूरादुन्नमितकन्धरैस्तथोर्ध्वकर्णसम्पुटैरकाण्डो-द्गीनप्राणैरिव घनप्राणिभिराकर्ण्यमानहर्षितहृदयहेवारवः, पयनकम्पित-तरुशाखाभ्रपल्लवव्याजेन दूरादेयोस्त्रिस्तहस्तामिरुड्डीयमानशकुति-कुलकोलाहलच्छलेन भयाभिघार्यमाण इव वनदेयताभिः, अभिमुखा-गतैरुन्मिषत्तरुपुष्पप्रकरमकरन्दविन्दुवर्षवाहिभिर्वनविनाशशङ्कितैरध्य-मिषोपपादयद्भिर्रुपकथ्यमान इव वनमारुतैः उन्निद्रसान्द्रकुसुम-फेसराङ्कुरजालजटिलाभिर्भयादुद्विगतरौमाञ्चप्रपञ्चामिरियोद्भ्रान्तभृङ्ग-रघगद्गदवदितेन निविध्यमान इव वनशीरुद्भिः, उन्निद्रभाम्बदमन्द-कन्दलावलोकनेनानन्दमानः श्वानुगतोऽप्यश्वानुगतः सगजमप्यगजं तद्धनमाससाद ॥

भाग्यं वेति ॥ कर्दमेन नीलीलोहमलादिना रक्त कार्दमिकम् । श्वभिरश्वैश्चानु-गतो राजा । गजोपेतम् । अगः पर्वतसमीपोद्देशोऽप्यगस्तत्र ज्ञानमगजं तद्धन-माप ॥

जब घोड़े पर बढ लिया तो क्रमशः, साल कपड़ों से बालों को बाँधे हुए, हाथ में छोटे डण्डे लिये हुए, क्रूर कार्य के अनुकूल घेप बनाये हुए, मृग फँसाने वाले जाल लिये हुए, असह्य यमराज के दूतों की तरह हाथ में पाश लिये हुए, पाप सम्पत्ति से सम्पन्न व्याघ्र लोग उसने पीछे-पीछे जा रहे थे । दूर से ही वन के प्राणी गर्दन को उठा कर, कानों को ऊपर की ओर सुपुना कर, प्रसन्न घोड़ों की हिन-हिनाहट सुन रहे थे । ऐसा लगता था कि असमय में ही उनके प्राण उड़े जा रहे थे । पेड़ों की साखा के अप्रभाग से टकरायी हुई हवा के कारण हिलत हुए पल्लवों के बहाने दूर में अपने हाथों को उठाकर उड़ने हुए पक्षियों के कोलाहल के बहाने वनदेयताएँ मानो भय से उन्हें रोक रही थी । सामने पड़ने वाले गिलने हुए तरुपुष्पों के पराग कणों की वर्षा को ढोने वाला, वन विनाश की आशंका से डरा हुआ वनस्थली का पवन मानो उनकी विधिवत् पूजा कर उन्हें घेर रहा था । घिलत हुए घने वृक्षों के परागकोश के अद्भुत से ऐसा लगता

या जि दर के मारे वनतताओं के रोगटे छड़े हो गये थे, बत धवड़ाये हुए धमरों की मनमनाहट के माध्यम से विह्वलतापूर्ण क्रन्दन के द्वारा उन्हें रोक रही थीं। अच्युत होने हुए नवीन एवं चमकीले अच्युतों की देख कर जानन्दिन हो रहा था। दह आनुगत (हृत्तो से अनुगत) या फिर भी अश्वानुगत (हृत्तो से अनुगत नहीं) या विरोध।

बह आनुगत (हृत्तो से अनुगत) या और अश्वानुगत (घोड़ों से अनुगत) या। परिहार।

सगज (हाथियों ने युक्त था फिर भी अगज (हाथियों से युक्त नहीं) था। विरोध।

सगज (हाथियों ने युक्त) या और अग (पर्वतों और देशों) से उत्पन्न होने वाले उपवन को प्राप्त किया।

[वन की सत्ता, वनदेवता और वन पवन राजसना या राजा की अनुगत वित्त के साथ रोक रहे हैं। जैसे कोई अगला रोकन वासा वादमी दूर से ही हाथ उठाकर "ना ना" कह कर दूर से ही किसी हिंसक को मना करता है, वैसे वनदेवता पत्नियों के बहाने हाथों को उठाई हुई थी और पत्नियों के कोलाहल के बहाने हुला करती हुई रोक रही थी।

हवा फूलों की गन्ध आदि सामग्री का संकलन कर पूजन के माध्यम से अनुगत कर रही थी। डरी हुई वनतता को तो रोमांच हो गया था। धमरों की मनमनाहट के माध्यम से तो वह रो रोकर उन्हें रोक रही थी] ॥

ततश्च केचिदुद्यत्परश्वधा गणपतयः, केऽपि हृष्टसिंहिकासुत-
विक्रमाः शशधराः, केऽपि पाशपाणयो जम्बुकविज्जपालाः, केऽपि
हरिमार्गानुसारिणो बलमद्राः, केऽपि चक्रपाणया मधुसूदनाः, केऽपि
शिवागमावर्तिनो रौद्राः, केऽप्याहिताग्रयो विप्रलोकाः, केऽपि स्रग्धि-
ताञ्जनाधरप्रवालाः प्रमञ्जनाः, केऽप्युत्वातश्नित्वन्तमुष्टयो मिश्रिशाः,
तस्य पृथ्वीपतेराकुलितश्वापदाः पदातयो वनं दधुः ॥

ततश्चेति ॥ उद्यन्तः पलायमानाः परे उत्कृष्टा आनस्तान्दधति। तथा गगस्य
सेनायाः पतयः हेरिश्वाश्च उद्गृह्यमाणपरश्वधः। सिंहिकासुतः केपरिक्रिशोरो
राहुश्च। शश धरतीति शशधरः पत्तिग्रन्थश्च। पाशः पागौ यस्य स पाशपाणि-
धरन्तश्च। जम्बुकः शृगालो वरुणश्च। यद्विषयकादा—“जम्बुक” केरवे नीचे प्रतिची-
दित्येतावपि। हरि सिंह मार्गं मृगसमूहं चानुसरन्ति बलेन मद्रा शक्तः। पदे
हरेविष्णोर्मागोऽम्बा बलमद्रो बलदेवः। चक्रं पागौ यस्य स चक्रपाणिर्बिभृशुश्च। मधु
चौद्र दैत्यश्च। सूदनं चरण मारणं च। शिवा शृगाली तस्या गमो गति पदे शिव-
स्यागमाः शस्त्राणि। शैवाश्च। गृहीतहृदिर्भुजो बीजशकुन्तान्प्रलोकयन्तः पापदिका
हि कपोतादिपातनाय तरुणामघस्तापापनीसंज्ञकामग्रीहिकां, कुर्वन्ति। पदे

साम्निहोत्रा विप्रलोकाः । खण्डिता अञ्जनस्य पश्चिमपश्चिमोऽवरप्रवाला पुच्छानि
 ये । पक्षाऽञ्जनस्य शास्त्रिवोऽथ पक्षवाः । वातास्तु खण्डितोऽञ्जनापघाया प्रियाया
 ओष्ठपक्षयो ये । उरलाता दन्तिदन्ता येत्ययोका मुष्टयः समष्टा येषाम् । पञ्च उरि-
 सदन्तिदन्तप्रधानो मुष्टि रसर्वेषु । निखिना क्रूरकर्माणः खट्वाग्र । ईदृशास्तस्य
 पक्षयो वनं देष्टव्यामासु ॥

जैसे गणपति (गणेशजी) उद्यतपरश्वध (अपने कुठार को सदा तैयार रखते) हैं वैसे उनमें भी कुछ लोग उद्यत् + पर + श्व + ध (दौड़ने के लिये बिल्कुल तैयार उत्कृष्ट कोटि के कुत्तो को लिये हुए) थे ।

शशधर (चन्द्रमा) जैसे दृष्टसिंहिकामुलविक्रम (राहु के विशिष्ट आक्रमण को देखे हैं वैसे उनमें से कुछ लोग दृष्टसिंहिकामुलविक्रम (सिंहनी के बच्चे से विक्रम को देख चुके) थे । और शश (खरगोश) को धारण किये हुए थे । पाशपाणि (वरुण) जैसे जम्बुक दिक्पाल (पश्चिम दिशा के अधिपति) हैं वैसे उनमें से भी कुछ लोग पाशपाणि (हाथ में जाल लिये हुए) थे और (जम्बुक-दिक्पाल (शृगाल के रास्ते में उनकी प्रतीक्षा कर रहे) थे । बलभद्र (बलदेवजी) जैसे हरिभार्गानुसारी (कृष्ण के अनुसार चलने वाले) हैं वैसे उनमें भी कुछ बलभद्र (बल के कारण भद्र (शक्तिशाली) थे और हरिभार्गानुसारी (सिंह के रास्ते का अनुसरण करने वाले) थे । चक्रपाणि (चक्रधारी विष्णु) जैसे मधुसूदन (मधु राक्षस को मारने वाले) हैं वैसे उनमें से कुछ लोग चक्रपाणि (हाथ में चक्र लिये) थे और मधुसूदन (मधु के छत्ते से मधु चुवा रहे) थे । रौद्र (शिवधर्म के अनुयायी) जैसे शिवागमवर्ती (शैव दर्शन को मानने वाले) हैं वैसे कुछ लोग शिवागमवर्ती (शृगालों के रास्ते पर ठहर कर) रौद्र (भयङ्कर रूप धारण किए) हुए थे । जैसे विप्रलोक (ब्राह्मण लोग) आहिताग्नि (अग्नि-होत्र करने वाले) होते हैं वैसे कुछ लोग आहिताग्नि (आग सुलगा कर तापनी नामक अनुष्ठान कर रहे) थे और वि (पक्षियों) को प्रलोक (तल कर रहे) थे ।

प्रमञ्जन (बामु) जैसे खण्डिताञ्जनाघरप्रवाल (अञ्जना नाम की प्रिया के अघरोष्ठ का पान करने वाले) हैं वैसे कुछ लोग खण्डिताञ्जनाघरप्रवाल (अञ्जन पक्षी के अघर प्रवाल (पूच्छ भाग) को तोड़ लिये) थे अतः प्रमञ्जन (विध्वंसक) प्रतीत हो रहे थे । निस्त्रिण (तलवार) जैसे उत्थातदन्तिदन्तमुष्टि (उखाड़े हुए हाथी दाँत से धनी हुई मुट्ठियों से युक्त) हैं वैसे कुछ लोग निस्त्रिण (हिंसक) थे और उत्थातदन्तिदन्तमुष्टि (हाथियों के दाँतों को उखाड़ कर मुट्ठी में लिये हुए) हैं । पृथ्वीपति (राजा नल) के पदाति (पैदल चलने वाले न्याय) जंगल के प्राणियों को व्याकुल कर वन को घेर लिये ॥

[अहितात्मनः — व्याध लोग पेड़ी से पक्षियों को गिराने के लिये पेड़ों के नीचे आग मुलगा कर तापनी नामक वनस्पति करत हैं] ॥

ततश्च तैः क्रियन्ते विकलमा वननिकुञ्जाः कुञ्जराश्च, ध्रियन्तेऽनेक-
धारयतिपातिनः खड्गाः खड्गिनश्च, कृष्यन्ते कूजन्तः कोदण्डदण्डा
गण्डकाश्च, विक्षिप्यन्ते परितः शराः शरमाश्च, भग्यन्ते तर-
यस्तरस्वश्च ॥

तदन्वेति ॥ विगताः कलमा येभ्यस्ते व्यपेतकरिपोताः । कुञ्जरास्तु विकल
कान्तयो मयाद्रिनि शेष । खड्गा द्विषास्वाद्नेक्या धारया पतन्मयीषाम् ।
गण्डकास्तु रपेनातिपतन्ति । य उन्निगच्छा प्रीडास्ते खड्गिनः । भतएव रयामि-
पातिनः । त एव बाटका गण्डका । अत एव कूजन्तः । तरयद्विषकायाः ॥

तदनन्तर उन व्याधों द्वारा वन की झाड़ियाँ विकलम (हाथियों के बन्धों
में झूल्य) कर दी जा रही हैं और हाथी भी विकलम (निरस्त) कर दिये जा
रहे हैं । अनेक धारयातिपाती (दोनों तरफ से काटने वाले) खड्ग (कुपाण)
हाथ में पकड़े गये हैं और अनेक धारयातिपाती (अनेक मार्गों से जाने जाने
वाले) खड्गी (गंडे) पकड़े जा रहे हैं । कूजन (डेकार) करने हुए धनुर्दण्ड
खींचे जा रहे हैं और कूजन (चीकार) करने हुए गण्डक (गैडों के बन्धे
घसींटे जा रहे हैं । धारों तरफ शर (बाण) फेंके जा रहे हैं और शरम
(भय के मारे) पागल बनाये जा रहे हैं । तर और तरस (सपें) काटे जा रहे हैं ॥

[शरम—मिह को भी मार गिराने वाला आठ पैरों का यह एक
जानवर है] ॥

क्षणेन च पतन्ति पीवरा वरादाः, सीदन्ति दन्तिनः, घिरसं रसन्ति
सातङ्गा रङ्गः, प्रकाशैलं शैलं मयादारोहन्ति रोहिताः, शरसंघात-
घूर्णिता यान्ति महीं महिषाः, दुर्गसंधयं ध्रियन्ते तरलितनेत्राश्चिन्काः,
त्थरिततरं तरन्तोचोत्पतन्तो नमसि निजज्वनिर्जिततुरङ्गाः कुरङ्गाः ॥

होन चेति ॥ सातङ्गा समया । रङ्गो मृगा । प्रकाशाः स्पष्टा पृष्ठा छटा
यत्र शैले । रोहितः आपद् । चित्रकोऽपि तद्विषेयः ॥

एक ही क्षण बाद बहुत मोटे-थोटे शूकर विकल होकर गिर रहे हैं ।
सातङ्ग (ढरे हुए) रङ्ग (मृग) घिरस (वरुण) क्रन्दन कर रहे हैं ।
प्रकाश (स्पुट) ऐसा (सनाओ) वाले शैलों पर रोहित (मृग) घट रहे
हैं । बाण के आघात से घूर्णित (मूर्छित) गैंसे पृथ्वी पर लोट जाते हैं ।
चक्षु नेत्र वाले शाय गुफाओं में घुस रहे हैं । अत्यन्त वेग से छलांग मारने के
कारण मृग मानों आकाश में उड़ रहे हैं ॥

तत्र च व्यतिकरे

जाताकस्मिन्कविस्मयैः किमिदमित्याकर्ण्यमानः सुरैः
सन्नासोऽक्षितकर्णतालचलनाद् दिग्दन्तिनः कम्पयन् ।
जन्तूनां जनितस्वरः स मृगयाकोलाहलः कोऽप्यभू-
येनेदं स्फुटतीव निर्भरभृतं ग्रहाण्डभाण्डोदरम् ॥ ४८ ॥

इसी बीच एक अद्भुत शिकार का बोलाहल उठा जिसे "मह ब्या है" इस तरह अकस्मान् आश्चर्य में पड़े हुए देवता लोग सुन रहे थे, जो डर के मारे कानों को फड़फड़ाते हुए दिग्गजों को कम्पित कर रहा था । प्राणियों में व्याकुलता उन्मत्त कर दिया था और जिनमें ममम्त ग्रहाण्ड रूप भाण्ड (पात्र) का उदर (न भँटने के कारण) मानो फटा जा रहा था ॥ ४८ ॥

राजाप्येकशरग्रहारपातितमत्तमातङ्गः सर्धतो विहारिहरिहरिण-
शशकशम्बरधराहृन्ननहेतया विचरन्निस्तस्तस्तरुणतरुमालमञ्जरी-
जालमीलोद्घुषितस्कन्धकेसरमूर्ध्वस्तब्धकर्णसंपुटमध्वचक्राय क्रुध्यन्त-
माघूर्णितघोषमनघरतकृतघनघोरघर्घररयमुत्क्षिप्तपुच्छगुच्छमभिमुख-
मेकस्मिन्नतिसान्द्रभद्रमुस्तास्तम्भभाजि पङ्क्तिपद्मवलप्रदेशे तं शूर-
शूकरमपरमिष वववहनदग्धाद्रिमद्राक्षीत् ॥

राजा भी एक ही बाण के प्रहार से मतवाले मातङ्ग (हाथी) को गिरा कर चारों तरफ विहार (भ्रमण) करने वाले हरि (सिंह), हरिण, शशक (खरगोश), शम्बर (मृग) और शूकर मारने के विचार से घूमता हुआ अत्यन्त तरुण तमाम बुद्ध की मञ्जरी समूह की तरह नील उस वीर शूकर को देखा जो स्कन्ध देश के बालों को ऊपर की ओर उठाये हुये था, चकित होकर दोनों कानों को ऊपर की ओर किया था, अश्वत्थूह पर क्रोध व्यक्त करता हुआ नासिका की ठेकी कर निरन्तर बादल की तरह गरज रहा था, अपनी पूँछ के गुच्छे को हमेशा फैला (हिलाता) हुआ सामने ही एक घने मुस्तावाले पञ्च युक्त छोटे जलाशय में बवागि से जले हुए एक दूसरे पर्वत की तरह प्रतीत हो रहा था ॥

दृष्ट्वा च रचितशरसम्धानलाघवो राघव इव राक्षसेश्वरस्य
तम्योपरि परिणम्यविधिपटत्रैः पतन्निभिरभ्यवर्पत् ॥

उत्ते देखकर बाण सन्धान में पट्ट (उस नल ने) विविध पटों से युक्त बाणों की वर्षा उत शूकर पर उसी तरह करना शुरू किया जैसे राम रावण पर किये थे ॥

तत्र च व्यतिकरे

किमभ्वः पादवैपु प्लवनचतुरः किं नु नृपतिः

शयन्मुञ्चन्नुच्चैश्चलतरकराकृष्टधनुषा ।

किमालोलः कोलः परिहृतशरः शौर्ययसिन्

न जानामस्तेषां क इह परमो वर्ण्यत इति ॥ ४२ ॥

उस समय यह पता नहीं चलना था कि जिसको बड़ा कहा जाय, पादो जगह में उठाने में कुशल उस घोड़े का या अत्यन्त चञ्चल हाथों से सीधकर बाणों को छानने हुए राजा का या बाणों में शचन हुए बीर रम के रसिक उस अत्यन्त चञ्चल मूकर को ॥ ४२ ॥

अपि च—

अजनि जनितपृथ्वीमण्डलोत्पादकम्पं

किमपि खलितशैलं इन्द्रयुद्धं तयोस्तत् ।

खलिततुरगघेगो विस्मयेनैव यस्मिन्

दिनपतिरपि शौर्याश्चर्यसासी यमूव ॥ ५० ॥

अन्तीति ॥ इवमाद्यतोऽपि मण्यन्दिने खलितान्धवेगो रश्मिरतश्च कवेरुहः ॥ ५० ॥

उन दोनों के इन्द्रयुद्ध न पृथ्वी न कम्पन उत्पन्न कर दिया, पर्वतों में भञ्जपत्रा उन्नत कर दी, भगवान् नूर्य भी आश्चर्य के कारण बनने घोड़े के वेग को रोक कर उनकी आश्चर्यजनक बीरता के साक्षी बन ॥

[दोहर के समय भगवान् नूर्य स्वयं कुछ मन्दपति जैसे प्रतीत होते हैं । उनकी इस गति पर यदि न वन्दना की है कि मूकर बीर नन की बीरता को देखने के लिये भगवान् नूर्य ने अपने घोड़े को रात दिये और उनके बद्गुण गौरव के साक्षी का कार्य किया ॥ ५० ॥

अथ कथमपि नार्घ्यं प्रीयिषूयस्य जित्वा

ज्वरित इव विशालं सालसः सालमूले ।

मुखममजत राजा राजमानः धमाम्भः—

कणकलितकपोलालोललीलालकेन ॥ ५१ ॥

अन्तीति ॥ ज्वरित इव सालस हरनेन धमातिशयोक्तिः । अन्योऽपि ज्वरितो मूलादीनि मैवमानः स्वेदविन्दुलक्ष्यमागन्वरागमो राक्षसे ॥ ५१ ॥

उदनन्तर किसी किसी तरह मूकर समूह के उस विशाल नाटक को जीत कर घबरे के कारण मानो ज्वराग्रान्त होकर शाल वृक्ष के नीचे पानी के जल-कनों से अलङ्कृत कपोल तथा चञ्चल एवं मुन्दर बालों से सुसोभित वह राजा मुखपूर्वक बैठा ॥

[ज्वरित शब्द के उपादान से राजा के अत्यधिक थकान को व्यक्त किया गया है । ज्वराक्रान्त राजा सालवृक्ष की छाया में बैठा । ज्वर को हटाने के लिये वैद्य लोग मूल आदि का काढ़ा पीने के लिये बताते हैं । ज्वरित व्यक्ति को जब पसीना आ जाता है तो समझा जाता है कि उसका ज्वर हट गया । ज्वर के प्रसङ्ग में पसीने आदि की चर्चा अत्यन्त भावपूर्ण है ॥ ५१ ॥]

तत्र च स्थितं श्रममुकुलितनयनारविन्दम्, आन्दोलयन्तः
कुसुमिततरुन्, तरलयन्तः शिथिशिखण्डमण्डलानि, ताण्डवयन्त-
स्तनुलतापल्लवनिबद्धान्, वहन्तो बह्विधैरजलशिशिरशीकरनिकरान्,
करालयन्तः कुटजकुड्मलानि, मकरन्दविन्दुमुखो मम्दमातन्वयामासु-
कम्पितनीपघनाः पघनाः ॥

तत्र चेति ॥ श्रममुकुलितनेत्रकमलं नृपं कम्पितनीपकानना पघनाः हर्षपाशकु ।
कुटजकलिकाना करालमं विकासमम् ॥

वहाँ पुष्पित वृक्षों को कंपाता हुआ, मयूरो को (आनन्द के मारे) चबल बनाता हुआ, पतली सलाखों एवं पल्लवों की पत्तियों को नचाता हुआ, प्रवाहपूर्वक बहते हुए झरनों के शीतल कणों को डोना हुआ, कुटज पुष्प की कलियों को विकसित करता हुआ, पराग-विन्दुओं को बरसाता हुआ, वदम्बवन को कंपाता हुआ पवन पकावट से आँखों को मुकुलित लिये हुए राजा को शनैः-शनैः आनन्दित कर रहा था ॥

अनन्तरमनघरतकरालकाककौलेयककुलकवलनाकुलितकोलरुरि-
कुरङ्गकण्ठीरवकिशोरहपट्पृष्ठाविते परितः परिजने, जनितविधिध-
मृगवधूयैधव्याधीन्याधाश्रिवारयितुमियान्तरान्नरा प्रसारितकरे मध्य-
स्थतां गतवति गभस्तिमालिनि, सहसंबर्धितमृगविनाशशोकभरादिव
घनवीर्यां पतरसु पुष्पलोचनेभ्यो बाष्पेधिव मध्याह्नोष्णपिलीन-
मकरन्दविन्दुषु, भ्रममाणेषु घनदेवतानां वनविमर्दोपालम्भेधिव तरु-
खण्डोद्गीनयिविधविद्वह्विरुतेषु, विघट्टितार्भककुरङ्गकुटुम्बिनीकदण-
छूजितध्याजेनान्पायमिव पूत्कुर्वतीषु घनराजिषु, इतस्ततः सञ्चरन्-
दुलतरतुरङ्गरुरशिखरशिखोत्खातघरणिमण्डलाद्घनविनाशवार्तां गगन-
घरेभ्यः कषयितुमिवोत्पतितेऽम्बरतलमहतपरिघ्राणे च मूर्च्छित इव
पुनः पुनः पतति भुवि मयनपारावतपतत्रिपत्रधूसरे धूलिपटले, सकम्प-
कपिकलापोल्ललनलुलिततरुतरुणमशरीपुञ्जनिकुञ्जादुद्भजिते मञ्जु-
गुञ्जति घनान्तरमपरमुञ्चलिते चञ्चलचञ्चरीकचक्रचाले, चट्क्रमण-
क्रमेण च सम्पन्ने सैन्यस्य धमावसरे तस्यैव सरससरलशालद्रुमस्या-
धस्ताश्रिपण्णे श्रममाजि राजनि ॥

वनन्तरमिति ॥ कोनेयकः वा । कोलः सुकरः । पूंकरणमातंग्याहरणम् ॥

रामके बाद निरन्तर नीचे और कोनेयक (कुत्ता) को खा जाने के लिये व्याकुल भयङ्कर कील (सुकर), हाथी, मृग एवं कच्छीरव (सिंह) के सबल बन्धों के पीछे चारों तरफ से परिजन दौड़ रहे थे । अनेक मृगवधुओं के वैधव्य रूप आदि (विपत्ति) उत्पन्न करने वाले व्याधो को मानो निवारण करने के लिये मध्यस्थ के रूप में गमस्तिमाती (भगवान् भूयं) अपने करो (किरणों) को फैलाये हुए थे । एक ही साथ पले हुए मृगों के विनाशभोक से मर जाने के कारण वनलतायें अपने पुष्प नेत्रों से मध्याह्नकालीन उष्णता के कारण गरम परागबिन्दुरूप आसुओं को गिरा रहीं थीं । पेड़ों से उड़े हुए विविध पक्षियों का उन्दन ऐसा सघन था मानो वनवेष्टताएँ वनविनाश के कारण उलाहनाएँ सुना रहीं थीं ।

बिछड़े हुए बन्धों के लिये (रेतों हुईं) कुरगवधुओं के कदन-बीत्कार के बहान वनपक्षिमाँ अग्राय की विषकारती थीं । इतर-उधर धूमते हुए अत्यन्त चञ्चल धोंडों के छुरों के अग्रभाग से कट कर गृह-वधूतरों के पक्ष सद्ग धूसर धूलि भूतल से उड़ कर मानो वन-विनाशविषयक समाचार कहने के लिये आकाश में गयीं और जब वहाँ उन्हें रक्षा का आश्वासन नहीं मिला तो पुन पृथ्वी पर झूटिग हो कर आ गिरीं । डरके मारे काँपता हुआ बन्दरों का मुग्ध वृक्षों की पूर्ण विकसित अञ्जरियों को रम्य दिया था । अत उड्डिग होकर मधुरतापूर्वक गुञ्जार करता हुआ भ्रमर-समूह दूसरे वन में चला आ रहा था । चक्कर लगाते-लगाते सेना के विधाम का समय भी हो चला था । राजा वही सरस तथा सीधे शालवृक्ष के नीचे थक कर बैठे हुआ था ॥

अकस्मात्कुतोऽपि

घृहीयत्कपिनद्धधूसरशिराः स्कन्धे दधदण्डकं
प्रीवालम्बिनमृग्मणिः परिकुप्यत्कौपीनवासाः कृशः ।
एक कोऽपि पटच्छरं चरणयोर्वद्ध्वाऽश्वराः श्रान्तवा-
नायातः क्रमुकत्यच्चा विरचितां मिश्रापुटीमुब्रह्म ॥ ५२ ॥

वस्तुति ॥ कुपितवती सदिते कोपीनवामपी यस्य । 'परिकुप्यत्' इति पाठे कुप्यो वर्णकचलः । स्पानिपतितशरश्चक्षुर्दौर्निमित्तावात् ॥ पटच्छरो जीर्णवस्त्रनण्डम् । क्रमुकत्यच्चा एगद्रुमवर्णेन ॥ ५१ ॥

तब तक अकस्मात् कहीं से—यका हुआ दुबला पतला एक राही आया । यह लता के बन्धन से अपने पके वालों वाले डिर की बाँधे हुए था । कंधे पर दण्ड लिया था । गले में मिट्टी की एक गोली लटकाया था । चितकबरे

रग की लगोटी पहना था । पैरो में पुराना फटा हुआ चिपड़ा बाँधा था ।
क्रमुक (कसैली) के वृक्ष की छाल से बना हुआ एक मिठा पात्र लिया था ॥

[बस्ती बस्क इसलिये कहा गया कि शिर में बाँधने के लिये लता का बल्कल कुछ अधिक मुलायम होया । शिर उत्तमाङ्ग है । इसके लिये प्रत्येक श्रेणी के लोग अपने-अपने स्तर के अनुसार और अङ्गों की अपेक्षा उत्तम वस्तुओं का संग्रह करते हैं ।]

परिक्रयन—उसके कौपीन से विभिन्न रंग झलक रहे हैं । कौपीन निर्माण के लिये उस दरिद्र पक्षिक ने गलियों के कई तरह के फटे चिपड़ों का संग्रह किया है । उन कई रंग के चिपड़ों से निर्मित कौपीन स्वभावतः चितकवरा हो जायगा ॥ ५२ ॥]

आगश्य च राजानमयत्नोऽयं सविस्मयमेव चिन्तर्याचकार—

‘अञ्जश्रीसुभगं युगं नयनयोर्मौलिर्महोष्णीपथा-

नूर्णारोमसखं मुखं च शशिनः पूर्णस्य धत्ते धियम् ।

पद्मं पाणितले गले च सदृशं शङ्खस्य रेखाग्रयं

तेजोऽप्यस्य यथा तथा सज्जलधेः कोऽप्येव भर्ता भुवः ॥५३॥

अञ्जेति ॥ सज्जलधेरिति भुवो विशेषणम् । उष्णीषमुत्तमाङ्गे लक्षणविशेषः । सद्योर्णा अग्रमये द्युभरोमावर्तं यद्विध — ‘उष्णीषं तु शिरोवेष्टे किरीटे लचणान्तरे’ । तथा । ‘ऊर्णा मेवादिकोऽग्निं स्यादन्तरावर्तके भुवो’ ॥ ५३ ॥

आकर और राजा को देखकर आश्चर्य में पड़कर यह सोचने लगा—

“इसकी आँखों में कमल सदृश सुन्दरता है । सिर पर बड़ी सी पगड़ी है । दोनों भौंहों के बीच ऊर्णा की रेखा है । पूर्ण चन्द्र की गोभा इसका मुख धारण कर रहा है । हाथ में कमल का चिह्न है । गले में शङ्ख की तरह तीन रेखाएँ हैं । शरीर से कुछ ऐसा तेज भी विष्कुरित हो रहा है जिससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कोई समुद्रान्त पृथ्वी का भरण पोषण करने वाला राजा है ॥

[दोनों भौंहों के बीच में उगे हुए बालों को ऊर्णा कहते हैं । इस पत्रोक्त में राजा के रूप जैसे चित्रित किया गया है और जिन चिन्हों का संकेत किया गया है वे अपरिचयावस्था में भी राजा के चरित्रवृत्तित्व को सूचित करते हैं ॥ ५३ ॥]

तदेर्षयिषाः अलु महनीया महानुभावा भवन्ति’ इत्येवमवधार्य समुपसृत्य ‘स्यस्ति स्वकान्तिनिर्जितमकरध्वजाय तुभ्यम्’ इत्यवादीत् ॥

इन तरह के लोग बड़े पूज्य और प्रभावशाली होने हैं ।” ऐसा सोचकर कुछ आगे बढ़कर बोला—“अपनी कान्ति से कामदेव को भी जोन लेने वाले जापका कल्याण है ।”

राजापि सविस्मयमना मनागुधमितमस्तकः स्वागतप्रद्यत्तेनाभिनन्द्य 'तीर्थयात्रिक, कुनः प्रष्टव्योऽसि । क्व च कियद्याद्यापि गन्तव्यम् । उपविश । विभ्रम्य कथय काञ्चिदपूर्वा किञ्चिदन्तीम् । अनेकदेशदृष्टवानः किलाश्चर्यदर्शिनो भवन्तीति । न चाकस्मिकं दर्शनमपूर्वः परिचयः स्वस्या प्रीतिरित्येकमप्याशङ्कनीयम् । अपूर्वदर्शनेऽपि न जात्या मणयः स्वच्छन्नामपद्भुते । तदेहि । मुहूर्तमेकत्र गोष्ठीसुखमनुमवाधः' इत्येन-मवादीत् ॥

राजानोति ॥ किञ्चिदन्तीं वार्ताम् । कस्या मगधो विशिष्टाठीपरत्नानि ॥

राजा भी आश्चर्यपूर्वक मन्त्रक घोड़ा ऊपर उठा कर स्वागत प्रश्न के साथ अभिनन्दन कर कहा—“तीर्थयात्री, कहाँ से आ रहे हो ? कहाँ और किसकी दूर जाना है ? बैठो, थोड़ा आराम कर कुछ सुन्दर कपानकों को सुनाओ । अनेक देग देखने वाले लोग आश्चर्यजनक बहुव-सी चीजों को देख रहे हैं । अमानक घेद होने के कारण या नदीन परिचय के कारण आप ने स्वयं प्रेम हो, इस तरह की एक भी बात की आज्ञा नहीं कीजिये । जर्ब (प्रथम बार भी) रत्नों को देखने पर वे अपनी सुन्दर कान्ति छिनाते नहीं । वनः माधो थोड़ी देर तक बैठकर गोष्ठी-मुग्ध का अनुभव करे ।”

असावपि 'अपूर्वकौतुककषाकर्णनरसिक्, धूपता यद्येवमम्' इत्यभि-धाय सुखोपविष्टस्यास्य समीपे स्वयमुपविश्य कथयितुमारभत ॥

'ओ अद्भुत कौतुकपूर्ण आस्त्राणों को सुनने में रसिक । सुनो—अदि ऐसा है दो, यह कह कर मुझपूर्वक बैठे हुए राजा के समीप बैठकर कहना शुरू किया ॥

'अस्मि स्वर्गसमः समस्तजगतां सेव्यत्वसंख्याप्रणी-

देशो दक्षिणदिक्मुखस्य तिलकः स्त्रीपुंसरत्नाकरः ।

यस्मिंस्त्यागमदोत्सवव्यसनिभिर्घन्यैरशून्या जनैः

रदेशाः स्पृहणीयमावमरिताः कंनोत्सुकं कुर्वते ॥ ५४ ॥

अनोत् ॥ स्त्री च पुमाश्च स्त्रीपुमा । 'अचतुरा—' इत्यादिना निपात्यते ॥ ५४ ॥

नभूर्न सत्तार में अपनी दर्शनीयता के लिये ध्याति प्राप्त स्थानों में मुक्त, दक्षिण दिशा करी नायिका का मुखतिलक, स्त्री एवं पुरुषरत्नों का सागर, त्याग रूप रत्नों के अम्मामी पुण्यवान् लोगों के भरे हुए और आकाङ्क्षित भावों से सम्पन्न स्वर्ग सद्ग वे स्थान किये नहीं उत्कण्ठित बना देते ।

सम्पूर्ण ससार में अपनी दर्शनीयता के लिये ज्याति प्राप्त स्थानों में अग्रणी, दक्षिण दिशा रूप नायिका का मुख-तिलक, स्त्री एवं पुष्प-रत्नों का सागर, स्वर्ग की समानता करने वाला (विदर्भ देश) है जहाँ के (दिव्य-दिव्य) स्थान आकाशित भावों से सम्पन्न हैं, और ऐसे-ऐसे पुण्यवान् लोग हैं जो त्याग को ही भवान् उत्सव मानते हैं तथा दान के ही अम्घासी हैं अतः वे स्थान किसको उत्कण्ठित नहीं कर देते ॥ ५४ ॥

कथं चासौ न प्रशस्यते—

यत्र त्रिपुरपुरन्निभ्रोर्ध्रतिलकहारिणा हरिविरञ्चिचूडामणिमरीचि-
चक्रचकोरधुम्भितचरणनखचन्द्रकसिनिचयेन भगवता सेव्यते सेव्य-
तयाऽपहसितकैलासधीः श्रीशैलः शूलपाणिना ॥

यत्रेति ॥ त्रिशूलपाणिना त्रिपुरान्तकेन । तत्रस्थेन हि त्रिपुरासुरो हतः ॥

कथो न यह प्रशस्त माना जाय—

जहाँ अपनी रमणीयता के कारण कैलास पर्वत की भी शोभा को समाप्त कर देने वाला श्रीशैल नामक पर्वत त्रिपुरासुर की रमणियों के सिन्दूर तिलक को समाप्त कर देने वाले शूलधारी भगवान् शंकर द्वारा अलङ्कृत हैं, जिनके चरण-नख-चन्द्र की कान्ति पुञ्ज को विष्णु तथा ब्रह्मा के मुकुट-रत्नों के कान्ति पुञ्ज रूप चकोर चूमते रहते हैं ॥

[भगवान् शंकर ने त्रिपुरासुर का वध किया था अतः उनकी विधवा पत्नियाँ ने रौध्रतिलक (लाल तिलक) लगाना छोड़ दिया । विष्णु और ब्रह्मा दोनों ही भक्तिपूर्वक शंकर जी की प्रणाम करते हैं । प्रणाम के अवसर पर उनके मुकुट मणियों की कान्ति चन्द्र सदृश भगवान् शंकर के चरणनखों की उसी तरह चूमती हैं जैसे चकोर चन्द्रमा की किरणों को चूमते हैं । श्रीशैल कैलास पर्वत से भी अधिक रमणीय है, इसीलिये तो भगवान् शंकर वहाँ निवास करते हैं] ॥

यत्र च विकचयिविधवनविहारसुरभिसमीरणान्दोलितकदलीदल-
ध्यजनवीज्यमाननिधुवनविनोदप्रेदविद्रावणनिद्रालुद्रविद्धमिथुनसनाथ-
परिसराः सरसधननिचुलतलचलच्चक्रोरचक्रव्याककुलकपिञ्जलमयूर-
हारिण्यो नाकलोककमनीयतां कलयन्ति कमलकेदारसाराः सरससह-
क्रादफास्कराः सखेरीतीरभूमयः ॥

जहाँ घिरे हुए विभिन्न वनों में घूमती हुई हवा से हिलते हुए नेले के पत्र-
रूप पत्रों द्वारा हवा किये जा रहे निधुवन (मैथुन) विनोद की चक्रावट की
विद्रावरण (समाप्त) करने के लिये नौद में पड़े हुए द्रविड-दम्पतियों द्वारा अलङ्कृत

सरस एव घने वेत के वृक्षों के नीचे घूमते हुए चकोर, चण्डाक, कपिञ्जल (चातक) तथा मयूरों के कारण मनोहर, स्वयं खोज की तरह कमनीय (सुन्दर), कलम (घान) के खेतों से महत्त्वपूर्ण, सरस आम तथा कारस्कर नामक वृक्षों से सम्पन्न कावेरी तट है ।

किं बहुना—

अस्तु स्वस्ति समस्तरत्ननिधये ध्रौदक्षिणस्यै दिशे
स्वर्गस्पपिधिसमृद्धये हृदयहृत्तोदावरीरोधसे ।

यत्र अस्तकुरङ्गकर्मकटशाः संमोगलीलाभुवः
सौर्यस्यायतनं मथन्ति रसिकाः कंदर्पशस्त्रं स्त्रियः ॥५५॥

अधिक क्या कहें ?—

समस्त रत्नों के सामर उस दक्षिण दिशा तथा स्वर्ग की सम्पत्ति से स्पर्धा रखने वाले मनोहर गोदावरी तट का मङ्गल हा जहाँ बरे हुए मृग गिरुओं के नेत्र सद्गुण तत्र वाली समोग लीला की उत्पत्ति भूमि रसिक स्त्रियाँ विविध ऐश्वर्यों के आगार तथा काम बाण हुआ करती हैं ॥ ५५ ॥

तत्र प्रणतसुरासुरशिरःशोणमरांचिचयवद्वलकुङ्कुमानुलेपपल्लवित-
पादारविन्दयस्य क्रीडामिदो भगवतः सुगन्धिगन्धमादनाधिवासिनः
स्कन्ददेवस्य दर्शनार्थमितो गतवानस्मि ॥

मैं वहाँ शहर से मुगन्धित गन्धमादन पर्वत के निवासी भगवान् कार्तिकेय के दर्शन के लिये गया था जिनके चरण-कमलों पर घने कुङ्कुम लेप का कार्य प्रणाम करते समय देवताओं और दानवों के अस्तकों की लाल किरणों का पुञ्ज ही पूरा कर देता है, और जिन्होंने शोण (जैसे) पर्वत का भेदन किया है ।

तस्माच्च निवर्तमानेन क्वचिदेनस्मिन्नध्वरोधिनी न्यग्रोधपादपतले
दीर्घाध्वभ्रान्तेन विभ्रान्यता मया ध्यतां यदाश्चर्यमालोकितम् ॥

वहाँ से लौटते समय सम्भा रास्ता तब ऋत से थक जाने के कारण मार्ग में पूर्ण रूप से फँसे हुए एक दरबन्ध के पट के नीचे आराम करते समय मैंने जिस एक आश्चर्य को देखा है उसे सुनिने ॥

अतिललितपद्मविन्याससारसाधुसिन्धुरवधूस्कन्धमभिरुढा, प्रौढ-
सखीसहायप्राया, प्रान्तपतञ्जामरमरुत्तितालकवल्लरी, कर्णकुव-
लपालंकारधारिणी, रुचिररुचिमञ्जरणनुपूरा, पुरः सरसराग-
गान्धर्विककण्ठचन्द्रविनिःसरत्सरसगीतप्रेहोलनप्रयोगेषु वृत्तावधाना,
नेत्रे मनागमीलयन्ती, ध्रियमाणमायूरातपत्रमण्डला, मण्डलितमङ्गन-

चापचक्रवक्रभ्रुः भूपालपुत्रिका कापि कापि कुतोऽप्युच्चलिता तदेव
न्यग्रोधपादपच्छायामण्डपमशिथियत् ॥

उसी बट वृक्ष छाया-मण्डप के नीचे कोई अत्यन्त सुन्दरी रानपुत्री वही
से किसी स्थान के लिये चल कर आयी हुई थी । वह अपने अत्यन्त सुन्दर पद-
विन्यास की सुन्दरता से साधु (पूर्णता प्राप्त) मिथुरवधू (हयिनी) की भी
गति को मात कर रही थी । प्रौढ (सयानी) सखियाँ उसकी सहायक थी ।
प्रान्त (बगल) में डोलते हुए सुन्दर बँधर की हवा से उसकी अलकवत्तरी
(केशलता) नाच रही थी । कानों में कमल का भूषण पहनी थी । रुचिर
(सुन्दर) तथा रुचिमन् (कान्तिमान्) उसके चरणों के नूपुर थे । सरस
राग (मधुरस्वर) से गाने वाले गन्धर्वों की कण्ठ-कन्दरा से निकलने वाली
मञ्जीतरहरी के प्रयोग में दत्तचित्त थी । आँखों को कुछ मुकुलित की हुई
थी । हाथ में एक मयूर पङ्ख का छत्र था । मोहें टेटी थीं ठो, गोल किया
(चढ़ाया) हुआ कामदेव का धनुस् ही थी ॥

तां चालोक्य चिन्तितवानस्मि विस्मितमनाः—

किं लक्ष्मीः स्वयमागता मुरारिपोर्द्वयस्य वक्षःस्थलात्
कोपात्पत्युक्तायतारमकरोद् देवी भवानी भुवि ।
श्यामाम्भोजसदृक्षपद्मलघलनेत्रामिमां पश्यतो
धातस्तात करोपि किं न घटने चक्षुःसदृशं मम ॥ ५६ ॥

उसे देखकर आश्चर्यपूर्वक मैं सोचने लगा—

भगवान् मुरारि के वक्ष स्थल से स्वयं लक्ष्मी ही आ गयी क्या ? यदि
ब्रूड होकर साक्षान् पार्वती ही पृथ्वी पर आ गयी क्या ? हे ब्रह्मन् ! श्याम-
कमल सदृश पलकों से युक्त लघल नेत्रों वाली इस सुन्दरी को देखते समय
मेरी आँखें हजार क्यों नहीं बना देते । जिससे मैं इसे अच्छी तरह देख सकूँ ॥ ५६ ॥

अपि च—

इन्दोः सौन्दर्यमास्यं कलयति कमलस्पर्धिनी नेत्रपत्रे
कालिन्ध्याः कुन्तलाल्सी तुलयति विभवं मज्ज्यभङ्गैस्तरङ्गैः ।
यस्याः किं दृष्टाप्यतेऽभ्यस्तुमगुणनिवेः काप्यपूर्वेष यस्याः
पुष्पेर्गोर्वैजयन्ती जयति युवजनेन्मादिनी यौवनध्रीः ॥ ५७ ॥

और मुझ चन्द्रमा के सौन्दर्य को प्रस्तुत करता है । आर्य कमल में स्पर्धा
करती है । वास कालिन्धी (यमुना) से सन्तुलित होते हैं । सोमाग्न्य गुणों के
सागर उस नायिका की नवीन यौवन-लक्ष्मी का क्या वर्णन करें जो युवकों के

हृदय को उन्नत कर देने वाली पुष्पबाग (कामदेव) की वैजयन्ती (पताका) है ॥ ५३ ॥

अपि च—

आकारः स मनोहरः स महिमा तद्वैभवं तद्वपः
सा कान्तिः स च विश्वविस्मयकरः सौभाग्यमाग्योदयः ।
एकैकस्य विशेषवर्णनविधौ तस्याः स एव क्षमो
यस्यास्मिन्पुराणप्रभोरिव भवेज्जिह्वासहस्रद्वयम् ॥ ५८ ॥

आकार इति ॥ उरगप्रयोगासुखैर्यथा जिह्वासहस्रद्वयं वर्तते तथा यस्यास्तादृशो जिह्वा भवेद्युः स एव वर्णवित्तुं क्षमो भवेत् । यथा 'जिह्वासहस्र मुखे' इति पाठः । तथा सहस्रशब्दोऽनन्तशब्दवचनः ॥ ५८ ॥

और वह मनोहर आकृति, वह दिव्य महिमा, वह ऐश्वर्य, वह अवस्था वह कान्ति और वह विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाली भव्य भाग्यावध, इनमें से एक-एक के वर्णन में वही समर्थ होगा जिसे उरगप्रभु (सर्पराज ईशनाग) की तरह दो हजार जिह्वाओं प्राप्त रहेंगी ॥ ५८ ॥

सापि यथा त्वमिदानीं मामिह पृच्छसि तयार्थपथमिलिनं कंचि-
दुदीचीनीनामध्वगं दक्षिणस्यां दिशि प्रस्थितमाक्षरेण पृच्छन्तो मुहूर्त-
मिव तत्रैव विधमितुमारमत ॥

जैसे आप मुझसे पूछ रहे हैं, उसी तरह आगे रास्ते में मिले हुए दक्षिण दिशा के लिये प्रस्थित किसी उत्तर दिशा के पथिक से आगे के साम कुछ पूछती हुई वहीं पर एक क्षण के लिये विधाम कर रही थी ॥

श्रुतश्चायं मयापि तेन तस्याः पुरः कस्यचिदुदीच्यनरपतेः श्लाघ्य-
मानकथावशेऽपालापः ॥

मैं भी उनके द्वारा किसी उत्तर देश के प्रसन्न मुन बाने राजा की कथा का अवरोध नुन ।

तस्यिन्स्मिन्मुखे यूनि यूपदीर्घमुजद्वये ।

ते धन्या न्यपतन्त्येषां कंदर्पसहस्रे दृश ॥ ५९ ॥

वे भाँखे घन्य हैं जो उस कामदेव सद्गुण मुत्सुराठे हुए मुख वाले तथा दूत (यज्ञस्तम्भ) सद्गुण सम्बी भुजाओं वाले युवक को देखी हो ॥ ५९ ॥

किं बहुना—

सा त्वं मन्मथमञ्जरी स च युवा मृदुस्त्वैवोन्नतः

श्लाघ्यं तद्भवतोः किमन्यदपरं किं त्वेतदाशास्महे ।

भाभ्यैर्योग्यसमागमेन युवयोर्मानुष्यमाणिक्ययोः

श्रेयानस्तु चित्रेर्विचित्ररचनासंकरशिल्पधमः ॥ ६० ॥

सा स्वमिति ॥ अन्नाप्रत्यक्षमपि बुद्धिकल्पित प्रत्यक्षमिव मन्व्यमानो भवतो-
रित्याह । भवती च सर्वाश्च भवन्ती । 'पुमान्निष्ठा' इत्येकशेषः ॥ मानुषत्वे भूषण-
भूतत्वात्तयोर्माणिक्यत्वम् ॥ ६० ॥

अधिक क्या ?

तुम कामदेव की मञ्जरी हो, वह युवक (मञ्जरी के पराग को आस्वादित करने वाला भ्रमर है) तुम्हारे ही लिये उपयुक्त है । तुम दोनों के विषय में और दूसरी आशंसा क्या करें केवल यही आशा (कामना) करता हूँ कि दैवान् तुम दो मानव रत्नों के औचित्यपूर्ण मिलन से ब्रह्मा की अपूर्व निर्माण-विषयक प्रतिज्ञा तथा उसके अनुकूल कला प्रदर्शन के लिये किया हुआ भ्रम सफल हो जाय ॥ ६० ॥

तत्र जानै स कः सुकृती तेन तस्याः धवणादेवोल्लसद्बहुल-
पुलकाङ्कुरोत्तम्भितांशुकायाः पुरो विस्तरेणैवं वर्णितः ॥

मालूम नहीं वह कौन पुण्यात्मा है जिसके विषय में सुनने मात्र से उस (राजपुत्री) को इतना अधिक रोमाञ्च हो गया कि (रोमों के छटे होने के कारण) उसका वस्त्र उठ गया । (उसकी उत्कण्ठा के कारण ही) उसने इस तरह विस्तारपूर्वक वर्णन किया ।

न च मयापि विस्मयविस्मृतविवेकेन केयं कस्येयं कुत्र कुतो वा
प्रस्थितेति प्रश्नाग्रहः कृतः । केवलमदृष्टपूर्वकपोत्पन्नाकस्मिककौतुका-
तिरेकास्तमितसमस्ताभ्यव्यापारेणैकाग्रतया प्रपन्निरुद्धेनैवाधेनेव मूके-
नेव मूर्छितेनेव विषविघूर्णितेनेव स्तोमस्तम्भितेनेव गतायामपि तस्यां
तेनाध्वनीनेन सह तत्रैव न्यग्रोधतकतले सुचिरमासितमासीत् ॥

नैति ॥ स्तोमश्चेष्टाविघातः ॥

आश्चर्य के मारे मेरी भी चेतना नष्ट हो गयी । अतः मैंने भी पूछने का आग्रह नहीं किया कि वह कौन थी ? किसकी (लड़की) थी ? कहाँ और कहाँ से आयी थी ? इसके पहले मैंने कोई ऐसा रूप नहीं देखा था । अतः आवस्मिक उत्कण्ठा की अधिकता से समस्त बाह्य व्यापारों के शान्त हो जाने के कारण एकाग्रचित्त होकर किसी ग्रह द्वारा पकड़े गये की तरह, अन्धे की तरह, मूक की तरह, मूर्छित की तरह, विषयोग्मत की तरह, व्यर्थ व्यम होने पर विकृत्यं विमूढ की तरह होकर उस पथिक के साथ वहीं उसी बटवृक्ष के नीचे बहुत देर तक बैठा रह गया ।

तदायुष्मन्नेत्र कथितः स्ववृत्तान्तः ॥

तस्यां दिशि तथा सकलजगज्ज्योत्स्नया, अस्मिन्नपि देशे निःशेष-
जनतयनकुमुदेन्दुना त्वया दृष्टेन, दृष्टं यद्द्रष्टव्यम् । अभूद्य मे इलाप्यं
जन्म । जाते कृतार्थे चञ्चुषी । सम्पन्नः सफलः परिधमणप्रयासः ॥

जानुम्नन् ! मैंने अपना वृत्तान्त कह दिया ।

उस दिशा में सम्पूर्ण समार की तिरप उस (राजपुत्री) को तथा इस
दिशा में समस्त मनुष्यों के नेत्र कुमुद के निचे चन्द्रस्वरूप आपकी देख लेने पर,
मैंने सब कुछ देख लिया जो देखना था । मेरा जन्म सफल हो गया । जोखे
कृतार्थ हो गयीं, देशाटन का प्रयत्न आज सफल हो गया ।

‘तदिदानीं किमन्यत् ॥ अनुमन्यस्व स्वविषयगमनाय माम्’
इत्यभिधाय प्यरंसीत् ॥ राजाप्येतदाकर्ण्य चिन्तितवान् ॥

‘अब इस समय और क्या कहूँ । जाना दीजिये अपने विषय (देश) जान के
निचे ।’ इतना कह कर चुर हो गया ॥ राजा भी यह सब सुनकर सोचने लगा ।

स्त्रीमाणिक्कयमहाकरः स विषयः पान्थोऽप्ययं तय्यवाग्
व्यापातोऽपि विधेयिचिन्नरचनस्तर्कितं न सम्भाष्यते ।
किं त्वाश्रयमहद्वैकपविमयोप्याकर्ण्यमाता सती
कान्तेत्युन्नतचेतसोऽपि कुदन्ते नाम्नेष निम्नं मतः ॥ ६१ ॥

श्रीति ॥ मिश्रममिलावहीनत्वाहाववास्पदम् ॥ ६१ ॥

यह देश स्त्री-रत्नों का बड़ा विज्ञान खजाना है । यह पथिक भी दयायें
बढ़ा है, क्योंकि ब्रह्मा का व्यापार (कार्य) बहुत-सी आश्रयपूर्ण कृतियों की
प्रस्तुत करता है । अतः क्या सम्भव नहीं है । आश्रय यही है कि उस सुन्दरी
की रूप-सम्पत्ति मैंने नहीं देखी, केवल सुनी जा रही है, किन्तु उसके नाम ने
ही मेरा इच्छ मनोबल मिरता-सा जा रहा है ॥ ६१ ॥

तथाहि—

नो नेत्राञ्जलिना निपीतमसकृत्तस्याः स्वरूपामृतं
नो नामान्वयपल्लवोऽपि च मया कर्णावतंसीकृतः ।

विश्रं चुम्बति चुम्बकात्मकमयो यद्दृष्टलाद् दूरत-
स्तद्वत्तजितधैर्यमेतदपि मे तस्यां मनो धावति ॥ ६२ ॥

नो नेत्रेति ॥ यद्दृष्टया चुम्बकतन्मरमरम् । पाषाणं कर्म ॥ अयो लोहं कर्तुं ॥
चुम्बति । तथा मेऽपि मनस्तस्यां धावति ॥ ६२ ॥

व्योकि—

मैं अपनी नेत्राञ्जलि से उसके रूपामृत का बार-बार पान नहीं किया । उसके नाम पल्लव को अपने कानो का भूषण नहीं बनाया । फिर भी चुम्बक जैसे चुम्बक वाले पदार्थ से चिपक जाता है, ठीक उसी तरह मेरा भी धर्म तोड़ कर हठात् उसी की ओर दौड़ रहा है ॥ ६२ ॥

सोऽयं दुर्लभेध्वनुरागः पुंसाम्, अजरमस्वास्थ्यम्, अदौर्गत्यं
द्वी.स्थम्, अविपास्यादनमाघूर्णनम्, असाध्वसं कम्पनम्, अनारत्न-
विक्रयं पारवश्यम्, अजरं जाड्यम्, अनिन्धनं उदलनम्, अलघ्न-
ग्रहमुष्माधनम्, अघात्याघातमुदुधमणम्, अमौनं मौक्यम्, अहीन-
श्रुतिवाधिर्यम्, अनष्टरक्षिकमन्धस्थम्, अस्जलितमनोरथं मनः-
स्तम्भनम्, अमन्त्र आघेशः ॥

सोऽयमिति ॥ आवेशो अमन्त्ररादेर्मनसि प्रवेश ॥

अप्राप्य वस्तु में ही पुरुषों का अनुराग हुआ करता है । मुझे यह बिना प्वर की अस्वस्थता है । बिना दुर्गति की अस्थिरता है । बिना भोजन के बिना ही मूर्च्छा है । बिना डर का कम्पन है । आत्मसमर्पण किये बिना ही परवशता है । बिना बुद्धिपा आये ही जड़ता है । लकड़ी के बिना ही ज्वाला है । प्रतिकूल ग्रह के बिना ही पागलपन है । बिना मौन रहें ही गूँगापन है । पलाघात या वायु विकार के बिना ही छटपटाहट है । कानों के रहेते ही बहरापन आ गया है । आँखों के बिना नष्ट हुए ही अन्धता आ गयी है । मनोरथ के नष्ट होने पर भी मानसिक स्तम्भता आ गयी है । बिना मन्त्र का ही आवेश हो गया है ॥

[मन्त्र से लोग देव या भूत का आवाहन अपने शरीर पर करते हैं । ऐसा करने पर लोगो की मनोदशा बदल जाती है । विवेश-शक्ति नष्ट हो जाती है ॥

सर्वथा नमः सुस्थिनजनदुर्जनाय मनोजन्मने, यस्यायमेवंधिघो
व्यापारः, इत्यवधारयन्नवतार्यं सर्वोक्तेभ्यो भूषणानि तस्मै सदयमदात् ।

सर्वथा नमस्कार है, सज्जन को भी दुर्जन बना डालने वाले उस मनजन्मा कामदेव को जिनका ऐसा व्यवसाय है, इस तरह सोचता हुआ अपने सभी अङ्गों से भूषणों को उतार कर उसे दे दिया ॥

तैस्तैरालापैः स्थित्या च कञ्चित्समयमिममथ यथाप्रस्थितं पान्थं
कथमपि प्रेषयामास ॥

उन-उन प्रासङ्गिक बातों से कुछ समय बिना कर किसी-किसी तरह उन पवित्र को उमरे ईप्सित स्थान की ओर भेजा ॥

स्वयमपि तत्कालान्तरान्दमिलितैर्नक्षत्रैरिव सार्द्रमृगशिरोहस्तैः स-
श्रवणचित्रवृत्तिकोपस्करवादिभिः पापद्विकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा
निजावासमयार्सात् ॥

स्वयमपीति ॥ राजा निजदुर्गमयात् । तत्काल तत्त्वगात् । अन्तरालेऽध्वमप्ये ।
राजा चन्द्रोऽपि । तदा तन्निमज्ज्योनि-प्रसिद्ध काले कलाममूहे अष्टमीनक्षत्री
पदस्तराले तत्र । मिलिते परिजनैरनुगम्यमान । कीदृशै । सार्द्राणि मन्त्र-
वाक्यो-
मन्त्रि हरिणशिराणि येषु तथाविधा हस्तना येषां सै मन्त्रवणा सङ्कर्मात् । चित्रस्य
चित्रवाक्यस्य वृत्तिर्वा त्वचम् । उपस्करं मृगयोपयोगि वहन्ति तै । भार्द्रशब्दो
भाववचन । पक्षे सह भार्द्रया नक्षत्रेण, सार्धं मृगशिरो हस्तश्च नक्षत्रं येषु ध्वज-
चित्रे नक्षत्रे । अनयो समाहारद्वन्द्वः । तेन सह । ताव ता वृत्तिश्चात्र तासां उपस्करं
समवर्त्य वहन्ति ॥

राजा स्वयं भी उसी समय रास्ते के मध्य में मिले हुए नक्षत्र-समूह अपने
व्याघ्र परिजनो के साथ राज-भवन चला आया । वे (परिजन) हाथ में
(खून से) भार्द्र मृग का निर और कानयुक्त चित्रकबरा चमड़ा आदि शिकार
के अनुरूप सामग्री लिये हुए थे ॥

[यहाँ का विशेष्य राजा है । राजा का अर्थ चन्द्रमा भी होता है ।
चन्द्रपक्ष में भी विशेषणों का उपयोग किया जा सकता है । चन्द्रानुगामी जैसे
नक्षत्र होते हैं वैसे ही व्याघ्र राजा के अनुगामी थे । नक्षत्र-मण्डल जैसे सार्द्र-
मृगशिरोहस्त (भार्द्रा, मृगशिरा तथा हस्तयुक्त) है एवं मन्त्रवण-चित्र
वृत्तिकोपस्कर (ध्वज, चित्रा एवं वृत्तिका के समुदाय से युक्त) है वैसे
व्याघ्र-परिजन भी भार्द्र-मृगशिरोहस्त (खून टपकाते रहने के कारण मृग का
भार्द्र निर लिये हुए हैं) और मन्त्रवणचित्रवृत्तिकोपस्करवाही (कानों से
युक्त विचित्र रंग कानें चमड़े आदि उपस्कर (सामग्री) को ढो रहे हैं ।
शान्दी समानता के आधार पर यह चित्र प्रस्तुत किया गया है ॥

ततः प्रमृति च—

हृद्योद्यानमदत्तरक्षितसरित्तिरे तस्मान्मन्त्र-
स्तस्येऽनल्पसरोजिनीवदलप्रायेऽपि क्षिप्रतमनः ।

धीरस्यापि मनाऽत्मनस्तृणकुटीकोणान्तराले बला-

हृद्रोऽस्येति विमान्यते परधशैरक्षैरनङ्गानलः ॥ ६३ ॥

इति ॥ हृदयस्य मन्त्रनं हृदयम् ॥ ६३ ॥

उसी समय से—

मनोहर उपवन की हवा से जहराती हुई नदी के तीर पर पेड़ों के नीचे पर्याप्त कमलिनी दलों से निर्मित शय्या पर भी उदास रहनेवाले उस धीरे (राजा नल) के परवश अङ्गों से यह अनुमान लग जाता था कि उसकी माणस पर्णकुटी के किसी कोने के एक भाग में बराबर छोड़ी कामाग्नि लग ही गयी थी ॥ ६३ ॥

एवमस्य—

पुनरपि तदभिष्टाम्पृच्छत. पाम्थसार्थान्
प्रतिपथमथ यूनो यान्ति तस्य क्रमेण ।

हरचरणसरोजद्वन्द्वमुद्राङ्गुलीले-

मंदनमदगिरासा वासराः प्राट्टयेयाः ॥ ६४ ॥

इति धीमिषिज्ञमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचण सरोजाङ्गायां
प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ।



तमसो यत्र विनाशः पश्चिमीश्टुम पद् धनिर्नाम ।

उदयः प्रतिपद्यासौ भुवनमुदे अपरि चण्डरवि ॥

इति विषमपद्मकाशमेत दमयन् यास्तनुसे इम चण्डपालः ।

शिष्टमनिलतिङ्गाविवासचैत्र चतुरमतिःपुटभित्तिचादचित्रम् ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ॥



इस तरह—

मगवान् शहर ने चरणदमल द्वय व विह्वल से विह्वल सलाटवाले उस युवक के वर्षारानीन दिन जो काम मठ व निवास माने जाते हैं, प्रत्येक मार्ग में दमयन्ती वृत्तान्त जाननवाने पधिरों से पूछन ही पूछने अतीत होने थे ॥ ६४ ॥

[इतना भाव मग्न हो गया था कि पवित्र से भी दमयन्ती ने ही विषय में कुछ जानना चाहता था] ।

प्रथम उच्छ्वास समाप्तः ।



उन उन प्रासङ्गिक बातों से कुछ समय बिता कर किसी किसी तरह उस पथिक को उसके ईप्सित स्थान की ओर भेजा ॥

म्वयमपितत्कालान्तरालमिलितेनैश्वर्यैरिव सार्द्रमृगशिरोहस्तैः स-
श्रवणचित्रकृतिकोपस्करवाहिभिः पापार्दिकपरिजनैरनुगम्यमानो राजा
निजायासमयार्मान् ॥

म्वयमपि । राजा निजहर्म्यमरात् । तत्कालं तरङ्गान् । अन्तरालेऽश्वमये ।
राजा चन्द्रोऽपि । तदा तस्मिन्प्रयोगेन प्रसिद्ध काले कल्पामृदे अष्टशनीलवणे मद्-
ग्नराज नम्र । मिलिते परिजनैरनुगम्यमान । कीदृशैः । सार्द्राणि साय-वाक्च्यो-
तन्ति इतिगतिरावि येषु नद्यविधा हस्ता येषां ते मध्यगणां मर्दणाम् । चित्र-
स्य चित्रकायाश्च कृतिका स्वयम् । उपस्कर मृगयायामि वहन्ति तैः । सार्द्रमृग-
मावयन् । पक्षे मद् आर्द्रया नक्षत्रेण, सार्धं मृगशिरो हस्तश्च नक्षत्र येषु श्रवण-
चित्रे नक्षत्रे । सनयोः समाराद्वृष्टः । तेन मद् । ताश्च ना. कृतिकाश्च तामामुपस्करं
ममवार्थं वहन्ति ॥

राजा स्वयं भी उसी समय रास्ते के मध्य में मिले हुए नक्षत्र-सदृश
अपने व्याध परिजनों के साथ राज भवन चला आया । वे (परिजन) हाथ में
(स्तन से) आर्द्र मृग का गिर और जानयुक्त चित्रकबरा चमड़ा आदि शिकार के
अनुकूल सामग्री लिये हुए थे ॥

[यहाँ का विशेष्य राजा है । राजा का अर्थ चन्द्रमा भी होता है ।
चन्द्रपक्ष में भी विशेषणों का उपयोग किया जा सकता है । चन्द्रानुगामी जैसे
नक्षत्र होते हैं वैसे ही व्याध राजा के अनुगामी थे । नक्षत्र-मण्डल जैसे सार्द्र-
मृगशिरो-हस्त (आर्द्र, मृगशिरा तथा हस्त-युक्त) है एवं श्रवण-चित्र
कृतिकोपस्कर (श्रवण, चित्रा एवं कृतिका के समुदाय से युक्त) है वैसे
व्याध परिजन भी आर्द्र-मृगशिरोहस्त (स्तन टपकते रहने के कारण मृग का
आर्द्र गिर लिये हुए हैं) और श्रवणचित्रकृतिकोपस्करवाही (जानों से युक्त
विचित्र रंग वाले चमड़े ज़ादि उपस्कर (सामग्री) को ढो रहे) हैं । शास्त्री
समानता के आधार पर यह चित्र प्रस्तुत किया गया है ॥

ननः प्रभृति च—

हृद्योद्यानमरुत्तरद्वितसरिर्नरे नरुणामध-

म्लरूपेऽनल्पसरोजिनीनवदलप्रायेऽपि खिन्नात्मनः ।

घोरम्यापि मनाङ्गमनस्त्वणकुटीरिणान्तराले बला-

हृग्नोऽस्येति विभाव्यते परवशैरद्वैरनज्ञानलः ॥ ६३ ॥

इति ॥ हृदयस्य बन्धन इत्यम् ॥ ६३ ॥

६ न० ८०

उसी समय से—

मनोहर उपवन की हवा से लहराती हुई नदी के तीर पर पेड़ों के नीचे पर्याप्त कमलिनी दलों से निर्मित शय्या पर भी उदास रहनेवाले उस धीर (राजा नल) के परवश अङ्गों से यह अनुमान लग जाता था कि उसकी मानस-परङ्कुटी के किसी कोने के एक भाग में बलात्कार छोड़ी कामाग्नि लपट ही गयी थी ॥ ६३ ॥

एवमस्य—

पुनरपि तदभिज्ञाम्पृच्छत. पान्थसार्थान्
प्रतिपथमथ यूनो यास्ति तस्य क्रमेण ।

हरचरणसरोजहम्बमुद्राङ्गमौले-

मन्दनमदनित्यासा वासरतः प्रावृषेण्याः ॥ ६४ ॥

इति श्रीशिविक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण सरोजाङ्गायां
प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः



तमसो यत्र विनाश पथिकोच्छ्वास पदार्थनिर्भास ।

उदय प्रतिपत्तासी सुवन्तमुदे जयति अण्डरुचि ॥

इति विषमपदमकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुने स्म अण्डपाल ।

शिष्टमनिलतिकाविकासचैत्र चतुरमनिरुद्धभिलाषारुचिग्रम् ॥

इति अण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे प्रथम उच्छ्वासः समाप्तः ॥



इस तरह—

भगवान् शंकर के अरण्यकमल-द्वय के चिह्न से चिह्नित ललाटवाले उस युवक के वर्षाकालीन दिन जो काम-भेद के निवास माने जाते हैं, प्रत्येक मार्ग में दमयन्ती वृत्तान्त जाननेवाले पथिकों से पूछते ही पूछते व्यतीत होते थे ॥ ६४ ॥

[इतना भाव-भग्न हो गया था कि पथिकों से भी दमयन्ती के ही विषय में पूछ जानना चाहता था] ।

प्रथम उच्छ्वास समाप्त ।



द्वितीय उच्छ्वासः

अथ नृदात्रिदशगलद्वयद्वलपरिमन्त्रमिलदलिकुलाकुलितकुटजकदम्ब-
कुसुमकर्णपूरदम्बमाननासु, त्रिधाम्यन्मदमुच्चरमपूररसनागलीकल-
कपितासु, त्रिरत्नरतद्विहृताललितलाभ्यासु, विगतहंसद्विजराजिषु,
पतत्पयोररासु, क्षाणुनासु, वृद्धास्त्रि गतप्रायासु यथासु, रतिम-
हुरागो मदनललहंसहासहारिण्यामुत्सुकस्तरुण्यामिषागताया,
शरदि, द्विरदनदगन्धमन्धनानुधापिते कुसुमिनसतच्छदच्छापासु
विमूर्जति रंभाधुपितरं सरकरालकण्ठे कण्ठारवकदम्बरे, गृह-
दीर्गिकाभृणालिनागण्डबण्डनविषमरमणायनुन्नदम्बु । शरत्समये
प्रवेशमदलमृदङ्गश्चिर इममण्डलेषु, स्मरधारिनिर्निर्मयितपान्य-
नार्यप्रहारविधिरनिष्यन्द्यिन्दुसंदोह इव घनस्थलीधूमिपति घन्धुर-
घनूककुसुमप्ररे, प्रसरन्तीषु शरत्कर्मप्रवेशानन्दधन्तमालासु नि-
शङ्कशुकुलागलाषु ध्यनाणासु स्मरराजपान्यविजयघोषणासु पक-
कलमगन्धशालिपालिनागालिनाहर्पगातिषु, शरच्छ्रीकटाक्षपून्मालसु
नीलनीरजेषु, कानि यथावधूप्रस्थानपटदे पट्चरणचक्राले, प्रभात
इव घनतिमिरविषमरमणीये आते जलनिमिशयनशायिशार्ङ्गिनिद्राद्रुहि
प्रिनिद्रसान्द्रसरससरोजराजिराजितमरसि शरत्समये, स महीपतिः
समासधनप्रिहारिर्निरमिधुनेन गीयमानमिदमनदलीलं इन्नेकत्रयम-
शृणोन् ॥

अथेत ॥ अतस्तस्मिन्निनि मन्त्रं स राजा निष्कृष्टानने विषयान्तरामिधुनेन गी-
यमान रागविशेषाच्चार्पणमिदमिति वक्ष्यमाणमनरलीलमप्राप्य शङ्कोकत्रिनय
भाङ्गितवान् । किञ्चिदिष्टम् । कलहृषा एव हामस्मिन् रम्याया तदायामनिनवप्र
शृतायाम् । अथ च शरदेव तदङ्गी वृत्तिः । तस्याप्रागेनाया रागास्त्वय प्राप्तायाम् ।
उत्सुक उत्क हस्तुक्पन्नरम् । तदा मदन सीवतया नरुगिमोद्रेकेण वा कलकलौ
यस्याः । तथा शुभ्रवादमोपमौ हामङ्गासौ स्तोऽस्यामिति कर्मधारयान्मन्धर्ययः ।
न कर्मधारयादिति ॥ प्रायिकम् । किं विदधानः कृत्वाः कामः । रतिं चित्ता
संकिम् । कामुः । वर्यम् । किमुनासु । गनप्रायासु स्वक्षरं पासु । तथा
कुसुमान्येव कर्णपूरं तत्तमास्त्रैः शून्यानि काजनानि वनानि यासु । तथा मदन
मुषराग मयूराग या रमनाली जिह्वाश्रेणिस्तस्या कलकलितम् । तद्विश्राग्यद्वि-
रमितासु । वर्षोदये हि केकायन्ते न प्रान्ते । मदायात्रात् । तथा स्तोत्रविद्युदुद्यो-
तासु । व्यपेतहमपचिपद्भिषु अरवदनासु । चीजशुद्धस्वप्रहासु । काम्निव । वृद्धा

स्विव । तदा । रति र्ममोग' । गत प्रकृष्टमवमिष्टफल दं व यासाम् । तथा कुसुमैः पुष्पदामभिः कर्णपूरैश्च शुन्यं क शिर आनन च यासाम् । तथा रसनायाः काञ्चयाः फणितस्य मुखरमयूरयो ललितस्य मधुराद्भविन्यासस्य लावण्यस्य च लोचन-लेखकमनीयगुणस्य विस्तृतद्विदुषयानम् । तथा व्यपेनहसशुभ्रदन्तराजिषु पतरकुचासु । तथा सीण गर्भसंभवाभावाद्दिनष्ट शुक्र पुवार्यं वासु । न पुननिवृत्तवार्या स्थिति व्याख्येयम् । पुंसो वीर्यं स्त्रीणां रज इति प्रसिद्धे । भनएव न विद्यत बलं वीर्यं यासामिग्यबलम् । रसमाशब्द काञ्चीपथे न पर ताळम्ब्य । दन्त्योऽप्यारित । तथा च विश्वप्रकाशः—'रसना काञ्चिजिह्वयो' इति । द्विरदमदगन्धस्य सम्बन्धो द्विरदमदगन्धोऽयमिति प्राप्यभिज्ञा तयानुधाविते । सन्धानपाठे तु सन्धान सन्धि-मैत्री मारयमिति यावत् । शरदि ससञ्चदा' पुष्प्यन्ति । ते च-मदगन्धयरतसो ग-जभ्राण्या सरोप 'विस्फूर्जति सिंहवृन्दे' । मृणालिकावाण्डस्य खण्डनाय योऽमौ विरा-मोऽर्थादादरयव । तेन रम्य यथा भवति स्थित्वा स्थित्वा मृणाल खर्वन्ति ताकपाय-सैष्टुदकपादाश्च नाद्र कुर्वन्तीरथर्व । हसमण्डलानि शरश्रवणमद्रलमृदङ्गा । यम्भुक-कुसुमस्यातिलौहित्याद्विरद्विजवरधिररवम् । गुहाबलिभ्मोरणम् । कलमस्य श्वेतशाले गन्धशालेश्च रक्षिका मीनव कंदर्पराजजयघोषणा । विरसञ्चालारलानि शरस्त्र-पमीकटाचा । भृङ्गगणश्च याम्या चर्पाक्षवा प्रयाणवणध । घनो मेघो घनं च साग्नम् । शरनस्थानम् । निद्राद्रोहो विनिद्रसाम्प्रत्यरोजराजितसरस्थ च शरस्य भातयो समानम् ।

[इसके बाद समीपवर्ती वन में घूमता हुआ राजा किन्नर-मिथुन द्वारा स्पृतापूर्वक गाये जा रहे तीन बालों को सुना । उस समय तक वर्षाकाल बीठ चला था और शरत् का आदिर्भावि प्रारम्भ हो गया था । प्रस्तुत अनुच्छेद में वर्षा को एक बूढ़ा बधू के रूप में और शरत् को एक तरुणी के रूप में चित्रित किया गया है ।]

तदनन्तर एक समय राजा का मन बूढ़ा-सदृश अतीतप्राय वर्षा-बधू में नहं लग रहा था; क्योंकि जगल बरसते हुए गाढे पराव पर झूमते हुए भ्रमर-यूयो से व्याप्त फुटज एवं कदम्ब के पुष्परूप उसके कर्णभूषण से घुन्न हो गये थे । मद से मुखर (बाचाल) मयूररूप बिह्ला-समूह की मधुर ध्वनि समाप्त हो चली थी । विद्युत्कटा मे (समृद्ध) होनेवाला मनोहर (सीन्दर) घटता जा रहा था । हस रूप दत्त-पति समाप्त हो गयी थी । पयोधर (मेघस्तन) गिरते जा रहे थे । शुक्र (शुक्रवृह) क्षीण (जस्त) हो गये थे । (बुढ़ापे के कारण) शुक्र (रज) क्षीण (समाप्त) हो गया था ।

(ऐसे ही अवसर पर) मद से सुन्दर कलहतरूप-हाथ के कारण मनोहर (स्वयम्) मायी हुई शरत् तरुणी में उसका मन उत्कण्ठित हो गया । हाथी के मदजल-गन्ध की धारणा में लिपे हुए छिलोने की छाया में दोस्ते हुए उन्टे हुए केसरी (गर्दन में बालों) के कारण भयङ्कर बन्ध बाले सिंह गरज

रहे थे। शरद्-वधू के आममन के अवसर पर गृहदीर्घिका (नहरे बहिस्त या Long-canal) के बमन्ददण्ड को साकर हनमण्डल माझलिक मृदङ्ग की तरह मधुर ध्वनि कर रहे थे। वनमूमि में सुन्दर बन्धुक-मुन्गो की पङ्क्ति कामवाण-सन्ध में मये गये पथिरुवर्ग के सासखलो (धावो) में निकलते हुए रुधिर बिन्दुमग्न की तरह प्रतीत हो रही थी। शरत्-लक्ष्मी के प्रवेश से तपन होनेवाले आनन्द के कारण निशंक तोनों की पङ्क्ति बन्दनमाला (तोरण) की तरह फैल रही थी। पके हुए सुगन्धित कलम (धान) की देख-रेख करते बागी बालिकाओं की गीनि सुप्राट् कामदेव की राज्य-विजय की घोषणा की तरह सुनायी पड़ रही थी। शरत्-लक्ष्मी के बटासस्वरूप नील कमल खिल रहे थे। भ्रमरवर्ग वर्षा-वधू के प्रम्यानकाशीन गगादे की तरह गम्भीर ध्वनि कर रहा था। जैसे प्रातःकाल घन तिमिरविराम (गाढ़े अन्धकार के नष्ट हो जाने) में रमणीय हो जाता है उसी तरह शरद्-समय भी घन-तिमिर-विराम (बादलजन्य अन्धकार के नष्ट हो जाने) से मनोहर हो गया था। समुद्र-मध्य पर सोनेवाले भगवान् विष्णु की निद्रा टूट चुकी थी। विले हुए घने तथा सरस कमलों की पङ्क्ति से सरोवर सुशोभित हो रहे थे। (ऐसे समय में) उस (नल) ने समीप के बन में बिहार करनेवाले किन्नर-पिथुन द्वारा गाये जाते हुए सन्ध वर्ष बाफे तीन वक्तीक सुने ॥

[कर्णमूरग—कदम्ब और कुटज के फूलों पर जब काले भ्रमर बैठे हो तो उनकी शोभा निश्चिन् ही अधिक समृद्ध हो जायगी। ऐसे भ्रमरयुक्त कदम्ब और कुटज पुष्प की कवि ने वर्षा-वधू का कर्णमूरग बनाया है। वर्षा काल के बीतने पर कदम्ब के फूल भी समाप्त हो जाते हैं। वृद्धा लोग जैसे आङ्गारमूर्ग्य हो जाती हैं वैसे वर्षा भी अन्तछार (कर्णमूरग) शुष्म हो गयी।

मुञ्जरमयूर—वर्षाकाल में मयूर आनन्दमग्न होकर बाबाल बन जाते हैं। बाबाल मयूर ही वर्षा-वधू की जिह्वा हैं। वृद्धा के मुख से जैसे मधुर ध्वनि नहीं निकलती वैसे वर्षा वधू की मयूर जिह्वा अब मधुर ध्वनि नहीं कर पाती।

विरलनरतडिन्ध्या—वृद्धा जैसे योगिन के ललित स्थावस्थ से वञ्चिन् हो जाती है उसी तरह वर्षा का भी सोन्दर्य कम हो गया है क्योंकि उसके स्वस्थ का समृद्ध करनेवाली विशुल्लसता अब कभी ही कभी उगती है।

हृषद्विज—वर्षाकाल में हंस मानसरोवर चले जाते हैं। शुभ्रनारूप समानता को हृष्टि में रखकर हंसों को ही वर्षा-वधू का दात बनाया गया है। वृद्धा के जैसे दाँत गिर जाते हैं उसी तरह वर्षा-वधू के हंसरूप दन्त समाप्त हो गये हैं।

पतत्पयोधरा—बुढ़ापे में स्तन लटक जाते हैं। वर्षाकाल के अन्त में पयोधर (मेघ) समाप्त होने लगते हैं।

क्षीणशुक्रा—वर्षाकाल में शुक्र ग्रह अस्त रहते हैं। वृद्धा स्त्री का शुक्र (रज) समाप्त हो जाता है।

मदकलहस—शरत्-काल में हस आ जाते हैं। हसों को ही यहाँ शरत्-क्षणी का हास कहा गया है। रस से स्वयम् उपस्थित तरुणी के प्रति राजा की उत्सुकता स्वाभाविक है। द्विरदमदगन्ध—छितों के फूल में गजमद की तरह गन्ध होती है। भयङ्कर सिंहों को फूल की गन्ध में मज्जमद-गन्ध की भ्रान्ति हो जाती है। इसी लिये तो उधर जोरो से दौड़ते हैं। निद्राद्रुहि—शरत् समय में भगवान् विष्णु सोकर जगते हैं ॥]

धूम्याः शरदि सेवन्ते प्रोल्लसच्चित्रशालिकान् ।

प्रासादान् स्त्रीसखाः पौराः केदारान्श्च कृपीवलाः ॥ १ ॥

धूम्या इति ॥ प्रोल्लसन्त्यच्चित्रशालिका भालेख्यमूमिका येषु । पक्षे चित्रा बहु-विधा शालयः । स्त्रीसखा इत्युभयत्र योज्यम् ॥ १ ॥

वे नागरिक धूम्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्रशालिका (भव्य चित्रों के उपयुक्त भित्तिचित्रों) वाली अट्टालिकाओं का उपभोग अपनी स्नेहमयी रमणियों के साथ करते हैं और वे कृपीवल (किसान) भी धूम्य हैं जो प्रोल्लसच्चित्रशालिका (सुन्दर विविध धानों वाले) खेतों का उपभोग करते हैं ॥ १ ॥

[यहाँ प्रोल्लसच्चित्रशालिकान् का प्रासादान् और केदारान् दोनों के साथ अन्वय है ॥ १ ॥]

नमिताः फलभारेण न मिताः शालिमञ्जरीः ।

केदारेषु हि पश्यन्तः के दारेषु विनि स्पृहाः ॥ २ ॥

कुत स्त्रीसखा इत्याह—नमिता इति ॥ हि घरमात्कारणात् । दारेषु के नि स्पृहा इषु । किं कुर्वन्त । फलभारेण नमिता चक्रिता न मिता स्तोका केदारेषु सेषेषु शालिमञ्जरी पश्यन्तः । लक्ष्मणं लक्ष्मीपतिविभाव ॥ २ ॥

खेतों में फल भार से नवी हुई अपरिमित धान की बालों को देख कर कौन आदमी स्त्रियों के प्रति अनुत्कण्ठित रह सकते हैं ॥ २ ॥

[फलभार से नमित (नवी हुई) न + मित (अपरिमित) शानि—मञ्जरी (धान के बालों) को केदार (खेतों) में देख कर कौन स्त्रियों में (के + दारेषु) अनुत्कण्ठित रह सकते हैं। स्त्रीवाचक दार शब्द पुल्लिङ्ग और नित्य बहुवचन है। केदार शब्द खेत का वाचक है। दूसरे केदारेषु में कि शब्द का प्रथमा बहुवचन 'के' है और दार शब्द का सप्तमी बहुवचन 'दारेषु' है ॥ २ ॥]

प्रावृषं शरदं चापि बहुवाकाशहरिणीम् ।

रिलोभ्य नोत्सुकः कः स्यान्नरो नीरजसङ्गताम् ॥ ३ ॥

प्रावृषन्ति ॥ रमणीयत्वात् । बहुधा पुनः पुनर्विडम्ब्य प्रावृषमाकाशस्य श्योम्न-
स्तिराधयिनीं नीरजस्य निराशु गतामतिघ्नन्तां शरद् च काशपुंरम्याम् । तथा
नीरजे पक्षे संगतामन्विताम् ॥ ३ ॥

बहुवाकाशहरिणी (अधिकवाकाश का) मेधा स (छिगा देने वाली)
तथा नीरजस्य + गता (धुन्डिहीन) वर्षा को नीर बहुधा + काश + हरिणी
(अधिकवाकाश पुनः स सुगमिष्ठ होनेवाली) और नीरज + संगता
(कन्ये स सम्बन्धित) शरद् को देखकर कौन आदमी उत्कण्ठित नहीं
हो जाता ।

[शरद् और वर्षा दोनों ही शृङ्गार के उद्दीपक हैं । वर्षा के दिनों में
आकाश अधिकवाकाश बदला से छिगा रहता है और पानी पड़ जाने के कारण
राश्यों की धूलि समाप्त हो जाती है । इस पक्ष में 'हरिणी' का उपयोग छिगाने
कर्म में किया जायगा और शरत्-पक्ष में 'हरिणी' का उपयोग मनोहरिणी
कर्म में किया जायगा । शरत् काश की शोभा काश-पुष्पों से बढ़ती है और
इन दिनों में कमल पर्याप्त रूप में खिलते हैं । वर्षा पक्ष में नीरजस्य + गता
और शरत् पक्ष में नीरज + संगता अन्वय करना चाहिये ॥ ३ ॥

[क्लिन्न मिथुन के इन श्लोकों को सुनकर उत्कण्ठा-विह्वल राजा रमणीय
उद्यान की ओर चला ॥]

जनेन मृदुमूर्च्छनान्तरङ्गरङ्गिनामरेण ध्वजपथप्रयमप्रियातिथिना
श्लोकत्रयेण त्रिपत्रिमविषयवैरस्यव्रतविकडिनकुडारेण, द्वारपरि-
ग्रहपराङ्मुखोऽपि शृङ्गारशक्तिशृङ्गनुचुङ्गमारोप्यमाणस्तद्देशोद्यानमम-
न्दमन्दारनरन्दासोदमत्तमधुकरमधुरार्णवरमणायमुपसर्तुमारमत ।

जनेन श्लोकत्रयेण त्रिपत्रिमविषयवैरस्यव्रतविकडिनकुडारेण नीपमानस्त-
द्देशं वनं गन्तुमारेमे ॥

* मधुर स्वरज्जरी में आन प्रान अनरावाले, कर्णमार्ग के सर्वोत्तम त्रिप-
वर्णिय, अत्यधिक (सांसारिक) विषयों के प्रति वैरस्य (वैराग्य) व्रतस्य
विषयता का समाप्त कर देने वाले तेज कुडाररूप इन तीन श्लोकों में राजा
विवाह के प्रति उदासीन रहता हुआ भी शृङ्गारशक्ति के शिखर पर चढ़
रहा था । जने मन्दार-पुष्पों की पर्याप्त गन्ध से उमत्त अनरा की मधुर
ध्वनि से मनोहर उद्यान की ओर चला गुरु किया ॥

[राजा के उद्यान में पहुँचने पर वनपालिका ने वन के बहुत से कौतुक पूरा स्थान दिखाया । इस अनुच्छेद के प्रारम्भ से लेकर 'वनमास्तेन' तक के पद्य वायु के विशेषण हैं । वनरक्षका की उक्ति सभङ्गश्लेष के माध्यम से वायु वधू-मुख और वन, दोनों पक्ष में लगेगी ॥]

प्रथमसम्मुखप्रेक्षितेन चलच्चन्दनामोदनन्दिनान्दोलनवेगविभ्रस्त
कुसुमिततरुशिखरसुप्तसुरतथ्रमखिन्नकिनरीनिविडतरपरिरम्यमाणकि
नरनमस्तृतेन कीडाकमलदीर्घिकातरङ्कोत्सङ्गरङ्गत्तरुणतामरसरसविस
रोद्गारहारिणा यौवनमदनिरुद्धनैपथीधम्मिल्लुवल्गरीचलनधिलासलास
केन घनमास्तेनोत्पुलकिततनु स्तोत्रमन्तरमनिकम्प्य 'देव, भयद्वैरि
घघृहदने घने च नारद्वतरुपशोभे भान्ति गण्डशैलस्थलालङ्कारधा
रिण्यो लोभ्रलता, नागरुचिताश्चन्दनपत्रभङ्गा, नालिकेरचितस्मितल, ,
मया दृष्टिपथभवतपति घनाञ्जनयष्टिका, नाभिरम्या नीलतमालका,
नाधरीकृतस्ताम्बूलोराग, पल्लवितमेतद् दृश्यतेऽशोकजालम् । इतश्च
काञ्चनगिरिरिय सुरचिन्त क्रीडापर्यन्त । इतश्च गूर्जरकूर्चमिषाघण्डित
प्रवाल घालशालघनम् । इतश्च भवद्वरिनगरमिवानेकविधकुलसकुल
कूपकुलम् । इतश्च धूर्जटिजटाजूट इव पुनागवेणितो धार्यापरिसर ।
इतश्च कुदसेनय कृतान्धस्थामहिता च क्रीडासरित्पुलिनपान्ति ।'
इति सभङ्गश्लेषोक्तिकुशलया वनपालिकया निवेद्यमानानानि घनघिनोद
न्यानान्ययलोकयाञ्चकार ॥

तत ईदृग्विधेन वायुना रोमाञ्छिततनु देवस्यायामय तवारिर्क्षामुखे घने
चेदमिति भङ्गरलेपोक्तिश्चया वनरक्षिका कथ्यमानानि घनकौतुकस्थानानि नलो
क्यलोक्यत् । आन्दोलनवेगोभ्यादावान्दोलन गरीरेष वचनकृतम् । त्वद्विस्त्रीमुखे
अरमापर्य गतसौन्दर्य कपोलकलकालङ्कारिण्यो लोभ्रस्य विलेपनागपर्य लता
मण्डनवलयो न भान्ति । अगद्वेगं चिन्ताश्चन्दनदम्बस्य पत्रभङ्गा पप्रवक्ष्य ।
अलिकललटि निरलक पुण्ड्रम् । वायुमुच्छये । घन सा द्रमञ्जन तस्य दृष्टि
शलाका । अभिरम्या मस्तृता । प्रकपण मीला कटिलकेन अधरोऽस्यास्ती यधरी
ओष्ठवान् । नागुराग ओष्ठसवद्व कृत इति भाव । सर्वत्र नम्यव च । अवनत
सीति तु मनिहितमत्र योज्य न प्रत्यक्षम् । पल्लवितशब्दा लक्षणया प्रवृद्धा ।
'लोक मप्रलापमनोर्ध्वम्याञ्जान शोकजम् । जगत्प्रथमम् । घने च नारद्वतरुमि
कृतशोभे मद्वत्पुत्रयुलपायणस्थलामुपगम्य लोभ्रस्य तरुणिपथ्य लता नारद
भा त । नागेशो रचिताश्च दनतरा पत्राणा भङ्गा विभोषा । तिर्यको पृष्ठा
नालिकेरैस्तस्मिन्निष्ठ । नया गरीना । अञ्जनस्य नाभिनो यष्टि प्रकाण्ड ।
तमाञ्छा इति इत्येक । अतएव नाभिरम्या नाभिद्वया इति भाव । नाधरीकृतो
न हीभीकृत । ताम्बूली चट्टी । राग मक्ति । किसलयितमशोकानां जालं लण्ड ।

इतिश्च मुष्टं रचिनः सुरस्रितो म्यासश्च । प्रवालः पल्लवाः । पद्मे भस्मणिहता भत
एव प्रवृद्धा वालाः केशा यत्र । अनेकविधैर्वकुलैः सकुलम् । पद्मे अनेका विधवा
सूनभर्तृका टेपु कुम्पेपु तैः कुलैर्गोत्रैः सकुलम् । पुनागमग । अन्यत्र पुमास्रगो
वामुकि । कृता उपादिना ध्वज्या पिप्पली यस्याम । तथा महिता चार्वी । पद्मे
कृन्तनशायामने द्रोणमुनाय हित यथा ॥

अम्पन्न सामने ही बहनी हुई, फैलती हुई चन्दन-गन्ध से प्रसन्न, पुष्पित
वृक्षों की ऊँची डालियों पर मुरन-धम (मैथुन की घटादट) से ढक कर
सेटी हुई और (हवाक) अम्पन्न-वन में डरी हुई किन्नरियों द्वारा गाथाविज्ञान
प्राप्त किये हुए किन्नरों से नमस्कुत, थोड़ा कमजोर-दीर्घिका (कमठों में भरी
बावली) की लहरों के सम्पर्क में कम्पित तामरस (कमठों) के रसमय
गन्ध व्यक्त करने के कारण मनोहर, यौवन-मद की हो मानो रोक रखने के
लिये बाँधी गयी निषध-मुन्दरियों की बेनी क बालों की कम्पनरूप विलासपूर्ण
नृत्य करानेवाले वन-पवन में राजा की रोमाञ्च हो आया । ”

[मैथुन-धम से ढक कर किन्नर-अम्पनी पेड़ों की डालियों पर सोये थे ।
जब जोर से हवा का झोंका आया था तो डरी हुई किन्नरियाँ अपने परिजनो से
लपट जानी थीं । पवन के इस उपकार से उपहन होकर किन्नर लोग
उन्हें नमस्कार करते थे ।

यौवनमद—कोई चीज भाग न निकले इसलिये उसे बाँध देते हैं ।
निषध-मुन्दरियाँ मानो इसलिये अपनी बेनियाँ बाँधी हुई हैं । पवन उन
बेनियों के बालों को नचा रहा है ।]

थोड़े व्यवधान का अतिक्रमण कर (मसीप आकर) समझदृष्टेय के
माध्यम से झूलने में बुद्धन वनपालिका ने कहा—देव ! आपकी शत्रु-बभ्रुओं के
पूर्ण (जरम्) शोभाहीन मुख पर ज्योति भाग की अलङ्कृत करने वाली शोत्र
(लाल रंग) में बने हुए गजा—बिह्व और अयस मिश्रित चन्दन में बनी हुई
पत्र-रचनाए तथा अलिक (ललाट) पर अच्छी तरह बनाये गये तिलक-विन्दु
बच्छे नहीं प्रतीत होतें । घने यज्जन-सुक्त यष्टिका (चलाका) दृष्टिमान में
नहीं सनरतीं । नीचम (अमन्त काले) वज्र (बाल) अभिरम्भ (सुन्दर)
नहीं गतें । पान का लालिमा में जोश को लाल नहीं किया जाता । शोक से
कारण उत्पन्न दुरवस्था पर्याप्त रूप में बढ़ी हुई दिवाली पट्टी है ।

वनपल्ल—नारंग (नारंग) के वृक्षों में सुशोभित इस वन में गण्ड-वीर
(गिरे हुए पत्थरों) की अलङ्कृत करने वाली शोभन लताए नागों से सुशोभित
चन्दन-पत्रों की विधेयताएँ और नारियल पेड़ों में व्याप्त तिलक वृक्ष बच्छे

लगते हैं। नवीन एवं घनी अञ्जन वृक्ष की शाखायें दीखती हैं। नीले तमाल वृक्ष नाभिरम्य (अत्यन्त रमणीय) हैं पान की लताओं की जड़ें कम नहीं की गयी हैं। अशोक के किसलय-पत्ते सब जगह दीखते हैं। इधर काञ्चनगिरि जैसे सुर + विन (देवताओं से व्याप्त) है उसी तरह आपका क्रीडाशैल भी सु + रचित (अच्छी तरह सजा हुआ) है। गुजराती लोगों की दाढ़ी जैसे अल्लण्डिन प्रवाल (बिना कटे हुए बालों वाली) होती है वैसे आपका नवीन शाल वृक्षों का वन भी अल्लण्डित प्रवाल (न कटे हुए किसलयों वाला) है। आपका शत्रु-नगर जैसे अनेक विधवकुल सकुल (अनेक विधवाओं से युक्त) है वैसे ही आपके बगीचे के रूप अनेकविध + बकुल + सकुल (विविध तरह के बकुल वृक्षों से व्याप्त है)। धूर्वटि (भगवान साकर) की जटा जैसे पुनाग (विशिष्ट सर्प) से वेष्टित है वैसे ही इधर का बापी-परिसर (सरोवर तट) पुनाग वृक्ष से व्याप्त है। कुशों की सेना जैसे अश्वत्थासहित (द्रोणपुत्र अश्वत्थामा पर छोड़ी गयी) थी वैसे ही क्रीडा-नदी की तट-पत्तियाँ अश्वत्थ + आमहित (पिप्पल वृक्षों के कारण पूजित) हैं ॥

[नारगरूपशोभे—इस पद के न का अन्वय शत्रुपत्नी वदन पक्ष में भान्ति क्रिया के साथ हुआ है। जरम् शब्द पर्याप्त अर्थ का वाचक है। अर्थात् जर + गलपशोभे वदने (पूर्णरूप से शोभाहीन मुख पर) लोध्रलता प्रभृतय न भान्ति (लोध्रनिर्मित पत्र रचनायें अच्छी नहीं लगती)। नारंग + तट + उपशोभे (नारंग के वृक्षों में मण्डित) वन में लता आदि सुशोभित हो रही हैं। मुख पर गण्डस्थल शैलस्थलालङ्कारधारिणी (कपोल भाग को अलङ्कृत करनेवाली) लोध्रलता (लाल रंग से निमित्त लतायें) सुशोभित नहीं हो रही हैं। वन में गण्डस्थलशैलस्थलालङ्कारधारिणी (स्वभावान विरे हुए शिखारण्यो को अलङ्कृत करनेवाली) लोध्रलतायें अच्छी लग रही हैं। नागरविते—मुख पर अगवधिमित्त अन्दन रूप से बनी हुई पत्र-रचना अच्छी नहीं लगती। वन में नागो (सर्पों) से मण्डित अन्दन पत्रों की वज्रतायें सुशोभित हो रही हैं मालिके अलिक (ललाट) पर तिलक नहीं किया गया है। वन में नात्रिकेर (नारियल के पेड़ों) में तिलकवृक्ष घिरे हुए हैं। नीलतमालवा-अत्यन्त नीचे रेश अभिरम्य नहीं है और नीले तमालवृक्ष रमणीय हैं। घनाञ्जनपट्टिका—गाढे अञ्जन से लिप्त शलाका आँखों में नहीं लगाई जाती। वन में नवीन-नवीन अञ्जन पेड़ों की घनी शाखायें दीखती हैं। नाधरी—अधरो में ताम्बूल का रंग नहीं लगा है वन में पान की लताओं की जड़ें छोटी नहीं की गई हैं। इग अनुच्छेद के नारंगनक्ष से लेकर नाधरीकृत तब माने “न” का मुख पक्ष में निषेध अर्थ

है और वनपक्ष में न के उतरवर्ती शब्दों से मिल कर नारंग, नाग, नारिकेल आदि विशेष अर्थ है ।

चलच्चकोरचक्रवाकचक्रचण्डुचञ्चलचञ्चरीकचरणचूर्णितचम्प-
काङ्कुरमरिचमञ्जरीदलदन्तुरेण वनमार्गेण स्तोकमन्तरमतिक्रान्तमनया
पुनर्गन्धं वमारे ॥

वचनम् ॥ सञ्चारयोगेन मार्गेण क्रियदपि श्ववधानमतिक्रान्तः पुनरपि तथैवं
वमारे ॥

छूमते हुए चकोर और चक्काक-सतूह के चोंचों तथा चक्क भ्रमरों के
चरना से झूमित चम्पे के अङ्कुरों तथा मरिच वृक्षों की मञ्जरियों से ऊँचे
नीचे वन-मार्ग से थोड़ा और आगे बढ़ कर उस (वनपात्रिका) ने राधा से
कहा:—

‘देव’ पुरन्दरानन्दिनोद्यानस्पर्धिनोऽस्य वनस्य किं किं
वर्ण्यते ॥

देवेति । देव, नन्दस्पर्धिनोऽस्य किं वर्ण्यते ॥

देव इन्द्र को आनन्द देनेवाले नन्दन-वन में प्रतिद्वन्द्विता करनेवाले
इस वन की किन-किन विशेषताओं का वर्णन करें ॥

यत्र त्रिजटाश्रयमनेकजटा, मुरदेकपुष्पकमनेकपुष्पाः, समुद्वे-
जितराममानन्दितरामा, समुपहसन्ति लङ्घेद्वरं तरवः ॥

यदेति ॥ रावण नरको हसन्ति । त्रिजटा रावणस्वया । जटा मूलानि पुष्पकं
विमानं कुमुदं च । रामो दाशरथि । रामा स्त्रिय । अनेकजटा इन्द्रेकशब्देन
संकरोपचयते । तनोऽनेकशब्दोऽसंख्यानवचन ॥

यहाँ के वृद्ध लङ्घेद्वर (रावण) का भी उपहास करने हैं । क्योंकि रावण
त्रिजटाश्रय (त्रिजटा राक्षसी का शरण) है । यहाँ के पेड़ अनेक जटाश्रय
(विविध जटाओं में युक्त) हैं । रावण का एकपुष्पक (विमान) बाला है ।
(यहाँ के वृक्ष अनेक पुष्पक (बहुत पुष्पों वाले) हैं । रावण समुद्वेजित राम
(राम को उद्विग्न करने वाला) है ये वृक्ष आनन्दित राम (रामाओं (स्त्रियों)
को आनन्दित करते हुए) हैं ॥

यन्निजम् प्रसन्नमूरुहारिणि प्रसुजङ्गमप्राप्ते चित्तिप्रसौद्ध्यदे
छन्दःशारु इव चेताल्लयं मालिनी शिखरिणी पुष्पिनात्र च दृश्यते
विविधा जातिः ॥

यस्मिन्नेति ॥ ये स्फुटमिव ताढी ताड्युमः । इय जातिर्मालिनी दृश्यते । द्वे अपि
कीररसौ । माला वस्थामग्नि । तथा शिखरयुक्ता कुसुमिनाप्रभाया च । किमिव-

शिष्टे पने मत्सैमयूरं रम्ये । तथा भद्र मनोज्ञं भुजङ्गप्रयातं वृद्धाणी च प्रयातं यत्र । कौञ्च पक्षी । पक्षे मत्समयूर भुजङ्गप्रयातं कौञ्चपदा वैतालीयं मालिनी शिखरिणी पुष्पिताया च छन्दोनामानि । जानिश्च उक्तादिरुक्थन्ता ॥

जैसे छन्द शास्त्र में मत्समयूर, भुजङ्गप्रयात, वैतालीय, मालिनी, शिखरिणी, पुष्पिताया आदि छन्द देखे जाते हैं वैसे ही मत्स मयूरो से सुशोभित, अच्छे भुजङ्गो (सर्पों और बिटों) के प्रयात (गमन) में युक्त, सुन्दर कौञ्च पक्षियों के साथ इस उद्यान में वै + ताली (स्पष्ट ही ताल वृद्धों का वर्ग) है यह मालिनी (पक्षिवृद्ध) विविध जाति लतायें शिखरिणी (भङ्गुर युक्त) तथा पुष्पिताया (खिली हुई) है ॥

यस्मिञ्च परुषीमार्जुनचिनिर्जितानाक्रान्तानेकभीमार्जुनाः, कोपितैकनकुलानाद्वाहितानेकनकुलाः, सहदेवेनैकेन स्पर्धमानाननेकैः सहवैरैः सहृताः । न बहु मन्यते कुरुवीरान्वीर्यधः ॥

यस्मिन्नेवेति ॥ घने वीरयो लता कुरुवीराश्च शौरव्ययन्ति । आक्रान्ता अनेके सहवो भीमा अमलवेतसा अर्जुनाश्च यामि । यद्विश्वप्रकाशः—‘भीमोऽमलवेतमे शभी घोरे वापि वृकोदरे’ । नकुला जीवा । सहदेवास्तरव । कुरुवीरपक्षे भीमार्जुननकुलसहदेवा पाण्डवाः ॥

उद्यान की लतायें कीरव पक्ष के वीरों का सम्मान नहीं दे रही हैं, क्योंकि कुरुवीर एक ही भीम और अर्जुन द्वारा जीत लिये गये थे, ये (लतायें) अनेक भीम (अमलवेत) तथा अर्जुन (अर्जुन वृक्षों) से आक्रान्त हैं । (कुरुवीरों ने) एक नकुल (अनुर्य पाण्डव) को झूठ कर दिया था । ये लतायें अनेक नकुलों (नेवलों) को आनन्दित की हुई हैं । कुरुवीर एक सहदेव से प्रतिद्वन्द्विता करते थे जब कि ये लतायें अनेक सहदेवों (वृक्षों) से मिली हुई हैं ॥

किं चान्यदयलोकयतु देवः—

पटलमलिकुलानामुध्रमन्मेघनीलं

भ्रमदुपरि तरुणां पुष्पितानां विलोम्ब ।

मृदुमदकलकेनानिर्भरो नृत्यमलः-

स्तरलयति कलापं मन्दमन्दं मयूरः ॥ ४ ॥

मिले हुए पेड़ों के ऊपर उमड़ते हुए मेघमण्डप नीले भ्रमर-नमूनों को देखकर कोमल तथा मधुर ध्वनि करता हुआ तथा नाचता हुआ मयूर पक्षों को धीरे धीरे खचल कर रहा है ॥ ४ ॥

अपि च—

धाम्यद्विद्वरेफाणि चित्रासभाक्षि मंयोज्य पुष्पाणि शिलीमुखेषु ।

इदं स्थितं सर्वजगज्जयाय धनुर्धर्मं पुष्पशरं करोति ॥ ५ ॥

क्रान्तेनि । शिखीमुखा शरा । इहंशुधानस्योदोपनविमावानिशयोक्त्या काम-
स्यन्धिनिरह्यते । एतावता सुरमित्तुमुमर्षपदुक्ता ॥ ५ ॥

जिन पर शेर घूम रहे हैं तथा जो विवर्तित हो रहे हैं ऐसे फूलों को
बाण कार्य में लगाकर यहीं पर ठहरा हुआ कामदेव पूरे संसार की विजय के
प्रिये अपना धनुष कार्य सम्राटिन कर रहा है ॥ ५ ॥

इतञ्च—

हरिति हरिणयूथं यूथिनाजालमूले
कुमुजमधुविन्दुस्यन्दसन्दोहमाजि ।
मधुरमधुरालीगोनदचावधानं
लिखितमिव न दुर्वापस्तथानुलुनानि ॥ ६ ॥

हरितोनि । हरिनि जाडूले युथिकाममूहस्याधः प्रदेशे मधुविन्दुसंदोहसंबन्धात्
सृहणीयेऽपि गीतिरपिकनया मृगाणां दुर्वाद्भुजाप्रदणमुक्तम् ॥ ६ ॥

फूलों में गिरे हुए पराग-विन्दुओं में युक्त हरे जुड़ी के पीधों की जड़ में
मधुर गुञ्जार करती हुई मधुकर-वर्द्धित के गीतों में दत्तचित्त हरिण-समूह
बूब नहीं चबा रहा है ॥

[हरिणों को मधुर ध्वनि बहुत प्रिय है । जंगल में वे बूब के अङ्कुरों
को खाने के ही लिये गये हैं, लेकिन वृही के मूल में पराग-विन्दु में बाह्य-
धमरो के मधुर गुञ्जार में फस जाने के कारण उन्हें अपना खाना-पीना
भूल गया है ॥ ६ ॥]

इतोऽपि—

सोऽयं क्रीडाचलो मध्य-लोभव्यसनवर्जित ।
यस्मिन्नासन्नसारज्ञा सारं गायति किन्नरी ॥ ७ ॥

सोऽयमिति ॥ हे मध्य, हे लोभेन व्यसनेश्च विवर्जित, सोऽयं क्रीडागिरि ।
यस्मिन्निरावाममृगा किन्नरी । सारमुच्छृङ्खलं गायति । सारप्रकर्षादृष्टवाग्यारज्ञाणा-
मामचना ॥ ७ ॥

और इधर—

ओं सुन्दर ! लोभ तथा व्यसन में विहीन राजन् ! यह वही क्रीडा-चौल है
जहाँ मृगों के बीच किन्नरी सुन्दर गीत गाती है ।

[उसकी बीच-माधुरी में बाह्य होकर मृग उसके समीप आ जाते हैं ॥ ७ ॥]

राजते राजतेनार्य सानुना सानुनायकः ।
यस्मिन्निशम्य गायन्तं किन्नरं किं न रंस्यते ॥ ८ ॥

राजत इति ॥ अथ सानुनायको गिरी रजतनिर्मितेन सानुना तटेन राजते ।
यस्मिन्गायन्त किंनर निशम्य श्रुत्वा न किं रस्यते । रंस्यत एव ॥ ८ ॥

राजत (चौदी की) चोटियों से सुशोभित यह सानुनायक पर्वत है जहाँ
गाते हुए किन्नरों को सुनकर कौन नहीं रमणोन्मुख हो जाता ॥

[राजते राजते तथा सानुना सानुना का—यमक है । प्रथम राजते और
सानुना सार्धक है किन्तु द्वितीय राजते तथा सानुना निरर्थक हैं । राजतेन तथा
सानुनायक सार्धक है ॥ ८ ॥]

इतश्चास्य—

जनयति जलबुद्धिं बाललीलामृगाणां-

मयमिह पटुकान्तिं स्फाटिको भित्तिभागः ।

इह हरितमणीनामुत्लसन्तो भयूखाः

सरस्वनयतृणालोलोभमुत्पादयन्ति ॥ ९ ॥

इधर इस (भवन) का—

स्फटिक भण्डियों से चमकता हुआ यह भित्तिभाग बाल स्वभाववाले मृगों
को जल की भ्रान्ति उत्पन्न कर देता है । इधर हरित-मणियों की स्पष्ट सरस एवं
नवीन तृणों की तरह लोभ उत्पन्न कर रही हैं ॥ ९ ॥

इयं च—

गौरवं गौरवंशस्य पर्वतः पर्वतस्थले ।

भ्रमरी भ्रमरीणस्य कुरुतेऽकुरुतेन ते ॥ १० ॥

गौरति ॥ गौरी वंशोऽन्वयो यस्य तस्य ते । पर्वतस्थले गिरिस्थले । पर्वतो
गच्छन् । अतएव भ्रमेण देहवैलम्बेन भ्रमिन्नेव विद्यमान सतोऽकुरितस्तेन
भ्रमरी शृङ्गी गौरव प्रतिपत्तिविशेषं कुरुते ॥ १० ॥

गौरवश मे उत्पन्न आप इस पर्वतीय भूमि में पर्व (भ्रमण) करते हुए
भ्रमरीण (एक गये) हैं । यह भ्रमरी अपने अकु + क्त (अकुरितस्तेन) से
आपका स्वागत कर रही है ॥ १० ॥

[प्रथम 'पर्वत'—वच्छेद के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । 'कुरुतेऽकुरुतेन' इसमें
अकु + क्तेन विच्छेद है । अर्थात् भ्रमरी अपनी अकुरितस्तेन ध्वनि से राजा का
गौरव (स्वागत) कर रही है ॥ १० ॥]

अपि च—

इह कवलितमन्दं कन्दरे कन्दलिन्यां

भुवि विरचितकेलिं क्रीडति क्रोडयूथम् ।

इह सरसिजगर्भभ्रान्तभृङ्गं कुरङ्गाः

सरसि सरलयन्तः कन्धरां कं घयन्ति ॥ ११ ॥

इति ॥ कं बलम् । घयन्ति पिबन्ति ॥ ११ ॥

यहाँ की कन्दयुक्त गुफा की भूमि में कन्द खाकर बराह सनूह लीला-पूर्वक खेज रहा है तथा अपनी बदन को मरल (सीधी) करते हुए मृग कमल-कोय में भनभनाते हुए भ्रमरोंवाले मरोवर के जल को पी रहे हैं ॥

[मृग ऐसे मरोवर में जल पी रहे हैं जो कमलों में भरा है और उन कमलों के कोय में भ्रमर भनभना रहे हैं ॥ ११ ॥]

इह पुनरनिशं निशम्य भिन्न-

द्रुममुकुटानि कुन्टानि पटपदानाम् ।

श्रुतिसुखस्वरणं रणन्ति रीणां

तदनुगुणं गुणयन्ति किंनरेन्द्राः ॥ १२ ॥

इति ॥ रणन्तीति श्रवणं पटपङ्कटविशेषयम् । तस्य मृद्वरगिनरयानुगुण-मनुगामिनीम् ॥ १२ ॥

यहाँ किसी हुई मन्त्रमयीवाले पेड़ों पर निरन्तर स्पर्शित गुग्गार करते हुए भ्रमरों को सुनकर उन्हीं के अनुकरण में किन्नरेन्द्र लोग अपनी बीना बजा रहे हैं ॥ १२ ॥

इतश्च कीडाचलस्थलकमलदीर्घिकानारितकतलमनुसरतु देवः ॥

इधर कीडाचल के कमल-मरोवर के तटीय वृक्षों की छाया में श्रीमान् आये ॥

यत्र च—

बहनि नवविकासोल्लासिकिजत्फलुम्यन्-

मधुररुक्तगीता नर्तयन्मञ्जराजीः ।

वनरुमिदगन्धस्पर्शिसमच्छदाढी

कुसुमजकणशिरः शारदीनः समीरः ॥ १३ ॥

वदतीति ॥ कुसुमजकणा मकरन्दलतासु शार शबल शरदि मवानि मुद्रादीनि त्रिघन्ते येषां तं शारदिन कृपावन्मतेषामिन स्वामी । नन्यस्यमपत्तिहेतु-त्वात् ॥ १३ ॥

वन गज की मद-गन्ध से प्रतिस्पर्धा करनेवाणी सप्तच्छद पुष्प के पराग-कणों से मिश्रित परतृकालीन हवा जिसने कमल-सनूह को नचा दिया है तथा जिसने विकास के कारण भरे हुए पराग में द्रव्य भ्रमरो द्वारा की हुई गीत ध्वनि मिश्रित है, बह रही है ॥ १३ ॥

राजा तु तेन तस्याः सकलललितवनप्रदेशप्रकटनप्रियालापप्रपञ्चेन परितोषितः 'साधु मोः सारसिके सुमापितमञ्जरि, साधु । गृहाण पारितोषिकम्' इत्यभिधाय सर्वाङ्गीणभरणप्रदानेन प्रसन्नाननां तामकरोत् ॥

मधुपूर्णं ललित वन भूमि के वर्णन से तथा उसके प्रिय वचनो से सन्तुष्ट राजा, "अच्छा ठीक है, सरोवरवासिनि ! सुक्तिकुचले ! लो अपना पुरस्कार ।" ऐसा कह कर अपने अङ्गो के सब मूषणो को देकर उसे प्रसन्न कर दिया ॥

ततश्च संचरच्चटुलभृद्विहंगवेगबेल्लक्षकुलचम्पकचूतचन्दनमन्दरामन्दस्यन्दमानमकरन्दविन्दुसंदोहाडम्बरिताकाण्डप्रावृष्टि, प्रलम्बताम्बूलवल्लीयलयितनितम्बनिम्बकिम्बजम्बीरजम्बूस्तम्बकदम्बके कुसुमितकरबोरधीरुधि कौरकितकरजाञ्जननिकुञ्जशिञ्जानशुककपिञ्जले, जलद्रसमयनीरदनीलतमतमालतलताण्डविनशिखण्डिनि, मण्डलितमदकलकलहंसोत्संसकमलवापीमण्डिते, मञ्जरितसिन्दुवारसुन्दरामोदनन्दिनि मन्दतरमाकतान्दोलनविलोलरुक्कोलकुड्मलफलनालिकेरलचक्रपूगपुंनागनारङ्गरङ्गितविहङ्गे मृदुमुखनखरपञ्जरजर्जरितसर्जखर्जूरमञ्जरीरज-पुञ्जपांसुलभुवि, भुयो भूषणायमाने, 'सर्वर्तुनिवास' नामनि वने विहर्तुमारभत ॥

ततश्चेति ॥ मृदुमुखनखरस्यादौ मृदो धूम्राट पक्षी ॥

इसके बाद 'सर्वर्तु-निवास' नामक वन में धूमना शुरू किया । वहाँ चक्क भ्रमरो एव पक्षियो के वेग से हिलते हुए वकुल, चम्पा, आम, चन्दन तथा मन्दार वृक्षों से पूर्ण रूप से घूँते हुए पराग-विन्दुओं के कारण बिना वर्षाकाल के आये वर्षा जैसा वातावरण हो गया था । नीम, किम्ब, नीबू, जामुन में लटकती हुई ताम्बूल-लताये लिपटी हुई थीं । कलियो से युक्त करञ्ज तथा अरुञ्ज वृक्षों की छाड़ियो में शुक तथा कपिञ्जल पक्षी मधुर ध्वनि कर रहे थे । वर्षाकालीन मैघो की तरह नीले तमाल-कुञ्जों के नीचे मयूर नाच रहे थे । प्रोढ़ कलहंसो की गोलाकार मण्डली में कमल-बावल्याँ अलङ्कृत थीं । सिन्दुवार-मञ्जरियो की सुन्दर गन्ध चारो ओर फैल रही थीं । अत्यन्त धीरे धीरे बहनेवाली हवा के हल्के झोके में चञ्चल कण्कोर की बली एव फल तथा नारियल, लवङ्ग, बसैली, पुत्राग एव नारङ्ग फलों में पक्षी अनुरक्त थे । भ्रमरों के मुँहो, नखो, तथा पंजो से घूर्णित सर्ज तथा पञ्जर की मञ्जरियो ॥ निकले हुए पराग से भूमि धूलि धूसरित हो गयी थी । वह वन भूमण्डल पर अलङ्कार-सदृश था ।

तत्र च व्यनिकरे प्रलयप्रचण्डपवनोद्घासिततनुतुहिनावलगण्ड-
शैललीलामाकलयन्तः, मन्दमरुत्तरङ्गिततनुतरश्चरदभ्रविभ्रमायमाणाः,
सुरस्वारणेन्द्रविश्रोमितगगनमन्दाग्निनीपनत्पांडुरडिण्डोरपिण्डपटलानि
विडम्बयन्तः, शकलोदितेन्दुमण्डलसहस्रसंछादितामिव गगनमापाद-
यन्तो, मन्दरगिरिपरिक्षेपक्षुमितश्रीरघाचिविदूरस्समुच्छलितदुग्धकलो-
ललीलां दर्शयन्त, शेषादिफणचकवालवयन्त्रा, प्रमुदिनद्वगद्वहासलया
इव भूर्निमन्तः पनन्त, अमन्दमन्द्रकालादलपरितभुवनान्तरालाः,
सपदि धरातलनुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजप्रकरप्रकारेण मण्डयन्तां निपेनुः
कुतोऽपि पुण्डरीकपाण्डुगङ्गावराजयो सपदि राजहंसाः ॥

हर केने । शकलोदितेन्द्रि ॥ शकल खण्डसती ह ३ मङ्गला भवति । मन्दरगिरिरेव
परिचये मङ्गला ॥

हमी समय वही अचानक वहाँ से दवेग कमज सटव पंखों बाजे राजहंस
धा गिरे । उन्हें देखकर ऐसा लगता था कि प्रलय की प्रचण्ड आती म ऊर की
ओर दठाकर पटके गये हिमालय के शिखारूपा हों । वे धारे धारे चरने
वाली हवा के झोंके से कम्पित छोटे छोटे शरत्-काशीन शुभ्रवाद्या के
विश्रास का अनुकरण कर रहे थे । ऐरावत द्वारा मण्डित आकाश गंगा से
गिरते हुए सफेद फेन-पुञ्ज की विडम्बना कर रहे थे । उदित चन्द्रमा के
हजारों खण्डों से ढके हुए की तरह आकाश की शोभा उपलब्ध कर रहे थे ।
मन्दराचल के शीरसागर में गिरने से दूर तक छिटके हुए दूर के छोटों की
लीला प्रदर्शित कर रहे थे । शेवनाग की फण-समूह की तरह शुभ्र थे ।
प्रसन्न भगवान् शंकर के अट्टहास के मूर्तिमान् वरों की तरह गिर रहे थे ।
अपनी विशेष गम्भीर ध्वनि से भवनान्तरालों को भर रहे थे । बिछे हुए शुभ्र
कमलों से मानीं धरातल धीमे ही बलश्रव हो रहा था ॥

[हंस शुभ्र हैं । आकाश से अब उनकी पङ्क्ति उतर रही है तो किस
तरह की शोभा हो रही है इसी बात की विभिन्न उत्प्रेक्षाओं के माध्यम से
कवि व्यक्त कर रहा है । ओरों से आधी आने के कारण प्रलय के समय
हिमालय की शुभ्र चोटियों के टुकड़े हो मानो उड़ रहे हैं । उड़ते हुए हंस
उड़नी हुई हिम-शिखारूपा की तरह हैं । आकाश-गंगा के फेन की तरह लग
रहे हैं । मन्दराचल के गिरने से शीरसागर से जो दूर के छोटे आकाश में
छिटके उनकी तरह लग रहे हैं । भगवान् शंकर के अट्टहास की तरह लग
रहे हैं । हास वा वर्षन सफेद किया जाता है । हंसों की शुभ्र इकाया भगवान्
शंकर के शुभ्र अट्टहास की मूर्तिमती इकाया हैं । नीचे की ओर अब वे

आ रहे थे तो ऐसा लगता था कि अचानक पृथ्वी शुभ्र कमलों से मण्डित हो रही थी ॥]

तथाधिधे च व्यतिकरे विस्मयविस्मृतनिमेषपया निर्वीतनिश्चलनी-
लोत्पलपलाशशोभायमानलोचनः कौतुकाकृततरलितमनाः सपरिजनो
नरपतिरवलोकयन्निश्चल एवावतस्थे ॥

त्येति ॥ शोभायमानलोचनेत्यत्र शोभाशब्दात्तद्वृत्तिं वर्तमानाहुपमानाकर्तृ-
बाधकादाचारेऽर्थं वक्ष्ये । एवं विभ्रमायमानेत्यादयोऽपि व्याख्याताः ॥

ऐसी स्थिति में आश्चर्य के मारे पलकों का गिराना भूल सा जाकर
सुधा के झोंकों के अभाव में चम्पन शुन्य नीले कमल की तरह सुन्दर नेत्र वाले
तथा उदकपाश से पिघले हुए चित्त वाले राजा (नल) नौकरों के साथ निश्चल
दृष्टि से उन (हसी) को देखते हुए ठहर गये ॥

ते च धार्तराष्ट्रा अपि कृतपाण्डुपक्षपाताः, द्विजातयोऽपि सुरा-
जिताः, केचिदुच्चचञ्चुटविघटितनिकटयालस्थलकमलकुटुम्बलाः सर-
सविसर्गसलयानि कवल्यन्तः, केऽप्युन्नतसरलगलनालयो नलिन-
यनविमुखाः खमालोकयन्तः, केचिदुत्क्षिप्तपक्षविक्षेपपवनकम्पित-
कन्दलाः सलीलमुत्पतन्तः, केचिन्मदमधुरनिजनिनादनिर्जितशिक्षान-
नूपुराः, पुरः पुरोऽस्य धावन्तो विचरिन्तुमाभन्त ॥

ते चेति ॥ कृष्णैश्चरणमैर्दंसा धार्तराष्ट्राः । कृत पाण्डुपक्षाणां द्युभ्रपक्षतीनां
पातो न्यासो यैः । तथा द्विजातयः पक्षिणः सुन्दराजिताश्च । विरोधे धार्तराष्ट्रा
पुरः पाण्डुर्भूयः । पक्षपातरतदृग्छादम् । द्विजातयो विप्राः । सुरया जिताः ।
गलनालि कण्ठकाण्डम् ॥

ये धार्तराष्ट्र (धृतराष्ट्र पुत्र) ये फिर भी पाण्डुओं के प्रति पक्षपात
(स्नेह) रखते थे । विरोध ॥

धार्तराष्ट्र (हस) ये और पाण्डु + पक्ष + पात (शुभ्र पक्षों को हिलाते)
ये । परिहार ॥

द्विजाति (ब्राह्मण) ये फिर भी सुराजित (मदिरा की परतन्त्रना में
रहते) थे । विरोध ॥

द्विजाति (पक्षी) ये और सु + राजित (सुन्दर) ये । "परिहार" कोई
अपने ऊँचे भावों से समीपवर्ती स्थल कमलों की कलियों को फोड़ कर सरस
कमल-तन्तुओं को खा रहे थे । कोई अपनी गर्दन को ऊँचा और सीधाकर
आकाश की ओर देख रहे थे । कोई अपने पंनों के झोंके से कमल-नालों को
हिला रहे थे । कोई अपने सुन्दर एक मधुर ध्वनि से नूपुर के भी अनुरणन को

जीत से रहे थे । (इन श्रीढाओं में अग्र राजहंस) राजा के ठहपद के सामने विचरण करना शुरू कर दिये ॥

राजापि परिधावितविहङ्गग्रहपाग्रहसमप्रव्यग्रपरिग्रहः परिहा-
सोन्मीलदमलदन्तकान्तिस्तवकितावरपल्लवो विहसन्नेव तेषामन्यत-
ममनुचचटुलचरणचारीचर्यया चारु संचरन्तमीपटुत्क्षितपक्षविलास-
विहसितविलासिनोलास्यलीलमुचमिताप्रप्रीवं जग्राह हेलया हंसम् ॥

राजेति ॥ मलयज्वरणन्यामञ्जारी ॥

राजा ने भी इधर उधर भागते हुए पक्षियों को पकड़ लेने का आग्रह किया ।
(दौड़ कर पकड़ने में) उसका सारा शरीर अस्त था । मूस्कुराहट के कारण
निर्मल दन्त-कान्तियों में अधरोष्ठ को कुङ्कुमकित करता हुआ हंसता ही हंसता
उनमें से एक हंस को जो बड़ी सुन्दरता से विचरण कर रहा था, अपने
पंखों के उड़ान-वतन से रमणियों के कात्थ को भी तिरस्कृत कर रहा था,
धीरे धीरे पद-विन्यास के साथ गर्दन को ऊपर की ओर उठा रहा था,
पकड़ लिया ॥

उत्क्षितः स च तेन रक्तकमलगर्भविभ्रमायमाणपाणिपल्लवे, पाण्डु-
पद्म इव पद्मरागशुक्तितले, स्रजमुदयशैलशोणमापि न्यशिक्षरशिखाया-
मिन्दुरिष, विराजितो राजहंसो मृदुवाद्यमानरौप्यघनघर्घरीजर्जरस्वरेण
कृतस्वस्तिशब्दो विस्पष्टवर्णविशेषं राजानमुपश्लोकपाञ्चकार ॥

उत्क्षिप्त इति ॥ पात्रिपक्ष्यस्य पद्मरागशुक्तिः शोणमापि न्यशिक्षा चोपमानम् ।
हंसस्य तु पाण्डुपद्म इन्दुश्च ॥

लाल कमल के मध्यभाग की गोभावाले (राजा के) कर-पल्लव पर
पद्मराग मणि की शुक्ति पर रखे गये सफेद कमल की तरह ठप्पा उदयाचल
की लाल मणियों की चोटी पर चन्द्रमा की तरह सुशोभित उस राजहंस ने
मधुरता-पूर्वक बजायी जाती हुई रजत-निर्मित घर्घरी (कास) की घर्घर
स्वर से स्वस्ति शब्द कहता हुआ बड़े स्पष्ट शब्दों में राजा की स्तुति की ॥

[राजा का हाथ लाल था । हंस सफेद था । उस हाथ पर वह हंस वैसा
लगता था वैसा कि सफेद कमल पद्मराग मणि की शुक्ति पर लगता है और
उदयाचल की लाल मणियों की चोटियों पर चन्द्रमा लगता है ॥]

पाण्डुपद्मजसंलीनमधुपालोसमं गलम् ।

यो विमर्ति विवेयात्ते ना कपालो स मङ्गलम् ॥ १४ ॥

पाण्डुरिति ॥ श्वेतमरोजलीनालिप्रेनिनियं कण्ठं यो धारयति स ना पुरः
कपालो कपालमाढी । अर्णोच्छ्वस्तत्र मङ्गलं क्रियात् ॥ १४ ॥

सफेद कमल में लगी हुई भ्रमर-चिह्न की तरह गले को धारण करने वाले कपाली (कपाल धारण करने वाले भगवान् शंकर) तुम्हारा मंगल करें ॥ १४ ॥

अपि च—

सरलप्रियं गुणाख्यं लम्बितमालं विचित्रतिलकं च ।

वनमिव यपुस्तदैतत्कथमवनं नृप जनस्याभूत् ॥ १५ ॥

सरलेति ॥ सरला अकृष्टिला प्रिया यस्य । तथा गुणाद्या जौर्याद्यादयम् । तथा लम्बितमालम् । यथा विविधपुण्ड्र तव वपुर्जनस्यावनं रक्षकमभूत् । वनमिव तदा स्मरलप्रियगुणेति समाह्वयः ॥ तथा लम्बितमाला प्रलम्बधारनमाला यत्र तथा विचित्राश्चि प्रकाशितलकवृक्षाश्च यत्र । नृपेत्यामन्त्रणे । कथमिति विरोधे । अवनशब्दस्य वनप्रतिषेधार्थत्वात् ॥ १५ ॥

और—

(राजन् ! वन सरल आप का शरीर अवन कैसे हो गया । वन की सारी विशेषताएँ आप में भी हैं फिर भी आप वन नहीं हैं । इस विरोध को दृष्टि में रख कर हलोक में कथं पद का विग्यास किया गया है । शब्दगत समानता के आधार पर राजा को वन होना चाहिये । अर्थगत समानता के आधार पर तो वह अवन है ही । वह वन नहीं है अपि अवन है । इसका भी उपपादन हलोक के अक्षरों से ही हो जायगा ॥

सीधे प्रियङ्गु वृक्ष से सम्पन्न, लम्बे तमालो से युक्त, विचित्र तिलक वृक्षो से युक्त वन-सदृश आप नृप जन का सीधे साधे मित्रो वाला, गुणो से सम्पन्न लटकती हुई मालाओ से मण्डित तथा विचित्र तिलक से युक्त शरीर अवन कैसे हो गया है ।

[अवन शब्द का अर्थ रक्षक है । इस अर्थ के करने में कोई विरोध नहीं रहता ।]

राजपक्ष—सरल प्रिय (सीधे साधे मित्रों वाला) गुणाख्य (गुण सम्पन्न) लम्बित + माल (मालाओ को लटकाना हुआ) विचित्र तिलक (सुन्दर तिलक किया हुआ) आपका वपु (शरीर) प्रजा जन का अवन (रक्षक) है ।

वनपक्ष—वन सरल प्रियङ्गुगुण + आद्य (सीधे सीधे प्रियङ्गु वृक्षो से भरा) है । लम्बित तमाल (वहाँ लम्बे लम्बे तमाल वृक्ष) हैं । विचित्र तिलक (सुन्दर तिलक वृक्षो से सम्पन्न) है ॥ १५ ॥]

अपि च—

घरसद्वकाररखरुचीरतरोऽशोकमदनपुंनाग ।

विविधद्रुममय राजन्कथमसि न विमीतकः क्वापि ॥ १६ ॥

वरेति ॥ घरा सहकारका सचिवाद्यो यस्य । तथा रजयतीति रजकः । तथा वीराणां शूद्रकादीनामिव तरो बलं जरो वा यस्येति सवुद्धौ न दीर्घः । न शोको यस्य पुनेन धीरत्वोन्नि । मदन इव मदनः कामः । पुनाग इति नागतम् प्रशमयाम् । इत्यामन्त्रगैः प्रकृतोऽर्थः । विविधद्रुममयेति पदाद् द्रुमार्थोऽप्युक्तः । तथा । महकार-आध्र, करकको नन्दमाल, वीरतरुनंदीसञ्ज । यद्मर—'नदीमर्जो धीर-तरुनिन्द्रु-ककुभोऽर्जुन' । अशोक कर्कटि, मदन शल्य, यत्फल विवाहे बध्व रपागौ यत्पते । पुनाग सुरपार्गिका । कथमिति विरोधे । विभीतकस्याचार्यन्वात् प्रकृते नु विभीतको विरोपेण मीत इति कुस्माद्यामनुकस्याया वा क्व ॥ १६ ॥

हे राजन् आप अच्छे सहकार (आम), करकजक वीरतरु अशोक, मदन और पुनाग आदि विविध वृक्षमय होते हुए भी (केवल) विभीतकमय कैसे हैं ? विरोध ॥

हे कर-सहकारक ! (अच्छे सहायकों वाले) रजक ! (प्रशासन को अनुरक्त रखने वाले) वीर + तरु (शूद्रक आदि वीरों की तरह वेगवान्) अशोक ! (शोकहीन) मदन (काम) पुनाग (मानवोत्तम) विविध वि (विविष्ट) वि (पक्षियों) के घ (पोषक) द्रुममय (आश्रयमय) कहीं भी तुम्हें विभीतकमय (घृत श्रीछा में तन्मय) नहीं पाया जाता ॥ परिहार ॥

[द्रुम का आश्रय अर्थ इस आधार पर दिया गया है वृक्ष जैसे विरोध शरणार्थी पक्षियों का आश्रय होता है राजा भी विविध शरणार्थियों का आश्रय है ॥]

(शब्द के आधार पर ठी) राजन्, आप वाग, करवीर, दमनक, रावपत्र, बन्धुजीव, मुजाति आदि विविध विटपरूप होते हुए भी विटप क्यों नहीं हैं । विरोध ॥ १६ ॥

अपि च—

याणकरवीरदमनरुशतपत्ररुबन्धुजीवकस्तुजाते ।

नृप विविधविटपरूपस्तथापि विटपः कथं नास्ति ॥ १७ ॥

वावेति ॥ वाग करवीरौ दमनकः क्षत्रपत्रं बन्धुजीवकं जानिरधेनि विटपाः । एतन्मयस्त्वमसि शब्दन् । अर्थात्स्तु वागा करे यस्य । वीरान्दमनयामि । दामनं पत्रं वाहनं यस्य शेषादिति कप् । बन्धून् जीवयत्युपकरणिपि । शोभना जातिः चत्वार्यप्यस्य । उभयथाप्येतानि नृपेति च सम्शोधनानि । असीति त्वस्य स्वमित्यर्थः । त्व न विटान्पातौति विटपः । अपात्रमर्ता नेत्यर्थः । तथापि कथमिति विरोधोद्भावेन विटपशब्दस्य । बीम्दर्थश्चात् ॥ १७ ॥

बाग-कर (हाथों में बाग धारण किये हुए) वीर-दमनक (वीरों को दमन करने वाले) रात (सौ) पत्रक (वाहनों वाले) बन्धु-जीवक (बन्धुओं को उज्जीवित करने वाले) हे राजन्, आप विटप (दुष्टों के पातन करने वाले) नहीं हैं । परिहार ॥ १७ ॥

राजा तु नदाकर्ण्य सविस्मयम् 'अहो अस्य धैर्यं मनुष्यसंनिधौ, आश्चर्यं रूपे, माधुर्यं वाचि, प्राचुर्यं प्रज्ञायाम्, औदार्यमर्थे, गाम्भीर्यं वर्णव्यक्तौ । प्रायेणाहारमैथुननिद्रामयधमणमात्रविवेकास्तु कथं प्रागल्भ्यमेतत्पक्षिजातिषु । तदेष विहंगमव्यञ्जनः कोऽपि कामचारी भविष्यति । सर्वथा मनसापि नावहेयाः केऽपि प्राणिनः । यतः कर्मतः कामतः शपतः संछन्नरूपाण्यपि भ्रमन्ति विविधाश्चर्यभाञ्जि 'भूतानि' इति चिन्तयन्नुचितस्तस्मोपदुल्लसितसिन्दुवारमञ्जरीभिरिव कुन्द-कान्तदीप्तिभिरर्चयन्त्यागतमपृच्छत् ॥

राजेति ॥ कामचारी विषाधगदि ॥

राजा तो यह सुनकर आश्चर्य के साथ, "आह, मनुष्य के समीप भी इसका अद्भुत धैर्य, आश्चर्यजनक रूप, मधुर वाणी, प्रगाढ़ बुद्धि, उदारतापूर्ण अर्थ-प्रकाशन तथा गम्भीरता पूर्ण वर्णोच्चारण है । प्रायः भोजन, मैथुन, निद्रा, भय और भ्रमण तक ही विवेक की सीमित रखने वाली पक्षी जाति में इस तरह की प्रौढ़ता कैसी । निश्चित ही यह पक्षियों में ऐसे यह कोई स्वेच्छाचारी (देव) होगा । मन से भी किसी प्राणी का थोड़ा भी अपमान नहीं करना चाहिये क्योंकि कार्य से इच्छा से या शाय से बहुत से आश्चर्यजनक प्राणी अपना रूप छिपाये घूमते फिरते हैं ।" इस तरह सोचता हुआ अवसरोचित कार्य का विशेषज्ञ, थोड़ी छिली हुई सिन्दुवार मञ्जरी सहित कुन्द पुष्प की मनोहर छटा से उसकी पूजा करता हुआ स्वागत प्रणम पूछा ॥

असायपि प्रणयप्रणतशिराः शुचिरोक्षिपां चयेन पाण्डुपुष्पप्रकर-प्रकारेण प्रतिपूजयन्निव 'देव, भवदवलोकनेनाह्लादितमनसो ममाद्य स्वागतम्' इति प्रयाणो राजानं रञ्जयाञ्जकार ॥

वह भी प्रेम से शिर झुका कर शुभ पुष्प-समूह के गुच्छ सहित अपने पवित्र कान्ति-पुत्र से मानो उनकी पूजा करता हुआ बोला, "महाराज, आपके दर्शन से ही मैं तृप्त हूँ ! मेरा स्वागत इतने से ही हो गया ।" राजा (उनकी बातों से) आनन्दमान हो गये ।

अत्रान्तरे आसतरलतरतरत्तारकमकाण्डाडम्बरितवाप्यप्लवप्लव-मानमिध घहन्ती चक्षुः, उत्क्षिप्तपक्षपत्रपल्लवव्याजेन संगृहीते सद्-चरे शास्त्रोद्धारमिव दर्शयन्ती, हंसी दूरादवनिपालमवाप्य रौप्यमय-घण्टाटट्टारकोमलया गिरा दलोकद्वयमपठत् ॥

अत्रेति ॥ शास्त्रोद्धारमव्यापपूर्वकारचिह्नं शास्ताग्रहणम् ॥

इसी बीच दूर से ही राजा को देख कर रजत-निर्मित घड़े के टंकार की तरह मधुर स्वर से उस हंस की पत्नी दो श्लोक पढ़ी । डरके मारे उसकी आँखें चंचल होकर आसुओं में तैर रही थीं । फड़फड़ाते हुए पंखों वाले अपने सहचर को पल्लव के बहाने पकड़ लिये जाने पर राजा को अन्याय के निमित्त मानो दुत्कार रही थी ।

हंसपक्ष—ए ! (कामदेव की प्रतिपूर्ति) मुक्ताहार परिच्छद (मुक्तामणि से निर्मित हार की तरह पंखों वाला) हंस ओक (जल) के अन्त (समीप) में भग (बुल) पर रहता है, निश्चित ही छोड़ देने योग्य है । आप उसे क्यों पकड़ लिये हैं ।

आत्मपक्ष—मोक्ष की योग्यता रखने वाला हंस (पुण्य) स्व (प्रकृति) के द्वारा बाधा जाता है । (नहीं बाधा जाता ।) क्योंकि वह आहार (भोग) रूप बाधन को छोड़ कर भगवान् विष्णु-विरयक चित्त-वृत्ति बनाकर योग की साधना में लगा रहना है ।

हंसपक्ष—अ का जयं कामदेव है । अ के अवश्य को इ कहा जाता है । अर्थात् इ शब्द के सम्बोधन में ए रूप बनेगा जिसका अर्थ होगा विष्णु-पुत्र कामदेव । ए शब्द से राजा को सम्बोधित किया गया है । अतः सिद्ध है कि राजा कामदेव सहस्र रूप सम्पन्न है ।

कान्ते—क (जल) के अन्त (समीप) में जो (यः) भग (बुल) है उसकी सेवा करता है । अर्थात् उस पर रहता है ।

मुक्ताहार परिच्छद—उसके पक्ष मुक्ता के हार सहस्र हैं । योग शब्द का "अ + भग + " पदच्छेद करना चाहिये ।

आत्मपक्ष—इस पक्ष में हंस शब्द आत्मा का वाचक है । स्वया शब्द "प्रकृति के द्वारा" अर्थ का वाचक है । स्वशब्द सर्वनाम है । अयं अर्थ का वाचक है । इसी का स्त्रीलिङ्ग रूप त्वा का तृतीया एकवचने स्वया है ।

मुक्ताहारपरिच्छद—इन्द्रियों के आहार (भोग्य) परिच्छद (समूह) का जिसने छोड़ दिया है ।

एकान्ते सेवते योगं मुक्ताहारपरिच्छदः ।

हंसः समोक्षयोग्योऽपि देव किं वक्ष्यते स्वया ॥ १८ ॥

इति ॥ अस्यापरिमितं । इति इ कर्तृप्रतिष्ठितं । ततः सवुद्धौ ए इति देव इति चोपचन्द्रपितु संशोध्य सुमोक्षयिषु पतिं हंसी नृमाह । मुक्ताहारो मोक्षिकहार-स्तद्व्यतिरिक्तद्वौ पञ्चमी यस्य शुभ्र वात । स नयोक्त । कस्य जलस्यान्ते वर्गमानमा द्रुमं यः भवते । मोक्षस्य मोक्षनस्य चोरयोऽपि स हंमो वाचंस्वया भवता किं किमपि वक्ष्यते हृषिकेश्यः । अववा एकान्त इति समस्त विज्ञानार्थम् । अयं च

हंस आत्मा पुरुष ॥ मोक्षयोग्योऽपि किं बध्यते । न बध्यत एवेत्यर्थः । क्या ।
 त्वया । त्वं शब्दः सर्वादिगणेऽन्यार्थः अतः पुरुषापेक्षान्यथा प्रकृत्येत्यर्थः ।
 कस्मात्त बध्यत इत्याह—काम्ते कमनीये परमानन्दस्वरूपे ए कृष्णे त्यक्ताहारपरि-
 चार मन् योगमध्यात्मं च सेवते ॥ अत्र पक्षे अ इत्यस्माद्विष्णुवाचकासप्तम्येक-
 वचने ए इति रूपम् । यदि वा समोक्षयोग्योऽपीतिसम समदर्शनः । अक्षयोग्योऽपि
 इन्द्रियसंबन्धोऽपि ॥ १८ ॥

एका-ते—का-ते ए (कमनीय विष्णु मे) वित्तवृत्ति लगाकर योग-साधना
 कर रहा है । विष्णु वाचक अ शब्द का सप्तमी एकवचन “ए” है । तात्पर्य
 यह कि जो पुरुष इन्द्रियो के भोग्य-समूह को छोड़कर परमानन्द स्वरूप भगव-
 द्विषयक ध्यान में रहकर योग-साधना के द्वारा मोक्ष की योग्यता प्राप्त कर चुका
 है, उसको प्रकृति बन्धो बांधेगी ?

मोक्ष की योग्यता रखने वाला योगी की समस्त विशेषताये हंस में भी हैं ।
 इसे आप अवश्य छोड़ दें ॥ १८ ॥

नीरञ्जनपदे तिष्ठन्विश्वसंसारसङ्गतः ।

हंसः किं बध्यते कापि यस्य नालम्बनं प्रियम् ॥ १९ ॥

नीरेति ॥ जनामां पदे स्थाने पुरमात्मादावतिष्ठन् ॥ सरस इदं सारसम् । तथा
 श्वसन्तीति श्वसा प्राणिनः, घष पक्षिणः श्वा यत्र तथाभूत नीरं जलम्, गतः
 स हंस किं कापि बध्यते, न बध्यत एव । यस्य नालम्बेद् नालं लुगसंबन्धि, वनं
 काननं प्रियम् । अथवा नीरञ्जनपदे नीरागपदे तिष्ठन् हंस आत्मा किं कापि बध्यते,
 न बध्यत एव । यस्य विश्वस्य संसारसङ्गेभ्य आलम्बनमासक्तिर्न प्रियम् । विश्व
 संसारसङ्गत इति तस्मिन्नेतन् ॥ १९ ॥

हंस पक्ष—जनपद (नगर या गाँव आदि) में न रहने वाला तथा विश्वस
 (पक्षियों के निवास स्थान) सारस नीर (सरोवर-सम्बन्धी जल) से संयुक्त
 हंस जिसे नाल (कमल) का वन प्रिय है, वही भी बाँधा जाता है क्या ?

आरम्भपक्ष—सम्पूर्ण संसार की सगति से हट कर जो वैराग्यपद पर प्रतिष्ठित
 है तथा जिसके लिये संसार में कोई आलम्बन (आसक्ति का विषय) नहीं है,
 ऐसा हंस (आत्मा) वही बाँधा जाता है ? ॥

[हंस पक्ष—इस पक्ष में पदच्छेद दो करना चाहिये—जनपदे (ग्राम
 आदि में) अतिष्ठन् (न रहता हुआ) विश्वसं सारसं नीरं गतः (पक्षियों के
 आवास सरोवरों के जलस्थल में उड़ता हुआ) हंस (हंस) यस्य नालं वनं
 प्रियम् (जिसे कमल वन प्रिय है) बध्यते किम् (बाँधा जाता है क्या ?)

अर्थात् वह नितान्त अपराध धूँय है । जनपद में ही अपराधों का अवसर
 रहता है । हंस जनपद में न रहकर सरोवर के जल के पास रहता है । संसार

वे मुक्त की ओर कोई सामग्री उसे अंग्रेजिन नहीं है। वह केवल कमल बन की चाह रखता है। जल और पुष्प से ही जो जीवन बिताता है, ऐसे क्षणिकी हंस की बाँध कर आपने अनुचित किया है।

इस पक्ष में विद्वत्त्व और सारस पद नीरस के विशेषण हैं। बि का अर्थ है पक्षी और स्वप्न का अर्थ है प्राणी। अर्थात् पक्षी प्राणी नहीं हो वह (जल) विद्वत्त्व हुआ। सारसम्—सरोवर-सम्बन्धी पदार्थ (जल) सारस हुआ। अर्थात् यह हंस सरोवर के उस क्षण के पास रहता है जहाँ पक्षी आदि के लोग रहते हैं। यह किसी ऐसे जल स्थल में नहीं जाता जहाँ आप पक्षियों का आगमन एवं बिहार निषेध किये हो।

सातम पक्ष—विद्वत् ससार सात (सम्पूर्ण ससार की सङ्कति से) (हटकर) मीरज्जनपदे (वैराग्य मार्ग में) तिष्ठन् (स्थित) हंस (आत्मा) यस्य ब्रह्मणि आत्मब्रह्म न प्रियम् (जिसे संसार में कहीं भी कुछ आकर्षण नहीं है) बध्यते निम् (बाधा जाता है क्या?)

यहाँ विद्वत् शब्द सम्पूर्ण का वाचक है। संसृति के आगे तसिन् प्रत्यय हुआ है। पक्षमी के अर्थ में जाना हुआ तसिन् संसार सग में उठाकर वैराग्य मार्ग की ओर ला देता है। तसिन् प्रत्यय के कारण ही ससार सग में प्रस्थान और वैराग्य की ओर स्थिति का अर्थ व्यक्त करता है ॥ १९ ॥

अन्यच्छ—

राजन्, अलपक्षिणो मुनय इव ये मीनाहारं याच्छन्ति, बहुधावन-व्यसनिनो विमाधाराः । तदलमाग्रहेण ॥

राजन् । मीनो मत्स्यः । अङ्घ्रिः । मिश्रम् । विप पक्षिनीकम् साधारो जीवनं येषाम् ॥ मुनिपक्षे अमी इति नेति च पदद्वयम् । बहुधा, अनेकधा वन-व्यसनिनो वनस्थाः । तथा व्यपेन साधार साधारणतिथिरर्थात्तत्रादिर्यस्यः । लोकोत्तरपुस्तकात् । 'विमादना' इति पाठे तु विममद्वयं येषाम् । पक्षे विगतं माद्वयं येषाम् । अपीडाकरा इत्यर्थः ॥

राजन्, ये जल-पक्षी हंस मुनियों की तरह हैं। मुनि आहार (भोजन) की कामना नहीं रखते। बहुधा वनव्यसनी (अधिकार वन में ही रहना पसन्द करते) हैं। विमाधार (उत्सव आदि नहीं मनाते) हैं। ये पक्षी भी मीनाहार (मत्स्य भोजन) चाहते हैं। बहु + धावन + व्यसनी (अधिकार उठान भरने के शौकीन) होते हैं या बहुधा + वन + व्यसनी (अधिकार वन (जल) के शौकीन) होते हैं। विमाधार (कमल तन्तु ही इनके आधार हुआ करते) हैं। अतः आपह न करें ॥

[मुनि सदृश व्यवहार को अपमाने वाले मेरे पति को आप बाँधने का हठ न करे ।]

मुनि-पक्ष में अभी न आहार बाण्ड्यति ऐसा पदच्छेद करना चाहिये । ये और मीनाहार के बीच अकार प्रश्लिष्ट है । एङ् पदान्तादति से पूर्वरूप हो जाने के कारण अ दिखायी नहीं पड़ता । अर्थात् ये मुनि आहार की कामना नहीं रखते ॥

राजा तु तेन तस्यां श्लेषश्लाघिना श्लोकोक्तिरसेनाह्लाद्यमानो नर्मलापलीलया तां उभापे ॥

राजेति ॥ श्लेषश्लाघिना श्लेषप्रकाशनशीलेन । एतेन एकाग्रत इत्यादिवचसां श्लिष्टार्थत्वमभिहितम् ॥

राजा तो उसकी श्लेष-बहुल पद्य एवं गद्य की सरलता से प्रसन्न होकर मधुरता-पूर्वक उसमें बोला ॥

‘अनेकधा यः किल पक्षपातं सदा सद्भोजगतः करोति ।

स हंसिकेदारविहारशीलो न बध्यते किं बहुनाशकुन्तः’ ॥ २० ॥

अनेकेति ॥ हे हंसिके, यः सदा जगतोऽपि सर्वस्यापि सद्भोजो दाम्भिक । तथानेकधोक्तोऽपि प्रणतिप्रत्युपकारादिना पक्षपातं प्रसरण करोति । तथा दारक्री-डारनोऽमहोचारी । तथा बहुलाशयव्येवविध कुन्तं प्राप्नोत्यस्येति हिंसापापरत । स कथं न बध्यते । सत्कारकारायामिति शेष । इति हंसीवचनप्रतिबचनौचित्येन समपक्षे व्याख्या ॥ अथवा यो दाम्भिक सदा जगतोऽपि पक्षस्य मित्रवर्गस्य पातं नाश करोति । तथा जगतोऽपि दारेषु क्रीडापरः । तथा बहुपातिकुन्ताश्च । स महापराधी बध्यत एव । निर्मर्गेव हंसीवचसोऽन्यथात्वम् । तत्पक्षस्तु प्रामाण्यम् । तद्यथा । हे हंसि । किं बहुना किं बहुभया । सद्भोजं सत्पक्षं, सन् ॥ पक्षपातं करोति केदारविहारश्च श्लीलयति स शकुन्तः पक्षी न बध्यते । किं तर्हि मुच्यत एव । तस्माद्युक्तमुक्तं त्वयेति वास्तवोऽर्थः । एवमुक्तश्चापि ॥ २० ॥

हंसी, जो सदा सबके प्रति पक्षपात करता है । अहंकारी बना रहता है । रमणी विहार में ही मग्न रहा करता है । अपने मुँह से या अस्त्र से बहुतों का विनाश करता रहता है । वह क्यों नहीं बाँधा जाता ।

अथवा—जो अहंकारी अपने पक्ष के सम्पूर्ण मित्रों का पात (विनाश) करता है तथा जगत् (बहुत) स्त्रियों के साथ विलास के लिये सदा उद्यत रहता है वह महापराधी बाँधा क्यों नहीं जाता ।

यवार्थ पक्ष—हंसपत्नी, अधिक क्या कहना है, जो बार बार सुन्दर कमलों के पास जाकर अपने पक्षों को फटफटाता है और खेतों में बिहार करता है ऐसा (निरपराधी हंस वचमुच ही) बाँधा नहीं जा सकता ।

[इस श्लोक में समान विशेषणों के माध्यम से बन्धन और मोक्ष दोनों पदार्थों पर दिचार किया गया है ।

उलाहना पक्ष या बन्धन पक्ष—हसिके ! (हंस पत्नी) यः किल सदा सदम्भः अनेकधा (उत्तोऽपि) जगतः पक्षपात करोति स बहुनाश + कुन्तः दारविहारशील किं न बध्यते ।

अर्थात् उपर्युक्त गुण वाले लोग बांधे ही जाते हैं ।

मोक्ष पक्ष यथायं पक्ष—हे हंसि, यः किल सदा सदम्भोज + गतः अनेकधा पक्षपात करोति स केदारविहारशील न बध्यते । किं बहुना एकुन्तः ।

इसका भाव यह भी है कि जो फूलों से प्रेम रखता है, प्रकृति का निरावृत्त वातावरण ही जिसे पसन्द आता है, शान्तिपूर्ण वातावरण से ही स्नेह रखता है ऐसा आदमी भी नहीं बांधा जाता । पक्षी की तो बात ही दूर है ।

पक्षपात शब्द विविध अर्थों में यहाँ प्रयुक्त हुआ है । पक्ष (मित्र का) पात (विनाश) पक्षपात (पक्ष पटकड़ाना) पक्षपात (प्रकृति के वातावरण में अधिक प्रवृत्ति रखना ॥ २० ॥]

किं चान्यदपि भूयतां बन्धस्य कारणम् ॥

अपरपरिमोगप्रतिपादनेर्बन्धोऽप्युक्तोऽप्युक्तमेव च हस प्रति हंसी कलहयन्नाह-
किंचेति ॥ चकारः पराभिप्रायाद्येपूर्वकं शिरोवे । एव मामासी दुरामा नि शङ्को
निर्मर्षाद्व ॥

और भी बन्धन के कारण सुनिये

अस्ति अत्परिमदे मृणालिकानामचननायिका, सापरागस्यगितमुख-
कमलापि बलादनेन विनाशिता, यिनिपन्योपरि अर्जरीता नक्षैः खण्डि-
तमपरदलम् , ललितमलिकालकमण्डनम् , अपनीतः सुकुमारमायः ॥

अस्तीति ॥ येन आसतां लोकद्वारा । मम राज्ञोऽपि परिग्रहे स्थितायां नायि-
कायां प्रवृत्तम् मृणालिकानां पद्मिनीनामवने रचने, नायिका स्वामिनी, सा
ततोऽपरागाद्रागमाभावाद्, संतुलवक्त्रकमलापि बलाकारादनेन खण्डिता विनाशिता ।
विनाशोऽत्र शीलरुण्डनम् । तदाह—यिनिपत्येति । अपर ओष्ठः, अलिकं छलार्थं
लप, तथा अलङ्कारां केनानां च मण्डनम् । लपस्य । उद्गच्छ । सुकुमारमायः ।
अर्थात्कन्यात्वम् । आसनेषु तु । मृणालिका पद्मिनी । नामेति संबोधने । वनस्य
नायिकेव । परागो मकरन्दस्तेन दृष्टमुत्पन्नानि कमलानि यस्याम् । बलादपि अनेन
विना पद्मिना सा खण्डिता भविता । अतोर्मोक्षार्थात्कर्मणि क्तः । अपरादलमयः-
पत्रम् । अलम् एव कालं कृष्णं कश्य शिरस उपरिभागस्य मण्डनम् । अपनीतो
मृदुमायः । नक्षैर्भरितत्वात् ॥

निन्दापक्ष—मेरे द्वारा नियुक्त मृणालिका की रक्षा (अवन) में लगी हुई, प्रेमाभाव के कारण अपने मुख कमल को बन्द की हुई नायिका का विनाश (शील हरण) इसने किया है। इसके ऊपर अधिस्तब्ध होकर नखों से इसे जीर्ण (विदीर्ण) कर दिया है। अधरोष्ठ को खण्डित कर दिया है। अलिक (लगाट) के भूषण रूप अलकों (बालों) को बिखेर दिया है और उसके सुकुमारभाव (कीमत्त) का हरण किया है।

मयार्थ पक्ष—मेरी अधिकृत भूमि में स्थित इस वन की नायिका स्वरूप मृणालिका (कमलिनी) को जिसका मुख पराग से भर गया है, बलात्कार इस पक्षी ने खा लिया है। उन पर भ्रमण कर उन्हें जीर्ण कर दिया है। अलियो (भ्रमरो) के कालक (कृष्णता) रूप भूषण को दलित कर दिया है। उनकी कीमलता को नष्ट कर दिया है ॥

(मृणालिकानाम् अवन + नायिका—कमलिनियो की रक्षा के लिये नियुक्त नायिका। सा पराग स्थित—मुखकमलाक्षि—मुख कमल निताम्त प्रेमाभाव पूर्ण है तो भी। बलात्कारेण विनाशिता-बलात्कार इसने उसे आचार-पतित किया।

वास्तव पक्ष—मृणालिका + नाम + वननायिका—हमारे उद्यान की नायिका सदृश कमलिनी। सा पराग स्थित मुखकमला—आद्योपान्त पराग से भरे मुख कमल वाली। विना + अक्षिता बि शब्द पक्षीका वाचक है। उसी के तृतीया का रूप विना है। अर्थात् इस पक्षी द्वारा मेरी सुन्दर कमलिनी खा ली गयी है। खण्डितम् अधर दलम्—कमल के नीचे के दलों को खण्डित कर दिया है। दलितम् अलिक—कालक-मण्डनम्—भ्रमरो की कृष्णता रूप मण्डन को रगड़ दिया है।

इन अपराधों के कारण उसे बाधना उचित ही है ॥

किं वापीवरेणानेन न कृतम् ॥

किमिति ॥ अथानेन पीवरेण स्थूलेन किं न कृतम्। सर्वं कृतमेव तद्विद्युप-सहारे ॥ वास्तवे तु वाप्या वरेण प्रधानेनानेन ॥

इस पीवर (स्थूल) बुद्धि ने क्या क्या नहीं किया। द्वितीय पक्ष—इस वापीवर (सरोवर के प्रधान हंस) ने क्या नहीं किया ॥

तदेव याचन्मध्यं बहुधापाञ्जरघ्रावगाहते ताचन्मे कुतः संतोषः। न च नदीक्षितेद्विजन्मनि निगृह्यतेऽपि गरीयः पातवत्तस्मिन् ॥

तदिति ॥ तस्मादेषोऽपराधो, पञ्जरस्येद् पाञ्जर मन्त्रं यावन्भावगाहते। मे मम। तावत्कुत संतोषः। अथार्थं द्विजन्मत्वावनिप्राप्त इत्यत आह—न चेति ॥

द्राव्यां सकाशाज्जन्म यस्य स द्विजन्मा न द्विजन्मा तयोक्ते अर्थात् त्रिज्जाते निगृही-
तेऽपि गरीयोऽप्यथ पानकं न च नैवास्ति । तस्मिन्कोटो नदीक्षिते दीक्षा दीक्षादि-
मतपरिमह संज्ञातोऽस्येति । एतेन दीक्षितो लिङ्गी त्रिज्जातोऽप्यस्य एव । अथवा
अपि समुच्चयापौ निक्षत्रमो द्विजन्मनीयनेन मयोग्यः । तस्यपि दीक्षिते वनिनि
द्विजन्मनि बाह्ये निगृहीते न च न पानकम् । पानकमेवेत्यर्थः वास्तवे तु
तरमादं त्वपत्तिः । अपा जलानां मयं जरन्यावद्वर्षकावध नावगाहते तावन्मे
कुतः संतोषः । नचा क्षित उपनि द्विजन्मनि विहने नितरां गृहीते हनेहास्वीकृते
गरीयोऽप्यथ न च पानकमस्ति । श्रेय एवास्तोत्यर्थः । गरीय इति क्रियाविशेषणम् ।
अपिर्विरोधोच्चाहने गृहीतशब्दस्य दण्डितार्थत्वात् ॥

अथः यह (अपराधी) जब तक पित्रदे के बीच बहुत समय के लिये
नहीं जाता तब तक मुझे संतोष कहा । (मैं वैष्णव आदि परम्परा में)
वरीक्षित द्विजन्मा को पकड़ लेने में कोई लक्ष्मण पाप नहीं लगता ।

द्वितीय पक्ष—यह पानी के बीच अपनी बुद्धावस्था पर्यन्त विहार नहीं
करता रहेगा तब तक मुझे संतोष कहा । नदी तट पर बसा हुआ पक्षी यदि
(स्नेह) से पकड़ लिया गया तो कोई बड़ा पातक नहीं लगता ।

प्रथम पक्ष—पाण्डुरम् न अवगाहते—त्रिजदे के मध्य भाग में जब तक
(बहुत समय तक) नहीं रहता । न दीक्षिते द्विजन्मनि—जो द्विजन्मा बाह्य
आदि दीक्षा ग्रहण नहीं किया है । बाह्य आदि भी यदि दीक्षा नहीं ग्रहण
किये हों तो उन्हें पकड़ने में दोष नहीं लगता । पक्षी आदि की तो कोई बात
ही नहीं । अथवा दीक्षित बाह्य को पकड़ने पर पातक नहीं लगता ऐसी बात
नहीं । अर्थात् पाप लगता ही है ।

द्वितीय पक्ष—अपाम् (बल के बीच) जरन् यावत् (बुद्धावस्था पर्यन्त
जब तक) न अवगाहते (विहार नहीं करता) तावन्मे कुतः संतोषः (मुझे
तब तक संतोष कहा ।) नदी + क्षिते (नदी में बसे हुए) द्विजन्मनि (पक्षी को)
निगृहीते (पकड़ लेने पर) महान् पाप नहीं लगता ।

बल के किनारे हस्त देठा या, मैंने उठा लिया है । मेरी इच्छा है कि बुद्धावे
तक यह बल में विहार करे । मैं सदा इसका मङ्गल चाहता हूँ ॥

अयि मुग्धे कलहंसिके, त्वं पुनः मानसद्वनापि विमाननां सदसे,
विपरीतः स्वल्पेः । यतः सद्वंशकान्तरागमविमुक्तो मधुपश्रेणिध्रुवर्णियां
सुरार्जाधिना कान्तां कामंयते । तद्वलमनेन । 'गच्छ वत्से, यथाप्रियम्'
इत्यभिहितवति वसुधैवकुर्वर ॥

श्लो० ॥ मानेन मगना । विमानना अवगमना । पक्षे मानसं सरः । विषु पक्षि-
षु मानना पूजा । विपरीतो विरुद्धवृत्तः । पक्षे त्रिमि पक्षिमि पक्षिवृत्तः । कादम्बर-

कदम्बकेश्वरावात् । सद्गन्धकान्तानुरागपराङ्मुखे । मद्यपन्थेणितेभ्याम् । सुरया जीयति या ताम् । इच्छति । पक्षे शोभना वशा मस्करा येषु तेषु कान्तारेषु नगोभ्यो विमुखो भृङ्गपङ्क्तिश्रितां सुष्ठु शोभनाराजीविनीं नलिनीम् । प्रपस्यानतिश्रमेण यथाप्रियम् । प्रियो भर्ता इष्टप्रदेशश्च । इत्युक्तवति नृपे ॥

प्रथम पक्ष—जो सुन्दरी हसी, तुम मान (प्रेममूलक रोष) से सगत (युक्त) हो फिर भी विमानना (अवहेलना) सह रही हो । यह विपरीत बात है । क्योंकि सुन्दर वश मे उत्पन्न प्रिया के प्रेम से विमुक्त (यह तुम्हारा पति) मद्यपीने वालो के उपभोग लायक, मदिरा से ही जीने वाली प्रिया का चाह रहा है । अतः यह महान् अनर्थ है । “वरसे, जाओ अपने प्रिय स्थान पर ।” इतना कह कर सम्राट् चले गये ।

द्वितीय पक्ष—“ओ हसी, मानसरोवर जाकर विविष्ट सम्मान प्राप्त करती हो । तुम्हारा पति पक्षियो द्वारा घिरा हुआ है । सुन्दर बास के जगल मे पेड़ो से विमुख होकर भ्रमरो से युक्त मनोहर कमलिनी की कामना करता है ॥

[प्रथम पक्ष—मानसगताऽपि विमानना—मान (हठ से युक्त) है फिर भी मान से हीन है । विरोध ॥ मान (प्रेम मूलक रोष) से युक्त हो फिर भी विमानना (अवहेलना) सह रही हो । “परिहार” ॥

विपरीतमेतत्—यह अनुचित है । मामिनी को अनुनय-विनय के साथ मनाना चाहिये उसकी अवहेलना करना तो असगत बात है ।

सद्गन्ध कान्ताराग विमुख —सुन्दर वश मे उत्पन्न अपनी प्रिया के प्रेम मे विमुक्त । मधुपपक्षिणीश्रवणीयाम्—मद्य पीने वाले श्रोत्रो के उपभोग के उपयुक्त । मुराजीविनीम्—मदिरा से ही जीवन चराने वाली कान्ता कामयते—सुन्दरी की कामना करता है ।

द्वितीय पक्ष—मानसगताऽपि विमानना—मानसरोवर जाकर वि (पक्षियो) का मानना (सम्मान) प्राप्त करती हो । वह उस हंस की पत्नी है जो अपने समाज का नायक है । अतः उसकी पत्नी का सम्मान होना स्वाभाविक है ।

वि + वरीतम् एतत्—वि (पक्षियो) से यह घिरा हुआ है । पक्षियो का नायक है । अतः दूसरे पक्षी अपनी स्वामी की सुरक्षा के लिये उसे घेरे हुए है ।

सद्गन्ध कान्ताराग विमुख —सद्गन्ध (सुन्दर बास) के कान्तार (जगल) में जो अग (पेड़) हैं उनसे विमुख (निरीह) रहता है । अर्थात् हंस बास के वन मे अनुराग नहीं रक्खता ।

मधुप—मधुप (भ्रमर) श्रेणी (पङ्क्ति) द्वारा ध्वजोप (सेव्य) कान्ता (मनोहर) सु + राजीविनी (सुन्दर कमलिनी) की कामना करता है । दस पक्ष मे हंस का स्वाभाविक एवम् उचित वर्णन हुआ है ।

सापि सपरिहासं हंसी 'हंहो विहङ्गमुज्जङ्ग, मृणालिना तामर
सान्तरसानुरागयञ्जितमना कामयसे किं वापीनदेहे नीरसेयके त्वयि
न संमाप्यते' इत्याकलितकलहं कलहंसमवादीत् ॥

सातीति । हस्यति हसमवादीत् । हहो इति प्रत्ययपूर्वाम्भवे । विहङ्गवि
हामिन् । तां राजनिवदिताम् । मृणालिकानां पालननायिकाम् । अरमा नि-
स्नेहाम् । नरसा बलेन । अनुरागेन स्वामशया रतिनचित्त इत्युक्तिः । तु किमर्थं ।
न चाप्य विलामिधमं । यस्तनस्तु मृणालिका पञ्चिनीम् । तामरामान्तं अमात्रे
रसा निपासस्तनानुरागो यस्यसि सखेघनम् । अस्तस्यैव स्वरूपार्थः । अथवा
तामरसस्यागते भये सानुरागेति मखोषणम् । अथवा पीने स्थूलादेः । नीरमे
निस्नेहे । निर्वाये वा । यकप्राये त्वयि किं न समाप्यते । अन्यत्र । त्वयि
किंभूते वाप्यश्च नशाश्च तेष्वीहा यस्य । तथा नीर उल सेवते य । किं न
संमाप्यते इति । समावना प्रशंसाविषया । एकमेव हि वाक्य प्रकरणादौचित्यात्
प्रशंसा निन्दा च प्रतिपाद्यनि । यथा 'त्वमस्माकं किं किं न करिष्यसि' इति
प्रसङ्गेनेकप्रशंसा गमयति रङ्गेन च निन्दाम् ॥

प्रथमपद्य—बह (हसी) भी परिहास (हँसी) करती हुए, ओ विहङ्ग
मुज्जङ्ग (विनासी हम) उस प्रेममग्न कमलवन की रक्षिका को बड़े प्रेम से
चाहत हो । निर्वायं बगुले जैसे मान् गरीर वाले तुम पर क्या क्या सम्भावनाएँ
नहीं की जा सकती । इस तरह जिस किन्ते हुए इस से बोली ।

द्वितीयपद्य—बह (हसी) भी परिहास पूर्वक ओ पत्तियों के साथ विनास
करने वाले राजहंस कमल रस के अनुरागी बड़े प्रेम से कमलिनी की कामना
कर रहे हैं । वाक्पत्तियों और नदी की अभिलाषा करने वाले तथा वन का सेवन
करने वाले तुम में क्या क्या सम्भव नहीं है । इस तरह बड़े प्रेम के साथ इस
से बोली ।

प्रथमपद्य—ताम् अरसाम् मृणालिकाम् (उस प्रेममग्न मृणालिका नामक
वनरक्षिका को । तरसा अनुरागयञ्जितमना—बलात्कार अनुराग से पूर्णचित्त
वृत्ति बाँधे हाकर) उसकी कामना करते हो । पीनदेहे (मोटे गरीर वाले)
नीरमे (निर्वाय) बके (बगुलेश्वर) तम में क्या सम्भव नहीं है । तुम सब
कुछ कर सकते हो । सब अगह अनुरक्त हो सकते हो । निर्वाय होने के कारण
तुम महान् कामी हो गये हो ।

द्वितीय पद्य—तामरसान्तराग । (कमल के मध्य अंग में अनुराग रस
वाले) रञ्जितमना (प्रसन्नचित्त वृत्ति वाले) तुम मृणालिका (कमलिनी) की
कामना करते हो ।

बापीनदेहे—बापी (बावली) और नद में ईहा (इच्छा) रखने वाले
बाप में क्या नहीं सम्भव है ।

मुनिकी तरह जल के समीप रहने वाले बाप जैसे व्यक्ति में विविध उत्कृ-
ष्टताओं की सम्भावना की जा सकती है ।]

सोऽपि 'वैदग्ध्यधुरंधर, धूर्तालापपण्डित, प्रज्ञाप्राग्भासुरो, चातु-
र्याचार्य, मा मे प्रियां प्रसीपय । सदृशा एव यूयं वयं च राजहंसाः ।
सरसां श्रियमनुभवामः । नदीनां पात्रेष्ववस्थितिं कुर्मः । न चरण-
चर्यायां न इत्याद्यामहे । तत्सपक्षेषु विपक्षो माम्भूः ॥

सोऽपीति ॥ राजहंसा राजमुख्या यूय मरमां ज्ञानानुरागकरीं लक्ष्मीमनु-
भवय । तथा पात्रेषु धर्मपात्रादिषु दीना स्थितिं व्यवस्थां न कुरुष्व ॥ तथा रणविधौ
न न इत्याद्यथे । च मसुरचवे । वयं पक्षे सरसां तडागानाम् ॥ नदीनां सरितां
कूलमथेषु । चरणं चर्या गतिविशेषः ॥ तत्सरमादुक्तप्रकारेण समानपक्षेषु पक्षति-
महितेषु च । विरुद्धपक्षो माम्भूः ॥

वह (हंस) भी 'ओ उत्तम सहृदय ! धूर्तों की तरह (अस्पृष्ट) बातों में
प्रवीण ! बुद्धि के विविष्ट भार से गभीर ! चतुरता के आचार्य ! मेरी प्रिया को
द्रुढ़ न करो । बाप जैसे राजहंस (उत्तम राजे) और हम राजहंस (पक्षी)
बराबर ही हैं ।

बाप लोग प्रजा की अनुरक्त कर देने वाली सरस राजलक्ष्मी का उपभोग
करते हैं । पात्र (सत्पात्र सुयोग्य) में दीन (वृषण) दाना का प्रदर्शन नहीं करते ।
(सुयोग्य मादमी को सुयोग्य सम्मान देकर सम्मानित करते हैं ।) रणचर्या
(लड़ाई के बारे) में बाप लोग प्रशसित नहीं हो ऐसी बात नहीं । (होते ही-
हैं ।) मत अपने पक्ष के लोगों पर प्रतिकूल न हों ।

हम (हंस) लोग भी सरोवरो (सरसा) की शोभा (कमलिनी) का
उपभोग करते हैं । नदियों के पात्र (तट की छाइयो) में ठहरते हैं । चरणचर्या
(विलासिता पूर्वक प्रगण करने) में प्रशसित न होते हो ऐसी बात नहीं ।
इसलिए बाप सपक्ष (सुन्दर पक्षी को धारण करने वाले हंस) पर विपक्ष
(शत्रु) न हों ॥

एषा मे हृदयं जीव उच्छ्वास प्राण एव च ।

संसारसुखसर्वम्भं प्राणिनां हि प्रिया जनः ॥ २१ ॥

येति ॥ एवमेव मे हृदयं मन । अभिन्नमाशात् । जीवो जीवितम् । तत्प्रज्ञाये
जीवनात् । उच्छ्वास आभराधकवितादिषु । सम्भ्रापगमरेतुष्वाम् । प्राण प्रधान-
भूतो वायु । देहाधारमात् । प्राणी बलमपि । जीवितार्थो बलाद्यो न तु वार्यर्थः ।
एवप्रशस्तपाद् — 'प्राणोऽस्तं शरीरे रसमलघावृत्तां मेरणादिहेतुः' इति ॥ २१ ॥

यह मेरा हृदय है, जीव है, स्वाम तथा प्राण (बज) है, क्योंकि प्राणियों के लिए संसार के उत्तम सुख की प्रतिपूर्ति उनके प्रियजन ही होते हैं ॥ २१ ॥

रूपस्तम्पन्नमग्राभ्यं प्रेमप्रायं प्रियंवदम् ।

कुलानमनुकूलं च कलत्रं कुत्र लभ्यते ॥ २२ ॥

रूपेति ॥ प्रेम्णा नुरयप्रेमप्रायम् । सस्नेहमित्यर्थः ॥ २२ ॥

रूप संपत्ति से पूर्ण, नागरिक स्वभाव की, प्रेम भरी, सुन्दर कुल में उत्पन्न मनोऽनुकूल पत्नी कहा मिलती है ॥ २२ ॥

तद्वलमलोककलहद्वारम्भेण भवानप्येवं प्रेमप्रपञ्चनाटकनायको नातिचिरादेव यथा भवति तथा कमप्युपकारं करिष्यामि' इति राजा-
नमसादीत् ॥

व्यर्थ अधिक उत्पन्न क्या करना है, आप भी इस प्रेम प्रपंच वाले नाटक के नायक शीघ्र जिस डबाय में बने उस तरह का उपकारात्मक यत्न में कहेंगा । इस तरह राजा से हंस ने कहा ॥

अघान्तरेऽन्नरिसमण्डलादतिस्पष्टयर्षव्यक्तिमनोहारिणी वाग
भूयत ॥

हमी बीच आकाश में अत्यन्त स्पष्ट वर्षाव्यवस्था के कारण मनोहर वाणी सुनाई पड़ी ॥

राजम्प्राजीवपत्राक्ष क्षिप्रं हंसो विमुच्यताम् ।

मविप्यस्येप से दूतो दमयन्त्याः प्रलोभने ॥ २३ ॥

हे कमलनयन 'राजन् ! शीघ्र ही हंस को छोड़ दीजिए । दमयन्ती को आपकी ओर आकृष्ट करने में यही आपका हित होगा' ॥ २३ ॥

राजा तु तस्याः सौप्मबलातैलपूरेणोवाक्नुमुत्पुलकयता, कर्णान्तर-
भवतीर्णेन, दमयन्तीति नाम्ना कोमलतैत्तिरपिच्छस्पर्शमुखमिवातुम-
धन्मनाऽन्निर्मालिताश्विन्तयांचकार ॥

राजा त्रिदि ॥ बला गन्धद्वयविशेषस्तस्य तैलम् ॥

राजा तो जैसे गरम सबला तैल अङ्गो पर छिड़क दिया जाय और रोमाञ्च हो उठे उसी तरह रोमाञ्चित होकर कान के भीतर 'दमयन्ती' इस नाम से तितिल के कोमल पक्ष-स्पर्श सहस्र सुखानुभव करता हुआ थोड़े आर्थों को निमीलित करता हुआ सोचा ॥

'आहुदयन्ति सौख्याम्प्रातःकुम्भीयकुम्भिकाः ।

काञ्चीकलापसर्पकाः श्रोणीविम्बाः श्रुता अपि ॥ २४ ॥

भाङ्गादेति ॥ सौख्यजलमौवर्णकलसा । आसेचिता दृष्टाः स्मृष्टा वा । शुना
अप्याह्लादयन्ति । यतः सौख्यस्य सर्वात्मना आचारभूताः ॥ २३ ॥

‘करधनी से सुशोभित ऐश्वर्यजल से भरे हुए शातकुम्भीय (सोने के घड़े की तरह) नितम्बों को धारण करने वाली (रमणियों) को देखना या सुनना होना ही आह्लाद की चीजें होती हैं ॥ २४ ॥

तरुण्यं दमयन्ती, कश्चायमाश्चर्यभूतो विहंगः, का चेयं नभोभारती,
सर्वमेतद्विस्तरेण घेदितव्यम्’ इत्यवधारयन्नेकस्यामुत्फुल्लपल्लवितल-
तामण्डपकृच्छायायामुन्निद्रकुसुममकरुक्ष्वाशिकरासारशिशिरे शिलातले
निपद्य तं हंसमघादात् ॥

यह कीन-सी दमयन्ती, कीन-सा यह आश्चर्यजनक पक्षी, कीन-सी यह
आकाशवाणी, यह सब कुछ विस्तार से जानना चाहिए । यह निश्चित कर एक
जिजी हुई लता-मण्डप की छाया में पूर्ण विकसित फूलों के पराग-बिन्दुओं की
बर्षा से भीतल एक शिवा पर बैठकर उस हंस से बोला ॥

‘भद्र, सासपक्षीनं सख्यम्, उत्पन्नकृतिपयप्रियाल्लापा प्रीतिः,
प्रयोजननिरपेक्षं दाक्षिण्यम्, अकारणप्रगुणं यात्सल्यम्, आनमिस्त-
सुन्दरो मैत्रीभावः सतां लक्षणम् ॥

भद्रेति ॥ सप्त पदानि सम्बन्धन उपयन्ते वा यत्र सख्ये सासासपक्षीनम् ।
मैत्र्या प्रीतिर्भावोऽभिप्रायः ॥

कल्याणमय मित्र । सात ही पदों के आलाप से मैत्री, कुछ ही प्रिय बातों
से प्रेम की उत्पत्ति, अकारण दाक्षिण्य (उदारता) अकारण सुन्दर मित्रता ये
सब सखियों के लक्षण हैं ॥

अस्ति च तरुण्यं भवन्मूर्तायतो निःशङ्कमभिधीयसे कथय केयं
दमयन्ती, कस्य सुता, कीदृशप्रपम्, कुत्र सा यसति, कश्च भयानस्मा-
कमुपकर्तुमिच्छति, का चेयं दिव्यवाणी-इत्येवमुक्तः ॥ कथयितु-
मारेभे ॥

आपके शरीर में ये सब गुण हैं, इसीलिए निर्भयतापूर्वक वह रहा है,
‘कहिंसे कीन यह दमयन्ती, किसकी लड़की, किस तरह का रूप, कहाँ वह रहती
है, कीन मेरा उपकार करना चाहता है और कीन यह दिव्य वाणी है ?
(राजा के) ऐसा पूछने पर उसने कहना शुरू किया ।

‘शृङ्गाररमभृद्गार तस्याः सौन्दर्यवीर्यधः ।

कर्णमारोप्यतां देव घाताविस्मयपल्लवः ॥ २५ ॥

श्रृङ्गारः ॥ रसेन विच्यमाना वीरद्वर्षते । शृङ्गारोऽपि कर्णकण्ठे निहितेन पद्मेन
शोभत इत्युनयममागनौचि यात् । मौन्दयैज वीरदिव सौकुमार्यात् । वार्ताया
विस्मयो वार्ताविस्मयः स एव पद्मे ॥ २५ ॥

ह शृङ्गार रस के स्वांग-रस । (राजन्) उस (दमयन्ती) की सो-दय-
रस के वाच्य-रस वार्ता-पद्मे का (कृपा) अपने कानों पर रखें ॥ २५ ॥

यस्मिन् विम्बार्णमिदिनीमण्डलमण्डनायमानो नगनगरपुरविहारा
रामरमणीय सीतासहायसंचरितरपुपतिपादपद्मपवित्रारण्य पुण्य-
तत्तरङ्गगङ्गागोदाररीयारिखारिन्दुरितदाधानलप्रसर. मन्दर इव घलि-
राजनिनपरिवर्तन, बैलास इव महेश्वरलोककृतवसति, मेरुवि-
सुवर्णप्रकृतिकमनीयो, यदुर्ग इव दृष्टरूपरुपावतार, सोमाम्बय इव
पुरप्रगानो, वेदपाठ इवानेके मवनैवपेत, पर्वते-पर्वते श्याणुभिः, पुरे
पुरे पुराणपुराणैः, जले जले कमलोद्भवे, पदे-पदे देवकुलैः, वने-वने
वर्णैः, स्थाने-स्थाने नन्दनोद्यानैः, अर्गल स्वर्गस्थ, तारीप्रायोऽ-
प्यनुपनापी जनस्य, विम्बार्णमुद्रिताया विशि देशानामुत्तरोऽपि
दक्षिणो देश ॥

विम्बार्णः । देशानामुत्तरा सुवर्णो दक्षिणदेशोऽस्ति । अपिर्विरोधे । उत्तराश्वत्थ
विम्बार्ण-वात् । बलिना घनकमा, राज्ञा भीमलङ्घनेन जनिता परि समन्तादूर्ध्वेन
परिपातनं यत् । पदे वनिराजो दैव्य । परिवर्तनं जगत् । महानीश्वरोऽतिसमृद्ध
शिवश्च । सुष्ठु वर्णं द्विजानाम् । प्रकृतयोऽप्याद्या । पदे सुवर्णप्रकृत्या स्वर्ग-
भावेन काम्य । पुरो विष्णुमी बभूववपिता च । कुपो विष्णुमहविषयश्च । स इति
निष्ठम् । वने काम्ये । पदे मवनैर्वर्णैर्दुष्टः ॥ स्थाने वैश्व विष्णुप्रायश्च । पुराण-
पुराणे पुराणो विष्णुश्च । कमलोद्भवैः कमलोपतिमिन्द्रमिन्द्र । कुलं गृहं बृहद् च ।
वर्णो कृपा जल वा । पदे प्रकृता सूर्यो वा । नर-र इति क्रियावचन इन्द्रवचन
महा च । तैत्तिरीयब्रह्मविशिष्टं विश्वेऽर्गल-विश्वे । स्वर्गे ऐक्ये एव श्याणुमृति ।
अस्मिन्नु बहव इत्यर्थः । तारी बह्वी प्रायेण तत्र । विरोधे तु तापसापहरणमिति
तापा ॥

पैठे हुए नून-रस का भुवन पर्वत, नगर, ग्राम, विहार (मठ) एवं वृक्षानों
स रमणीय, सीता के साथ घूमते हुए रघुपति (रामचन्द्र) के चरण कमलों
से पुनीत जङ्गलों वाला गङ्गा और गन्दावरी के अत्यन्त पवित्र जल-तरङ्गों
से दुरित (पाप) बनामिके प्रसार को रोक दिया जाने वाला विष्णु-वचन से
जगत् किया हुआ सभी देशों में उत्तर (सर्वश्रेष्ठ) दक्षिण दक्ष है वहाँ के
बनिराज (वाञ्छन् मूर्ति ने) उसी तरह परिवर्तन ला दिया है जैसे बनिराज
'देव' ने मन्दर में परिवर्तन (कम्पन) ला दिया था । पैठे कैलास पर्वत में
महेश्वर लोक (शिवजी के गंग) निवास करते हैं उसी तरह वहाँ भी महेश्वर-

लोक (महान् ईश्वर (राजा) के प्रजाजन) निवास करते हैं । मेरु पर्वत सुवर्ण प्रकृति (स्वर्ण शरीर) होने के कारण जैसे कमनीय (सुन्दर) लगता है उसी तरह वह (देश) भी सुवर्ण प्रकृति (सुन्दर वाङ्मनि वाला) होने के कारण कमनीय लगता है । यदुकुल जैसे घूर (यमुदेव पिता) के अवतार को देखा है वैसे उस देश ने भी घूर (पराक्रमी) पुरुषों के अवतार को देखा है । सोम (चन्द्र) वश बुध (ग्रह) जैसे मुख्य ग्रह से युक्त है वैसे ही यह देश भी बुध प्रधान (पण्डित बहुल) है । वेदपाठ जैसे बहुत सवन (यज्ञ चर्चाओं) से युक्त है उसी तरह से (वह देश) वन (जंगल) से युक्त है । वह देश स्वर्ग से भी वर्ण्य (अधिक) है क्योंकि वहाँ प्रत्येक पर्वत से स्थाणु (ठूठे पेड़ या स्तम्भ) हैं । प्रत्येक गाँव में पुराण (बुद्ध लोग) हैं । हर एक सरोवर में कमलोद्भव (कमलों की उत्पत्ति) है । पद्म-धाम पर देवकुल (सुन्दर गृह) हैं । हर एक वन में वरुण (वरुण वृक्ष) हैं । स्नान-स्थान पर नन्दनोद्यान (सुन्दर उपवन) हैं । (स्वर्ग में भी एक ही स्थाणु (शिवजी) एक ही पुराण पुष्प (विष्णु) एक ही कमलोद्भव (कमला (लक्ष्मी) उत्पत्ति) एक ही जगह देवकुल (देवताओं का गृह) एक ही वरुण (वरुण देवता) तथा एक ही नन्दन-वन (इन्द्र का उपवन) है । वह देश तापी घाट (तापबहुल) होता हुआ भी उपतापी (ताप बहुल नहीं है । विरोध) वह देश तापी नदी से चिरा हुआ है तथा लोगों को उपताप (दुःख) नहीं पहुँचाता ॥

यत्र शाल्वे शम्भे च येदे वैद्ये च भरते भारते च कल्पे शिल्पे च प्रधानो, धनी, धन्यो, धान्यधान्, विदग्धो वाचि, मुग्धो मुखे, म्लिग्धो मनसि, वसति निरन्तरमशोको लोकः ॥

यत्रेति ॥ कल्पे शिल्पे चेति । कल्पो यज्ञकर्मणामुपदेशकः । प्रधान इति प्रकृष्टं धानं धारणं यस्य । शम्भुशाल्वादीनि प्रकर्षेण धारयतीत्यर्थः । एवं सर्वत्र वाच्यलिङ्गनः । मुख्यार्थस्य हि प्रधानशब्दस्याविशिष्टनपुंसकलिङ्गत्वम् ॥

जहाँ शाल्व, शम्भ, वेद, आयुर्वेद, भरतवल्ड महाभारत, (आदि दिव्य ग्रन्थों) कल्प (यज्ञादि के उपदेशकों) में मुख्य धनी, धन्य, धान्ययुक्त, वाणी में प्रवीण, मुख से सुन्दर, मन ॥ अनुरागी सदा शोक-शून्य लोग बसते हैं ॥

यत्र कन्दधूर्जटिलल्लाटलोचनानलज्वालाकयलनाकुलः, आसादपा-
ङ्गाधलोकनमात्रनिर्जितपरमेश्वरमनसां विलासिनीनामुच्चकुचकुम्भयोः
शृङ्गारसर्पस्वर्ग, अधरपल्लवेषु मधु, भ्रमङ्गेषु धनुः, कटाक्षेषु पुष्प-
वाणाग्निधाय निलीनोऽङ्गेषु जघनमथलस्थापितरतिमकरकेतनः ॥

यत्रेति ॥ देते विलासिनीनां कुचादिष्ववयवेषु स्वोपकरणानि शृङ्गारादीनि स्थापयित्वा आसादिलीनो मन्मथः । यतः । क्रिविशष्टानीं ताम्राम् । निर्जितं

परमेश्वराणां घनिनां मनो याभिः ॥ अथ च परमेश्वरो धूर्वतिः सोऽपि तानिनिवृत्ति
इत्युच्यते । एतेन दारणागतत्रागवैभवम् ॥

जहां सोधारेण में जाये हुए भगवान् शङ्कर के लयाटस्थ लावन की अग्नि
ज्वाला में कवडिग किये जाने के कारण डर के मारे अपाङ्ग भाग से देत लेने
मार में बड़े बड़े राजाओं की वित्तवृत्ति को भी जोत लेने वाली रमणियों के
जैसे कुचकलश पर शृङ्गार के सारभूत तत्त्व को, अक्षरों में मधु को, भौहों की
वक्रता में धनुष को, कटाक्षों में धूलों के बादलों को रखकर स्वयम् अङ्गों में
बिचीन हाकर जघनस्थल में रात को रखकर कामदेव रहता है ॥

यासां तादृष्यमेव सर्वाङ्गेषु शोभार्यमाभरणम्, उत्तुङ्गस्तनमण्डल-
लाघप्यमेव मुखकमलाधिलोकनाय दर्पणः, तारतरनयनकान्तिरेव
मुखमण्डलमण्डनाय चन्दनललाटिका, भ्रूमङ्गा एव चित्रमाय मृगम-
दपद्ममङ्गा, कटाक्षा एव युषजनजयाय परमास्त्राणि, बन्धूककुसुमका-
न्तिदन्तच्छद एव लोकलोचनमनोमोहनाय माहेन्द्रमणि, मुखकमल-
परिमलागतमधुकरमधुरसंस्कार एव विनोदाय वीणाध्वनिः ॥

यासानिति ॥ माहेन्द्रमिन्द्रबाहम् । तन्त्रयलेनाविद्यमानवस्तुमकाशनमिति
पाठः । तदर्थो मणिमहिन्द्रमणि ॥

जिनका यौवन ही सभी अङ्गों को सुशोभित करने के लिए भूषण है । उत्तु-
स्तन मंडल का सौन्दर्य ही मुखकमल को देखने के लिए दर्पण है । चंचल आँखों
की कांति ही मुख-मंडल को अलंकृत करने के लिए चंदन बिन्दु है । भौहों की
वक्रता ही चित्रास को शोभित करने के लिए कस्तूरी से अङ्कित पत्र रचना है ।
कटाक्ष ही युषकों को जीतने के लिए परमास्त्र है । बन्धूक (बंदूक) के दूध
जैसा कांति वाले मोह हैं । लोगों की आँखों को मोहित करने के लिए माहेन्द्र
मणि है । मुखकमल से निकले हुए परिमल (सुन्दर गंध) के लिए भीरो की
मधुर संस्कार ही विनोद के लिए वीणा की ध्वनि है ॥

किं यदुना—

ता एव निर्वृत्तिस्थानमहं मन्ये मृगेक्षणाः ।

मुक्तानामास्पदं येन तासामेव स्तनान्नरम् ॥ २६ ॥

ता एवेति ॥ निर्वृत्तिर्मुक्तिः शमं च । मुक्ता मुक्तात्मानो मौक्तिकानि च ॥ २६ ॥

मैं मानता हूँ कि वे मृगेक्षणार्थ (नायिकायें) मुक्ति का स्थान हैं, उन्हीं के
स्तनों के बीच मुक्त लोगों को अगह मिलती है ।

द्वितीयपक्ष—मेरी सम्मति में वे मृगेक्षणार्थ निर्वृत्ति (लज्जाशीलता) के
स्थान हैं । उन्हीं के स्तनों के बीच मुक्तामणियों को स्थान मिलता है ॥ २६ ॥

मन्ये च । तामिरेष विविधनिधुवननिधानकुम्भीभिः कुम्भोद्भू-
योऽपि भगवान् प्रलोभितो भविष्यति, येनाद्यापि न मुञ्चति दक्षिणां
विशमेव ॥

सुरत-क्रीडा के पात्र उन्हीं नामिकाओं द्वारा कुम्भज ऋषि (भगवत्) भी
मात्तूम पड़ता है प्रलोभित हो गये होंगे । इसी लिए आज भी दक्षिण दिशा को
छोड़ ही नहीं रहे हैं ॥

अथवा—

देशो भवेत्कस्य न यल्लमोऽसौ स्त्रीसंकुलः सुस्थितकामकोटिः ।

वर्धैककामं त्रिविधं विहाय यस्मिन्कुमारोऽपि रतिं चकार ॥ २७ ॥

देश इति ॥ कामकोटिर्बुद्धी कर्षणकोट्यस्य । कुमार-कातिकेशो डिम्बस्य । रतिरा-
श्वार्थः । सुरतार्थेन च विरोधोद्भासना ॥ २७ ॥

या—

कामकोटि देवी से सनायित स्त्री बहुल वह देश किसको प्रिय नहीं है
जहाँ कामदाय स्वर्ग को छोड़कर कुमार (कातिकेश) भी प्रेमपूर्वक रहे हैं ।

वह कामदेव की कोटि (मूर्ती) तथा स्त्री बहुल देश किसको प्रिय नहीं
है जहाँ कामवासनाओं को मुला देने वाली क्रीडा की विविधताओं को छोड़कर
बच्चे भी रति (प्रेम) करने लगते हैं ॥ २७ ॥

तस्यान्तर्भूतवैदर्भमण्डलस्यालंकारभूतमनाकुलममरपतिपुरप्रति-
स्पर्धिपरितः परिणामान्तरुदप्रौढहृयोद्यानमालावलयितमदभ्रशुभ्राभ्रं-
लिहप्राभादशिखरशिखामोगममरवरियतुंगवेगम्, एरुप्राग्निहोत्रमन्त्र-
पवित्राहुतिद्वतसमस्तदिव्यान्तरिक्षमौमोत्पातसंघातैः, कृतमन्युभिरपि
मन्युशूलैः, उक्तसूक्तैरपि निरुक्तपदैः, सन्मार्गस्थैरपि गृहस्थैः, सकल-
भैरपि ब्रह्मचारिभिः, अभ्यस्ततिथिभिरप्यतिथिकुशलैः, सामप्रयोगप्र-
धानैरपि दण्डावलम्बिभिः, शतपथानुसारिभिरप्येकमार्गैः, ब्राह्मणैर-
भ्यासिनम् । एकत्र कुठमिरिव द्रोणपुर-सरैः, प्रासादैरिव तुलाचारिभिः
भयायिकैरिवानुमेपानुमाननिपुणैः, वैशेषिकैरिव द्रव्यानुगुणकर्मविशेष-
पण्डितैः, चैयारणैरिव रूपसिद्धिप्रधानैः, रुद्रेरिवानेकग्रन्थिषट्कप-
दैकैः, विपणिचणिगजनैरधिष्ठितम् । एकत्र विटकौलदम्भदोक्षाभिरिव
कुचरूपलोमितलोकाभिः, कुकविस्त्रयपद्धतिभिरिव भग्नयतिगणवृ-
त्ताभिः, निशाचरीभिरिव रजनिरागिणीभिः, सर्वतोमुपजघनचपला-
भिरप्यनार्याभिः, कर्णाटचेटीभिर्मरितम् । एकत्र बालकमित्र कुलाला-
कीर्णम् । एकत्र वृद्धमित्र कुजराजितम् । एकत्र चित्रविद्ययेष प्रवर्धमा-

नसकलशिशुशोभितया विन्यस्तस्वस्तिरया सर्वतोमद्रमूपणया मवन-
मालयालंघितम् । एकत्र नाटकैरिव पताकाङ्कसंधिसंगतैः, दुष्टकिरातै-
रिव दृष्टकूटकर्मभिः, शल्लैरिव सुधारैः, विचित्रैरपि सचित्रैः, सतुलैर-
प्यतुलैर्देवकुलैः संकुलम् । विशालमपि शालासंपन्नम्, चतुश्चरणसं-
युक्तमपि चरणरहितम्, विट्संभृतमपि शुचिमार्गम्, सर्वत्र चत्वर-
धिकमपि स्थिरप्रकृतिः, मञ्जन्मद्वाराद्रुकुटुम्बिनामुत्तमण्डलविधीयमानो
स्तुहकनलशोभायास्तुहतरङ्गरङ्गचरुणाजुनराजीराजमानराजहंसवि-
राजिनवारेर्वरदायास्तोरे रमणीयकरसकुण्डं कुण्डिनं नाम नगरम् ॥

तत्तेति ॥ तस्य इतिगदेशस्यान्तर्भूतं वैदर्भं मण्डलं तदलङ्कारमूत्रम् । पञ्च
विशेषगोपेनम् । निबन्धनम् । तुहतरङ्गेषु रङ्गानि तरुगानि चवात्पुनानि घबलानि
यानि राणीयानि नह्नाजमाना य राजहमास्तैर्विराजित वारि यस्यास्तस्या वरदा-
यास्तोरे कुण्डिनं पुरं वर्तते इति शेषः । एकत्र ब्राह्मणैरप्यासितम् । कीदृशम् ।
भादुनिहनीयद्रव्यम् । तथा कृमिकृमिम् । तथा कोपशून्यम् । निबन्ध प्रमथविशेषो
वाचनामात्रम् । सम्मर्गं सदाचारं श्रेयसाच्च । सकलं सर्वं प्राप्यत इति
सकलत्रा । ब्रह्म वेदं चरन्ति ज्ञानन्त्यवरयम् । 'ब्रह्मचारिमिरपि सकलत्र'
इति पाठे ब्रह्मचारिभिर्निषिद्धकामैः । अनियोगान्तरम्, कुशाक्षं लान्ति स्वी-
कुर्वन्ति । माम वेदं साम्नाच्च । दण्डं नापात्रा दमनं च । वातपयो
यजुर्वेदमात्रं वातमन्त्रं पम्याच्च । एवमागैर्हनुमि । सर्वत्रापिर्विशेषार्थः ।
तु प्रतीयमानाय-वपया । पुनरप्येकत्र । वाग्मिरविष्टितम् । प्रोक्तो मान
कौरवगुरुः । सूत्रादिमानं गृहादागा तिर्यग्धारणस्तमश्च तुला । अनुमेय
कणादि तस्यानुमानमुद्देशज्ञानम् । पञ्चे अनुमीयते तदनुमेयम् । अनुमीय-
तेऽनेन तदनुमानम् । यथाऽयं वडिमान्धूमवत्कादियत्र धूमोऽनुमानम् । इद्विर-
नुमेयं द्राव्यस्य रूप्यकादनुगुणं सकलना तत्कर्मविशेषविज्ञा । पञ्च द्रव्यानुगुणा-
णाकर्मविशेषा पदार्थाः । रूपं दृक्कल्पकादिनागकं सत्त्वम् । कपर्दो वराटो
जटावन्धश्च । एकत्र । कर्णाद्विषीभिर्भरितम् । कुचयो रूपेण लोभितलोका ।
शाक्तदम्भर्द्धास्तु कुस्तिनेन चरुणा मामादिनोपलभितलोका । भद्रमुनिवृत्त-
शीलाभिः । पञ्च मन्त्रपतिगणानि वृष्टानि यामु । यतिविरतिः । गणा नगगाद्
योऽष्टौ । वृत्त पद्यम् ॥ रजनी हरिद्रा निशा च । रागो वर्णान्तरातोपणमासक्तिश्च ।
कर्णाट हि हरिद्वेवाङ्गरागः । मुखं जघने च चपला । व्याप्यं सात्व्यो मात्रावृत्तमेदम्
तना नत्रयोगः । जपिविराधः । मुखजघनचपलाशब्दस्वार्थव्याप्यवाचिवात् ।
एकत्र । कुशले कुम्भकारे कुम्भितलालया चाङ्गीयम् । कुम्भैस्तर्कमी राजितम् ।
पञ्च कुम्भितजाया जितम् । एकत्र । गृहश्रेण्या भूषितम् । प्रवर्धमाने सकलै
कलावन्ति शिशुभिर्दिग्भै शोभितया । तथा विन्यस्ता स्वस्तिका मौक्तिकादि
चोदरविताश्रनुष्ठा यस्याम् । सर्वत इति मिष्टम् । भद्राणि वास्तुशास्त्रवदानानि
मूपणं यस्याम् । यदि वा स्वस्तिकवर्धमानौ गृहावयवविशेषौ । पञ्चे शिशुः सकल-
स्वस्तिको वर्धमानः सर्वतोमद्र इत्याख्यानि पञ्च पञ्चाणि । एकत्र देवकुलैः सकुलम् ।

पताका स्वज्जवास सैवाङ्गो येषाम् । तथा सधिषु सगतानि । अविभाष्यसन्धी
निरुपयं । नाटकेषु तु मुख्यनायकोपरि उपनायकचरितं पताका । अङ्ग प्रबन्ध-
विभाग । मुख प्रनिमुख-गर्म अवमग्न निवर्हणाख्या पञ्च सधय । कूट शिरसि कपट
च । सुधां लेपविशेषमियति प्राप्नुवन्ति । पचे शोभना धारा येषाम् । विचित्ररत्नक
प्रकारे । ॥ विगतचित्रैः । न तुला साम्यं येषाम् । तथा तुल्य धारणान्तर्गमेन
सह । उभयपक्षविरोधे । विनाश विस्तीर्णम् । व्यपेतशालम् । शांता राजाशालम् ।
अस्वारधरणा ऋग्वेदादयः । अपि चेति विरोधे । तथा रणेन युद्धेन रहितम् । विड
भिर्वैर्यै संवृतम् । न विद्यामि । अस्वर अतुष्यम् । प्रकृतिरमात्यादि । त्रिधोरतु
अस्वरे अकारस्य समुच्चयार्थस्य पूर्वपदेन बोधो ॥

उत्त दक्षिण देश के भीतर बौद्ध धर्म थडल को अलंकृत करने वाला कुण्डिन
नामक नगर है । वह उपद्रव रहित नगर इन्द्रपुरी से भी प्रतिस्पर्धा रखता है ।
आह्वानों से घिरे हुए उत्कृष्ट एवं मनोहर उपवनो से आलिङ्गित बहुत से गगन
धुम्बी भवनों के शिखरों के विस्तार में सूर्य-रथ के घोड़ों के वेग को भग कर
दिया है । जहाँ के आह्वानों ने एक जगह अग्निहोत्र मंत्र की पवित्र आहुति से
स्वर्ग, अक्षरिण तथा पृथ्वी (भूमि) सबधी उत्पात समूह को नष्ट कर दिया
है । मय्यु (क्रोध) करके भी मय्यु (क्रोध सूय) हैं । विरोध । मय्यु (यनो)
को किए हैं मय्यु (क्रोध) से शून्य है । परिहार सूक्तों को बोलते हैं फिर भी
निवृत्त (न बोलने) में उत्तर हैं । विरोध । सूक्तों (पुरुषसूक्त श्रीसूक्त आदि
स्तोत्रों) का पारायण करते हैं तथा निवृत्त शाल्व के अभ्ययन में उत्तर हैं ।
परिहार । समार्ण (सुन्दर मार्ग) पर ठहरे हैं फिर भी घर में बैठ हैं ।
विरोध । स मार्गस्थ (सदाचार का शालन करते हुए) गृहस्थ हैं । सकलत्र
(स्त्री के साथ) हैं फिर भी ब्रह्मचारी हैं । विरोध । सकलत्र (सभी लोगों के
जाण (रक्षा) करने वाले) ब्रह्मचारी (ब्रह्मविद्या के उपासक) हैं । तिथि
(पञ्चाङ्ग) विद्या का पर्वोत्सव अभ्यास किये हैं फिर भी अतिथि कुशल (तिथि
विद्या में निपुण नहीं) हैं । विरोध । अतिथि सेवा में कुशल है । परिहार । साम
(शांति) प्रयोग में निपुण हैं फिर भी दमन नीति का अवलम्बन लेने वाले हैं ।
विरोध । सामवेद का गान करते हैं तथा पञ्चाङ्गध धारण करते हैं । शतपथ
(सैंकड़ों मार्गों) का अनुसरण करते हैं फिर भी एक ही रास्ते से चलने वाले
हैं । विरोध । शतपथ आह्वान श्रवण के अनुसार आचरण करते हैं तथा एक
मार्ग (नीति) से चलने वाले आह्वानों से सन्तुष्ट हैं । कौरव जैसे द्रोण
(द्रोणाचार्य) पुस्तक वैसे (वे आह्वान) भी द्रोण (धनस्वित्ता) से युक्त हैं ।
प्रासाद (महल) जैसे तुलाधारी (तिरछे स्तम्भ को धारण करता है) वैसे
वहाँ के बनिये लोग तुला (तराजू) धारण करते हैं । नैयायिक जैसे अनुमेय
और अनुमान ज्ञान में पटु हैं । वैसे वे (बनिये) भी अनुमेय (वस्तुओं के

उद्देश्य, फल, भाव आदि का ज्ञान करने में निपुण हैं। वैरोधिक दर्शन के जानकर लोग जैसे द्रव्य, गुण, कर्म विशेष आदि सत्त्वों के विशेषज्ञ होते हैं वैसे द्रव्य (शरीर) के अनुकूल (कर्मविशेष व्यापार) के जानकार होते हैं। वैयाकरण जैसे रूपसिद्धि (शब्दसाधन) की मुख्यता देते हैं वैसे वे भी रूपसिद्धि (मुद्रा स्वर्ण आदि) के साधन में लगे रहते हैं। रुद्र जैसे अनेक गाँठों को देकर अपनी कपदक (जटा) बाँधते हैं वैसे वे भी अनेक गठरियों में कपदक (कोठी) बाँधे हुए हैं। अनेक बतिये लोमा से वह स्थान सनायित है। धूर्त वाममार्गी शाक्तों की वम्भ (अहंकार) भरी द्रोक्षा में कुचर (मांस आदि में पूर्णपात्र) द्वारा जैसे लोग लोमिन (आकृष्ट) कर लिए जाते हैं वैसे अपने कुञ्ज-रूप (एतन् सौन्दर्य) में जन सामान्य को सुख कर देने वाली, मत्समर्प कवि की काव्यशैली जैसे यतिगण तथा छन्दोभङ्ग आदि दोष में युक्त होती है वैसे यतिगण वृत्त (मुनि समूह) के शीघ्र को रंग कर देने वाली रज्जि रागिणी (रात में ही रागिणी) होती है वैसे वे भी रज्जि (हन्दी) में रागिणी (अङ्गराग लगाने वाली) मुख तथा जघन से चंचल अनार्य कर्णाटदासियों से कही सनायित है। बालक जैसे कु (खराब) लाल (लार) में युक्त होते हैं वैसे वह (नगर) भी कुशल (कुम्भकारों) में व्याप्त है। कुशापा जैसे कु (खराब) जरा (जीर्णता-कुशलता) में आक्रान्त रहती है वैसे वह (नगर) भी कुम्भ (वृत्तों) से मलङ्कृत है। जैसे चित्र विद्या जैसे बहुत से उदात्तमान शिशुओं से सुशोभित, स्वस्तिक चिह्न विधान की विधि में युक्त सर्वतोभद्र वैदिक निर्माण विधि से अलङ्कृत रहती है वैसे उस (नगर) की भवनपंक्ति भविष्यु शिशुओं में सुशोभित है, मोती आदि के चूर्ण में चारों ओर स्वस्तिक चिह्न बने हैं। भद्र (वान्धु शास्त्र में प्रसिद्ध) भूपा से भूषित है। नाटक जैसे पताका, अङ्क और सन्धियों से युक्त होते हैं वैसे वह (नगर) भी पताका (संज्ञा) रूप अङ्क (चिह्न) तथा सन्धियों में युक्त दुष्ट किरात (व्याध, शबर) जैसे कूटकर्म (कपट व्यापार) को देखे रहते हैं उसी तरह वे (मन्दिर) भी अपने कूट (शिखर) से कनों को देखे हुए हैं। शास्त्र जैसे सुधार सुन्दर धार वाले होते हैं वैसे वे (मन्दिर) भी सुधार (चूने में लिप्त) हैं अथवा सशक्ता सुधार करने वाले हैं (अर्धांशजम्) विचित्र (विगत चित्र) हैं फिर भी सचित्र (चित्रयुक्त) हैं। विरोध। विचित्र (अनेक) प्रकार के चित्रों से युक्त हैं। परिहार। तुल्य युक्त हैं फिर भी तुल्ययुक्त नहीं है। विरोध। तुल्य (स्वयं) युक्त हैं तथा अनुल (अनुलनीय) हैं। परिहार। इस तरह के देव कुलों (मन्दिरों) से वह नगर सजीर्ण हो गया है। विज्ञान (हाथी आदि की रहने की जगह) नहीं है फिर भी शाल (हाथी आदि की रहने की जगह) में सम्पन्न है। विरोध। विज्ञान (बहुत बड़ा)

तथा शाला (अश्वशाला हस्तिशाला आदि) से सम्पन्न है। परि चार चरण वाले पदार्थ से युक्त है फिर चरण रहित है। वि०। चतुश्चरण (श्रृग्वेद आदि वेदो) से युक्त है और (च) रण (लड़ाई) के वातावरण से रहित है। परि०। विट् (विधा) से भरा है फिर भी शुचि (पवित्र) मार्ग वाला है। वि०। विट् (वैश्यो) से भरा है और पवित्र मार्ग वाला है। परि०। सप्त जगह (च) स्वराधिकता (जल्दीबाजी) है फिर भी स्थिरप्रकृति (स्थिर स्वभाव वाला) है। वि०। सप्त जगह चत्वारधिकता (चीराहो की अधिकता) है और स्थिर प्रकृति (मन्त्री आदिराज्य प्रकृति स्वयंसम्पन्न) है। परि०। स्नान करती हुई महाराष्ट्र की सुन्दरियों के मुख मण्डल के प्रतिबिम्ब से जिसमें, झिल्ले हुए कमल की शोभा उत्पन्न की जा रही है, ऊँची लहरियों और पूर्ण विकसित अर्जुन (सफ़ेद) कमलों तथा सुन्दर हंसों से जिसका जल सुन्दर लग रहा है, ऐसी वरदा नदी के तट पर रमणीय रसों का पान कुण्डिन नाम का नगर है ॥

यस्य नातिदूरे दर्शनदूरीकृतदुरितोपप्लवाऽऽप्लवनजनितपातक-
भङ्गां गङ्गामुपहसन्ती स्वर्गमार्गाधयनिधेणी पुण्यपयाः पयोष्णी
वहति ॥

यत्येति ॥ यस्य (पुरस्च)। नातिदूरे (निकटे)। गङ्गा स्नानासुख्यहेतु।
पयोष्णी तु दर्शनावधीत्यस्या वितेष ॥

जिसके थोड़ी पर दर्शन से ही पाप समूह को दूर कर देने वाली, स्नान में पापों को क्षणित कर देने वाली गङ्गा का उपहास करती हुई स्वर्गमार्ग की सीढ़ी पयोष्णी नाम की नदी बहती है ॥

यस्य च पश्चिमदेशे प्रणतसुरासुरमौलिनीलमणिमरोचिचञ्चरीक-
क्षप्रद्युम्बितचरणाम्भोजस्य भोजकटफूपजन्मनो जरापातितयवातेः
प्रचण्डदण्डदाण्डिन्यदण्डनाड्यवरितगण्डपापाण्यदिदलितवैदर्भमण्ड-
लस्य भगवतो भार्गवस्याधमः ॥

यस्य चेति ॥ भार्गव शुक्र। भोजकटफूपेति अधिष्ठाननाम। तत्र जन्मा
त्येति। तथा च श्रुति—‘शुक्रो भोजकटोऽभवत्’। कृपादिप्रसिद्ध्या हि अधिष्ठान
नामानि हरयन्ते। तथा च मरुदेशे शिवकूप किराटकूपो जाड्रलकूप इत्याद्यधिष्ठान
नामानि। वृषपर्वदैत्यसुतां शर्मिष्ठा शुक्रसुतां देवयानीं च ययातिनृपतिरुपयेमे।
ततोऽसी शर्मिष्ठाप्रीत्या देवयानीमवशान् ‘सवाङ्गे जरा पतन्तु’ इति शुक्रेण शप्त।
तथा दाण्डक्यो नाम भोजकटदेशाधिपः शुक्रसुतामरजसज्ञो चप्रिय विल हटाद्-
द्विजकन्या परिणीतवान्। इति परिमूर्तमन्येन शुक्रेण मन्थुना पातालशैलगण्ड-
शृष्टिना स वैदर्भमण्डलो हतः ॥

इसके पश्चिम ओर भावान् भाग्य का वाग्रम है, त्रिनके चरण कमल पर (देवताओं और दानवों के शिर पर लगी हुई नीलमणिमयि घमरी का पुञ्ज मून रहा है, नोजकट दश म उत्पन्न हान बाल ययाति राजा के ऊपर बुढ़ापा का चिन्होंने हृद्यन् गिरा दिया है, बगुन प्रचण्ड धासन करने वाले दाम्भिक्य राजा को दण्ड देने के लिय पाताल पदों की चाटियों की वर्षा कर वेदमं दश का चिन्होंने नष्ट कर दिया है) ॥

[राजा ययाति वृषपर्व नामक दैत्य की लहकी घमिष्टा और भाग्य (गुणधाय) की लहकी दबगानी से विवाह किया। ययाति का प्रेम घमिष्टा के साथ अधिक था। इस प्रसंग में कभी-कभी अपमान जो हुआ जाता था। गुणधाय अपनी लहकी का अपमान देखकर ययाति को शाप दे दिया "भाओ तुम्हारे ऊपर बुढ़ापा का आक्रमण हो जाय।]

भाजकट दश के राजा दाम्भिक्य अरवा नाम की गुणधाय की लहकी से बगुन विवाह कर लिया। गुणधाय इस अपमान को न सह सके। जत चन्होंने पर्वत शृंगों की वर्षा कर उसक दश का नष्ट कर दिया ॥

यत्र च विपत्त्याः सन्ति सारथो न तु तरय, त्रिजुम्ममाकन लानि सरसि न जनमनामि, कुलपालंकाध मीडादीर्घिना न सोम न्तिन्यः, विपदाकान्थानि सरिकूलानि न कुलानि ॥

पत्रिः। विरद्व्यपन्त इति विपत्त्या सन्त न वृथा विपत्तिः। एव विकल्प लमलामि। न तु कसिना त्रिजुम्ममाक प्रमरम्भल पाप यत्विति। यद्विष— 'मल किट्टे पुरीपे च पापे च कृष्णे मल'। कवलयं मरोद कृमिदवलय च। बीना पदैराकान्थानि कूलानि। कूलानि तु न विपदा विपत्तिः ॥

जहाँ सधु लोग विपन्न (विपत्ति में नष्ट करने वाले) हैं, वह विपन्न (पत्रहीन) नहीं हैं। मरादरों में कम विकल्पित (विकल्पित) हो रहे हैं, किसी मानव के मन में क (कृतित) नष्ट का विकास होने नहीं पाता। श्रीदासरी क वृद्धार बुद्धय (कमल) हैं, सोभाव्यवती स्त्रियों का वृद्धार बु (कृतित) दय्य (कथा) नहीं है। वि+५५ (पत्रियों के चरणों) से आश्रय मदियों के तट हैं, किसी का नष्ट विपत्ति (आपत्ति) से आश्रय नहीं है ॥

हि यदुता—

देशानां दक्षिणो देशस्तत्र वेदममण्डलम् ।

तथापि वरदातीरमण्डल कुण्डिनं पुरम् ॥ २८ ॥

देशों में (महान्) दक्षिण दश, उसमें भी (रमणीयतम) वेदमं (बरादर) उसमें भी वरदा तीर को अंकित करने वाला कुण्डिन नाम का नगर है ॥ २८ ॥

तत्रास्ति समस्तरिपुपक्षक्षोदक्षक्षोणीपालमौलिमणिमय-
निकपनिर्मलितचरणनखदर्पणश्चतुरुदधिपुलिनचक्रवालवालुकासंख्य-
संख्यधिरयातकीर्तनीयकीर्तिसुधाधवलितच सुंधराचलयो निजभुजपञ्च-
रान्तरनिखट्टशारिकायमाणरणरङ्गाङ्गणार्जितोजतजयध्री, यौवनमदम-
त्तकान्तकुन्तलविलासिनीनयननीलोत्पलदलमालार्च्यमानलावण्यपुण्य-
प्रतिम, रविरिय नासत्यजनक, पुरंदर इव नाकविख्यात, गरुमानि-
घ नागमाधिक्षेपी, पद्मखण्ड इव नालसहित, व्याकरणप्रबन्ध इव
नामसंपन्न, धाम धाम्नाम्, आधारो धीरताया, पुरं पुरुषकारस्य,
आश्रय श्रेयसा, धिया श्रुतीनां च, राजा रणाङ्गणेप्यगणितभी-
र्भीमो नाम ॥

तत्रेति ॥ तत्र कुण्डने रिपुपक्षक्षोदप्रवीणानामप्यनुकूलानां राज्ञी मौलिमणिक-
पनिर्माजितनखादृश। तथा चतुरुदधिपुपञ्चवालुकावदसत्यमश्वेत्त्वनेकरणेपु
विययातकीर्यैव सुधया श्रुतिभूमण्डल। तथा जयध्री सारिकोपमा यस्य।
पक्षविधो भीमो नाम राजास्ति ॥ कुन्तलस्य देशविशेषस्य विलासिग्य लावण्यमेव
पुण्यप्रतिमा। रविरिवेति। सर्वत्र नेति भिन्नम्। असत्यवक्ता न। अकविपु कुकविपु
न प्रतीत। आगमाग्नाशाणि न तिरस्करोति। अलसेभ्यो हित। आलेनानर्थेन
सहितो वा न। आमेन रोगेण न युक्त। एवे नासत्ययोर्वैवैद्यघोर्जनक पिता।
नाक स्वर्ग नागानां सर्पाणां मां लक्ष्मीमधिपतिं लुपति। नाल काण्डम्। नाम
प्रातिपदिकम् ॥

वहाँ भीम नाम का राजा है उसके पदनख समस्त बाहु पक्ष को नष्ट कर
देने में प्रवीण एवम् उदार दक्षिण नरपतियों के मणिकप स्वरूप शिर से
दर्पण की तरह निर्मल बना दिये गये हैं, चारों समुद्र के तट मङ्गल पर छोटे
छोटे बाहुओं के कण की तरह असंख्य, प्रसिद्ध एव वर्णनीय कीर्ति सुधा से उसने
पृथ्वी मण्डल को स्पर्श कर दिया है। रणाङ्गण के रङ्गमण्डप पर उद्दीप्त
विजयध्वज की जीतकर अपने बाहुदण्ड रूप पित्रदे में शारिका की तरह पकड़
कर रक्ता है। यौवन से मदमाती कुन्तल देश की मनोहर रमणियों के नयन
रूप नीलकमलों की माला से उसकी सौन्दर्यमयी पवित्र मूर्ति पूजित हो रही
है। रवि जैसे नासत्य जनक (अश्विनो कुमार के जनक) हैं वैसे राजा भी
नासत्यजनक (असत्य का जनक नहीं) है। पुरंदर (इन्द्र) जैसे नाक (स्वर्ग)
में विरूपात हैं वैसे वह भी न + अकवि (साधारण कवियों में नहीं) रूपात
(प्रसिद्ध) है। गड्ड जैसे नाग + की (सर्पों की लक्ष्मी) को सम्राट्ट कर देता
है वैसे राजा भी आगम (वेदों) का अभिलेख (निंदा) नहीं करता है। पद्म
खण्ड जैसे नालसहित (कमलदण्ड से युक्त) है वैसे वह भी न अलसहित

(आलस्य आदमियों का हितकर नहीं) है । व्याकरणशास्त्र जैसे नाम सम्पन्न (प्रातिपदिकों में युक्त) है वैसे वह भी न + आम + सम्पन्न (रोम में सम्पन्न नहीं) है । तेजों में एक विशिष्ट तेज है । दैत्य का आधार है । बोरता पूर्ण कार्यों में अग्री है । मङ्गलो, सम्पत्तियों और श्रुतियों का आधार है । युद्ध के मैदान में असंख्यो में भय उत्पन्न कर देता है ॥

यस्यानवरतमुत्कृष्टालयः क्रीडावनपादपाः पौरलोकश्च, अपरुषो दायदा दान्विभवश्च, विमत्सरा सभास्तदो देशश्च, विकसद्रुचयोऽङ्गा-
ययवाः क्रीडापर्वतश्च अपराजयो मण्डनमणयः सेनासमूहश्च, अगत-
रुजो बने विनाशमन्धमवधितान्तं रिपवः पुष्पप्रकरश्च ॥

यत्प्रेति ॥ अत्र बहुवचस्वरलेपः ॥ उदावस्तेन । अर्थात्सौरभजनितेन कृष्टा जानीता अल्यो यैः । तयोन्मानस्य राज्ञः संबन्धिनः क्रीडार्थं वनवृक्षः । जमस्तु उत्कृष्ट आलयो गृहं यस्य । अपागना स्तु येभ्यः । पक्षे परप्राग्दस्य सन्नापुन्ये अरुचः स्मिन् इत्यर्थः । विगतो मत्परो योग्यः एकरवे तु त्रिमन्ति पक्षियुक्तानि सरामि यस्मिन् । विकसन्ती दधिः कान्तिर्येषु । अग्यत्र द्रुवृक्षस्य चयः । अप-
गता राशिः संक्षियेभ्यः । पक्षे न पराजीयन इत्यर्थः । अगनरुजो अगतपीडा शत्रवः । इन प्राप्तोऽन्तो मरणं यत्र यथाभूतं विशिष्ट नाश नष्टान अयादृशान बनेऽनुभूत-
वन्तः । हूगः स्ते 'इत' इति रूपम् । पुष्पप्रकरस्तु पर्वतवृक्षजो बने नितान्तं कृष्टं प्रबलमनुभवम् । अन्वनुभवधितान्तमिति ह्यस्तन्या बहुवचस्यो ॥

उसके उपवन के वृक्ष (अपने सौरभ में) अलियों (भ्रमरों) की लींच लिये हैं और उसके प्रवा लोभ उत्कृष्ट आलय (भवनों) से सम्पन्न हैं । दायद भी वहाँ अपरुष (प्रेमपूर्वक) रहते हैं और बापी भी अपरुष मधुर हैं । सभा के सदस्य लो विमत्सर (मात्सर्य रहित) हैं और उसका देश भी विमन्मर (मछलियों में युक्त सरावरो से सम्पन्न) है । अङ्गावयव विकसद्रुचय (छिटकती हुई कान्ति समूह में युक्त) हैं और क्रीडाजैव भी विकसद् + हु + चय (खिलती हुई वृक्ष पत्तियों से सम्पन्न) है । अरुद्धारों के मणि अपराजय (जोड़ से हीन) हैं । अरुद्धारों में खण्डित मणिमो का योग नहीं है । सेनासमूह भी अपराजय (पराजय प्राप्त करने वाला नहीं) है । अगत रुज (पीडा सम्पन्न) द्रुव वन में विनाश का अनुभव किये हैं और अबतरुज (कान्ति युक्त) फूलों का वर्ग भी वन में पर्याप्त विनाश का अनुभव किया है ॥

तस्य च कन्दर्पकमनीयकान्तेर्मत्ताः करिणः सदासानो न मानिनी-
लोकः, कृतचिटपानमनाः क्रीडाध्यानतरवो नाचरोधजनः, कटकालंकृत-
दोषः सीमन्तिन्यो न परिपन्थिकः ॥

तस्य चेति । सह दाज्ञा अर्गलेन । पक्षे सदा मानो सर्वो वरय । विटपानो
विस्ताराणामानमन कृत तथै । अन्यत्र कृत विटानां पाने सुम्बने मनो येन ।
कटकैर्बलयैरलकृतौ दोषौ बाहू यासाम् । परिपन्थी तु न रुन्धाद्यारेऽलमत्यर्थं
कृनोपद्रव ॥

कामदेव की तरह सुन्दर कान्ति वाले उस राजा के हाथी सदाभान (अर्गला
बन्धन में युक्त) है विन्तु मानिनी लोक (नारीजन) सदा + मान (हमेशा
मान सम्पन्न) नहीं रहता । बिहारवन के कुछ कृतविटपानमन (अपनी
दावाओं से नपे हुए) हैं । अन्त पुरकी निषां विट + पान + मन (धूर्तों के
सुम्बन में मन लगायी हुई) नहीं हैं । सौभाग्यवती स्त्रियों के हाथ चल्यों से
अलङ्कृत हैं । कोई परिपन्थी (विरोधी) आदमी कटक (सेना) में पर्याप्त
उपद्रव न कर सका है ॥ नारियों में शृङ्गार उत्पन्न करता है बरियों में नहीं ॥

यस्य च चरणाभ्योजयुगलं विमलीक्रियते नमज्जनेन न मज्जनेन ॥

यः शृङ्गारं जनयति नारीणां नारीणाम् ॥

यः करोत्याधितस्य नयं धनं न बन्धनम् ॥

यो गुणेषु रज्यते न रमणीनां नरमणीनाम् ॥

वरय चेति ॥ नमता जनेन न लालनेन । वनेन जनानुरायतपतिः । एवमप्रे-
शुत्तरपदेषु नमसंयन्ध ॥

यस्य च नमस्याप्रहारेषु श्रूयते नलोपाख्यानं न लोपाख्यानम् ॥

वरय चेति ॥ नलभ्योपाख्यान भारतप्रतीकम् । नमस्याना पृथ्व्यानां देवद्विजा-
दीनां ग्रामेषु लोपकथा नैव ॥

अपने आप्रितो की नबधन (नवीन धन) देता है, बन्धन नहीं देता ॥

नरमणियो (उत्तम पुरुषों) के गुणों में अनुरक्त रहता है रमणियों में नहीं ॥

पुण्य लोगों के यहाँ नल का ही आख्यान (वृत्तान्त) सुना जाता है । किसी
बकरी कहानी के लोप का वृत्तान्त नहीं सुना जाता ॥

यस्य च राज्ये साक्षरस्य पुस्तकस्य यन्धः, सगुणस्य कार्मुकस्या-
कर्पणम्, सुचंशप्रभवस्य च्छत्रस्य दण्डः, सुजातेक्यानविशेषस्योत्स-
ननम्, कुलीनस्य फन्दस्योन्मूलनारम्भः, सन्मार्गलभस्य पुनर्यसुभा-
जश्चन्द्रस्यैव ग्रहणालोकनममृत ॥

यस्य चेति ॥ साक्षरः लिखिताक्षर अधस्ताक्षरः । गुणो ज्या शीर्षादिप्र
आकर्षणं 'कर्णाग्नित्प्रापणम्' आक्षेपः । संशो वेशुरन्वयः । दण्डो यष्टिर्दमनं
च । जातिमौल्ये विप्रादिषु । उत्पन्नं घृष्टपुष्ट्य आलवालमार्दवायोरष्ट-
रान्नं मोर्दनमिति प्रतीकम् । पण्डित्येवम् । कुलीनः श्री दितौ हीनोऽभिजा-
तश्च । सद्भिद्यमान मृगस्येदं मार्गम् । लघुं मर्क संयोगो यस्य । पुनर्वसु नक्षत्रम् ।

ग्रहणं शङ्खयोगः । एवै मन्मार्गः सदाचारः । पुनरिति मित्रम् । वसुमाग्रनी ।
ग्रहणं धारणम् । सञ्चिपतान्वितो मार्गः । अर्थाक्षम इति वा । व्याख्यानगतिर्यया ।
साधरस्य वर्गोपेनस्य पुस्तकस्यैव बन्धनं न जनस्तेति ॥

त्रिसके राज्य में साधर (अग्ररयुक्त) पुस्तकों को बाँधा जाता है, और किसी की बन्धन में नहीं डाला जाता । मृग (मोर्ची) युक्त धनुष् कोटि को हो (कानो तक) खींचा जाता है, किसी गुनी व्यक्ति को नहीं खींचा (घसीटा) जाता । मुन्दर बास से निकले हुए (बाँस) का छत्र दण्ड बनाया जाता है, किसी मुन्दर कुल में उत्पन्न व्यक्ति को दण्ड नहीं किया जाता । मुजाति (नाचती आदि) पुष्पों के (पौधों) को पुष्ट करने के लिये उसके मूल के पास की मिट्टी का खनन किया जाता है, किसी सुन्दर जाति में उत्पन्न व्यक्ति का खनन नहीं किया जाता । कु (पृथ्वी) में नील कन्द को उखाड़ने के लिये पल किया जाता है, किसी कुनील व्यक्ति को बड़ से उखाड़ने का यत्न नहीं किया जाता । मृगशिरा और पुनर्वसु नक्षत्र से संयुक्त चन्द्र पर ही ग्रहण देखा गया है, किसी सञ्जन धनी को अर्धचन्द्र नहीं लगाया जाता ॥

किं बहुना—

देवो दक्षिणदिहमुखस्य तिलकः कर्पाटशान्ताकुच-

क्रीडाशैलमृगः प्रतापकदलीकन्दः स किं वर्ण्यते ।

यस्यारात्रिकरीन्द्रकुम्भरुधिरक्लिग्नासिद्धं द्राक्षुरा-

शौर्यधीर्मुजदण्डमण्डपनले सिद्धोव विभ्राम्यति ॥ २९ ॥

और अधिक क्या कहें—

(राजा भीम) दक्षिण दिशा का मुख निष्क है । कर्पाटवर्ण की (रमणियों के कुच रूप क्रीडाशैली का मृग है) प्रताप कदली का मूल है । अधिक क्या कहें, उसकी शौर्यलक्ष्मी रूप सिद्धी उसके मुख मण्डप के नीचे शयु रूप गजेन्द्र के कुम्भस्थल के रक्त में तजवार रूप दाँतों को धाड़ कर विभ्राम कर रही हैं ॥

[मिथी मैंने किसी गजेन्द्र को मारकर खून से अपने दाँतों को लदपद कर पेड़ के नीचे विभ्राम करती है उसी तरह भीम की शौर्यलक्ष्मी उसकी मुद्रा में शयुओं को मार कर तजवार रूप दाँतों को रक्त रञ्जित कर विभ्राम कर रही है ॥ २९ ॥]

तस्य च महामहोपवेशात्मरूपापहसितसमस्तसुरमुन्दरीसौन्दर्य-
सारसंपत्तिरसकुलकन्दलोकंदर्पदर्पगजेन्द्राद्यष्टमस्नन्मयद्विरखिलज-
ननपनकुरङ्गवागुरा रामणीयरूपनाश्रयमानोद्भिन्ननवयौवनश्रीः, शृ-
ङ्गारस्यागारम्, अवनिर्वनिताविभ्रमाङ्कुराणाम्, आभोगः सौमा-

ग्यभागस्य, रङ्गशाला रागवृत्तनृत्तस्य, सर्वान्त पुरपुरंधिकाप्रधानभूता
ऽस्ति प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नाम ॥

तस्येति ॥ भीमस्य प्रिया प्रियङ्गुमञ्जरी नामास्ति ॥

उस महाराज (भीम) की प्रिया का नाम प्रियङ्गुमञ्जरी है जिन्होंने अपने
सौन्दर्य से समस्त देव रमणियों के सौन्दर्य रूपी उत्तम सपत्ति को तिरस्कृत कर
दिया है । (देवागनाओं के कृपापहास रूप) कलङ्क समूह के मूल से निकले हुए
अङ्कुर का कदली स्तम्भ है ।

कामदेव रूपी मतवाले हाथी को रोक रखने के लिए स्तम्भ दण्ड है ।
समस्त मातृ-नयन रूपी मृगों के लिए बाधन-जाल है । उनकी खिली हुई
वीर्य लक्ष्मी सुन्दर पताका की तरह (सर्वोच्च) है । वह शृङ्गार का भवन
है । रमणी सुलभ विभवाङ्कुरों की भूमि है । सौभाग्य के अक्ष का विशाल
रूप है । प्रेमात्मक मूल की रङ्गभूमि है । अन्त पुर की सभी कुलागनाओं में
प्रधान है ॥

यस्या पद्मानुकारिणी कान्तिलोचने च, रम्भाप्रतिस्पर्धिनी रूपसंप
त्तिरुचमण्डले च, सुमनोहारिणी केशकवरी भ्रूमगच्छके च, भ्रमरको
द्भासिनी ललाटपट्टिका कर्णोत्पले च, प्रवालकुकाकारिणी वृन्तच्छद
कलाया करचरणयुगले च ॥

यस्या इति ॥ अत्र प्रथमैकवद्विखयो स्त्रीक्रीडयोश्च श्लेषः । सर्वत्र भाग्यतत्वात् ।
पद्मा श्री पद्ममन्त्रम् । रम्भा अप्मरोम्तर कदली च । सुमनस पुष्पाणि । पद्मे
सुशब्देन समासः । भ्रमरक ललाटस्थमलक मृत्तम प्रवालौ विद्रुम पञ्चपद्म ॥

जिसकी कांति तथा लोचन दोनों कमल की तरह हैं । रूप सपत्ति रम्भा
(स्वर्गीय अप्सरा) से स्पर्धा करती है तथा ऊँच (जहा) मण्डल रम्भा
(केली) में स्पर्धा रखते हैं । केशों की वेणी सुमनोहारिणी (फूलों से प्रणीत)
है, भौंहों की भूमि भी सुमनोहारिणी (मनोहर) है । ललाटभ्रमरक (बालों)
से सुशोभित हैं । कर्णों में लगे हुए कमलभ्रमरों से सुशोभित हैं । प्रवाल
(मृगों) की तरह दंतकाष्ठ है । हाथ-पैर भी प्रवाल (किसलय पत्र) की
तरह हैं ॥

यस्याः सुवर्णमयं चचन नूपुरं च पदे पदे मनो हरति ॥

यस्या सुमधुरया वाचा सदृशी शोभते कण्ठे कुसुममालिका ।
अलिकालयाऽप्यलकनहरोमालया सह विराजते तिलममञ्जरी ॥

यस्या इति ॥ सुष्ठु वर्णोच्कारादि सुवर्णं च । तेन निर्वृत्त पदं मृत्तिविभक्ति
ममुदाय पादग्यासश्च ॥

यस्या इति ॥ अत्र तृतीयाप्रथमयो श्लेषः । सुष्ठु मधुनो मकरन्दस्य रस

प्रसरो यत्र । अलिकं ललाटमालय स्थानमस्याः सा तिलकमेष मञ्जरीति रुर-
कम् । तृतीयापदे अलिकाकालो वर्गो यस्याः । यदा त्वलिवत्कालेति क्रियते तदा
दीप् प्रमज्येत ॥

जिनका सुवर्णमय (सुन्दर बगों से संपृक्त) वचन तथा सुवर्णमय (सुवर्ण
मे बना हुआ) नूपुर (चरणभूषण) प्रत्येक पद पर मन का हरण करता है ॥

जिसकी सुमधुर बागी की तरह सु-मधु-रवा (सुन्दर पराग राशि वाली)
पुष्पमालिका कण्ठ में सुशोभित होती है । अलिक (ललाट) ही है आलय (घर)
जिनका वह तिलक रूप मञ्जरी अलिवत्करी (बाणभूषी लता) के साथ अच्छी
लगती है । अपेक्षा—अलियो (धूमरो) का आलय निडक (वृक्ष) की मंजरी
अलक (केवों) की बहरी (बेगी) के साथ सुशोभित हो रही है ॥ २९ ॥

किं बहुना—

तस्याः कान्तिनिरुद्धमुग्धहरिणीलीलाघलश्चभ्रुप-

स्तारुण्यस्य भरादनालमलसल्लावण्यलक्ष्मीरसः ।

लुभ्यत्युक्चिलोचनाञ्जलिपुटेः पेपीयमानोऽपि म-

ग्रेष्वेव न माति सुन्दरतरो रद्वंस्तरङ्गैरिव ॥ ३० ॥

तरसा इति ॥ आ ममन्नादृत्य आलसं । पश्चाच्छब्दयोगः । तस्या लावण्यलक्ष्मी-
रसं सुन्दरातराधारनर तरङ्गै रद्विन्दमश्रिव । रसो हि भराद्विन्दो लसति
तरङ्गैश्च रङ्गनि ॥ ३० ॥

अपने सौन्दर्य में पूर्ण मुग्ध हरिणी के बिलासकालीन वचन नेत्रों की तरह
नेत्रवाली उस नायिका के सौन्दर्य को पूर्णतया तथा आलस्यहीनता से सौन्दर्य
सम्पत् का रस उल्लसित हो रहा है । सस्पृष्ट लीन अपनी नयनाञ्जलि से उस
रस को बार-बार पीते हैं फिर भी वह अतिमय सुन्दर (सौन्दर्य) रस उसके
शरीर में सदा तरंगित होगा हुआ भगो में अटका-सा नहीं है ॥ ३० ॥

पंचमनयोः सकलसंसारमुखरसाम्बादमुदितमनसोऽप्यन्ति दिवसाः ॥ .

इस तरह संपूर्ण संसार मुख के रसास्वादन से प्रसन्न चित्त वाले इन
दोनों के दिन (सङ्कल्प) बीत रहे हैं ॥

कदाचिच्चटुलतरतरुणपट्टश्चरणचक्रचुम्बनाक्रमणभरमज्यमानमञ्ज-
रीजालगलदमन्दमकरन्दविन्दुकर्दमितेषु विविधाङ्गविद्वङ्गविद्वारविद्व-
लितदलदन्तुरान्तरालेषु स्मरवन्धुसुगन्धिगन्धवाहवाजिवाहालापु
घरदायाः पुण्यपुलिनपालिपादपतलेषु रममाणयोः परिणतेन्द्रवारुणा-
यकपोलकान्तिरुद्धुपितदेहपिण्डकण्डयनाकूनतरलितकरकिसलय-
आलकमेकमुदरदेशलक्ष्मणपरमपि छष्टप्रतिष्ठितमुद्रहन्ती कापि कपि-
कुटुम्बिनी दृष्टियमवानरत् ॥

- करेति ॥ मधुदिन्दुकर्दमवासु । पर्णदन्तुरमध्वेषु । सुगन्धिगन्धवाह एव बाजी
तस्य बाणालिप्रायेषु । धरदातकतलेषु क्रीडतोरमुयोः कपिपत्नी इन्द्रवाहणीफल-
पिङ्गगण्डकान्तिर्धानरी नयनपथं गता दृष्टेयम् ॥

किसी समय अत्यन्त चंचल युवक भ्रमरो ने मञ्जरियो के धुम्बन के लिए
धाक्रमण किया । पराग-कोष को भग्न कर दिया । उससे (मञ्जरी) से
ओरो से पराग बिन्दु की धारा निकली और (धरदा नदी के तट प्रदेश के
पेड़ो को) पकिल बना दिया । विभिन्न अङ्गो से बिहङ्गो ने बिहार किया ।
इस लिए उनका कोई एक देश दन्तुर (ऊँचा-नीचा) हो गया । कामदेव के
साथी सुगन्धित वायु रूप घोड़ो के लिए बाह्याली (विद्याम गृह रूप) धरदा
नदी के पवित्र तट पक्षि के पेड़ो के नीचे बिहार करते हुए दम्पती की दृष्टि में
एक पके हुए इन्द्रवाहणी फल की तरह लाल कपोल कान्ति वाली चमकीली
बेहू को झुजलाने की उत्कण्ठा से नवीन पत्र जैसे चञ्चल हाथो वाली एक
बच्चे को पैट में सटाई हुई तथा दूसरे को पीठ पर रख कर बोली हुई कोई
बानर-पत्नी दिखायी पड़ी ॥

तां चावल्लोभ्य चेतस्यास्पदमकरोत्तयोरनपत्ययोर्विषमविषादवेद-
नाभ्यतिकरः ॥

तामिति ॥ तां च वीक्ष्य विषादभ्यधासंपर्शो हृदि पदमकरोत् ॥

उसे देखकर उन सन्तानहीन दम्पतियों ने चित्त में असह्य वेदना के
संस्पर्श ने धर कर लिया ॥

करपत्रधाराकर्तनदुःसहदुःखदूनमनसोर्वैमनस्यमभूद् भूमिर्न राज्ये
जने जीविते च । किमनेनाधिपत्येनापत्यशून्येन ॥

आरा से काटने से जैसा दुःख होना है वैसे दुःख का अनुभव करते हुए
दम्पती का विषाल राज्य, परिजन तथा अपने प्राणों से भी मन हटने लगा ।
सन्तान से हीन इस आधिपत्य से क्या लाभ ॥

सर्वथा सकलसुरासुरकिरीटकोटीकोणशोणमणिमरीचिचञ्चरीक-
सुम्बितचरणाम्बुजमम्बिकाप्रियं प्रतिपद्यामहे भद्रेश्वरमित्यन्योन्यमा-
लोचयामाकृतुः ॥

समस्त देवताओ तथा दानवो के मुकुट के ऊपर के एक भाग में बने
हुए लाल मणि की कान्ति लपो भ्रमर द्वारा जिनका चरण-कमल सुम्बित है
तथा जो महेश्वर (सबसे बड़े स्वामी) हैं ऐमे अम्बिका (पार्वती) प्रिय भगवान्
शकर की सब तरह से आराधना करेंगे ऐसा कहते हुए एक दूसरे को देखे ॥

अथ विपुलविषद्विलङ्घनश्रमप्रशमनार्थमरुणेन चारुणीं प्रतिपानार्थ-
मिवावतार्यमाणेषु रविरधनुरंगमेषु, अपरासक्ते दिवसमर्तरि शोकमरा-

दिव तमः पटलेनापूर्यमाणामाश्वासयितुमिव पूर्वा दिशमभिधावमानासु
पादपञ्चयासु, ह्यरोतद्वरितद्वरिद्वारिणस्तरणेररण्यान्तराद्य मन्दमप-
वर्तमानेषु गोमण्डलेषु, अस्ताचलवनदेवतादत्तरक्तचन्दनार्णसलिल-
प्लवप्लाव्यमान इव लोहितार्थति पश्चिमाशामुखे, धारविलासिनीभिः
कपोलमण्डलीमण्डनाय क्रियमाणेषु पत्रमङ्केषु, मयेनेव पादपैः
प्रारब्धे पत्रसंकोचकर्मणि, विद्यटिप्यमापचक्रवाककामिनीरुणकृजित-
व्याजेन दिवसमनुंरस्ताचलगमनं निवारयन्तीभिर्विव विरद्विधुराभिः
कमलिनीभिर्विधोयमानेषु प्रार्थनाप्रणामाञ्जलिपुटेष्विव कमलमुकुलेषु,
क्रमेण पश्चिमाश्मोदितरङ्गान्तरतस्तरुणतरताश्रतामरसालुकारिकसय-
यमाणरदिममञ्जरीजालजटिलमवलोक्य तरणिमण्डलमतिसंभ्रमभ्रम-
पुञ्जमरणिङ्कुरम्भ इव प्रधावमाने दूरं तिमिरपटले, कृष्णागुरुपङ्क-
परभ्रमङ्गमूष्यमाणेष्विव विगङ्गानामुषु, कोकिलकलापैराकम्पमाणे-
ष्विव पताम्वरेषु, पिकचकुयलयपङ्कजमेघकवचमिधयदयामलीकिय-
माणेष्विव सलिलाशयेषु, तापिच्छगुच्छच्छच्छच्छाद्यमानास्विव
घनवृत्तिषु, नृत्यस्कलापिकुलकलापैः कालाक्रियमाणेष्विव शैलशिर-
सिल्लावलेषु, कञ्जलालेख्यचित्रचर्च्यमानास्विव मयनाभक्षिषु, विर-
द्विनीनिःश्वासभ्रमदयामलीकियमाणेष्विव पान्यावसथेषु, कस्तूरिका-
सलिलसिच्यमानास्विव कामुकविलासजासवेरमथाटीषु, मदान्धसिन्धु-
रनिरुध्यमानेष्विव नृपमयनाङ्गनेषु, कलितकालकञ्चुकायामिव गगन-
लक्ष्म्याम्, मदनशरानिकरविद्रुनदरिद्रिविटविपादानलस्फुलिङ्गेष्विव रङ्ग-
स्तु ज्योतिरिङ्गणेषु, काञ्चनाषु तिमिरकरिकुम्भभेदमल्लीष्विव निशि-
तासु प्रदीप्यमानासु प्रदीपकलिकासु, प्लवमानापाण्डुपुण्डरीककल्मा-
पितकालिन्दीपरिस्पन्दसुन्दरेऽमृतमयनक्षत्रक्षुब्धक्षीरसागररसविन्दु-
स्नयकितनारायणवक्षस्थल इव काञ्चिदपि धियं कलयति ताराविरा-
जिते विपति, विटङ्गान्तमनुसरन्तीषु वेश्यासु धेदमपाराधतपतत्रि-
पङ्क्तिषु च, भ्रमरसङ्गतासु कुलटासु कुमुदिनाषु च, नदीपालिविरदि-
तेषु चत्वरेषु चक्रवाकमिथुनेषु च, जाते जरद्वयकायकालकान्तिका-
शिनि निशायतारे, तरुणमाल काननमिवाञ्जनगिरिगुहागर्भमिवेन्द्रनील-
मणिमहामन्दिरोदरमिव विशति सकलजीवल्लोके च लोकेभ्यः 'प्रिये
प्रियङ्गुमञ्जरि, प्रसादय प्रणतप्रियकारिणममज्ञानङ्गदपहरं हरम् । अहं
च तदाराधनायघानामनुविधास्यामि' इत्यभिधाय यथावासमयासीत् ॥

अथेति ॥ अघानन्तरं अमरान्स्वर्गं यावन्ती पश्चिमा प्रति लक्ष्मीकृष्ण नील-
मानेषु रविरपाद्ये ॥ प्रतिपानपद्ये यावन्ती सुरा ॥ अथरा दिग्भङ्गनाम्तरं च ।

तमो मोहो ध्यातं च । तथा गोमण्डलेषु किरणौघेषु च । यथासंगमं रवेर्चनान्त-
राच्च मन्दं चलमानेषु । द्वावावपि कीदृशपात् । हारीता शुकाभाः पदिगस्तद्वदरिता
नीला ये हरयोऽश्वास्तैर्गच्छति । तस्मात् । वनाच्च हारीतं शुकाभपदिमिर्हरितैः
शाद्वलेर्हरिभिर्वानरैश्च हारिणो मनोज्ञात् । रत्नचन्दनार्घ्यः प्रस्तावादवेरेव । पत्र-
भङ्गो विलेपनचित्र पद्मवल्लीसज्जपणानां मञ्जनं च । तथा काञ्चिदपि श्रियं शोभां
नारायणवचसि तु श्रियमन्विषुशीं प्राप्नुवति नक्षत्रालकृते नममि । कालिन्दी-
परिस्थन्दो नारायणवक्षश्च विधत् उपमानम् । पाण्डुपुण्डरीकाणि क्षीररसविन्दवश्च
साराणाम् । परिस्थन्द प्रस्रवणम् । प्रवाह इति यावत् । विटो भुजग । कान्त-
पतिः । पद्मे पद्मिण्यमावासयच्छेद्वर्तोऽशो विटङ्गस्मस्यान्त । भ्रमो भ्रमण तत्र
रसस्तत्पर्यम् । भग्न्यत्र भ्रमरा शृङ्गा । नेति भिन्नम् । पद्मे नदीनां पालि सेतुः ।
इतीति, सति स राज्ञा यथावात्सल्यमासीत् । किं कृत्वा हे प्रिये, प्रसादय हरमहमपि
सद्वाराधनमनुपुष्टलम्, करिष्यामीत्यभिधाप ॥

विशाल आकाश के लायने में जो परिधम हुआ या उसको शांत करने
के लिए (भगवान्) सूर्य ने बाणों (पश्चिम दिशा रूपी) नायिका का
चुम्बन करने के लिए अपने रथ के घोड़ों को उतार रहे हैं । सूर्य रूपी पति के
दूसरी नायिका में आसक्त होने से मानो थोक मग्न अधिकारसमूह से भरी हुई
पूर्व दिशा को आश्वासन देने के लिए पेड़ों की छाया उसी ओर दौड़ी
जा रही है । हरितो (शुको) की तरह हरित (हरे रंग के) हरि (घोड़ों) द्वारा
हारि (ले जाये जा रहे, सूर्य के गोमण्डल (किरणों के) धीरे-धीरे दूसरे जङ्गलों
से मुड़ जाने पर हरित शुको के कारण हरे तथा हरि (बानरों) के कारण
हारि मनोहर ढग से ढँके हुए जङ्गलों से गोमण्डल (गायों) के लौट जाने पर,
मस्ताचल की वनदेवता द्वारा दिये गये रक्त चदन के अर्घ्य जल में नीका द्वारा
जाल एवं विशाल पश्चिम दिशा (रूपी नायिका) के मुख के सैरते रहने पर,
रूपी मण्डल को अलङ्कृत करने के लिए बाराङ्गनाओं द्वारा पत्र रचना करते
रहने पर मानो भ्रम से बुझी के पत्रों को सकुचित करने लगने पर, विमुक्त हो
रही चक्रवाक (पक्षी) की रमणी के कहणा पूर्ण क्रन्दन के बहाने दिनपति
(सूर्य) के मस्ताचल वसन को मानो रोकती हुई विरह के कारण खिन्न कम-
लिनिषों द्वारा अपनी सकुचित मुकुलरूपी शृणामाञ्जलि ॥ माध्यम से प्रार्थना
किये जा रहने पर क्रम से पश्चिम समुद्र की लहरियों में तरुण तट (अन्यन्त
विकसित) (सूर्य रूपी) तामरख (कमल) की किरण समूह रूपी मकरन्द
मञ्जरी के जाल को देखकर सूर्यमण्डल के पास बहुत जल्दी ही अभकारसमूह
रूपी भ्रमर समूह के दौड़ते रहने पर वृष्णागुम् के पट्ट से निमित्त पत्र रचना से
दिशा रूपी नायिका मुख के अलङ्कृत हो जाने पर, विभिन्न वनों में मानो
कोकिल समूह के आक्रमण करते रहने पर बिसे हुए नील कमल की गायी

नीची कान्ति राशि से सरोवरों के नीचे किये जाते रहने पर, सप्तपर्ण के गुच्छे पते बन की पत्रायें मानो हँकी आ रही हैं। नाचते हुए मयूरों के पंखों से पर्वतों के उच्चतर शिखरशृंगों के माना काळे किये जाते रहने पर, भवनों की दीवारों पर कञ्चल से अंकित करने योग्य चित्र अंकित किये जाते रहने पर, पथिकों का मार्ग विरहिपियों के निश्वास धून से काळे किये जाते रहने पर, कामुकों के विनासगृह के कल का कम्पूरी के जल से सँचि जाते रहने पर, मलवाले सिन्धुर (हाथिया) द्वारा मानो राजभवन के विभिन्न भागों के घिरे जाते रहने पर, आकाश लक्ष्मी के कानी कञ्चुकी (कुर्तों) पहन लेने पर, ज्ञान सागर से सर्वथा बिड़ दारिद्र्य कामुकों के विषाद (क्षेप) कपी भस्म से निकले हुए स्फुटिज्जाओं के चपटे रहने पर अंधकार कपी हाथी के कुम्भ स्थल की छेदने के लिये सोने की बनी शीशा भट्टी (अक्रुश) कपी दीपकों के जल जाने पर तैरते (उतराते) हुए अषाढु (काळे) कमलों से कल्पायित (काठी की हुई) कालिन्दी (यमुना) की तरह सुन्दर, अनृत मयन के समय सुख (स्वाकृश) क्षार सागर के रसकों से नारायण के वक्षस्थल पर जैसे अनूर्ध्व घोना हुई थी वैसी घोना की तारों से मुक्त आकाश के धारण कर लेने पर अपने प्रिय बीरो का अनुसरण वेश्याओं के करते रहने पर, घर के पाठे हुए कपोत पक्षियों के विटष्ट (कपोत बीसले) में चले जाने पर, कुलटा (स्वेच्छाचारिणी) क्रिओं के भ्रमरस (धूमने में रस) प्राप्त करते रहने पर तथा कुनुदिनी के भ्रमर सवन (भ्रमर युक्त) हो जाने पर, दीप वंक्ति से चौराहे के विरहित (शून्य) न रहने पर तथा अक्रवाक के जोड़े से नदी पान्ति (नदी सेतु) विरहित (शून्य) हो जाने पर, वृद्ध गवप (नील गाय) की शरीर कान्ति की तरह शिवायी पहने वाली रात के आ जाने पर संपूर्ण संसार के मानो प्रौढ़ तमासपत्र के जगत् में (या) अञ्जन पर्वत की कन्दरा में (या) इन्द्रनील मणि से बने विशाल भवन में घुसते रहने पर राजा "प्रिय प्रियकुम्भन्तरि ! प्रपत्नी (भक्तो) के प्रिय करने वाले, कामदेव के अर्धह अहंकार का हरण करने वाले, भगवान् शंकर की प्रसन्न करो। मैं भी उनके पूजन में ध्यान केन्द्रित कच्चा।" यह कह कर अपने निवास स्थल पर चले गये ॥

ततश्च—अस्मिन्निदितप्रभावोऽथ प्रदोषेणान्धकारिणा ।

तस्याधिते स्थितः शम्भुर्दयादौ च चन्द्रमाः ॥ ३१ ॥

अवशिष्टेति ॥ शम्भुशशिनी श्लेष । प्रहृष्टदोषेण अन्धकारान्ता प्रतिपक्षेण । अस्याहृतवैभवः । शशी च प्रदोषेण रजनीमुखेन । अन्धकारविधायिना अन्धकार-युक्तेन वा । न खण्डित-प्रमाना आवा वृद्धिरस्य । अत्र अव वृद्धपर्यं ॥ ३१ ॥

इसके बाद अत्यन्त दुष्ट अन्धकासुर भी जिसके प्रभाव (महिमा) की स्मृति न कर सका ऐसे भगवान् शंकर उसके चित्त में स्थिर हो गये ।

द्वितीय अर्थ—अन्धत्व को लाने वाला प्रदोष (रात्रि का प्रारम्भिक भाग)
मिसके प्रभा (प्रकाश) के आव (वृद्धि) को सन्धित न कर सका ऐसे भगवान्
चन्द्र उदयाचल पर स्थित हो गये ॥ ३१ ॥

विभ्रते हारिणी छायां चन्द्राय च शिवाय च ।

नभारुचये तस्मै नमस्कारं चकार सा ॥ ३२ ॥

विभ्रत इति ॥ चन्द्रपक्षे हरिणस्येव हारिणी छाया । वलङ्क इत्यर्थः । नभोगा
वियद्व्यापिनी रभिर्यस्य । शिञ्जु हारिणी छाया कान्तिम् । तथा भोगे विज्ञासे
वचिरभिलाषो यस्य पञ्चाशन्मोक्ष ॥ ३२ ॥

नभोगर्वा (आकाश में अपनी कांति फैलाने वाले) हारिणी (हरिण
का प्रतिबिम्ब) छाया धारण करने वाले चन्द्रमा को तथा हारिणी छाया
(मनोहर कान्ति) को धारण करने वाले और भोग में वचि न रखने वाले
भगवान् शंकर को उसने नमस्कार किया ॥ ३२ ॥

नित्यमुद्वहते सुभ्यमन्तः सारङ्गरक्षितम् ।

भूतिपाण्डुर गोधाह सोम स्वामिन्नमो नमः ॥ ३३ ॥

नित्यमिति ॥ महोमया धर्तत इति सोमः तस्य संबोधनम् । सद्भिरीयणं स्वामि-
न्निति । तथा भूया भस्मना पाण्डुर दुग्धम् । तथा गौरुषो बाहन यस्य । पृथ्वृत
उमापते । अन्तर्मध्ये । सारमुत्कृष्टम् । गरं कालकूरम् । जिते महिम्ना इतन्निभत-
वाक्ति । नित्यमुद्वहते विभ्राणाय नुम्य नमो नमः । अत्र प्रकर्षं द्विवचनम् । सोम-
श्चन्द्रोऽपि । तदा भवन भूतिर्जन्म । जन्मना पाण्डुर, स्वभावयेत । तथा गा
किरणान् बहुतीर्यन् । पाण्डुराश्च ता गावश्चेति मयासे कृते समाप्तान्तो दुर्धरः ।
अन्तरिति कर्मपदम् । सारङ्गो मृगस्तेन रक्षित लाञ्छितमिति सद्भिरीयणम् ॥ ३३ ॥

उमा के साथ रहने वाले सोम स्वामिन् । भस्म से दुग्ध रग वाले । बैल
को बाहुन बनाने वाले, अन्तःसार (अन्तर्बन्ध) गर (विष) तथा जित
(विधिपूर्व शक्ति) को धारण करने वाले आप को मेरा पुन पुन प्रणाम ।

हे सोम (चन्द्र) भूति (जन्म) से ही पाण्डुर (सफेद) गोधाह
(किरणों को धारण करने वाले) सारङ्गरक्षित (मृग से भूषित) भगवान्
चन्द्र आप को नमस्कार है ॥ ३३ ॥

एवं च नातिचिरात् ।

श्रुम्यत्क्षीरसमुद्रसान्द्रसलिलोल्लोलैरिव प्लावय-

ल्लोकं लोचनलोभतः स्मरसुहृद्जातः स चन्द्रोदयः ।

यस्मिन्संभूतचैरदारुणरणप्रारम्भिणो भ्राम्यन्त-

क्रुद्धोलूककदम्बस्य पुरतः काकोऽपि हंसायतं ॥ ३४ ॥

श्रुम्यदिति ॥ स ध्वलितानेषु बुधनतलश्चन्द्रोदय उत्प्रेष्यते । श्रुम्यत्क्षीरसमुद्र-
सान्द्रसलिलोल्लोलैरिव प्लावयन्नित्येव जातः । क्षीरसमुद्रकोमस्य तत्सहचरितत्वात् ॥

इस तरह थोड़ी ही देर में—

क्षीर सागर को खलजगते हुए गाड़े बन्ध की तरह संभूने संसार को ठेराते हुए बाँवों के झुभावने, कामदेव के मित्र चन्द्र का उदय हो गया। जिसमें पर्याप्त शुभ्रता के (शोध के लिए) कठिन लड़ाई प्रारंभ करने की कामना से धूपते हुए शूद्र उलूकवर्ग के सामने कौआ भी हंस जैसा दोषता है ॥

(उलूक कौओं से लड़ाई करने के लिए दान की सोचते हैं लेकिन चन्द्रमा की वक्षस्थित स्वेद किरणों ने कौओं को भी मरुद कर दिया है। अतः वे भी हंस जैसे प्रतीत होते हैं।) ॥ ३४ ॥

अपि च—इज्योतश्चन्द्रनचारचन्द्ररुचिभिर्विस्त्रारिणीभिर्मरा

ज्जातैर्यं जगतां तथा कथमपि श्वेतायमानद्युतिः।

उद्भिद्रो दिनशङ्क्या कृतकन कारो ययकः प्रिया

मन्विष्यन्मुस्तः स्थितामपि यया चक्रभ्रमं भ्राम्यति ॥३५॥

स्मृतं दैति ॥ सान्ध्यसमयेन कुडालप्रेषितचन्द्रशङ्खस्य यत्रेति भ्रमगङ्गिका-
विशेषनम्। अथवा चन्द्र कोकस्तत्वेन मनो वरत्न। सोऽपि रात्रौ समीपवर्तिनी-
मपि प्रियामन्विष्यन् भ्रमति ॥ ३५ ॥

बूते हुए चंदन की तरह फैलने वाली चद्र की सुन्दर कांति से भरा हुआ संभूने संसार स्वेद की तरह लग रहा है। दिन की भांति व विचारा कौआ जाग उठा है, क्रन्दन कर रहा है, क्योंकि सामने ही बैठी हुई अपनी प्रिया की खोजता हुआ गोताकार चारों तरफ घूमता है ॥

(चन्द्रमा की कांति से उसकी प्रिया भी संकट हो गयी है। इसी लिए उसे यह पहचान ही नहीं पाता) ॥ ३५ ॥

अपि च—मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानयो बह्वधाः

कर्णे कैरवशङ्क्या कुबलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि।

कर्तुं घूफलमुच्चिनोति शयरी मुक्ताफलाकांक्षया

साग्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चन्द्रिका ॥

मुग्धेति ॥ मुग्धा बालगोपाला शयरीऽप्यात्मदृष्टियो विपर्यस्ता भवन्तु।
सततपरिचितोत्तरचक्राः कान्ता उत्तमस्थियोऽपि विपर्यस्ता इति, अपि विस्मये ॥

सीधे स्वभाव के गोवशाज (बहव) दूध समझ कर गायों के दानों के नीचे घडा रख देते हैं। रमणिमां भी कुबलय (गोचमय) को कैरव (संकट कमल) समझ कर नानों में लगाने लगती हैं। शयरी (शियतिनी) चन्द्रधु (चैर) फल की मुक्ताफल समझ कर चुन रही है। चन्द्रमा की गादी किरणों जिसके चित्त की भ्रान्त नहीं कर देती ॥ ३६ ॥

यत्र च—मुक्तादाममनोरथेन यनिना गृह्णन्ति घानायने

गोप्ते गोपयधूर्द्धोति मयितुं कुम्भीगतान्वाञ्छति।

उचिन्वन्ति च मालतीषु कुसुमश्रृङ्खलाधो मालिकाः

शुभ्रान्विभ्रमकारिणः शशिकरान्पदयन्त्र को मुह्यति ॥३७॥

महिलायें मातायन (विडकी) में (अती हुई चन्द्रिका को) मोती की माला समझ कर पकड़ने लगती हैं । गोपपत्तिर्गोशाले में वे (हुडी) में गई हुई (चन्द्रिका) को पचना चाहती है । मालती के पेड़ों पर पड़ी हुई चन्द्रिका को फूल समझकर मालाकार बंधुएँ, चुनने लगती हैं । अग्नि उत्पन्न कर देने वाली चद्रमा की इन शुभ किरणों की देखकर कौन नहीं मुग्ध हो जाता ॥ ३७ ॥

अपि च — किं कर्पूररफणाः स्रजग्निं वियतः किं वा मनोनन्दिनो

मम्दाश्चन्दनचिन्दय किमु सुधानिध्यन्ध्वरा इमाः ।

इत्थं भ्रान्तिमयी जनस्य जनयन्त्यङ्गे लगन्तः परा-

मिन्दो कुन्दविनासिकुड्मलदलस्रसुन्दरा रक्षयः ॥३८॥

किमिति ॥ कुन्दस्य विह्वामिनां रङ्गमलदलानां स्रजः । तद्वत्सुन्दरा इति शीघ्रस्य-
सौकुमार्यानिशार्थः । अरुणकुन्दस्य हि दल प्राणि पर्याप्त्यक्तानि च भवन्तीति ॥

क्या आकाश से कपूर के कण बू रहे हैं अथवा मन की मुग्ध कर देने वाले चन्दन के बिन्दु या वे कोई अमृत के झरने हैं । इस तरह अज्ञों में लगती हुई चन्द्र की ये विरसित हो रहे कुन्ददल की माता सदृश किरणें लोगों में भ्रान्ति उत्पन्न कर देती हैं ॥ ३८ ॥

इति जनितमृदिन्दो मिन्दुवारध्वगामं

किरति किरणजालं मण्डले दिङ्मुखेषु ।

हरचरणमरोजठम्बमाराधयन्ती

शुचिकुशलयनीये साय निद्रां जगाम ॥ ३९ ॥

इति श्रीत्रिचिकमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां

हरचरणमरोजठम्बायां द्वितीय उच्छ्वासः ॥

श्रीमति ॥ हायमुना प्रकारेण । अजितहर्षम् । निमुग्धीकुसुममालाप्रतिभं कर-
निकरं विह्वलुषु अग्निं विनन्वति मनीन्द्रोर्मण्डले हरं ध्यायन्ती सा दमयन्त्या-
धामरवपत् । समाधिलय गतेति भावः ॥ ३९ ॥

इति चण्डपादविरचिते दमयन्तीकथाविरचने द्वितीय उच्छ्वास समाप्तः ॥

सिन्दुवार की माता सदृश भ्रान्ति वाली आह्लादोत्सादिका चन्द्रकिरणें जब दिशाओं में चारों तरफ फैल रही थीं भगवान् शंकर के चरण कमल युगल की आराधना करती हुई पवित्र कुश की जम्पा पर वह (राजपत्नी) निद्रित हो गयीं (समाधिस्थ हो गयीं) ॥ ३९ ॥

द्वितीय उच्छ्वास समाप्तः ।

• तृतीय उच्छ्वासः

अथ क्रमेण रजतकुम्भमम्नोभरणार्थमिन्दुमण्डलमादाय पश्चिमा-
म्नोनिधिपुन्ड्रिनमनुसरत्यां तरुणकपोनरुंधरा रोमराजिराजिन्यां रज-
न्याम्, अखिलरुनलखण्डकमलोनीनां विनिट्रायमाणरुमलकुड्मल-
चिन्मोचनेषु कज्जलरेखास्त्रिषोडशसन्नापु भ्रमरराजिषु, राजीवराजि-
पुञ्जनिकुञ्जे शिक्षानमञ्जोरमञ्जुलनुभद्रस्तु शरद्वलाहकवलप्रपक्षविशेष-
पद्यनरलितवतयगनामरसेषु दीर्घिकावतसेषु हंसेषु, केंद्वारयानि च
चक्रवार्तमिधुनमेलरुमङ्गलमृदङ्ग इव रौप्यघर्घरस्यसरसं सारसकुले,
अवश्यायजलशिशिरशोकरिणि मन्दान्दोलितविनिन्द्रद्रुममञ्जरीरजःकण-
कयायिते तमःसर्पसंदष्टोच्चोचिनजगन्निवासायमाने प्रस्खलति प्रमात-
सुरतभ्रमखिन्नमुन्दरीकुचमण्डले मरुति, मनोहारिहारतह्रितह्रये
हरिततिमिरपटलपटौ गगनलक्ष्म्याः करपरामृष्टपयोधरे रागवति
सञ्चिनरि, मृगमदमिलितयहलकुङ्कुममण्डनमञ्जरीमिरिव पिञ्जरिते
पुरंदरदिङ्मुखे सुषमसुता सा म्वप्नमद्राशीत् ॥

व्येति ॥ अतन्मां किरणमंसृष्टमेतं । रागवयारणे रवी सुता सती स्वप्नं
वदतां । अन्योऽपि रागवानासक्तः किल पटीमुत्थायं कराभ्यां स्तनौ स्पृशति ।
शरद्वलाहकवत्पाः शरद्वलवत्पाः । केंद्वारो वाद्यविशेषः ॥

क्रम से युक्त कपोतकी गर्दन की रोम पंक्ति की तरह सुन्दर (आइजि वाली)
रात जल भरने के लिए चंद्रमण्डल रूप बाँदी का घड़ा लेकर पश्चिम समुद्र के
तट पर उतर रही थी। समस्त कमल वनों में कमललिनियों के कुड्ममञ्जमन
खिल रहे थे। वनमें कज्जल रेखा सहस्र भ्रमर पंक्ति उल्लसित हो रही थी।
कमल घेनी से संपन्न वन में नूपुर की तरह मञ्जुल ध्वनि करते हुए दीर्घिका
(लोन्जर Long canal) के अलंकार हंस शरत्काचीन वारद की तरह अपने
झेंड पक्षों की फटफटहट से उत्पन्न वायु द्वारा पूर्ण विकसित कमलों को
तरलित (चक्क) बना रहे थे। सारसों का जेत्या (रात के बिटुडे हुए)
चक्रवाक दपती को मिलाने के लिए मण्डल मृदम रूप में चांदी की शाल सहस्र
सरस (केंद्वार) ध्वनि कर रहा था। ओस के शीतल कणों से सयुक्त मद-मंद
कणित वृक्ष मंवरियों के परागे बिन्दुओं से कषायित अन्धकार रूप काले सर्प
के काट लेने से (मृच्छिन्न) सम्पूर्ण जगत् के जागरण के अवसर पर श्वास की
तरह प्रतीत होता हुआ पवन प्रातःकाल सुखश्रम से थकी हुई सुन्दरियों के

स्तन मङ्गल पर प्रस्थलित (धीरे-धीरे बह रहा) था । मनोहर हारीत शुक्र सहस्र हरे घोड़े वाले भगवान् सूर्य गगन लक्ष्मी के अधवार-समूह रूप वस्त्र को हटाकर (किरण रूप हाथों) से पयोधर (मेघस्तन) का स्पर्श कर रागवान् हो रहे थे । कस्तूरी मिश्रित गाढे कुङ्कुम रूप अलङ्कार से निकली हुई मजरी से पुरन्दर दिशा (पूर्व दिशा) का मुख पिञ्जर (पीत रक्त) बनाया जा रहा था । ऐसे उष काल में सोई हुई प्रियङ्गुमञ्जरी स्वप्न देखी ॥

किल सकलसुरासुरशिरः शोखरीकृन्चरणकमल , कमलाधिवासेन
ब्रह्मणा नारायणेन च रचितकचिरस्तुतिः कृशानुरूपेण ललाट-
लोचनेन चन्द्रमसा च भासमानः-धिकं कर्णं कुवलयं करे कपालं च
कलयन् , अर्हिसाटोपं मनसा शिरसा च विधाणः प्रोज्ज्वलन्नयना-
विंधितामसं च समुद्रद्वन् , अधिकङ्कालेन स्कन्धेन कंधराधेन च
धिराजमानः , सालसदृशं भुजघनं भवानीं च दधानः , सर्वदानववारं
त्रिशूलं मन्दाकिनीं च धारयन् , देवो दर्पितदनुजेन्द्रनिद्राहरो हरश्चन्द्र-
मण्डलादधतीर्थं 'पुत्रि प्रियंगुमञ्जरी, मञ्जरीमिमां गृह्णाण । मा भैषीः ।
प्रत्युपसि मप्रियोगाहमनकनामा महामुनिरेष्यति स तेऽनुग्रहं
करिष्यति' इत्यभिधाय स्थक्ष्यणशिखरान्तरात्सम्बन्धमकरन्दस्यन्द-
सुन्दरामौदमाद्यन्मधुकररवरमणीयां पारिजातमञ्जरीमदात् ॥

इवन्माह—किलेति । चार्त्तौ । हर शक्तिमण्डलादुत्तीर्णं पुष्पीयभिधाय
ईदृशीं पारिजातमञ्जरीमदात् । कीदृशी हर । ब्रह्मणा विष्णुना च कृतस्तुति ।
द्वयेनापि कीदृशेन । कमजेऽधिवासोऽस्य पद्यासनत्वात् । विष्णुस्तु कमलाया श्रिया
अधिवासस्तेन । तथा बद्धिरुह्येन नेत्रेण चन्द्रमसा च कृतेन चामेण अनुगत-
रूपेणाविनाभावसंपदमूर्तिना लसन् । तथा विकच सविकासम् । कपालं तु विगता
कचा केशा अश्मादिनि विकचम् । तथा अर्हिसाया आटोपमावेशम् । अर्हि च
साटोपं सरपद्म् । प्रोज्ज्वलदीप्यमानम् । असं तु प्रकर्षेणोऽज्वलम् । अधिगतं
कङ्कालं शरीरास्थि अर्थात्पट्वाङ्गं येन । कंधराधेन तु कालेन सह काष्ठकुटारात् ।
अधिकमिति क्रियाविशेषणम् । सालद्रुमतुल्य प्रोशुत्वात् । पते माहसे
लीलामन्यरे हसी यस्या । सर्वान्दानवान्वाहयति । गङ्गा तु सर्वदा निधं नवा
अविच्छाया वा पायो यस्या । अथवा सर्वं ददातीति सर्वदा । भानूयन्त
इत्यानवा नयोक्ता वयोऽस्या । धृतेन कामुकत्वेन नम्रवचनादारमजलानां
स्तुत्यवबोधि ॥

यहाँ रात्रि को नामिका रूप में चित्रित किया गया है । वह एक चद्र रूप
चर्दी का पटा लेकर समुद्र में पानी भरने जा रही है । कमलिनीयों की कलियों
उसके नेत्र का काम दे रही हैं । उनमें लगे हुए भौंरे अजन का काम दे रहे हैं ।
सारस-समूह का कँकार भग्न मृदग जैसा लग रहा है । चत्रवाक दंपती के भावी

मित्र के उपरान्त में मानों के भग्न मृदंग बजा रहे थे। प्रातःकालीन मंद पवन न झोंके ऐसे लगने थे मानों अन्धकार रूप वाले सर्प के काटने से मूर्च्छित सारे संसार के प्राणियों के निःश्वास हो ॥

जिनका चरणमल समस्त देवताओं तथा दानवों के सिर का भूषा है, कमल में निवास करने वाले ब्रह्मा तथा कमल के निवासस्थान विष्णु अपवा कमला (के हृदय) में निवास करने वाले विष्णु द्वारा जिनकी त्रिप स्तुतियाँ की गई हैं। जो कृष्णानुरूप (अग्निरूप) लज्जाट में (तृतीय) लोचन से कृष्ण (पतले) तथा अनुरूप (अपने शरीर के साथ सर्वश सम्बद्ध) (द्वितीया) के चन्द्र से चमकने हैं। (ऐसे भगवान् संकर) कानों में विक्रव (विकसित) कुवलय (नीलकमल) तथा हाथों में विक्रव (कव (वाल) हीन) कपाल किए हुए, मन में अहिंसा का जाटोप (आर्धेयजून आचना) तथा सिर में साटोप (दृक्कारता हुआ) अहि (सर्प) धारण किए हुए, चमकती हुई (तृतीय) नेत्र की दीप्ति तथा चित्ता के भस्म को धारण किए हुए, स्कन्ध में काल तथा कथरार्ध (शीवा) तक काल (विष) से अधिक सुशोभित, साल (वृक्ष) सहस्र गुमाओं तथा सालस (लोलापूर्ण) आँखों वाली भवानी (पार्वती) को धारण किए हुए, सर्व-दानव-वार (समस्त दानवों को निवारित करने वाले) त्रिशूल को तथा सर्व-दानव-वार (हमेशा मचीन जल देने वाली) मदकिनी (गंगा) को धारण किए हुए, अहंकारपूर्ण राजसों की निद्रा (मदस्विता) का हरण करने वाले भगवान् शकर चन्द्रमण्डल से उतर कर वस्त्रे प्रियङ्गुमञ्जरी। इस मञ्जरी को ग्रहण करो। मत डरो। प्रातःकाल मेरी आत्मा से दमनक नामक महामुनि आयेगे। वह तुम्हारे ऊपर कृपा करेंगे—ऐसा कहकर अपने कान के ऊपरी भाग से पराप्ति पराग के सङ्गे से सुन्दर गन्ध के कारण मत्त मधुरों के शंकार से मनोहर पारिजात मञ्जरी को दिये ॥

तापि 'प्रसादोऽयम्' इत्यभिधाय स्वप्न एव प्रणामपर्यस्तमस्तका स्तुतिमकरोत् ।

वह भी 'यह प्रसाद है' ऐसा कहकर सिर नवाकर प्रणामपूर्वक स्तुति की ॥

तुभ्यं नमो नमल्लोकलोकसंतापहारिणे ।

व्यर्थाकृतान्धकारातिदम्मारम्माय शम्भवे ॥ १ ॥

तुन्वमिति ॥ अन्धकारातीति दमधारय ॥ १ ॥

प्रणाम करने वाले लोगो के संताप का हरण करने वाले, अन्धकासुर के अहंकार भरे प्रपत्नी को व्यर्थ करने वाले भगवान् शंभु आपकी नमस्कार है ॥

विभो विभूतिसंपन्न पद्मगेन्द्रविभूषण

नमो नमोवसंस्मृत्य तुभ्यमभ्यन्तरात्मने ॥ २ ॥

विभो इति ॥ विभु सर्वव्यापी । विशेषेण भूत्या भक्तमना ममृद् सपन्न । यद्वा विभूत्या चतुर्दशभुवनधिपत्यलक्षणया । तथा वासुकिभूषण । मोघो निष्फल सकलतो ध्यान यस्य । पञ्चाह्नव्योग । एतानि शिवमधोघनानि ॥ २ ॥

सर्पराज को भूषण बनाने वाले, अपने सक्त्य (प्रतिज्ञा) को कभी व्यर्थ न जाने देने वाले, अन्तरात्मस्वरूप, ऐश्वर्य संपन्न, हे भगवान् आपका प्रणाम है ॥२॥

अत्रान्तरे तरणिकोमलकान्तिमित्र-

भास्वरसरोजदलदीर्घविलोचनाया ।

तस्याः प्रथोधमकरोज्जनीधिराम-

यामारसानमृदुमङ्गलतूर्यनाड ॥ ३ ॥

इसी बीच सूर्य की कोमल कान्ति से विरसित कोमल दल क सहृदय बड़े नन्हा वाली रानी को रात्रि के अन्तिम प्रहर की समाप्तिसे मगन-बाधों की ध्वनि ने जगा दिया ॥ ३ ॥

क्रमेण च प्राच्या सिच्यमानायामिव यहलकुमुभ्माम्म.कुम्भं ककु मि, प्रमथति तारकोच्छेदनाय सुकुमारं रश्मिजाले, पूर्वाचलस्थलीमधिरौ- हति जगत्प्रयोधप्रारम्भमङ्गलकलशेऽशुमालिमण्डले, ताण्डवाढम्परिणि पुण्डरीकवण्डे, हिण्डमानासु दीर्घिकामण्डनमुण्डमालासु कारण्डर मण्डलीषु, त्रिधाम्यत्सु ध्वयणपुटेषु हृदयानन्दिनि धम्दिगुन्दारक- वृन्दयन्दनारम्भरथे, रणयत्सु घीणारेणुशोणाधैणिकर्षणत्रिरेषु, कण्डकुहरप्रहोलनात्कारुणाले तारातरं गायति प्रामरागं गायनजने जाते जरज्जपाप्रसूनमिन्नम्फुटस्फाटिकशान्तिस्तमप्रभे प्रमाणममये, सा मनुस्याय भूत्या शुचिर्विरचनजनलिनगर्ममर्धाञ्जलिमन्त्रीर्यं भगवत स्मरितु, स्तुतिमकरोत् ॥

प्रवेति ॥ यथा माहेन्द्र इन्द्र, तथा सुकुमार । कुमार । ॥ हि तारकासुरोच्छेद- नाय प्रामथय । सुकुमार मृदु रश्मिजाल तु तारकाणां नक्षत्राणामुत्पत्तये । धैणिक र्चमविकी घीणारेणुनादकौ । अलङ्कारश्च सुद्रितविरूपाणामुपनिषादय । तारोऽशुच- यत्रि । प्रामराग पद्मम् । यद्वा पद्ममध्यमगान्धारास्त्रीस्त्रीन्ग्रामान्नाम च भरतोक्त पटविध गायकं गायन्ति सन्ति ॥

क्रम मे केसर के गाडे जठ से भरे हुए घण्टों में मानो दुर्बल दिया साँची जा रही थी । तारकासुर को समाप्त करने के लिए कुमार काविकेय प्रवृत्त हुए ये दैते (आकाश में विकीर्ण तारों को समाप्त करने के लिए सुकुमार

(जेनउ) किरणें प्रवृत्त हो रहों थीं । संसार के जागरणार्थी मंगल कार्य को प्रारंभ करने के अवसर पर कलश की तरह प्रतीत होने हुए अंगुमाली (मूर्ध) पूर्वोक्त स्थली (पूर्व-पर्वत) पर चढ़ रहे थे । कमल वन उद्भूत नृत्य की स्थिति प्रदर्शित कर रहा था । उत्तम कोटि के बन्दीवनों की स्तुतिध्वनि में कान विश्राम कर रहे थे । बीजा तथा वंशी बजाने वाले बैनिक (बीजा-वादक) तथा बैनिक (वंशीवादक) मधुर ध्वनि कर रहे थे । कण्ट कुहर (गले) को कंपित कर (मुद्रित, विवृत, अनुनासिक आदि) अक्षंकारों को निष्कालने न कुशल गायक लोग बड़ी ऊँची ऊँची ध्वनि से ग्रामराग (पञ्चम स्वर) में गा रहे थे । जब पुराने जवा (अष्टक) पुष्प से प्रतिबिम्बित स्फटिक-मणि के सहाय काति वाला प्रभावकाय हुआ तो वह टडकर पवित्र होकर बिले हुए नवीन कमल पुनः से भगवान् सूर्य को अर्घ्य देकर स्तुति की ।

[भग्नकार्य के प्रारंभ में कलश स्थापनपूर्वक पूजन की परंपरा है । भगवान् सूर्य भी आगमागरूप भग्नकार्य कर रहे हैं इसलिए स्वयं कलश की मूर्ति बन गये हैं ।]

यासरध्रीमहावह्नीपलुवाकारधारिणः ।

जयन्ति प्रथमारम्भसंमथा भास्वर्शवः ॥ ४ ॥

दिन-लक्ष्मी-रूपी महावह्नी के पल्लव की आकृति वाली प्रथम प्रहर की सूर्य किरणें उत्पट्ट लग रही हैं ॥

[दिन की घोभा एक सता है । सूर्य की किरणें उस सता के नवीन पल्लव की तरह प्रतीत हो रहों हैं ।] ॥ ४ ॥

जयम्यम्भोजिनीलण्डखण्डितालस्पसंचयम् ।

कौलकुमं पूर्वदिग्गण्डमण्डनं मण्डलं रवेः ॥ ५ ॥

कमलिनी वन की आलस्य-वासि को समाप्त कर देने वाला प्राची (पूर्व दिशा) के कपोत का कौकुम (कुकुम से बना हुआ) अक्षंकाररूप मूर्धमण्डल सर्वोत्पट्ट प्रतीत हो रहा है ॥ ५ ॥

राजापि प्रथमप्रबुद्धप्रगीतगीतध्वनिनिस्त्वनिद्रः, सान्द्रविद्रुमप्रभा-
मासि संध्यावन्तरे, विधाय माग्ध्यं विधिम्, अधिकृतेन धर्मकर्मणि
नरशालपुरास्तरणे पुरोधसा सह तामेवान्वेष्टुमन्त'पुरमाजगाम ॥

राजापि ॥ प्रथमप्रबुद्धा ये प्रवृत्तीनाम्नष्टीतध्वनिना ध्वस्तनिद्रः ॥

राजा भी पहली बार की गायी हुई गीत की ध्वनि से अस्तर गाडे विद्रुम कान्ति सहस्र काति वाले उपसंध्या (प्रातः) काल में संध्यानुष्ठान कर धर्म-कार्य के अधिकारी पुरोहित को उसी समय आगे कर उसी (रात्री) को देखने (सोचने) के लिए अन्तःपुर आए ॥

दृष्ट्वा च विस्मयमानः स्फुरदरविन्दसुन्दराननाम् 'अनुगृहीतेय-
मिन्दुमौलिना' इत्यवधारयन्, अतिदुर्घोत्कर्षमन्थरगिरा तां वभाषे ॥

खिले हुए कमल की तरह सुन्दर मुखी (रानी) को देखकर आश्चर्य प्रकट
करते हुए इन्दुमौलि (भगवान् शंकर) ने कृपा की है ऐसा निश्चित करता
हुआ अधिक प्रसन्नता के कारण गभीर आवाज से उससे बोला ॥

मुग्धस्निग्धनिरुद्धशब्दद्वसितस्फारीभवल्लोचनं

तिर्यक्फान्तिकपोलपालिपुलकस्पष्टीकृतान्तर्धृति ।

एतत्ते करभोर पङ्कजसदृग्दृष्ट्वा मुखं मे घला-

दुष्टैः किञ्चिदचिन्त्यचर्चितचमत्कारं मनो हृष्यति ॥ ६ ॥

मुग्धस्निग्धेति ॥ मणिघण्टकनिष्ठिकयोर्मध्य कश्चिस्तद्वदूरु प्रस्थाः । तत ऊर्ध्व
तस्या संबोधनम् । ईदृश ते मुख दृष्ट्वा महामाचिन्त्यवाधियतचमत्कार मे मनो
हृष्यति ॥ ६ ॥

मनोहर स्नेहपूर्ण तथा नि रुद्ध हास्य से भाँसे खिल उठी है । वक्रफान्ति-
पूर्ण कपोल के रोमाञ्च से आन्तरिक धैर्य प्रकट हो रहा है । हे करभोर !
(हाथ के तलवे की तरह कोमल जघे वाली) कमल सदृश आपके इस मुख को
देखकर हठात् मेरा मन किसी ऐसे उच्च (वद्भुत) चमत्कार से चमत्कृत हो उठा
है जिसके बारे में न तो मैंने कभी सोचा था, न कभी चर्चा ही की थी ॥ ६ ॥

तत्कथय शतांसि ममाज्ञया हर्षवृत्तान्तम्' इत्यभिहिता सा स्मित-
सुधानुषिङ्गमुग्धमुखवीणाकणकोमलालापेन सर्वमादितः स्वप्नदर्शन-
माचक्षे ॥

शपथ है । मेरी आज्ञा से समुचा हर्ष वृत्तान्त कह डालो । (राजा) के
ऐसा कहने पर, मुस्कुराहट से अमृत प्लावित, सुन्दर मुख वीणा की कोमल बाणी
में आद्योपान्त स्वप्न की सारी कहानी कह सुनायी ॥

क्षितिपतिस्तु तदाकर्ण्य 'प्रिये, मयापि स भगवान् । आत्मानुहारिणां
विनायकेन स्वामिना च शक्तिमता पुत्रेणानुगम्यमानो, दग्धकाम, पूरित-
कामश्च, परकपर्देक ईश्वरश्च, ससोमश्चासोमः, सविभवश्चाविभूतिश्च,
पिनाकी चापिनाकी, दृष्टः स्वप्नान्तरे तरुणार्कमण्डलमध्यघर्ता प्रणत-
प्रियंकरः शंकरः । तदेव ब्राह्मण, करोतु संवादिनोत्तमो, स्वप्नयोरथं-
परामर्शम्' इत्यभिधाय तां, तमवस्थितं पुरः पुरोहितमभाषयत् ॥

क्षितिपतिस्त्विति ॥ अग्रे स्थित पुरोहितमित्यमुना प्रकारेण राज्ञीकयनलपणेना-
चोचत् । यत् प्रिये, स भगवान्भूकरो मयापि स्वप्नान्तरे दृष्टः । कीदृश । सामर्थ्य-
यता हेरग्येग, शक्तिशस्त्रभृता वग्मुनेन चात्मप्रतिमेनानुगम्यमानः । शिवोऽपि

विगतनायकः सकललोकस्वामी शक्तिमाध्व शिवशक्त्योरविनाभावसंवन्धादि-
त्याममाहरणम् । काम स्मर इच्छा च । कपर्दी जटाबन्ध विरोधपञ्चे वराट ईश्वरो
धनधान् । ससोम मेन्दु । सह उभया वर्तत इति सोम । ततो नम्रयोग । विगतो
मयो यम्यस्ते विमवा मुच्छात्मानः । तैः सह । भगवसायुज्य हि मुक्तिरिति वृद्धा ।
तथा विविष्टा मुनिर्यस्य । यस्म च । पिनाक धनुरस्यास्ति । अपीनि भिन्नम् ।
नाकी स्वर्गी । यद्वा 'चप सान्तवने' । चपयन्ति मानवमन्यनुनयन्यवश्य चापिन-
प्रमादका नाकिनो यस्य ॥

राजा भी यह सुनकर 'प्रिये !' मैं भी, अपने अनुरूप पुत्र शक्तिरत्नधारी
स्वामी (कर्तिकेय) तथा विनायक (गणेशजी) के साथ कामदेव को जन्म
देने वाले तथा कामनाओं को पूर्ण करने वाले एक कपर्दक (एक कोड़ी वाले)
तथा ईश्वर (बड़े-बड़े ऐश्वर्य (धन) वाले (विरोध) एक कपर्दक (जटा
वाले) ईश्वर (सबके स्वामी) परिहार) ससोम (सोम-चन्द्रसहित) थे ।
फिर भी असोम (सोमरहित) विरोध । उमा क सहित थे वस्तुतः स्वयं ही
सोम-चन्द्र नहीं थे । परिहार ।

सविभव (ऐश्वर्य सम्पन्न) थे फिर भी अविभूति (ऐश्वर्यहीन) थे—
विरोध । सविभव (ससार जिनसे छुट गया है ऐसे मुक्त लोग जिनके साथ) थे
तथा अविभूति (भूति (ऐश्वर्य) से विगत नहीं) थे । परिहार । पिनाकी थे
फिर भी अपिनाकी (पिनाकी नहीं) थे और (अपि) नाकी (स्वर्गवासी) थे ।
स्वप्न में पूर्णतः प्राप्त मूर्तमंडल के शीघ्र भक्तों क आकाशित सिद्ध करने वाले
भगवान् शंकर को देखा हूँ ।

तो ये ब्राह्मण इन मिच्छे-जुच्छे दोनों स्वप्नों का अर्थ (फल) विचारें ।
ऐसा उनसे कहकर, सामने बैठे हुए पुरोहित से बोले ॥

सोऽपि 'देव, दिष्टया वर्धसे । अनल्पपुण्यप्राप्यमेतत्तद्वर्णमिन्दुमौले-
रालोकनम्, अयम्यमवाप्स्यति देवी सकलराजचक्रचूडामणि-
कल्पमशेषभुवनभ्रान्तशुश्रूषश पिण्डट्टिण्डिममपत्यम्' इत्यनेकधा
तयोराशंसयांबकार ॥

वह भी 'राजन्' । भाग्यसे आप बढ़ रहे हैं । अत्यधिक पुण्य से तरुण
शंकर भगवान् का दर्शन होता है । निश्चित ही देवी (रानी) को समस्त राज-
समूह का मणि समस्त ससार में अपने मद्य का उद्घोष करने वाला कोई अपत्य
(सतान) होगा । इस तरह उनकी अनेक प्रकार से प्रशंसा किया ॥

पंचविधे च व्यतिकरे कोऽपि कान्तवार्तस्वरस्वरूपमुत्फुल्लपाण्डु
पुष्पमालया मेरुशिखरमिव प्रदक्षिणाक्षीणलम्बया नक्षत्रराग्या जनिता-
शोभं जटाभारमुद्ध्वन्, अतिबहुलमलयज्वरसरचितविचित्रपुण्ड्रक-

मण्डनाममरशैलशिलामिव रङ्गत्रिस्रोतस ललाटपट्टिका कलयन्,
 प्लवमान इवोज्ज्वलपङ्कजकिञ्जल्ककपिलकायकान्तिकल्लोलेषु, करुणा-
 रसपूर्णवक्ष स्थलदीर्घिकायामन्तस्तरन्ती वातकलहसपक्षिपङ्क्तिमिव
 स्फारस्फाटिकाक्षमालिका विभ्राण कुशकौपीनत्रासा करकलित
 कुशरूडकमडलुमडलै, तरुमिरिव विविधशास्त्रविधृतजटावल्कलश्च,
 पर्वतेरिव समेखलै सरुद्राक्षाक्षमालैश्च, नक्षत्रैरिव समृग
 कृत्तिरूडलेपै सज्येष्ठापादैश्च, ससमंदरपि नमदाकारमाकल
 यद्भि अक्रोडैरपि चक्रोडापरै, रोमशैरपि विप्रयालकै मुनिभि
 परिवृत, सेवितपुराणपुरुषोऽप्यजनार्दनप्रिय, प्रसन्नशकरोऽप्यनाधित
 भव, प्रबुद्धोऽप्यवन्दीरुतजन, ध्रमणोऽप्यजितपरिग्रह, ब्रह्मगण
 इव नवधात्मको लोकानाम्, धनुर्धर इव नालीरुसध, वस इव नदा
 म्भस्थानकप्रिय पद्मग इव नाकुलीन, सरस्वतीसनिधासस्थ मुख
 मन्दिरस्य वन्दनमालयेव प्रथमोद्भूतभवासि-या दम्बिकारोमराजिरेख्या
 श्यामलिनोत्तरोष्ठपृष्ठ, कलिकालकलङ्कशङ्काशरणगतैस्त्रिभि पुण्य
 युगैरिव सुसूत्रीभूय देहलम्बै, त्रिपुष्करस्नानावसरविलम्बसरसविस
 काण्डकुण्डलैरिव भक्तयाराधितत्रिपुरुषरचितरक्षासूक्ष्मरेणानुकारिभि
 सितयज्ञोपवीतत-तुभिर्भूषितदेह, शमी विद्रुमाभाधरश्च प्रजापो विप्र
 जापश्च, सुतपा कुतपश्श्लाघी च, विकलत्र, सकलप्रध, यमाग्तानु
 सारी सकुशलश्च, विरुचनवनलिनशङ्कया मिल-मुक्तमुग्धमधुपमण्डले-
 नेव रुद्राक्षमलयेन विराजितवामपाणितल्लव, न स्मृत स्मरापस्मा
 रेण, नाङ्गीकृत कृतघ्ननया नालोकित कितववृत्तेन भाकलित कलिना
 न निरुद्धो विरुद्धक्रियाभि अतितेजस्तया द्वितीय इव परब्रह्मण,
 तृतीय इव सूर्याव-द्रमसो, चतुर्थ इव गार्हपत्याहवनीयवक्षिणाग्नी
 नाम्, पञ्चम इव दिक्पतीनाम् पष्ठ इव महाभूताधिदेवतानाम्,
 सप्तम् इव मूर्तवर्तनाम्, अष्टम इव सप्तर्षीणाम्, नवम इव वसूनाम्,
 दशम इव ब्रह्माणाम्, अन्तरतद्दयकमलकर्णिकान्त स्फुरज्ज्योतीरुप
 परमब्रह्मकान्तिकलापनेव यद्दिनिर्गच्छताच्छमम्मानुलेपन धनकगिरि
 रिव ।वरलचन्द्रातपेनापाण्डुरितदेह, दीर्घसरसविसकाण्डपाण्डुना
 प्रचण्डपवनेनोर्ध्वमुल्लासितेन जटाजूटबन्धनपटप्रान्तपट्टवेन शिर
 पतद्गगनगरुदगङ्गाम्बुधाराहारिणो हरस्य स्यामिभक्त्या वृत्तानुकरण
 व्रतचर्यामिव कलयन्, कोमले महसि तरुणे वयसि वृद्धे तपसि
 पृथुनि यशसि गुरुणि श्रेयसि वर्तमान, सद सदाचाराणाम्,

आश्रयः श्रुतानाम्, मही महिम्नः, प्रपा कृपारसस्य, क्षेमं क्षमा-
ङ्कुराणाम्, पात्रं मूर्त्तिसुधाया प्रासादः प्रसादस्य, सिन्धुः साधु-
ताया तद्वर्गमण्डलमध्यान्मुनिरवातरत् ॥

अत्रिपुत्रः कोऽपि मुनिः सूर्यमण्डलादवातरत् । कनकगिर्जयाभारस्य मेह-
शिखरं पुण्डरीकायश्च नक्षत्रातिरूपमानम् । लम्बं सवद्धं व्योतिषप्रगीतं च ।
ललाटस्य गिला निलक्षणा च गङ्गापमानम् । परिवृतो मुनिभिः । कीदृशैर्वि-
विधशार्दैः । शम्भा कम्बुह्वयादलंता च जगत्कशारचना मूलं च । वरकलः ।
वृक्षत्वक् । नरेव मरुता महत्तु मुनीनां चाहार्यम् । मेरुला मौञ्जी नगान्तदशश्च ।
रुद्राचरमात्राचने । पञ्च रुद्राश्च अक्षश्च तद्विषया । मृगकृत्तिकाया मृगवच्च-
श्लेषै महिम्नैः पदपटनं प्रशस्यन्नतद्वन्देन सहितं । पञ्च मृगा मृगशिर-
कृत्तिका भरण्या ज्येष्ठा भाषादाश्च नक्षत्राणि । सममदैस्तृणायामानन्दैः । तथा
मध्य गवस्याकारं नाकलयद्भिः । आपविरोधः । स तु तुलयाध्यायवया । ऋद्धा
विषयाम्बुधिः । तथा चक्रं । त्रिंशद्वा स्तुतस्तत्परं । विरोधस्तु च पृथक् ।
मूनामनुवर्तः । विप्राणां बालकैर्दिग्भैः । विरोधे विरुद्धा प्रगतकेशैः । पुराणपुराणा
वृद्धा । जननामर्दनपीडा । प्रवृत्तानामधिताना शकर सुखकरः । सवः समारः ।
प्रबुद्धो विद्वान् । वन्द्यकृतो हृदयगृहीतः । अमृतपस्वा । अत्रिण मृगशिरश्च ।
विराधस्तु पुराणपुराणजनार्दनश्च विष्णुः । शङ्करो भवश्च शिवः । प्रबुद्धस्तु गतः ।
वन्द्यवन्द्या बौद्धमतया । धम्मज चरगः । त्रिनोर्द्ध्वः । परिग्रहः सर्वत्र नति-
मित्रम् । वयो हिता । अलीकमथा मिथ्याप्रतिज्ञः । दम्भवदिना दम्भा मायिका ।
अकलीनो नामिज्जानः । प्रहगास्तु नक्षमरस्वरूपः । वन्द्यो च नालीके शरसधान-
पस्यः । इत्यस्तु नादशस्मिन् एव स्थानकं तस्मिन् । नाकवर्धनीकस्तत्र लीनः ।
मन्त्रधारिणि त्रिपुरहरिणि । त्रयः पुरुषा यत्रति सन्नुदायिन एव समुदाय इति
दर्शनं बहुवचनम् । अतिरिक्तमुदायपञ्चस्तु नेहाश्रित इति सवितहरिहरमहामो-
रचयं रचितरत्नानुसर्पयन्तोपवीततन्मुनिभूयिष्यदेवः । शमोऽस्यास्तीति शर्मा
शान्तः । तथा विद्रुमप्रवालस्तुतुष्योहः । प्रपा पाति क्तुहृत्तपो हि प्रपात्राणम्
विप्राभारयति अपभारयति । भट्टदर्शनान्वयत्वात् । सुष्ठु तपः प्रपन्नस्य । तथा
कौ मुनिः तपसा लाक्षाक्षेण धर्मेण स्थाप्यशीलः । 'तपश्चान्द्रायणादौ स्याद्धर्मे
लाक्षाक्षरं च' इति त्रिषु । यदा कुतपो दर्शनंदा कुतपस्वाधीयत्र विमर्श-
भावोऽपि (इत्यत्र द्विवेदः) शुभ्या विरोधप्रतीतिः । विमानकलत्रः । मण्डलं प्रायतः ।
अहिमामयास्तेयप्रहृष्टचर्यारिप्रहः यमास्तेषामन्तः पारम् । कुणादमांज्ञान्ति
गृह्णन्ति यत् कुशला दद्यान्ते महः । च सर्वत्र विरोधः । नद्यथा शमीनामा तद-
तथा द्रुमामा घातिः । विरोधः । वि प्रजापवान् । कुतपः कुपिततपः । सह
कलत्रम् । वन्द्यवन्द्यकस्य समीपमनुसर्पयन्तम् । सह कुशलं चोमेण ॥

एतद् ही अवसर पर कोई मुनि पूर्ण सूर्य मण्डल से अवतीर्ण हुए । वह मेह
शिखर की तरह वनकृत हुए स्वर्ण रंग की प्रदक्षिणा के कारण क्षीर लग्न वाली
नक्षत्र पंक्ति की तरह घिरे हुए शुभ्र मानवों से मण्डित जगत्भार का धारण

कर रहे थे। अमर शैल (हिमालय) की शिखर पर जैसे त्रिलोचन (गंगा) बहती है वैसे वह अपनी शुभ्र ललाट-पट्टिका पर गाढ़े चन्दन रस से त्रिपुण्ड्र तिलक किए हुए थे। पूर्ण विकसित कमल के पराग सट्टख अपने गौर देह की दीप्ति लहरी में मानो तैर रहे थे। कण्ठ रस के भरे हुए वक्ष स्थल ऋषी दीर्घिका (सरोवर) के भीतर सुन्दर बालहंसों की श्रेणी की तरह बड़ी-बड़ी स्फटिक मणियों को धारण किए हुए थे। कुक्ष तथा कौपीन वस्त्र पहने हुए थे। हाथ में कुक्षयुक्त कमण्डलु लिए हुए थे। पैर जैसे विभिन्न शाखा जटा (जड़ मूल) तथा वल्कल (बूझ छाल) से युक्त होते हैं वैसे (कण्ठबहुवृच् आदि वैदिक) शाखाओं, जटा (केश समूह), तथा वल्कल वस्त्र को धारण किये थे। पर्वत जैसे समेखल (तटीय भाग युक्त, होने हैं तथा ख़्दास बुध की पक्तियों से युक्त होते हैं वैसे (मुनि भी) समेखल (मोड्जीकरधनी युक्त) तथा ख़्दास मणियों की माला लिए हुए थे। नक्षत्र समूह जैसे मृगशिरा, कृत्तिका, आश्लेषा, ज्येष्ठा, तथा पूर्वाषाढ, उत्तराषाढ से युक्त रहते हैं वैसे (मुनि भी) मृगकृत्तिका (मृगचर्म) को आश्लेष (पहने हुए) थे और ज्येष्ठ (उत्तम) आषाढ (व्रत दण्ड) धारण किए हुए थे। वह ऐसे मुनि बालको से घिरे थे जो सखमद (मदयुक्त) होकर भी न मदाकार (मद युक्त न) थे। विरोध। सखमद (तुण्याहीन होने कारण आनन्दयुक्त) थे। और न मदाकार (मदपूर्ण आकृति को धारण नहीं कर रहे थे नञ्च) थे। परिहार। अक्रीड (श्रीडाबिहीन) फिर भी (च) क्रीडा पर (क्रीडा में तत्पर) थे। विरोध। अक्रीड (विषय वासना में अनुरक्त नहीं) थे और अक्री (बिष्णु) की ईडा (स्तुति) में लगे रहने थे। रोमश (बड़े बड़े बाल वाले) थे फिर भी विप्र बाल (उत्तम केशों से हीन) थे। विरोध। रोमश (उत्तम रोम वाले) थे और विप्र + बाल (ब्राह्मण जाति के लड़के) थे। (वह मुनि) मेवित पुराण पुरुष (बिष्णु की सेवा किये) थे फिर भी अनार्दन उन्हें प्रिय नहीं थे। विरोध। पुराण पुरुष (बिष्णु या बृद्ध मनियों) की सेवा किये थे। अतः उन्हें अनार्दन (जनता का उत्पीडन) प्रिय नहीं था। परिहार। शकर को प्रसन्न किये थे किन्तु उन्होंने भव (शकर) का आश्रय नहीं लिया था। विरोध। शकर को प्रसन्न किये थे किन्तु भव (सत्तार) के आश्रय (परतपत्ता) ॥ नहीं रहे थे। प्रबुद्ध (महात्मा बुद्ध) थे किन्तु किसी जादमी को चन्द (बौद्धधर्म का उपदेश) नहीं दिए थे। वि०। प्रबुद्ध (बड़े आत्मशानी) थे और किसी बधन में नहीं डाले गये थे। परिहार। यमण (जैन सग्यासी) थे किन्तु जिन के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे। वि०। यमण (आत्मज्ञान के लिए समाधि योग आदि श्रम करने) थे और अनजिन मृगधर्म धारण करते थे ॥ परिहार ॥

[संमद शब्द अजोक्रिक आनन्द का वाचक है। इस तरह के आनन्द की अनुभूति तृष्णाहीन विप्रबालको में सम्भव थी। बक्रीड विग्रों के बालक वात्स्यो-चित श्रीडा में अनुरक्त नहीं थे। चक्री की स्तुति में ही दत्तचित्त थे। विरोध पक्ष में चक्रीडा का 'च' अपि अर्थ में आया है। अर्थात् श्रीडा हीन है फिर भी श्रीडा में तत्पर है।]

पुराण पुन्य—शब्द ही विष्णु अर्थ प्रसिद्ध ही है। किन्तु 'वृद्धजन' अर्थ भी यहाँ प्रासंगिक ही होगा क्योंकि वर्ण्यमान मुनि अभी अरवन्त नवीन हैं। जभी उन्हें मूठों की सेवा पड़ रही है। अतः वृद्धजन सेवा उनके लिए उचित ही है।]

लोक में ग्रह (नवग्रह) जैसे (नवधा) नव भागों में विभक्त हैं वैसे (मुनि भी) न-वधात्मक (किसी के बंध की आकाङ्क्षा वाले नहीं) थे। धनुर्धर जैसे मालीक (धनुष्) पर संघ (शर सधान) करता है वैसे (मुनि भी) न + अलीक संघ (मिथ्या प्रतिज्ञा करने वाले नहीं) थे। हंस जैसे नदाम्भ-स्थानक प्रिय (नद के बलवाले स्थान को प्रिय मानता) है वैसे (मुनि भी) नदाम्भ स्थानक प्रिय (दाम्भिकों (वमण्डियों) की अगढ़े उन्हें प्रिय नहीं) थीं। पद्मग (धर्म) जैसे नाकु (बल्मीक म) लीन (छिपे) रहते हैं वैसे (मुनि भी) नाकुलीन बहूत कुलीन थे। उनका मुख सरस्वती का निवास मंदिर था। जभी पहली बार उत्तरोष्ठ पर मूठों की काली रोम पंक्तिया निकली थीं। वह मुख-रूपी सरस्वती के भवन का तोरण प्रतीत हो रही थीं। कल्पियुग के डर से तीनों युग वृत्र (तनु) रूप में परिणत होकर देह में सड़ गये थे। तीनों पुष्करतीर्थों में स्नान करते समय शरीर में सड़े हुए कमल तनु के कुञ्ज की तरह प्रतीत होने हुए भक्तिपूर्वक आराधित ब्रह्मा, विष्णु और महेश द्वारा दिये हुए सूत्र रक्षा सूत्र की तरह प्रतीत होने हुए, सकेद यज्ञोपवीत के तन्तुओं से जिनका शरीर बलवृत्त हो गया था।

शमी (शमी नामक वृक्ष) थे और विद्रुमाभाधर (वृक्ष की काति धारण करने वाले) नहीं थे। वि० शमी (शक्तिप्रिय) थे और विद्रुमाभाधर (प्रवाल काति की तरह अधरो वाले) थे। परिहार। प्रजाप थे फिर भी विप्रजाप (प्रजाप नहीं) थे। वि०। प्रजाप (प्रजा की रक्षा करने वाले) थे और विप्रजाप (बाह्यगों से जप कराने वाले) थे। बाह्यगों को जप करने की प्रेरणा देते थे। परिहार। सुतपा (सुन्दर तपस्या वाले) थे फिर भी कुतप श्लाघी (सराब तपस्या के प्रशंसक) थे। वि०। सुतपा (सुन्दर तपस्या किये हुए) थे और कु (पृथ्वी) पर अपनी तपस्या के लिए प्रसिद्ध थे। परि०।

विकलत्र (स्त्री रहित) थे फिर भी सकलत्र (स्त्री सहित) थे । वि० । विकलत्र (स्त्री रहित) थे फिर भी सकलत्र (सबों का प्राण करने वाले) थे । परि० । यमान्तानुसारी (यमराज के पास रहने वाले) थे फिर भी सकुशल थे । वि० । यमान्तानुसारी (अहिंसा, सत्य, आस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और यमनियमों का पालन करते) थे तथा सकुशल (कुशलाने वाले मुनियों से युक्त) थे ॥ परिहार ॥

[क्षमी शब्द का उपयोग मुनिपक्ष में वृक्ष सादृश्य के आधार पर भी किया जा सकता है । क्षमी वृक्ष जैसे अन्तराग्नि से युक्त होता है वैसे यह मुनि भी अपनी आन्तरिक तेजस्विता से उद्भासित है ।]

खिले हुए नवीन कमल की भ्रांति से आये हुए आनन्दमग्न भोले भौरो के समूह सदृश वृक्षाक्ष की छोटी माला से उनका बायाँ हाथ मण्डित तथा स्मरापस्मर (कामरूप रोग) द्वारा वे कभी याद नहीं किये गये थे । कृतज्ञता को कभी छूये नहीं थे । धूर्तवृत्तान्त को कभी देखे तक नहीं थे । कलि द्वारा आक्रान्त नहीं थे । शाल्व विकट आचरण द्वारा निरुद्ध (पतित) नहीं हुए थे । अत्यन्त तेजस्विता के कारण द्वितीय ब्रह्मा की तरह थे । सूर्य और चन्द्र के अतिरिक्त तीसरे तेजस्वी थे । गार्हपत्य दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन तीन अग्निमों के अतिरिक्त चतुर्थ अग्नि थे । चार दिवपतियों के अतिरिक्त पाचवें दिवपति थे । पाच महाभूतों के स्वामियों के अतिरिक्त ये छठे महाभूतपति थे । छ प्रत्यक्ष ऋतुओं के अतिरिक्त ये सातवें ऋतु थे । सप्तपियों के अतिरिक्त आठवें ऋषि थे । आठ वसुओं के अतिरिक्त नवम वसु थे । नवग्रहों के अतिरिक्त दशम ग्रह थे ।

[मिलन्मुक्तमधु—मुनि का पाणि पल्लव इतना सुन्दर था कि भ्रमरों को उसमें कमल की भ्रांति हो सकती थी । उनके बाये हाथ से लगी हुई वृक्षाक्ष की माला भ्रमर समूह की तरह प्रतीत होती है । मानो भ्रमरों का मुण्ड ही उनके हाथ को कोमल समझकर आ गया है ।]

निरन्तर हृदय कमल कोष के भीतर से छिटकती हुई ज्योतिरूप परमात्मा की कान्ति राशि ही मानो बाहर शुभ्रभस्म रूप में निकल रही थी जिसके लेप से शुभ्र पारीर वाले मुनि कही कही पड़ने वाली चन्द्रकिरणों से युक्त कनकगिरि की तरह लग रहे थे । जटाजूट का बधन लगे एव सरस कमल तनु की तरह श्वेत अधिरूपा बहने के कारण ऊपर की ओर उठा हुआ जटाजूट बांधन वाले वस्त्र का पल्लव सदृश एक अक्ष आकाश से गिरती हुई गंगा की धारा की तरह मनोहर लग रहा था । स्वामिभक्ति के कारण (शिर पर गंगा को धारण करने वाले) भगवान् सत्कर का मानो अनुकरण कर रहे थे । तेजस्विता

मे कोमल, अवस्था मे तथा, तपस्या मे वृद्ध, यश मे महान् तथा प्रसन्नोप-
श्रेयता से स्थित सदाचार्यो का भवन, श्रुतियो का आश्रय, प्रभाव का स्थान,
दया-सरोवर का क्षरणा, समारम्भ अनुर (क उत्पन्न होने की) भूमि, मित्रता
रूपी अनृत का पात्र, प्रसन्नता की अट्टालिका, सम्पन्नता का सागर ये ।

राजा तु दूरत एव तमायान्नमवलोक्य विस्मयदिस्कारितविलो-
चनो हर्षपर्यधिनिस्तरद्बलपुलकोत्तमिमितोत्तरीयवासा. ससंभ्रममा-
सनादुरथापि रिपुस्त्यपि पदान्यभिमुखं सनेत्य क्षितितलमित्त्वमौलि-
मण्डलः प्रणाममकरोत् ॥

दूर से ही उन्हें आते हुए दसहर आश्चर्य का कारण राजा की आँखें झिज
उठीं । हर्ष की वर्षा के कारण पर्याप्त रामाङ्ग हो गया । रोमा के सहे होने से
(उत्तरीय बन्ध) बाहर ऊपर उठ (उन) गयी । धीरे ही आसन में उठकर कुछ
कदम सामने बढ़कर पृथ्वीतल तक सिर झुका कर प्रणाम किये ।

मुनिरपि सदात्पणान्तयापि सान्म्यया दृशा विद्रुमप्रमाभिन्नया
सुधासिन्धुतरङ्गमालयेव प्लावयन्नाशिपमवादीत् ॥

मुनरिति ॥ राजप्रणामानन्ताम् । सर्वदा रक्षप्रान्तया दृशा प्रवालचतुरितचीरोद-
सीयेव प्लावयन्मुनिरप्याशिपमुवाच । रक्षान्ननेत्रैश्च शुभलक्षणम् । विरांचे स
इति मुनिविशेषगम । दाह्य रौद्रम् ॥

भूमे की काँति से अनुविद्ध, अनृत सागर की स्फुर की तरह अपनी (सदा-
वस्था) रक्त नेत्र भाग बानी दृष्टि से नहलाने हुए आशीर्वाद बोले ।

[स (वह मुनि) दाह्य और सौम्य दृष्टि से नहलाने हुए आशीर्वाद की
बाणी कहे । जो दृष्टि दाह्य होगी यह सौम्य कैसे होगी यही विरोध है । ऊपर
दिया हुआ अर्थ परिहार वक्ष्य का है ।]

‘सिन्दूरस्पृहया स्पृशन्ति करिणां कुम्भस्थनाधोरणा
मिल्ली पल्लवशङ्कुया विचिनुने सान्द्रद्रुमद्रोणिषु ।

कान्ता कुङ्कुमकाहुया करतले मृद्गन्ति लग्नं च यत्-
तत्तेजः प्रथमोद्भवं भ्रमकरं सौरं चिरं पानु चः’ ॥ ७ ॥

सिन्दूरि ॥ भ्रमकरं आन्तिजगदम् । सच्च सिन्दूरस्पृहयेयादिनाभिहितम् ॥१॥

भगवान् सूर्य की प्रथम किरणों आपकी रक्षा करें जिन्हें हाथियों के
कुम्भस्थल पर देखकर आधोरण (हाथीवान्) लोण सिन्दूर की आन्ति से छूने
हैं, किराउ-वर्तनशी वृक्षों के आलवाल द्रोणी (बगारियों) में पन्द्र की
भाति से चुन रही हैं तथा रमणियों अपने हाथों पड़ी हुई कुङ्कुम समझ कर
पोंछ रही हैं ॥ ७ ॥

दत्ताशीश्च प्रणामपर्यस्तकर्णपूरपल्लवपरामृष्टपादपांसुरवनिपालेन
स्वयमादरेणोपनीतमुच्चकञ्चनासनमध्यतिष्ठत् ॥

प्रणाम के अवसर पर (राजा के) लटकते हुए कर्णपल्लव से जिनके पैरों की धूलि पोछी गयी है, तथा जिन्होंने आशीर्वाद दे लिया है ऐसे मुनि राजा द्वारा आदरपूर्वक स्वयं लाये हुए ऊँचे स्वर्णमय आसन पर बैठे ।

अथ नरपतिदत्ते प्राप्तसौन्दर्यनिर्य-

न्मणिमहसि स तस्मिन्नासने संनिविष्टः ।

रुचिररुचि सुमेरोः संगत शृङ्गभागे

कमल इव कान्ति काञ्चिदुच्चैर्यभार ॥ ८ ॥

अथेति ॥ प्राप्तसौन्दर्यं रम्यं निर्यञ्जि मरम्मणीनां महस्तेजो यस्मात् तन्नासने आसीत् । मुनि, काञ्चिदपूर्वां शोभां वभार ॥ रुचिरकान्ती सुमेरो शृङ्गभागे स्थितो ब्रह्मेव ॥ ८ ॥

मणि की दीप्ति जिससे छिटक रही थी ऐसे राजदत्त सुन्दर आसन पर बैठे हुए मुनि सुन्दर कान्ति वाले सुमेरु पर्वत की चोटी पर स्थित ब्रह्मा की तरह अलौकिक शोभा धारण कर रहे थे ॥ ८ ॥

वस्वार्धमर्हणीयाय तस्मै स्तोऽपि मद्दीपतिः ।

स्वहस्तधौतयोर्मफत्या यवन्दे पादयोर्जलम् ॥ ९ ॥

वह राजा भी उस पूज्य मुनि को अर्घ्य देकर भक्तिपूर्वक अपने ही हाथों से धोये हुए पैरों के जल को प्रणाम किये ॥ ९ ॥

कृत्यातिथ्यक्रियां सम्यग्विनयं च प्रश्नाशयम् ।

तस्याग्ने भूतलं भेजे नोपविष्टः ॥ विष्टरे ॥ १० ॥

अतिथि को जिस विधि से सत्कार करना चाहिए वह सब कर, विनम्रता व्यक्त करता हुआ राजा उस मुनि के आगे पृथ्वी पर ही बैठा, आसन पर नहीं ॥ १० ॥

ललाटपट्टविन्यस्तपाणिसंपुटकुङ्कुमलः ।

नीचैरुवाच चाचं च चञ्चदशनदीधितिः ॥ ११ ॥

(विशाल) ललाटरूपी शिलापट्ट पर संपुट पाणिरूप कुङ्कुमल (कल) रखकर चमकती हुई दन्तकान्ति वाले राजा धीरे स्वर से बोले ॥ ११ ॥

‘अथ मे सुचहो फालाच्छ्लाघनीयमभूदिदम् ।

त्वत्पादपद्मसंपर्शसंपद्मानुग्रहं शृणु ॥ १२ ॥

आज आपके चरमकर्म के स्पर्श से संपन्न मेरा घर विरकाल के लिए प्रशसनीय बन गया ॥ १२ ॥

यतः शमस्तनुनिमनुजवृन्दारकवृन्दवन्दनीयपादारविन्द्राः, परमानन्दपरिस्पन्दमाजः पांसूनिव पार्थिवान्, तृणमिव स्त्रैणम्, निवनमिव घनम् रोगानिधौ भोगान्, राजयक्ष्माणमिव लक्ष्मीम्, आकलपन्तः सकलसंसारमुखविमुक्ताः कस्य भवादृशा भवनभवतरन्ति ॥

समस्त जन्म मुनिवर्ग तथा मानववर्ग द्वारा जिनका चरमकर्म प्रणम्य है, ओ, इसमें आनन्द क्या पात्र है, जिन्होंने राजाओं को धूलि, स्त्री वृन्द को तृण, संपत्ति को मृत्तु, भोग को रोग तथा लक्ष्मी को राजयक्ष्मा समझा है, समस्त सत्कार के मुख से विमुक्त आप जैसे लोग किसक घर जान है ?

नदहमद्यानद्यस्य भवधर्म्यं मूर्खो यशोराशेर्भाजनम्, आकृष्टः पदं इन्द्राद्याहम्, आगतो गुणिषु गौरवम्, उपलब्धवान्धन्यताम्, संपन्नः पुण्यधत्तामप्रणी, जातो जनस्य वन्दनीयः ॥

भगवन् ! आज मैं पर्याप्त अनिन्द्य कीर्ति-राशि का पात्र बन गया, प्रशसनीय पद पर आरूढ़ हो गया। गुणवानों में गौरव-पात्र बन गया। धन्य हो गया। पुण्यवानों में अग्रणी बन गया तथा मानववर्ग का वन्दनीय बन गया।

तद्विद्यमनेकप्रकारोपकारिणां किं श्रवीमि, किंकरोऽस्मीति पौन-
दन्त्यं सर्वस्वामिनाम्। केनार्यित्वमित्यनुचितादपि निस्पृहाणाम्।
इदं मे सर्वस्वमात्मोक्तियतामिति स्थल्योपधारः स्वाधीनाष्टगुणैश्वर्याणां
भवनाम्। तथापि प्रणयेन मस्त्या च मुखरितः किंचिद्विज्ञापयामि ॥

इस तरह अनेक तरह से उपकार करने वाले आपके बारे में क्या कहूँ ? यदि कहता हूँ कि आपका नौकर हूँ तो वह पुनर्क्ति ही होगी क्योंकि आप सबकुछ स्वामी हैं। [सबन में भी आ गया बिना कहे ही आप स्वामी हैं मैं शोकर हूँ। यदि उमी बात को फिर कहता हूँ तो पुनर्क्ति ही होगी।] आपके यहाँ कौन याचक नहीं है, (ऐसा कहूँ तो) आप जैसे त्यागी का अपमान हो है। [क्योंकि आपके पास जो कुछ भी है वह याचकों के लिए ही है। अतः याचक आपकी संपत्ति को अपनी ही सम्पत्ति समझ कर माँगने आते हैं। ऐसी स्थिति में मैं उस कार्य को लेकर यदि आपकी प्रशंसा करूँ तो कोई आदर की बात नहीं बनि तु कुछ अन्याय का ही भाव झलकता है।] 'यह मेरी संपूर्ण संपत्ति स्वीकार कीजिए' यह कहता हूँ तो यह भी छोटा ही सत्कार है क्योंकि जिन्होंने आठों

सिद्धियो के ऐश्वर्य की अपने अधीन कर लिया है (उसके लिए वह थोड़ी-सी संपत्ति का देना कौन सत्कार की बात है ?) फिर भी विनय एवं भक्ति से वाचाल में बनकर मैं कुछ कह रहा हूँ ॥

इदं राज्यमियं लक्ष्मीरिमे दारा इमे गृहाः ।

पते धनं विधेयाः च कथ्यतां यदिहेप्सितम् ॥ १३ ॥

यह राज्य, यह लक्ष्मी, ये स्त्रियाँ, ये घर और मैं सभी आपके किङ्कुर हैं, जो इच्छा हो कहे ॥ १३ ॥

मुनिरप्यधनीशस्य विनयमभिनन्द्य स्निग्धमुग्धस्मितसुधाधवल्लिता-
धरपल्लवमध्वनीत्-‘उचितमेतद्भवाद्दशां वक्तुं कर्तुं वा’ ॥

मुनि भी राजा के विनय की प्रशंसा कर स्नेहपूर्ण सुन्दर मुस्कुराहट से अधरोष्ठ को छुन्न बनाते हुए बोले—‘उचिit ही है आप जैसे लोगों का कहना या करना’ ।

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।

सज्जनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥ १४ ॥

उपेति ॥ इन्दुः केन शिशिरीकृतः । स्वभावादेव शिशिर इत्यर्थः ॥ १४ ॥

उपकार करना, प्रिय बोलना, अकृत्रिम (स्वाभाविक) स्नेह व्यक्त करना सज्जनो का स्वभाव ही होता है । चन्द्रमा को शीतल किसने किया है ? ॥ १४ ॥

[सज्जनो में मधुरता किसी के द्वारा नहीं बनायी जाती, स्वयं उत्पन्न होती है । जैसे चन्द्रमा को किसी ने शीतल नहीं किया है । वह स्वयम् शीतल है ।]

अपिच—

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रिया ।

चित्ते वाचि क्रियायां च साधूनामेकरूपता ॥ १५ ॥

यथेति ॥ वाचीत्येवत्येऽपि ज्ञात्या बहुत्वप्रतीतिः ॥ १५ ॥

जैसा चित्त वैसी वाणी, जैसी वाणी वैसा कार्य । चित्त, वाणी तथा कार्य सब में सज्जन एक रूप रखते हैं ॥ १५ ॥

अपिच—

विवेकः सह संपत्त्या विनयो विधया सह ।

प्रभुत्वं प्रथयोपेतं चिह्नमेतन्महात्मनाम् ॥ १६ ॥

विवेक इति ॥ प्रथय पणय ॥ १६ ॥

रूपति होने पर ही विवेकपूर्ण रहना, विद्या होने पर भी तम्र रहना, दरपागुप्त का स्वामी बनना, यही सब महान्नाया के चिह्न हैं ॥ १६ ॥

तदेतत्समस्तमस्ति त्वयि दीर्घायुषि, ध्रुयनामिदानां प्रम्नुतम् ।
अनवरनसुरासुरचन्द्रचूडामणिहृतचरणरत्नसञ्चन्द्रचूडामणेरैवस्यादे
शनागता वयम् । अत्राप्यमि सकलजलधिजलकलोलमालालंकारभाजो
भुवो मर्तुर्गचिनमतिमान्य धन्यममामान्यं कन्यारत्नम्' इति ॥

तो ह विरज्जीविन् । आप म व सब चीजें हैं, दुनिया जा इस समय प्रादुर्गिक है । निरन्तर दवा और दानवों की युद्धमय म जितक चरणा की धूँलि गनी रहती है, चन्द्रमा जिनके गिर म लटक रहन है, एउ न-वानु शकर की आना ॥ हम भाव हैं । आप सागर जल की तरंगमाला से अलङ्कृत सङ्गा पृथ्वी क राजा के (सम्मान) क अनुकूल, असाधारण, सर्वप्रशसनीय एक कन्यारत्न प्राप्त करेंगे ।

एवमुक्त्वाति तस्मिन्तपस्विनि पुत्रार्थिनी न्य्याल्लाम मन्यमाना
विप्रियं प्रियंगुमञ्जरी जरम्भञ्जतरत्रजजरगिलझाक्षरया गिरा कुर्वाणेष
ओजपारस्पन्दं निन्दास्तुतिधर्मेण नमंतीन्द्रास्तलहमकरोत् ॥

एवमिति ॥ क्रोधस्य परिस्पन्दं चेष्टां कुर्वाणश्च ॥

तपस्वी क इस तरह कहते पर पुत्र चाहन वाली प्रियंगुमञ्जरी ने आँख कन्या लाभ जानकर पुराने तूफान की तरह श्रौवृत्त (झुठ उगार) अनुरा की बाणी म क्रोध अनियन्त्रित करती हुई निन्दा और स्तुतिपुल्ल नम्रता-पूर्ण कह प्रारम्भ किया ॥

‘नयशोभाजन, कृतकटोककुशाम्बुग्राहिन्नरेदनोद्धारं कृतवानसि
ह्यपि । सर्वदानादेयेषु प्रतिकूलवर्तिषु जलेषु रति कुर्वाण पाटीन-
द्विसको धीवर इजोपलक्ष्यसे । कुरद्वेषु प्राति घृणासि । कदम्ब-
कुरवैर्गुरुदलानैः पलाशप्राये कुजन्ममि मह संवससि ॥

मतेः ॥ यशभाजनेत्यामन्यस्य नम्रयोग । तथा कृतानि कृत्रिमाणि, ननु वेदवक्षोऽपेयाणि । कुम्भिनटीकानि कुशात्राणि गृह्यमाण्यवशील यस्मिन् ददो वदपारहित । इदमपि द्वयभामन्यम् । कृप न उद्धारमुच्चारण कृतवानमि । वक्तुमपि न वक्ष्याम्यर्थः । स्तुतिरप्येवमप्यशोभा च न जनयति । यद्गृहमगतोऽपि तस्यमि शयः । तथा कृता कौ पृथिव्या टीका समन यन् । स्वर्तिगायत्रम दनुविधुञ्चयति शयः । उद्यो दर्न एवास्त्र गृह्यत्यवस्थम् । एतन्नास्त्रपशूनामपि विघातोक्तिः । वेदना दुःख तदर्थमुद्धारमुच्चारण कृति नाकरो । एतन्न प्रियव दवान्ति । निन्दाया अनादयन्त्रवद्वेषु जलेषु रति विदधद्विसको धीवर इवाव सुप्यम । धीवरोऽपि झिल नादययामु कृत् कच्छ प्रति वर्तमानेषु रति कुरुते ।

पाठीनाहारवात् । पक्षे सर्वकालमेव नदीभयेषु कूलं कूलं प्रति वर्तमानेषु चारिषु रागमासक्तिं कुर्वाण पाठवान् न हिंसाशीलो धिया बुद्ध्या वर एषावगम्यसे । एतेन तीर्थस्थास्तुन्दयालुर्ज्ञानी च । कुत्सितो रज्जो वासना येषां तेषु विषयेषु प्रीतिमान् । पक्षे कुरङ्गा मृगास्तेषु प्रीत । कदम्बै कुमारकै । कुत्सिता अम्बा कदम्बा ताश्च दुष्टे हितै कुर्वन्ति आचक्षते वा इति निजन्तादचि सिद्धम् । बहुव्रीहौ तु को कक्ष भवति कुत्सितो रज्जो येषां तै । कुत्सितमलीङ्गम् कदलीकम् । को कत । बहुकदलीक येषाम् । तथा पक्षे (पाकिस्तमश्नन्ति ये तेषां प्रायै सदृशैः) तथा कुत्सित जन्म येषां तथाविधै सह वास विधासे । पक्षे कदम्ब-कुरवक-कदली पलाशा ये कुज्जमान कौ पृथिव्या जन्म येषामिति कृत्वा मूलहासै सह संवससि । मुनयो हि मृग-नगप्रिया । वनवासिवात् ॥

निन्दापक्ष—हे न यशोभाजन ! (अयच्छस्विन्) कृतकुटीक कुशाख प्राहिन् । (कुत्सिम, अभद्र टीकाओं से युक्त खराब शास्त्रों के ग्रहण करने वाले) न वेद (तुम कुछ नहीं जानते हो) । कहीं भी (विद्वानों के बीच) उद्गार (भाषण) नहीं किये हो । बोलना नहीं जानते हो ।

सर्वादा (सदा) अनादेय (अश्रद्धेय) तथा प्रतिकूल चलने वाले जड़ों के साथ प्रेम करने वाले तथा पाठीन (पोडिया मछलियों) की हत्या करने वाले धीवर (मल्लाह) की तरह प्रतीत होते हो । कुरङ्ग, खराब रंग (वासना) वाले लोगों में प्रेम करते हो । कदम्ब (टेढ़ा चलने वाले) हो । [कुत्सितमम्बति इति कदम्ब 'अम्ब गती'] कुरवक (अभद्र बोलने वाले) बहुकदलीक (अधिक झूठे) तथा पलाशप्राय (अधिकांश मांस खाने वाले) कुज्जम (निन्द कुल वाले लोगो) के साथ तुम रहते हो ।

प्रशंसा पक्ष—नय (नीति) और शोभा के जनक हो । कु (पृथिवी) म टीक (आगमन) किए हो । कुश रूपी अख को ग्रहण किए हो । कहीं भी वेदनापूर्ण शब्द नहीं किये हो [किसी से इस रूप में नहीं बोलने हो कि सुनने वाले को कष्ट हो] सदा नादेय (नदी सम्बन्धी) तटवर्ती जल में प्रेम रखते हो । पाठी (वेद के स्वाध्यायी) हो । हिंसक नहीं हो । धी (बुद्धि) के कारण बड़े हो । कुरङ्गों (मृगो) से प्रेम रखते हो । कदम्ब, कदली, कुरवक जो कु (पृथिवी) में जन्म लिये हैं उनके साथ रहते हो ।

किमन्यद् वृमो वयम् ।

और दूसरा आप के बारे में क्या कहूँ ।

यस्य ते सदाचारविरुद्धः पुष्पवत्कान्ताराग एव प्रिय ॥

यस्येति ॥ पुष्पवतीषु हि कान्तासु राग आसक्तिः । आचारविरुद्धं कुलधर्मा-नुचिनं पक्षे सदाचारोत्थामन्त्रणम् । विभि पृथिवी रुद्धं पुष्पवत्कान्तारस्वाग-स्तद्वदेव प्रिय ॥

निन्दा पक्ष—निस आपको रजस्वला रमणी में प्रेम करना इष्ट है, जो कि सज्जनों क आचरण से सर्वथा प्रतिकूल है ।

प्रशंसा पक्ष—हे सद्यचार ! (सुन्दर आचरण वाले महर्षे !) बि (पक्षियों) स ह्य (धिरा हुआ) कान्तार (जगत्) क अग (वृक्ष) आपको प्रिय हैं ! (आप अरुण्यवासी सर्वदा स्तुत्य महात्मा हैं ।)

तद्वत्तमेन तापसहितेन कन्यावरप्रदानेन' इति ॥

अदिनि ॥ तस्मात् तापम् तपस्विन्, हि स्फुटं ते तव सद्यन्विता कन्यावर-प्रदानेन नाल न पर्याप्तं नेष्ट्यै पूर्यत इति यावन् । यतोऽहं पुत्रार्थिनीति । अथवा तापं समाप्तमपहितम् । पक्षे तापमस्यामन्त्रणम् । तेनानेन कन्यावरप्रदानेनाल नान्यप्रार्थनीयमित्यर्थः ॥

निन्दा पक्ष—ताप (सताप) सहित यह कन्यावर-प्रदान अर्थ ही है ।

प्रशंसा पक्ष—ह तापस ! यह कन्यावर-प्रदान को हित करना (छोड़ना) पर्याप्त (अन्त) नहीं है ।

['कन्यावर प्रदान पर्याप्त है' ऐसा अर्थ करने पर 'अल' का प्रयोग पर्याप्ति अर्थ में मानना होगा । तब "नमस्वस्तिस्वाहास्वधाऽऽवयव्योऽन्व" क मोग न अनुर्गी विभक्ति होन लगेगी । इसलिए इस पक्ति को स्तुति पक्ष में लगाने के लिए 'कन्या वरप्रदान को छोड़ना अर्थ नहीं है'—यह अर्थ करना चाहिए जिसमें 'अल' अपर्याप्ति अर्थ में लग सके ।]

एषमभिहित सोऽपि तां वमारे ॥

ऐसा कहने पर मुनि भी प्रियकुमधरी से कहें ।

'दोषाकरमुखि, कि मामुपालभसे । प्रायः प्राणिनामीश, शम्भुरेव शुभाशुभं कर्मालोक्य तुलाधर' इव तुलितं फलमुपकल्पयति ॥

अर्पित ॥ दोषागमाकरो मुखं यस्यास्मत्सबोधनम् । पक्षे दोषाकरग्रन्थः ॥

निन्दा पक्ष—हे दोषाकरमुखि ! (दोष भरे मुँह वाली) मुझे क्यों दोष देती हो ?

प्रशंसा पक्ष—हे दोषाकरमुखि ! (चन्द्रमुखी) मुझे क्यों उलाहना देती हो ? प्राय सभी प्राणिमो के स्वामी शंकर भगवान् ही लोगों के शुभ अशुभ कर्मों का विचार कर तीर्त्तन बाजों की तरह ठीक ठीक फल देने हैं ।

तथाहि ।

यथावत्तादृशं येन कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

तत्तावत्तादृशं तस्य फलमीशः प्रयच्छति ॥ १७ ॥

जो जब तक तथा वैसा शुभ अशुभ काम जिन लोगो ने किया है वहीं उसने समय तक, तथा वैसा ही उसका फल ईश्वर देते हैं ॥ १७ ॥

अथवा ।

मत्तमातङ्गगामिनि, यस्यास्तवाप्रमाणालोचनधो सा त्वं बलि
सथयाचलन्ता कस्य नाधिक्षप जनयास ॥

मत्तति ॥ मत्त शीघ्रो मातङ्ग शबरम्नद्वहच्छसि चेष्टमेऽवश्यम् । त्वं ह्यनुचित-
चेष्ट त्वमपि तथा शीघ्रा । उल्लेख्यमिदमस्वनुचितत्वात्-त आश्रयः । पक्षे
मातङ्गो हस्ती । यस्या भवत्या आलोचनश्रीध्वेकसपदप्रमाणा प्रत्यक्षादिप्रमाणापेता
सा त्वं बलिनां बलघतो राज्ञः सथयऽचलप्रावृष्ट-त्वा कस्य पूज्यस्यापूज्यस्य वा
अधिक्षेप तिरस्कार न करोपि । सर्वस्यापि करोष्येव । पक्षे लोचनश्रिय प्रसूत्यादि-
प्रमाणातिरिक्तम् । बलिन्दरत्ना । अवलम्बन मध्यम् । पृथ्विषा सा त्वं शुभ
लक्षणा कस्य अधिक्षेप मन पीडाया अपनोद् न करोपि ॥

मत्तमातङ्गगामिनि (मत्तवाले किरात की तरह चलने वाली) तुम्हारी
आलोचन—श्री (विचार शक्ति) प्रमाणहीन है । (तुम प्रत्यक्ष आदि प्रमाणा
को नहीं मानती ।)

तुम बलि सथय (बलवान् राजा का आश्रय) प्राप्त कर किसका अधिक्षेप
(अपमान) नहीं करती ?

प्र प मत्तगजगामिनी । अप्रमाण (बड़ी) आसो की शोभा और बलि
(त्रिवलि) श्रुत अवलम्बन (कमर) से सपन तुम किसकी आधि (ध्यया)
का क्षेप (नाश) नहीं करती ?

तद्वलमनेनालापालसत्प्रपञ्चेन । गतो भूयिष्ठो दिवस । समासश्रो
ऽस्माकमाद्विकसमय । सीदत्येषा ब्रह्मपरिपद् । गगनमण्डलमध्यमा
रोहति भगवानशेषकल्याणचिन्तामणिस्तरणि । अरधिन्द्रावृणवदने
न नक्तं समयमनुपालयन्त्यमी मूनय । अनुमन्यस्य । यामो धयम् ॥

वदिति ॥ तस्माद् । अल पूर्वाणामनेन । आलापे समापे आलस्यामध्यस्य सतो
मध्यस्य च प्रपञ्चेन विस्तारेण । प्रकृत प्रक्रियत इति भावः । उक्तयो हि सप्रतिपक्षा
भवन्तीत्यालप्रतिपक्षे मतोऽपि प्रतिपक्षः । तथाहि—'सत सच्चरितोदयव्यतिनि
प्रादुर्भवयन्त्रणा सर्वश्रेष्ठ जनापवाद्चकिता जीवन्ति ह्यसदा । अश्रुप-नमति
कृतेन न सता नैवासना व्याकुलो युष्मासुखविवक्षु बहदयो धन्यो जन प्राकृतः' ।
अथवा आलापरस्य आनेनावस्तुरूपेण सन् न परमार्थेन सन् योऽमी प्रपञ्चस्तेनाल
निरर्थकत्वात् । यदुक्तम्—'यद्वार्थक्रियाकारि नदेव परमार्थसन्' । दारुणं च यशो
भाजनपाणिनहिसंस्थादिकस्य मुनीनां प्रतिपादनादौद्र चक्षुष्ययास्तस्या
सबोधनम् । न अरवि नक्त समयम् । अपितु सरवि सध्यासमय मुनयोऽप्यनुपाल

यन्ति । नष्टमित्यनेन सध्या लक्ष्यते । वयमत्र मुनयस्मन्तोऽस्माकं सध्यावसर इत्यभिप्रायः । मुनौ अरविन्दवदरुणं वदनं यस्यास्तस्याः संबोधनम् । नते मुनयः सध्याकालमनु पञ्चापात्यन्ति । अथर्वविधेयवात्तत्कालमेवैवार्थः । तस्मादनु-जानीहि यामो वयम् ॥

इस आलाप (चर्चा) के आल (अन्य) तथा सन् (भव्य) प्रपञ्च स क्या लाभ ?

दिन का बड़ा भाग बीत गया । हमारे सध्यानुष्ठान का समय समीप है । यह ब्राह्मण की गोठी (बैठे बैठे) बुझी हो रही है । समस्त सध्याप को देने वाले भगवान् मूर्ध आकाश के मध्यभाग में आ रहे हैं ।

हे दादावदने ! [पाठीन, हिसक, धीवर, पुष्पवन् कान्ताराग इत्यादि पदों से मुझे तूने संबोधित किया है इसलिए तुम दादावदना हो ।]

अरविन्द (मूर्धहीन) सध्या काल की सध्या का अनुष्ठान ये मुनियोग नहीं करते । [केवल सध्याकालीन सध्या ही नहीं करते, मध्याह्नकालीन सध्या भी करन हैं ।] जाना हो । हमने जान है ।

इत्यभिहित्वा सा प्रियंगुमञ्जरी 'महर्षे, मर्पणीयोऽयमेकस्त्यक्तकुल-वधूयमौ नर्मापराधः । स्वीक्रियन्नामेतानि विविधान्युल्लसन्मयूखमञ्जरी-रचितेन्द्रचापचक्राण्यामरणानि । गृह्यतामिदमिन्दुघुतिधवलमनल-शौचं चानांशुकपट्टपरिधानयुगलमियं च कुत्तुममालिका' इत्यभिधाया-स्यान्यदप्यतिथिसत्कारोचतमुपदोक्ष्य प्रसादनाय प्रणाममकरोत् ॥

इतीति ॥ इत्युक्त्वा सा राज्ञा महर्षे इत्याद्यभिधायानिध्वसत्क्रियायोगवस्तुपादाय हर्षयितुं प्रणतिं चक्रे ॥

ऐसा कही जाने पर प्रियंगुमञ्जरी, "महर्षे ! कुलायता ॥ मार्ग को छोड़ कर जो यह एक मैने नम्रतापूर्ण अपराध किया उसे क्षमा करेंगे । इन अशक्तों को स्वीकार करें जिनमें छिटकती हुई किरण मगरियों से इन्द्रधनुष जैसी रत्नाव-बन गई हैं । अग्नि की तरह पवित्र तथा वदनकान्ति की तरह धवल एक जोश यह शिखरवन्न तथा पुष्पमाला ग्रहण करें ।"

इस तरह कह कर और भी अनिधि—सत्कार ॥ उपयुक्त चीजा को लेकर महर्षि को प्रसन्न करने के लिए प्रणाम की ।

मुनिन्नु 'गौरवमुखि, वृत्तमुक्तोऽयं हारः, दोपालयमङ्गदम्, जयस्यापदाश्रयं कार्त्तुर्दाम, सदापदाविष्टानं नूपुरम्, अलङ्कारो ममद्वि-धानानेय राजते नास्माकम् । इयं च परिमलवाहिनी माला निवद्ध-मधुकरालापार्चनं वासश्च तवैवोचितम्' इत्यनेकधा दिलशालापलीलया-

तिवाह्य फाश्चित्कालकला करकलितकमण्डलुर्मण्डलेश्वरमापृच्छतां
च प्रियगुमञ्जरीं जरठतमालनीलमम्बरतलमुदपतत् ॥

मुनिरिवति ॥ वृत्तमुक्तो वनुंलमौक्तिक शीलरहितश्च । दोषाशब्दो भुजपर्याय इति
दोषा बाहु आलयो यस्य । दोषा अवधानि च । यद्विध — 'दोषा राज्ञी भुजेऽपि
च' । जघने भव जघ य गर्हित च । तादृक पदमाश्रयो यस्य । 'सदा शश्वत् पदे
पादावधिष्ठानमाश्रया यस्य । पक्षे सप्तमप्यापदामासमन्तादधिष्ठान नगरम् ।
भापदामाधेय स्यान्नमिति वाक्ये तु सुयामादित्वात्परवम् । इति प्रकृतेऽलकारस्य
वर्जनं गौणवृत्त्या दूषणम् । तस्मादेव दोषयुक्तोऽलकारो युष्मादशीनामेव भाति,
नास्माक यतीनाम् । यतो हि चारित्र्यमण्डना नर्मणस्तु अलमत्यर्थं कारो राजप्राज्ञ
भागस्त्वादशीनां राजपत्नीनां सगच्छते, नास्माक वनवृत्तीनाम् । लोकस्यापकुर्म
एव वयं, न कुतोऽपि किञ्चिन्प्रतिगृह्योम इति भावः । इयं च सुगन्धि सन्मृगलापा
स्त्रक चीनमशुक च तत्रैव युतः, नास्माकम्, यस्मात् परितो मल वहति । तथा
निबद्धमधुना समवेतसुरया कराळा एवभूनासी स्त्रक् । अवाचीन निरुद्ध च वासः ।
इति समय कश्चिच्छ्लेषोक्तिभिर्निर्गम्य गगनमुदगात् ॥

प्र प — गौरवमुल्लि । (प्रभावमुल्लि ।) यह हार वृत्त मुक्त (गोल
मणिपों) का बना है । इस अगद (भुजभूषण) के दोष (भुजाये) ही आलय
है । इस करधनी का आश्रय जघनपद (मध्य) भाग है । ये तूफुर सदा पद
में ही रहते हैं इसलिए ये अलंकार आपही जैसे लोगों में अच्छे लगने हैं हम
लोगों में नहीं । भ्रमर गुञ्जार से मुखरित यह परागपूर्ण माला तथा चीनाशुक
वस्त्र आपही के लिए उचित है ।

नि प — गौरवमुल्लि । यह हार (व्यवहार) मुक्त वृत्त (शील रहित) हैं
ब्रह्मचारी मुनि के लिए चमकीले वस्त्र अलंकार तथा सुगन्धित माला आदि
देना मर्यादा के प्रतिशूल है । मनु ने ब्रह्मचारियों के लिए इन सभी पदार्थों का
निषेध किया है । यह अगद (बाहुभूषण) दोषों का हार है । यह करधनी
निन्दा का स्थान है । यह तूफुर सज्जनों के लिए आपत्ति और आधियों (रोगों)
का स्थान है । परि (आरो तरफ से) मलवाहिनी (रजपूर्ण) तथा मुधु (सुरा
की तरह मादक गंध वाली) कराल (भयकर) माला, तथा यह अपाचीन
(अधम वस्त्र) मैं लेकर क्या करूंगा । इस तरह विलुप्त उक्तियों में बात करते
हुए कुछ समय बिठाकर हाथ में कमण्डलु उठाकर राजा तथा प्रियगुमञ्जरी से
कहकर पुराने तमाल पत्रों की तरह नीले आकाश में उड़ गये ॥

वियति विशदविद्युल्लोललोलायमाने
स्फुरदुदरपरिवेपाकारकान्तौ मुनीन्द्रे ।

यद्य गतवति तस्मिन्यस्मयोत्तानिताक्ष

सितिपतिरवतम्ये स्थाणुसंस्थां दधान ॥ १८ ॥

विजयीति ॥ विष्मयास्त्रिभलाकृतितृप रघाणुनोपमितः ॥ १८ ॥

आकाश में तीव्र दीप्तिपूर्ण विजयी की तरह गतिवाले, चमकते हुए विशाल गोगाकार अपने तेज का परिवेष बनाने हुए मुनि के चले जाने पर आश्चर्य के मारे अपनी आँखों को ऊपर रखते हुए राजा सन्मन की तरह वहीं खड़े रह गये ।

[तेज अपने पिण्ड के चारों तरफ परिवेष बनाता है । मुनि का भी वैसा ही परिवेष था] ॥ १८ ॥

स्थित्वा च तत्कथावन्ध्या काञ्चित्कालकलाः कलापिकुलोत्कण्ठा-
कारिणि रणति नवजलधररघरमणीये मध्याह्नगम्मारमेरीसखे शङ्खचुग-
लके, विशति विसकाण्डरुचलनमपहाय तीव्रतरपनतापताम्यसनुनि
नवनलिनीछदच्छायामण्डलमुपवनदीर्घिकावतसे हंसकुले कुमुदकुवल्-
याम्भोजपत्रपुञ्जपत्ररान्तरमनुसरति पट्टितोष्णमधुनि, मुकुलितपद्म
पुटे पट्चरणचक्रधाले चटुलाग्रिमरुशिखरोल्लिखितधरणिमण्डलेषु
खण्डितस्वर्द्धूर्वातालनीलधुरधुरायमाणघोणाक्षेपेषु विमुच्यमानेषु पि-
पासातुरतुरंगेषु, धर्मविघूर्णितेषु ससृत्कारकरविमुकसीकरासारवर्षणा-
ट्टिताङ्गेषु मञ्ज्वाय सज्जितेषु सेवागतराजकुञ्जरेषु, क्रीडागिरिसरि-
तनवतार्यमाणेषु लीलामृगमयिनुनेषु, पयोभिः पूर्यमाणानु पञ्जरपाक्ष-
पयःपातपात्रांषु उद्यानारवद्वृत्तीं टीकमानासु कोयष्टिमयूतमण्डलीषु,
क्रीडामरः सरत्सु संगीतधमस्विन्नस्त्रिध्वकिनरेषु, कूपकूलकुलाय-
कोणकूणितेष्वतपाठकुलकुलविङ्केषु, भवनवनवापीपुलिनपालि-
पांसुपटलमुत्तममपहाय शीतलशेखलावलिं धरति तरलितनके, क्रींका-
रयति क्रीञ्जवकोरचक्रवाकचक्रे, क्रीडाप्ररोपितप्राङ्गणप्रान्ततदशिखर-
मध्ये मध्याह्नवलिपिण्डाय पिण्डिते क्रींकारयति काकवयसां कर्णकटु
कुटुम्बके, यकवलयधलक्षान्क्षिपति दिक्षु दीपान्दीप्तिदण्डाञ्चण्ड-
रोचिणि, विसर्ज्य परिजनं राजा मञ्जनमवनायोदचलत् ॥

स्थित्वा चेत् ॥ राजापि निबलनेत्रस्तथा तमवलोक्य कंचिच्च समर्थं तत्कथामि-
रेवानिवाद्य मन्त्राद्वृत्तानसन्ने प्रसस्ये ॥

उन्हीं की चर्चा में कुछ साग बिताकर मयूरवर्ग में उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाले, नवीन मेघ की तरह रमणीय गर्जन करने वाले दोपहर को विशाल नगाड़े के साथ दो शङ्खों के बजने पर कमलनाल का खाना छोड़कर सूर्य की प्रखर किरणों से शरीर के अग्ने लयने पर उपवन सरोवर के भूषण राजहंस कमलिनी पत्रों की छाया में घुसने लगे । (पुर्यों के) उन्न रस को छोड़ कर अपने पंखों

को सकुचित कर भ्रमर समूह कुमुद, कुवलय तथा अम्भोज (श्वेतकमल) के पत्र समूह के भीतर जाने लगे । वे प्यास से व्याकुल घोड़े छोड़े जा रहे थे । चञ्चल खुरो के अग्रभाग से पृथ्वीमण्डल को खींच रहे थे । छोटे छोटे हरे दूब क टुकड़े नाक में अटक गये थे । अतः धुर धुर आवाज कर रहे थे । सेवा के लिए आये हुए राजकुञ्जर जो धूप से पीड़ित होकर सी सी करते हुए अपने गुण्डों से निकले हुए जलरुणों की वर्षा से आगम को भिगो रहे थे, स्नान के लिए सजाये जा रहे थे । क्रीडा सैल की नदी में लीला मृगों के जोड़े उतारे जा रहे थे । पिण्डों के पक्षियों के पानी पीने वाले पात्र भरे जा रहे थे । उपवन के अरधट्ट (रेहट) तटपर सारसों और मयूरो का समूह (प्यास बुझाने) आ रहा था । गीत श्रम के कारण स्वेद (पसीना) युक्त तथा दुःखी किन्नर गण क्रीडा सरोवर की ओर बह रहा था । कूप तट में बने हुए खोखलो के कोने में प्रविष्ट धूप चिह्न से कलविद्ध (चटक पक्षी) व्याकुल हो रहे थे । गृहस्थी अरण्य जलाशय की तट पत्तियों की गरम धूलि को छोड़कर चञ्चल नक्र (पड़ियाल) शीतल शैवाल पत्ति तल में आ रहे थे । क्रीडक, चक्रवाक तथा चकौर बूझ रहे थे । क्रीडा के लिए आगम में रोये गये पेड़ की चोटी पर मध्याह्न बलि के पिण्ड प्राप्ति करने के लिए इकट्ठे हुए काक पक्षियों का कर्ण कटु कुटुम्ब के द्वार कर रहे थे । भगवान् बगुले के पक्ष की तरह श्वेत अत्यन्त सुतिप्त किरणदण्ड की विविध दिशाओं में (भगवान् सूर्य) फक रहे थे । ऐसे समय में अपने परिजनो (समीपवर्ती अनुचरो) को छोड़कर राजा स्नानागार की ओर चल दिये ।

गत्वा च पृथ्वीवलयमिव पयः पूर्णसमुद्रद्रोणीवम् केदारोदरमिव
सकलशालिस्थानम्, श्रोत्रियद्विजजनभयनमिव सकलधोतपट्टम्,
अतिरमणीयं मञ्जनभयनमवतारिनाभरणं स्नानपीठे निपसाद ॥

गत्वा चेति ॥ मञ्जनगृह गत्वा स्नानपीठे निषण्ण गृह विशिष्यते । पयसा पूर्णं समुद्रा मुद्राङ्किता द्रोणी जलपात्री कुण्डिका यत्र । स्नानीयजलादिषु मुद्रा दायत इति राजधर्मः । तथा कलशा कुम्भास्तेषामालि पङ्क्तिस्तथा सह युक्तानि स्थानानि प्रदत्ता यत्र । तथा कलधोतस्थ हम्म पट्ट आसन्न तन सह । अन्वयः पयः पूर्णं समुद्रो द्रोणी च यत्र । द्राणी दशविशेषः । यद्विरच — 'द्रोणी स्यान्नोवृद्धन्तरे' । केदारोदर तु समप्रशालिस्थानम् । तथा सकला सर्वे धोता धोता चालिता पट्टा द्वाप्तानि यत्र ॥

जल से पूर्ण तथा मुद्रा (द्रव्य) सहित द्रोणी (जलकुण्ड) ॥ युक्त वह (भवन) पृथ्वीवलय (समुद्र) की तरह लग रहा था ।

केदार (श्वेत) का मध्य भाग जैसे सकल शालि स्थान (सम्पूर्ण धान का स्थान होता) है वैसे (वह भवन भी) सकल शालि स्थान (कलशों की पत्ति

सहित स्थान वाला) है । वैदिक ब्राह्मण का घर जैसे सकल धौतपट्ट (सभी धुले हुए वस्त्रों से युक्त) होता है वैसे वह भी सकलधौतपट्ट (कलधौत (सोने) का पट्ट (आसन) से युक्त है । ऐसे भवन (स्नानागार) में बाहर अपने अङ्गद्वार को दत्तार कर स्नान-पीठ पर बैठे ।

[पृथ्वीवल्लय का दो तरह से समाप्त करेगे । पृथ्व्याः वल्लयः समुद्रः । पृथ्वी दीर्घ में है और समुद्र उसके चारों ओर है । इसलिए यह वह उसका वल्ल हुआ । दूसरा—पृथ्वीवल्लयस्य मुद्रया सहितस्य समुद्रस्य द्रोणीकस्य भवनस्य । यद्वा समासभेदे मे वस्तुसाम्य और शब्दसाम्य दोनों है ।]

वासश्चस्थितश्चास्याधसरपाठकः पपाठ—

इदंके पाठ में सप्त हुआ अवसरपर श्रुति पाठ करने वाला पाठक ने पढ़ा—

धररजनीकरकान्ते चित्राभरणे निशानमःसदृशे ।

नच नृप मञ्जनभवने सचिनानाभाति परमश्रीः ॥ १६ ॥

वरेति ॥ नृप इति सम्बोधने । अतुना नद्विसेयमानि । वर श्रेष्ठ । रजनीकरस्य चन्द्रस्येव कान्तिरस्येति, चन्द्रयुगे । रगे युद्धे चित्रो व्याघ्रस्तद्वत्त्वात् अस्मेति नयोक्ते । तथा निशानेनैकस्त्रिभिर्वज्रसूतीति कृत्वा सुमदस्य अथवा निशानं निर्मलं वज्रसि शोभते । तथा सरस ॥ कामो यस्येति कृत्वा कर्त्तृप्रतिम । मञ्जनमवने सचिनाना सौहोवा उद्दृष्टधीर्द्योतिते । अथ च मञ्जनभवने सचिता रविर्नामानि । पर केवलम् । मञ्जीर्निर्ग्रम एवेत्युक्तिलेखः । यतो निशायां यद्यमस्त्यसरो । प्रद्यो-
तनाश्रुयते हेतुरयम् । तथा चित्राग्यामरग्यानि यत्र । नभःपथे चित्रा नक्षत्रम् । तथा वरा श्रेष्ठा रजनी हरिद्रा तां कुर्वन्ति मन्त्रवर्त्तनीनि कृत्वा रजनीधरा तन्धका-
रकारैः कान्ते । नभस्तु वरो वीक्षितमान् सूर्यानावाद्यो रजनीधरः शशी तेन काग्नम् ॥ १९ ॥

प्र पञ्च—पूर्णचन्द्र जैसी कान्ति वाले, व्याघ्ररत्न, तीक्ष्ण तेजवाले, कामदेव के प्रतिरूप, इस स्नानागार में आपकी तेजोन्मयी, पूर्ण विस्तार से द्योतित हो रही है ॥ १९ ॥

द्वि पञ्च—उत्कृष्ट कोटि की रजनी (हल्दी लेपन द्रव्य) बनाने वाले लोते में मनोहर, विचित्र अङ्गद्वारों से युक्त, रात्रिकालीन आकाश की तरह (कुछ नीला, कुछ विभिन्न अङ्गद्वारों के कारण तारों जैसा) वि (मधुर बोलने पक्षियों) के विस्तार में भरे हुए भवन में उत्तम कोटि की लक्ष्मी सुशोभित हो रही है ॥ १९ ॥

तृ. पञ्च—चित्रा और भरणी नक्षत्र और वर रजनीकर (चन्द्र) कान्त में युक्त रात्रिकालीन आकाश में जैसे तीक्ष्ण किरणों वाले सूर्य नहीं चमकते वैसे आपके इस मञ्जन भवन में किसी प्रकार की तीक्ष्णता नहीं है ॥ १९ ॥

[प्रथम पक्ष—वररजनीकरकाने ! (पूर्ण चन्द्र जैसी कान्ति वाले) समस्त कान्ति शब्द के सम्बोधन का रूप 'कान्ते' है । रणे चित्राभ (लड़ाई में व्याघ्र सदृश) चित्र शब्द व्याघ्रवाचक है । अर्थात् चित्र (व्याघ्र) सदृश आभा है जिसकी । यह भी सम्बोधन का रूप है । निशानभ ! (तीक्ष्ण तेजवाले) सदृशे (सदृश है) इ (काम) जिनके वह । अर्थात् काम का प्रतिरूप सदृशे भी सम्बोधन का ही रूप है । सदृश और इ म गुण सन्धि हुई है । सविताना (विस्तारपूर्ण) ।

द्वितीय पक्ष—वररजनीकरकाने—(सुन्दर हल्दी का गन्धद्रव्य बनाने वाले लोगो से मनोहर), चित्राभरणे (विभिन्न अलङ्कारो से मण्डित) निशानभ सदृशे मञ्जनभवने (रात्रिकालीन आकाशसदृश स्नानागार में) सविताना परमधी (विस्तारपूर्वक लक्ष्मी) भाति (चमकती है) । (रजनी शब्द हल्दी का भी वाचक है ।)

तृतीय पक्ष—वररजनीकरकाने (पूण चन्द्रमा द्वारा मनोहर) चित्रा भरणे (चित्रा नक्षत्र रूप आभरण वाले) रात्रिकालीन आकाश में परमधी सविताना (पूण तेज सूर्य) न आभाति (चमकने नहीं है ।) निशानभ शब्द को सूर्य का विशेषण बनाया जा सकता है । निशान (तीक्ष्ण) है भा (किरण) जिनकी अर्थात् तीक्ष्ण किरणो वाले ॥ १९ ॥

अनन्तरमुत्तुङ्गकनककुम्भशोभास्पधिकुक्षमण्डलार्धयज्ञोत्तरायाशुक परिकरा सस्मरस्मितविकारकारिण्य दक्षितसीत्काराङ्गमलनविन्यासा, काञ्चित्समुद्रवेला इव समकरोत्क्षितामलका काञ्चित्तरुण तरुमञ्जरीराजय इव भृङ्गारभरमुग्रदेहा, काञ्चिदन्यायकारिण्य इव सभाजनाद्भूलननरा, काञ्चिन्मलयाचलभूमय इयोत्कृष्टगन्धधारितैला काञ्चिद्देवलाकयसतय इव चामरधारिण्य काञ्चित्पुरवरपुरधिका इव सविभ्रमकङ्कतिकोपान्तेनाकेशप्रसादनमाचरन्त्य काञ्चिद्विग्नधाटव्य इव दर्शितविविधपादपालिका, काञ्चिद्राघवसेना इव कृतप्रहस्तमलना, काञ्चिद्वधाकरणवृत्तय इव बाहुलता सबाह्वन्य मञ्जननियुक्ता कामिन्यो राजान स्नपयामासु ॥

अनन्तरमिति परिकरमाश्रयेति त्रयं पठावष्टि वृत्वा कामि यो राजानमस्नपयन् । समेनाविद्यमेण करेणोत्थिता वामलङ्कानि यामि । आमलकचूर्णं हि ध्यानी यम् । भृङ्गार कनकालुङ्गा । भाजनं पात्रम् । नरोद्भूतं चूणविशेष तेन सह करपाणिर्वाताम् । सभाजनोद्भूलनपाठे तुद्भूलनमुद्धर्तनम् । उत्कृष्टानि उदृष्टानि गन्धघारोणि तैलानि यामि । चामरं प्रकीर्णकम् । विविधो मममलनं तेन सह या कङ्कतिका केशमार्जनी सस्या उपान्तेनासमन्तात्केशानां विरलीकरणमाचरन्त्य । पालि

पर्यायावसरः । यद्वयः—‘पालिः कर्णलतायां स्थाप्यदेतो पक्षिचिह्नयोः । इष्टरमथु-
 खियामथौ पर्यायावसरे क्रमे’ । ततश्च दर्शिता विविधा पादपालिः पादमर्दनावसरो
 याभिः । कृन् प्रक्षेपेण हस्तमन्त्रं यामिः । बहुलनामिनि बाहुल्येति । पञ्चे मकरैः
 सह उन्विष्टममलं कं जलं यामि’ । मृद्वागामार आगमनं तस्माद्यो मर’ । तथा
 अवाच्यवचनैः समाजनस्योद्भूतन मातिन्य कुर्वन्ति । उद्भूतनपाठे तु समाजना-
 दुद्भूतनमपसरणम् । उद्भूतगन्धधारिता एता ओषधिविरोधो यामिः । च पूषकः ।
 अमरा देवा । सविभ्रमं सविलासं कं सुखं यत्र । कतिकोपान्ते किमाकोपविगमे
 नाकेशस्य दिवस्यते प्रसादनं कुर्वन्ति । कतीनि पुरप्रिकाविशेषग वा । दर्शिता
 विविधा पादपानामालयो यामिः । प्रहस्तो रावणप्रतिहारस्तस्य मलनमभिभव ।
 बाहुल्यं बाहुल्यम् ॥

इसके बाद कामिनियों आ स्वर्णरत्न की शोभा से भी स्पर्धा रखने वाले
 लंबे स्तनमण्डल के आधे अंग को उत्तरीय (चादर) से बांधते हुए कटि तक
 को बसी हुई हैं । मुस्कुराहट से कामविकार उत्पन्न कर देने वाली हैं । अङ्गो
 को मलने समय सीत्कार उत्पन्न करा देती हैं । जैसे समुद्रतट समकरोत्तिस्त्या-
 मन्त्र (पाहू द्वारा ऊपर उठाते हुए निर्मल (क) जल से युक्त होता) है
 वैसे वे (कामिनियाँ) भी समकरोत्तिस्त्यामन्त्र (हाथ को बराबर कर आमलकी
 पूर्ण शरीर पर छिड़क रही) हैं । जैसे पूर्ण विकसित मञ्जरी पक्षि
 झुझार—मुग्न + देह (झुझो के आर (आगमन) के भार से नवी होती
 है, वैसे ही वे झुझार + मुग्न देह (भरे हुए स्वर्ण जलपात्र के भार से टेढ़ी
 देहवाली) हो गयी है । अन्यान्मकारिणी (अनुचित कार्य करने वाली)
 स्त्री जैसे सभाजनोद्भूतनकरी (सभ्य आदमी को भी अपशब्दों या दुर्मयहारों से
 मलिन कर देती है) है वैसे कोई सभाजनोद्भूतनकरी (भाजन (पात्र तथा
 उद्भूतन (वर्ण) युक्त हाथ वाली) है । मलय पर्वत की भूमि जैसे उच्छृष्ट
 गन्धधारितैला (उत्तम कोटि की गन्धवासी एला (ओषधि विरोध) को धारण
 करती) है, वैसे उनन भी कोई उच्छृष्ट गन्धधारितैला (उत्तम कोटि के गन्ध तैल
 को ली है) देवलोक की नगरियाँ जैसे आमरधारिणी (अमरों (देवताओं)
 को धारण करती) है वैसे वे आमरधारिणी (चर्वर ली हुई) हैं । इन्द्राङ्गनाएँ
 जैसे सविभ्रमकटिकोपान्तेनाकेशप्रसाधन (सविभ्रमक (विनासपूर्वक
 सुख उत्पन्न करती हुई) कतिकोपान्त (कुछ क्रोध के समाप्त हो जाने पर
 नाकेश (इन्द्र) को मानती रहती) हैं वैसे वे भी विनासपूर्वक कधी से केश का
 प्रसाधन कर रही हैं । विग्न्याटवी जैसे दण्डित विविध + पादपालिक (बहुत
 वृक्ष पत्तियों को प्रशण्डित करता) है वैसे वे भी बहुत रंग की पाद-पालन-विधियाँ
 दिखाती हैं । राघव-सेना ने जैसे प्रहस्त (प्रहस्त नाम के रावणदूत) का
 मर्दन किया वैसे वे भी प्रहस्त (जोरदार हाथों) से मर्दन कर रही हैं ।

व्याकरण नियम जैसे बहुलता से प्रवृत्त होते हैं वैसे वे भी बाहुलता का संवाहन (मर्दन) कर रही है। इस तरह स्नान कराने के लिए नियुक्त कामिनीयों ने राजा को स्नान कराया।

किं बहुना—

तास्तास्तं स्नपयामासुरङ्गनाः कुम्भवारिणा ।

एत्य या स्युः प्रसन्नेन द्युलोकात्कुम्भवारिणः ॥ २० ॥

ना इति ॥ अथस्य समारस्यारि शिवस्तेन । प्रसन्नेन हेतुना । द्युलोकात्स्वर्ग-
ल्लोकात् । कुं वृषीम् । एत्यागत्य । या स्युर्भवेयुः । तास्नाः स्त्रियः । त कुम्भवारिणा
कलशोद्भकेन स्नपितवर्य ॥ २० ॥

उस राजा को कलश जल से असामान्य सौन्दर्य की अद्भुताएँ स्नान
करायीं जो भवारि (ससार-बधन के सत्रु भगवान् शंकर) की प्रसन्नता के
कारण द्युलोक (स्वर्गलोक) से आयी हुई थीं ॥ २० ॥

अथ विमलदुकूलप्रान्तनिर्नीरिताङ्गः

परिहितसितयासाः स्थल्पमाङ्गव्यभूय ।

शुचिरुचितयिधिः स स्वयं स्वस्थचितः

कुशकुसुमकरः सन्कर्म धर्म्यं धकार ॥ २१ ॥

अथेति ॥ निर्नीरित निर्जलीकृतमुद्गमितमित्यर्थः ॥ २१ ॥

इसके बाद एक निर्मल वस्त्र से शरीर के जल को बौछकर, सफेद वस्त्र
तथा कुछ माङ्गलिक अलङ्कारों को पहन कर उचित विधानों का जानकार एवं
पवित्र, राजा ने स्वस्थचित होकर स्वयं हाथ में पूल और कुश लेकर धार्मिक
कृत्य किया ॥ २१ ॥

अनन्तरमावर्तितानेकस्वर्णविलुभो वल्लुभो जनस्य भोजनस्य समये
स मयेन निर्मितया तथा स्वधर्माणं धर्मसुतसभया सभयागतजनजनि-
तारम्भोऽरं भोजनस्थानवेदीं जनस्थानवेदीं गतवान् ॥

अनन्तरमिति ॥ आवर्तिता येऽनेके स्वर्णस्य वल्लुभस्तौक्ष्यमानविशेषास्तद्भुजा-
यस्य । तथा वल्लुभो देयिनो लोकस्य भोजनस्य काले स राजा मयेन दैवप्रवर्धकिना
कृतया तथा प्रसीतया शुद्धिष्ठिरस्य समया सधर्माणं महर्जो भोजनस्थानवेदीम् ।
सभयानामागतानां शरणं प्रपद्यानां जनानां जनितरक्षोपक्रमः । अरमरयधं जनानां
स्थानवेदी लोकस्योचितामनञ्ज प्राप्तवान् ॥

आवर्तित (कई बार व्यवहार में आये हुए) जमकीलो स्वर्णमापो
की तरह शान्ति वाले, लोगों के प्रिय, भयभीत लोगों के शरण में जाने पर
उमकी रक्षा के लिए सदा प्रयत्नशील, जनस्थानवेदी (मोक्षतानुषार लोगों को
स्थान देने वाली विधि का जानकार या जनस्थान (अपने राज्य) का जानकार)

वह राजा मम नामक दैत्य द्वारा निम्न युधिष्ठिर सभा की तरह (भौतिक एवं भ्रान्ति उत्पन्न कर देने वाली) भोजन-स्थान की बेदी पर गया ॥

नस्यां च बहुविस्तीर्णस्वर्णमोजनपात्रपत्रशङ्खशुक्तिसनायायामु-
पविष्टस्यास्य क्रमेण परिकरमावध्य गाढमाढौकन्त स्वस्य स्वस्या-
नुहारिणोऽन्नविशेषानादाय सूपकाराः सूपकाराङ्गनाथ ॥

मन्त्रां चेत ॥ सूपकारा औदनिका मुष्टपकारकाश्च ॥

बहुत से बिसरे हुए स्वर्णपात्रों के पत्रों एवं शङ्ख शुक्तियों से सनापित उस (भोजन बेदी) पर राजा के बैठने पर कमर को बाँधे हुए अपने-अपने सुस्वादु अन्नो को लेकर सूपकार (पाचक) तथा उनकी पत्नियाँ पत्तिबद्ध होकर ला रहीं थीं ॥

तथाहि—

मक्तास्तस्य भक्तम्, मुद्रा मुद्रान्, मोदका मोदकान्, अशोक-
वर्तिन्योऽशोकवर्ती, समांसा मांसम्, नानाशाकाः शाकानि, व्यञ्जना
व्यञ्जनम्, अपरास्तु काश्चिद्भीरा अपि क्षीरम्, अघारिका अपि
घारिकाः परिवेषयामासुः ॥

मक्ता इति ॥ मक्ता- प्रसादका । मुद्रा गच्छन्तीति मुद्रा । मोदपन्तीति मोद-
काः । न शोके वर्ततेऽभीष्टमगच्छेत्कर्त्तुं नीर्नायको येषां यामां च । समीप्सो या-
मान् नाना अनेकप्रकारा आशा येषां यासां च । 'शेषाद्रिमाणा' इति कपृ । विशि-
ष्टाङ्गना । अशीणि ईरयन्ति विभ्रमाकल्पयन्ति । अवस्य पापस्य जरिकाः शत्रु-
रूपाः । मक्तभित्तादि कर्मपदानि मद्यार्थानि । परिवेषयामासु भोजनस्य आभूते
वेषयम् ॥

भक्त (प्रसन्न कर देने वाले पाचक) भात, मुद्ग (प्रसन्न मुख मुद्रा वाले)
मुद्ग (मूँग की बनी मिठाई), मोदक (आनन्दमग्न कर देने वाले पाचक
लोग), मोदक (लड्डू) अशोकवर्तिनी (शोकहीन नायक वाली) नायिकाये
शोकवर्ती (भोग्य विरोध), नानाशाक (विभिन्न आशामो वाली क्षिर्यां) शाक,
विशिष्ट रंग का व्यञ्जन लगायी हुई क्षिर्यां व्यञ्जन, अक्षीर (बाँसों के विलास
मुक्त क्षिर्यां) दूध, अघारिका (पार्श्वों के शत्रु रूप दिव्य धर्मो वाली) पाचिकायें
घारिका (भोग्य विरोध) परोक्षों ।

सोऽप्यर्घाशो भूभुजां भुञ्जानो भोज्यम्, लिहँस्तेहम्, आम्वा-
दयन्न्वादु, चूपयन्चूप्याणि, पिबन्पेदानि, आहारमकरोत् ॥

इन्हीं महीपालों का स्वामी वह (राजा) भी भोग्य पदार्थों को
खाता हुआ, चाटने भोग्य पदार्थों को चाटता हुआ, सुस्वादु पदार्थों को

आस्वादित करता हुआ चूमने के पदार्थों को चूमता हुआ, पेय पदार्थों को पीता हुआ भोजन किया ॥

अनन्तरमाचम्य चन्दनेनोद्वर्तितपाणिपल्लवः शीघ्रमाघ्राय धूप-
धूमम्, आस्ये निक्षिप्य कस्त्रिकाकुङ्कुमकर्पूरकर्बुराणि क्रमुकफल-
शकलानि, आदाय च चित्रस्तम्भगतर्णकर्णकम्पाणि शुक्तिशुक्लानि
ताम्बूलीदलानि, तस्मात्प्रदेशादपरमवकीर्णकुसुमहारि विस्तीर्णास्तीर्ण-
श्चर्णमयधैदूर्यपर्यन्तपर्यङ्काङ्काप्तैः सद्विनोदास्थायिकास्थानमगात् ॥

अनन्तरमिति ॥ अस्तस्य हि मृगशावस्य कर्णौ स्तरधौ भवतः । ताम्बूलीदला
न्यपि सादृशीति भावः ॥

इसके बाद आचमन कर चन्दन ॥ करपल्लव को मलकर शीघ्र ही धूप-
धूम को घुस कर, कस्तूरी, कुङ्कुम और कपूर से कर्बुरित (चित्रकाबर) किये
हुए कर्तैल को मूल में डालकर, डरे हुए मृग शिशु के काम की तरह मनोहर
तथा शुक्ति की तरह सफेद ताम्बूलदल (पान) लेकर उस स्थान से दूसरी
जगह बिखरे हुए फूलों के कारण मनोहर बिछे हुए विस्तर वाले स्वर्णमय,
वैदूर्य मणि से लक्षित, पलग वाले स्थान पर, जहाँ विनोद गोष्ठी होती
थी, गया ॥

तत्र च सकामकामिनीकमलकोमलकरपुटपीडयमानपादपल्लवो
नर्तयन्नाट्यपरिपाटीपट्टघटान्, भाययन्नमृतक्षुतः कथिषाच, वाद्यय-
न्धिरन्तनकथिकथाः, शृण्वन्धीणाप्रवीणकिंनरमिथुनगीतानि, आलोक-
यन्ल्लोचनोत्सवकराम्बिलासिनील्लास्यधिलासान्, वाद्ययन्मृदुवाद्य-
धिशेषान्, अधधारयन्प्रांशिकवाद्ययेणुनिकषणान्, कल्लगिरः पाटयन्पञ्जर-
शुकान्, कन्ताकुचकुम्भमण्डलावष्टम्भलीलयापराहस्यमतिवाहि-
सधान् ॥

वहाँ भी कामपूर्ण कामिनियों के कमल की तरह कोमल करयुगल से
उनके पक्षव सट्टय पैर दबाये जा रहे थे । नाट्यपद्धति में प्रवीण नटों को
नचा रहे थे, अमृत टपकने वाली कविवाणी पर विचार कर रहे थे, पुराने
कवियों की कथाएँ पढ़ रहे थे । वीणावादन में कुशल किन्नर युगल ने गति
मुन रहे थे, आँखों को आनन्द देने वाली विलासिनियों । वाराङ्गनाओं) के
नृत्य विलास देख रहे थे । मधुर वाजों को बजा रहे थे । बंसी के वेणुदण्ड से
निकले हुए मधुर अनुरणन पर विचार कर रहे थे । मधुर धोलने वाले
पिंजरे के शुकों को पशा रहे थे । इस तरह रमणियों के स्तनमण्डल की संश्लेष
लीला से दिन का अपराह्न भाग बिताये ॥

क्रमेण च चपकायमापविक्कचकमलमध्यनधुपानमत्त इव पुन-
चांदण्याशयामिभूतमासि मदादिव लोहियातमानं निषतति मुक्तांशु-
कंऽश्रुनाल्लिनि, वनान्तरस्तस्मिन्निधितशास्त्राशिक्षरेषु गलद्बहलकिञ्चल्क-
पुत्रपिञ्जरासु मञ्जरीष्विव विलम्बमानासु दिनकरदीधितिषु, विस्तार्ण-
शिन्नायकाशजयनायामुल्लसद्लोहिताघरपल्लवायाममृताचलवनराजि-
रेखायानुपरि पतिनमवलोक्य रागेणमहर्षनिमोर्षारोपमरादिव जाते
जपापुष्पगिन्धयदधि पश्चिमाशामुखे, मुखरयति नमो निजर्नाडनिल-
यनाकूनकृजितजरदण्डजव्रजे, व्रजनि मरः संख्याविधिविधित्तया
द्विजजन्मजननुतिनिकाये, कान्तागुरुसान्जनराग इव इयामलयति गगन-
लक्ष्मीममिस्तारिकायन्वाचन्धकारे, राक्षः संख्यावसरमावेदयन्किनर-
मिथुनमिदमगायत् ॥

अनेही ॥ अन्योऽपि मनुष्येन माधर्न । पुन पुनर्मुखाब्धया निष्प्रमः स्यात् ।
तथा बीबनया पाण्ड्य मधिर्वहो भूमौ पति । विस्तर्णगतिलावकाश एव जवनं
घृणी यस्या । तथा वल्लभः अघरा अघरियनाः प्रबाला यस्या । ईरयामस्ता-
चलाप्यराक्षी हरिहराश्रय रागिण रक्त धूमनि बाष्प्य रोषदिष्ट पश्चिमदिगानने
रक्ते जाने । अग्न्या अरि मुखमोहमुनायामनरकान्तायामनुरागिणनुरारि पतिनं
पतिमवलोकयेप्यावशाद्वर्त न्यात् ॥

कम से बच (प्याटे) रूप खिले हूर कमलों के बीष के मधु पी लेने के
कारण मत की तरह, मद के कारण त्याग होन हुए सूर्य के अपने अशु (किरणों)
को छोड़ देने पर, विभिन्न जङ्गल के वृक्षों की शाखाओं के अग्रभाग पर गिरती
हुई गाड़ी पराग राशि से पित्ररित (रक्तरीत मिश्रित रंग की) मन्त्री की
तरह सूर्यकिरणों के लटक जाने पर फैली हुई शिखावपी अवन वाली, उल्लसित
कंधारोठ हपी पल्लवों वाली दन्वन्वी की श्रेणी पर अरने प्रेमी सूर्य को गिरा
हुना देखकर मानो ईर्ष्या और क्रोध के कारण परिचय दिशा के जपापुष्प
राशि सङ्ग अरने मुन कर लेने पर, अपने धोखे में छिपने की उन्मत्ता से
बृद्ध पक्षियों के आकाश की मुनरित करना शुरू कर देने पर द्विजन्ता (द्वि-
हस्त्रिण, वैश्य) मुनिवर्ग के उन्मत्ता करने की इच्छा से सरोवर की ओर बच
देने पर, अनिस्तारिकाओं के बन्धु, अन्धकार क आकाश-उन्मत्ता को कालागुह
सङ्ग अजवन रंग में काला करने लगने पर राधा का यह उन्मत्तावन का
अवसर है मानो यह बजाता हुआ विन्नर-सुगत ने गाया ॥

‘भोगान्भो गाङ्गोत्रीविमलितशिरसः प्राप्य शंभोः प्रसादा-
न्मोहान्मोहानमिश्राः क्वचिदपि भवत प्राणिनो दर्पभाजः ।
यस्माद्यः स्मार्त्तविप्रप्रणतिनुनपद्ः सर्वसंपन्नभोगो
भाम्यान्माः स्वाङ्गभूता अपि स परिहरन्स्तमेव प्रयाति’ ॥ २२ ॥

भोगानिति ॥ भोगानित्यनन्तरं भो शब्द आमन्त्रणे । साक्षोर्मिनिर्मलीकृताद्भ्यस्य
 दम्भोः शिष्यश्च प्रसादाद्भोगान् प्राप्य भो दर्पभाज प्राणिन, मोहात्सकाशाद् ऊहान-
 भिज्ञा अबिमर्शका क्वचिदपि विषये मा भवतेति । मायोगेऽपि सानु दग्धकखाद्विधौ
 पञ्चमी । यस्मादेतोः स्मार्तविप्रैः प्रणामसमये स्तुतपादपद्म । तथा सर्वसंपत् सकल-
 श्रीः नमो भो विषयदामी च यो भास्वान् रवि । सोऽपि स्वाहमूना भा दीप्तिः परि-
 हरन् पथ भवता प्रत्यक्षोऽस्त प्रयाति । सर्वे सुलभा दुर्लभाश्च संपन्ना भोगा । अस्व-
 श्रुत्याभिहितम् । तस्मादेवंविधस्य महाप्रमनोऽपि श्वेरस्तं बिलोक्य समोशाराधना-
 दिकार्यं न प्रमदितव्यमित्यर्थः ॥ २२ ॥

गंगा की लहरों से निर्मल शिरवाले भगवान् शकर की कृपा से विभिन्न
 भोगों को प्राप्त कर सदा मा (लक्ष्मी) विषयक ऊह (विवर्क) में लगे रहने के
 कारण ऊहानभिज्ञ (वास्तविक पदार्थविषयक विवेक से हीन) मत बनो,
 क्योंकि स्मार्त ब्राह्मणों द्वारा प्रणाम के माध्यम से जिनका पैर बसित है तथा
 जिन्हें सभी लोग प्राप्त हैं ऐसे भगवान् सूर्य भी अपने जगभूत विरगों को
 समेटते हुए बसत हो रहे हैं ॥ २२ ॥

पतदाकर्ण्य नरपतिः सांध्यं विधिमन्यतिष्ठत् ।

पह सुनकर राजाने संध्यापुष्टान किया ॥

क्रमेण प्रधुरचलन्नापकुलकालकान्तिकाशिभिर्वदलतमः कल्लोलै-
 रालोडिते लोके लोकेभ्यरो विद्वितविकालयेत्प्राप्यापारः पारसीकोप-
 नांतपारावारपारीणपारायतपतत्रिपञ्जरसनाये विक्रीर्णवासधूलिनि
 धूपधूममुचि विचित्रचित्रशालिनि प्रान्तप्रदापितदीपदीतिदण्डपण्डित-
 तमसि नजितशय्ये शय्यागृहे गृह्णातम्पूहणीयाङ्गरागो रागसागर-
 कल्लोललोचनयानया प्रियया प्रियंशुमञ्जरीं अलीककलहकोपकुटिल-
 भ्रमद्भ्रंशोणतर्जनजानिस्मितः स्मरयिकारकारिकरिकलमकुम्भविभ्र-
 मायमाणोत्तुङ्गपीवरकुचकुम्भपीठमारोपितो रजनामर्नपोत् ॥

क्रम में पर्याप्त रूप में बजते हुए धाव (कीट विशेष) की कालिमा
 सदृश कान्तिवाले गाढे अन्धकार के बसोठ में पूरे ससार के मयित हो जाने
 पर लोगों के स्वामी (राजा), बेलानुसार नमस्त कायों को समाप्त कर
 पारसी लोगों द्वारा सहृद पार में लाये हुए कपोल पक्षियों के पञ्जरो में युक्त,
 सुगन्धित द्रव्य की धूलि से समन्वित, विविध चित्रों में गुणोन्मित, चमक से
 जड़ते हुए दीपक के प्रकाश दण्ड के कारण अन्धकारहीन, पाय्या में मण्डित
 शयनगृह में धूप-धूम को छोड़ता हुआ मनोरम लेपन शरीर में ढगाकर प्रेम-
 सागर की तरंग रूप लोचनों वाली त्रिषा (प्रियशुमञ्जरी) के साथ, मिरया

कण्ह क प्रसङ्ग म कोष के भारण टूट घूमते हुए भीहो क कोने स डाउन क कारण टपन्न मुस्कुराह बाजा काम विकार को उत्पन्न करन वाले, हाथी क बच्चो क कुम्भस्थल सदृश विजासनुप उंच तथा स्थूल कुम्भ सदृश स्तनों पर आरोहित होकर राज बिताया ॥

पथमस्य सकलसंसारसुखपरम्परामनुभवतो यान्ति दिवस्ता ॥

इस तरह स्वर्ग की समस्त सुख परम्परा का अनुभव करन हुए इस (राजा) का समय बीत रहा था ।

कदाचिच्चायचामाकराचलचलद्देहाधिदेयतेन बहुधानन्दने सुख चिरवायाजनारम्भे सुरतोत्सवमनुभवन्ती पत्यु प्राणप्रिया प्रियंगु-मन्त्ररी गर्भ यमार ॥

कदाचिदिशत । बहुधा नन्दयनि हर्षयनि यस्तस्मिन् । यौवनारम्भे । सुष्ठु रुचि-रिच्छा रश्च स्वरो यस्या । शासनमिच्छाया कलमापिगी च । सुरत माह्वनमेवोत्सवमनुभवन्ती प्रियपुमन्त्ररी गर्भ दध । चामीकराचलो मेहस्तस्य चलद्देहा अधिष्ठान् दवतव । सोऽपि बहुधानकषा नन्दनाख्य वनारम्भे सुष्ठु अतिशयन रचिरवायौ सुरताया दववस्वोत्सवमनुभवति । आरम्भमारम्भ आदिरित्यम् । नन्दन हि जनानामादिरप्रथ प्रधानमिष्यर्थ । यदि वा वनान्यारम्भन्तेऽनननि कृष्ण वनारम्भ । शासनानन्दन हि प्रथम नन्दन सुष्ठु सत्त्वुच्चाययवैर्वात्रसास्वादिभित्तिरवनानि जगति सुष्ठानि ॥

जिसी समय सुन्दर स्वर्ग पर्वत की गतिशील अभिदेवता की तरह अधिकाय आनन्द ही बन वाली, रुचिकर स्वर वाली यौवन के आरम्भ म सुरतोत्सव (पति मिलन) का अनुभव करती हुई अपने पति के लिए अपन प्रानों ॥ भी अधिक प्रिय प्रियपुमन्त्ररी ने गर्भ धारण किया ॥

तेन च त्रिकचसूतमञ्जरीय कोमलफलरन्ध्रेण यन्धुररमणीया वृत्तिः, चन्द्ररत्नेन कलाप्रवेशेनोपचीयमानप्रभा, प्रभातरेलेरोन्मालदं शुमालिमण्डलेनानन्धमाना, रत्नाकरतल्लमालेरान्तस्फुरन्माणिभ्य कान्तिकलापनेद्भासमाना, गर्भसदभितेन ल्हाण्यपरमाणुपुञ्जेन व्यराजत राजमहिर्षा ॥

ननान ॥ कुसुमातर्गूढ फलारम्भकरसकगिराकूपो बन्ध कोमलफलरन्ध्रे ॥

जिसी हुई आभ्रमन्त्री जैसे अपन कोमल फल (प्रारम्भिक) गठ के कारण मनाहर प्रतीत हाती है, जैसे चन्द्ररत्न की कान्ति प्रतिदिन बढ़ती है, वन हुए सूर्यमण्डल से जैसे प्रभात वेला जल्दी लगती है, रत्नाकर (समुद्र) की तरंगमाला जैसे अपन भीतर छिपे हुए रत्ना की किरणों से चमकती है, जैसे गर्भ स अभिव्यक्ति होने वाली सौन्दर्य यति क कारण राजपत्नी भी सुशोभित हुई ॥

गच्छत्सु च केषुचिद्विसेषु सुवृत्ततुद्धिनाचलगण्डशैल्युगल-
मिव बालमयूरिकाकान्तम्, अनङ्गसौधशिखरद्वयमिव शेषरीकृतेन्द्र-
नीलकलशम्, उज्ज्वलरौप्यनिधानकुम्भयुग्ममिव भुजगसंगतमुखम्,
उल्लासिहंसमिथुनमिव चञ्चूत्खातपङ्क्तिमलकन्दम्, ऐरावत-
मस्तकपिण्डपाण्डुरमुचचूचुकश्यामलिम्भाऽलंकृतभापूर्यमाणमन्तः-
क्षीरेण क्षणं क्षणमस्त्रियत पयोधरद्वन्द्वमुदहन्ती ॥

कुछ दिनों के बाद सुन्दर गोल हिमालय के दो गण्डशैल छोटी मयूरी से
जैसे आकाश में, कामदेव महल के दो ऊँचे गुम्बज पर जैसे इन्द्रनीलमणि के
कण्ठ से लगे हो, सफेद रजत निर्मित (मुद्रा) रखने के दो कलश जिनका मुख
किसी सर्प से बज्रवद हो, जैसे प्रसन्न हंस का जोड़ा जिसने अपनी ओष से
पकयुक्त कमलमूल को उखाड़ लिया हो, ऐसे ऐरावत हाथी के मस्तक की तरह
पुष्प, उन्नत चूचुक की श्यामलता से अलंकृत तथा आंतरिक दुग्धभार से पूर्ण
स्तनों को ढोती हुई प्रतिक्षण खिन्न हो रही थी ॥

यवन्ध च चन्द्रकलाङ्कुरकचलने स्पृहाम् ॥

चन्द्रकला की किरणों के उपभोग की इच्छा की ॥

अभिलापमकरोच्च चञ्चलचञ्चरीककुलकलरवरमणीपविकच-
चूतघनविहारेषु ॥

चञ्चल भ्रमर समूह की झकार से मनोहर, विकसित (मजरी वाले) आकाश-
वन में बिहार करने की अभिलाषा व्यक्त की ॥

स्पर्शममन्यत यद्बहु बहलमभ्यर्णायकीर्णविकसितकमलघननिष्यम्दि-
मकरन्दयिन्द्रोर्मन्दतरतरङ्गसङ्गशीतलमलयमारुतस्थ ॥

पास में ही घने रूप में फैले हुए, एव खिले हुए कमलघन से पूरे रहे मकरन्द
की इन्धु की अत्यन्त मृदु लहरी से सम्पर्क होने के कारण ठंडी मलयामय की
हवा को बहुत अच्छा मानने लगी ॥

चिन्तर्याचकार च चतुर्दधिलावप्यरसमास्वादयितुम् ॥

चारों समुद्रों के सौन्दर्य रस का आस्वादन करने का विचार किया ।

अभ्यवाञ्छदतुच्छमच्छमशेषममन्दमन्दरमन्थानमन्योत्पन्नममृत-
मादृप्ति पातुम् ॥

मन्दराक्षत रूप मषणी के अमन्द मन्यन से उत्पन्न बहुमूल्य एवं स्वच्छ
सम्पूर्ण अमृत रस को भ्रपेट पीना चाही ।

इत्यनेकधोत्पन्नगर्भप्रमादादनुरूपदोहदसंपत्तिसंपन्नाधिककर्मनीय-
कान्तिरुल्लसद्दृढलसृगमदजललिङ्गितविचित्रपत्रमङ्गमव्यविपुलकपोल-
मण्डलेन मुखेन दाशाङ्गमन्तस्फुरत्कलङ्कमुपहसन्ती द्विगुणमवनिपते-
न्नस्य प्रिया प्रियंगुमञ्जरी बभूव ॥

गर्भ के कारण अनेकों बार अनुरूप इच्छारूप सम्पत्ति के पूर्ण होने के कारण उनकी कान्ति निवृत्त गयी । सोमा सपन घाटे कस्तूरी रेश से अंकित सुन्दर पत्र-
रचना के कारण भन्त्य, सुन्दर एवं विशाल कपोल महज बाले मुख से कञ्च-
पूर्ण चन्द्रमा को उपहासित करती हुई प्रियगुमञ्जरी उस महीपाल की दुहुना
प्रिय हो गयी ॥

नयाहि—

सा समीपस्थिनज्येष्ठा पयःपूर्णपयोधरा ।

अग्रप्रावृद्धिवाहादमकरोत्तस्य भूपतेः ॥ २३ ॥

सा मनादति ॥ समीपे स्थिता ज्येष्ठा वृद्धिस्थो ज्ञातप्रभवस्वरूपा यस्याः । तथा
पयसा श्रीरेण पूर्णा पयोधरौ स्तनी यस्याः । सा प्रियगुमञ्जरी तस्य राज्ञो मुदम-
करेत् । अग्रप्रावृद्धोऽग्रप्रावृद् आपाटवर्षा । तपश्च समीपे स्थितो ज्येष्ठ शुक्रो
मायी यस्याः । तथा पयसा जलेन पूर्णः पयोधरो मेघो यस्याः । मुखो हि प्रावृद्
परमोदकारिणीनि मुख पायुराहादं कराति ॥ २३ ॥

प्र-पक्ष—जिसके पास में बरिष्ठ स्त्रियाँ बैठी रहती थीं, तथा जिसका पयोधर
(स्तन) दूध से भर आया था, ऐसी प्रियगुमञ्जरी ने उस महीपाल को आनन्दित
कर दी जैसे वर्षाकाल की प्रथम (आपाट) वर्षा लोगों को आनन्द देती है ॥ २३ ॥

द्वितीय पक्ष—ज्येष्ठ का महीना जिसके पास है तथा जलपूर्ण जिनके
पयोधर (मेघ) हैं, ऐसी आपाट की वर्षा पृथ्वी को आनन्द देती है । तथा
उसके पति, भूपति को भी आनन्द देती है ॥ २३ ॥

एवमविरतविविधधान्दोत्सवाविच्छेदकर्तरि भर्तरि, संधयैवाज्ञा-
कारिण्यपारे परिवारे बहुमङ्गिमाग्योपभोगक्रमेणातिक्रामति कुत्र-
चित्काले, कालकलाकुशलश्लाघनोये पूर्णप्राये प्रसवसमये, विलीन
ज्ञात्यज्ञानकुम्भमामि मास्वत्युदयमारोहति, हततिमिरासु दिभ्यु क्षण-
मेकं सा प्रसववेदनाग्नतिकरमन्वमूत् ॥

इस तरह निरंतर पति उनकी विभिन्न आकांक्षाओं को पूर्ण करता जा
रहा था । विशाल परिवार वर्ष सकेत मात्र में आज्ञा पालन में लगा हुआ था ।
विविध ढंग के भाग्य-दत्त पदार्थों का उपभोग करती हुई रानी का क्रम से
समय बीत रहा था । एक पवित्र एवं प्रशंसनीय अवसर पर जब कि प्रसव का

समय पूर्ण हो चला था, पिछले हुए सुन्दर सोने की तरह कान्तिवाले भगवान् सूर्य उदयाबल पर चढ़ रहे थे, समस्त दिशाओं का अन्धकार नष्ट हो गया था, एक क्षण तक प्रसन्न पीछा का अनुभव कीं ॥

ततश्च—

प्रभासयोगिविख्यातं योग्यं नालस्यक्रमेण ।

पृथ्वीय पुण्यतीर्थे सा कन्यारत्नमजीजनत् ॥ २४ ॥

प्रमेति । कान्तिसयोगि । विख्यात प्रसिद्धम् । नालस्य मृपतेरिदं नालम् । कर्म अराण्यपुण्यामक तस्य । योग्यमुचितम् । कन्यारत्नम् । सा अजीजनदुत्पादयामास । पृथ्वी पुण्यतीर्थमिव । तदपि प्रभासावयम् । योगिभिर्योगमार्गैर्विख्यातम् । आलस्य असारस्य कर्मणो न योग्यम् । अथ च आलस्यकर्मणो न योग्यम् । किं तर्हि उद्यमश्रियायोग्यम् । ततस्तदर्थं केनापि न प्रमदितव्यमिति भावः ॥ २४ ॥

कान्तिपूर्ण, नल द्वारा किये गए (पुण्य) कर्मों के अनुकूल, विख्यात कन्यारत्न का जन्म उन्होंने दिया, जैसे पृथ्वी ने पुण्य तीर्थ को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥

घोराष्ट्र में प्रभास नामक तीर्थ है जहाँ स्नान करने से राजयक्ष्मा रोग अच्छा हो जाता है, पृथ्वी पक्ष में इस लोक का अर्थ है —

योगि-विख्यात (योगियों में प्रसिद्ध) आलस्य का अवसर न देने वाला प्रभास नामक पुण्यतीर्थ जैसे पृथ्वी ने उत्पन्न किया वैसे ही रानी ने उस (दमयन्ती) कन्या (रत्न) को उत्पन्न किया ॥ २४ ॥

नम्र च दिवसे 'विकसितकुमुदकुन्दकान्तकीर्तनीयकीर्तिसुधया घवल्लानि करिष्यत्येषा प्रघर्षमानात्मन्मुखानि' इति प्रियादिव प्रसन्ना-समपद्यन्त दश दिशः । 'मा स्म पुनरस्मदगुणानेषापहार्पात्' इत्यप-हृतैरेङ्गसाङ्गुणा समया नमस्यन्त इव तस्यै कुसुमाञ्जलिममुखं ध्वन्नादपो देवा । स्वकान्तिसर्वस्वापहारभयादिव दिशि ननृतुरप्सरसः । 'किमस्या सम समुत्पन्नमग्यदपि कन्यारत्नम्' इत्यन्विष्यन्त इव परितः परिवभ्रमु सुरभय क्षमा समीरणा ॥

नत्र वेति ॥ कन्यारत्नान्वेषिणो हि । सुरभय सौरभ्यवन्तः । समया सध्रीकाश्च भवन्ति ॥

उस दिन, 'मह बड़ी होकर खिली हुई कुमुदिनी की तरह कान्त (सुन्दर) एवं प्रशस्नीय कीर्ति रूपी सुधा से हम लोगो के मुख को उज्ज्वल बनावेगी ।' मानो इस प्रिय आशा से दशों दिशाएँ प्रसन्न हो गयीं । पुन हम लोगो के गुणों को न चुरा ले ।' मानों इस भय से पुष्पाञ्जलि देते हुए चन्द्र आदि देव नमस्कार रह रहे थे । मानो अपनी कान्ति के मुख्याश क अपहरण क भय से

स्वर्ग न अन्तराहं नाचने सौं, 'क्या इसके सन्ध कोई और भी कन्यारत्न उत्पन्न हुआ है।' मानो इसी बात को सोचती हुई सुगंधित हवाएँ चारों तरफ घूम रही थीं।

किं बहुना—

रमन्दानन्दनिष्ठमपास्तान्यत्रियाक्रमम् ।

जगज्ज्योत्सवे तस्याः पीतामृतमिवामरम् ॥ २१ ॥

आनन्द के अनन्द (ओरदार) प्रवाह में अन्य सनन्त कार्यश्रमों को छोड़ कर सब (दमरुती) के ज्योत्स्न में सत्कार अमृत पान किये हुए की तरह (आनन्दमग्न) हो गया ॥ २१ ॥

अथ यद्वोः कालादनु रूपप्रौढमहरणप्राप्तिपीनहृदयेनास्फोटितमिव सरसजगद्विजयन्यवसायसाहसिकेन कुसुमसायकेन, चिरादुचिनामप-
लामनुदितमनसा स्फूर्जितमिव शृङ्गाररसेन, शुशिकाशकुसुमहास्येन
योग्यसहकारिधारणोपलम्भपूर्णमनोरयेन यस्मिन्मिव वसन्तमासेन,
निजकर्मणः सफलतां मन्यमानेनोच्छ्वसितमिव मलयानिलेन, चिर-
कालोपलब्धलाघ्याधारतया हसितमिव रूपसंपदा, विकसितमिव
लाघप्यलक्ष्या, प्रवृत्तमिव सममन्त्रालसणाधिदेवतया, कलकलित-
मिव कान्तिकलापधिया ॥

बहुत समय के बाद अनुरूप एक सुन्दर शब्द प्राप्त करने से सम्पूर्ण सत्कार पर विजय रूप कार्य करने में साहसी पुष्पवात, कानदेव प्रसन्नता के मारे उठावला हो गया। बहुत दिनों के बाद रचित आधार पाने के कारण प्रसन्न-
चित्त शृङ्गाररस उदीप्त सा हो उठा। अनुरूप सहायक (सहायक) कारण प्राप्त कर पूर्ण मनोरथ नामदेव, विजया हाम्य पवित्र (धुन्न) काद्युन्न है, अचानक उन्माहित हो गया। अपने कार्य में करने आपको सदा मानकर दक्षिणानिल स्वास के रहा था। बहुत दिनों के बाद बहुत प्रसन्नता आधार प्राप्त हुआ है। इसलिए रूप सम्पत्ति हैच रही थी। सौन्दर्यलक्ष्मी बिन्न उठी थी। छी न रहन बाँधे सम्पूर्ण रचित लक्ष्यों की अधिदेवता मानो नाच उठी ॥ कान्ति-सन्तुह की लक्ष्मी कञ्कट ध्वनि कर उठी ॥

किं बहुना—

सर्गन्यापारस्मिन्नम्य यद्वोः कालाद्विधेरपि ।

वासीदिमां विनिर्माय इलाप्यः शिल्पपरिश्रमः ॥ २२ ॥

बहुत दिनों से सृष्टि-कार्य करने से थके हुए ब्रह्मा का शिल्प-परिश्रम भी इसे बनाकर प्रसन्नता हो गया ॥ २२ ॥

[कोई कलाकार बहुत दिनों तक अभ्यास करता है किसी पदार्थ के निर्माण के लिए । तब किसी दिन वह कला-कार्य में पूर्ण-निष्णात होता है । बहुत दिनों के अभ्यास के बाद ही ब्रह्मा का शिल्प-परिधम प्रशसनीय बन सका । जब उन्होंने दमयन्ती जैसे अनुपम कला-कृति का निर्माण किया] ॥

एवमस्याः सततविस्तीर्णस्थर्णपूर्णपात्रपूजितपूज्यद्विजन्मनि संपन्ने नामकर्मसमये सामान्य मान्यजनं जनेश्वरो वरप्रदानमनुस्मृत्य दमनकमुनेः 'दमयन्ती' इति नाम प्रतिष्ठितवान् ॥

इस तरह उनके नामकरण समय में निरन्तर फैले हुए स्वर्णमय पूर्णपात्रों से ब्राह्मणों का पूजन सम्पन्न कर माननीय लोगों को सम्मानित कर लोकपति (राजा) ने वर प्रदान की बात स्मरण कर, दमनक मुनि के आधार पर 'दमयन्ती' यह नाम निश्चित किया ॥

क्रमेण च प्रचुरामृतसंसिक्ता इव सुकुमाराः प्रसर्तुमारभन्ताङ्गाद्ययव-पल्लवाः, चकार च चञ्चलचामीकरचिरचिराङ्गणमणिर्वेदिका सुकैश्चि-द्वियसैरनुच्चचरणप्रचारचारुचापस्यलीलाः, सहासमकरोत्परिजनं जन-यन्ती चालकेलीः, स्यच्छन्दमानन्द्याञ्चकार पितर तरङ्गभङ्गिरङ्गितेन, जननीमजीजनघातयिस्मयां स्मितमुग्धदर्शितदन्तकान्तिकुन्दपुष्पम-लिप्पद्वाक्षरमरुपाल्पं जल्पन्ती ॥

क्रम से, पर्याप्त अमृत से सींचे हुए की तरह उसके कोमल अंग-पल्लवों ने बढ़ना शुरू कर दिया । चमकते हुए सोने की तरह सुन्दर आगन की मणिमय वेदिकाओं पर कुछ दिनों तक घुटने के बल चल कर उसने अपनी सुन्दर चंचल लीला दिखायी । अपने चारों ओर परिजनों को बटोरती हुई हासपूर्वक बाल लीला की । आनन्दपूर्वक विविध रंग की शैशवीषित लीलाओं से पिता को अबाध आनन्द पहुँचाया । मुस्कराहट के कारण दीख रही दन्त-कान्तिरही कुन्द पुष्पों में निकले हुए अस्पष्ट अक्षरों को कुछ-कुछ बोलती हुई माता को भी आश्चर्य में डाल देती थी ।

किं बहुना—

अपि रेणुकतक्रीडं नरेऽणुक्रीडयान्वितम् ।

तस्याः प्रौढं शिशुत्वेऽपि ययो वैचित्र्यमायहन् ॥ २७ ॥

अपीति ॥ रेणुना कृता क्रीडा यत्र । तथा 'कस्त्वा परिणेभ्यति, एवं कस्मै दातव्या' इत्याद्यन्तिमिर्नरे पुंसि विषये अणुक्रीडयान्वितमरुपक्रीडाकरम् । तस्याः सयन्त्रियय । शैशवेऽपि प्रौढं वैचित्र्यं दधौ । अपिर्विरोधार्थः । स च गुह्यार्थव्याख्यया ॥ २७ ॥

अधिक क्या कहा जाय :-

रेणु-क्रीडा (धूलि क्रीडा) पूर्वक होती हुई भी रेणु-क्रीडा से बसबद्ध थी । शैशव काल में भी उसकी प्रोढ़ावस्था विचित्रता उत्पन्न कर रही थी । विरोध ।

रेणुहृत क्रीडा करती (धूलि से खेलती) थी किन्तु नरे + अणु क्रीडयार्ज्वर (उसकी विचित्र शैलीओं को देखने पर उसमें मनुष्य की कुछ समानताएँ मिलती) थी । शैशवकाल में भी उसमें बहुत ही विचित्रताएँ थी । परिहार ॥ २७ ॥

प्रथमममनवरतस्वैरविहायहारिणि क्रमेणातिक्रामति शैशवे वयसि पितुर्नियोगान् गुरुपदेशात्साधुवृद्धसंयासाद् बुद्धिविकासाच्च नाति विरेण, प्राप्ता नैपुण्यं पुण्यकर्मोन्मेषु, ज्ञाना प्रवर्णाणां र्क्षाणासु निराकुला कुलाचारेषु, कुशला शलाकालेप्येषु, विशारदा शारिदायेषु, प्रबुद्धा प्रयन्धालोचनेषु, चतुरा चातुरानायजनचिकित्सासु ॥

इस तरह निरंतर स्वेच्छमा विहार और आहार करने के उपयुक्त शैशव अवस्था के समाप्त होते रहने पर पिता की आज्ञा से गुरुओं के उपदेश से, साधु एवं वृद्धों की संगति से, तथा बुद्धि के विकास से शीघ्र ही पुण्यकर्मों में निपुणता प्राप्त कर लेती । शीघ्रावस्था में प्रवीण हो गयी, वशानुक्त जाबरज करने में बैरबती, छूतविधान (दूध खेजने) में कुशल, शारिकाओं को खिलाने में निपुण, कान्नों की आन्धेयताओं में तीव्र बुद्धि, आनुर (रोगी) तथा अनाय लोगों की विचित्रता करने में बनुर हो गयी ॥

किं वाम्यस्—

अकरोद्भालस्यं लास्ये, प्राप प्राधान्यं धन्योचित व्यवहारेषु, वैचित्र्यं चित्रेषु, चातुर्यं तौर्यधिके, कौशलं शल्योद्धारे, पाठ्य पटह-बादने, सैमस्यं नयमाल्यप्रयने, प्रागीम्यं गीन्याम् प्राकाम्यं काम-कयासु ॥

अकरोद्भालं ॥ प्रगीता प्रमिद्धा वस्या न्याव प्रागीयम् ॥

नर्तन में उसे आनन्द नहीं था । एक उन्मत्तोक्ति के आधमी का जैसा व्यवहार होना चाहिए वैसे व्यवहारों में निपुणता और चित्रकला में विचित्रता प्राप्त की । वाद्यकला में चातुर्य, शल्य-चिकित्सा में कुशलता, पटह (नगादा) बजाने में पटुता, नवीन माया खूबने में निर्मलता, गीत कलाओं में विशिष्टता तथा काम-कथा में नैपुण्य प्राप्त किया ॥

किं बहुना—

न तत्काव्यं न तन्नाट्यं न सा विद्या न सा कला ।

यत्र तस्या प्रजुद्धाया बुद्धिर्नैव च्यजृम्भत ॥ २८ ॥

न तो ऐसा कोई काव्य था, न ऐसा कोई नाट्य था, न कोई ऐसी विद्या थी, न कोई ऐसी कला थी वहाँ उस जाग्रत बुद्धि वाली बाला की प्रज्ञा स्फुरित नहीं होती थी ॥ २८ ॥

प्रथमस्या शैशव एव निजजरठप्रह्लाप्रज्ञातव्यवस्तुविस्ताराया क्रमेण तिलकभूतं नूतनचूतवनमिव वसन्तप्रवेशप्रथमपल्लवोल्लासेन, प्रत्यप्रघनसमयमह्रीमण्डमिवामन्दपिदलत्कन्दलकलापेन, केसरि किशोररुण्ठपीठमिवनयकेसराङ्कुरोद्गारेण, करिकलभरुपोलस्थलमिव प्रथममदोद्मेदेन, निशाचसाननभस्तलमिव प्रभातपारम्भप्रमाप्रभावेण, सरसलिलमिव विदलितकोमलकमलकान्तिसंतानेन, मनोहारिणा संसारसारभूतेनाभूष्यत यषु कान्ततरतारुण्यावतारप्राप्तप्रारम्भेण ॥

बाल्यकाल में ही अपनी प्रगाढ़ बुद्धि से जानने योग्य समस्त वस्तुओं के प्रारंभ से विस्तार तक को जानने वाली दमयन्ती का शरीर संसार के तत्त्व-भूत मनोहर जीवन से, आत्यन्त सुन्दर वसत श्रुतु क प्रथम प्रवेश के समय नवीन पल्लवों के विकास से उत्तम प्रतीत होने हुए आश्रवन की तरह, अमद गति से अकुरित होने वाले मूल समूह से अलकृत अचिर प्रवृत्त वर्षाकालीन भूमण्डल की तरह, गर्दन पर नवीन रोम वाले सिंह के बच्चे की तरह, प्रथमवार प्रकट हुए हस्तिपुष्पक के कपोलस्थल की तरह, प्रातःकाल की प्रारंभिक कान्ति से मण्डित आकाश मण्डल की तरह खिले हुए कोमल कमलों की कान्ति से अद्भुत सरोवर जल की तरह सुशोभित हो रहा था ॥

[दमयन्ती अत्यंत रमणीय जीवन की अवस्था से मण्डित हुई ।]

ततश्च—

परिहरति घयो यथा यथाऽस्या

स्फुरदुरुन्दलशालिं बालभावम् ।

द्रढयति धनुपस्तथा तथा ज्या

स्पृशति शरानपि सज्जयन्मनोम् ॥ २९ ॥

पनपन हुए महान् मूल (होनहार अक्षुर) की तरह इसकी नवीन अवस्था जैसे जैसे घटाय को छोटी जा रही है वैसे वैसे कामदेव अपना धनुष दृढ़ करता जा रहा है, प्रत्यङ्घा को छू रहा है और बाणा को सज्ज रहा है ॥ २९ ॥

अपि च—

मुञ्चन्त्या शिशुनां मरादवतरत्तारुण्यमुद्राङ्कित-
स्कारीभूतनितान्तकान्तवपुषस्तस्याः कुरङ्गीदृशः ।
उन्मीलत्कुचकाञ्चनाञ्जमुकुलं यूनां मुहुःपश्यतां
बाहोरन्तरमन्तरायसदृशा मन्ये निमेषा अपि ॥ ३० ॥

और भी :—

शैशव को छोड़ती हुई, सवेग उत्पन्न होते हुए (उभड़ते हुए) जीवन के विनाश में विहित होने के कारण प्राङ्ग (स्पष्ट तथा अत्यन्त सुन्दर शरीर वाली मृषेजना क दोनों बाहुआ के बीच स्वर्णकमन्ड की कालिका की तरह उठने हुए स्तनों को पुन. पुन. देखन हुए युवकों की पलकों के बीच मानो कुछ व्यवधान का पट गया है ॥ ३० ॥

[पलकों के बीच यदि कोई चीज लेकर भर दी जायगी तो पलक गिर नहीं सकने । बीच की भरी हुई चीज उसको गिरने नहीं देती । कवि यहाँ कहता चाहता है कि दमयन्ती के सौन्दर्य का देखने समय युवकों के पलक नहीं गिरने । न गिरने का कारण कवि कल्पना करता है कि पलकों के बीच मानो कोई चीज अटक गयी है । इसीलिए उनके पलक नहीं गिरते ॥ ३० ॥]

ततश्च—

तत्तम्या, कमनायकान्तविजितप्रलोभ्यनारीवपुः
शृङ्गारस्य निरेतमं समभवत्संसारसारं धयः ।
प्रम्विस्मृतपद्मपालिचलना, कामालसा दृष्टयो
नो यूनां पुनरुत्पद्यन्ति पतिताः पार्श्वे शकुन्ता इव ॥ ३१ ॥

उनकी स्मृहीन कान्ति से सम्पूर्ण त्रैलोक्य क रमणी-सौन्दर्य की जीती हुई दमयन्ती का वह जीवन संसार का सारतत्त्व है और शृङ्गार का भवन है जिसमें युवकों की नामविह्वल निर्निमेष दृष्टिया फँसती हैं वो जाल में फँसे हुए पक्षी की तरह फिर नहीं निकट पाती ॥ ३१ ॥

अपि च—

आवधन्तपरिवेशमण्डलमल वस्त्रेन्दुविम्बाद्वाहि
कुर्वच्चम्पकजृम्भमाणकलिकाकर्णावतंसक्रियाम् ।
तन्वद्गया परिनून्यतीव हसतीत्रोत्सर्पतीधोल्यणं
लावण्यं ललतीवकाञ्चनशिलाकान्न कपोलस्थले ॥ ३२ ॥

मुख चन्द्रबिम्ब के बाहर पर्याप्त गोल मण्डल बनाया हुआ, खिलती हुई चम्पक-कलिका की तरह कर्णाभरण का कार्य करता हुआ उस हवाझी का

अत्यंत उत्कृष्ट सौंदर्य स्वर्णमयी शिलासदृश कपोलस्थल पर नाच रहा है और उल्लसित हो रहा है ॥ ३० ॥

[प्रत्येक अत्यन्त कांतिशील पदार्थ के चारों तरफ कांति छिटकती है। उसके आकार के अनुसार एक गोला या चतुष्कोण मण्डल बन जाता है। दमयन्ती के मुखचन्द्र में जो लावण्य कांति छिटक रही है उसका परिद्वेष बन गया है। गौरवर्ण की छिटकती हुई कान्ति चम्पे के फूल की तरह कर्ण पुष्प का कार्य देती है। गौर वर्ण का होने व कारण कपोलस्थल को स्वर्णमयी शिला कहा गया है] ॥ ३२ ॥

एतदाकर्ण्य राजा रजितस्तक्रयया पुनरुदञ्चतुच्चरामाञ्चकञ्चु
कितकायस्तत्कालमेवान्त स्फुरन्मन्मथमनोरथभरभज्यमानमानसस्त
हसमपृच्छत् ॥

‘पक्षिराज राजीवयनाचतंस हस, पुन कथ्यता तस्या संप्रति
धयोवृत्तवृत्तान्तव्यतिकर’ ॥

यह सुन राजा (नल) उस कथा से अनुरक्त हो गया। रोवें लड़े हो गये जिससे ऐसा प्रतीत होता कि उसका शरीर कङ्कुक पहुँच लिया हो। उसी समय अन्तरात्मा में उभड़ती हुई कामवासना में उसका मानस व्यथित होने लगा। उसने हृष्ट से पूछा— पक्षिराज कमलवन को मण्डित करने वाले राजहूँस फिर कहाँ इस समय उसकी वय संधि की कथा काँ।

इत्युक्त पुनरेष लघभाषे—

‘देव किमेकोऽस्मद्विध पक्षी क्षीरतरङ्गधवललोचना ता वर्णयेत्
यस्या सर्वदेवमय इवाकारो लक्ष्यते ॥

ऐसा कहे जाने पर फिर उनमें कहा—

‘देव, क्या एक मेरे जैसा पक्षी उस दुग्धतरङ्ग-सदृश शुभ दृष्टि वाली सुन्दरी का वर्णन करे जिसकी आकृति सर्वदेवमयी की तरह है ॥

तथाहि—

सुतारा दृष्टि, मकराभा कटाक्ष, सुकुमाराश्रयपाणिपल्लवा,
सुधाकान्ति स्मितम् अरुणो दन्तच्छद भास्वन्तो दन्ता सृष्ट्या
केशा प्रमुद्धा वाणी, गौरी शान्ति, गुरु स्ननामोम पृथ्वी जघन
स्थली, सुरभिर्निश्वास, मुगन्धराह प्रमोद, सश्रीर सगराङ्गभोग ॥

दृष्टारोति । तारा कनीजिका देखो च । काम अभिलाष अमरश्च । मन्मथ कामो
वेभ्य । सुय समञ्ज काममनसोर्मलोप । सुकुमारा कामला । तथा महोदयम्

कनिङ्केयोऽपि सुकुमारः । मुधावाकान्निहस्तेति मुधाकान्ति शुभं चन्द्रश्च । अरुण
धारब्धो विमारयिश्च । भास्वान् दग्ध्यमानः सूर्यश्च । कृष्णो मेघको विष्णुश्च ।
प्रबुद्धा बुधरा । बुद्धः सुयन्-गुरुविष्णो बृहस्पतिश्च । पृथ्वी पृथुला मूषः ।
सुरभिः सुगन्धिवन्तश्च । गन्धवाह परिमन्त्रवाही वायुश्च । श्रीः कान्तिल-
यनीश्च ॥

क्योंकि वनकी दृष्टि सुनारा (सुन्दर कनीविका वाली) है । कटाक्ष सकाम
(अभिप्रायपूर्ण) है । चरन एव पापिपल्लव सुकुमार (कोमल) है ।
मुष्कुराहट मुधाकान्ति (अनृणच्छया या चन्द्रकान्ति सट्टय) है । ओष्ठ मरुत
(लाल) है । दांत भास्वान् (धमकीले) हैं । बाल सुहृन् (बहुत काले)
हैं । बागी प्रबुद्ध (प्रतिभासम्पन्न) है । कान्ति गौरी (गौर वर्ण की) है ।
स्तनो का विष्णार गुरु (विगल) है । अपनस्पत्नी पृथ्वी (बहुत बड़ी) है ।
इवाम सुरभि (सुगन्धित) है । पत्नीना सुगन्धवाह (सुन्दर गन्ध धारा
करनेवाला) है । सम्पूर्ण अवयव सधीक (गोमा-सम्पन्न) है ।

[सुनारा (कान्तिपत्नी) है । सकाम (कामदेवयुक्त) है । सुकुमार
(कान्तिकेय) है । मुधाकान्ति (चन्द्रकान्ति) है । अरुण (सूर्य-सारथि)
है । भास्वान् (सूर्य) है । सुहृन् (भगवान् कृष्ण) है । प्रबुद्ध (महात्मा बुद्ध)
है । गौरी (पार्वती) है । गुरु (बृहस्पति) है । पृथ्वी (बहुभरा)
है । सुरभि (बसन्त) है । सुगन्धवाह वायुदेव । सधीक (लक्ष्मीयुक्त)
है । विविध अवयवों का वर्णन करत समय ऐसे विशेषणों का प्रयोग
किया गया है कि वे विशेषण विभिन्न देवताओं के भी वाचक हैं । इतिवि-
दमयस्ती को सर्वदेवमयी कहा गया है ।]

किं चान्यत्—

नक्षत्रमयीय निर्मिता विधिना ॥

तथादि—

भद्रपदा ज्येष्ठा सुहृन्ना पूर्वोत्तरा सार्द्रहृदया मूलं कर्दपस्य ॥

भद्रपदा ॥ भद्रं पदं पादस्थायो यस्याः ज्येष्ठा प्रथमायाम् । शोभनी हस्तौ
यस्याः । पूर्वोत्तरासुतर्क वयो यस्याः । सार्द्रमनिष्ठुर हृदयमस्याः । कामस्य मूलं
कारणम् । पदे भद्रपदा ज्येष्ठा हस्तः पूर्वा उत्तरा आर्द्रा मूला नक्षत्राणि ॥

ब्रह्मा ने उसे नक्षत्रमयी बनाया है क्योंकि—

यह भद्रपदा ज्येष्ठा (सुन्दर पदविन्यास करने वाली) है और अपने पिता
की ज्येष्ठ संतान) है । सुहृन्ना (सुन्दर हाथ वाली) है । पूर्वोत्तरा (उत्तर
उत्तर देने वाली) है । सार्द्रहृदया (स्निग्ध हृदयवादी) है । कर्दपस्य
(काम की जड़) है ।

[भाद्रपद, ज्येष्ठा, हस्त, पूर्वा, उत्तरा, आर्द्रा आदि नक्षत्रों के नाम हैं । इन नामों से उसकी समानता है इसलिये उसे नक्षत्रमयी कहा गया है ॥]

निं बहुना—

लावण्यानिशयः स कोऽपि मधुरास्ते केऽपि दृग्विभ्रमा.

सा काचिध्रवकन्दलीमृदुतनोस्तारुण्यलक्ष्मीरपि ।

सौभाग्यस्य च विभ्वविस्मयकृत सा कापि संप्रधया

लग्नानङ्गमहाप्रह्ला इव कृता सर्वे युवानो जना' ॥३३॥

छावपवेनि ॥ नवकन्दलीवन्मृदुतननुर्वपुर्वस्या ॥ ३३ ॥

और क्या कहें—

वह कोई अलौकिक ही सौन्दर्यातिरेक है । दृष्टियों के वे मधुर विलास भी अलौकिक हैं । नवीन अङ्कुर की तरह कोमल अङ्गों वाली (उस सुदरी) की यौवनशोभा भी अपूर्व ही है । ससार को आश्चर्य में डाल देनेवाली वह कोई अलौकिक सौभाग्य सम्पत्ति है जिसके कारण कामरूप महाप्रह्ला सभी युवकों को पकड़ लेता है ॥ ३३ ॥

[महाप्रह्ला—राहु, शनि आदि अत्यधिक अनिष्ट करने वाले महापह्लों की तरह काम युवकों को सताता है ॥]

राजा—‘ततस्तत’ ।

राजा—‘इसके आगे ।’

हंसः—‘ततस्तस्या पुनरिदानी—

दूराभोगभरेण भुग्मगतिना हिलघा नितम्बस्थली

धत्ते स्पर्णसरोजकुड्मलजला मुग्धं स्तनद्वन्द्वकम् ।

आलापा स्मितसन्दरा परिचितभ्रविभ्रमा दृष्टय-

स्तस्यास्तर्जितशैशवव्यतिशरं रम्यं वयो वर्तते ॥ ३४ ॥

हंस—इस समय उसके नितम्ब गति को स्मरित कर देने वाले विस्तार के भार से एक दूसरे से मिल गय है । मनोहर स्तनयुगल स्वर्णकमल की कलिका की शोभा धारण कर रहा है । बाणी मुसुराहट से मण्डित है । दृष्टि ध्रुविलास में परिचित है । शैशव अवस्था में मिलन डोढ़कर यौवन की अवस्था रमणीय हो गयी है ॥ ३४ ॥

[शैशव अवस्था यौवन की तर्जना में सङ्कुचित हो गयी है । तारुण्य अपनी तरुणार्ध दिखा रहा है ॥ ३४ ॥

तदेव तस्या भकलयुवजनमनोमयूरयासयष्टे समस्तसंसार-
सौन्दर्याधिदेवताया. कथितो वृत्तान्त. ॥

इतः तद्वत् संपूर्णं युवको ने मानसम्पूर का निवासावाग तथा साधुनी
मिरास-सोम्य की अधिप्राप्ति, उस सुन्दरी का वृत्तान्त मैंने कह चुकाया ।

किमप्यतः

हरचरणारोजारोधमावातपुण्यः

परमपुङ्गवकन्दो मन्दमोघः ॥ ३० ॥

अपि जयत् रा मरतां दुर्लभो लघ्वयतेऽपि म-

मिति वधितकथाः सप्तोऽपि हंरतो व्यरंसीत् ॥ ३१ ॥

इति श्रीविधिमगधस्य दृगो दमयन्तीकथायां हरचरणारो-

जाङ्गमायाम् द्वितीयः अध्यायः समाप्तः ॥

— — —

इति विधिमगधस्य दृगो दमयन्तीकथायां तन्त्रेण सप्तः अध्यायः ॥

सप्तमोऽध्यायः विधिमगधस्य दृगो दमयन्तीकथायां तन्त्रेण सप्तः अध्यायः ॥ ३२ ॥

इति श्रीविधिमगधस्य दृगो दमयन्तीकथायां द्वितीयः अध्यायः समाप्तः ॥

— — —

वया अभिज—

भगवान् शंकर ने धर्मकर्म की आराधना के कारण पुत्रप्राप्ति तथा
उत्पत्ति पुत्रों का वृत्त कह चुका था । मैं उसी विषय-वार्ता करता हूँ जो
उस दुर्लभ को प्राप्त करेगा । इतः तद्वत् सारी वया कहकर वह हूँ श्री विधिम
गध कर लिया ॥ ३२ ॥

द्वितीय अध्याय समाप्त

— — —

चतुर्थ उच्छ्वासः

एवमेतदाकर्ण्य राजा तत्कालमाधूर्णितमाश्चर्येण, आकुलितमौत्सुक्येन, आमन्त्रितमुत्कण्ठया कटाक्षितकन्दर्पेण, अभिवादितं रणरणकेन, उद्योत्कारितमाग्रहग्रहेण, पृष्ठकुशलमकालतरलनया, स्वीकृतमस्यास्येन, अवलोकितं चिन्तया चेतस्वं स्वयमेव म्यस्थीकृत्य वितर्कितवान् ॥

यह सुन राजा शीघ्र ही आश्चर्य में पड़ गया । उत्सुकता से व्याकुल हो उठा । उत्कण्ठा से भर गया । कामदेव के कटाक्षों का विषय बन गया । चिन्ता ने ममस्कार किया । चित्तवृत्ति भाग ही बन गयी । असामयिक चञ्चलता से कुशलता पीछे पड़ गयी । चित्त ने चिन्ता का अवलोकन किया । राजा ने स्वयं ही किसी किसी तरह चित्त को स्वस्थ कर अनुमान लगाया ॥

प्रायः सैव भयेदेवा पाश्याद्वापि या मया ।

युगायितं विनिद्वस्य यत्कृते मे त्रियामया ॥ १ ॥

प्राय इति ॥ यदर्थं मे मम विगतनिद्वस्य त्रियामया शब्दा युगेनेवाचरितम् ॥ या च पशिकाभमया धृता । सैवेय हसेनापि कथिता प्रायो भवेत् । युग कृतयुगादि ॥ त्रियामयेति त्रिसक्यामितप्रहरशत्रिवाचकत्वेन साभिप्रायम् । प्राय शब्दो वितर्क ॥ १ ॥

प्राय वही यह सुन्दरी है जिसके सम्बन्ध में मैंने उस पक्षि से सुना था और जिसके लिये मैं सोने के कारण तीन ही प्रहर की रात मुझे युग की तरह प्रतीत हुई थी ॥ १ ॥

तदेतन्मे—

तद्वार्तामृतपानार्थि भूयोऽपि ध्वणेन्द्रियम् ।

तृप्यते केन दानन्दकन्दे कान्ताकथानके ॥ २ ॥

दमयन्ती सम्बन्धी वार्तामृत पीने के लिये कान उरकण्ठित हो गय, क्योंकि दानन्द के मूल प्रियाविषयक चर्चा से कौन तृप्त होता है ॥ २ ॥

तत्किमेनं पुन पृच्छामि ॥

नेदं नायकस्यालम् ॥

नेदमिति ॥ नायकस्य ईदृश स्थान स्थितिरौचित्य न भवतीत्यर्थः । यतो यैर्यं हि नायकपद परम वदन्ति ॥

प्यास के भार को समाप्त कर देने वाला, सरोवर-जल अपनी लहरियों के कारण बहुत मनोहर लग रहा है। यहाँ के कमल भनभनाते हुए झमरो तथा महत्वपूर्ण पराणों को धारण कर रहे हैं ॥ ५ ॥

‘त्वमपि भद्रे वनपालिके कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममादाय भुक्तावसानास्थानगोष्ठोस्थितस्य मम समीपमेप्यसि’ इत्यभिधाय राजा राजभवनमयासीत् ॥

कल्याणी वनरक्षिका, तुम भी जब यह कमलघेपी के नीचे पूरी त्रीश कर ले तो भोजन के बाद विद्याम-गोष्ठी में बैठे हुए मेरे पास इसे लाना” यह कह कर राजा राजभवन चले गये।

गते च राजनि राजीविनीनां जीवितसमाः समास्वादयन्स्वादुको-मलमृणालकन्दली, दलयन्दलानि, कवलयन्यहलमधुरस्निग्धमुकुलानि, अनुशीलयन्शीतलशैबलावलीः, विलासेन स हंसस्तरंस्तरङ्गान्तरेषु चिरं चिक्रीड ॥

राजा के चले जाने पर कमलिनियों के प्राणसहस्र कोमल मृणालमूलों को आस्वादित करता हुआ, पुष्पपत्रों को बिदलित करता हुआ, पर्दाप्त मधुर तथा चिकनी कलियों को खाना हुआ, ठंडी शैबल (सेवार) पत्तियों को छूता हुआ, बिलासपूर्वक जलतरङ्ग में तैरता हुआ वह हंस देर तक खेलता रहा।

चिन्तितवांश्च तेन राज्ञा कृतकमलमालानितम्बकक्रीडमिममादाय मत्समीपमेप्यसि’ इति दिग्दर्शार्थमिवादिष्टा वनपालिका। ‘तत्र युक्तमिह चिरं स्थातुमिति’ ॥

चिन्तितवांश्चेति ॥ तेन राज्ञा इत्यमुना प्रकारेण दिग्दर्शार्थमिव यथाभवति तथैव वनपालिकादिष्टाः इतीति किम् । यत् कृता कमलमालाया नितम्बके वनप्राये मध्यप्रदेशे क्रीडा येनेति राज्ञामिष्टाय । मालाशब्दगतस्त्रीत्वेन कमलमालाया साक्षास्त्रीः साप्यवसायाञ्चितम्बकब्द इत्यवयवोऽपि तद्वर्धमात्रे प्रयुक्तः । हंसैव देवं प्रतीतम् । यया कृतक कापटिकं वा । यया जलमस्यर्थम् । आलानित बद्धम् । तथा बकवत् क्रीडा यस्य । तादृशमिमं गृहीत्वा मत्समीपमायास्यसीति ॥

उसने सोचा भी कि राजा ने “कृत-कमल” इत्यादि द्वयर्थक वाक्यों में वनपालिका को आज्ञा दिया है।

[यर्थात् कृतक (छद्मवेषधारी) को जलम् (पूर्वरूप से) आलानित (झूललित) कर बकक्रीड (मनुष्यों की तरह छटपटाते हुए की स्थिति में) मेरे पास लाना ।] इसलिये यहाँ बहुत देर तक ठहरना अच्छा नहीं है।

इत्यस्थान पवाशङ्कमान सह तेन राजहंसकदम्बकेनाभ्यरतल-
मुदपतत् ॥

तत्र च व्यतिकरे दिवापि स्फारस्फुरत्तारामण्डलमिव, विकच-
नवकुवलयवनगहनमिव, अन्तरान्तरोन्निद्रकुमुदखण्डमुद्गीनास्ते क्षण-
मशोभयन्त नभस्तलम् ॥

अनवर मे ही इस तरह की आशंका करता हुआ राजहंस बग के साथ
आकाश में उड़ गया ॥

उस समय, दिन में भी स्पष्ट चमकते हुए तारों की तरह, झिले हुए नवीन
कमलवन की घनता की तरह, बीच-बीच में झिले हुए कुमुदखण्ड की तरह उड़े
हुए वे इस आकाश को सुशोभित किये ।

[आकाश में जहाँ हंसों को पक्ति घनी हो जाती थी वहाँ वे घने कमलवन
की तरह लगने थे । जहाँ एक दूसरे से कुछ अन्तर पड़ जाता था वहाँ बीच बीच
में झिले हुए कुमुदखण्ड की तरह लगते थे ।]

अविलम्बिताश्च न चिराद्वापुर्वेदर्भमण्डलमण्डनं कुण्डिनपुरम्—
अचतैरश्च चकितचलश्चक्रवाकालोऽस्यमानकृतान्धकारघिन्नमध्र-
मद्भ्रमरभरभग्यमानाम्मोजभाजि राजभवनासन्नकन्यान्त पुरोधान-
कांडासरसि ॥

बिना कहीं स्के जन्दी ही विदर्भ देश के अन्धकार स्वरूप कुण्डिन नगर में
पहुँच कर राजभवन के पास कन्याओं के अन्तपुर के उपवन वाले श्रीडासरोवर
में उतर गये जहाँ घूमते हुए चक्रवाक चकित होकर पड़ रहे थे । अन्धकार का
दृश्य उपस्थित कर देने वाले घूमते हुए भ्रमरों द्वारा कमल सज्जित किये जा
रहे थे ।

[भ्रमर इतना अधिक थे कि उनकी कालिमा रात्रि की छान्ति उत्पन्न
कर देनी थी । इसीलिये चक्रवाक डर जाते थे । रात को चक्रवाक दम्पनी का
एक दूसरे से वियोग हो जाता है अतः रात से तो वे डरते ही हैं, रात के
सदृश पदार्थ से भी डर जाते हैं ।]

सरभसप्रश्रितेन सरस्तीरविहारव्यसज्जिता कन्यकारत्ननेन निवे-
दितास्तानवलोकयितुमतिकौतुकेन दमयन्ता कन्यान्त पुरात्पुराण-
मदिरारुणायताक्षी क्षिप्रमाजगाम ॥

आगत्य च चटुलतरचरणचञ्चुप्रहारविदलितास्विन्दकन्दलानु-
चालयालनलिनीवनविहारिणस्तान्प्रद्वीतुमेवैकशः सखीजनमादिदेश ॥

स्वयं च चलवलयचारववाचालिनप्रकोष्ठेन सविलासं विस्मय-
करं करपल्लवेन तं राजपुत्रो राजहंसमुच्चिक्षेप ॥

शीघ्रता से दोड़ी हुई, सरोवर तटपर विहार के अभ्यासी लड़कियों द्वारा बनाये जाने पर उन्हें देखने के लिये बड़ी उत्सुकता से पुरानी मंदिरा की तरह लाल आँखों वाली दमयन्ती शीघ्र अन्त पुर के बाहर आ गयी। और आकर चल धरण तथा चञ्चुओं के प्रहार से कमलदलों को तोड़ देने वाले, छोटी छोटी कमलिनियों के वन में प्रगल्भतापूर्वक विहार करनेवाले उन हंसों को एक-एक कर पकड़ लेने के लिये सब्बियों को आज्ञा दी। स्वयं भी (वह राजकन्या दमयन्ती) चल ककण की मनोहर ध्वनि से युक्त भणिबन्ध वाले करपल्लव से उस विस्मयकारी राजहंस को लीलापूर्वक उठाली।

पाणिपद्मजस्थित एव सोऽप्यभिमुखीभूय विभाव्य च चेतश्चम-
त्कारकारिणमस्यां कान्तिविशेषमाशियमदात् ॥

वह भी उनके हाथ में ही स्थित रहकर, उनकी ओर मुख कर चित्त को चमत्कृत कर देने वाले उनके अलौकिक स्वरूप को पहचान कर आशीर्वाद दिया। हे रम्भोक, (कदली-सदृश ऊँचवाली दमयन्ती,)

‘कन्दर्पस्य जगज्जैत्रशस्त्रेणाश्चर्यकारिणा।

रूपेणानेन रम्भोक दीर्घायुः सुखिनी भव ॥ ६ ॥

कन्दर्पस्येति ॥ रूपेणोद्युपलक्षणे तृतीया। रम्भावदूरु यस्या। ‘उरुतर—’इत्युटि सगुहो इत्याद्यम् ॥ ६ ॥

आश्चर्य उत्पन्न कर देने वाले कामदेव के जगद्विजयी अस्त्र, तुम इस सौन्दर्य से मण्डित होकर चिरकाल तक जीओ और सुखी रहो ॥ ६ ॥

अपिच—

निर्माय मध्यमेव विस्मितमना. सौन्दर्यसारेण यं

म्वव्यापारपरिश्रमस्य कलशं चेन्ना समारोपयत्।

कन्दर्प पुरुषां स्त्रियोऽपि दधते दृष्टे च यस्मिन्सति

द्रष्ट यावधिरूपमाप्नुहि पतिं तं दीर्घनेत्रं नलम् ॥ ७ ॥

निर्मायेति ॥ दर्पमहकार पुरुषा क दधते। न कमपीत्यर्थ। स्त्रिया पुन कन्दर्प मन्मथ दधते। सक्रामा भवन्तीत्यर्थ। अपि पुनरर्थं समुच्चये वा ॥ ७ ॥

सौन्दर्य के उत्तम भाग से जिसका निर्माण कर स्वयं ब्रह्मा आश्चर्य में पड़ गये और वे अपने व्यापार श्रम का कदम जिसके ऊपर रखे, जिसे देखकर पुरुष दर्पहीन हो जाते हैं और स्त्रियाँ कामपूर्ण हो जाती हैं। दर्शनीय

रूप की सीमा को धारण करने वाले उस विशाल नेत्र नल को पति रूप में प्राप्त करो ॥ ७ ॥

[कलाकार मन्दिर बना कर कला को सबसे ऊपर रखता है । कला लगा देने के बाद उसे और करने के लिए अवशिष्ट नहीं रह जाता । कला रस धन का साप्यम् है कि उसे जितना कोशल दिखाना था वह दिखा चुका । कलाकार ब्रह्म भी अपनी कला का कला नल पर ही रखे हैं । नल ब्रह्मा की कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना है ॥ ७ ॥

दमयन्ती तु नन्मिन्द्रणे 'क संस्कृतवाचः पश्चिणो विषक्षितवा-
चश्च' इति मनमि विम्भयं मयं च, 'नामाप्याह्लादजननं नलम्य'
इति वपुषि वेपथुं रोमान्चं च हृदयेऽनुरागमौत्सुक्यं च, समकाल-
मुल्लोलायमानमुद्बहन्तां विम्भयांचकार ॥

दमयन्ती तो उसी समय, "कहाँ ये संस्कृत बोझने वाला और तप्यपूर्ण बातों को कहने वाला पक्षी ।" यह सोचकर मन में आश्चर्य और भय, "नल का नाम ही आह्लादजनक है ।" इस अनुभव से शरीर में कम्प और रोमान्च तथा हृदय में प्रेम औत्सुक्य, सब की एक ही साथ वरञ्जित स्थिति में धारण करती हुई सोचने लगी ।

'सोऽयं धस्तेन पान्येन यान्त्या गौरीमहोत्सवे ।

नलोऽप्यनल धवासीद्वर्णितो मे पुरः पुरा' ॥ ८ ॥

सोऽयमिति ॥ यो नलः सः दमयन्तलः । परिहारे खनलो बद्धि । स्मरन्ता पहेतुः ॥ ८ ॥

गौरी महोत्सव में जाने समय मेरे सामने उस पक्षि ने इसी नल के बारे में वर्णन किया था जो नल होता हुआ भी अनल था ॥ ८ ॥

अथास्या सखी परिहासशीला नाम नाम्नैव नलम्योद्भिन्नबहल-
पुलकाट्कुरामिभामवल्लोभ्य नर्मालापमकरोत् ॥

इसके बाद इसकी परिहासशीला नाम की सखी नल के नाम से ही इसे पूर्ण रोमाञ्चित देखकर कुछ मधुर चर्चा प्रारम्भ कर दी ।

कोष्णं किं नु निषिच्यते तव बलानैलं मखि श्रोत्रयो-
रन्तस्तिरिपिषि पत्रमयथा मन्दं मृदु आम्यति ।

येनाङ्गेपु निष्ठातमन्मयशरप्रस्कारपिच्छच्छवि-

नीलीमेचकितोच्चकञ्चुकदचं रोम्णां बहत्युद्रमः ॥ ९ ॥

कोष्णानिति ॥ सखीस्थामन्त्रणे ! म्विति चितकें । तव कर्णयोर्मध्ये किं बलातैल निषिच्यमानमस्ति । किं वा मृदुतित्तिरिपिच्छ मन्द भ्रमदर्शय । येन हेतुना । अङ्गेषु शरीरावयवेषु । निमग्ना ये कामशरा तेषां प्रस्फाराणि पिच्छानि तद्वच्छविर्यस्य स तथोक्तो रोमणामुद्रमो रोमाङ्गो नीक्ष्या ओपधिविशेषेण मेचकितस्य श्यामलितस्य उच्चकम्बुकस्य कान्तिं दधाति । प्रस्फारस्व पिच्छानामप्रवेशे हेतु । अन्यथा शरीरु प्रविष्टेषु पिच्छान्यपि कथं न प्रविष्टानि तेन पिच्छव्यविरनि कविराचष्टे ॥ ९ ॥

सखी ! क्या तुम्हारे कानों में कुछ गरम बला तैल छोड़ा गया है ? या तितिल पक्षी का कोमल पल कानों में धीरे-धीरे घुमाया जा रहा है, जिससे तुम्हारे अङ्गों में घुसे हुए कामबाण के स्पष्ट पङ्क्तों जैसी कान्ति वाला उठा हुआ रोम-समूह नीली (रङ्ग) से रङ्गे हुए चमकीले उरकृष्ट कम्बुक की कान्ति को धारण कर रहा है ॥ ९ ॥

[बाणों की पूँछ पर पङ्क्त लगाने की परम्परा थी । दमयन्ती के रोमाङ्ग के रोम कामबाण के पङ्क्त सहज दीखते हैं । रङ्ग की दृष्टि से वे नीले कम्बुक की तरह दीखते हैं] ॥ ९ ॥

दमयन्ती तु तस्याः सखैलक्ष्यस्मितमेघोत्तरं कल्पयन्ती शनै शिरःकम्पतरल्लिठावतंसोत्पला सलज्जा खलद्विलोचनान्तेन ताम-तर्जयत् ॥

अथादीच्च तं राजहंसम् 'अहो महानुभाव, सर्वथाश्चर्यद्वैतुरसि ॥

विस्मय के साथ मुस्कराती हुई धीरे-धीरे शिरः कम्पित करने में हिलने हुए कर्णभरण वाली लज्जावती दमयन्ती भी अपने चञ्चल कटाक्षों से उसे तर्जित की और राजहंस से बोली—'ओ महानुभाव, सब तरह से आश्चर्य के हेतु हो ।

तथाहि—

द्रष्टव्यानुरूपं रूपम्, महाश्चर्यगर्भाः प्रपञ्चितवाच्या घाचः, सूचितसंस्कारातिरेको विवेकः, सौजन्याश्रयः प्रश्रयः, निष्कारणोप-कारधात्री मैत्री ॥

अथोक्ति—

तुम्हारा रूप सर्वथा दर्शनीय है । बहुत आश्चर्यपूर्ण तथा विशिष्ट अर्थों से सम्पन्न वाणी है । विचार शक्ति अद्भुत संस्कार की सूचना दे रही है । नम्रता सौजन्य व्यक्त कर रही है । अकारण उपकार करने वाली मैत्री से आप सम्पन्न हैं ।

तत्त्वमनेकधा जनितविस्मयो बहु प्रष्टव्योऽसि ॥

इस तरह बहुत से आरक्षकों को जय देने वाले भाव से मुझे बहुत कुछ प्युछना है ।

किं तु प्रम्नुतं पृच्छाम' ॥

कथय । योऽयमात्मरूपसम्भावितवन्द्यर्पदंदायानलो नलो नाम ॥
यस्यैतानि मन्दरमथनक्षणशुभितभीरसागरतक्षधमभ्रान्तिभाञ्जि
भ्रमन्ति यशांसि' ॥

किन्तु प्राप्तज्ञित बाव ही पूछनी हैं ।

कहिये, यह नव नाम का अर्थ किन है ? जो अपने रूप से कामदेव
के अहङ्कार रूप बनामि को उद्दीप्त कर दिया है, जिसने यश मन्दरावन
से मधे जा रहे भीरसागर की तरङ्गों की तरह चक्कर काटने हुए घूम
रहे हैं

इत्येवमुक्त सोऽपि सुन्दरि, यद्येवमुपविश्यताम् । अथर्थायता
मन । श्रूयता सविधम्भम्' इत्यभिधाय कथापतुमारब्धवान् ॥

ऐसा बड़े ऋते पर उगते भी, 'सुन्दरि' !

यदि ऐसी बात है तो बैठिये, बिल एकाग्र कीजिये, विशिष्ट न होकर
सुनिये ।' यह कह कर कहना शुरू किया ।

'अस्मि समस्तसुरासुरलोकवर्णपूरीहृन्मन्त्रकीर्तिकुन्दकुसुम,
कुसुमायुधनपरमणायदेहप्रभं, प्रभावयुक्तो विप्रभायश्च, नुचिरगुपता
पकारा न, घनागमममयो न चारिषल्लभ्य, शिशिररूपभायो न आङ्ग-
युक्तश्च, राम कुशलशयोरावणीयवेन जनको येदेहभागेन, नैवध
प्रजातां पति, विरञ्ज इव नाभिभूत समरे सीते योरत्नेनो नाम ॥

अस्मिन् प्रभावो माहात्म्यम् । विशालो मां तेजोऽवतीति । विशेषे विशिष्टे
नामं शुचि पुण्यम् विशेषे तु प्रीप्सु । यद्विषयकाश—शुचि शुद्धेऽनुपदत्ते
मृद्गारावाडयो' इति । 'वीप्सु हृन्मन्त्रेऽपि' इति ॥ घना प्रचुर आगम सिद्धान्तो
यस्य । वा समुच्चयः । अरि शत्रुः । विशेषे घनागमममयो वर्षाकाल । म च
चारिषल्लो भवति ॥ शिशिर कीनो मायकल्लुबी च । आङ्गं भीरुर्धृतिश्च ।
हृन्मन्त्रवर्णगीतकान्त्यतिरेकः । तथा कुशलेन चतुरेण ययोदश्यामौधुपण राम
आह । तथा विशेषे देशस्थेय मय चेदेहो भागस्तेन जनकावयमुपनिप्रतिम ।
अयमत्र रामो दाशायि । वै विरजः । दहरय मां कान्ति यस्मिन्ति स्यात्तीति इति
हृन्मन्त्रवर्ण देशप्रभावग शररकात्म्यबुद्धिरिहा रामजीवनेन सौम्येयम् । कुशल
लक्ष्य च जनको जगदिना । नैवध निवधदेशीय प्रजापती राजा । समरे युद्धे
न कदाचिदभिभूत । विरञ्जतु विष्णुनाभेर्भूतो ज्ञान ॥

अपने उज्ज्वल कीर्तिकुन्द के फूलों से सुरलोक तथा असुरलोक के कानों को भर दिया है। कामदेव की तरह रमणीय शरीर शोभा से सम्पन्न है। प्रभावयुक्त होता हुआ भी विप्रभाव (प्रभावहीन) है। विरोध। प्रभाव-सम्पन्न है और विप्र+भाव ब्राह्मण में रहता है। परिहार। शुचि (श्रीम) है लेकिन ताप नहीं देता। (वि) शुचि (पवित्र) है। किसी को ताप (दुःख) नहीं देता। परि। घनागम समय (बादल आने का समय) है लेकिन बारिबहुल (जम्बूबहुल) नहीं है। वि०। घनागम-समय (पर्याप्त वैदिक सिद्धान्त वाला) है और (वा) अरिबहुल (शत्रुबहुल) नहीं है ॥

शिशिर स्वभाव (ठंडा) है लेकिन उसमें जलता नहीं है। (वि०) ठंडे स्वभाव का है लेकिन जलबुद्धि का नहीं है। परि। कुश और लव की रमणीयता में जैसे राम (प्रशस्त) थे वैसे वह भी कुशल (सुन्दर) अवस्थागत सौन्दर्य के कारण राम (रमणीय) है। वैदेह (राज्य भाग) के कारण जैसे जनक (प्रशस्त) थे वैसे ही वे (निश्चित रूप से) देह (शरीर) की कान्ति के कारण यह भी (आह्लाद का) जनक है। ब्रह्मा जैसे नाभिभूत (नाभिदेश-उत्पन्न) है वैसे वह भी समर (सुख) में कभी भी न + अभिभूत (पराजित नहीं) है। निषध देश की प्रजा वह पराक्रमी स्वामी है। उसका नाम वीरसेन है ॥

यस्य च बहुशोभयाङ्गप्रभया सह स्फुरत्पुदारा मनोवृत्तिः, अखण्डनयाशया सहशरीराजते राज्यस्थितिः, सज्जया सेनया सह श्लाघनीया कृपाणयष्टिः ॥

यस्य चेति ॥ अत्र प्रथमतो नृतीयो श्लेषः । बहुश इति । अभया भयरहिता । नृतीयाङ्गे बहुशोभा यस्यां नया । तथा अखण्डौ भय पाद्गुण्य यस्याम् । नृतीयायो न खण्डनमस्या । तथा सम्शोभनो ज्यो यस्या । सेनापते सज्जया प्रथमया ॥

उसकी बहुश अभया (पूर्ण निर्भीक) मनोवृत्ति बहुशोभा (पूर्ण सौन्दर्य-सम्पन्न) अङ्गप्रभा (देहकान्ति) से ही प्रकट होती है। अखण्डनया (पूर्ण नीनिसम्पन्न) राज्य-स्थिति अखण्डना (अलङ्घनीय) आज्ञा से सुन्दर लग रही है। सज्जया (सुन्दर विजय देने वाली) तलवार सज्जा (तैयार) सेना के साथ सुशोभित हो रही है ॥

[इस अनुच्छेद में विभक्ति श्लेष है। एक शब्द से सभद्र श्लेष के आधार पर नृतीया के एकवचन और प्रथमा के एकवचन दोनों निकलने हैं। बहु-शोभया—मनोवृत्ति शब्द के विशेषण पक्ष में बहुश + अभया (अधिक निर्भीक)

और अङ्गप्रभा पक्ष में बहुशोभा (अत्यधिक शोभायुक्त) शब्द के तृतीया का एकवचन ।

अस्रष्टनया—राज्यस्थिति पक्ष में प्रथमा का एकवचन है अर्थात् राज्य-स्थिति अस्रष्ट (पूर्ण) नीति से सम्पन्न है । बाजा पक्ष में अस्रष्टना शब्द के तृतीया का एकवचन है । अर्थात् अनुल्लङ्घनीय बाजाओं से नीति सम्पन्न राज्यस्थिति मुहठ है ।

सज्जया—कृपापयष्टि पक्ष में प्रथमा का एकवचन है । अर्थात् सुन्दर जय देने वाली कृपापयष्टि । सना-पक्ष में सज्जा शब्द के तृतीया का एकवचन है । अर्थात् विजय देने वाली कृपापयष्टि से तैयार सेना से मुशोभिष्ठ है । }

यश्च सभृङ्गारो नारीषु, वीरो वैरिषु, वीमत्सः परदारेषु, रौद्रो द्रोहिषु, सहास्यो नर्मलापेषु, मयानकः संग्रामाङ्गणेषु, सकलण शर-पागनेषु ॥

वह नारियों पर भृङ्गारवान् रहता है । शत्रुओं पर शीर्ष दिखाता है । दूसरे की स्त्री को अपने लिए अप्राप्त समझता है । द्वेषियों पर क्रोध प्रदर्शित करता है । नम्रतापूर्ण बात के प्रसङ्ग में मुस्कुराता है । लड़ाई के मैदान में भयङ्कर बन जाता है । शरण में आये हुए लोगों पर दया दिखाता है ।

यस्य च चतुरुदधिनीटीटीकमानशरच्छबन्द्रविशद्वयशोराशिराजहं-
मस्य निखिंशता कृपाणेषु, कुचातुर्यं कलत्रेषु, कूपदेशसेवा पाप-
धिंकेषु लुब्धकपर्यायः कैवर्तकेषु तीक्ष्णता शस्त्रेषु धर्मच्छेदो धनु-
र्विद्यायाम् ॥

यस्य चेति ॥ निखिंशता खड्गाखम् । कुचाभ्यामातुर्यं दुर्बहभारत्वात् । कूपदेश-
स्य सेवाभ्याम्यामेतु तथा लुब्धक इति 'पर्यायं एकार्थं शब्दान्तरम्' । तथा
धर्मनामा धुमं यन्मय धनुर्विधीयते । तस्य च्छेद कर्तनम् । कृपागादिष्वेव
निखिंशतादीनीति परिमण्योक्त्या न तस्येति शेषः । तस्य राज्ञोः 'न' । निखिंशता
क्षरकर्मण्यम् । कुम्भित चातुर्यम् । तथा कुत्सित उपदेशो येषां तथा दाम्भिकानां
सेवा । तथा कुम्भितो लुब्धो लुब्धकः । तस्य पर्यायः 'परिणामः' । मीधगता आय-
शून्किखम् । धर्मस्य पुण्यस्य च्छेदः ।

उसने शरत्कालीन चन्द्रमा की तरह अपनी शुभ कीर्तिराशिरूप रात्रि
हस्तों में चारा समुद्रों के तट को चिह्नित कर दिया है । खड्ग यहा निखिंशता
खड्ग (तलवार) में है, निखिंशता (क्षुरता) किसी ओर में नहीं है । कुचा-
तुर्य (कुचों स्तना) के भार से आतुरता) केवल स्त्रियों में है । कुचातुर्य
(अनैपुण्य) किसी ओर में नहीं है । कूपदेश सेवा (कूप के पास बैठकर मृगया
अन्यास करने का कार्य) केवल व्याधियों में है । दूसरे लोग कु + उपदेश

(अनुचित उपदेश) का सेवन नहीं करते । लुब्धक शब्द का समानार्थक कुछ है तो केवल कैवर्त (केवट) वर्ग ही है । लुब्धक (अनुचित लोभ का पर्याय परिपाक) और किसी में नहीं हुआ है । तीक्ष्णता शस्त्रो म है, कोई आदमी कटु स्वभाव का नहीं है । धर्मच्छेद (धर्म नामक पेड़ की लकड़ी से बने हुए धनुष का भङ्ग) धनुर्विद्या के अभ्यास के प्रसङ्ग में ही होता है । धर्मच्छेद (पुण्य का विघटन) कही और जगह नहीं होता ॥

एवमस्य हरस्येव करस्थं कृत्वाशेषमण्डलमनवरतविलयातविजयाभिनन्दिनः, सुन्दरकैलासनाभिरम्ययनान्तरेषु विहरत मदननिष्ठ ज्ञानैपधोपीनोच्चकुचकुम्भावापटम्भमसृणितवक्ष स्थलस्य सुखेनाभिक्रामन्ति दिवसाः ॥

एवमस्येति ॥ करे राजमाली स्थितमशेष मण्डल देशम् । अनवरतमधितविजयावैर्हृष्टस्य । क जलम् । एला लता । असन पीतमाल । तै सुन्दरैरभिरम्येषु काननविशेषेषु । विहरतस्तस्य सकामनिपधस्त्रीपीनोच्चकुचकुम्भयोरवटम्भेन मसृणित वक्ष स्थल यस्य तथोक्तस्य सत सुखेन यान्ति दिवसाः । विहरणकृन्मिह हरेण सहोपमम् । नदा । कर पाणि । शेषाक्यो नाग तस्य मण्डल कुण्डलाकार वपु । विजया गौरीमयी । नन्दी हरमतीहार । कैलासो गिरि नाभिर्मुखाध ॥

इस तरह भगवान् शंकर जैसे हाथ में शेषनाग लिये रहते हैं और सदा पार्वती की विजया नामक छली या भग के कारण प्रसन्न रहते हैं, सुन्दर कैलास पर्वत के नाभि (उत्कृष्ट स्थल) में विहार करते रहते हैं वैसे अश्व मण्डल (सम्पूर्ण देश) को करस्थ (अधिकार में रख) कर सदा प्रशस्त विजयो को प्राप्त कर प्रसन्न होते हुए, सुन्दर + क (जल) एला (इलायची) तथा असन (पीतमाल) के कारण अभिरम्य (रमणीय) वन में विहार करते हुए कामुक निपध देश की रमणीयो के कलशसदृश उत्क्ष स्वनो के सस्पर्श से कोमल वक्ष स्थल वाले उस राजा के भी दिन सुख से बीत रहे हैं ॥

रुदाचिञ्चतुरुदधिरेलावलयितयसुधराचिख्यातमपत्यमभिलपक्षना-
द्वरचरणाङ्गुष्ठनिष्ठयूतकैलासोन्मूलनागतपतद्दशवदनविरसविलतयिह
मितामरमण्डलामादनमहिमानमनवरतविरञ्चरचितविचित्रनामसाम-
यस्तुस्तुतिमनवरतसकललोकस्याणकामधेनुमनुपमवर्चसमर्चयाञ्च-
कार भगवन्तमभ्यिकापतिम् ॥

कदेति ॥ निष्ठयत निरसनम् । 'निष्टापितम्' इति पाठे तु नि शेषेण स्थापनम् । अविरतम् । विचित्रनामभिर्भगभगवत्त्रिनेत्रादिभिः । सामवेदार्थश्च । विरच्येन विरचितस्तुतिम् ॥

किसी समय, चारों समुद्रों से चिरी हुई पृथ्वी भर में प्रसिद्ध एक सन्तान की इच्छा से भगवान् शंकर की स्तुति किया जो (भगवान् शंकर) कैलास

पर्वत को उखाड़ फेंकने के लिए आये हुए पर्वत सहित, रावण को अनायास ही दैर के अंगूठे से दबा देने के कारण, उसका करन चीत्कार से हँसने हुए देवसमूह द्वारा पूजनीय महिमा वाले हैं, ब्रह्मा जिनके नामों पर आधारित सामवेद के मान्यम में सदा स्तुति किया करते हैं, सपूर्ण सत्कार के लिए जो सदा कामधेनु हैं और जिनका तेज अनुपमेय है ।

अतिमत्ति तोषितहरलब्धवरश्च निरुपमरूपयानुरूपया रूपवत्यभि-
धानयाप्रधानया प्रियया सह मकरकेतनकेलिफलमनुभवन्नतिश्चिरमा-
सांचक्रे ॥

अत्यन्त भक्ति में भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर उन्होंने वर प्राप्त किया । अनुपम रूप वाली रूपवती नामकी मनोनुकूल अपनी प्रधान पत्नी के साथ काम कीड़ा के पत्र का अनुभव करते हुए बहुत दिना तक सुखपूर्वक रहे ।

अतिक्रामन्ति तु कियत्यपि समये संपन्नसत्त्वा समपद्यत रूप-
वती ॥

हुत समय बीतने पर रूपवती गर्भवती हुई ॥

तेन च समस्तसंसारवस्तून्सृष्टृन्कान्त्रिकणकलितगर्भारम्भेण, नारा-
यणतामिरिव विरञ्जोत्पत्तिकमलकन्दयन्त्रेण, कल्पपादपल्लवे पद्म-
पारम्भोच्छ्वासेन, मनाङ्ग्मेदुरितोदरा रराज राजीधनयना राजपत्नी ॥

सपूर्ण सत्कार के पदार्थों से निकले हुए कान्तिकर्णों से निर्मित गर्भ के कारण उस कमलनयना राजपत्नी का उदर थोड़ा बड़ गया था, अतः वह ब्रह्मा को उत्पन्न करने वाले कलक मूल से (सुशोभित) नारायण के नाभिदेश की तरह और नवीन पद्म का आविर्भाव करने वाली कल्पवृक्ष की लता की तरह सुन्दर लग रही थी ।

क्रमेण च मेघकोल्लव्यूचुकुकुम्भकपोलिपाण्डिम्ना निम्नयन्ती
मृगलाञ्छितच्छायमवाञ्छदच्छामृतपयः पिष्टमूर्तिमग्नधुममयमदन-
मृगाङ्गमण्डलतरसेनात्मानमालेतुम् ॥

क्रमेण ॥ कुचकुम्भस्य चन्द्रमा । मेघकूचुकुम्भस्य सञ्चलनमुपमानम् । अञ्ज-
मनृतमेव यत्तयो नीर तेन पिष्टो घृष्टो योज्यौ मूर्तिमतां मधुमयमदनमृगाङ्ग-
मण्डलानां रस तेनालेप्नुमात्मानमिदेष ॥

क्रम से श्यामल कान्ति वाले उठे हुए कूचुक विजिट स्तनकलश तथा कपोल की मुन्नता से मृगलाञ्छन विजिट चन्द्रमा को भी नीचा दिखा रही थी । मूर्तिमान् वसन्त, कामदेव और चन्द्रमण्डल के रस हैं अपने आपको लिप्त करने की इच्छा कर रही थी ।

अग्रतः सखीजनविधृतमपास्य मणिमयमुकुरमण्डलमनवरतनिशा-
निर्मलकरवालतलेष्वात्ममुखकमलमवलोकयांचकार ॥

सखियों द्वारा गृहीत रत्नमय दर्पण को छोड़कर शान धराने के कारण निर्मल (चमकती हुई) तलवार में ही हमेशा अपने मुखकमल को देखा करती थी ।

[उत्पन्न होने वाली सन्तान अत्यन्त बली एवं साहसी हो, इसलिये, विलासिताद्योतक मणिमय दर्पणों को छोड़कर तलवार से ही दर्पण का कार्य ले रही है ।]

निरस्य नीलोत्पलमजरठकण्ठीरवकण्ठकेसरस्तयक्रमकरोत्कर्णाघ-
तंसम् ॥

नीलकमल को छोड़कर 'शुक्ल सिंह के नेहार के गुच्छे को कर्णभूषण बना रही थी ।

अतिथदलकुङ्कुमाङ्ककस्तूरिकापङ्कमपहाय मत्तमातङ्गमवकर्द्धमेन
निजभुजशिखरयोर्विचरयाचकार विचित्रपद्मभङ्गान् ॥

अत्यन्त गाढे कुङ्कुम में मिश्रित कस्तूरी लेप को छोड़कर मतवाले हाथी के मदपङ्क से अपनी बाहुओं पर सुन्दर पत्र रचना करती थी ।

एधमन्तःस्फुरद्गर्भानुरूपदोहदसुखमनुभवन्ती कदाचिदुच्चस्थान-
स्थिते सौम्यग्रहग्रामे, महाराजजन्मोचितेऽङ्घ्रि शुभसंभारकारणाय का-
लवेकार्या जातमाये प्रभाते प्रभाप्रतानजनितपरिवेपमनोपतेजस्विनेजः-
पुञ्जापहारिणमालोदितपादपङ्खयोऽलसितपङ्कजच्छायम्, घौरिय रवि-
मण्डलम्, उन्नमन्मेघमालेय विद्युल्लोलम्, अरणिरिय वितानवैश्वा-
नरम्, नरपालप्रिया प्रीणितगोत्रं पुष्पमजीजनत् ।

एवमन्तरिति ॥ घौरिपि ग्रमे रविमण्डलं जनयति । तमपि दीक्षिततिष्ठनवेष्टनम् ।
तथा समस्तदीपप्रभृतितेजस्विनेजोमुषम् । पादा किरणा । पुष्पपद्मे भा ईपत्
छोहितौ पादपङ्खौ तयोश्चलितपङ्कजवच्छाया यस्य । तथा विधुतां छोलनं छोलो
विलास । मण्डलः पुरयपि ॥

इस तरह भीतर स्पन्दित होते हुए गर्भ के अनुकूल इच्छा विशेष के मुख का अनुभव करती हुई, किसी समय, जब सुन्दर ग्रहों का समुदाय उच्च स्थान पर था, एक महाराज के जन्म के लिए उचित दिन में, सुखसमूह के कारणी-
भूत मूर्त में, जब भोर हो चला था, अपनी कान्ति के विस्तार से गोलाकार परिवेप बनाये हुए समस्त तेजस्वियों के तेजपुञ्ज का अपहरण कर लेने वाले

तथा अपने लाख किरण पञ्चव मे कमलकान्ति को उल्लसित कर देनेवाले सूर्य-
मण्डल को जैसे आकाश, बिजली के विकास को जैसे उमड़ती हुई मेघमाला
और विम्बुन अग्नि को जैसे वरणि (लकड़ी) जन्म देती है वैसे ही राजपत्नी ने
वंश को तृप्त कर देने वाले पुत्र को जन्म दिया ।

तत्र च दिवसे—

सांशुकोद्यतवंशस्य तस्य राज्ञः पुरस्य च ।

बभूव लक्ष्मीः सा कापि यथा स्वर्गोऽपि निर्जितः ॥ १० ॥

साशुकेति ॥ राज्ञः पुरस्य च सा काचिद्वरिणि शोभा । यथा स्वर्गश्चर्यातिहृषा
स्वर्गो देवः स्वर्गलक्ष्मी लोकाश्च त्रिनः अशुना रविगः सह सांशुक वधनो वशो
यस्य । श्वेद्वंशस्य च तुल्यमुद्यममिष्टम् । प्रप्रे तस्याप्युदितत्वात् । पुरं च सन्ना-
कोच्छित्तवेणुम् ॥ १० ॥

उस साशुकवध (सूर्यवशी) कुचीन राजा की और साशुकवध (बलविशिष्ट
श्वजा के बंसवाले) उस नगर की ऐसी शोभा हुई कि स्वर्ग मे रहने वाले देव
और स्वर्ग दोनों ही जीत लिये गये ॥ १० ॥

[अशुक किरण और बल दोनों अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है : बीरसेन सूर्यवशी
राजा था । स्वर्ग शब्द देव और स्वर्गलोक दोनों का वाचक है । राजपुत्र के
जन्म के उपलक्ष्य में नगर मे बड़ी ऊँची-ऊँची श्वजाएँ फहरा रही थी । अतः
नगर ने अपनी शोभा से स्वर्ग को जीत लिया और राजा भी अपने नवीन
वंशाङ्कुर में देवताओं की अवेज्ञा अधिक महिमावान् हो गया ॥ १० ॥]

अपिच—

सवृद्धयालाः कालेऽस्मिन्मुक्ताहारविभूषणाः ।

प्राप्ताः प्रीति पुरे पौर्य वनेषु च तपस्विनः ॥ ११ ॥

सवृद्धेति ॥ वृद्धः पितामहादि बाल पुत्रादिः । तस्यो सह । मौक्तिकहाराल-
कारणा पौराः । मुनयस्तु सवृद्धकेन्द्रः कृपादेरसंस्कारात् । तथा मुक्ता आहारा
यैः । तथा श्यपेनभूषाश्च ॥ ११ ॥

और—

उस समय मे नगर मे नगर निवासी बालक और वृद्ध मुक्ताहार
विभूषण (मुक्ताहार मे अलङ्कृत) थे जोर वन मे तपस्वी लोग मुक्ताहार विभूषण
(उपवास व्रत के कारण मण्डित) थे ॥ ११ ॥

[इतना दान दिया गया कि आबाल वृद्ध सभी मुक्ता के हार से अलङ्कृत
हो गये । तपस्वी लोगो ने वन मे नल की मङ्गलकामना में उपवास आदि अपने
व्रतों को और स्रष्ट कर दिया ॥ ११ ॥]

सूतीगृहे च—

अलंकृतनिशान्तेन तरुणारुणरोचिषा ।

प्रदीपानां प्रभा तेन प्रभातेन यथा जिता ॥ १२ ॥

अन्विनि ॥ येन प्रभातेनैव प्रदीपानां प्रभा जिये । अलंकृतं निशान्तं गृहं येन । तथा तरुणारुणो मध्याह्नार्कस्तद्वद्भोचिर्यस्य । अत एव दीपप्रभा निप्रभा । महामना हि भूयिष्ठेन तेजसा दीपप्रभाप्यभिमूयते । प्रभातेन ॥ अलमस्यर्थम् । तरुण्या मूनय्या अरुणस्य रविसारथे रोचिषा । कृतो निशाया रात्रेरन्तो येन । यदि वा अरुणरोचिषा लोहितकान्तिना तरुणोपलक्षितेन प्रभातेन तत्समये हि दिनकरकर-स्पर्शात्तद्वद्वो रक्तीभवन्ति ॥ १२ ॥

रात्रि के अन्तिम प्रहर को अलङ्कृत कर देने वाले तथा मध्याह्नकालीन सूर्य की तरह पर्याप्त कान्ति वाले उस (नवजाव शिशु) ने प्रदीपों की कान्ति को जीत लिया ॥

प्रभात पक्ष—नवीन एवम् अरुण कान्ति वाले, रात्रि के अन्तिम क्षणा को मण्डित कर देने वाले उस प्रातः काल ने प्रदीप की प्रभा को जीत लिया ॥ १२ ॥

[रात्रि के अन्त में आने वाला प्रभात जैसे तरुण अरुण की कान्ति से प्रदीप की प्रभा को नष्ट कर देता है उसी तरह उस नवोदित बालक ने अपने भास्वर तेज से दीपको की हतप्रभ बना दिया । बड़े तेज के सामने छोटा तेज बिलीन हो जाता है । उस तेजस्वी बालक के सम्मुख दीपक का तेज म्लान हो गया ॥ १२ ॥]

चिरात्पल्लवितं राजघंशेन, समुच्छ्रसित राज्यधिया, प्रीतं प्रण-
यिभिः, प्रनृत्त पोरैः, प्रमुदितं धान्धयैः, विद्राणं द्रोहिजनैः, उन्नखितं
वियत्यदृष्टमङ्गलशदिवैः, चित्रायितमनियद्वलपरिमलपतत्पुष्पवृष्ट्या,
बिफसितं दिग्धूयदनारविन्दैः, विलसितमतिशुरभिसुखस्पर्शसमीर-
णेन, स्वच्छन्दायितं चन्द्रीकृतारातिरमणीभिः, आट्यायितमर्यिलोकेन ॥

चिरादिति ॥ चित्रायित अभिविशेषविन्द्यामायितम् । कुमारजन्मोत्सवे गुप्तीनां मोक्षणाद्वन्दीनां स्वाच्छन्दम् । आट्यायितं श्यागानिधायो हेतु ॥

बहुत दिनों के बाद राजघश ने नवीन अक्षुर धारण किया । राज्यलक्ष्मी ने स्वास लिया । प्रेमी लोग प्रसन्न हो उठे । नागरिक लोग नाचने लगे । बन्धु लोग प्रसन्न हो गये । द्वेषी लोग विदीर्ण हो गये । आकाश में मङ्गल बाजे बज उठे । अरमन्त गाढ़े पराग बरसते हुए फूलों की घृष्टि से आकाश चित-कवरे रङ्ग का हो गया । दिग्गङ्गनाजो का मुखकमल खिल उठा । अरमन्त सुखद एवं सुगन्धित वायु ने अपना बिलास प्रदर्शित किया । बन्दी बनाये गये शत्रुओं

की पत्नियों ने स्वच्छन्दता का अनुभव किया । याचक लोग धनवान् जैसे हो गये ।

किं बहुना—

अबुष्टिनष्टधूलीकमसारनिर्मलाम्बरम् ।

अपीनमत्तलोकं च जगच्चन्मोत्सवेऽभवत् ॥ १३ ॥

अष्टोति ॥ वृष्ट्या हि धूली मरयति । सारदा घोरमलता । पानेनेन्मादा । पश्चेरसं तदन्तरेणापि जगदजायत न तदुत्पत्तिप्रभावः ॥ १३ ॥

उसके जन्मोत्सव में ससार वर्षा के बिना ही धूलिहीन हो गया । बिना सार काल आये ही आकाश निर्मल हो गया । बिना मदिरा पीये ही सब लोग मत्तवाले हो गये ॥ १३ ॥

[वर्षा से धूलि को मट होना चाहिये, सारकाल के प्रभाव से आकाश को निर्मल होना चाहिये । मदिरापान से ही लोगों को मत्त होना चाहिये । इन कारणों के बिना ही ये सब कार्य हो रहे हैं, यह सब उस नवजात शिशु का प्रभाव है ॥ १३ ॥]

भूते च धिमधभूयिष्ठे पृष्ठाज्ञागरण्यतिकरे, अतिक्रान्तेषु च सूतक-
दिवसेषु नामकरणोचितेऽह्नि न लाम्ब्यति धर्मधनान्येष साधुभ्यः'
इति ब्राह्मणाः, प्रविश्य तस्य 'नन्तः' इति नाम प्रतिष्ठापयामासुः ॥

भूते चेति ॥ प्रविश्येति । निमिच्छाम्यामुद्रिकलक्षणाज्जन्मलम्नाह्वा साधूनां धना-
ग्रहणे जन्ममुत्सवमिषायमाश्रित्येत्यर्थः ॥

ऐश्वर्यपूर्ण वातावरण में छ दिनों के बीत जाने पर और प्रभुति दीप
वाले दिनों के समाप्त हो जाने पर नामकरण के लिए उचित दिन में ब्राह्मण
लोगों ने आकर "साधुओं की धर्म सम्पत्ति को यह नहीं लेया" इसलिये नन नाम
रखा ॥

क्रमेण च चतुष्टयधिवेलावनविकासोचिनकीर्तिकुन्दकन्दलैर्विश्व-
विश्वंभरामिलम्भलम्पाकैः कुमारसेवकैरिष सकलचक्रवर्त्तिचिह्नैरलं-
कृताययवो धिम्नरजटालवालः, कल्पपादपाङ्कुर इव वर्धितुमारमत ॥

अनेमि ॥ कुमारमेवका युवराजानुचरा । तदुपमै राजचिह्नै रेखाङ्कनैश्चक्रचार-
कुलिगादिभिर्मूषेणाह । तथा विस्तरन्तो जटाला स्वमात्रजटाबन्धा बालाः कचा
यस्य । वृत्तचूडाकरमस्य हि केशा विजड्भीभवन्ति । कल्पवृक्षस्तु प्रमरन्मूला-
लवालः ॥

चारों समुद्रों के तट (पृथ्वी) के विकास के उपयुक्त कीर्ति के मूल, सम्पूर्ण
पृथ्वी की प्राप्ति के मूचक, चक्रवर्त्तों सम्राट की रेखाये उस बालक को सेवक
की तरह अङ्गङ्कृत कर रही थीं । कल्पवृक्ष का अङ्कुर जैसे विस्तर जटालवाल

[आलवाल (घाले) में फैलती हुई जटा (जड़) वाला] होकर बढ़ता है जैसे वह विस्तर जटालवाल (बढ़ते हुए जटा युक्त केशों वाला) बालक बढ़ना शुरू किया ।

[उसके शरीर में चक्रवर्ती सम्राट् के लक्षण थे । उन लक्षणों से ज्ञात होता था कि वह समुद्रान्त पृथ्वी का विकास करेगा और सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन स्थापित करेगा । यहाँ कल्पवृक्ष और बालक में केवल शब्दसाम्य है । दोनों ही विस्तर जटालवाल हैं । कल्पवृक्ष का अङ्कुर ऊपर की ओर तब बढ़ता है जब उसकी जड़ उसके आलवाल में खूब फैल लेती है । नियम सर्वविध वृक्षों के लिये है । जड़ जब नीचे फैलेगी तभी अङ्कुर ऊपर की ओर अधिक पल्लवित्त होगा । उस बालक के बढ़ते हुए बाल स्वाभाविक जटाओं से युक्त हैं ब्रूडाकर्म सस्कार के पहले बच्चों के बालों में जड़ बंध जाता है । उसी अवस्था का यहाँ वर्णन है । ब्रूडाकर्म सस्कार के समय मुडन कराया जाता है । मुडन के बाद के बालों का स्वाभाविक जटबन्ध गहो होता ।]

विरचितचूडाकरणादिसस्कारक्रमश्च प्राप्ते विद्याग्रहणकाले निमित्तमात्रीकृतोपाध्यायः स्वयमेव समस्तानवद्यविद्याम्भोनिभेः परं पारमथाप ॥

चूडाकरण सस्कार हो जाने पर विद्याग्रहण के लिये उचित समय में निमित्तमात्र के लिये अध्यापक का अवलम्बन लेकर उसने सम्पूर्ण पवित्र विद्याओं के सागर की अनायास ही पार कर लिया ।

तथाहि—

प्रबुद्धबुद्धिर्याद्वे, सविशेषशेमुपीको वैशेषिके, विख्यातः सांख्ये, रजितलोको लोकायते, प्राप्तप्रभ. प्राप्ताकरे, प्रतिच्छन्दकच्छन्दसि, अनल्पविकल्पः कल्पज्ञाने, शिक्षाक्षमः, शिक्षायाम्, अकृतापशब्दः शब्द-शाले, अभियुक्तो निरुक्ते, सज्जो ज्योतिषि, तत्त्ववेदी वेदान्ते, प्रसिद्ध-सिद्धान्तेषु, स्वतन्त्रमन्त्रावाधेषु, पटुः पट्वे, अप्रतिमरत्नो ह्तरत्नरीषु, निपुणः पणधेषु, प्रवीणो वेणुषु, चित्ररुच्चित्रविद्यायाम्, उद्दामः कामतन्त्रे, कुशलः शालिहोत्रे, श्रेष्ठः काण्डकर्मणि, सायल्लपो लेप्ये, पण्डित कोदण्डे, शौण्डः शारिषु, गुणवान्गणिते, बहुलो बाहुयुद्धेषु चतुरध्वतुरङ्गयूतक्रीडायाम्, उपदेशको देशभाषासु, अलौकिको लोकज्ञाने ॥

प्रबुद्धेति ॥ चित्ररुत्तलक्षण छन्दः । कल्प वितृदेवनागाराधनविधिशालम् । अकारादिवर्णान्मन्त्रस्थानानां बोधिना सिद्धिः । अन्वयस्य प्रकाशक निरुक्तम् । अतीन्द्रियशुभाशुभकर्मणां प्रकाशक ज्योतिषम् ॥

बौद्धदर्शन में उनकी बुद्धि प्रबुद्ध हो गयी । वैशेषिकदर्शन में विशेष पदतियों के जानकार हो गये । सांख्यदर्शन में पर्याप्त क्वालि प्राप्त कर ली । चार्वाक-दर्शन में लोगों को प्रभावित करने लगे । प्राभाकर (मीमांसा) में भी अच्छी प्रतिभा प्राप्त कर ली । छन्दःशास्त्र में भी नूतन-नूतन कल्पनाएँ करने लगे । कव्य (पित्रर लोगों की अर्चना विधि के) शास्त्र में पर्याप्त कल्पना प्रवृत्त हो गये । शिष्टा (बगों का उत्पत्ति विषयक ज्ञान देने वाले) शास्त्र को तो पढ़ा देने में समर्थ हो गये । व्याकरणशास्त्र में अनुसूत ही पदों का उच्चारण करने लगे । निरुक्त में भी प्रवीणता प्राप्त कर ली । ज्योतिषशास्त्र में भी सैवार हो गये । वेदांगत क रहस्यों की भी जानने लग गये । सिद्धांत ज्ञान में भी प्रसिद्ध हो गये । बीजा बजाने में भी कुशलता प्राप्त कर ली । नगाडा बजाने में पटु हो गये । ज्ञान बजाने में अनुपम हो गये । पनाह बजाने में मैपुण्य प्राप्त कर लिया । मैपु विद्या (बंशी बजाने) में प्रवीण हो गये । चित्र विद्या में आश्चर्य उत्पन्न करने लग गये । कामशास्त्र में प्रसन्न, अश्वविद्या (शास्त्रिहोत्र) में कुशल, वाद्यशास्त्र में श्रेष्ठ, रङ्गम कला में साहंकार, धनुर्विद्या में विद्वान्, दूत धेन्ने में उत्कृष्ट, गनिनविद्य. में गूणी, बाहुपुष्ट में सक्त, धनुरङ्ग दूत कीडा (एक विशिष्ट ढग क दून) में धनुर, विभिन्न देश भाषाओं के शिक्षक तथा लोकज्ञान में सबधा व्यापहारिक बन गये ॥

किं यदुना—

रसे रसायने ग्रन्थे शास्त्रे शास्त्रे कलास्यपि ।

नले न लेभिरे लोकाः प्रमाणं निपुणा अपि ॥ १४ ॥

रस इति ॥ रस पारदः । रसायन ज्ञानमज्ञाद्वय आश्रययोग । ग्रन्थः काव्य-शास्त्रादिश्रयता । शास्त्र गृह्यशास्त्र । शास्त्र व्याकरणतर्कादि । कला गीतनृत्यादयः । एतेषु निपुणा अपि मन्तो लोका नले रसि प्रमाणमिव लो न प्रापुः ॥ १४ ॥

अधिक कथा कहूँ—

रस, रसायन, कव्य, काव्य, शास्त्र और कलाओं में निपुण लोग भी नल में (रहने वाले ज्ञान की सीमा तक) नहीं पहुँच सके ॥ १४ ॥

[रस शृङ्गार आदि काव्यरसों और पारद आदि द्रव्य रसों के प्रपन्न में प्रयुक्त होता है । पारद आदि रसों से मोक्ष की प्राप्ति होती है, इस तरह की बात रसायनदर्शन में मिलती है । रसायन भौतिक विज्ञान या औषधि विज्ञान के लिये प्रयुक्त हुआ है । कव्य काव्य, शास्त्र आदि रचनाओं के लिए प्रयुक्त हुआ है । तात्पर्य यह है कि विद्या के एक एक क्षेत्र के विशेषज्ञ भी अपनी अपनी विद्याओं में भी यदि नल की परीक्षा करने हैं तो उन्हें पता नहीं लगना कि नल किन्नी गहराई में है ॥]

क्रमेण शैशवमतिक्रामतोऽस्य सेवकैरिवाङ्गावयवैरप्यनुवृत्तिः
कृता ॥

सेवक जैसे स्वामी का अनुकरण करते हैं वैसे उसके विभिन्न अङ्गावयवों ने भी शैशव अवस्था पार करने के समय उसका अनुगमन किया ॥

[नल जब शैशव अवस्था को छोड़कर तृणता की ओर चला तो उसके मङ्ग भी तृण हो गये ॥]

तथाहि—

श्रवणासक्तस्य लोचनद्वयमपि श्रवणसमतिमकरोत् ॥

श्रवणमिति ॥ श्रवणे शास्त्रावर्णने आसक्त । श्रवणसंगति कर्त्तृसंगति ॥

श्रुतियों को सुनने में वह आसक्त था । इस कार्य में उसके दोनों ही (आन्तरिक एवं बाह्य) नेत्रों ने कान की संगति की ॥

उन्नतस्वभावस्य नासाग्रंशोऽप्युन्नतिं जगाम ॥

उसके उन्नत स्वभाव के साथ साथ नासिका का अग्रभाग भी उन्नत हो गया ॥

वक्रोत्तिकुशलस्य फेशकलापोऽपि वक्रता भेजे ॥

वक्रोक्तिमो की कुशलता के साथ साथ उसके केश भी वक्र हो गये ॥

शङ्खनिर्मलगुणस्य कण्ठोऽपि शङ्खाकारमधारयत् ॥

शङ्ख सदृश निर्मल गुणों के साथ उसका कण्ठ भी शङ्ख की आकृति जैसा हो गया ॥

पृथुलतेरंसकूटद्वयमपि पृथुलमभूत् ॥

पृथुलेति ॥ असकूटेति कूटशब्द शिखरार्थ ॥

बुद्धि की पुष्टता के साथ उसके कंधे भी पुष्ट हो गये ॥

प्रमाणवेदिनो वक्ष स्थलमपि सुप्रमाणमजायत ॥

प्रमाणमिति । प्रमाण तर्कशास्त्र मान्य ॥

(प्रत्यक्ष अनुमान आदि) प्रमाणों के ज्ञान के साथ उसका वक्ष स्थल भी सुप्रमाण (विशाल) हो गया ॥

मध्यस्थस्य तस्य रोमराजिरपि मध्ये स्थिता शुशुभे ॥

मध्येति ॥ मध्यस्थोऽकृतपक्षपात । अन्यत्र मध्ये उदरे तिष्ठतीति ॥

सभी बातों में मध्यस्था करने वाले उस (नल) की रोमपट्टिका भी उदर मध्य में सुशोभित हो गयी ॥

सुवृत्तस्य बाह्व्युगलनपि सुवृत्तमभवत् ॥

सुवृत्तेऽपि । वृत्तं शीलं वनुलं च ॥

जब सुवृत्त (सुन्दर स्वभाव वाले) की जुगाए भी सुवृत्त (सुडोल) हो गयी ॥

गम्भीरप्रवृत्तेर्नाभिरपि गम्भीरा व्यपञ्चन ॥

गम्भीरेऽपि । गम्भीरप्रवृत्तिरलक्ष्यकोपयसाद् । निम्ना च गम्भीरा ॥

जब गम्भीर प्रवृत्ति (गम्भीर स्वभाव वाले) की नाभि भी गम्भीर (गहरी) हो गयी ॥

पल्लवसुकुमारहृदयस्य हस्तचरणैरपि पल्लवसौकुमार्यमङ्गी-
कृतम् ॥

जब पल्लव सुकुमारहृदय (पल्लव सदाश कोमल हृदय वाले) के हाथ-
पैरों ने भी पल्लव की कोमलता को अपना लिया ॥

अथ किं बहूना—

सोष्णीपमूर्धा ध्वजयक्रपापिरूर्णाङ्गुलिस्तीर्णललाटपट्टः ।

सुस्निग्धमूर्तिः ककुदुधनांसः कन्यैष न स्यान्नयनाभिपमः ॥१५॥

सोष्णीपेति ॥ सुष्णीपाकार शारीरिक लक्षणसुष्णीपम् । ऊर्णां कन्ये शुभ-
रोमवर्तः ॥ १५ ॥

अधिक क्या—

पगनी से मण्डित शिर, ध्वज तथा चक्र से चिह्नित हाथ, ऊर्णा (भौंहों के
बीच की घमरी) से चिह्नित विशाल ललाट, कोमल आकृति तथा उन्नत कन्धे
वाला वह (नर) किसकी बाँलों के लिये रमणीय नहीं है ॥ १५ ॥

अपि च—

आम्यध्री संनिभेन्दोः सनद्वृषक्रकुद्वन्धुरः स्क्न्धसंधिः ।

स्निग्धा रुक्न्तलानामनुहरति हृदोर्द्वन्द्वमिन्दीवरस्य ।

म्यानं वन्नोऽपि लक्ष्म्याः, स्पृशति मुञ्जयुगं जानुनो, वृत्तरम्ये

जट्टे, शानोऽवलम्बः किमु नियधपतेः श्लाघनीयं न तस्य ॥१६॥

मुख की कान्ति चन्द्र की तरह है । कन्धों की सन्धिवा मटवाले साठ के
झील की तरह मनोहर है । बाला तथा नेत्रों की मधुर कान्ति नीलकमल युगल
की कान्ति का अनुकरण कर रही है । वज्रम्यल लक्ष्मी का स्यान है । दोनों
हाथ जानु को छूते हैं । मुडोल बड़े बड़े मनोहर हैं । मय (कमर) वृत्त है ।
जब निषधपति का क्या प्रशंसनीय नहीं है ॥ १६ ॥

[सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार इन लक्षणों से युक्त मानव चक्रवर्ती सम्राट् होता है ॥]

अस्ति च तस्य नरपतिसूनु समानशीलवयोविद्यालंकारकान्ति-
कलापपरिपूर्णदेह. शरीरमात्रद्वितीयोऽप्यद्वितीयहृदयमेकं जीवितमपर
उच्छ्वासः सालङ्कायनसूनु. श्रुतशीलो नाम मन्त्री मित्रं च ॥

अस्ताति ॥ अपर उच्छ्वास इति । न परोऽस्मादित्यपर उच्छ्वाः ॥

उस राजपुत्र के समान स्वभाव, अवस्था, विद्या, भूषण, सौन्दर्य तथा कला से पूर्ण शरीर से दो रहने पर भी—हृदय से एक, प्राणों की तरह प्रिय, स्वास की तरह अनिवार्य, सालङ्कायन का पुत्र मन्त्री और मित्र है ॥

एकदा तु पूर्वदिग्बधूकुङ्कुमपङ्कपल्लवितवदनायमाने निरुद्धान्ध-
तमसे सौगन्धिकषण्धुनि बन्धूककुसुमारुणे वियति तरतीष तरुणतरे
तरणिमण्डले, मण्डयति कुसुम्भकुसुमकेसरप्रकरायमाने गगनाङ्गण-
मम्भोजमुकुलनिद्रामुपि रोचिषां चये, चलिते च विचरितुमुपघनतरु-
राजिरुणोत्पले निद्राविरामविधुतपत्रे पक्षिकुले, कृतप्राभातिककर्मण.
सभाङ्गणमण्डपमध्यवर्तिनो दत्तसेवावसरस्य राज्ञः प्रविष्टे मन्त्रिणि
सालङ्कायने प्रणामपर्यस्तकर्णोत्पलधवलितसभाङ्गणे यथासतमुपविष्ट
प्रस्तुतसेवालापरजितराजनि राजन्यचक्रे, प्रक्रान्ते शास्त्रीयधिनोदे,
श्रुतिशीलेन सममन्यैश्च क्रीडासहायैरनुचरैरनुगम्यमानो नलः सेवा
सुखमनुभवितुमागतवान् ॥

एक समय पूर्व दिग् बधू के कुङ्कुम पङ्क में निमित्त पल्लव सदृश मुख की तरह प्रतीत होने वाला, कमला का मित्र बन्धूक फूल की तरह लाल सूर्यमण्डल अन्धकार को नष्ट कर आकाश में तैर रहा था । कुसुम्भ पुष्प के केसरपुञ्ज की तरह गगन प्राङ्गण में कमल कलियों की निद्रा को चुरा लेने वाली किरणें बिखर रही थीं । उपवन का तप्तसमूह रूप कर्ण पुष्प विहार के लिये स्पन्दित हो उठा था । निद्रा समाप्त होने के कारण पक्षी अपना पक्ष फड़फड़ा रहे थे । (ऐसे समय में) सभामण्डप में बैठे हुए राजा द्वारा सेवा का अवसर प्राप्त कर मन्त्री सालङ्कायन सभाभवन आये । आश्रित राजाओं के वर्ग ने प्रमाण के अवसर पर अपने कर्णाभरणों की कान्ति से सभाभवन को धवलित कर दिया, उचित आसन पर आसीन होने के बाद प्रासङ्गिक सेवा विषयक चर्चा से राजा को प्रसन्न कर दिया । शास्त्रीय चर्चा विषयक मनोविनोद प्रारम्भ हो गया । श्रुतिशील के साथ अन्य क्रीडा सहायक अनुचरों को लिया हुआ नञ् सेवासुख का अनुभव करने के लिये आया ॥

आगम्य च क्षिनिनिलमिलन्मौलिमण्डलः प्रणम्य पितुः पादारविन्द-
द्वयमदूरदत्तमासनं भेजे ॥

आकर पृथ्वी तक सिर झुकाता हुआ पिता के पदकमल युगल को प्रणाम
कर समीप ॥ दिये हुए आसन पर बैठा ॥

उपविष्टे च तस्मिन्ननभिवादानादुत्पन्नमन्युरीयत्कोपकम्पितकर-
परामृष्टकूर्चाग्रिमग्रन्थिरप्रणीर्मन्त्रिमण्डलस्य भ्रमङ्गभीषणया शोण-
काणान्तरतरत्तरलनारया दृशाऽभिमुखमस्य मालङ्कायन प्रणयपरया-
क्षरसमापत ॥

वसिष्ठ इति ॥ आत्मनोऽप्रणामाद्दिनविषयाक्षौशल मल प्रीतिभाक् पैशुको
मन्त्री शिञ्जानुद्वया परवर्गमवादीन् ॥

उसके बैठ जाने पर प्रणाम न करने क कारण कुछ क्षीण के कारण कुछ
कापट्टे हुए हाथ से अपनी मूछ की सिला को छूत हुए भीहो की वज्रता क
कारण भयदूर तथा लाल कीतो क बीच तैरती हुई कनीनिका वाली आँखों से
देखते हुए मन्त्रिमण्डल के मुख्य मालङ्कायन ने सामने बैठे हुए नल से प्रेम और
खलता भरी बातें कहनी शुरू कीं ॥

कुमार, राजहंसोऽपि 'अहंसरूपः' इति मा स्म मोहयान्मूः ॥

कुमारति ॥ कुमारेत्यामन्त्रणे । राजमुक्तयोऽपि हंसस्त्वं सरूपो रूपवानहमि-य-
मुना प्रकारेण मोहवान् मा स्म मू माहं मा या । रूपमदो हि नीचविह्वम् । यद्य
राजहंस म कथमहं मरुत्स्थ इति विरोधघेतकोऽविमन्त्र ॥

राजकुमार, तुम राजहंस होकर भी अहसरूप (हंससदृश रूप वाले नहीं)
हो । विरोध ।

राजहंस (राजाओं म मुख्य) हो । यह ठीक है । लेकिन "अह + स्वरूप,"
(मैं सुन्दर रूप वाला हूँ) यह अहकार मत करो । परिहार ।

अनुभवति चमूढः शस्त्रसंघान इय कोशशून्यताम् ॥

ननु यदि रूपदहंकाराद्वा नृपो मूढः स्यात्तत्को दोष इत्याशङ्क्याह—अनुभव-
ति ॥ चक्षुरा योग्यधे । यदेव कुनो मुह्यति तदैव कोशेन मन्त्रेण शून्यता । धनि-
रेकमनुभवति । यथा चम्बा स्वमेनया ठटो घृनः शस्त्रनिचय प्राप्याकारशून्यता-
मापति ॥

मोह से घिरा हुआ आदमी कोशशून्यता का अनुभव करता है जैसे चमू
(सेना) द्वारा शत्रु के उठा ले जाने पर शस्त्रव्यूह कोशशून्यता का अनुभव
करने लगता है ॥

[मोहसम्पन्न व्यक्ति अपने कोश (निधि) को नहीं संभाल पाता । वह तो
मूर्खों में विवेकशून्य पड़ा रहता है । मोह शब्द यदि अहंकार के अर्थ में

लगाया जाय तो भी तात्पर्य यह होगा कि अहंकारी व्यक्ति कहीं कुछ अनुचित कर बैठना है और पर्याप्त निधि का दुरुपयोग करता है। अतः एक दिन कोय शून्य हो जाता है ॥

इस पक्ष में च अलम पद है और मूढ अलम । शस्त्रसंघात पक्ष में चम्पा ऊढ (सेना द्वारा दबा हुआ) विग्रह करना चाहिये । चम्पू + ऊढ भिन्नभिन्न पद हैं ॥]

अविभव पुरषो मेघ इव कम्बलस्योपयोगं गच्छति ॥

अष्टकोशस्यापि किं तद्वाह—अविभवेति ॥ निर्धनं पुमान् अज इव बलस्य सैन्यस्य शस्त्रैर्वा कञ्चुपयोग साफल्यं याति न कमपीत्यर्थं पृतेन अष्टकोशस्या बलिह्वमिति ख्यापितम् । अजस्तु अवेमैण्डाद्भवति इम । तथा कम्बलस्यावज्ञादन विशेषस्योपयोग याति ॥

अविभव (निर्धन) पुरुष बल (शक्ति) के किस उपयोग में आ सकता है । अवि (भेडो) से भव (उत्पन्न) होने वाला (भेड) कम्बल के उपयोग में आता है ॥

[अविभव शब्द का विच्छेद जब अवि + भव है तो इसका अर्थ है 'भेड से उत्पन्न' । जब अविभव शब्द 'नास्ति विभवो यस्य' इस अर्थ का वाचक है तब 'ऐरवर्गहीन' अर्थ का वाचक है । इसी तरह कम्बल शब्द के भी समझने के आधार पर दो अर्थ हैं । 'अविभव पुरुष बलस्य कम् उपयोग गच्छति' । इस पक्ष में कम्बलस्य का "कम्" उपयोग का विशेषण है । भेड वाले पक्ष में 'कम्बलस्य' एक शब्द है । तात्पर्य यह कि कोशशून्य आदमी अविभव (धनहीन) हो जाता है । अतः कोई भी बल का कार्य वह नहीं कर सकता ॥

प्रमुग्धजातोऽपि बाणयुद्धम्यतिकरकारिण्या सद्योपया यौवना यस्थया निरुद्धोऽनिरुद्ध इव को नाम न क्लेशमनुभवति ॥

तस्माद्वलस्य का कथेवाह—प्रमुग्धेति ॥ यतः प्रमुग्धजातोऽपि प्रकृष्टीज पुत्रोऽपि । बाणैः शस्त्रैश्च युद्धं कोलाहलस्तरमपकर्तकारिण्या । महं दोषैरिति दोषा वि तथा । तारुण्यावस्थया । निरुद्ध आरम्भशीकृत को नाम क्लेशं दुःखं नानुभवति । सर्वोऽप्यनुभवत्येवैत्यर्थः । जामातृयुवगमे । घृण्यं द्रव्यमपि । घर्णघातुः शस्त्रार्थो घर्णन्तः । प्रमुग्ध कामः । तस्माज्जातोऽनिरुद्धमभिधो बाणाव्ययेन दैत्येन समं युद्धं भवन्त्यविधापिन्या यौवनेऽवतिष्ठन् इति कृत्वा तारुण्ये स्थितया उपया उपाययया परन्या सदा निरुद्ध आरम्भशीकृतो दुःखमनुभूतवानित्यागमः । युद्धम्यतिकरोऽनद्रसूनु क्लेशानुभवहेतुः ॥

प्रद्युम्न (पूर्ण तेज) से उत्पन्न होकर भी बाणमुद्र (शब्दकल्ह) करने का अवसर देने वाली दोषपूर्ण यौवनावस्था से घिरा हुआ कौन नहीं अनिरुद्ध की तरह ब्रह्म का अनुभव करता ॥

अनिरुद्ध पक्ष—बाण (बाणासुर) के साथ युद्ध की स्थिति उत्पन्न कर देने वाली, यौवनावस्था में स्थित सदा उषा के प्रेम में घिरे हुए प्रद्युम्नजात (कामपुर) अनिरुद्ध ने ब्रह्म का अनुभव किया ।

[प्रद्युम्नजात—द्युम्न शब्द तेज का वाचक है । उच्छृष्ट तत्त्वसम्पन्न व्यक्ति भी यौवनावस्था में यदि विचार में नहीं रहना तो अनिरुद्ध की तरह बाँधा जाता है । अनिरुद्ध प्रद्युम्न का पुत्र था और कृष्ण का पौत्र । बाणासुर की लड़की उषा की प्रेरणा में एक चित्रकूट प्रवीण दैत्यपत्नी ने अनिरुद्ध को उषा के पास उठा कर पहुँचा दिया । जब बाणासुर को पता लगा कि अन्तःपुर में एक युवक आ गया है तो उसे पकड़ लिया गया ।

प्रद्युम्नजातोऽपि (प्रद्युम्न तेज से जन्मा हुआ भी) बाणमुद्रव्यतिकर-कारिण्या (वाक्कल्ह का अवसर देने वाली) सदोषया यौवनावस्था (दोष-पूर्ण यौवनावस्था से) निरुद्ध (घिरा हुआ) बः (कौन) अनिरुद्ध इव (अनिरुद्ध की उषा के पास उठा कर पहुँचा दिया । जब बाणासुर को पता लगा कि की तरह) ब्रह्मम् न अनुभवति (दुःख का अनुभव नहीं करता) ।

अनिरुद्धपक्ष—प्रद्युम्नजातोऽपि (प्रद्युम्न का लड़का होता हुआ भी) बाण-व्यतिकरकारिण्या (बाणासुर के साथ युद्ध का अवसर ला देने वाली) यौवना-वस्था (यौवन की अवस्था में स्थित) सदा उषया (हमेशा उषा से) निरुद्धः (घिरा हुआ) अनिरुद्ध (अनिरुद्ध) ब्रह्ममनुबभूव (ब्रह्म का अनुभव करने लगा ।]

तत्तान्, सुविषमेघवर्त्तिनि विद्युद्विलास इवास्थिरे स्थितस्तारुण्ये मा स्म विस्मर स्मयेन विनयम् ॥

तत्तानेति ॥ तदित्युपसंहारे । तानोति प्रणयः, चांमन्त्रणे । तस्माद्भूय । सुष्ठुव्यति-
शयेन । विषमे । तथाऽऽवर्त्तिनि पाप कारितरि । अस्थिरे चञ्चले । तथा विरोधेन
घोमन्त इति विद्युतो रोचमाना विलासाः शृङ्गारादयो यस्मिन् । तथाविधे तारुण्ये
स्थितः सन्स्मयेन सर्वेण विनयं मा स्म विस्मरार्थं । विद्युद्विलासोऽपि सुष्ठु विपं
घल यत्रेति कृत्वा सुत्रले मेघे वर्त्तते । तथा अस्थिरो लोलः । तथाविधे ॥

अतः हे वत्स, बिजली के विनास की तरह चञ्चल, उच्छृष्ट (विषम) पाप में रहनेवाली इस यौवन की अवस्था में आकर अहंकार के कारण नम्रता को मत भूलो ।

[विद्युत्पक्ष—सुविष (सुन्दर जलवाले) मेष मे रहनेवाला निताग्त चञ्चल बिजली का विलास । तारुण्यपक्ष मे सुविषमेध्ववर्तिनि (उत्कट पाप म रहने वाला) षट्छेद है । विद्युत् विलासपक्ष मे सुविष + मेष + वर्तिनि (सुन्दर जलवाले मेष मे रहने वाला) ।

अविनीतोऽग्निरिष दहति ॥

विनयविद्युन्मी दूषणमाह—अविनीत इति ॥ अविनयी पुमानग्निरिष दाहमुत्पादययात्मन परस्य वा । अविर्कृण्युस्तेन नीतो यथाग्नितरतछेतार दहति । उच्यते स्ती हि रावदरिका स्वीकृता दहतीति लोकोक्ति । अथवा अविरग्निबाहनम् ॥

अविनीत (उद्धृष्ट) आदमी आम की तरह स्वयम् जलता है और दूसरो को भी जलाता है । अथवा अवि (कम्बल) मे भीत (लगी हुई) आग की तरह जलता है ।

[कम्बल मे लगी हुई आग कम्बल को तो जलाती ही है उसके ओढ़ने वाले को भी भला देती है । अविनीत स्वय नष्ट होता ही है, सम्पर्क करनेवालो को भी दूषित करता है ।]

[यह सोचो कि स्वय जलने वाले या दूसरो को जलाने वाले कामदेव आदि स्तुति के पात्र बनते हैं । अत ऐसा करने से हम भी स्तुत्य बन जायेंगे । यह भी नहीं होगा ।] क्योंकि—

अजातनयश्छाग इव नाभिनम्यते जनेन ॥

मन्वात्मदाहका पतिविपत्ती स्याद्य परदाहका कामत्रिपुरान्तकप्रभृतयश्च श्रयन्ते । ततश्चाविनयाद्दाहामकमपि मां जन स्तोष्यतीति निरस्यन्नाह—अजा तेति ॥ न जातो नयो यस्य स छाग इव न स्तूयते जनेन । स्तुतिमपि न प्राप्नोतीत्यर्थ । छागस्यजायास्तनय सुत ॥

जो अजात + नय (नीति हीन) होते हैं वे अजा + तनय (बकरी के बच्चे) छाग की तरह लोगो की स्तुति का पात्र नहीं बनते ।

[यह सोचो कि मैं जैसा भी रहूँगा, मेरे सहायक तो अच्छे हैं । अत उनकी सहायता से मेरा कार्य बल जायगा । यह भी सोचना ठीक नहीं है ।]

किं च धूम—

सुसहायदान्यम्य मयतो यस्यामीमासाभियोगा राक्षसा इव, अन्याया पारदारिका इव, अयोगप्रिया लोहकारा इव अध्रुतागमा शोक्रेगा इव सहायाः ॥

मन्वात्मन स्वामी यादृच्छादग्वा भवतु धेसुसहाय । तदपि स्वयि नास्तीत्यादिषुर्ध्वनाह—सतदावेति ॥ यस्य ते ईदृशा सहाया । न भीमासाभियोगो

विचरोमहो देशान् । राजयस्तु मायेऽमियागो देशा ते । अमी इति नदिभ्य
 णम् । न विद्यते न्यायेऽप्यभिपन्यया न्यायरीहिता । उपनाने तु अन्यामन्यम
 वदानमन्न राक्षन्तीऽन्याया । परस्परिना इत्यर्थः । अलक्ष्यलामो लक्ष्यपरिरक्षा
 रक्षितविवर्धन च दाया । तस्य क्रिया नास्ति यथा त तथाक्ता अमवद्वर्धमानो वा ।
 एते अपा राक्षन्तीऽप्याया लक्ष्यना क्रिया यथाम् । तथा न श्रुत आगम दाया
 दस्त्ये । शाक्यमारस्तु अनुनाया नयनञ्जवस्थापना ययु ॥

यह नी कट् दत्ता हैं —

अप सुन्दर सहायकों का दूत है । राजस जैसे मन्त्राभिषो (मास
 मोहन न तम्पर) रहन हैं जैसे य (अपक सहायक) अनीनासाभिषो
 (विचार करने की शक्ति स दूत) हैं । दूसरे की सी में पासक छोट जैसे
 अन्या + अप (परकीया क पास गन्त करने वाले) होत हैं जैसे य नी अन्याम
 (अनीति) करने वाले हैं । कोहकार (लोहार) जैसे व्यापारिय (लोह
 सम्बन्धी कार्य में लगे हुए) हात हैं जैसे य तुम्हारे सहायक नी अयोऽक्रिय
 (असाक्षिक एवं निष्प्रयोजन कार्य में लग्य) रहत हैं ।

छोक का मैं जैसे अधुता (कामुक भाव) का आगम हाता है जैसे ये
 (जायक सहायक) अधुताम (वशों का अवका नहीं करने वाले) हैं ॥

[राजस एव न अनी + मन्त्राभिषोऽप्यद्वेद है । अमी का अन्वय
 सहाय के साथ है । सहाय पक्ष में अनीनासाभिषोऽप्यो का त्यों है ।
 पारदारिका—दूसरे की दारा में आसक्त छोटा अन्याय हात हैं । अपांन्
 अन्या (परकीया) क पास अप (गन्त) करत हैं । इस पक्ष में अन्याय का
 अन्या + अप विच्छेद है । सहाय पक्ष में ता अनीति का वायक अन्याय पर
 ज्यों का र्यों है । अयोऽक्रिय—ऐसा व्यापार को लोह स सम्बन्ध रखता हो ।
 सहाय पक्ष में असाक्षिक तथा निष्प्रयोजन कार्य । अमवद्वर्धमान की प्राप्ति
 तथा प्राप्त वस्तु की रक्षा को दाया कहत हैं । इससे विच्छेद व्यापार को
 व्यापारिया कहत हैं । अधुताम—छोड़ने में अधुतामा आगम
 इस सनास में अश्रु क भावों का आगम कार्य है । सहाय पक्ष में “न अधुता
 आगमना” यै “इस सनास में आगम ज्ञान विहीन कार्य है । अपांन् छोक का वा
 जैसे आमुजों का भाव ला दत्ता है जैसे उसके सहायकों ने आगम (वद) को नहीं
 नुता है । अधुताममत्व रूप साधारण धर्म दोनों में है । अश्रु छन्द स तत् प्रत्यय
 करने पर अधुता बना है ॥]

न च ते दुःशिक्षितनृपकुलमन्याकरणानां निपुणा नर्तकीव
 निभमण्डली ॥

एव सहायसंपद निषिध्य मित्रमण्डलीमवद्यथाह—न चेति ॥ दु शिञ्चितेति नृपकलभेति चाम-ग्रणम् ॥ ते तव मित्रमण्डली च व्याकरणमार्गेषु कुशला । शब्दतत्त्वावबोधे हि नीतिशास्त्राधिगम । नीत्यवगमे हि कृत्याकृत्यविमर्शनम् । तस्मात्संपद न च तज्ज्ञेयुष्य भवन्मित्रमण्डलव्यामस्तीति भाव । नर्तकीपक्षे दु शिञ्चितनृपकलेति संबोधनम् । सा च भरतोत्प्रेषु करणमार्गेषु भव्या प्रशस्ता ॥

हे दु शिक्षित नृप कलभ (ओ अशिक्षित नृप वे बच्चे), तुम्हारी मित्र मण्डली व्याकरण मार्ग म (नीति शास्त्र के उचित व्याख्या मार्ग) में नर्तकी की तरह निपुण नहीं हैं ।

नर्तकी पक्ष—हे दु शिक्षित नृपकल । (नृपनीति को न जानने वाले , नर्तकी (नाचने वाली) भव्याकरण (उचित अनुकरण करने और हाव भाव दिखाने) में निपुण होती है ॥

[मित्र मण्डली पक्ष में अर्थ करते समय “दु शिक्षितनृपकलभ” इतना सम्बोधन का रूप है । व्याकरण मार्ग म ओ निपुण नहीं रहेगा उसे नीति शास्त्र के ग्रन्थ अच्छी तरह समझ में नहीं आयेगे । नर्तकी पक्ष में “दु शिक्षित-नृपकल” इतना सम्बोधन है । अर्थात् नृपकला में तुम अप्रशिक्षित हो । भव्या-करणमार्ग एक पद है । नर्तकी भव्या (सुन्दर) आकरण (अनुकरण) में निपुण होती है । यदि “भव्या” को नर्तकी का विशेषण बनाया जाय तो अर्थ होगा—भरत के बताये हुए विभिन्न करण मार्गों में भव्या (उत्कृष्ट) है ॥]

तदायुष्मन्नहितया प्रकृत्या भुजङ्ग इव भयाय लोकस्य ॥

सदेति ॥ तद्विर्युपसहारे । आयुष्मन्नित्यामन्त्रणे । अहितया हितेतरया । प्रह-त्या भविनयादित्यभावेन । अयुक्तसहायमित्रलक्षणाया चामभ्यादिकया युक्त सबद्धो भव्यलोकस्य भयहेतु । भुजङ्गस्तु अहिर्भावोऽहिता तथा दशनलक्षणाया प्रहत्या युक्त ॥

आयुष्मन्, आप अपनी अहित प्रकृति के कारण सर्प की तरह लोगों के लिये भयदायक हैं । भुजङ्ग (सर्प) अहिता (सर्प स्वभाव) से लोगों के लिये भयदायक होता है ॥

[अहित शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप अहिता है । प्रकृति शब्द का विशेषण जब वह बनता है तो उसका अर्थ होता है अहितकर स्वभाव । सर्प पक्ष में अहि शब्द से तत् प्रत्यय कर अहिता बनता है । भुजङ्ग अपनी अहिता (सर्पोचित भाव) के कारण भयङ्कर हुआ करता है ॥]

उग्रसेन कंसानुरागं जनयेत् ॥

दुष्टप्रकृतिर्नृपश्रेष्ठलोकस्य भयाय तत् किमियाशङ्कयाह—उपेति ॥ उग्रा सेना यस्य स क प्राणिन सानुरागं कुर्यात् । न कमपीत्यर्थं विरागहेतुरेवेति भाव ।

उचिन्तारिवारो हि जनानुरागाय । परिवारो हि लोकस्योपद्रव्यं रक्ष्य वा कुरुते ।
उपमेनो दैत्यः स कथामुरस्वानुराग जनयनीत्यागमोष्ठोस्त्रिजनम् ।

उपमेन (गुर शासक) किसी अपने प्रति सानुसंग कर सकता है ?
(किसी को नहीं) । उपमेन दैत्य कथ म अनुसंग उत्पन्न करता है ॥

कथानुराग पद का गुर शासक पक्ष में "कन् सानुरागन्" पदच्छेद होता
और उपमेन दैत्य पक्ष में "कथ नाम के राजा में अनुसंग" अर्थ है । "उप है
सेना निमकी" इस विग्रह में तो गुरशासक अर्थ है । दैत्यपक्ष म उपमेन एक दैत्य
का नाम है ।

अमृतमथमोघतहरिचाहुपङ्क इव मन्दरपानुगत नो न धृष्यते ॥

चेदनी विरश्चुइयः बहाधाइय । दृष्या वा मयि मन्वानुरागा । तत कि
ममेति निरम्भदह—अनन्त ॥ मन्द रस्य प्रीतीदंश तैमन्वानुरागाय । दृषया
चानुगत की न धृष्यते । उगमाने नु पुग देवे दैतैरनुवायाभेविममन्थे । तत्र
च मुत्ता यन्निष्ठ विन्तु । तस्य मुत्तपङ्करो मन्दरनागो गिरेर्मन्थानमूनस्य
सानूनि नटाणि यन प्राप्ता मन्दर ॥

अमृत मन्थन के लिये तत्पर भावान् विन्तु ८ बाहु जैने मन्दर + सानुगत
(मन्दर पर्वत की चोटी में लुप्त) होकर रगड़े गये दैते मन्द + रसानुगत
(मन्द प्रीति वाले लोगों के घिरा हुआ , जैन भाइयों नहीं रगड़ा जाता ॥

शुनीमिमाभ्यस्तां परिहर ॥

शुनीमिदे नग्मादिसिद्धता चञ्चलत्वं त्यज ॥ शुनी स्वहेपरता ॥

शुनी (कुतिया) अस्ति + रता (हड्डी बजान म लगी रहती) है । आप
अपनी अभ्यस्ता (चञ्चलता छोड़ दे ॥

कुशीलताग्राही मा स्म तैलिक इव केवल मलोपभोगाय भूः ॥

कुशीलताग्राही कुशीलतां ग्रीव लीलादिच्छां तस्य स कुशील, तस्य भावः
कुशीलता । ता शृङ्गानीयेवशीलस्तपोऽस्य केवल दुर्जनानामुपभोगाय मा स्म
भू । कृश हां हि दुर्जनानामेवोपयोगी न भाषुनाम् । तैलिकस्तु कुशीलताग्राही
शृङ्गानि । तस्य विद्या ॥ पयोपयोगस्तस्य । अयोविकर स्त्री ।

कुशीलताग्राही (दृष्ट स्वभाव वाला) बनकर अनोपभोग (दुष्टों के
उपयोग) की सामग्री मत बनो । कुशीलताग्राही (कुशी नामकता को ग्रहण
करने वाला) तैलिक (तेली) केवल अनोपयोगी , स्वयं के ही उपयोग में
आता) है ॥

[स्त्री का उपयोग स्वयं में ही होता है । अर्थात् तेल पेरने के ही काम में
आता है ॥]

आयर्जय गुणान् ॥

अकृत्यानि परिहार्यं कृत्यमुपदिशन्नाह—आवर्जयेति ॥

[इन वृत्तियों के छोड़ कर] गुणों को अर्जित करो ॥

निर्गुणे धनुषीव सूचयेऽपिकस्याग्रहो भवति ॥

सुवशाखादेवास्माकं लोकग्रहो भविष्यतीति न विमृश्य यत—निर्गुण इति ॥
गुणानामेवाग्रह आदरो जनस्य न केवल कुलीनाभाम् । वेणुसभूतस्य धनुषोऽपि
गुणेन जयया आ आभिमुख्येन बाणाकर्षणाय ग्रह आग्रह ॥

खूब सुन्दर वश (बास) से बने हुए धनुष में यदि गुण (प्रशंसा) न हो
तो उसका कौन सम्मान करता है । उसी तरह सुन्दर वश (कुल) में उत्पन्न हो
कर भी निर्गुण (गुण हीन) होने पर तुम्हारा कौन सम्मान करेगा ॥

अभ्यस्य कला ॥

अभ्यस्येति ॥ कला विद्वत्तादिका तामभ्यस्यस्य । असूतैवादिको लुप्तहिमः प्रथम ॥

कला का अभ्यास करो ॥

निष्कलो वीणाप्यनिरिच प्रशस्यते न पुरुष ॥

निष्कल इति ॥ वीणाप्यनिस्तु निष्कल कलयितुमशक्य ॥

वीणा की आवाज निष्कल (सुंदर स्वरहीन) हो तो जैसे मनुष्य की
प्रशंसा का भाजन नहीं होती वैसे निष्कल (वैदुष्य शौर्य आदि कलाओं से हीन)
व्यक्ति को लोग आदर नहीं देने ॥

त्यज जाड्यम् ॥

आवर्जितशौर्यादिगुणोऽभ्यस्तसप्ततिकल पुरुषो य स्तब्ध स नश्यते इत्याह—
त्यजेति ॥

जडता छोड़ो ॥

आढ्ययोगेन हिमानी दूष्यतां याति ॥

जाड्येति ॥ हि यस्माज्जाड्ययोगेन मानी स्तब्ध पुमान्दूष्यत्वमाप्नोति ।
हिमानी हिमसहति । सापि आढ्यतोऽनिशैत्याद दूष्येत्यर्थान्तरम् ॥

जडता के योग से निश्चित (हि) रूप से मानी (अहकारी आदमी)
दूषित हो जाता है, जैसे आढ्य (अत्यन्त शीतलता) के योग से (हि मानी)
हिमालय दूष्य (अप्रशसनीय) हो गया है ॥

मा स्म मुखरो भू ॥

वाचाल मत बनो ॥

जात्यपरित्यागे किं वितृमन्त्रिमुखरस्तर्हि स्यामिष्येनदपि निषिष्यन्नाह—ना
स्तेति ॥ मुखरो वाचालोऽपि माम् ॥

कर्णाटचेटीमिव मुखरतां न शंसन्ति साधवः ॥

कर्णाटति ॥ यस्मान्मुखरस्य भाव मुखरता वाचालतां साधवो न स्तुवन्ति ।
कर्णाटचेटी तु मुखे रत सुरत यस्या ॥

जैसे मुख + रता (कबल मुख में ही सौन्दर्य रखने वाली) कर्णाट देश की
बेटियों की प्रशंसा साधु लोग नहीं करते वैसे मुखरता (वाचालता) की भी
प्रशंसा साधु लोग नहीं करते ॥

भज माधुर्यम् ॥

स्वभाव से मधुर बनो ॥

धवलबलीघर्दपद्मिरिव समाधुर्या बाणी मनो हरति ॥

बलेति ॥ यस्मात्ता बाणी मह आधुर्येण म्या मनोहारिणी । न च वाचालतायां
बाधो माधुर्यम् । दृपयेणी तु समा भविष्या । धुर्या चूर्वाहिनी । धुरं बहतीत्यर्थे
'धुरो यदुष्टकौ' इति यत् । अत्र शङ्कटम् । अर्गी वा । अक्षाम्बुलिकामिव हरति
बहतीत्यर्थः । वा अयथार्थः ॥

समा + धुर्या (बराबर धुरा को होने वाली) उज्ज्वल बलों की बोली जैसे
मन का हरण करती है वैसे समाधूर्या (माधुर्य युक्त विशिष्ट) बाणी मन का
हरण कर लेती है ॥

वर्जय विपरीत्यम् ॥

वर्जयेति ॥ पूर्वोक्तादस्मदुपदेशाद्विपरीत्यमन्यधामात्रं त्यज ॥

विपरीत वाचरण को छोड़ो ॥

विपरीतं शयमिव को न परिहरति ॥

यत --विरतोऽति ॥ विपरीताचारं को न परिहरति । शयं तु विमि पक्षिभिः
परीतं ग्याप्तम् ॥

वि (पक्षियों) से + परीत (घिरे हुए) मृत्तक की तरह विपरीत (प्रति-
कूल) वाचरण करने वाले लोगों को कौन नहीं छोड़ देता ॥

कमलदीर्घाक्ष, शिक्षाक्रमेऽस्मिन्नपरमप्यभिधायसे ॥

सुविनोतानामावर्जितगुणानामभ्यस्तकलानामपि प्रायः प्रभवन्ति व्यसनानि,
रक्षितव्यप्रमादाच्च । व्यसनेषु स्त्रीष्वप्यासक्तिर्महद्व्यसनम् । द्रव्यशरीरयोः व्यथेनु-
त्वात् । स्त्रीव्यसने हि राजयक्ष्मादिव । ततः स्त्रीव्यसनं लक्ष्मीप्रमादं च परिहार-
यन्नाह—कमलेति ॥ रूपवान्मवान् सर्वस्त्रीप्रिय स्याद्वनस्तासु विधामकरणं तव
तत्कमलदलेप्यामन्त्रणेनाभिहितम् ॥

कमल सहस्र विद्याल नेत्र वाले राजकुमार, इसी उपदेश परम्परा में कुछ और आप में कहता हूँ ॥

मा गा स्त्रियाः श्रियो वा विश्वासम् ॥

मागा इति ॥ स्तृणाति दुर्विनीता सती आत्मन परस्य वा गुणगण प्रत्यादयतीति स्त्री । यस्यां तु सतीधर्मयोगादस्यार्थस्या-यथास्वम् । न त्रातृणांति कदापि पराभि स्वकुल पतिकुल चेभ्यः । तस्या दुर्विनीताया स्त्रिया अत्रत्या विश्वास विश्रम्भ मा प्राप्ती । स्वलोभात्स्वभावाद्वा ता अनीतानुराग दर्शयन्ति । पर परिणामे विरुद्धा एवेति भावः । तथा विश्रम्भ-मर्त्यं नित्यस्य योग्ययोग्य वा आस उपपन्न स्थापन विश्वासः । तं श्रिया लक्ष्म्या मा गा । धर्मार्थं हि पितर पुत्रेभ्य पुत्राश्च पितृभ्यो दद्यान्तीति । तस्माद्य एवाद्रोहण उपधाद्युद्धय मत्रवार्ता निक्षेपणीयेति भावः ॥

स्त्री और धर्म (लक्ष्मी) पर विश्वास नहीं करना ॥

[स्तृज् आच्छादने धानु से स्त्री शब्द निष्पन्न हुआ है । जो अपने तथा दूसरे व गुणों को छिपाकर रखे, मोहकता शक्ति का कारण गुणी लोग भी जिसमें कर्तव्यच्युत हो जायें, वह स्त्री वदार्थ है । कुलाङ्गना या पतिव्रता स्त्री का पक्ष में इसी व्युत्पत्ति का भाव होगा—अपने गुणों और सौभाग्य से पतिकुल को जो छाछादिन कर ले वह स्त्री है । पहले भाव वाली स्त्री पर अविश्वास करने ॥ लिये मन्त्री ने उपदेश दिया है ।

श्री शब्द का साथ विश्वास शब्द का अर्थ भिन्न २ । था को विश्व (सब लोगो) पर आस (स्थापन) नहीं करना । अर्थात् रूपमें पैसों का देन लेन सबके साथ नहीं रखना चाहिये । जिसे ऋण आदि दिये जायें उसकी योग्यता आदि पर विचार कर लिया जाय । अन्वया यह एक एसी चीज है कि अत्यन्त आत्मीय लोग भी इसके लिये विरोध करने लगते हैं ॥]

अधिकमलघसतिरनार्यसंगता स्त्री श्रीश्च कं न प्रतारयति ॥

किमिति त्रिया ॥ विश्रम्भभावम् । श्रीश्च सर्वत्राप्तिवशादाह—अरीति । अविद्या बांझी मल पाप तस्य वमनिरास्वदम् । तथा अनार्यस्यानुभि कृत मैत्रीज्ञा स्त्री कपुरुष न वञ्चयति । सर्वमपि प्रत्यभयतीत्यर्थः । श्रीस्तु अधिकमलं पदमे वमनिर्यस्या । कमल हि तरणशायम् । सा च तनाविनाभावसबद्धा । तत् प्रशमना श्री कपुरुष न प्रकर्षण तावति । त्रिविशिष्टा । न नारी अनारी अमा सुधी । तथा धा विष्णु । तस्मिन्ना अमगता ॥

स्त्री पण—अधिक मल (पाप) की वसति (निवासस्थान) तथा अनार्य (दुष्टो) का साथ संगत (मैत्री स्थापित की हुई) स्त्री किसी धोखा में नहीं डाल देती ।

श्रीपञ्च—अविष्मन्वसति (कमल पर निवास करने वाली) अनारी (अमानुषी देवी) च (विष्णु) ॥ सयत् (युक्त) लक्ष्मी किसका नहीं पतारित करती ॥

[श्री पञ्चमं अनार्यं साता पद को ' अनार + अ + सयत्ता ' रूप में तोटना चाहिये । लक्ष्मी अनारी है । अर्थात् नर पत्नी नहीं है विष्णु देव की पत्नी है । अन्न देवी है । अनार्य है । अनार्य न दिव्य) स सयत् सयुक्त है । लक्ष्मी का निवास कमल पर है । कमल पानी में साधारण खोह में भी कम्पित होता रहता है । ऐसी स्थिति में उस पर रहने वाली लक्ष्मी का कम्पित होना या तरलित होना स्वाभाविक ही है । लक्ष्मी जब स्वयं तरलित है तो उस पर विश्वास करने वाला भी तरलित हो ही जायगा ॥]

या क्षाण्डकूटद्वितीया नीरापिनापि नाट्टहृदया भवति । स्वीकृतापि विप्र हेन कंसानन्दहृदयपलेनोद्वेजयति ॥

या लक्ष्मी ॥ या स्त्री क्षाण्डकूटकूट कपट द्वितीयं यस्या । तथा नीरोपते स्मेने निरोपितः प्रसादिनाप्यार्द्धहृदया म्निगन्धया न भवति । तथा विद्यानोप-
यार्जनं मातलमप्रियाविक्र स्वकृतापि या स्त्री क पुण्य धनेन छौरपेन नन्देययति ।
श्रीरचं कालकूट विप्र द्वितीयमस्या । तदनन्तरमुपपद्यते । तथा नीरे लक्ष्मी
उपतिता । लज्जितुकीवात् । पर नाट्टहृदया । किं तु निर्वर्जयता । देवतामुभावा
उल्लेखेन तद्वचं वेदवदय न नीतमिति भावः । तथा आप्तोपवरपमिषापी स्मृत-
मात्राणामुक्ता या वि प्रची गच्छन्त्या न बाहा बाहिन यस्य । तथा कृमापुरस्य
न नन्दनमन्त्रद्वयम् । अर्थात्कंसस्य लक्ष्मी मातृगामकम् । तथा मून चापल
यस्य । अर्थात् द्विपुस्तेन स्वीकृता । तथा उच्च नक्षत्र वा शिवविष्णु कृष्ण श्री यस्य
न उच्च (ईश्वर विष्णुश्च यस्य पदम्) नस्तिन् जयति । अथवा या ध्वं विष्णुना
स्वीकृतापि मर्ता नरे उपतिता । कालकूटद्वितीयापि मर्ता धनस्य मेघस्य चापणेन
विजयितेन कंसमेव जग मतापकादि वादनलमुद्वेजयति दीदयति अनार्यद्वयपिनरि
विद्याहं गच्छद्विना नार्द्धहृदया न न भवति । भवत्येवेत्यर्थः । या किं कालकूट-
द्वितीया या कथं विद्याहं हरेति विद्याधोनाशनयापिनान्दे सिद्धयमे । नाट्टहृदोऽत्र
स्तिगवायं । यदि वा विद्याहो विष्णुपतिनापि धी स्वकृता । तत्र वपादयत्यर्थः ।
निरागति सिद्धयमे ॥

काल समग्रसमय) पर कूट (कपट) ही को साथ बनाती है । (अनुनय-
दिनय कर) राखती कर देने पर भी जिसका हृदय नहीं पिघलता । धर्म
आदि को साजो देकर विवाह द्वारा स्वीकार करने पर भी छेड़नचापल (अव-
हन्तान्त्रक चरन्ता) से स्त्री जिसे नहीं व्यथित करती ।

लक्ष्मी-पञ्च—कालकूट (विप्र) ही त्रिनका द्वितीय (सहोदर बन्धु) है,
जो जल में रहती हुई भी स्निग्ध हृदय वाली नहीं है, वि (कालकूट) को बाह

(बाहन) बनाने वाले और ससार को सन्तुष्ट करने वाले कस रूप अनल (अग्नि) को (मारने) में घनचापल (अतिशय चपलता प्रदर्शित करने वाले) विष्णु द्वारा अङ्गीकृत हो कर भी अन्य लोग पर जाकर सुशोभित होती है ॥

[लक्ष्मी की उत्पत्ति के ठीक बाद कालकूट (विष घट) की उत्पत्ति हुई थी । इसी लिये उसे कालकूटद्वितीया कहा गया है । समुद्र की पुत्री होने के कारण नीरोपिता (जल में निवास करने वाली) कही गयी है । लक्ष्मी का पिता समुद्र है । अतः जलीय परमाणुओं का बाहुल्य उसमें स्वाभाविक है । फिर भी उसका हृदय आर्द्र नहीं है । लक्ष्मी किसी का परिग्रह कभी कभी कर लेती है और निष्ठुरतापूर्वक कभी भी उस व्यक्ति को छोड़ देती है । यहाँ विष्णु की विवाह कहा गया है, क्योंकि वि (गड़ पक्षी) उनका बाह (बाहन) है ।

आपि शब्द को वि का विशेषण बनाया जा सकता है । यथेच्छ वदचिदपि आप्तुं प्राप्नु गन्तु चीलमस्य इति आपो, आपो असौ च वि आपिवि आपिवि बाहो बाहन यस्य असौ आपि विवाह तेन आपिविवाहेन । अर्थात् स्मरण मात्र करने से जो कहीं पहुँच जाय ऐसे गड़ रूप बाहन वाले भगवान् विष्णु द्वारा लक्ष्मी गृहीत हैं ।

उद्वेजयति—उद्वे+अयति ये दो पद हैं । उद्वे अद्वे इस इतरेतर योग द्वन्द्व का रूप होगा जो । इको यण चि से उ का व यण हो जायगा । व के द्विवचन का रूप होगा वो । वो उत्कृष्टो यस्य इस विग्रह में उद्वे रूप बनेगा । उद्वे शब्द के सप्तमी का एकवचन होगा उद्वे । उ का अर्थ शिव है और व का विष्णु । अर्थात् शिव और विष्णु जिनके उत्कृष्ट हो । शिव और विष्णु जिन पर प्रसन्न हों, वह हुआ उद्वे । उद्वे पर लक्ष्मी प्रसन्न रहती है ।

अस्या कारणेऽभ्रान्त समस्तोमन्दराग सद्दालोक, लोलनेत्री-कृता घृष्टा भुजङ्गमण्डली, प्राप्नो जलधौ राजकुमारपराभवम् ॥

अस्या इति ॥ अस्या स्त्रिया हेतुर्लोक समस्तोऽप्यमन्दरागो इत्यादुराग सन्सदा भ्रान्त । तथा भुजङ्गानां विटानां मण्डली चपलात्कीकृता सती घृष्टा विप्रलब्धा । तथा जट्टा धीरस्येति जट्टधीर्जट्टबुद्धिः । राज्ञः सकाशात् कुत्सितो योऽसौ मार पञ्चविदवादिषण्धनेन विगोष्यहिंसा स एव पराभवस्त प्राप्नोति । अथवा राज्ञस्तथा कुत्सितश्च मारात् स्मरात्पराभव प्राप्नोति कुबुद्धिः । “अपि भ्राता सुनोऽर्थो वा श्वशुरो मातुलोऽपि वा । नादण्ड्यो माम् राज्ञोऽस्ति धर्माद्धि चलित स्वकात्” इति स्मार्ता । ततः स्वपितुरपि राज्ञः सकाशाद् राजकुमारस्य गच्छाद्वन परिभ्रष्टो युज्यत एव । पक्षे अस्या श्रियो निमित्ते । मन्दरोऽग पर्वत । अथमाकाशमन्तोऽस्येश्वरान्तोऽयोमावसान । सञ्च शोभन जालोकोऽस्यति सद्दालोक । सम्य-गास्तः चित्त इत्यर्थः । सपूर्वाद्दश्यते च । यद्वा सम्यगस्त सञ्चम्पु भ्रान्त सुशोऽवभ्रान्त (अर्धान्तरे भद्विधेन न दोष) । तथा अलोत्प्रेक्ष लोलनेत्र कृता

मुजंगमण्डली । तत्र मन्यानरञ्जः । तथा जलधिरधि पराभवं मन्यमलक्षणं प्राप । राजकुमारेत्यामन्त्रणे ॥

इसी स्त्री पदार्थ के कारण सभी लोग अमन्द राग (गाढ़ अनुराग) में फँसकर सर्वदा भ्रान्ति में पड़े रहते हैं । चंचल नेत्र (स्वभाव) वाली मुजंगमण्डली (धूर्त परिपक्व) हमेशा धोखे में पड़ा करती है । जड़ बुद्धि का आदमी कुत्सित स्वभाव वाले राजा कामदेव से पराजय प्राप्त करता है ।

[स्त्रीपक्ष में अर्थ करने समय भ्रान्त शब्द के पूर्व खण्डाकार नहीं रखना चाहिए । मन्द राग के पूर्व खण्डाकार समझना चाहिए । जलधी की जगह जलधी समझना चाहिये । इत्योरभेदात् के नियम से इ और ल में अमैद माना गया है । राजकुमार शब्द में राज और कु दोनों ही अर्थ 'भार' शब्द का विधेयन बन कर आये हैं ।] ।

श्री-पक्ष में—इस लक्ष्मी के लिए अन्न (आकाश) के अन्त तक फैला हुआ सदाशोक (सुन्दर कान्ति वाला) मन्दराचल समस्त (सम्पूर्ण प्रकार से समुद्र के मयन के अवसर पर समुद्र में डुबाना-फँका गया) । अचंचल आँख वाली मुजंगमण्डली (सर्प-मंडली) भी चंचल आँख वाली बना दी गयी । और रगड़ी गई । हे राजकुमार ! इसी के लिए जलधि ने पराभव प्राप्त किया ॥ १०४ ॥

[इस पक्ष में अन्न + अन्त विच्छेद किया गया है । समस्त सन् उपसर्गक बहु क्षेत्रों धानु से ल प्रत्यय करने पर इसका अर्थ हुआ फँका हुआ । अर्थात् लक्ष्मी के कारण इतनी सुन्दर कान्ति का पर्वत फँका गया । मन्दराग पद से मन्दर + अग विच्छेद कर मन्दराचल अर्थ निकाला गया । लोभनेशीलता शब्द दो अर्थों की ओर संकेत करता है । बाहुकि आदि सर्पों को मयन-रज्जु बनाकर समुद्र मया गया था । पर्वत की रगड़ खाकर दुखी सर्पों की आँखें माँस लड़ी थीं । तत्र शब्द का 'मयने वाली रस्ती' अर्थ भी होता है । अर्थात् जलधी जलधी खोँधी जाने वाली मयन रस्ती की तरह सर्पमण्डली रगड़ दी गई । सर्पों की एक ही हड्डी होती है । उन्हें यदि एक दो बार भी रगड़ दिया जाय तो वे निर्दल हो जाते हैं । इस लक्ष्मी के निमित्त विचारे सर्प बहुत दुःख पाते । जलधी शब्द का इकार दीर्घ रूप में इस लिए दीक्षता है कि 'दूनीये पूर्वस्य दीर्घोऽयः' ॥ वहाँ दीर्घ हो गया है ॥

अनयावष्टयः को न गुरुवारणयोग्यो भवति, को न वाजिपृष्ठमाये-
हति ककणध्रवञ्जनानः प्रकटयति, क. कण्ठे ह्यायवमोचनं न कुरुते,
को न काञ्चनशृङ्खलामनुभवति । कुरङ्ग इवान्धोभूत को वायुरायञ्जनं
करोति, क. कार्मुनिर्मुक्तशिलीमुख इव न वैलक्ष्मागच्छति ॥

अनयेति ॥ अनया स्त्रिया आश्रित क पुरुषो गुरुणा वारणे निषेधे । वा अध-
 वार्थे । आजि कलह वञ्चनाया वञ्चनात् (पञ्चम्यास्तमितिल) प्रसारणात् । क
 सुप्त वञ्चनाकृत सुगमित्यर्थः । कणज शब्दायमान । को न प्रकटयति । कण्ठे
 गलान्त हा इति य आरावस्तस्य मोचनम् । काचनेति काचिदर्थे । शृङ्खलां व-ध-
 नम् । गुरौ गुरुविषये अञ्चना पूजा । कुरङ्गपक्षे वागुराया मृगजालिकाया वञ्चना ।
 पराभवादे प्रागधस्थया विमरशो लक्ष्यन इति बिट्ठ । तस्य भावो वेलक्षम् ।
 धनुर्मुक्तवाणस्तु वै स्फुट लक्ष वेद्यमायानि । पक्षे अनया लक्ष्या । गुरर्महान्
 वारणो गज । वाजिपृष्ट तुरङ्गपृष्ठम् । ऊकण हस्तसूत्रम् । नवमविच्छादगम् । च
 समुच्चये । नेति निषेधे । अतोऽस्या इत्यर्थः । हारस्य मुक्तासरस्य । अवमोचन
 बन्धनम् । काञ्चनस्य शृङ्खलामामरणविशेषम् । अगौरवाहं नीधे । अन्धीभूतो
 निविधेक । अपि तु सविप्रः स-गुरुनेव पूजयति । ये स्फुटम् । लक्ष शान्तहृद्यं
 नाप्नोति ॥

इससे घिरा हुआ कौन आदमी गुरुओं के निषेध का पात्र नहीं बनता
 अथवा कौन कलह की भूमिका में नहीं चढ़ जाता, कौन धूर्तता से बोलना हुआ
 सुख प्रदर्शित नहीं करता । कौन कण्ठ से 'हा आराव (आवाज)' नहीं
 निकालता । कौन (किसी के प्रेम बधन में पकड़कर) किसी तरह की शृङ्खला
 का अनुभव नहीं करता । कौन गुरु (विशाल) (वासना) का पूजन नहीं
 बन जाता । धनुष में निकला हुआ बाण जैसे बै + लक्ष (निश्चित रूप से लक्ष)
 पर पहुँचता है वैसे (स्त्रियो में रागान्वित होकर कौन नहीं वेलक्ष (हतभी)
 बन जाता ।

मृगपक्ष में—मृग भी अन्धीभूत (भय से विह्वल) होकर वागुरा) जाल
 के तन्तुओं) से मुक्ति पाने की चेष्टा करता है ।

लक्ष्मीपक्ष में—लक्ष्मी में घिरा हुआ कौन आदमी महान् हाथी और
 घोड़ों की पीठ पर नहीं बैठता अतः (लक्ष्मी की कृपा से) नवीन कट्ठण (सोने
 से बना हाथ का यलय) कौन नहीं पहनता, कौन आदमी अगुरु का पूजन
 करता है (अर्थात् लक्ष्मी का कृपावात्र गुरु (बड़े) की ही पूजा करता है ।
 कौन आदमी है (निश्चित रूप से) लाख रुपये नहीं प्राप्त करता ।

[स्त्री पक्ष में गुरु का अर्थ आचार्य तथा वारण का अर्थ निवारण है ।
 वाजि शब्द में वा + आजि विच्छेद कर कलह अर्थ किया जाता है । कट्ठणप्र-
 वञ्चनात् —(धूर्तता से) कणन् (बोलता हुआ) क (सुख को) कौन नहीं
 प्रकट करता । हारावमोचनम्—हा (दुःखव्यञ्जक) आराव (ध्वनि) कौन नहीं
 छोड़ता । काचनशृङ्खला—(किसी स्त्री के स्नेहविषयक बधन) वागुरा
 वञ्चन—वा + गुरो + अञ्चन—किसी स्त्री विषयक विविष्ट वासना में ही
 पूज्य भाव रखना । मृगपक्ष में वागुरावञ्चन—वागुरा (जालतंतु) से मुक्ति
 पाने की चेष्टा । वेलक्ष—कान्तिहीनता ।

लक्ष्मी पत्र—मुखारण विशाख ज्ञापी, वाजिपृष्ठ—घोड़े की पीठ, कक्षा
नवऽवनात —जाति —आ (लक्ष्मी) तन्निष्ठ (लक्ष्मी की कृपा प्राप्त कर लेने से)
नव कक्षा च क न प्रकटयति—नवीन कक्षा को कौन नहीं प्रकट करता ।
लक्ष्मी शृङ्गल—स्वर्णमयी शृङ्गल सप्त भूपा । को वा अगुरी लक्ष्मी
कराति कौन जलमयी अगुष (अश्लेष) अक्षि की पूजा करता है अर्थात् श्रेष्ठ
व्यक्ति को ही पूजा करता है । वैष्णव—निदिबिबु रूप से लक्ष्मी पर पहुँचता है ॥

रम्य न परामूर्तिर्मयति । रम्य नापूर्व यदा समुच्छ्रयति ॥

रम्य—स्त्रीलक्षणस्य परामूर्ति परामय । प्रतिपद्यमाने ५ पूर्वो यस्याद्यदा
रम्यरूपपातदपूर्व यदाऽयदा इत्यर्थः । यत्र पराऽदृष्टा भूतिरयति अपूर्वमुदृष्ट
यति ॥

श्री पत्र—श्री क कारण किसी परात्रय नहीं होता । किसी मनस्य
नहीं मिलता ।

श्री पत्र—किसका परा (दृष्ट) कोटि का एतदर्थ (भूति) नहीं मिलता ।
किसका अरूब यत्र नहीं पैलता ।

श्री पत्र—नापूर्वयदा—यद्य क पूर्व य निषेध ही है, जथात् यदा नहीं है ।
विष (दुविनीता) श्री क प्रेमी का अयय नहीं पैलता ॥

किमनोऽप्यस्या परमुच्यते ॥

इत्थं चक्षि और क्या कह ॥

यादवप्रिय शार्दूलमित्र शूर महत्तरं मयानोपसर्पति । सुभयना-
श्रेय मिहमित्र शलमद्र दृष्टा प्रपलायन । न वसुदेवेऽपि चक्षु
पानयति ॥

वसुदेवस्याऽऽ शैलान् वज्रगाहूरापदामबाहीम्यभिजय सप्रति पर
परिणाम यस्यात्तदृष्ट—रम्ये दन्मुपनाप प्रीगति दवप्रिय शार्दूलम् । अथवा
दुमानानि दव कनश्चिदेतुपुत्र दुपनायत्रमक्ष य प्रिय कातस्म शूर विद्वान्त
महत्तर दृष्ट भवाव मनाप वज्रान् । अयमन वार्धक्यमय च शूराय दत्त । शार्दूल
पत्र दव काननम् । सुभयान नयप्रवननशासहनायामानन्त्र—म । शत्रु शत्रु,
वर्ग निषेध, वलन गव दा मद्र, दृष्टबाप प्रकटयति । प्रियमित्त दव । मिहमित्र
न दशरथ वर मिहनादस्य प्रवानवात् । तथा वसुदेव प्रमद । यत्र रक्षकपि
चक्षुर्नयन ॥ पानयति । मनुजमपि मालोक्त इत्यर्थः । यदि वा वानऽवश्यमिति
वपति चक्षुर्विशयम् । पत्रे यादवा यदुवरदास्तथा प्रिय शूरनामादुपुत्रस्म
मरास्थितिरद्वयनलक्ष्मात् नास्पर्शित न तामसीपे व्रजति । एतन वसुदेवो वप्या
न रक्षयत इति स्थितिरुक्ता । शोभने नयन यस्या सा दवर यदनामान कृष्णस्य
गदाप्रकाशात् । वलमद्रमपि दृष्टमवन्धन प्रतीत वाच्य प्रकटय पलायत स्पर्श
मयात् । तथा वसुदेव कृष्णस्य पिता य

या+दव (जो बलेश जनक) वीर तथा महान् (वृद्ध) प्रिय के पास नहीं जाती है । जैसे दवप्रिय (जगलप्रिय) विशाल एवं वीर शादूल के पास कोई ठर मे नहीं जाता ॥

[प्रिय के पास स्त्री के न जाने मे उसकी बुढ़ापा कारण है तथा उससे ठरने मे उसकी वीरता कारण है । स्त्रीपक्ष मे या अलग पद है तथा दवप्रिय अलग पद है । दवप्रिय का अर्थ बलेश देने वाला प्रिय है । दव का दूसरा अर्थ जगल है । शादूल पक्ष मे—दवप्रिय का अर्थ अरण्यप्रिय है ।]

हे सुनय ! (अच्छी नीति के जानकार) नाट (बोलने) मे श्रेष्ठ शक्ति के कारण कल्याणकर व्यक्ति को भी देखकर भाग जाती है जैसे पूर्ण बलिष्ठ तथा गभीर गर्जन करने वाले सिंह को देखकर लोग भाग जाते हैं ।

वसुद (संपत्ति देने वाले) अब (रक्षक) पर भी दृष्टि नहीं गिराती । वसुदेवेऽपि इसमे बेपि अश को निकाल कर वसु का विशेषण बनाते हैं । बेपि का अर्थ हुआ 'अधिक कपनशील ।)

श्री पक्ष—लक्ष्मी वसुकुल मे उत्पन्न व्यक्तियों के प्रिय शूर नाम के महान् (वसुराज) के पास भय से नहीं जाती है । वह सुनयना देवर (कृष्ण के छोटे भाई गद) तथा बड़े भाई बलभद्र को भी देखकर हट जाती है । वसुदेव (कृष्ण-पिता) पर भी दृष्टि नहीं गिराती ।

शूर ओर वसुदेव लक्ष्मी के हवशुर कोटि मे आते हैं इसलिए उनका स्पर्श करना परपरा विरुद्ध है । यही बात बलभद्र के लिए भी कही जा सकती है । देवर मे भी भागने का तात्पर्य वासनात्मक रूप से न देखना ही है ॥

केवलमनघरतशिक्षितवैदग्ध्यकलापराधारमिकात्रपापरा परिहृत्य गुणिनो गुरुपरपुरुषे मायायिनि कृतकेशिद्यधे धृतमन्दरागे रागं यध्नाति ॥

यदीदृशे परमोपकारिणि न प्रेमवती स्त्री, तदाभ्यन्न कस्मिन्नपि गुणिनि प्रेमबन्धं विधास्यतीति निरस्यन्नाह—केवेनेति । न्यूयते इति नञ् प्रशस्य न नञ्मनश्चमप्रशस्य रत यस्या । केवल बीजस्यहेतुत्वात् । नहि तस्या सतति । रत च 'सतरया फलम् । तथा विशेषेण दग्धो विदग्ध । तस्य भावा वैदग्ध्य सतापस्तस्य कला वैदग्ध्यकला शिक्षिता यथा । पञ्चाशकर्मधारय । अपराध एवात्मा स्वरूपं यस्या' । तथा न प्रायते नरकाद् अत्र तथामृत यत्पार्थ कर्मण्युपसर्गं रानि ददातीत्यत्रपापरा । गुरुन् पित्रादीन् गुणिन सगुणान् ब्राह्मणपुरुषान् परिहृत्य परस्या पुरुषेऽयनारी कान्ते मायायिनि कापटिके कृतके कृत्रिमे अशिवमकल्याण दधातीत्यशिवधे मन्द-रागे चणप्रेमण्यनुरस्यते । परपुरुष हृष्यत्र सर्वनामात्वाद धृत्तौ पूर्वपदस्य पुंस्त्वम् । पक्षे अनवरतं शशच्छिचिते वैदग्ध्यकलापो दध्नातिशयो यथा सा चासी राधा-

निका । राधा च कृष्णपत्नी । सापि श्रिया एव भेदः । त्रपापरा सलज्जा सती । गुणिनो गुरुच्छुरार्दान्द्रूनामादिपुरुषान् परिहृत्य परपुरुषे मुरारी रागं प्रीतिं ब्रूनाति । किंभूते माया त्रिलोकीनिर्माणलक्षणा वामननृमिहमहिलावादिलक्षणा वा विद्यते यस्य । तथा कृतः केशिनोऽवरोपस्य दैत्यस्य वधो येन । तथा धृतो मन्दरनाम्नाऽग्निर्ध्वजः ॥

केवल अनघ (अप्रदोषनीय) रत्न (प्रेम वाली) होती है । वैदग्ध्य कला (पीडा देने की ही कला) पड़ी रहती है । अपराधात्मिका (अपराध की प्रतिबूति) होती है । अवपापरा (जिस पाप से अपनी रक्षा न की जा सके ऐसे पापों को उपस्थित कर देने वाली) होती है । गुबर्जो (पिता आदि पूज्य जनो) तथा गुणी पुरुषो को छोड़कर मायावी,—हृदिन अतिवध (अकृत्यामकर पक्ष के दोषक तथा निम्न कोटि के प्रेम वाले लोगों के साथ प्रेम करती है ।

श्रीपक्ष—हमेसा जिहने केवल वैदग्ध्य कलाप (ज्ञान की विविधता) की ही शिक्षा ली । राधात्मिका (कृष्णपत्नी होने के कारण लक्ष्मी का ही एक रूप) है । त्रपापरा (लज्जापीडा) है । गुनवान् गुह (दूर आदि दबनुर कोटि के पुरुषों) के स्पर्श आदि को छोड़कर पर पुरुष (अकृत्य कोटि के पुरुष, पुरुषोत्तम) जिन्होंने मन्दर नामक अग (पर्वत) का (धारण) किया था—से प्रेम करती है ।

तदायुष्मन्नतिगम्भीरगुहा गिरीन्द्रमूरिव हृदयहराश्रेयोऽर्थिनां शरणं न स्त्री श्रीर्वा ॥

एवमुक्तकपटानामनाद्रिहृदयवादिदोषान्वितानां स्त्रीणां विशाल विग्रहम् श्रीणां च विधानं यत्र तत्र निर्देष सर्वथा परिहरन्सर्वोऽप्यायुष्मामिण्यायुष्मन्निति संज्ञो घनेनाभिहितम् । तद्विस्तृप्तसंहारे । श्रेयोर्थिना स्त्री न रक्षित्री । कीदृशी । हृदयं चेतो हरति मोहकारिणी । पृथेन जयहेतुत्वमुक्तम् । तथा अनिगमतिशयेन विनेतीनि मीर्मदि श्रीस्वभावत्वात् । अथवा मीर्मपहेतुत्वात् । दुष्टाशयत्वात् । तथा न गौर्वान्यस्य सोऽगुरुनं जहानि अगुहा । य एव मायामय वक्तुं वेति क्षणमपि तमेव श्रयतीत्यर्थः । अथवा गौर्वन्त्यर्थः । नत्त्वोपलक्षणम् । तेन निर्धनं त्रिहाय घनिनमेवाश्रयतीति । यदि वा नतौ नम्रनाथां गम्भीरा गौर्वान्यस्य तमपि जहानीत्यर्थः । न च महादशत्रिाटूनि कुत्रापि वक्तुं प्रमत्तव्यम् । सर्वान्नतत्वात् । यदि वा अनिगमनिगमं मिय रानि द्दानीनि मोरा गौर्वस्य तमनिगम्भीरगं जहानि । हिमाचलमूरपि अनिगम्भीरा गुहा पाथागसन्धयो यस्याम् । श्रीश्रेयोऽर्थिना न शरणम् । किन्तु श्रेयोऽर्थिनाम् । कीदृसी हस्तग्रन्त नथाप्य शुभकर्म हरति । तस्याप्य शुभकर्मणो मुक्तत्वात् । यदुक्तं नैषधे—‘पूर्वजन्मविमद्वयपशुष्टा’ संपदेऽप्य विपदश्च विमृष्टा’ इति । गौरी अपि हृदये हरो यस्या । तथा नतिगम्भीराः प्रणामप्रगम्भो गुह कार्तिकेयो यस्या । तत्पुत्रत्वात् ॥

अत हे आधुम्न ! श्रेयोऽर्थी (क याण चाहने वाले) लोगो का शरण स्त्री कभी नहीं होती । वह हृदयहरा मन को चुरा लेती है । अतिगम + भी (अत्यन्त भयकर) होती है ।

अगुहा—(जिसके पास चाटुकारितापूण वाणी नहीं है उसे छोड़ देती) है ।

(अगुहा—गौ का अर्थ वाणी है) जिसके पास गौ नहीं है उसे बहुवीहि समास के आधार पर अगु कहते हैं । ओहाक त्यागे धातु के आधार पर अगु को छोड़ने वाले को अगुहा कहा गया है । अर्थात् जो छद्मपूण किंतु मधुर मधुर बोलता है उसी के बश में स्त्री रहती है । जो ऐसा करना नहीं जानता उसको छोड़ देती है । अर्थात् अति गभीर भय को जो देता है (राति) वह अतिगभीर गु हुआ और उसे छोड़ने वाली को अति गभीर गुहा कहेंगे । गिरी द्र भू (हिमालय पर्वत की भूमि को भी अतिगभीरगुहा कहा जा सकता है, क्योंकि उसकी भी गुफाएं बड़ी विशाल विशाल हैं ।]

श्रीपक्ष म—अश्रेयोऽर्थी (अकल्याण चाहने वाले) लोगो का शरण लक्ष्मी नहीं बनती । हृदयहरा—हृदय की आगतिक धृष्टियों का हरण कर वाञ्छित मुक्ति देने वाली तथा अति गभीर गु (अत्यन्त गभीर आगम वाली है)

पार्वतीपक्ष म—गिरी द्र भू (हिमालय उनका उत्पत्ति स्थान है) अपने हृदय में हर (शिव) को रक्खी हुई है । तथा उनके पुत्र गृह (कातिकेय) नति गभीर (प्रणाम करने में पूर्ण प्रवीण) है ॥

शृङ्गारप्रधानास्तान्, गाव इव विचारिता सरसा भवन्ति न म्रियन्ते ॥

अधुना दुस्त्रिय मयथा परिहार्यं साध्या अत्यन्त त्विभामप्रतिषेधद्वारेण सेवत विषया शान्ते सुखदा न परना वशी । पुरा हि कलमधस्य तस्मिन्नाश्रयुधा श्रिय इति पूर्वविकल्पिततनुगामुकोऽयामक्ति च निषेध नाह—शृङ्गारान् । रुच्यगिषावचोभिरास्माजीनैरसौ विमनम्भो भविष्यतीति चित्तधारयन् कृ य चोप दिशन् नानेति कामलमाम्रवति । शृङ्गारो रस प्रधानं यासु । तथा विचारिता विवचिता गावो गिर एव मर्या प्रीतिजनका भवन्ति । अथवा गाया विशेषेण चारिता दत्ताम्बाद्वत्तगङ्गा । तथा शृङ्गारप्रधानं प्रधानं यासु ताम्रधोक्ता । तथा सरसा सद्गुणा । स्त्रियस्तु शृङ्गारो मण्डनं प्रयत्नं यासाम् । विचारिता स्तुतिस्तु दुशीला मयो गुणगण छादयतीति तत्त्वता विमृष्टा सत्यो न मरमा । किंतु वैराग्यहेतवः ॥

हतात् । स्त्रियो म शृङ्गार का प्रवर्तता रहती है । विचार ॥ दखन पर वे सरस नहीं होता । उनमें ऊपर नन्वन विचार किया जाय तो वैराग्य ही उत्पन्न हो जायगा ।)

गायन म शृङ्गार का घर । जयभाय) उनमें प्रयत्न होता है । विषय रूप म (मन्त्र ध्याना का चरण पर ही सरस होता है ।

तदेना कन्दपरुषूक्यगत्रिनादमात्रापरिप्या नात्यन्तनिश्चयम्
योग्या सत्यं विप्रश्नं ये याम् नय नः तुभन्ति स्त्रिय ॥

अत्र ह्यत्र तत्तन्नादितोऽन्ता स्त्रियो नाय ० । वध्वर्माह । विद्वद्भ्यः । तत्र नन्वन — दृश्य-याद । यद्यपि हि 'च नर मित्र' विद्वन्-वामनिश्च कुर्वन् । तत् नाय — इति शायन्त विद्वन्-वर्मा । नया च नाय — अन्तर्गतम् । अन्तरि ग्रीष्मिष्ठाद्वा रक्षा यन्ता । अन्तरिष्ठा न काऽप्याभ्यन्तरम् । अयम् हि — 'व गृह्यता आना मन्त्रमन्त्र ज्ञान मानु गत्यानगन्तम् यत्र वाऽप्यम् ह्यदि ॥

य न्त्रिया कामान्ध मृगहृन्निदाकर मनादिनाद कान्ता म हा उरकारी है । 'नरर सवध' विद्वान् नहा करना चाहिए क्योंकि विद्वान् किन्तु हुए आदमी को विद्वान् मृग, बना देता है ।

त्रियोऽपि दानोपभोगान्यानुपयोग नयेत् न लाभ इत्यादि । उर लोमानुगत निरणकन्दापोऽपि सतापयति जनम् ।

स्त्रीणां ह गन्धर्वनिनादमात्रम् आम्बिय ममान्ता आना कन्माह — श्रवणो लोमानुगत दानोपभोगान्यानुपयोग नयेत् । न लाभ इत्यादि । उर लोमानुगत निरणकन्दापोऽपि सतापयति जनम् ।

स्त्रिया भी अगर हों तो काम और उभयान् क कामान्ध म उनका उपयोग करना चाहिए । उसमें लाभ नहीं करना चाहिए । बहुत लाभ म पडा हुआ आदमी लोमा का सतप्त करता है जैसे बहुत (पयान्) मानुष (सूर्यसवधा) किन्तु लोमा का सतप्त करती है ॥

अन पुत्र प्राप्स्यमि नत्रिपानिबहुलकमन्त्राजहसा रायधि यम् ॥ अनरत्न हनयशोदान्तेहि नारायण इव त्वमि चिर रम्यते खलिय लदमा ॥

यादृ लभनता नया मनप्यत चरन्ताऽर्द्धमन्त्राजहसा — अत्र ह्यत्र । अन पुत्र स्माज्जाचित्पमास्थमि । अनानुरागमवा हि सयत् । लयता एतस्मात्पूर्वोक्त- दाम्पत्यशास्त्रम् । प्राप्य च श्रिय निरन्तर उत्त यम् यन् तद्वान् दहि घर्मादपात्रपु त्रिय निबुद्धानि भाव । मन्त्र निबिन्मिय लक्ष्मा पात्रपु ध्यवकलयति स्वयि विष्णुविष्वक् बहुकाल सद्यं म्याम्यनि । विष्णौ कीर्ति । हृन्तो यशदादयाया जनन्या आनन्दो यन् नमिन् । हि स्फुटम् ॥

अतः हे पुत्र ! शीघ्र ही अपने कुलकमल की राजहंसी राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करोगे । हमेशा ऐसा दान करो जिसमें यश उत्पन्न हो । यशोदा को आनन्दित करने वाले नारायण की तरह तुम में यह राजलक्ष्मी विरकाल तक रमण करती रहेगी । पहले उपदेश दिया गया है कि संपत्ति का उपयोग उचित स्थान या पात्र में करना चाहिए । कृतयशोदानंदेहि—मे सभङ्गश्लेष के कारण चमत्कार है । कर दिया है यश जिस दान ने ऐसे—कृतयशोदान को दो । नारायण का विशेषण बनाने के लिए—कर दिया है यशोदा के आनन्द को जिसने उसमें—कृतयशोदानन्दे—सप्तमी का एक वचन है । हि पृथक् पद रहेगा जो निश्चय अर्थ का बोधक होगा ॥

पाहि प्रजा. ॥ प्रजापो ब्राह्मण इव क्षत्रियोऽपि न लिप्यते पातकैः ॥

बलादपि प्रजाम्यो वित्तमादाय पात्रेषु भयोपकरणीयमिति मा कृथा इदं तद्वाह—पाहीति ॥ पालय प्रजा यस्मात्प्रजा पाति यः क्षत्रियः स न पापी । ब्राह्मणस्तु प्रकृष्टो अपो यस्य स प्रजापः । अपर्णं जाप ॥

प्रजाप (प्रकृष्ट अप करने वाला) ब्राह्मण जैसे पापी से लिप्त नहीं होता वैसे प्रजाप (प्रजा का पालन करने वाला) क्षत्रिय भी पापी से लिप्त नहीं होता ।

मा च वृद्धिं प्राप्य गुणेषु द्वेपं कार्षीं. । व्याकरणे हि वृद्धिर्गुणं बाधते, न सत्पुरुषेषु ॥

मा चेति ॥ वृद्धिं राजपादिसमृद्धिम् । गुणेषु पाण्डित्यादिषु । हि यस्माद्गुण-बाधिका वृद्धिरिति व्याकरणममयः ॥

वृद्धि (राज्यसमृद्धि) प्राप्त कर गुणवान् व्यक्तियों में द्वेप मत करना । व्याकरण शास्त्र में ही वृद्धि गुण की बाधती है । किसी सज्जन पुरुष की वृद्धि (प्रगति) गुण से बिद्रोह नहीं करती ।

[व्याकरण शास्त्र के अनुसार अपवाद शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र को बाध लेता है । गुण शास्त्र उत्सर्ग शास्त्र है और वृद्धि शास्त्र अपवाद शास्त्र है । इसीलिए गुण की वृद्धि बाध लेती है । व्याकरण शास्त्र में ही गुण और वृद्धि का बाध्य-बाधकभाव चलता है । आप जैसे राजकुमार की वृद्धि (प्रगति) किसी गुण या गुणी की बाधिका न बने ।]

यत्स, मा चैवं चेत्तसि कृयादल्लान्दसोऽयम् । छान्दसश्च गुर्वक-स्थभाव एव भवति तत्किमनेनेति । यस्माच्चतुरानन्दपदः पुण्य-दलोको भवान् । अतोऽहंभावं यान्ति ते यकोक्तयोऽपि गुरुषः ।

सरलनया लघवोऽप्यन्तरङ्गा भवन्ति । किन्तु ते ह्यवसाने कुटिलतामपि दर्शयन्ति ॥

इदानीं निषाममिषायाः ननीपदिष्टे आदरपरं कुमारं कुर्वन्मृदुवचोभिः प्रोत्साहयन्नाह—वाटेस्तादि ॥ छन्दो वेदं छन्दःशास्त्रं च । गुरुस्तत्त्वोपदेशा छन्दोऽष्टलघुद्वितीय आकारादिश्च । सम्पात्कारणाद्वशान्पुण्यश्लोकं पवित्रयशाः । तथा चतुरानामन्दयति नयाविष पदं राग्यलङ्घनं यस्य । अतो वक्रवचमपि गुरुवः । तेन च अङ्गत्वं भावं भावना यान्ति । स्वयं भाविनाम्मानो भवन्तीत्यर्थः । अङ्गेति । कामला-मन्त्रगे । सरलनया एकमार्गतया लघवो लघुवृत्ता अप्यन्तरङ्गाश्चेनोमिप्रेनाः स्युः । परं तेऽन्ते कौटिल्यमपि प्रकाशयन्ति । अथ च पुण्यं श्रेयाद् श्लोकं पद्यम् । तदा च चारि आनन्दीनि पदानि पादा यस्य ते प्रमिता गुरुवो वक्राहतयोऽङ्गभावमवयवत्वं यान्ति । श्लोकश्चेति शेषः । सरलनया चतुरनया लघवो लेन्नाङ्गनयोऽन्तरङ्गा-मप्यगताः स्युः । परमन्ते पादान्ते कुटिला अपि स्युः । 'वा पादान्ते स्वमौ स्वक' इति वचनात् ॥

वत्स, यह न सोचना कि यह सब छन्द (गण्ड या वृत्त की उक्तिया) हैं । छान्दस (वेदवेत्ता एवं कल्पनाप्रवीण) गुरु टेरे स्वभाव का (रक्त बोझने वाला) होता है, लेकिन उससे कोई हानि नहीं होती । उनकी वक्रता पर आपको ध्यान नहीं देना चाहिये, क्योंकि आप पुष्करलोक (पवित्र परा वाले) हैं तथा चतुर लोगो को आनन्द देनेवाला राग्य पद आपको प्राप्त है । अतः टेरे बोझने वाले भी गुरुजन (अपनी चतुरता के कारण) आपके अङ्गभाव (आत्मीयता) को प्राप्त कर लेंगे । सरल (सीधे स्वभाव के) हो जाने पर लघु (छोटी वृद्धि या छोटे स्वभाव के) लोग भी अन्तरङ्ग (आत्मीय) हो जाते हैं, किन्तु अन्त में वे अपनी कुटिलता दिखाने ही लगते हैं ।

[छन्दःशास्त्रवत्स.—इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों को बताने वाले छन्दःशास्त्र में गुरु (दीर्घवर्ण) वक्र स्वभाव (टेढ़ी आकृति) के होते हैं । छन्दः शास्त्र में गुरुवर्ण का चिह्न (ऽ) देवा और लघुवर्ण का चिह्न सीधा (।) होता है । लेकिन टेढ़ा होने से क्या होता है ? वक्र आकृति वाले भी गुरु वर्ण चतुरानन्दिपद (आनन्द देने वाले चार चरणों से युक्त) पवित्र श्लोक के अङ्गभाव (अवयवत्व) को तो प्राप्त करने ही हैं । अर्थात् गुरुता को भी छोटे श्लोक के विभिन्न चरणों में स्थान मिलता ही है । लघु वर्ण सीधे (।) लिखे जाते हैं, वे भी श्लोक के भीतर आते हैं किन्तु पाद (श्लोक चरण) के अवसान (अन्त) में कुटिल (टेढ़े-गुरु-ऽ) हो जाते हैं । पादान्तस्य विकल्पेन—श्लोक के पाद के अन्त में आने वाला ह्रस्व वर्ण भी गुरु हो जाता है ।

[मा चैवं कृया—उपलब्ध योजना के अतिरिक्त इसका यह अर्थ भी सम्भव है—

वत्स, मेरी इन बातों को ज्यो त्यों (अवहेलनापूर्वक) मन में नहीं रखो । वेद वाक्य की तरह इसे समझो । छान्दस गुरु प्रियवक्ता नहीं होता, वह तथ्य वक्ता हुआ करता है । तथ्य बोलने वाले लोग आप जैसे पवित्र आदमी के अङ्ग ही बन जाते हैं । राजा को अत्यन्त सरल भी नहीं होना चाहिए । सरल होने पर लघु (बुद्धि के) लोग उसके विश्वास भाजन बन जाते हैं और अन्त में अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं ।

यहाँ छन्द शास्त्र के आधार पर निर्मित पवित्र श्लोक में पृथ्वीक नल की तुलना की गयी है । एक श्लोक जैसे चतुरानन्दपद (चार आनन्द देने वाले पदों (चरणों) से युक्त होता है वैसे नल चतुरानन्दपद (चतुर लोगों को आनन्द देने वाले (राज्य) पद पर प्रतिष्ठित) है । एक श्लोक में जैसे टेढ़ी आकृति वाले गुरु वर्ण स्थापन पा जाते हैं वैसे तथ्यविद् गुरु वक्र स्वभाव वाले होने पर भी अपनी चतुरता के कारण राजा के अङ्ग बन जाते हैं । आचार्य चण्डपाल ने अङ्ग शब्द को सम्बोधन माना है । अर्थात् है अङ्ग (प्रिय) । वक्र बोलने वाले भी गुरु तुम्हारे भाव (धृष्टा) के पात्र बनते हैं । लघु (ह्रस्व) वर्ण जैसे लिखने में सीधा होता है और पाद के मध्य में रहता है तब तक तो ज्यो का त्यों रहता है किन्तु ज्यो ही पाद के अन्त में पहुँचना है गुरु (ऽ देहा) बन जाता है । वैसे लघु स्वभाव के लोग अन्तरङ्ग तो बन जाते हैं किन्तु पूर्णतः उन्नति कर जब अन्तिम पद पर पहुँचते हैं तो अपनी कुटिलता दिखाने लगते हैं ।]

तिष्ठि यदुना—

तथा भय यथा तात त्रैलोक्योदरदर्पणे ।

धिरोपैर्भूषितस्तेस्तैर्नित्यमात्मानमोक्षसे ॥ १७ ॥

तथेति ॥ तातेति कोमलामन्त्रणे । तथा तेन प्रसारेण भव यथा तैरस्मदुपदिष्टे प्रजाप्राणादिभिर्विशेषैरपलघितमात्मानं भूषयितुं पृथ्वीस्थित एव त्रैलोक्यमेव योऽमौ दर्पणस्तत्र नित्यमविनष्टं पश्यसि । अन्योऽपि तेस्तैराकण्ठविशेषैर्मण्डितमात्मानं दर्पणे पश्यतीति । यत्रोऽर्थमेव प्रयत्नितव्यमिति भावः ॥ १७ ॥

अधिक क्या कहें—

वत्स । ऐसा बनो जिससे त्रैलोक्य के आगिरूप दर्पण में अपने विशेष (दान आदि) गुणों में अलंकृत हो कर तथा इस भू (पृथ्वी) में उदित (स्थित) होकर सदा अपनी पवित्र आत्मा को देख सको ।

[अत्यन्त यशस्वी कार्य करोगे तो समूचे ब्रह्माण्ड में तुम्हारा यश फैल जायेगा । इस पृथ्वी में रहते ही रहत अपने यशस्व निर्मल आत्मा को देख

सको । अधिकतर राग मरन के बाद अपने कार्यों के कारण पशुस्थी होत है ।
तुन ऐसा मत करा कि जीत हा जीत तुम्हारा बमर दश सपूर्ण ससार म
फैल रह ॥ १७ ॥]

कि चान्यन्—

रिमर्ति यो ह्यर्जुनरारि पोट्य करोति नम्रे च न वा रिपौ ह्यम् ।
न तेन राजा सहसागराजिना मनेन्मही किं सहसागरा जिता ॥१८॥

रिमर्ति—अर्जुनमत्र दृष्टोपाच्छादयति वारपनि वत्पवताल निजप्रकर्षेण
सत्परिब्राज्यकारि पौरुष या राजा वसे । अथवा नम्र रिपौ शत्रावपि ह्य काप
न च नम्र करोमि । धर्मविजयवात् । नन राजा अमराजिना । अष्टमद्वयकलाचला
लकृता । तथा महामारा मयमुद्रा महमा बलन किं मही न जिता भवत् ।
जिगैरिति भाव ॥ १८ ॥

जो अर्जुन के दश को नै टंक लेन वाले पराक्रम की धारण करता है तथा
नम्र शत्रु पर नौ क्रोध नहीं करता वह राजा शत्रु ही अमराजित (परवर्तों
स मुद्राभिजित) तथा सहसागर (समुद्र सहित सपूर्ण पृथ्वी) का नहीं जीत लेता
(जीत ही लेता है ।)

(अर्जुनवारि—आच्छादन कर्म म वृ धानु से तत् स्वभाव कर्म = निनि
प्रदय हुआ है । चक्रा कर्म हुआ अर्जुन की एक लेन वाला । सहसागराजिता—
सहसा + अग + राजिता—(शीघ्र पदत मरित पृथ्वी) सहसागराजिता—
सह—सागरा—जिता—समुद्र सहित पृथ्वी जीत ली जाती है । सरल हा से
यमक अनकार का बड़ा भाव्य निदर्शन है ॥ १८ ॥

अपि च—

‘किं तन जातु जातन मातुयोचनहारिणा ।
आपेहति न य स्वस्य वंशस्याग्रे ह्यजो यथा’ ॥ १९ ॥

किमिति ॥ मातुर्जनम्यास्तारण्यमुया तन आतेन किम् । किमपि नेन्दर्यं । यो
जातु कदाचिदपि स्वस्यावयस्याग्रे नरोहति । अग्रे गत्यता न यातीत्यर्थः । एवञ्च
पञ्च वशो वशु ॥ १९ ॥

ओर ना—वैश दश (वान) के अग्रभाग म ध्वजवत् स्मित होता है
वैश जो पुत्र अपने दश (कुल) में अग्रम्य नहीं बन जाता तो उस माता के
योवन का हृत्प करन वाले पुत्र से क्या लाभ ।

पश्चमुक्त्वा विद्यान्तवाचि वाचस्पतिसने मन्त्रिणि राजापि प्रेमा
द्रव्या दशा नलमवलोक्य वस्तुमात्मत ॥

१५ न० च०

ऐसा कहकर बृहस्पति सहस्र मंत्री के चुप हो जाने पर राजा भी स्नेहपूर्ण दृष्टि से नल को देखकर बोलना शुरू किया ॥

‘तान, युक्तमुक्तोऽसि सालङ्कायनेन । कस्यान्यस्य निर्यान्ति वद-
नारविन्दादेयंविधा. पदे पदेऽर्थस्तमर्था मृद्वथो मृष्टा. द्रिष्टाथ वाच ॥

तद्वर्शितस्तयानेन निर्वापितदेहः स्नेहः । स्वीकृतस्त्वं मनसा
समस्तसाम्राज्यभारोद्धहनधुर्यता प्रति । तेनायमनुशास्ति ॥

वत्स, सालकायन ने बहुत अच्छा कहा है । किसके मुखकमल से प्रत्येक पद से गभीर अपों को व्यक्त करती हुई कोमल युद्ध तथा श्लेष्मयुक्त वाणी इस तरह निकल सकती है । शरीर को तृप्त करने देने वाले स्नेह की इन्होंने तुम्हारे ऊपर दिखाया । तुमने भी हृदय से समस्त सत्कार के भारवहन में अपनी समर्पता स्वीकार की । इसीलिए ये तुमको अनुशासित करत है ।

युज्यते चैतस् ॥

यह उचित भी है ।

तथाहि—

संग्रहे नाकुलीनस्य सर्पस्येव करोति यः ।

स पय इलाप्यते मन्त्री सम्यग्गादिको यथा ॥ २० ॥

संग्रहमिति ॥ न निषेधे । अकुलीनस्यानभिज्ञातस्य । सर्पस्य तु नाकुर्ग्रहमीकृतत्र
लीनस्य । कर्मणामारम्भोपायः पुरुषद्रव्यसपत्, देशकालविभागो विनिपातप्रती-
कारः, कार्यसिद्धयेति पञ्चाङ्गो मन्त्र गारुडादिविषयश्चेति योगान्मन्त्रिणादमा-
स्याहितुमिदं ॥ २० ॥

नाकु (बिल) में लीन (घुसे हुए) सर्प को पकड़कर जैसे गारुडिक (साप
बसाने वाला) प्रशसा का पात्र बनता है वैसे ही अकुलीन (निम्नपरपरा) के
लोगों का संग्रह न कर मन्त्री भी प्रशसा का पात्र बनता है ।

अच्छे मन्त्री का यही लक्षण है कि वह भ्रम परपरा के कुलीन लोगो का
संग्रह करे ॥ २० ॥

किं च—

न पश्यसि सांग्रनमिदमस्माकमतिभीरुभूपालमण्डलमिव पलि-
भिराक्रान्तम्, अशेषमद्रम्, अतिजीर्णशार्णकपेटमिधावरीतुं न शक्य-
ते । क्वाप्सुपरिपतितभ्रूचका भीरुमटपेटीव नष्टा दृष्टिः ॥

नेति ॥ बलवत्सत्त्वशैथिल्यानि । बलिनो बलवन्तश्च । आवरणं संभ्यानम् ।
अद्रपचे संवरणम् । नि सौष्टवादक्षवयम् । उपरिपतितं शैथिल्याद्व्यसृतं भ्रूचकं

यस्याम् । भीरुमूषालम्पटलीपद्मे तु प्रतिमयानामिति शेषः । भीरवो हि वैरिनि
विलोकयन्ति पलायन्ते । पेटशब्द मंधाने त्रिभिन्नः ॥

नहीं देखने—इस समय मेरे सभी अंग बलियो (चमड़े की सिक्कन) से
आक्रान्त हैं जैसे इरपोक रत्ने बलि (दलवान् लोग) द्वारा आक्रान्त होकर
शिथिल पड़ जाते हैं । अन्यन्त पुराना फटा हुआ कपड़ा जैसे शरीर को ढक
नहीं पाता वैसे ये सिक्कडे हुए चमड़े शरीर के सवरण में असमर्थ हैं । आत्मा
पर भोहो के लटक जाने के कारण दृष्टि वैसे ही नष्ट हो गई है जैसे इरपोक भीर
मंडली पर चक्र गिर जाय और वह नष्ट हो जाय ॥

ये हितचर्गापदेशिनो नुल्यास्तेऽपि सालङ्कायनप्रभृतयो मन्त्रिण
इव विरलीभूता दन्ताः । शब्दशास्त्रे हि राजादीनामदन्तता इत्याच्यते ।
नान्यत्र ॥

य इति ॥ हितचर्गा हितसमूहमुपदिशन्ति सुवराश्च प्रधानभूता सालङ्कायन-
प्रभृतयोऽन्त्या यथा विरलीभूता इव केचित् । न सव तथाविशः । तथा ये दन्ताः
हि स्फुट तवर्गमुपदिशन्त्युच्चारयन्ति । नवर्गस्य दन्त्यत्वात् । तथा मुखे भवा
मुख्याः । तेऽप्यविरला विरला मन्त्रिणा विरलीभूता । बलिप्रस्ताना हि माममुक्ता
दन्ता विरला स्युः । मुष्याश्चतु मरुषा राजदन्ता । 'राजाहः-' इति सूत्रोक्ता
राजादयः ॥

हित-समूह के उपदेश देने वाले सालङ्कायन आदि—प्रमुख मंत्री जैसे घोड़े हैं
वैसे दाँत भी अब घोड़े हो रह गये । व्याकरण शास्त्र में राजादि राज्ञों की
अदन्तता (अकारावता) प्रशंसित होती है—दूसरी जगह नहीं (लोक में राजाओं
की अदन्तता (दंतहीनता) प्रशंसा की बात नहीं ।)

राजाह सखिभ्यष्टृच्—मूत्र मे समासान्त टच् प्रत्यय होने के कारण ये शब्द
अकारान्त रह जाते हैं ।

तदिदानीं मम अन्यश्चापश्मिच विषयविमुखं मनो बनाव धायति ।
कृतं च यन्मनुष्यजन्मनि क्रियते ॥

नदिति ॥ विषया इन्द्रियार्था देताश्च ॥

तो इस समय मेरा मन जंगली जानवर की तरह सासारिक विषयों से
विमुक्त होकर वन की ओर भागता है । मनुष्य जीवन पाकर धो किया जाता है
फिर स्वयं कर लिया ।

जंगली पशु भी विषय (दूध या गाँवो) को छोड़कर वन की ओर भागता है ।

तथाहि—

एता प्राप्य परोपकारविधिना नीताः श्रियः इत्याच्यता-
मापूर्वापरसिन्धुसीम्नि च नृपाः स्वाज्ञां चिरं ग्राहिताः ।

भूभारक्षमदोर्युगेन भवता जाता वयं पुत्रिण-
स्तरस्प्रत्युचितं यदस्य वयसस्तत्कर्म कुर्मो वने ॥ २१ ॥

एता इति ॥ यथाक्रम धर्मार्थकाममोक्षाणामुपन्यास ॥ २१ ॥

इन सपत्नियों को प्राप्त कर तथा परोपकार के कार्यों में लगा कर इन्हें प्रशसा भाजन बना दिया । समुद्र की पूर्वी सीमा में लेकर पश्चिम सीमा तक राजाओं से चिरकाल तक अपनी आज्ञाओं का पालन कराया । पृथ्वी के भार सहने में समर्थ बाहुशुल वाले आपको प्राप्त कर हमलोग पुत्रवान् भी कहूँ शक्ये । अतः इस समय इस अवस्था में जो कर्म किया जाता है उसे जगल में करेंगे ।

(भविष्य के अर्थ में वर्तमान का प्रयोग 'वर्तमान सामीप्ये वर्तमानवद् वा' के नियम से किया गया है । वन जाने के लिये पैर नहीं बढ़ाये हैं किंतु शीघ्र ही जाने वाले हैं इसी लिए वर्तमान का प्रयोग किया गया है ।) ॥ २१ ॥

इत्यभिधाय तत्कालमेव मौहूर्त्तिकानाहुयादिदेश—'कथ्यतां यौव-
राज्याभिषेकोत्सवाय दिवसः' इति ॥

ऐसा कह कर (उसी समय ज्योतिष् शास्त्रियों को बुलाकर आज्ञा दिये—
कहिये यौवराज्याभिषेक के लिए दिन ।

अथ कथयामासुस्तेऽपि—'देव, ध्रूयतामनघद्यतनमेव राज्याभिषेक-
योग्यमहः । केन्द्रस्थानवर्त्तिनः सर्वेऽप्युच्चग्रहा, पुण्यो मासः,
पूर्णा तिथिः, श्लाघ्यो योगः, प्रशस्तो वारः शुभ नक्षत्रम्, कल्याणी
घेला, विधीयतां यद्विधेयम्' इत्यभिधाय स्थितेषु सेष्वनन्तरमेव
'सुधोणि, श्रूयतां यदम्माभिः श्रुतमाश्चर्यम् ॥

अयेति ॥ केन्द्रस्थानं शुभस्थानम् ॥

वे भी बोले—'देव ! मुनिये राज्याभिषेक के लिए अत्यन्त श्लाघ्य दिन है । सभी उच्चग्रह शुभ स्थान में हैं । पवित्र महीना है । पूर्णा तिथि है । प्रशसनीय योग है । श्रेष्ठ वार है । शुभ नक्षत्र है । कल्याणकर समय है । करिये जो करना है ।' ऐसा कहकर अभी ठहरे ही हुए थे तब तक राजा ने कहा—'सुमध्मे ! सुनो यह आश्चर्य ।'

उचितमुचितमेतदेर्यधाम्नां नृपाणां
वयसि फटुनि कान्तालोचनानां तृतीये ।
इति रभसमियास्य प्रस्तुतं श्लाघमानो
वियति पटुरकस्मादुत्थितस्तूर्यनादः ॥

उचिनेति । ऋतुवमश्रापिथस्वमेव ॥ २२ ॥

तीसरी (वानप्रस्थ) अवस्था में जब रमणियों के लीचन कट्ट (बज्रिण) हो जाने हैं, धैर्य स्वी तेज रखने वाले राजाओं के लिए यह बन्धन उचित है। बड़ी शीघ्रता से प्रस्तुत कार्य की प्रशंसा करती हुई अचानक आकाश में दाहध्वनि दृज दड़ी ॥ २२ ॥

अपि च—

उपरि परिमलान्धौ सस्वनं संचरद्भि-
मंधुकरनिकुरम्यैश्चुम्ब्यमाना मरेण ।
अविरलमधुघारासारसंसिक्तभूमिः
मदसि सुरविमुक्ता प्रापत्तत्पुष्पवृष्टिः ॥ २३ ॥

पराग के कारण मत्स्य, घूमते एवं भनभनाते हुए भ्रमर-समूह ॥ पूर्णरूप में चुम्बित लातार मधु घारा की वर्षा से भूमि को सींचती हुई, देवताओं द्वारा की गई पुष्पवृष्टि रात्रिभवन में उत्पन्न हुई ॥ २३ ॥

अथैतदथ तत्कालमेवाम्बरनलादुल्लसद्ब्रह्मकान्तिकलापपद्मिनी-
कृताष्टदिग्भागभूमयः सकलसागरनरिस्त्रीर्याम्बुपूर्णकमण्डलुमुत्तुश-
कुसुमौपधिरुद्रपाणयो दर्शनादेवापनीतसमस्तकलिकल्मषा केऽपि
कुतोऽपि ब्रह्मर्षयः ॥

उसी समय आकाश से कुछ बौद्धिक नवस्त्री महर्षि उतरे जो अपनी ब्रह्मदेवोपधि से जाड़ों दिशाओं की भूमि को पवित्र कर रहे थे। समस्त सन्तों एवं नदी तीरों के जल से पूर्ण कमण्डलु, मिट्टी, कुश, पुष्प तथा औपधिरा को हाथ में लिए हुए वे तथा दर्शन मात्र से समस्त कलि के पापों का हरण कर रहे थे।

सहर्षेण सधिनयेन सपरिवारेण च चलत्कर्णोत्पलगलद्वयद्वलरजः-
पुञ्जपिञ्जरितकपोलपालिना पृथ्वीपालेन प्रणम्य कृतातिथेयाः समुचि-
ताम्यलंचक्रुरासनानि ॥

प्रसन्नता एवं विनय के साथ परिवार-सहित, दोनधित कर्णपुष्प से गिरते हुए पद्म-समूह से विनम्र गहन्यत वाले राजा द्वारा प्रणमानंतर अतिथि सत्कार पाकर उचित आसन को सुशोभित किये।

कृतकुशलप्रदनालापाश्च प्रस्तुतकुमारामियेकस्य नरपतेः स्वस्य-
कमण्डलुवारीणि दर्शयामासुः ॥

कुशल प्रदत्त-विषयक चर्चा के बाद प्रासंगिक, कुमार (नव) के राग्या-
भियेक के लिए (लाये हुए) अपने-अपने कमण्डलु के जल राजा को दिखाये।

इदं मन्दाकिन्याः सलिलमवगाढागतमस्त-
पुरन्ध्रीणां पीनस्तनशिखरभुग्नोर्मिवलयम् ।
इदं कालिन्ध्याश्च प्रविकसिततीरद्रुमलता-
पतत्पुष्पैरन्त सुसमिततरङ्गं नृप पयः ॥ २४ ॥

स्नान के लिए आई हुई देवताओं की रमणियों के झूल स्तनों के अग्रभाग से टूटी हुई तरंग पत्ति वाला यह जल मन्दाकिनी का है । तट के खिले हुए तरंगों एवं लताओं के फूलों से पूर्ण सुगन्धित तरङ्गों वाला यह जल है राजन् । यमुना का है ॥ २४ ॥

इदं गोदावर्यास्त्रिनयनजटालखण्डगालिनं
महाराष्ट्रीनेत्रैः कृतकुवलयं मञ्जनविधौ ।
इदं चापि मेढ्रमुनिजनयिकीर्णार्घ्यकमलं
पयो विन्ध्यस्कन्धस्थलविलुलितं नार्मदमपि ॥ २५ ॥ युग्मम् ।

भगवान् शंकर के जटा खण्ड से गिरा हुआ तथा महाराष्ट्र की रमणियों के नेत्रों से स्नान के समय नीलकमल बना हुआ यह जल गोदावरी का है । धूमते हुए मुनियों ने कमलों को आधा-आधा तोड़कर जिनमें बिछेर दिया है तथा जो विन्ध्याचल की चोटी से आविर्भूत हुआ है वह यह जल नर्मदा का है ।
(महाराष्ट्र की रमणियों का नेत्र नीलकमल सदृश है । स्नान के समय उनके नेत्रों के प्रतिबिम्ब से जल भी नीलकमलमय बन गया है) ॥ २५ ॥

इतथ—

तदेतत्पुण्यानां परममर्घ्यं प्राप्तमुदधे
पयः प्रभात्याङ्घ्री शयन्समये शार्ङ्गधनुषः ।
विहारायोन्मज्जद्रुणयनितावृन्दपदनैः
क्षणं यत्रोत्फुल्लम्रयकमलखण्डाभियमधात् ॥ २६ ॥

तदेतन्नि । कश्चनसमये सुमान्ते शार्ङ्गधनुषो विष्णोः सम्बन्धिनौ चरणी प्रचावप पुण्यानां परमसीमानं गतमुदधे समुद्रस्य तदेतत्पयो वर्तत । यत्र विहाराय मीढार्थमुन्मज्जन्ति चानि वरणवधूवृन्दवक्त्राणि तं कृत्वा विरुमदम्भोज-
खण्डशोभां जग दधी ॥ २६ ॥

सोने के समय, शार्ङ्ग नामक धनुष वाले भगवान् विष्णु के पैरों को धोकर पुण्य की अन्तिम सीमा तक पहुँचा हुआ यह जल समुद्र का है । जहाँ यह (जल) नीहा प्रसंग में स्नान करती हुई वक्त्र पत्निया के मुख से खिले हुए नवीन कमल-समूह की शोभा प्राप्त किया था ।

[वक्त्र-पत्नियों के मुख जब जल के ऊपरी भाग में दिखाई पड़ने से तो लगता था कि नये कमल ही खिले हुए थे] ॥ २६ ॥

राजा तु तत्कालमुन्मीलद्वयद्वलपुलकाङ्कुरकोरकितदेहः किमप्यद्-
भुतरनेनावेशित इव विधूय शिपश्चिन्तयाञ्चकार ॥

उसी समय राजा का शरीर पूर्ण रूप में रोमांचित हो उठा । कुछ अद्भुत
रस का आवेश ॥ आए हुए की तरह जिर को हिलाता हुआ सोचने लगा—

‘नूनमयमस्मद्गृहे हरिहरप्रह्लाणामन्यतमः कोऽप्यवतीर्णो भवि-
ष्यति । यतः कायं शिआक्रम, कवेयमस्माकमास्मिन्की यूनोऽस्याभि-
पेकाय बुद्धि कश्चानुकूलकालसंपत्तिः, कश्चामी समस्ताभिरेकोप-
करणपाणयो महामुनयः ॥

निश्चित ही यह मेरे घर में विष्णु, शिव या ब्रह्मा में से कोई एक होकर
आया होगा । क्योंकि वहाँ यह उपदेशक्रम, वहाँ इस युद्ध के अभियेक के
लिए अचानक हमलों का विचार, वहाँ यह अनुकूल मुहूर्त, वहाँ समस्त
सामग्री को हाथ में लिए हुए मैं महर्षि ।

सर्वथा नमोऽस्तु घटिनदुर्घटाय बंधसे । यस्यायमेवमद्भुतो
व्यापार, इत्यवधारयन्नुत्थाय गृहीत्वा तानि तीर्थोदकानि कृत्वा
कनककुम्भेषु तात्कालिकास्फालितमृदङ्गगुह्यारोवरमसोल्लास्यविला-
सिनीवृन्दैरानन्दमानो मङ्गलोद्गारमुखरपरिवृतः सह सातङ्कायनेन
‘सहस्रं समास्तात एवानुपालयतुराज्यम्’ इत्यभिधातमनिच्छन्तमपि
नलं यत्नाग्निवेश्याभिपेक्षपट्टे स्थयमेवाभिपेक्षमकरोत् ॥

मन्त्र ॥ घटितं योजितं दुर्घटं शिवाप्रक्रमादिलक्षणं येन नस्मै वैद्यमे नमः ॥

असंभव पदार्थ की भी सर्वथा संभव कर देने वाले ब्रह्मा की नमस्कार है,
जिसका इसी तरह अद्भुत कार्य हुआ करता है । यह सोचता हुआ उठकर
उन तीर्थजलों को लेकर एक सीने के घड़े में रखकर तत्काल बजने हुए मृदंग
एवं झाल की आवाज पर बेग से उत्कृष्ट लास्य (नृत्य) करती हुई बारागनामो
से आरंभ का अनुभव करता हुआ नल की इच्छा नहीं थी तो भी उसे अभियेक
के आसन पर बैठकर स्वयम् अभियेक कर दिया ।

परिधाप्य च मङ्गलामरणनामसीं सिंहासनमारोप्य पुत्रप्रेम्णा पुरः
स्थित्वा कनकदण्डपाणिः क्षणं प्रातिहार्यमन्वतिष्ठत् ॥

मङ्गलमूर्धन तथा वस्त्र पहनाकर, सिंहासन पर बैठा कर, पुत्र स्नेह के कारण
स्वयम् हाथ में स्वर्ण दण्ड लेकर प्रतिहारी का कार्य सम्पन्न किया ।

सालङ्कायनोऽप्यतिस्नेहेनाभ्योपरि लम्बितमुक्ताकलापमाश्रयत्सु-
धाधारमिन्दुमण्डलमिव कनकदण्डमापाण्डुरमातपत्रमधारयत् ॥

सालकावन भी बड़े प्रेम से उसके ऊपर मुक्ता-समूह से खचित अमृत बरसते हुए चन्द्रमण्डल की तरह स्वर्णदण्ड वाले बलयन्त शुभ्र छत्र धारण किया।

सामन्तचक्रं च चलच्चाभीरुचारुचामरकलापव्यापृतकरपल्लव-
मस्याग्रे विनयमदर्शयत् ॥

सामन्त वर्ग भी हिलते हुए सुवर्ण सदृश सुन्दर चमर-समूह में अपने कर-
पल्लव सदृश हाथों को सक्रिय बनाकर उसके आगे विनय प्रदर्शित किया।

मुनयोऽप्युच्चारयां चक्रुश्चतुर्वेदप्रशस्तमन्त्रान् । उत्थाय च शुद्धी-
त्याक्षताञ्जिशरसि चिकिरन्तोऽस्य पुनरिदमबोचन् ॥

मुनि लोग भी चारों वेदों के प्रशस्त मन्त्रों का उच्चारण किये। उठ कर
उसके शिर पर अक्षत छिड़कते हुए बोले—॥

‘याः स्कन्दस्य जगाद् तारकजये देवः स्वयम्भूः स्वयं
स्य साम्राज्यमहोत्सयेऽपि च शचीकान्तस्य वाचस्पतिः ।
तामिस्तेऽद्य विरञ्जियक्त्रसरस्वीहंसीभिराशास्मद्वे
वैदीभिर्यसुधाधिवाहसमये मन्त्रोक्तिभिर्मङ्गलम् ॥ २७ ॥

तारक विजय के अवसर पर ब्रह्मा ने स्कन्द को, स्वर्ग की साम्राज्य प्राप्ति
के अवसर पर इन्द्र को, बृहस्पति ने ब्रह्मा के मुख सरोवर में विहार करने वाली
हंसी स्वरूप जिन वैदिक मन्त्रोक्तियों से आशीर्वाद दिये, आज पृथ्वी के साथ
अपने इस विवाह के अवसर पर उन्हीं उक्तियों से आपकी मङ्गल कामना हम
लोग करते हैं ॥ २७ ॥

अन्यदपि तत्र दिवसे शुभ्र समाकर्ष्यता यद्दुभुतमभूत् ॥

हे शुभ्र और भी मद्भुत घटनायें उस दिन घटी उन्हें सुने—

दिशः प्रसेदुः सुरभिर्यवौ मरुद्दिवो निपेतुः सुरपुष्पवृष्टयः ।

छुतामिपेकस्य नलस्य निस्वगाननाहता दुन्दुमयोऽपि चक्रिरे ॥ २८ ॥

नल के अभिषेक होने पर दिशायें प्रसन्न हो गयीं। सुषन्धित हवा बहने
लगी। स्वर्ग से देवताओं ने फूलों की वर्षा की। बिना बजाई हुई भी दुन्दुभि
ध्वनि करने लगी ॥ २८ ॥

अन्तरिक्षे च कोऽप्यदृश्यमान पयसो इन्द्रोऽकद्वयमपठत् ॥

आकाश में अलक्षित होकर किसी ने दो श्लोक पढ़े—

‘अहीनां मालिकां विभ्रत्तयापीताम्बरं यपुः ।

हरो हरिश्च भूपेन्द्र ! करोतु तव मङ्गलम् ॥ २९ ॥

श्रीरुद्रि—सिद्धोऽहीनां सर्पाणां श्रवणं तथा तेन प्रक्षारेण इन्द्राभ्यं तान्द्रवादि-
 ध्वनि विनतमूर्तिवत्स्वास्ताकाशम् । अथ च पराचीनावस्थायां दिग्गदाव्यादि-
 तम्बरं गनदधम् । ददि वा व्या समन्तापरीतं अरुन्मनिविनततया ह्यन्नमन्दरमा-
 कानं येन । तथाविधं वपुर्निधं विभ्रम् । हरिष विष्णुर्वनमालीति स्त्रानवान् ।
 उहीनां दूर्गमिव मालिकाम् । तथा पीताम्बरं हरिद्रवमनं वपुर्विभ्रम् राजेन्द्र,
 नव मङ्गलं करोविषयः । केवलं व्याप्तपृथ्वीकम् । इताम्बरमरीत्यपिरावधार्यम् ।
 भट्टमूर्तिर्हि भगवान् । यदाह सर्वदम् 'उर्वीमभीरयप्रमानप्रलानल' ईमोन्माभवा-
 दिनि ? इति ॥ २९ ॥

हे राजेन्द्र, सर्पों की मान्य तथा वज्रहीन शरीर को धारण करने वाले शिव
 और अहीन (लम्बी) मान्य तथा पीतवस्त्र युक्त शरीर धारण करने वाले विष्णु
 तुम्हारा भगत करें ।

[शिवपक्ष में—तथापि + इताम्बर, यह विच्छेद कर इताम्बर शब्द का
 गत वज्र या वज्र हीन अर्थ किया जाता है । इन् गती से इत बना है । इत्यन्ते
 गत का जो अर्थ होगा वही इत का होगा । शिव को पीताम्बर भी कहा जा
 सकता है, क्योंकि सम्पूर्ण अम्बर (आकाश) को ल्हाने की श्रिया है । जयान्
 अपनी व्यापकता में उसे आच्छादित कर लिया है ॥ २९ ॥

अपि च—

लीलया मण्डलीकृत्य भुजंगान्वारयन्दरः ।

देयावदेवो वराहश्चतुर्म्यमभ्यधिकां श्रियम् ॥ ३० ॥

लीलयेति ॥ लीलावस्तया मुञ्जशम्भर्त्तु मण्डलीकृत्य हरः । मुञ्जं मण्डलीकृत्य
 गां वमुषां धारयन् वाराहश्चतुर्म्यं ममधिकां श्रियं देयात् । अत्र वराह इति
 वराहान्तिर्नरमिहवद्रुजमण्डलीकरणतुरोचाम्नेनः ॥ ३० ॥

बिना धन के सर्पों को गोलाकार बना कर धारण करने वाले शिव तथा
 अपने हाथ को गोलाकार बनाकर पृथ्वी को धारण करने वाले वराह जापड़े निर
 अधिक लक्ष्मीप्रद हों ।

[यहाँ मुद्रंगान् शब्द लिप्ट है । जिव पक्ष में मुद्रंग शब्द का अर्थ रूप
 है । वाराहशब्द में—(मुञ्जं मण्डलीकृत्य या धारयन्) हाथ को गोलाकार करने
 हुए पृथ्वी को धारण किए हुए ॥ ३० ॥

इत्याशास्य विश्रान्तायां वियद्वाचि स्थित्वा च किञ्चित्कृतोचिता-
 पचिनिपु गतेषु क्षणादन्तर्धानं मुनिषु 'समुच्छ्रित्यन्तां वैजयन्त्यः,
 यध्यन्तां तोरणानि, सिच्यन्तां चन्दनाम्भोभिः पन्थानः. मण्डयन्तां
 मधुपमुक्ताफण्डशोदरद्वावलीभिः प्राङ्गणानि, कुसुमप्रभाञ्चि चत्वराणि'

पूज्यन्ता द्विजन्मानो देवताश्च, दीयन्तां दानानि गीयन्तां मङ्गलानि,
विस्ज्यन्ता वैरिचिन्दा, मुच्यन्ता पक्षिणोऽपि पञ्चरेभ्य 'इति श्रूयमाणेषु
परितः परिजनालापेषु लास्योन्मादिनि मृदुमङ्गलोद्गारमुखरे सचरति
पुरपथेषु पौरनारोजने स दिवसः समाप्तस्वर्गसुप्तस्येव भुकाशेषभुवन
स्येवाभ्यादितामृततरसम्येवानुभूतपरमानन्दस्येव राक्ष कृतकृत्यता
मन्यमानस्यातिक्रान्तवान् ॥

इस तरह का आशीर्वाद देकर आकाशवाणी के शा त हो जाने पर कुछ देर
तक ठहर कर उचित पूजाओं को कर लेने के बाद एक ही क्षण में मुनियों के
अन्तर्धान हो जाने पर पताका फहरायी जाय । तोरण बाँधे जायें । च दन
जत्र में माग मीचे जायें । मुक्ता-मणियों के महीन शूर्ण वाले रंगों से आंगन
अलङ्कृत किये जाय । ब्राह्मण और देवता पूजे जाय । दान दिये जायें । इस
तरह चारों ओर से परिजनो की आवाज आ रही थी । नतन में मुग्ध तथा
मधुर मङ्गलमय शब्दों से मुखरित नगरबनिताय पौर माग पर विचरण कर रही
थी । वह दिन राजा को स्वर्ण-मुक्त प्राप्ति की तरह प्रतीत हो रहा था । अमृत
रस के स्वाद की तरह लगता था । परमानन्द की अनुभूति सहज था । इस तरह
राजा अपने को कृतकृत्य समझता हुआ उस दिन को बिताया ।

पयमतिकामत्सु केषुचिद्दिषसपु, जरठीभूते महोत्सवव्यतिकरे,
गतयति यथायथमामन्त्रितायात समस्तसामन्तलोके यौवराज्यरञ्जिते
च परितः परिजने जनेश्वरो रिपुपयोधिषड्वानल नलमायभाषे ॥

इस तरह कुछ दिनों के बीत जाने पर, महोत्सव की चहुँप पहल के पुराने
हो जाने पर आम-जन पर आये हुए सम्पूर्ण सामन्त मण्डल के चले जाने पर
यौवराज्य में सन्तुष्ट प्रजा के अनुरक्त हो जाने पर शुभ सागर के षड्वानल नल
से राजा ने कहा—

तात किमपि प्रमो यदि न विद्यसे । सप्रति प्रिय सद्य ध्येयस्व
रमम्माकमैणम्, न स्त्रेणम् । धामारणाय योग्या जटाभारा न हारा ।
माहाय्याय सावरो बुधा, न बाधवा । शयनायोचित्ता कुशपूलिका,
न तूलिका । कोडाये यरा वेगवन्ता निर्झरप्रवाहा न बाहा । प्राथनी
याश्च हरप्रसादा न प्रासादा ॥

नान्वित स्त्रीणामिदं स्त्रेणम् । 'स्त्रीपुमाभ्या नष्टा'शौ इति नम्रम् ॥

वत्स यदि तुम्हें कुछ न लगे तो कुछ कहूँ । इस समय मृग वर्ग से ही
मैत्री करना योग्य है स्त्री वर्ग से नहीं । अलंकार के लिए उचित जटाभार
ही है हार नहीं । सहायता के लिए साधु विद्वान् ही उचित हैं बाधक नहीं ।

क्षण के लिए कुछ के गुच्छे ही अच्छे हैं, तुलिका (रुई का गद्दा) नहीं ।
 क्रीड़ा के लिए वेग में बहने हुए झरनों के प्रवाह ही अच्छे हैं, बाह (घोड़े)
 नहीं । भगवान् शंकर की प्रसन्नता ही प्रार्थनीय है प्रासाद (महल) नहीं ।

तदायुष्मन्नेष दृष्टोऽस्यापृष्टोऽस्यादिलोऽसि क्षमितोऽसि दुरुक्त-
 मुक्तः इत्यभिधायोन्सङ्गमारोप्य च तत्कालगलद्वयद्वलवाष्पान्नुप्लाविते
 यमसि निधाय परिष्वज्य च पुनः पुनः पुलकसारजितभुजलताभ्या-
 मम्लर्मन्युभरनिबन्धमानोत्तरमज्जमाद्यवदभ्रुक्लिन्नकपोलमाविर्मयम्नोह
 मूर्च्छाङ्गिकारकुञ्चितलोचननिममाघ्राय मूर्धनि वनाय वनितासहायः
 प्रतस्थे ॥

अर्थः । अन्तर्मन्ये मन्थुमोहं दैन्यातिशयेन निरुद्धमानमुत्तरं यस्य ॥

अब हे चिरञ्जीविन्, मुझे देखा, पूजा, आर्पित किया, क्षमा किया,
 अमल बातें भी कही ।' यह कह कर उन्हें अपनी गोद में बैठा लिया । तत्काल
 निकलती हुई अश्रुधारा में भीगे हुए वस्त्र स्वयं पर रख कर, बार-बार रोमाञ्च
 के कारण कष्टकित बाहुओं से आर्पित कर, आन्तरिक क्रोध मार के
 कारण उत्तर न देते हुए, निरन्तर गिरने हुए आम्बुओं से भीगे कपोल वाले
 मोह के कारण मूर्च्छा से बन्द आँखों वाले नलक शिर को स्पर्श कर पत्नी के
 साथ वन के लिए प्रस्थित हो गये ।

प्रस्थिते च तस्मिन्परिहृतराज्ये राजनि, रजनीचियुज्यमानचलञ्च-
 क्रवाकीध्विष कृतकलपाकन्द्यासु प्रजासु, प्रतिमथनमुच्चलिनेषु जरत्पौर-
 जनेषु, 'कल्याणिन् पप पितृप्रणयप्रणामाञ्जलिरन्य क्रमागतकर्मकारिण
 श्रुतशान्तस्य कृतापराधस्यापि त्वया सहनीयाः कतिपयेऽप्यस्म-
 दनुकम्पयाऽपराधाः । पश्य । पयोराशेनोद्वेगाय मृगाङ्गस्य मील-
 यन्तोऽपि कमल्यकरान्कराः । किं न सहन्ते सुमनसोऽपि भ्रमरभरभञ्ज-
 नानि' इत्यभिधाय सन्नप्य च म्वसुतमुच्चलिने च प्रेक्षानुगतभूभुजि
 भुजायामनिर्जितनाले मालङ्कायने बालमन्स इव शुष्यत्सरःसालि-
 लसंतापवैपिनाङ्गः, करिकलम इव वियुज्यमानयूथपतिः । पतद्वयद्वल-
 वाष्पदिन्दुमन्दोद्वेगसि विवीयमानहार 'हा तात' इति ब्रुवन्नलो न
 लोचने तं दिवसं समुदमीतयत् ॥

राज्य को छोड़ कर उस राजा के चले जाने पर रात के समय अपन
 पति में बलग होनी हुई चक्रवाकी की तरह प्रजा ने कलम कन्दन किया । घर-
 घर में नगर के वृद्ध लोग चर पड़े । कल्याणकर । परम्परा से सेवाकार्य करने
 वाले इस श्रुतिशील का पितृ-स्नेह में द्रव्याम है । अपराध करने पर भी हम

पर अनुकम्पाकर कुछ अपराधो को क्षमा करेंगे। देखिए, चन्द्रमा की किरणें कमल-समूह को मुकुलित कर देती हैं, फिर भी समुद्र को क्या तरंगित नहीं करती ? क्या पूल भ्रमरो के भार और छेदन को नहीं सहते ?" यह कह कर अपने पुत्र को समर्पित कर अपराजेय सालहुयन राजा के प्रेम से उनके पीछे चल दिया। गूँसने हुए मरोवर जल के सन्ताप से मछली के बच्चे की तरह, वृषपति से बिछुड़ते हुए हाथी के बच्चे की तरह छटपटाता हुआ, गिरते हुए पर्याप्त आमुओ की पक्ति से वनस्पति पर आमुओ की लडिया बनाता हुआ, हा पिताजी, हा, पिताजी, कहकर विलाप करता हुआ उस दिन आत्म नहीं खोला।

केवलममम्भम्यूद्गारगद्गदया गिरा पुन. पुनरिमंश्लोकमपठन् ॥
पर्याप्त क्रोध भार से बिह्वल होकर इसी श्लोक को बार बार पढ़ता था।

तत्तातस्य कृतादरस्य रभसादाह्वाननं दूरत-
स्तच्छाङ्गे विनियेक्ष्य घाट्टयुगलेनादिलब्ध सभापणम् ।
ताम्बूलं च तर्ध्वचर्चितमतिप्रेम्णा मुखेनार्पितं
पापाणोपम हा कृतघ्न हृदय स्मृत्या न किं क्षीर्यसे ॥ ३१ ॥

परसल पिताजी का जल्दी जल्दी दूर से बुलाना, गोद में बैठा कर दोनों हाथों में आलिङ्गन कर कोलना, अत्यन्त प्रेम के कारण आधे ही श्वासे हुए ताम्बूल को दे देना, आदि व्यवहारों को स्मरण करके भी, हे परापर सहृदय कृतघ्न हृदय क्यों नहीं फट जाते ॥ ३१ ॥

एतच्चाकर्ष्य दमयन्ती चिन्तितवती—‘अहो, स्नेहघानार्द्रहृदय
श्वद्यसौ महानुभाव । ततमर्घयास्मत्प्रीतिपात्रं भवितुमर्हति’ इत्यच-
धारयन्ती पुनः पप्रच्छ ॥

यह सुन कर दमयन्ती सोचने लगी। ओह, महानुभाव, प्रेमी तथा आर्द्र हृदय के प्रतीक होते हैं। अतः सब तरह से मेरे प्रेम के पात्र बन मरते हैं। यह विचार करती हुई पुन पूछी ॥

‘हृ हंस, ततस्ततः’ ॥

इ एतेति । हुमिरयम्यय प्ररने ॥

इति विषमपदमहाभारत दमयन्त्या तनुते रम अष्टपाल ।

शिशुमतिलतिकाविकासचैत्रं चतुरमतिस्फुटमिति वारुचिग्रम् ॥

इति अष्टपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे चतुर्थं उच्छ्वास समाप्तः ॥

“हो तो हँस, इनके बागे क्या हुआ ?

सोऽपि राजहंसः कयामुपसंहतुमिच्छन्निमं श्लोकमुच्चार-
यांचकार ॥

वह राजहंस भी क्या को समाप्त करने की इच्छा से इस श्लोक
को पढ़ा—

‘सुन्दरादरि, ततश्च—

किमपि परिजनेन स्थेन तैस्तैर्विनोदैः

पितृधिरहविषाहं सोऽथ विस्मयमाणः ।

गमयति परिवर्त्त वासरणामिदानीं

हरचरणसरोजद्वन्द्वदत्तावयान- ॥ ३२ ॥

इति श्रीशिविक्रमभट्टपिरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-
सरोजद्वन्वायां चतुर्थ उच्छ्वासः समाप्तः ॥

सुन्दरि, इसके बाद—

इस समय परिजन लोग कुछ कुछ मनो-विनोद द्वारा पिता के विषय से
उत्पन्न कष्ट को भुलवा रहे हैं। वह (स्वयम्) भगवान् शंकर के चरण
कमल में ध्यान लगा कर दिनों को बिता रहे हैं ॥ ३३ ॥

चतुर्थ उच्छ्वास समाप्त ।

पञ्चम उच्छ्वासः

अथ विश्रान्तवाचि वाचस्पताविचोच्चारितानष्टविस्पष्टवर्णो वर्णित-
निपधराजे रजहंसे 'अहं सेवार्थी' इत्यभिधायोपकथ्यमाना कृतोत्त-
रासङ्गेन द्विजन्मना श्रुतानुरागेण । 'वत्से, चिरान्मिलितासि' इत्युक्तवै-
धादिल्लघ्ना हृदये प्रवृद्धया चिन्तया । 'पुत्रि, कथंकथमपि दृष्टासि' इति
संभाष्येघालिङ्गिता स्याद्विप्रेतकम्पजनन्या रोमाञ्चावस्थया । 'तरुणि,
स्यज्यतामिदानीं शैशवव्यवहारः, इत्यभिधायेष मुग्धे स्पृष्टा प्रमुखेण
मुखे वैवर्धयेन । 'मुग्धे मुच्यतां स्वच्छन्दभायः' इत्यनुशास्येव ग्राहिता
निजाज्ञा गुदणा मकरपञ्जेन दमयन्ती । तथापि क्षणमिध महानुभाव
नामयलभ्यानुपलक्षितायैवमवतस्थे ॥

अयेति । अनन्तर । स्तुतजले हसे सेवितुकामोऽहमित्युक्तवैव कृत उत्पादित उक्त
रस्या दिति विपदे आसङ्ग आसक्तिर्येन । नलाधारत्वादुत्तरस्या । तथा द्वाभ्या
(तस्मिन्निमित्तमल्ले यूनि यूपदीर्घभुजद्वये । उ ५९ श्लोक) येनोदीभ्याध्वगेनोक्त
भस्मादेकस्मान् द्वितीयाद्यमाऽऽजन्मोपतिर्यस्य स तथाभूत । धृताशार्कणार्थोऽनु-
राग प्रेमबन्ध । सेनोपकथ्यमाना व्याख्यमाना । कृतवैकल्यकेनाध्ययनानुरागेण
विप्रेण दाक्षिण्य नीयमानेत्यर्थान्तरम् । एवभूता दमयन्ती प्रकर्षेण धृद्धि गतया
चिन्तया पुत्रि चिरान्मिलिता त्वमित्युक्तवैव चित्तेऽवष्टब्धा । तथा उत्कम्प जन-
यतीति आकम्पजनन्या । प्रमुखेन प्रधानेन । गुरुणा दुर्बलभारेण । अर्धमिदरे तु
प्रवृद्धया जराया । उद्धतकम्पया जनन्या मात्रा । प्रवृष्ट मुख यस्य तेन प्रमुखेन ।
गुरुणा आचार्येण ॥

बृहस्पति षट्श स्पृष्टापूर्वक उच्चारण करने वाला यह राजहंस जब
निपधराज (नल) का वर्णन कर चुप हो गया, तो उत्तर की ओर से सम्बन्ध
रखने वाले तथा केवल श्रवण के आधार पर उत्पन्न होने वाले उस द्विजन्मा
अनुराग ने "मैं सेवक हूँ" यह कह कर उसे घेर लिया । "वत्से, बहुत दिना पर
मिली हो", मानो यह कह कर हृदय में बड़ी हुई चिन्ता ने उसका आलिङ्गन
किया । 'पुत्री, किसी किसी प्रकार से दिखाई पड़ी हो ।' मानो यह कह कर
सम्पूर्ण अङ्गो में कम्पन उत्पन्न करने वाली रोमाञ्च की अवस्था ने आलिङ्गन
किया । 'तरुणी, छोटी अब लटकपन का व्यवहार ।' मानो यह कह कर उसके
गुन्दर मुख को अत्यधिक उदासी में लू दिया । 'मुग्धे स्वच्छन्दता छोड़ो ।'
मानो यह अनुशासन करते हुए आचार्य कामदेव ने दमयन्ती को अपनी आज्ञा

गृहीत करावी । फिर भी वह कुछ क्षण तक अपनी गम्भीर धैर्यशीलता का अवलम्बन कर उस अवस्था को प्रकट न होने दी ।

[इस अनुच्छेद में अमूर्त पदार्थों को मूर्त रूप दिया गया है । अनुराग विन्मा, अवस्था जादि पदार्थ बोजन हुए दिखाय गये हैं । अनुराग क ज्योत रासङ्ग और द्विन्मा दो विषयों दिय गये हैं । नल उत्तर का राजा था, उसक प्रति इस अनुराग ने यह आसक्ति लायी है, अथवा यह उत्तर से सम्बन्ध रखन वाला है । जन इस कृतोत्तरासङ्ग कहा गया है ।

द्विन्मा—प्रथम उच्छ्वास में ही एक पक्षि ने दमयन्ती से नन्दविषयक बचाकर उसके प्रति अनुराग का जन्म दिया था । इस एस ने भी उसी = आकर्षक कृतांत से उसे अनुराग को पुन उज्ज्वल बनाया है । अब दो बार जन्म लेने के कारण इस अनुराग का द्विन्मा कहा गया है ।]

ता च तथा धलात्सरलीमश्रिध्वात्सूचितान्तर्मन्मथम्यथावेगाम्,
अश्रण्डकुण्ठनधेयांसिधार, हृत्पुण्डरीकं मनोरधानीतनलावलोकना
र्थमिधान्तर्मुखीमृतचक्षुर्व्यापाराम्, याकम्भिकस्मरापस्मारेण
दाम्ब्यन्ता दमयन्तीमयल्लोक्य तदिद्विक्ताकारकुशला परिहासम्यसनिनी
परिहासशीला नाम सर्वा 'महानुभाव, नास्माकमद्यापि तद्गुण
श्रवणाय भ्रान्त्यति द्योत्रेन्द्रियम् । न तुष्यति प्रश्नरसायनाय जिह्वा ।
न सन्तुष्यति विशेषज्ञानाय शैमुषी । नानुरागायोपरमते मन । तत्कथं
कृतज्ञानसि गांतस्येव निस्वरम्, वाद्यस्येव वितालम्, लास्यस्येवा
न्यथापदप्रचारम्, अत्यन्तरसन्निच्छेदकारिणं कथाप्रक्रमस्य विरामम्,
एतत्परमपि पिपासया पय पातुमुद्यतस्येवारिरताया तृपि वारिधारा
निवारणम् । इयं सा भुज्जानस्यार्धवृप्ति, सोऽयमप्रातरतस्य विरसा
व्याघात । तत्र युक्तमिधान्तरे विरन्तुम् । निन्कारणोपकारिन्,
प्रवर्त्यता पुण्यराशेस्तस्य स्वरूपारयानामृतप्रपामण्डपो निर्जान्तु च
चिरफालमनङ्गमप्योपनप्ता पयविधकन्यका प्रसारितध्वगाञ्जलय'
इति दमयन्तीमर्धक्षणेन कटाक्षयन्ती तं राजहंसमालापयाञ्चकार ॥

न च । दमयन्ती मृदुमाणा स्मरणपरवर्णामित्थर्थ । तदिद्विक्ताकारयत्रज्ञित
चेष्टितम् । आकाशो मुखरागादि । वारिधारया विधारण विच्छेद । निवारणम्
इति वा पाठः । गिरसाया मया व्याघातोऽन्तरायः । 'रतिव्याघान' इति पाठ तु
स्पष्टमेव ॥

वज्राकार बड़ी सरलता से निकलते हुए स्वासों से आन्तरिक कामव्यथा
सूचित हो रही थी । धैर्य कृपागवाय समय में ही कुण्ठित हो रही थी । मनरूप

रथ पर बैठाकर हृदयकमल में लाये गये नल को देखने के लिये आँखों का व्यापार कुछ अन्तर्मुख सा हो गया था ।

[नल विषयक चिन्तन के कारण भावमग्न दमयन्ती की आँखें कुछ निमीलित हो गयी थीं ।]

अचानक आये हुए इस काम से पकड़ी जा रही दमयन्ती को देख कर उसके मकेत आदि को पहचानने में निपुण, मजाकी स्वभाव की, परिहासशील। नाम की सती आये क्षण तक दमयन्ती पर कटाक्ष करती हुई बोली—

“महानुभाव, अभी भी उनके गुणों को सुनने के लिये हम लोगों के कान थके नहीं हैं । प्रश्न रसायन से जिह्वा तृप्त नहीं हो रही है । उनके सम्बन्ध में विशेष ज्ञान प्राप्त करने में मन थक नहीं रहा है । बिना स्वर के ये कौन से गति आप गा गये । बिना ताल के कौन बाजे बजा गये । बिना पैरों की धिरकाये कौन सा नृत्य कर गये, जिसने हम लोगों को मुग्ध कर दिया । इस कथा-प्रसङ्ग की समाप्ति रस को भङ्ग कर रही है । इससे भी अधिक इस प्रसङ्ग में यह कहा जा सकता है कि कथा की समाप्ति उन्हीं तरह की है जैसे प्यास के कारण पानी पीने के लिये तैयार आदमी की प्यास अभी बुझी भी नहीं तब तक पानी की धारा रोक दी जाय । (आपका यह कथा प्रसङ्ग) जाते हुए आदमी की आधी ही तृप्ति है । “संयोग प्राप्त भी नहीं हुआ है तब तक रमण की इच्छा को छिन्न कर देना” इसी को कहते हैं । इस लिये बीच ही में विराम करना अच्छा नहीं है । उस पुण्यराशि (नल) के रूप वर्णन विषयक कथामृत पान कराने वाले मण्डप को विस्तृत कीजिये, जिससे बहुत देर तक काम की उष्णता से तप्त होकर अपनी कर्णज्वलि को फैलायी हुई इस तरह की कन्यायें कुछ तृप्ति का अनुभव करें ।

सोऽपि ‘सुन्दरि, किमन्यत्तस्य समस्तस्त्रीहृदयप्रासादप्रतिष्ठापित-प्रतिमस्याद्यापि प्रशस्यते ॥

वह भी, “सुन्दरी, और उसकी दूसरी प्रशंसा क्या कहूँ, जब कि उसकी भूति समस्त रमणियों के हृदय-प्रासाद कर प्रतिष्ठित हो चुकी है ।

यत्र श्रूयमाणे न मधुरो वेणुवीणाकणः, दृष्टे नाभिराम. काम. । संभाषिते न सारा सरस्वती, परिचिते न इन्द्राध्यममृतम्, अभ्यस्ते नानन्दीन्दुः, प्रसादिते न प्रशंसास्पदं धनदः ॥

प्रेति । श्रूयमाणे नेत्यादी सप्तम्यन्ताद्यन् । अभ्यस्ते परिशीलिते ॥

जिसके सम्बन्ध में सुनते रहने पर वशी और वीणा की ध्वनि मधुर नहीं लगती, जिसे देखने पर काम भी मधुर नहीं लगता, जिससे बात करने पर

सरस्वती में भी तत्व नहीं प्रतीत होता, जिससे परिचय कर लेने पर अमृत भी प्रदत्तनीय नहीं रह जाता, जिसके साथ रहने पर चन्द्रमा में भी आनन्द नहीं आता, जिसे प्रसन्न कर लेने पर कुबेर भी प्रदत्ता का पात्र नहीं रह जाता ।

किं धनुना—

भयति यदि सहस्रं वास्पटूना मुखानां
निदपममरधानं जीवितं चापि दीर्घम् ।
कमलमुखि तथापि क्षमापतेस्तस्य कर्तुं
सकृन्गुणविचार शक्यते वा न वेति ॥ १ ॥

अधिक क्या—

हे कमलवदन, यदि बोलने में प्रबोधि लोगों के सहस्र मुख हो जायें और उन्हें एक लम्बी जिन्दगी मिल, जाय, अनुरम दग से वर्णन में वे दत्त चित्त हो जाय तो भी उस राजा के गुणों पर विचार कर पायेंगे कि नहीं यह सदेह की बात है ॥ १ ॥

अपि च

संसाराम्युनिगौ तदेतदजनि स्त्रांपुंसरत्नद्वयं
नारीणां भयती नृणां पुनरसौ सौभाग्यसीमा नल ।
सा त्वं तस्य कुरङ्गशायनयने योग्यासि पृथ्वीपते—
रेतसे कथितं भिमम्यदधुना यामो वयं स्वस्ति ते ॥ २ ॥

समारंभि म्बलिनयोगे त इति अनुर्थ्यन्तम् ॥ २ ॥

और—

इस सवार सार में दो ही स्त्री रत्न और पुरुष रत्न उन्मूलन हुए । स्त्रियों में आप और पुरुषों में सौमंद्य की सीमा पर पहुँचा हुआ नल । मृगशिशु नेत्रे (मृग के बच्चे की तरह आँखों वाली), उक्त पृथ्वीपाल के साथ विवाह की योग्यता तुम में है यही कह देता हूँ, और दूसरा क्या कहूँ । आप का महान हो । अब मैं जाता हूँ ॥ २ ॥

अन्यच्च—

चन्द्रमुखि, महानाम्नि सुमंधिकृति सुसमासारयाततद्विते सत्का
रके परिभाषाकुशले बलागलनिवारिणि विचार्यमाणे व्याकरणे प्रेक्ष्य-
माणे च दूते नापशदसम्बन्धो भयति । तत्प्रेष्यतां तथाविधस्तस्या
न्तिकं सोऽपि दूतः ॥

चन्द्रेति । चन्द्रमुखीनि सवन्धनम् । नाम प्रातिपादिकतद्विषय प्रकरणमपि
नामोपचारो मति महदिति विशेषस्य सफलत्वम् । नाममात्रस्य महत्त्वत्वेन

व्यवच्छेद्याभावात् । सुष्ठु सन्धिर्वर्णसंश्लेष कृतसङ्गकप्रत्ययश्च यत्र । समासस्त-
त्पुरुषादि । आख्यात क्रिया । तद्धितोऽणादि । कारकमपादानादि । परिभाषा
न्यायसूत्राणि । बलाबल पूर्वापरविधीना बाधस्थिति । अपशब्दोऽपवादः ॥
दूतपदे । नाम सञ्ज्ञ । सुष्ठु सन्धि पणवन्ध करोतीति स्त्री सप्तमी । सुष्ठु समासेन
मन्त्रोपेणाख्यात कथित तस्मै हित येन तस्मिन् । सत्कारके सक्रियाजनके । परितो
भाषा संस्कृतप्राकृताद्या कर्णाटादिदेशभाषा वा तासु दृष्टे । बलाबल शक्यशक्ती ।
अपशब्दोऽपवादः ॥

और

दूतपद—

हे चन्द्रवदने, दशस्वी, दोनो पक्षों में सामन्तस्य स्थापित करा देने वाले,
भेजने वाले का हित चाहने वाले, सुन्दर कामना करने वाले, विभिन्न भाषाओं
में प्रवीण, शक्ति और अशक्ति पर विचार करने वाले दूत के भेजने पर किसी
तरह की आशंका नहीं रह जाती । अतः इसी तरह के किसी दूत को उसके
पास भेजो ।

व्याकरणपक्ष—प्रातिपदिक, पञ्च सन्धि, समास, आख्यात (तिङन्त)
तद्धित, कारक, (असिद्ध बहिरङ्गमन्तरङ्गे आदि) परिभाषाओं के कारण
कुशल, (विप्रतिपेधे पर कार्यम् आदि) शास्त्रों के पूर्वापर विचार से पूर्ण
व्याकरण शास्त्र के आधार पर विचार करने पर अपशब्द से सम्बन्ध नहीं
रह जाता ॥

[प्रातिपदिक को महासङ्गा कहा जाता है ।]

‘न च बृहत्यासंपदान्विते जगत्याद्याते संस्कृतगुरुगणे शार्दूल-
विक्रीडिताङ्गम्यरिणि पुण्यश्लोके पर्यालोच्यमाने छन्दसि प्रार्थ्यमाने
च तस्मिन्निपद्येऽथरे वृत्तमहो भवति’ इत्यभिधाय गन्तुमुदचलत् ।

ननु यद्यह दूत प्रेषयिष्यामि । तदा ‘स्वच्छुम्भचारिणीयम्’ किञ्चदन्ती भविष्य
सीयाशङ्कवाद-न चेति ॥ बृहतीजगतीशब्दौ छन्दोजातिवचनौ पृथीया-न्ती यथात
पदेन प्रसिद्धार्थेन षोडशी । तथा सङ्गतौ षडैरन्विते । अथवा छन्दसि कथम्भूने ।
पदान्विते कथं यथा भर्गात् बृहत्यासं बृहत्या जानौ आसोऽवस्थान यस्थति
पदान्वयक्रियाविशेषणम् । यदि वा बृहत्या जात्या हेतुमूतया याऽमी सम्पच्छोभा
तयान्विते । परे बृहत्या गुण्या सम्पदा श्रियान्विते । अपति लोके आख्याते
कीर्तिते । गुरवो विपरोत्तलकारादयः । आचार्याश्च । शार्दूलविक्रीडित छन्दोनाम,
सिंहविलसित च । श्लोक पद्य यज्ञश्च । वृत्त पद्य शील च । इह यद्यपि श्लोकोऽ-
नुच्छन्दो लोके प्रसिद्धम् । तथापि केचित्सर्वमपि पद्य श्लोकमाहुः ॥

नलपद—

बड़ी सम्पत्ति से युक्त, संसार में प्रसिद्ध, बड़ों का सत्कार करने वाले,

पवित्र यश वाले निषध देव के राजा में प्रार्थना करने में किसी तरह का चील-भङ्ग नहीं है ।

वेदपक्ष—बृहती तथा जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उससे अम्बित (युक्त) तथा उसी के कारण प्रसिद्ध, गुणवर्णों को विशेष स्थान देने वाले, चार्दूलविक्रीडित छन्द की तरह समृद्ध, पवित्र इलोको वाले वेद के पर्यालोचन में छन्दोभङ्ग दोष नहीं होता । यह कह कर जाने के लिये तैयार हो गया ।

[इस अनुच्छेद में प्रयुक्त बृहती और जगती छन्द में हेतुगुपीया कर सम्पदा के साथ उपजा अन्वय करना चाहिये । आवृत्ति कर “अम्बिते” और “ख्याने” का सम्पदा के साथ अन्वय होगा । अर्थात् बृहती और जगती छन्द के कारण जो वैदिक सम्पत्ति है उसमें युक्त और उसके कारण प्रसिद्ध ।

चार्दूलविक्रीडिताम्बरिणि—यद्यपि चार्दूलविक्रीडित छन्द लौकिक छन्द है, उसमें वेद की समृद्ध बताना उचित नहीं है फिर भी यह कहना चाहिये कि चार्दूलविक्रीडित छन्द जिस जाडम्बर या परिमा के साथ पड़ा जाता है उस तरह के महत्वपूर्ण छन्दों से युक्त ।

पुष्पदलोके—दलोक छन्द छन्दःशास्त्र में अनुष्टुप के ही लिये प्रसिद्ध है फिर भी सामान्यतः पचारमक रचनामात्र के लिये इसका व्यवहार होता है ।

वृत्तभङ्ग—यह छन्द छन्दोभङ्ग और शीलभङ्ग दोनों अर्थों को व्यक्त करता है । वृत्त के अर्थ छन्द और व्यवहार दोनों हैं ।

वेद के पर्यालोचन और निषधेश्वर की प्रार्थना में केवल छांड़ी समानता है । कोई आपसी समानता नहीं है ।

उच्चलितं च तं परिहासशीला पुनर्धभापे ॥

‘महानुभाव, यथेयमनुवागकम्दलैरालापैस्त्वयोक्ता, तथा सोऽपि स्पृहणीयोक्तिमिरमिधातध्यः । यतो न होकहस्ततलेन तालिका वाद्यते, न चैकं ततमतप्तेनापरेण लोहं लोहेन संधीयते, नाप्येकं रक्तमरक्तनाभ्येन वस्त्रमपि वाससा संयोजितं शोभां लभते । केवलं विद्युगलमेव भवति’ इति ॥

जाने के लिये उद्यत उस हस से परिहासशील पुनः बोली—

“महानुभाव, प्रेम की बहुरिज करने वाली जैसी बातें आपने इनसे कहें वैसे उनमें भी उत्सुकता उत्पन्न करने योग्य बातें कहेंगे, क्योंकि एक हाथ से ताली नहीं बजती । एक ठंडा लोहा गरम लोहे से जोड़ा नहीं जाता ।

एक रक्त वस्त्र यदि अरक्त (दूसरे रङ्ग वाले या बिना रङ्गे हुए) वस्त्र के साथ जोड़ दिया जाय तो सोभा नहीं पाता । केवल विषमता ही होती है ।

[इस अनुच्छेद में लोहे की उष्णता तथा आदि शब्द इस बात की व्यञ्जना करते हैं कि दमयन्ती में ही कामजन्य उष्णता तथा अनुराग का संचार नहीं होना चाहिये । इस को चाहिय कि नल में भी कामविषयक अनुराग की वही मात्रा उत्पन्न कर दे ।)

पद्मधादिनीं दमयन्ती परिहासशीलामलपत्—

सखि, किमस्य निष्कारणप्रसक्तस्यैवमभ्यर्थ्यते ॥

यस्यास्मासु निरपेक्ष. पक्षपात, म्यभावाजं सौजन्यम्, अकृत्रिम स्नेहभाव, अनुपचरितमुपकारिचम, अपरिचया प्रीति, अनभ्यास सौहार्दम्, अदृष्टपूर्वा मैत्री ॥

पर्येति । पक्षो मित्राद्यवष्टम् पक्षी च । अभ्यास सामीप्यम् ॥

इस तरह बोलती हुई परिहासशीला से दमयन्ती ने कहा—

“सखि, इस अकारण कुपा करने वाले में इस तरह क्या निवेदन कर रही हो ?”

जिनका हम लोगो की ओर अकारण कुपाव है, जिनकी स्वाभाविक सुजनता है अकृत्रिम प्रेम है, आङ्गभरहीन उपकार भावना है, अपरिचयावस्था में भी प्रेम है, बिना समीपवर्ती बने ही सौहार्द मिला है । इस तरह का स्नेह इसके पहले नहीं देखा गया था ।

तदेवंविधो निर्निमित्तयन्धु किमभ्यर्थ्यते । केन याच्यन्ते चन्द्र-चन्दनसज्जना परोपकाराय । किन्तु कतिपयमुहूर्त्तमैत्रीरञ्जितास्मन्मनसो दुस्त्यजस्थाकाण्ड पद्याभ्य गन्तुमुत्सहमानस्य किंभूम । मा गा इत्यशकुनम्, गच्छेति निन्दुरता, यदिष्टं तद्विधीयतामित्यौदासीन्यम्, आदर्शानात्प्रियाऽसीति क्रियाशून्यालाप, कस्त्वमेवंविधो दिव्य-घातपश्चिरत्नमित्यप्रस्तुतप्रश्न, केनार्थित्यप्रक्रान्तम्, किं ते प्रियमाचरामीत्युपचारवचनम्, एतोपकारोऽस्मीति प्रत्यक्षस्तुति ॥

इस तरह के अकारण बन्धु में क्या निवेदन करना है । परोपकार के लिए चन्द्रमा तथा चन्दन की जीनितता कोन मागना है । (बिना माग ही मिलती है ।) कुछ ही क्षणों की मित्रता से हम लोगो के मानस को अनुरक्त कर दिया है । अतः इसे छोटना बड़ा दुःखद है । असमय में ही जाने के लिये साहस किये हुए इससे क्या कहें । “न जाओ” यह कहना अशुभ है । “जाओ” यह कहना निन्दुरता ही है । “ओ अच्छा लगे वह कीजिये” यह कहना उदासीनता

है। “जब से दिव्यानी पड़े हो तब से मयूर रत्न रहे हो” यह व्यापारहीन वचन है। इस तरह की दिव्य वाणी वाले पक्षियों में रत्न बाण कौन हैं ?” यह अप्रासङ्गिक प्रश्न है। “किस प्रयोजन से आये हैं ?” यह पूछने का कोई प्रकरण नहीं। “आर का क्या प्रिय कहें ?” यह एक साधारण बात है। “आप ने बड़ा उपकार किया” यह प्रत्यक्ष स्मृति है ॥

तद्य ज्ञानीमः कल्याणयन्धो, किमुच्यसे। वरमदर्शनमेव भवाद-
शाम्, न तु लूयमानाद्वायवयदुःसहो दर्शनन्याघातः। वरमनास्वा-
दिनमेवानृतम्, न तु सकृत्पान्वा पुनरलामदुःखम् ॥

अतः हे कल्याणप्रद मित्र, मानुष नहीं होता कि आप से क्या कहूँ। आप जैसे लोग न दिव्यानी पड़ें यही अच्छा है, क्योंकि अच्छा के काटे जाने की अपेक्षा भी अधिक दुःखद यह दर्शन का बिच्छेद अच्छा नहीं ॥

अतः प्रार्थ्यसे भूयो दर्शनार्थम्, इय मविप्यति मघरिप्रयस्य
कस्याप्युपायनमात्रमस्मन्नुस्मरणनाटकसूत्रघारी हारलता’ इत्यभि-
धाय नलनुररीकृत्य ‘महानुभाव, क्षम्यां श्रुतोऽसि पान्याद्स्माद्राज-
हंसाच्च, द्वाभ्यामुद्यसे चाचा हृदयेन च, द्विकालं स्मर्यसे दिवा नक्तं
च, त्वया गनिरस्माकमिदानीं त्वं वा मृत्युर्वा’ इति द्विसंख्यसंदेशार्थ-
मिव द्विगुणीकृत्योन्मुच्य च स्वरुणकन्दलादुत्कण्ठितामिव स्वां
मूर्तिमनां तस्य मुक्तावलीं गले व्यलम्बयत् ॥

“अतः पुनः दर्शन हीजियेगा, यही प्रार्थना है। यह हार लता आप के प्रिय (नन्) के लिये उपहार तथा हनारी स्मृतिरूप नाटक के लिये सूत्रधार होगी।” यह कहकर नल को हृदय से स्वीकार कर महानुभाव, दो से सुने गये हो, प्रथम बार उस पक्षिक ने तथा दूसरी बार इस राजहंस से। दो पक्षियों से धारण लिये जा रहे हो, वाणी से जीर हृदय से। दो समय में स्मरण लिये जा रहे हो, रात और दिन। इस समय हमारी दो ही गति हैं, तुम या मृत्यु। मानो दो संदेश के लिये अपने कण्ठ कन्दल (बटुकर) से निवाल कर और चने दुगुना कर उच्छ्वासवत्या की अपनी प्रतिभूति उस मुक्तावली को उसके गले से लटक दी।

सोऽपि “सुन्दरि, सोऽयं स्कन्धीकृतो मया मुक्तावलीच्छलेन
तस्य पुरो मयद्वर्णनामारः” इत्यभिधाय सह तेन विद्वगमगणेनो-
त्पपात ॥

सोऽपीति ॥ स्कन्धीकृतोऽङ्गीकृतः ॥

“मुन्दरी, मुक्तावली के बहाने उस (नल) के सामने आपके वर्णन का भार ही मैंने बझीकार किया है।” यह कहकर वह हंस भी पक्षियों के साथ उड़ गया ॥

उत्पतिते च नमस्तलम् 'आगच्छत, सपद्यन्तां सफललोचनाः, पश्यतापूर्य धोरत्नम्' इति चलत्पक्षपल्लवव्याजेन दूराद्विकपालानि-
घाहयति तीव्रग्रन्थमयूखसंतर्भा दिवमिवोपवीजयति, दिक्कुञ्जरनिरुद्धा-
वकाशा भशा इवाश्वासयति, पक्षिमण्डले तस्मिन्विस्मयोन्मुखी सा
भूपालपुत्री निर्निमेषं निक्षिप्य चञ्चुश्चिरमूर्ध्वेवायतस्थे ॥

उत्पतित इति ॥ दिक्पालानाङ्घ्रयतीत्यनेन भाविद्विकपालागमनं सूच्यते ॥

उन पक्षियों के समूह के उड़ जाने पर आश्चर्य से मुख ऊपर उठा कर वह राजकुमारी निर्निमेष दृष्टि को उन्हीं पर लगा कर चिर काल तक उन्हीं की ओर देखती रही । (उड़ते हुए पक्षियों का समूह) अपने पल्लव सदृश पत्तों के बहाने मानो यह कहता हुआ दिक्पालों को बुला रहा था, “आओ देखो इस कम्यारत्न को और अपनी आँखों को तृप्त करो” या सूर्य की प्रखर किरणों से सन्तप्त आकाश को पल्ला झेल रहा था, या दिग्गजों से घिरी हुई दिशाओं को आश्वासन दे रहा था ।

चिन्तितवती च—

'तात तावन्ममाप्येयं न विघत्से प्रजापते ।

पक्षी पक्षिवदुद्गीय येन पश्यामि तन्मुखम् ॥ ३ ॥

वह सोचती थी—

पिता ब्रह्माजी, मुझमें भी पक्ष बंधो नहीं बना देते कि उन पक्षों से उड़ कर उस (नल) का मुख देख सकूँ ॥ ३ ॥

अपि च—

उद्गृहीय वाञ्छितं यान्तो वरमेते विद्वद्भवाः ।

न पुनः पक्षर्हानत्वात्पङ्कप्रायं कुमानुपम् ॥ ४ ॥

उद्गृहेति ॥ अपि मनोरथस्य स्त्री मानुषी पुमान्मानुष इति 'स्त्रीपुंसयोरप-
स्थान्ता द्विचतुःषट्पक्षोरणा' इति लिङ्गविचनान्मानुषशब्दस्य स्त्रीपुंसस्य वृत्तिता,
तथापि नपुंसस्यैवमपि । लिङ्गस्य लोकाश्रयत्वात् । तथाच भवभूति — भद्रेत मुख-
दुःखयोरनुगत सर्वास्ववस्थासु यद्विधामो हृदयस्य यत्र जरासा यस्मिन्नदायो रसः ।
कालेनावरणाययात्परिणते यस्मिन्नेहसमस्थितं भद्र तस्य सुमानुषस्य कथमप्येक ही
तदुद्गृह्यम् ॥ ४ ॥

उठ कर अपने बाकाइस्त स्यान पर चले जा रहे थे पक्षी अच्छे किन्तु पक्षहीन होने के कारण लंगड़े की तरह यह दुःखित मानव जीवन अच्छा नहीं ॥ ४ ॥

इति चिन्तयन्ती गन्धर्वपि तेषून्मुखी तां दिशमनुविस्मयविस्फार-
लोचना निस्पन्दनया काष्ठकल्पामवस्थां दधानां विरात्सर्त्रीभिः
सम्बोध्य स्वपृष्ठमनोयत ॥

यह सोचती हुई, उन पक्षियों के चले जाने पर भी उसी दिशा की ओर आश्चर्य के मारे झंझा को फैला कर, निश्चय होकर बाठ की दशा की धारण करती हुई, देर तक छवियों द्वारा बुझापी जाने पर अपने घर गयी ॥

ततः प्रभृति च तम्याः सरलीभवन्ति निश्वासा न हासाः, स्खल-
न्ति वाचा न शुचः, घण्टे तन्त्रा न निद्रा ब्रूयति स्वेदाब्जो न
न्तम्मः, मन्दायते स्थरो न स्मरः, चाञ्छा चन्दनाय न स्पन्दनाय,
सन्नापशान्तये तदगुणादानं न स्नानम्, प्रीयते हारो नाहारः, सुखा-
याहे लगन्नुद्यानप्रमञ्जनो न जनः ॥

न गति ॥ प्रमञ्जनो वात एवाहे लाम्मुन्वाय न एरिजन ॥

उस दिन के बाद निश्वास ही उसके लिये सरल थे. हास नहीं। वागो ही कम हुई, चिन्ता नहीं। तन्त्रा (जमाई) ही बड़ी निद्रा नहीं। पत्तीने ही निकले, शरीर की झकझक नहीं गई। स्वर ही मन्द पड़ा, काम मन्द नहीं हुआ। चन्दन की इच्छा हुई, स्पन्दन (घूमने) की नहीं। वेदना की शान्ति के लिये उस नर के गुणों का ग्रहण (ग्रहण) ही उपयुक्त था, स्नान नहीं। (शीतलता के लिये कमल शैवाल आदि के) हार ही प्रिय लगते थे, आहार (भोजन) नहीं। अङ्गों को छूता हुआ उपवन का पवन ही अच्छा लगता था, आदमी नहीं ॥

पठति च मुहुर्मुहुरिम श्लोकम्—

विश्रान्त्यन्ति न कुत्रचिन्न च पुनर्मुह्यन्ति मार्गेष्वपि
प्रोत्तुङ्गे विलगन्ति नान्तरतश्चेर्षांशिष्वापदरे ।
सिद्यन्ते न मनोरथाः कथमनां त देशमुत्कण्ठया
धावन्तः पथि ॥ स्खलन्ति विषमेऽप्यास्ते स यस्मिन्प्रिय ॥५॥

विश्रान्त्यन्ति ॥ मनसि रथा इष मनोरथा मञ्जुला । विश्रान्तादयो रथधर्मा ॥ ५ ॥

बार बार इसी श्लोक को पढ़ती थी—ये मेरे मनोरथ उत्सङ्गतापूर्वक उस देश की ओर दौड़ रहे हैं। कहीं विश्राम नहीं लेते। मार्ग में कहीं (एक

कर) मृच्छित नहीं होते । कहीं भी ऊँचे शिखरों से टकराते नहीं । बीच की वृक्ष पङ्क्तियों की ऊँची शाखा रूप जगुल में फैलकर खिन्न नहीं होते । उस टेढ़े मेढ़े रास्ते में जहाँ वह प्रिय रहता है, कभी विचलित नहीं होते ॥ ५ ॥

तेऽपि राजहंसाः शशाङ्कधरेषु, सप्रपञ्चपञ्चाननेषु, शिवरूपेषु,
वनेषु, सुशोभां कौमुदी दधत्सु, शम्भुदनुकृतसामुद्रवृद्धिषु, चन्द्रमण्डल-
रूपेष्विव सर सलिलेषु विहरन्तस्तुहिनाद्रिकुञ्जानिव सस्त्रिपथगात्रग-
नगरग्रामाग्रहारपत्तनप्रदेशानुस्तह्यन्तः कतिपयदिवसैरासेदुरुचानं
नियमाया ॥

तेऽपि ॥ हसा वनेषु सरोजलेषु च विरहन्तो जगादिप्रदेशान् व्यतिक्रामन्तो
निपथोद्यानमापु । कीरञ्च वनेषु । शशा अङ्गे यस्यास्तथाभूत् । धरा भूमिर्धेषु ।
तथा सरस्वत्याः पञ्चानना सिंहा येषु । शिवस्तु शशाङ्क चन्द्र धरति । तथा
सह प्रपञ्चैः पुण्ड्रगार्गागमोपदेशलक्ष्मीवर्त्तन्ते तथाभूतानि पञ्चसयानि भान-
नानि चवत्राणि धरय । सरोजलेषु कीरञ्च । कुमुदानामिव कौमुदी शोभा ताम् ।
चन्द्रमण्डले तु कौमुदी चन्द्रिका ताम् । तद्विशेषेण सुशोभामिति । अनुकरण-
मनुहरणम् । चन्द्रपक्षे अनु पञ्चादवृत्ता सामुदी वृद्धिर्मेव । चन्द्रोद्गमो हि जलधि-
विदूहये । न विद्यमाने नाथो यत्र तदनु, अनु यथा भवति एव कृतवृद्धिषु । पुरो
स्थीहे हि न केऽपि नाथ चिपन्तीति । नगनगर-प्रदेशान् । कीरणाः । सरत्राणि
प्राकृणादीनां भोजनानि यज्ञा वा विद्यन्ते येषु । ते च ते पन्थानश्च सस्त्रिपथा-
स्तान्नापद्यन्ति प्राप्नुवन्तीति सस्त्रिपथगास्तान् । हिमाद्रिनिजुग्रास्तु सह त्रिपथगाया
गङ्गाया (तस्य द्विवम्) ॥

ये राजहंस भी, अपने अंक (गोद) में खरगोशों को धारण की हुई पृथ्वी
वाले, कपटपूर्ण सिंहीं वाले, शिव के रूप सहस्र वनों में, कुमुदा की शोभा
धारण करने वाले, निरन्तर समुद्रवृद्धि का अनुकरण करने वाले, चन्द्रमण्डल रूप
सरोवर जलों में बिहार करत हुए यज्ञों से अलङ्कृत मार्गवाले पर्वतों, नगरों,
गाँवों, दानभूमियों और नगरक्षेत्रों को लापने हुए कुछ ही दिनों में निपथ
नगरी के उपवन में पहुँच गये ॥

[इस अनुच्छेद के प्रायः प्रत्येक शब्द श्लिष्ट है । वनपक्ष—शशाङ्कधर—
शश (खरगोश) अपने अङ्क (गोद) में जहा की धरा (पृथ्वी) धारण करती
है, ऐसे वन को शशाङ्कधर कहा गया है ।

सप्रपञ्चपञ्चाननेषु—प्रपञ्च के साथ (शिकार को बँटने के लिये)
पुण्ड्र से कपटपूर्ण भाव में जहा के सिंह बैठे हुए हैं ।

इस व्याख्या के अनुसार शशाङ्कधर और सप्रपञ्चपञ्चानन, दोनों ही वन
के विशेषण हैं । ये विशेषण शिव पक्ष में भी लगेंगे ।

शिवपञ्च—साराङ्गधरेषु—साराङ्ग (चन्द्रमा) को धारण करने वाले, सप्तपञ्चपञ्चाननेषु—साङ्गोपाङ्ग वेदों से युक्त पांच मुखों वाले :

सुरोभा ***विहरन्त—सरोवर पक्ष में—कौमुदी शोभा—कुमुदों में होने वाली शोभा को कौमुदी शोभा कहा गया है। शम्भुदनुवृत्त समुद्रवृद्धिषु—सरोवरों में इतना जल है कि बड़े हुए पूर्णिमा के समुद्र का सदा अनुकरण करने के। समुद्र तो केवल पूर्ण चन्द्र को देखकर बढ़ता है किन्तु ये सरोवर तो सदा बड़े रहने हैं।

चन्द्रमण्डपस्य—कौमुदी (चन्द्रिका) की शोभा धारण किया हुआ रहता है। शम्भुदनुवृत्तवृद्धिषु—अपनी पूर्णता के बाद सदा समुद्र की वृद्धि करता है।

तुहिनाद्रि लङ्घयन्तः—नगर ग्राम आदि हिमालय के कुञ्जों की तरह हैं।

तुहिनाद्रि कुञ्ज पक्ष—हिमालय पर्वत के कुञ्ज सुन्दर त्रिपयगा (गंगा) के साथ हैं (अतः उन्हें सत्रिपयग कहा जाता है। द्वितीया के बहुवचन में सत्रिपयगान् रूप है।

नगर-ग्राम आदिपक्ष—सत्र (चन्न, दान आदि) कार्य त्रिन मार्गों में चल रहे हैं वे मार्ग सत्रिपयग हुए। उन मार्गों के साथ त्रिन नगरों और गावों का सम्बन्ध है वे सत्रिपयग हुए। अर्थात् वे पवित्र आत्मा वाले हंस शोभा सम्पन्न धार्मिक मार्गों से गये त्रिनमें पक्ष, दान आदि के कार्य चल रहे थे। ऐसे मार्गों में जाने का फल यह भी था कि कोई व्याध आदि हिंसक तत्त्व उनकी यात्रा के बाधक नहीं हुए। दूसरा लाभ यह भी था कि धार्मिक लोगों द्वारा बिछेरे गये भोज्य पदार्थों से भोजन का काम भी सम्पन्न हो गया।

अग्रहार—अग्र (ब्राह्मण भोजन) के लिये राजकीय सम्पत्ति में अलग किये गये क्षेत्र को अग्रहार कहते हैं। “अग्र ब्राह्मण भोजन, तदर्थं ह्रियते राज-धानान् पृथक् क्रियते क्षेत्रादिरिति अग्रहार” ॥ नीलकण्ठ ॥

क्षेत्रोत्पन्नशस्यादुद्धृत्य ब्राह्मणोददेशेन स्वाप्य धान्यादि, गुरुकुलावृत्त ब्रह्मचारिणे दत्त क्षेत्रादि, शासभेदश्च। वाचस्पत्यम्, तायनाथ।

वेत में उत्पन्न अन्न से निकाल कर ब्राह्मण के लिये जो अन्न रक्खा जाय उसे या गुरुकुल से लीटे हुए ब्रह्मचारी को दी जाने वाली भूमि को अग्रहार कहते हैं। प्राय विषय का भेद भी अग्रहार है ॥

क्रीडितुमारमन्त च स्वच्छन्दम् ॥

स्वच्छन्द खेलना भी प्रारम्भ कर दिये।

अथ तेषामन्यतमामवलोक्य क्रीडातडागपङ्कजपञ्जरे राजहसी-
मागत्य त्वरया हंसदर्शनोत्सुक सरोरक्षिका राजानं व्यञ्जिषत्—

क्रीडासरोवर के कमलों के बीच उनमें से एक राजहसी को देखकर
सरोवरपालिका ने बड़ी शीघ्रता से हंस को देखने के लिये उत्सुक राजा को
सूचित किया—

‘देय, हंसवात्तामनुदिनं पृच्छति देवस्तदद्य काचित् ॥

कुरुते नालकवलनं दूरं विक्षिपति गर्भजम्वातम् ।

त्वदरिषधूरिष राजन्नुद्यानसरोरगता हंसा ॥ ६ ॥

कुरुते इति ॥ राजन् नृप, उद्यानतडागगता हसी नालकस्य विसकाण्डस्य कवलनं
प्राप्ते कुरुते । तथा गर्भे मध्ये यो जम्वाल, कर्दमस्तं च दूरं परिक्षिपति । यधुस्तु
उद्यानेन पलायनेन सरोरगता रोगवत्ता भव्या । यथा अलकस्य वलनं न कुरुते ।
गर्भजान् बाल दूरे विपति । भीत्या हि गर्भं पतति ॥ ६ ॥

“श्रीमन्, हंस की बात प्रति दिन पूछने रहते हैं तो आज आपके
उपवनसरोवर में कोई एक हसी कमल तन्तुओं को खा रही है और बीच के
पङ्क को बाहर फेंक रही है । (इस तरह का कार्य करती हुई) वह आप के
घनुओं की पत्नियों की तरह लग रही है ॥ ६ ॥

[यह पद्य श्लेष के माध्यम में अरिषधू और हसी दोनों पक्षों में लगेगा ।
हसी पक्ष .—

उद्यानसरोरगता (उद्यान सरोवर में आयी हुई) हसी नालकवलन (विस-
तन्तुओं का भोजन) करती है और गर्भ (बीच) के जम्वाल (कीचड़) को
दूर फेंकती है ।

अरिषधूपक्ष — शत्रुपरनी भी उद् + याम (डर के मारे जोर से भागने)
के कारण सरोरगता (रोग की अवस्था) प्राप्त कर गर्भज (गर्भस्थ) बाल
(सन्तान) को फेंक देती है । और अलक (केशी) का वलन (बन्धन) नहीं
करती । जोर से भागने के कारण गर्भस्त्राव हो जाता है । विधवा होने के कारण
वेणीबन्धन नहीं करती ॥ ६ ॥]

अपि च—

अभिलगति नालमशनं स्वपिति नवाम्भोजपत्रशयनेऽपि ।

नीरागमना नृपते तव रिपुवनिनायते हंसी ॥ ७ ॥

अभिलगतीति ॥ नाल कमलकाण्डमशनमाहार घातयति । स्वपित्यपि नूतना-
रुद्रपत्रशय्यायाम् । नीरे जागमनं यस्या । रिपुवनिता ॥ नीराग वैराग्योपेतं
मनो यस्याः । अग एवालमन्यर्घमशनं नाभिलषति । नापि कमलदलतटपे शेते ।
या अथवायं ॥ ७ ॥

राजन्, पानी में बायी हुई वह हंसी विसतन्नु भोजन की अभिलाषा करती है। नवान कमपन्न की शय्या पर सोती भी है। तुम्हारे शत्रुओं की पत्नियों की तरह आचरण कर रही है ॥ ७ ॥

[हवीरस—नीरामना (सरावर जल में आकर) नाल (विष तन्नु रूप) जघन (भोजन) चाहती है। नव + अन्नोन्नयन + शयन (नवान कमपन्न की शय्या) पर सोती है।

रिपुनितारस—नीराग + मना (वैराग्यपूर्ण चित्तवृत्ति वाली) रिपुनन्ती न + तल्प् + अघनम् (पूर्ण भोजन नहीं) करती है। न + वा + अन्नोन्नयन + शयन (न तो कमपन्न की शय्या) पर सोती है।

अयान् शोक सम्प्लित रिपुनन्ती का चित्त राग सम्पन्न न रहकर नीराग सम्पन्न हो गया है। उदासी के मारे उस भोजन भी अच्छा नहीं लगता। अब वह कमपन्नशय्या जिस कोमल आसन पर सोती भी नहीं। नीरामना, नाल्प् अघनम् और नवान्भोजशयन में साधारण शब्द हैं क्योंकि इनका अन्वय हंसी और रिपुनन्ती दोनों पक्षों में हुआ है ॥)

राजापि तस्याः स्निग्धार्थमिदमार्यायुगलमवधारयन्स्तोत्रस्मृत-
स्तुधाधवलितधरपल्लव 'लवङ्गिके, यथा कथयसि तथा तेऽप्यागना
हंताः कथमन्यथा तस्याः खल्येकाकिन्याः संभर.' इति तद्वार्त्तया
यावदन्ते ॥

तावतीलोत्पलदलदीर्घलोचना चन्द्रमुखी बन्धूकुसुमकान्तदन्त
च्छदा नीलांशुकपटा परिधधाना पङ्कजलमञ्जरीगोराङ्गी प्रकाशहाता
हंसेरनुगम्यमाना। मूर्त्तिमती शरद्विष वनपालिका प्रविश्य।

भावद्वि ॥ यावत्तद्वार्त्तयास्त नृपस्नावन् । शरदुपमा वनपालिका प्रविश्य
देवैर्यभिधाय त राजहंस राज पादयन्निधाय श्याम चकार । नीलोत्पलदलादीनि
लावनादीनामुपमानानि । दन्तच्छद ओष्ठ । नीलमशुक वासस्तस्य परी उत्तरी
यम् । परिपाके दि शक्तिर्गौर स्यादन्तस्नग्मञ्जरीवतौरमद् यस्य । प्रवृद्धा काशा
काशपुष्पपत्रेव हामो यस्या ॥

राजा भी स्निग्ध अर्थों में सम्पन्न उसकी दोनों आर्पणों पर विचार करना हुआ 'लवङ्गिक, जिस बजा रही हो उसमें यह प्रतीत होता है कि वे हम नी
आ ही गये हैं। अन्यथा जकेनी उसकी सम्भावना कैसे की जा सकती है।' इसी तरह उसने साथ बात कर ही रहा था तब तक शरत् काल की प्रति-
मुति ऐसी एक वनपालिका आयी। उसके बड़े-बड़े नयन नीचे कमल स-
थे। मुख चन्द्रमा की तरह था, ओष्ठ बन्धुक पुष्प सहस्र मनोहर थे। नीला

वस्त्र पहनी हुई थी। उसके अङ्ग परके हुए धान की बाल सदृश मोरे थे। हास्य शुभ्र प्रकाशपूर्ण था। हंसों से अनुगत थी।

[वनपालिका का उपमान यहाँ शरत्काल है। शरत् भी उल्लिखित कमलों से सुशोभित रहता है, चन्द्रमा का प्रकाश उन दिनों में अत्यधिक भाञ्जल बन जाता है। बन्धूक फूल भी धुब खिलते हैं। चने, गेहूँ आदि की हरियाली भी बढ़ जाती है। धानों की बालें पक कर पीली हो जाती हैं। हंस भी मान-सरोवर से लौट आते हैं। काश पुष्प खिल आता है। वनपालिका के विभिन्न अङ्गों में शरद्वधू की ये सारी समानताएँ पायी जाती हैं। इसीलिए उसे शरत् की प्रतिमूर्ति कहा गया है।]

‘देव, सोऽयं कथमप्यागतो रणरणककारणमपराधी विहंगः’ इत्यभिधाय तं राजहंसमुभयकरकमलाञ्जलिगतमुत्फुल्लपाण्डुपङ्कजाध-मिय पुरः पादारविन्दयोर्निधाय राशं प्रणाममकरोत् ॥

“देव, उत्कण्ठा उत्पन्न करने वाला अपराधी यह बही हंस है।” यह कह कर अपने (लाल) कमल सदृश हाथों की अञ्जलि में सफेद कमल के खिले हुए आधे अंश की तरह उस हंस को लेकर राजा के चरण-कमल के सम्मुख रख कर प्रणाम की।

[वनपालिका की अङ्ग अञ्जलि में वह शुभ्र राजहंस लाल कमलों के गुच्छों में खिले हुए सफेद कमल के आधे अंश की तरह लग रहा था।]

राजापि ‘सारसिके, साधु कृतम्। तरिक्रयतामद्गुणः स्वाधि-कारः। गम्यतामिदानीं ‘यथास्थानम्’ इत्यभिधाय तुष्टिप्रदानपरि-तोषितां तां लयङ्गिकासहितां विसृज्य, विरलोकितपरिजनः प्रत्युज्जीव-नौषधमिव प्राणरक्षाशरमिव स्थस्थोत्करणमणिमिवाभ्यासनाभेपजमि-वाह्लादनरुन्दमिय तमग्रेम्यितमानन्दनिःस्पन्दपद्मपालिना चिरं चक्षु-पाऽघलोक्य बहुमानयन्मुग्धस्मिनेन स्वागतमपृच्छन् ॥

सोऽपि ‘देव’ दर्शनामृतमनुभवतो ममाद्य स्वागतम्’ इत्यभिधा-योपश्लोकयाचकार ॥

राजा भी, “सारसिके, अच्छा किया तुमने। अब जाओ अपनी जगह पर और चरितार्पण करो अपने अधिकार को।” यह कह कर सन्तोष लायक दान देकर लयङ्गिका सहित उसे विदा कर, नीकरोँ को भी वहाँ से शम पर सजी-वनी ओषधि सदृश, प्राणरक्षा के अक्षरों सदृश, स्वस्थ करने वाले मणि सदृश

और प्रसन्नता के मूक सदृश आगे बैठे हुए उस हृष को आनन्द के मारे निनि-
नेप दृष्टि से देख कर उसे बहुत आदर दता हुआ मुस्कुराहट के साथ स्वागत
वचन कहा । उसने भी, “देव, आपके दर्शन रूप अमृत का अनुभव कर मेरा
स्वागत हो गया ।” यह कह कर उनकी स्तुति की ।

देव—

प्रमृतकमलगन्धं नीरसमकरुण्यं

धृतकुवलयमालं जातमङ्गोर्मिकं च ।

त्वयि कृतस्य भीतान्तायदास्तां तडागं

निजमपि च कलत्रं शत्रवो नाद्रियन्ते ॥ ८ ॥

प्रमुनेति ॥ प्रमृत कमलानामवज्ञाना गन्धो यत्र । तथा नीरेण समन्धो युक्त
कण्ठं पालिप्रान्नां यस्य । तथा एता कुवल्याना नीलोत्पलाना माला येन । तथा
जाता तपसा मङ्गान्तरङ्गा ऊर्मय कलौला यत्र । एनचकृष्टयमपि तडागाद्वहेतुः ।
देव, त्वयि स्ते पद्मीना शत्रवाम्नाद्यमेवविधं नाद्रियन्ते । यावत्कलत्रमपि ।
तत्किंचिदिष्टम् । प्रमृत के मूर्ति मटगन्धो यस्याः । स्तनाभावात् । तथा निर्गतो
रमो वस्त्रान्धनकला शृङ्गाशदिर्वा यत्र । तथा मत्ताङ्गनलान कण्ठो यस्य । तथा
एता कुमिनवलयानां सुवर्णाद्यभावात्काचादिबल्याना माला येन । तथा जानमङ्गा
मन्ना ऊर्मिका अङ्गुलीयकं यस्य ॥ ८ ॥

“देव, कमलों की गन्ध से व्याप्त जल से पूर्ण, कमलपङ्क्ति को धारण
किये हुए, चरती हुई बक तरङ्गों वाले तडाग को कौन कहे, आपका क्रोध करने
पर (इन विशेषों से युक्त) अपनी भी पत्नी को आपके शत्रु आदर की दृष्टि से
नहीं देखने ॥ ८ ॥

[इस श्लोक के प्रथम दो चरण श्लिष्ट हैं । दोनों चरणों की पदावली
तडाग और कलत्र दोनों पक्षों में लगती है । तडागपक्ष—प्रमृतकमलगन्ध—
कमल की गन्ध अहाँ फैली हुई है । नीरसमकरुण्यं—जिसके कण्ठ (गण्ड) व
बराबर तक जल लगा हुआ है । धृतकुवलयमालं—औ कुवलय (कमल) की
माला धारण कर रक्खा है । जातमङ्गोर्मिकं—जिसमें टट्टी टट्टी लहरिया
तरङ्गित हो रही हैं । कलत्रपक्ष—प्रमृतकमलगन्ध—प्रमृत (फैल गया है)
क (शिर) पर मल गन्ध जिनमें नीरसम्—शोक के कारण शृङ्गार आदि की
विलासपूर्ण चेष्टायें जिनकी समाप्त हो गयी हैं । शोक-सन्ताप के कारण नीरस
बन गई हैं । सन्तकण्ठं दुर्बल हो गयी हैं । धृत + कु + वलय + मालम्—धन
के अभाव और सन्ताप की अधिकता के कारण कु (कुत्सित काव आदि का)
वय (कटा) और माला धारण की हुई हैं । जातमङ्गोर्मिकम्—जिनके हाथों
की ऊर्मिका (अंगुठी) समाप्त हो गयी है ।

जल, पुष्प, गन्ध आदि रमणीय पदार्थों से सम्पन्न आपके सरोवर की शोभा के बारे में क्या कहना है। आप जब क्रुद्ध हो जाते हैं तो आपके उल्लास को व्यक्त करने वाले इस सरोवर को कौन कहे अपनी पत्नियों को भी नहीं देख सकते। शत्रु के उल्लास को आदरपूर्वक नहीं ही देखा जाता है। अतः आपके सरोवर को वे गेग आश्चर्य से नहीं देखते इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य की बात यही है कि वे अपनी पत्नियों को भी आदर के साथ नहीं देखते।

यहाँ तडाग और कलश दोनों के विशेषण समान ही हैं, किन्तु इन विशेषणों से तडाग की प्रसन्नता तथा उल्लास की स्थिति व्यक्त होती है और इन्हीं विशेषणों से कलश की अत्यन्त विपन्न स्थिति ज्ञात होती है ॥

किं चान्यन्—

असमहरिततीरं विस्रजम्बालशेषं

स्फुटकुमुदपरागोल्लाससंपन्नियुक्तम् ।

वयमिह बहुशोक इष्टयन्तो वनाम्ने

त्वदरियुवतिलोकं ग्रीष्ममासे सरध्व' ॥ ९ ॥

असमेति । हरितते सिंहपद्मते सकाशादीरं चैवद्यासो हरिततीरं, असमो हरिततीरो यस्य । अथवा मा लपमीस्तया सह सम, न सममसममश्रीकम् । यथा हरिततीर्वात्तरपद्मीरीर्याति विपति । पञ्चात्कर्मधारय । तथा विगतवज्र विगतमालम् । तथा बालशेष इतमग्नौदिस्थात् । तथा स्फुट कु कुम्भा यस्य स स्फुटकम् । तथा उद्गतोपरागस्य रागाभावस्थोल्लासो यस्य । स चासौ संपन्नियुक्तम् । अथवा स्फुटा कुरिततोदरभरणादिमात्रज्ञा मुचस्य स स्फुटकुमुत् । तथा पगतो रागोल्लासो यस्य । स्फुटकुमुच्चासावपरागोल्लासश्च स्फुटकुमुदपरागोल्लास, स चासौ संपन्नियुक्तश्च । बहु शोको यस्य । ईदृश स्वदहितस्त्रीजनमपश्याम । ग्रीष्मे मर इव । तदपि कीदृक् । सम हरित तीर यस्य तन्ममहरिततीर, न सम हरिततीरमसमहरिततीरं, विषम शुष्क च तीर यस्येत्यर्थः । तथा विस्र आमगन्धिको शम्बाल कर्दम एव शेषो यत् । तथा विस्रसिक्कुमुद्रेणुल्लाससमृद्धिरहितम् । नास्ति क अल यत्रेत्येकम् । बहुश इति क्रियाविशेषणम् ॥ ९ ॥

तीर पर अनुपम हरी हरी घास लगी है। अब्रद गन्ध युक्त कीचड़ ही बच गया है। कमलों की पराग सम्पत्ति का विकास स्पष्टतः नष्ट हो चुका है। वन के पास ग्रीष्मकालीन सरोवर और आपके शत्रुओं की पत्नियों की बहुत शोकपूर्ण स्थिति में मैंने बहुत बार देखा है ॥ ९ ॥

[इस पद्य में अधिकांश पद अरियुवतिलोक और सरोवर, दोनों पक्षों में लगते हैं ।

सरोवरपत्र—पानी के हट जाने में भूमि की भारता के कारण (असमहरिततीरम्) तटीय भाग अनुपम ढंग से हरा हो गया है। जल के कम हो जाने में (विनयन्वालयेषम्) दुर्गन्धपूर्ण कीचड़मात्र अवशिष्ट रह गया है। खिले हुए कुसुमों की पराग सम्पत्ति से स्पष्टः हीन हो गया है। मैंने बहुत (बहुत बार) उस धीप्मकालीन अक (अन्वमल वाले) सरोवर को देखा। क का अर्थ जल है। क के साथ अल्प अर्थ में नञ् समास हुआ है।

अरियुवतिचोकपत्र—असम+हरि+सति+ईरम्—बड़े बड़े सिंहों के समूह से डरायी जा रही हैं। विनयन्—पति के नष्ट हो जाने के कारण माला आदि शृङ्गार के साधनों को छोड़ चुकी हैं। वान्येषम्—पति के नष्ट हो जाने पर केवल बच्चे ही अवशिष्ट रह गये हैं।

स्पृष्ट कुसुम्—भोजन वस्त्र मात्र प्राप्त हो जाने से होने वाली कुत्सित प्रसन्नता का पात्र बन गयी हैं। उनमें (अपराग) वैराग्य का ही उद्भास है। संप्रतिपुनः—सम्पत्ति से हीन हो गयी हैं। मैंने उन्हें वनों के बीच बहुशोक (शोक पूर्ण स्थिति) में देखा है ॥]

राजापि 'दलेषोकिनिवे, तथा गृहोत्वास्मन्मनो गतयानसि, यथा सुखसंघिसिद्ध्यः संतापारम्भिणो रणरणकाङ्क्षप्रयोदकाः कथमप्य-
म्माकमेतेऽतिशान्ता दिवसाः ॥

राजा भी, "दिल्ट बचनों के सागर, आप मेरे मन को इस तरह लेकर चले गये थे कि वे मुझ और चेनुना से शून्य, सन्ताप उत्पन्न करने वाले दिन किसी-किसी तरह बीते।

तत्कथय । का मामामिनन्दनीया सा दिक्, यस्यां विहारमकरोः । के ते सफलचक्षुषो जनाः, यैश्चिरमालोकितोऽसि । के लब्धसुभाषिता-
मृतरसाम्वादाः यैः संभाषितोऽसि । के प्राप्तप्रापितव्यफलाः यैः सह गोष्ठमनुष्ठितयानसि ॥

तो कहिये, वह कौन सी प्रशंसनीय दिशा है जहाँ आपने विहार किया। वे कौन से सफल नेत्र वाले लोग हैं जो आपका चिरकाल तक अवलोकन किये। मनोहर उक्ति सुधा का आस्वादन करने वाले वे लोग कौन हैं जो आपसे बातें किये। किसने अपने जीवन का फल प्राप्त किया जिसके साथ आपने गोष्ठी की!

स्पृहणीयसंगम, गते त्ययि तर्कशास्त्रमिव प्रस्तुतपरमोदम्,
व्याकरणमिव भूतनिष्ठमिदमस्माकमासीन्मनः ॥

सृष्टेति ॥ प्रकृतोत्कृष्टमोहं मनः, शास्त्र तु प्रस्तुत परम ऊहो वितर्को यत्र ।
भूता संजाता निष्ठा बलेशो यत्र मनसि, व्याकरणे तु भूनेऽतीतकाले निष्ठासङ्गः
प्रत्यययो यत्र ॥

आकाङ्क्षणीय संगति वाले हस, तुम्हारे चले जाने पर मैं तर्कशास्त्र की तरह
परमोह (उत्कृष्ट मोह) में पड़ गया । व्याकरणशास्त्र की तरह मन भूतनिष्ठ
(बलेशयुक्त) हो गया ॥

[तर्कशास्त्र में परमोह (परक+ ऊह = विशिष्ट तर्क) किया जाता है ।
व्याकरणशास्त्र भूतनिष्ठ (भूत अर्थ में निष्ठा प्रत्यय होते) है । त और कषतु
प्रत्ययों को निष्ठा कहते हैं ।]

तदेहयेहि' इत्यभिधाय स्वयं करकमलतलेनोत्क्षिप्य सस्नेहं
परामृशत् ॥

'आओ आओ' यह कह कर स्वयं ही अपने करकमलो से उठा कर बड़े
प्रेम के साथ उस पर हाथ धपपवाये ।

सोऽपि 'एष महान्प्रसादो यदेवमनुकम्पतेऽस्मान्देवः' इत्यभि-
धाय गमनादारभ्य दमयन्तीदर्शनाल्लापव्यतिकरमशेषं हारलतार्पण-
पर्यन्तमाचचक्षे ॥

वह हस भी, "यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आप हम पर इतनी कृपा
करते हैं ।" यह कह कर दमयन्ती से साक्षात्कार और वार्तालाप विषयक चर्चा
से लेकर हारलता प्रदान तक की सारी बातें उनसे कह सुनाया ।

आख्याय च चरणेनैकेन प्रीवाप्रादाकृष्य ता तथास्थितामेव मुक्ता-
घल्लीमिदमवादीत् ॥

यह सब कहने के बाद एक चरण में अपनी गर्दन में से उसी तरह रखती
हुई मुक्ता माला को निकाल कर बोला—

‘उन्मादिनी मदमकामुंकमण्डलज्या
सौभाग्यभाग्यपरवैभववैजयन्ती ।

मुक्तावली कुलधनं नरनाथ सैषा

कण्ठग्रहं तव करोतु भुजेय तस्याः ॥ १० ॥

हे नरेन्द्र, उन्मत्त बना देने वाली, कामदेव ने धनुर्मण्डल की प्रत्यञ्चा, ऐश्वर्य
और दैव की असुरकुष्ट पताका, कुन्धन रूप यह मुक्ता की माला उस दमयन्ती
की बाहुलता की तरह आप के कण्ठ का आलिङ्गन करे ॥ १० ॥

अपि च—

प्रेमप्रपञ्चनवनाटकसूत्रधारी मूर्त्ता मनोभवनृपस्य नियन्त्रणाशा ।

तस्याः स्वयंचरपरिग्रहद्वेतुरेपा हारवल्ली इदि पदं मवतः करोतु ॥ ११ ॥

और—

प्रेम = विस्तार रूप नवीन नाटक का सूत्रधार, सम्राट कामदेव की निरोपज्ञा की मूर्तिमती आवृत्ति, उस दमयन्ती को स्वयम्बर में परिगृहीत करने = जिसे निमित्त हुए यह रत्नावली आप के हृदय में स्थान प्राप्त करे ॥ ११ ॥

राजा तु तामादाय निरूप्य च चिरं चिन्मयांचकार ॥

राजा तो उसे लेकर बहुत देर तक देखता हुआ सोचने लगा ॥

‘आनन्दिसुन्दरगुणामलकोपमान-

मुक्ताफलप्रचयमद्भुतमुद्रहन्ती ।

एषा च सा च नयनोत्पन्नकारिकाग्नि-

द्व्येतोदरा हृदि पटं न करोमि कस्य’ ॥ १२ ॥

आनन्दादि ॥ गुणस्तन्तु सौर्वादिषु । आनन्दकोपमानानां मुक्ताफलानां मौलि-
कानां प्रचयं ममवापम् । अद्भुतमुद्रहन्त्यकारिणम् । बहन्ती । दमयन्ती तु मन्त्रा-
स्वायाम्नादिन्याद्वा, कोपाकुपो, मनाद्वर्त्तात्पादरपाद्वा मुक्ता अष्टा । तथाद्भुतं
विभ्रं फलानां प्रचयं बहन्ती परिणैनुगिति शेषः । चेतोदरा मनोदरा । अन्यत्र
चेनपि हरोऽस्याः । एवंभूतेषु मुक्तावली सा च कस्य हृदि बद्धमि चेनपि च,
पद्मवस्थानं न करोमि, सर्वस्यापि करोत्येवेत्यर्थः ॥ १२ ॥

आनन्द देने वाली, सुन्दर गुणों (सूत्रों) में गुणों हुई, आवण्टे सहस्र मुक्ता
फलों को धारण करने वाली, चित्त की घुरा लेने वाली और आखों को आनन्द
देने वाली यह रत्नावली और वह दमयन्ती जो आनन्द उत्पन्न करती है—
सुन्दर (उदारता आदि) गुणों से युक्त है । मरु, कोप तथा मान (चिन्ता)
की स्थिति में गिरी हुई है, (पुष्पा के) फल समूह को धारण की हुई है,
चित्त में हर (धिव) की रखली है, घरीकान्ति आखों को आनन्द देने
वाली है, जिसके हृदय में स्थान नहीं बनायी ॥ १२ ॥

इति चिन्तयन्दिगुणामेकगुणौकृत्य पुनः सस्पृहमैश्वर ॥

इत्तस्तु चिदस्य परिहासमकरोत् ॥

[महा रत्नावली और दमयन्ती के समान विशेषण हैं ॥]

यह सोचता हुआ द्विगुणित की हुई उस रत्नावली को एक गुणित कर
वही उत्कृष्टा से फिर उसे देखने लगा ।

[जो दोहरी की गयी उसे एकहरी कर दिया । हंस को लानी थी इसलिये
दोहरी कर छोटी कर दी गयी थी । राजा ने अच्छी तरह देखने के लिये एकहरी
कर दी ॥]

‘तया दत्ता मया नीता स्वयमाह्लादिनी त्वया ।

इत्यनेकगुणाप्येषा

कथमेकगुणीकृता’ ॥ १३ ॥

तया दत्तेति ॥ गुणाध्वारुतादयस्तन्तुमरिका च ॥ १३ ॥

हंस ने हंसकर परिहास किया—उसके द्वारा दी गयी और मेरे द्वारा लीई गयी, स्वय ही आनन्द की अभिव्यञ्जिका यह रत्नावली अनेक गुणों वाली है । इसे आपने एक गुण वाली कैसे कर दिया ॥ १३ ॥

राजापि परिहासेनान्तःसूत्रं दर्शयन् ‘पक्षिपुंगव, किं न पश्यस्ये-
कगुणैवेयम् ॥

राजा ने भी उसके भीतर के तन्तु को दिखाता हुआ कहा, “देखते नहीं, पक्षिवर, इसमें एक ही गुण (तन्तु) है” ।

अथवा—

कः करोति गुणधाम्गुणसंख्यां इलाध्यजन्ममहस्तः स्फुटमस्याः ।

कुम्भिकुम्भपरिणाहिनि तस्या स्वैरमास्यत यया कुचयुग्मे’ ॥ १४ ॥

कः करोतीति ॥ परिणाहो विशालता ॥ १४ ॥

अथवा—

“उत्पत्तिकाल से ही स्पष्ट रूप से प्रशसनीय तेजवाली इस रत्नाली के गुणों की संख्या का कौन गुणी आदमी वर्णन कर सकता है । (एक समय) यह हाथी के कुम्भस्यल सहस्र विशाल स्तनयुगल पर स्वेच्छया रह चुकी है ।” ॥ १४ ॥

इत्यभिधाय नीत्या च निजकण्ठकन्दलम्, ‘इहास्ते सा तव
पूर्वप्रणयिनी’ इत्यन्तःस्थितां दमयन्तीं दर्शयितुमिव हृन्मध्ययतिनीं
तामकरोत् ॥

यह कह कर अपने कण्ठदल को आगे बढ़ा कर “यह है तुम्हारी पूर्व परिचिता प्रेमिका” मानो अपने हृदय के भीतर ठहरी हुई दमयन्ती को दिखाने के लिये हृदय के बीच में उसे कर दिया ।

[वह रत्नावली बहुत दिनों तक दमयन्ती के हृदय पर लोट चुकी है । इस समय उसके गले से निकल कर नल के पास आ गयी है । नल उसे गले में पहन रहा है गले से लटकती हुई वह माला हृदय तक आती है । दमयन्ती को नल अपने हृदय में ला चुका है । इसीलिए कहता है, “रत्नावली, तुम ऐसा न समझना कि दमयन्ती के हृदय से हूँ आ गयी हो । छो देखो, यहीं तुम्हारी पूर्व परिचित दमयन्ती रहती है ।” मानो इसी भाव से माला को पहनता है ॥]

कृत्वा च क्वचिदनुच्चस्मितं मधुरमधुरया वाचा 'विहंगपुंगव,
पुनः कस्यतां कीदृशी सा, कीदृशपा. किं च वयं, कीदृशी लावण्य-
संपन्, को विनोदः, कीदृश वाग्बैदग्व्यम्, किं प्रियम्, का गोष्ठी इति
धृत्नामप्यपूर्वाभिप्रायतद्वातामादरेण पृच्छन्नागच्छंश्च चटुलकरकृतशस्त्र-
धानम्यानवरतविरचिताद्भुतभ्रमणकर्मकामुकवलयस्य लक्ष्यतां मकर-
केनोरचिदितापक्रमानतिबह्वन्धेलाजानयनन्ये ॥

कुछ मुस्कुगता हुआ अन्यन्त मधुर बापी में, "पक्षिवर, फिर कहिये । वह
कैसी है, किस रूप की है, क्या अवस्था है, किस तरह की सीन्दर्य सम्पत्ति है,
कैसा विनोद है, कैसा वाग्बिभास है, क्या प्रिय है, कैसी गोष्ठी है", यह सुनकर
भी न मुने हुए की तरह आदर के भाव पूछता हुआ खंचक हाथों से शर सन्धान
किये हुए निरन्तर विवक्षण इम से धनुष को घुमाने वाले कामदेव के धनुष का
लक्ष्य बनता हुआ बहुत लम्बो तक जिनक व्यतीत होने का प्रकार ज्ञात नहीं
हुआ, बैठा रहा ।

स्थिते च विभूय्य मध्यमं नभोभागं मगयति भासुरभासि भास्वति,
भ्रवणपुटपथमवनरति च प्रहरावसानप्रहारभाकारिभेरीरवे, 'वयस्य,
विश्रम्यतामिदानीममन्दारतटपरिकरितरोधसि मन्दिरोद्यानारविन्द-
र्दीर्घिकायामेवं प्रार्थ्यसे च न गन्तव्यमविसर्जितेन त्वया पूर्ववत्, इति
नियम्य तं राजहंसं स्वयमप्याह्निकायोदतिष्ठत् ॥

कान्तिपूर्ण भगवान् सूर्य के आकाश के मध्यभाग में चले जाने पर, प्रहर की
समाप्ति के अवसर पर बजाये गये गगाडे क सन्ध के काना में जाते रहने पर,
"मित्र मन्दार वृक्षों में निरे हुए तट वाले इस भवन के उद्यानस्थित कमलपूर्ण
बावनी में विश्राम करो, यही प्रार्थना है । पहले की तरह अनुमतिबिना ही फिर
न चले जाना ।" इस तरह राजहंस की कह कर स्वयं भी दैनिक कार्य करने के
लिये उठ खड़ा हुआ ।

एवं च—

शियिलितसरुलान्यध्यापृतेन्नस्य राजः

परिहृतनिजयन्त्रोर्यान्ति हंसेन सार्यम् ।

दिनमनु ह्यमन्तीवृक्षवार्ताविन्दोदै

रविदितपरिवर्त्ता वासयः शारदीनाः ॥ १५ ॥

शियिलितेति ॥ दिनमनु दिनं लक्ष्यकृत्य । एतेन राजनिषेयः । पक्षिणो हि निशि
नीचे नीलीयन्ते । तापदेनवोऽपि दिवसा ह्यमन्तीवृक्षवार्ताविन्दोदै । शारदि
भव शारदं रूपमुष्णानिशयादि तद्विद्यते यस्यामौ शारदी हनो येषु ते
शारदीनाः ॥ १५ ॥

अपने बन्धुओं को समीप में रहने के लिये मना कर दिया था। अन्य कार्यों को भी छोड़ दिया था। हंस के साथ दमयन्ती सम्बन्धी चर्चा के विनोद में दारुकालीन दिन यो ही व्यतीत हो जाते थे। उनके व्यत्यय के प्रकार का पता नहीं चलता था। पता नहीं लगता था कि दिन कब समाप्त हो गया। ॥ १५ ॥

[मुख के अधिक चण समाप्त हो जाते हैं किन्तु उनकी समाप्ति के प्रकार का पता नहीं चला। पक्षी में वार्ता का प्रसङ्ग है इसीलिए कवि दिन की चर्चा करता है। क्योंकि रात को वे पक्षी अपने घोंसले में छिप जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी उपलब्धि असम्भव हो जाती है। इसी तरह भवभूति ने भी समयव्यत्यय की चर्चा उत्तररामचरित में की है—अविदितगतयामा रात्रिरेवं स्मरसीत् ॥ १५ ॥]

एकदा प्रस्फुरत्प्रभातारम्भप्रभया प्रमिद्यमानेनयनीलाञ्जनिकाकुसुम-
कान्तिनि तमसि, विलोन्लाक्षाम्भोभिरिय सिख्यमानाया शनैः शची-
दयितदिशि मन्मसुन्मिपत्कमलमुकुलोच्छलच्चटुलालिचक्रवालकलकले
नोन्निद्रितेन तन्द्रासुद्रितोन्मिपच्छ्रुपा चलच्चच्चूकोटिकण्डूयन-
विरामधुतपक्षरोमराजिना राजहंसकदम्बकेनानुगम्यमानो विहाय
विहंगमः सरस्तोरम्, उपसृत्य किनरमधुरगीतध्वनिविनिद्रितमायद्य-
कावसाने राजानम्, इदमयदीत् ॥

एकदेति ॥ नीलाञ्जनिका सापिच्छः ॥

एक दिन प्रातः कालीन किरणें छिटक रही थीं। सापिच्छ पुष्प सदृश कान्ति बाला अन्धकार समाप्त हो रहा था। गले हुए लाह जैसे मानो इन्द्र की (पूर्व) दिशा सीधी जा रही थी। सिलते हुए कमलों की कलियों में से उछल कर निकलने वाले चञ्चल भ्रमर समूह की गुञ्जार ध्वनि से जया हुआ जभाई के कारण बन्द आँखों को सौलता हुआ, चञ्चल चोच के अग्रभाग से शरीर को खुजला लेने के बाद पक्ष के रोमों को कम्पित कर, राजहंस वर्ग के आगे आगे चल कर, सरोवर तट की छोड़ कर, विप्ररो को मोठी गीत ध्वनि ॥ उचित समय पर जगे हुए राजा के पास जा कर बोला—

‘देव, विज्ञापयामो देवस्य दशनम् अनल्लेप्यं चन्दनम्, अस्पशं
कपूरपासुपटलोद्धूलनम्, अपानव्यममृतम्। अनास्थाद्यं रसायनम्,
अलेह्य मधु। कुतः क्लितेनदनुभवतामस्माकमपि वर्षसहस्रेणापि परि-
तोषः। किं तु तिरयति स्वातन्त्र्यं प्राणिना परपरिग्रहो दुस्त्यजाश्च जल-
जन्मोऽपि जन्मभूमयो भवन्ति। अद्यगमिष्यति च विश्वध्वमेतत्सर्वमपि

देवो यादृशा येन च जन्मान्तराराधनोपरोधेन प्रेषिता वयम् । अनवसरः
स्वल्पयमस्य कथाप्रक्रमस्य । तथादिशतु देवोऽस्मान्नामनाय । न च
प्रस्तुतानुचरालापेषु वयं विस्मरणीय । किमन्यज्जन्म च जीवितं च
तदेव दृष्टार्यं मन्यामहे, यत्र प्रसङ्गेन भवादृशा अनुस्मृतिं कुर्वन्ति ।
तदेव प्रस्थानप्रार्थनाप्रणामः' इत्युक्तवन्नमिममवनिपालः कथमपि
विसर्जयामास ॥

इति भास्वो मनुष्याणाम्, अस्माकमपि पश्चिमासीयानामपीपशिष्टाचार्य ।
विरयनि निरस्करोनि ॥

श्रीमन्, मैं आप का दर्शन चाहता हूँ जो एक तरह का न सैरने योग्य
बाग़ान है, अस्तुत्य कर्पूर धुनि की राशि में स्नान है । न बखने लायक
पोष्टिकपेय है । न पीने लायक जल है । न चाटने लायक मधु है' यदि हम
इसका सहज वयो तक भी अनुभव करने रहें तो सन्तोष कहा हो सकता
है । किन्तु बिनाह प्रापियों की स्वतन्त्रता छीन लेता है । जल में रहने वाले
लोको की भी जन्मभूमि दुस्तयज होती है । जैसे और जिस जन्मान्तरीय
पुण्य के कारण हमलोको को आपने भेजा यह सब सुत्पिर हो कर आप स्वयं
समतेगे । इन सब कथानों को कहने का अवसर नहीं है । अच्छा, अब जाना
है, हम लोको को जाने के लिए । दृष्टो की प्रासङ्गिक कथा में हमें भुलेंगे
नहीं । वही जीवन और जन्म को हम द्वाध्य मानते हैं जिसे प्रसङ्गतः आप
जैसे लोग याद करते हैं । अच्छा तो, यह बजते समय का मेरा प्रार्थना-द्योतक
प्रणाम है ।" इस तरह कहते हुए उस इस को राजा ने किसी किसी तरह
जाने की अनुमति दी ॥

गते च तस्मिन्नाविम्भरणीयोपकारे कादम्यरुदन्वकेभ्वरे, भवण-
प्रणालिकया प्रविश्य मानसं सरस्तरलयन्त्यां विदर्भराजहंससुतायां,
प्रहरति प्रत्यङ्गमनङ्गधानुष्के, समीपवनविकासिकुन्दमकरन्दास्वाद्मद-
भेदुरगिरां गच्छति श्रवणपथमतिमधुरे मधुलिहां प्रकारे, आकर्णपूरी-
कृतकार्मुकगुणे रणरणकारम्मिणि तत्रावसरे ॥

गते चेति ॥ तस्मिन्हंसवृन्दनेतरि । श्रवणमाकर्णनमेव प्रणाली जलमार्गस्तया ।
कृत्वा मानसं चेत एव सरस्तरहागम् । अथ च मानसाख्य देवतराग कर्मतापघ्नम् ।
विदर्भराज एव हंसतरस्य पुन्यां तरलयनयां सप्याम् । तथा प्रवगीकृतधनुगुणे
वनङ्गधनुषे । तथा मधुलिहां मधुरगिरां शकारे कर्जे गच्छति औसुक्यकारिणि
दावमरे सति । 'हंसो विहंगमेदे स्याच्चिह्नमनृपतावपि' ॥

अविस्मरणीय उपकारी उस हंस वर्ग के चले जाने पर श्रवण-नालिका
द्वारा मन सरोवर में प्रवेश कर विदर्भराज इस की पुत्री विधुष्य करने

लगी । प्रत्येक अङ्ग में कामदेव अपना धनुष मारने लगा । समीप के वन में खिले हुए कुन्द पुष्प के पराम का आस्वाद लेकर मद के कारण गम्भीर आवाज वाले भ्रमरो की अत्यन्त मधुर ध्वनि कानों में पहुँच रही थी । कामदेव ने अपने धनुष को कानों तक चढ़ा रक्खा था । अतः वह अवसर बड़ा ही उत्कण्ठाकारी था ।

आविर्भूतविषादकन्दमसमव्यामोहमीलन्मन-

श्चिन्तोत्तानितनिमेषनयनं निश्वासदग्धाधरम् ।

जातं स्थानकमुत्सुकस्य भृपतेस्तत्तस्य यस्मिन्नभूत्

प्रेयान्पञ्चमराग एव रिपवः शेषास्तु सर्वे रसाः ॥ १६ ॥

आविरिति ॥ उत्कण्ठितस्य भृपतेस्तत्स्थानकमवस्थान्तर जातम् । यत्र (स्थानके) पञ्चमे पञ्चमाक्षये रागविशेषे रागो रसवत्ता ॥ एव प्रिय । शेषास्तु रसा विषयानु रागा रिपवः ॥ १६ ॥

राजा की ऐसी अवस्था हो गयी थी जिसमें विषाद का अङ्कुर निकल आया था । विषम मोह ने मन को व्यथित कर लिया था । चिन्ता के कारण आँखें निरन्तर पलकशून्य बनी रहती थी । गरम हवा का के कारण ओछ सुख गये थे । उस समय उसे केवल कोकिल का स्वर अच्छा लगता था, शेष सभी रस शत्रु जैसे प्रतीत होते थे ॥ १६ ॥

ततश्च वृद्धिकदंशदुःसहव्यथामवस्थामनुभवन्निव, कण्टकैश्चरण-
मर्मणि विष्यमान इव, मुहुर्मुहुर्मुहुर्पुञ्जराजीवाङ्गानि धारयन्नुमग्रीष्मा-
निलोहोत्तरालिक्रियमानो, मनागपि न कापि शर्म लेभे ॥

ततश्चेति ॥ तापातिरेकात्प्रतिषण्ण स्रग्मात्रशुक्लान्मुहुर् पुञ्जो येषां तानि मुहुर्पुञ्जानि, तमाभूतानि राजीवानि येध्वन्नेषु तानि । मुहुर्स्तुपवद्धि । पट्टिश्च प्रकाश — 'मुहुर्स्तुपवद्धौ स्यान्मन्मथे रविवाजिनि' ॥

इसके बाद बिच्छू के डक मारने की तरह असह्य पीड़ा की अवस्था का अनुभव करता हुआ, काटे से चरण के मध्य भाग में बिधे हुए की तरह, बार बार निर्भ्रम अगारों की राशि में अङ्ग कमल को रखता हुआ कहीं भी थोड़ा भी आराम नहीं पा रहा था ।

तथापि—

इच्योतच्चन्द्रमणिप्रणालिशिशिराः सौगन्ध्यद्वयाम्बरै-

र्निर्गच्छन्नवधूपधूमपटलैः संभिन्नवातायनाः ।

सोघोत्सङ्गभुयो विकीर्णकुसुमाः पूर्णेन्दुरश्मिधिया

रम्यायां निशि नो हरन्ति हृदयं हृद्यं किमुद्वेगिनाम् ॥ १७ ॥

स्वोदितेति ॥ चरच्चन्द्रकान्तप्रणालशीताः । सुगन्धितनमोभिर्घुपधूमैर्मिथ-
गवाक्षाङ्गोर्गुण्या । आसद्भूमयः परिपूर्णचन्द्रेण रमणीयायामपि रात्रौ चेतो
हरन्ति उद्वेगापेक्षया । राज्ञ हृदि शेषः । युक्तचेतत् । दुःखितानां किं हृद्यम् ।
न हिमर्पति मात्रः ॥ १३ ॥

जो चन्द्रकान्तमणि के चूते हुए वज्रप्रवाह में शीतल हो गयी है, सुन्दर
गन्ध से आकाशमण्डल को घेरते हुए नवीन धूम में निकलने हुए धूम मण्डल
में बिचक गवाक्ष भर गये हैं और जहाँ पूरा बिखरे हुए हैं, वह भन्म भवन
की मूर्ति पूर्ण चन्द्र की कान्ति से रमणीय रात्रि के समय उनके हृदय का हृण
नहीं करती क्योंकि उद्वेगपूर्ण आदमियों के लिय कोई भी चीज हृद्य
नहीं होती ॥ १३ ॥

अपि च—

हृद्योद्यानसरस्तरङ्गशिखरप्रेङ्खोलनायासिताः
समोगध्रमस्त्रिभङ्गिन्नरवधूस्वेदोद्विन्दुच्छिदः ।
सायं सान्द्रविनिद्रैरुषवनाम्यान्दोलयन्तः शनै
रङ्गेऽङ्गारसनाः पतन्ति पवनाः प्रालेयशीता अपि ॥ १८ ॥

हृद्योद्यानेति ॥ रम्यतटागोमिनरत्नेन खेदिता । तथा किन्नरीस्वेदुज्ज्वलविन्दु-
नुपः । वनानि अमरयुक्तः । शनैरङ्गे लग्नान्ते हिमममा अपि वायवोऽङ्गारा इव
पतन्ति ॥ १८ ॥

रमणीय उपवन सरोवर की लहरियों के अग्रभाग में टकराने के कारण
पकी हुआ, सम्मोग के परिश्रम से पकी हुई किन्नर रमणियों के पसीनों की
ईदो की समाप्त करने वाला, बने तथा लिते हुए कमल-बनों को धीरे-धीरे
कम्पित करना हुआ सायकालीन, बर्फ की तरह ठंडा पवन भी उसके अङ्गो
में अङ्गार की तरह लपटा है ॥ १८ ॥

तदाप्रभृति चाम्य प्रायः प्रीतिरभूद्वाक्षिणात्पञ्चनेत्येव, पुलकमकरो-
न्नामापि विदर्भदेशस्थ, श्रुतापि श्रवणयोः सुधर्मजीजनदक्षिणा दिक् ॥

उसी समय में इसका स्नेह दक्षिण के लोगों में ही रुद्रित हो गया ।
विदर्भ देश का नाम भी रोमाञ्च उत्पन्न कर देता था । कानों तक पहुँची हुई
दक्षिण दिशा सुख उत्पन्न कर देती थी ।

किं बहुना—

लिप्तेवामृतपट्टेन स्पृष्टेवानन्दकन्दलैः ।

आर्त्ताद्दिग्दक्षिणा तस्य कर्णयोर्मनसो दृशोः ॥ १९ ॥

दक्षिण दिशा उसके कान, मन तथा नेत्र में अमृत पट्ट से लिपी हुई और
आनन्द के बहुर से स्पृष्ट ही लगती थी ।

[दक्षिण दिशा का नाम उसके सम्पूर्ण अङ्गों में तृप्ति का अभिव्यञ्जन करता था] ॥ १९ ॥

दमयन्त्यपि हंसदर्शनदिवसादारम्य भ्रमद्भृङ्गकुलकलकलांतादित-
पर्यन्तेषु, प्रत्यग्रोत्तूनपुष्पपल्लवास्तरणेषु, विचलद्विनोदविहंगेषु विह-
रति नासन्नोद्यानलतामण्डपेषु, न च विरुचकुवलयकह्वारकुशेशयसार-
धारिणि रणञ्चटुलचञ्चरीरुचक्रवारुचके क्रीडति क्रीडामरमि न च
स्पृशति पाणिनापि माणिभ्यमात्रामण्डनानि, न च रचयति रचिरा-
लकयल्लरोमद्भ्रान्तरालेष्मिपत्कुसुमविम्यासान्, न च हृदिदुच्चहंस-
तूलिकातरपेऽपि कोमलरूपोलावष्टम्भभाजि निद्रासुप्तमनुभवति, केवल-
मधिपाण्डुगण्डस्थलस्थापितपाणिपल्लवा प्रेषयन्ती प्रतिक्षणमुत्तर-
स्यां दिशि दृशं तद्देशागताङ्गगने पक्षिणोऽपि सम्पृहं पश्यन्ति, तथ-
त्यानघ्वगानपि घन्धुबुद्धजालापयन्ती, तन्मण्डलगताय मरुतेऽप्यपनी-
तोत्तरीयांशुका हृदयमर्पयन्ती दिनं दिनमनङ्गेनाभ्यभूयत ॥

दमयन्ती भी हंस के दर्शन के दिन से पास के ही उपवन वाले लता कुञ्ज में
घूम रही थी, जहाँ का सम्पूर्ण भाग उठने हुए भ्रमर बर्ग की कल-कल ध्वनि से
गूँज उठा था । अभी अभी तोड़े गये पुष्पपल्लवों का विस्तार बनाया गया था ।
विनोद के लिये रखे गये पत्ती घूम रहे थे । खिले हुए नील, लाल तथा शुभ्र कमलों
के कारण सरोवरजल महत्त्वपूर्ण बन गया था । बचल भ्रमरो और चक्रवाको
का समूह वहाँ घूम रहा था । वहाँ भी वह नहीं खेल सकती थी । हाथों में
अलङ्कारों को पहने हुए थी किन्तु बलय (नामक) भूषण को छूनी नहीं थी ।
दि० । हाथ ही उसका भूषण था अतः अलङ्कारों को नहीं छूनी थी । अथवा
उस समय हाथ ही अलङ्कार और अलङ्कार्य दोनों का कार्य कर रहे थे ।
मनोहर केपी की वेणी की वज्रता के बीच खिलन हुए पूर्यों को नहीं लगाती ।
हंस की तरह शुभ्र, बई की नहीं पर अपने कोमल कपोल भाग को रख कर
निद्रा-भुक्त का अनुभव नहीं कर पाती । केवल अपने पाणि पल्लव पर (बिन्ता
के कारण) पीले कपोल को रख कर सदा नेत्रकान्ति की उत्तर दिशा की
ओर की हुई, आकाश में उस दिशा से आये हुए पक्षियों को भी उत्सुकता से
देखती हुई, उस दिशा के पक्षियों को भी बन्धु समझ कर बातें करती हुई, उस
दिशा से आयी हुई हवा के लिये भी ऊपर के वस्त्र को हटा कर हृदय अर्पित
करती हुई दिन प्रति दिन काम से पराजित हो रही थी ।

तथाहि—

लास्यं पांसुकणायते नयनयोः, शल्यं श्रुतेर्वल्लकी,
नाराचाः कुचयोः सचन्दनरसाः कर्पूरधारिरुच्छटाः ।

तस्याः काप्यरविन्दसुन्दरदशः सा नाम जज्ञे दशा
प्राणप्राणनिबन्धनं प्रियकथा यस्यामभूत्केवलम् ॥ २० ॥

नृत्य उषकी आँखों में धृति रज की तरह लगता था । बीज का स्वर
कानों में बाटे की तरह प्रतीत होता था । चन्दन-रस से युक्त कर्पूरजल की
धारा उसके स्तना पर बाप की तरह लगती थी । कमल सद्भा सुन्दर नेत्रवाली
उस दमदन्ती की कोई अबूर्व ही दशा हो गयी थी । उस समय उसके प्राणों
की रक्षा के लिये प्रिय की कथा ही उपयुक्त थी ॥ २० ॥

एषमनयोरन्योन्यप्रेषितप्रच्छन्नद्रुतोक्तिवर्धितानुरागयोः चलन्त्य-
ज्ञानि न मनोरथाः परिवर्तते चक्षुर्न हृदयम्, कृशतामेत्यङ्गयष्टिनो-
त्कण्ठा, मन्दतां यात्युत्साहो नाभिलाषः, स्फारीमयति निःसहता न
निद्रा, वर्धते चिन्ता न रतिः, शुष्यत्यधरपल्लवो नाग्रहरसः ॥

परनिद्रि ॥ तां दिशं प्रति चलन्त्यभिमुखीनय निवर्तन्ते । एवं चक्षुरपि ॥

इस तरह एक दूसरे के भेने हुए गुप्त हृत् की उक्ति से बड़े हुए अनुराग
वाले इन दोनों के अङ्ग ठो बन्धित हुए किन्तु मनोरथ नहीं । आँखें इधर उधर
चली किन्तु हृदय नहीं । अङ्गलतिबा में दुर्बलता आयी किन्तु उत्कण्ठा में नहीं ।
उत्साह यिषिणा हुआ किन्तु अभिलाषा नहीं । चिन्ता बड़ी किन्तु रति नहीं ।
असहनीयता स्पष्ट थी किन्तु निद्रा नहीं । अधरपल्लव सूखा किन्तु एक दूसरे की
प्राप्ति के सम्बन्ध में आग्रह रस नहीं सूखा ।

किं यहुना—

कर्पूराम्बुनियेकमाजि सरसैरम्भोजिनीनां दलै-
रास्तीर्णैऽपि विवर्त्तमानवपुयोः सस्तस्रजि सस्नरे ।
मन्द्रोन्मेषदशो किमन्यबभूवत्सा'काप्यवस्था तयो-
र्यस्यां चन्दनचन्द्रचम्पकदलश्रेण्यावि वदीयते ॥ २१ ॥

अधिक क्या—

जो कर्पूर के जल से सींचा गया है, सरस कमलिन्री के पत्ते बिछे हुए हैं,
मानार्थे बिछरी हुई हैं ऐसे विस्तरे पर भी नखटें बदलने हुए निर्निमेष दृष्टि
वाले उन दोनों की दूसरी ही दशा हो गयी है । चन्दन, चन्द्रमा और चम्पे की
रज पंक्ति आदि पदार्थ बाव की तरह लग रहे हैं ॥ २१ ॥

यासीच्च तयो कृतान्योन्यगुणप्रदनालापजपयोः पुनरुक्तावर्त्तित-
नामधेयस्वाध्याययोः संकल्पसमागमावद्धध्यानयोः स्मरानले स्वं
हृदयं जुहोतस्तप्यमानयोरङ्गीकृतमौनश्रतयोरपि वियोग एव, न
योगः ॥

भासोन्वेति ॥ कृतोऽन्योन्यगुणप्ररन्तालाप एव जपो ज्ञाप्य यथाभ्याम् । पुनरा-
वर्तितं नामैव स्वाध्यायो ययोः । सङ्क्षेपे चित्तकर्मणि च समागमस्तत्राद्यद्वं ध्यानं
यथाभ्याम् । कामाग्नौ स्वचेतो होमयतोः । तप्यमानयो । मौनिनोरप्यनयोर्वियोगो
विरह एवासीत् । न योगः । योगः स्वयन्धोऽध्यात्मविषयश्च । अन्यस्य जपं
स्वाध्यायं ध्यानं होमं तपो मौनं व्रतं च कुर्वतो योगलाभः स्यात् । तप्यमानेति
संतापपक्षे कर्मकर्तारि, तप पक्षे तु कर्तारि, तपे कर्मविषयत्वात् ॥

एक दूसरे के गुण विषयक प्रश्न सम्बन्धी चर्चा रूप जप में लगे हुए हैं ।
बार-बार का नामग्रहण ही उनका स्वाध्याय बन गया है । चित्त में जो मिलन-
विषयक धारणा बन गयी है उसी में ध्यान को केन्द्रित कर लिये हैं । काम
(यज्ञ) की आग में अपने-अपने हृदय का हवन करते हुए मौनव्रत धारण कर
तपस्या में लगे हैं । यह दशा उन दोनों के लिये वियोग (विशिष्ट ङग की योग-
साधना) की है । योग (मिलन) की नहीं ।

[इतनी तपस्या करने के बाद भी विरह की ही मात्रा अधिक है । मिलन
के लिये कोई अनुकूल सामग्री तैयार नहीं है ।]

कदाचित् नरुणजननयनकुरङ्गागुरामनङ्गगजेन्द्रमदप्रवाहदकाम-
पहसितसुरासुरसुन्दरीरूपधियं शृङ्गाररसराजधानीममलोक्य यौव-
नावस्थां दमयन्त्या 'कोऽस्याः किलानुरूप पतिर्मेवेत्' इति, चिरं
चिन्ताकुलो विदमेश्वरः स्वयं स्वयंवरधर्मप्रारम्भाय समं मग्निभि-
र्मन्त्रनिधायं धकार ॥

किसी समय युवक जनों के नेत्रमृग को बाध लेने वाली रस्सी, कामगजेन्द्र
के मद-प्रवाह की गडगडाहट, देव और दानव रमणियों के सौन्दर्य को नीचा
दिखा देने वाली, शृङ्गार रस की राजधानी दमयन्ती की यौवनावस्था को
देखकर, "कौन इसका अनुकूल पति होगा" इस विषय की चिन्ता में बहुत देर
तथा व्याकुल रहकर स्वयं ही विदर्भ राजमन्त्रियों के साथ स्वयंवर धर्म को
प्रारम्भ करने का सिद्धान्त स्थिर किये ॥

म चिराच्च प्राच्यप्रतीच्योदीच्यदाक्षिणात्यनरपतिनिमन्त्रणे
संप्राभृतान्प्रगल्भप्रायान्प्रधानप्रेष्यान्प्रेषयामास ॥

चीघ्न हो पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाओं के राजाओं को निमन्त्रण
देने के लिये झपटारों के साथ पूर्ण इड एड मुख्य हूतों को भेजा ॥

प्रस्थितं कंचिदुदीच्यनरपतिनिमन्त्रणाय प्रबुद्धबृद्धप्राह्मणमात-
सस्त्रीमुपेन दमयन्ती दिल्शार्थमिदमवादीत् ॥

उत्तर के राजाओं को निमन्त्रण देने जाने के लिये तत्पर किसी विद्वान् बृद्ध
प्राह्मण से अपनी विश्वासपात्र सखी द्वारा श्लेषभरी भाषा में दमयन्ती बोली—

‘भूपालामन्त्रणे तात तथा संचार्यतां यथा ।

नलोप्यागमबुद्धिः स्यात्प्रार्थ्यसे किमत परम्’ ॥ २२ ॥

भूदेति ॥ तातेति संबोधने । नृपनिमन्त्रणे तथा संचार्यतां यथा आगमावतति-
शास्त्रप्रतीतिर्लोप्या न न्यादिनि बाह्यार्थः । इष्टार्थस्तु नटनामानि नृपो यथागमन-
बुद्धिर्भवेदिति ॥ २२ ॥

हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करने में ऐसा कीजियेगा कि जागमबुद्धि
(शास्त्रीय पद्धति) न लोप्य (दुष्ट या निरम्बित न) हो । यही प्रार्थना है ।

द्वितीय पक्ष—हे तात, राजाओं को निमन्त्रित करते समय ऐसी पद्धति
अपनाइयेगा कि नल भी जाने की धारणा न बना लें । यही निवेदन है । इसमें
अधिक क्या कहें ॥ २२ ॥

मोऽप्यवगतश्चोकार्यस्तथाविधमेव प्रत्युत्तरमदात् ॥

‘केनापि व्यग्रहारेण कयापि प्रौढलीलया ।

करिष्याम्यागमस्यार्थे रमसेन नलद्वन्द्वम् ॥ २३ ॥

केनेति ॥ आगमस्य शास्त्रस्य । अर्थे लहृवं न करिष्यामीनि बाह्यार्थः । इष्टार्थस्तु
आगमनस्यार्थे रमसेनौत्सुक्येन धनं निविडं नलाख्यं मृगं करिष्यामि आनेप्यात्म-
वेत्यर्थः ॥ २३ ॥

वह भी श्लोक का अर्थ समझकर बैसा ही उत्तर दिया—

किसी भी विधेय क्या तथा किसी भी विधेय मुक्ति में ऐसा बरन करूँगा
कि आगम (शास्त्रीय मार्ग) का लोप न हो ।

इम्विउ पक्ष—किसी भी मुक्ति सया किसी भी प्रौढ क्या से नल को चीन
माने के लिये बड़ा घना प्रयास करूँगा ॥ २३ ॥

तदामुष्मनि सुखमास्ताम्’ इत्यभिधाय गतवान् ॥

अथ नातिचिरेपागतस्तथा रहः समाहूय स ब्राह्मणः सोमशर्मा
नर्मालापलीलया दमयन्त्या यमाये ॥

‘आमुष्मति, आप सुखपूर्वक रहें, । यह कहकर चला गया ।

दिना अक्कि देर के लौटे हुए सोमशर्मा नामक ब्राह्मण को बुलाकर
दमपन्ती सोमल शब्दों में बोली—

‘आहृतोर्दाच्यमूपेन तातादेशविधायिना ।

नालीकापि त्वया वार्ता विद्वन्नायेदिना मम’ ॥ २४ ॥

आहूतेति ॥ आकारितोत्तरनृपेण त्वया विद्वन्नालीकापि वार्ता न कथितेति
बाह्योर्थः । आन्तरस्तु नलख्येन नाली वार्ता सा अपि त्वया नाम्यथायि ॥ २४ ॥

विद्वन्, पिता जी की आज्ञा पूर्ण करने वाले आपने उत्तर के राजाओं को निमन्त्रित किया, किन्तु इस सम्बन्ध में झूठी भी बात मुझ से नहीं बतायी ॥ २४ ॥

[केवल 'नालीका' शब्द श्लिष्ट है । अर्थात् उत्तर के राजाओं को आपने निमन्त्रित किया किन्तु नालीक (नल सम्बन्धी कोई समाचार) नहीं बताये ॥ २४ ॥]

सोऽपि 'यच्च कथयामि श्लेषोक्तिकुशले, श्रूयताम्' इत्यभिधाय विद्वत्सन्नाख्यातुमारब्धवान् ॥

उसने भी, "श्लिष्ट बातों को कहने में चतुर दमयन्ती, लो, अभी कहता हूँ ।" यह कह कर हँसता हुआ कथा कहना प्रारम्भ किया—

इतो निर्गत्य मया मण्डलेश्वरामन्त्रणक्रमेण परिभ्रमताऽभंकपानेरु-
कूटकोटिस्थपुटितकटकस्थ निपघनाम्नो महीध्रस्य दक्षिणारण्यस्थ-
लीपु मृगया सक्तः ॥

यहाँ से चलकर विभिन्न मण्डलाधिपतियों को निमन्त्रित कर परिभ्रमण करते हुए, अनेक कोटियों में फैले हुए निपघ नामक पर्वत के दक्षिण वाले जंगल की भूमि पर शिकार खेलने में लगे हुए—

माधन्मांसलतुङ्गपुंगवककुत्कूटाग्रतांसस्थलः

कालिन्दीजलकान्तिकुन्तलशिराः पूर्णेन्दुबिम्बाननः ।

एक कोऽपि मनोहर पथि युवा दृष्टः स यस्मिन्सकृद्-

दृष्टे मष्टनिमेषया मम दृशा लब्धं फलं जन्मनः ॥ २५ ॥

मस्त, पुष्ट, उच्च तथा उत्तम कोटि के पर्वत शृङ्ग की तरह उन्नत कंधे वाले, यमुना जल की नीली कान्ति की तरह केशों वाले, पूर्णिमा के चन्द्र जैसे मुल वाले किसी एक मनोहर युवक को रास्ते में निनिमेष दृष्टि में देखकर मैंने जन्म का फल प्राप्त कर लिया ॥ २५ ॥

तेनापि 'दाक्षिणात्योऽयम्' इति निश्चित्य साभिलाषमाभावितोऽ-
स्मि ॥ मयापि कृतोचितालापेनोत्तम् ॥

उसने भी, "यह दक्षिण देश का बादमी है ।" यह समझ कर बड़ी दिलचस्पी से मुझसे बातें कीं । मैंने भी उसके उचित ढंग से बात कर लेने के बाद कहा—

'यथेयमाकृतिलोकलोचनानन्ददायिनी ।

तच्च भद्र तथा सत्यं सत्यागोऽसि नलोमवान्' ॥ २६ ॥

यपेदमिति ॥ सन् शोभनस्यागो यस्य । तथा न त्वं लोभवान् । भसीर्यभ्ययं युष्मदर्थे । पदे सायागस्तवम् । तथा नलास्यो भवान् इति पृथग्वाक्यद्वयम् । एक-वाक्यतायां ॥ भवानमीनि मध्यमपुरुषो दुर्लभ ॥ २६ ॥

श्रीमन्, लोगो के नेत्रों को आनन्द देने वाली जैसी आपकी यह आहृति है उसमें यह ज्ञात होता है कि आप लोभवान् (लोभी) नहीं हैं और सत्पाग (सुन्दर त्याग करने वाले) हैं ।

[सत्पाग शब्द को कर्ता बनाकर त्व का आशेष कर अस्ति क्रिया का उप-पादन किया जाएगा । अन्यथा भवान् का अस्ति क्रिया के साथ अन्वय उपपन्न नहीं होगा । व्यौक्तिक सौन्दर्य समन्वित आप की आहृति से यह स्पष्ट है कि “नलो भवान्” आप नल हैं । लोभवान् न ऐसा अन्वय इसश्चिन्ने क्रिया जाता है कि अपरिषमाधस्या में नाम का प्रकथन अन्वाभाविक न हो जाय ॥ २६ ॥

प्रथमुक्तं सोऽपि मनाङ्मुग्धस्मितमेधोत्तरं कल्पितवान् ॥

अथ प्रथमययौविमूषिताङ्गन्तुल्लतुरंगमारुहो गाढप्रयितपरिकर-
करणे कोदण्डमाकलयंस्तद्वितीयो युवा तमेव देशमागतवान् ॥

ऐसा कहने पर वह भी मधुर मुत्कान के साथ उत्तर सोचने लगा ।

पहली अवस्था (यौवन) से अलङ्कृत, एक ढँचे अरव पर आरुह, कमर में पेटी बाँधा हुआ, हाथ में धनुष लिया हुआ, एक दूसरा युवक उसी स्थान पर आया ।

आगत्य च बालनालनलतालानि शिलोच्चयस्थलीप्रदेशे काञ्चित्का-
ञ्चनकुम्भकान्तिकुचकण्डलुटिनकुसुममालिकामवलोकयन्निद्रमयादीत् ॥

आकर नवीन एवं द्यामल मल पास से मुशोभित पर्वत के उच्चतर प्रदेश पर किसी स्वर्णिम कुम्भ कान्ति वाले स्तनों एवं गले में पुष्पमाला धारण की हुई नायिका को देखता हुआ बोला—

‘युवराज, पद्य—

नद्यास्तीरे विदर्माया कापि गोपालवालिका ।

गाः समुच्चारयत्येषा क्षेत्रीकृत्य नलं वरम्’ ॥ २७ ॥

नादा इति ॥ विदिष्टदर्माया नद्यास्तीरे । काप्यनिर्दिष्टवामा । गोपी । वरं श्रेष्ठ नल (वं) लृग्विद्योगम् । क्षेत्रीकृत्य । गा धेनू । समुत् सहर्षा । चारयति । श्लेषवर्णव्या तु विदर्माभिधानाया नद्यास्तीरे, कापि । महनीयमहिमा, गोपालस्य भूपत्य, बालिका मुग्धा, नल राजान, वरं वरयितारं क्षेत्रीकृत्याग्रयाकृत्य, तिरः समुच्चारयति । वर ईप्सापाथ, वर्तत इति वर । क्षेत्रं सद्भूमि ॥ २७ ॥

युवराज, देखो, विदर्भ (अधिक के कुशों से युक्त) नदी के तट पर यह कोई

गोपालपुत्री (ग्वाले की लड़की) उत्कृष्ट नल सज्जक घास धाले स्थान को खेत समझ कर गायों को प्रसन्नतापूर्वक चरा रही है ॥ २७ ॥

द्वितीय पक्ष—विदर्भ नामक नदी के तट पर कोई गोपालपुत्री (राजा की लड़की) नल नामक बर को अपनी इच्छा का विषय बनाकर गो (बाणी) का उच्चारण कर रही है ॥ २७ ॥

[विदर्भाया —विशिष्ट दर्भों से युक्त नदी अथवा विदर्भ नाम की नदी । गो —बाणी या गाय । क्षेत्रीरुत्य—मन का विषय बनाकर या गाय के चरने का क्षेत्र ' बनाकर या समझ कर । समुत्—(मुद्रा संहिता) प्रसन्नतापूर्वक । चारयति (चरा रही है) समुच्चारयति—नल विषयक बातों का सम्यक् उच्चारण कर रही है । नल एक घास का नाम है । एक पक्ष में नल शब्द से नल राजा अर्थ है ॥ २७ ॥

एतदाकर्ण्य मयाप्युक्तम्—'महानुभाव, न केवलमियमन्यापि कापि कापि' इति ॥

इत्युक्तवन्तं मामवलोक्य भाषितार्थः स पुनः सस्मितमथोचत् ॥

यह सुन कर मैंने कहा, श्रीमान्, केवल यही नहीं कही कोई दूसरी भी ।

ऐसा कहने पर प्राप्तज्ञिक अर्थों को समझ कर मुस्कुराते हुए उसने कहा—

'इयं च सा च—

अनुभवतु विराय चञ्चलाक्षीरसपरिणामफलानि गोपपुत्री ।

अपसरति महोद्यमेन यस्याः कथमपि संप्रति नैषधेऽनुराग ' ॥२८॥

अनुभवति ॥ गोपालिका क्षीरस्य सपरिणामानि यानि फलानि कैरेयीदधि-
वृत्तप्रसूतीनि तान्यनुभवतु विराय । चञ्चला लोला गोचरणवशात् । यस्याः
संप्रत्येव धेनुरागो महोद्यमेन हेतुना । कथमपि केवापि प्रकारेण न निवर्तते । श्लेपे
तु गोपपुत्री भूपपुत्री दमयन्तीलक्षणा चञ्चलाक्षी लोलनेत्रा श्रद्धारादिरसपरिपाक-
फलान्युपभुङ्क्षाम् । यस्याः संप्रति नैषधे नले महोद्यमेऽनुराग प्रेमवन्धः ।
कथमपि आपसरति ॥ २८ ॥

यह भी और वह भी—

चञ्चला गोपपुत्री (ग्वाले की लड़की) जिसका इस समय यह धेनुराग (गोविषयक प्रेम) किसी भी तरह कम नहीं होता, क्षीर के सपरिणामफल (दही धी आदि का) चिरकाल तक अनुभव करे ।

द्वितीय पक्ष—चञ्चलाक्षी गोपपुत्री (चञ्चल नेत्रों वाली पृथ्वीवाल की लड़की) जिसका नैषध (नल) से लगा हुआ अनुराग बड़ा यत्न करने पर भी नहीं घटता, शृङ्गार प्रभृति रसों की परिपक्वावस्था का चिर काल तक अनुभव करे ।

[गो के अर्थ पशु और पृथ्वी दोनों हैं । अतः गोप के भी पशुपाल तथा

पृथ्वीपाल दो अर्थ होवे । चंचलाक्षीरसपरिणामफलानि—पशुपालपुत्री पक्ष में चंचला एक पद है और क्षीर-रसपरिणामफलानि दूसरा । पशुपालपुत्री दमयन्ती पक्ष = चंचलाक्षी + रसपरिणामफलानि यह विच्छेद है । अर्थात् चंचल नेत्रों वाली दमयन्ती नरक = जनुराग को प्राप्त कर मृद्धार के इलाक-नीम पक्ष को प्राप्त करें । नैषधेनुराग—एष धेनुराग न अपसरति—इस गोपपुत्री का धेनुराग हट नहीं रहा है । दमयन्ती पक्ष = नैषधेनुराग न अपसरति—नरक में जो इसका अनुराग हो गया है वह हट नहीं रहा है । नहो-दमेन—दमयन्ती पक्ष में महाद्वन्द्व सप्तम्यन्त है और नरक का अन्वय अपसरति क्रिया में है । आते की लट्की क पक्ष में यह पद तृतीया एक वचन है ॥२८॥]

मास्तां तावदम्यत् । अम्यन्त्य, कथय कुन प्रष्टव्याऽसि, किं च कियद्वाद्यापि घर्मातिक्रमितव्यम्' इति ॥

छोड़िये दूसरी बातों को पणिक जी, कहिये, मापकी कहा से पूछा जाम । अभी तक कितना रास्ता तय करने के लिये बारी है ।

अथ कथितस्ववृत्तान्तेन मयापि 'कोऽयमशेषमनुप्यमस्तकमणिः, कश्च भवानपि स्वप्रभाप्राग्भारपराङ्मुखाकृतपुरंदरगुद' इति पर्य-नुयुक्तः स पुनरुक्तवान् ॥

मैंने अपना सब वृत्तान्त कह दिया और उसके पूछा, "समस्त मनुष्यों में श्रेष्ठ ये कौन हैं, और अपनी प्रज्ञाबैभवं से देवेन्द्र गुरु बृहस्पति को भी नीचा दिखाने वाले आप कौन हैं ?" तब उसने कहना शुरू किया—

'अयमसौ सौम्य, समस्तशस्त्रशास्त्रकोषिदो विदारितवैरी वैरसेनि-नैलः । किमन्यद्दहमपि श्रुतशीलो नामास्यैषास्त्राकारी, इत्यभिधाय विभ्रान्तवान् ॥

"सौम्य, सम्पूर्ण यत्नों तथा शस्त्रों के विद्वान्, धनुषदण्ड को विदलित किए हुए ये वीरसेन के पुत्र नरक हैं । अधिक क्या बताऊँ, मैं भी इन्हीं का आनाकारी हूँ । मेरा नाम श्रुतिशील है ।" यह कह कर वह चुप हो गया ।

नलोऽपि कृत्या त्वदाध्यास्तास्ताः प्रकटितप्रेमफण्डलाः कथाः, समर्थ्य च स्वयंवरामन्त्रणमुत्सुकतया तत्कालमेवोड्डीय गन्तु-मीदृमान संभाषितेन स्मितेनालोकितेन च माममृतवर्षेणैवाहादयन्न-निच्छन्तमपि प्रतिग्राह्य च यत्नान्धर्ष्याणि स्वाङ्गाभरणानि धिरादेव व्यसर्जयत् ॥

नरक भी तुम्हारे निमित्त प्रेमाक्षूर व्यक्त करने वाली उन-उन कथाओं को कह कर उत्तुङ्गतापूर्वक स्वयंवर में जाने के लिए विमन्त्रण का समर्पण कर

तत्काल ही मानो उड़कर पहुँच जाना चाह रहा था। सम्भावण से, मुस्कुराहट से और दर्शन से मुझ अमृतवर्षा की तरह आनन्दित करता हुआ, मैं नहीं चाहता था तो भी बलात्कार अपने बहुमूल्य अलङ्कारों को देकर कुछ देर के याद छुट्टी दी।

स्वयं च मृगयाव्यसनितया मृगयालुभि सह—

धीर रङ्गन्तमारुह्य सार रहसि वाजिनम् ।

हार रम्यं गले विभ्रतम्यैरं रन्तुमगात्पुन ॥ २९ ॥

धीरमिति ॥ धीरमग्रास रङ्गन्त वल्लगन्त, रहसि वेगे सारमुत्कृष्ट वाजिनमश्वमारुह्य कण्ठे हार गुण विभ्राण श्वच्छन्दः क्रीडितु पुनरप्यगात् ॥ २९ ॥

घिनार का अन्वसी होने के कारण स्वयं भी वह शिकारियों के साथ— धैर्यशील, दौड़ में उत्कृष्ट, फड़कते हुए घोड़े पर चढ़ कर गले में सुन्दर हार पहना हुआ, पुनः स्वेच्छया बिहार करने चला गया ॥ २९ ॥

तदायुष्मति, स्थामिस्तुने यथा भया तत्कथाप्रक्षान्तुराग उपलक्षित स्तथा निश्चितमचिराद्यमेप्यति' इत्यभिधाय स ग्राहण स्पृष्ट मगात् ॥

‘चिरञ्जीविनी राजपुत्री जिस तरह उसने मुझ से बातों तथा प्रश्नों में प्रेम प्रदर्शन किया उससे निश्चित है कि वह शीघ्र ही आवेगा।’ यह कह कर वह ग्राहण अपने घर चला गया।

गते च तस्मिन्दमयन्ती ‘इलाध्यः स क काल, धन्य स फतमो वासर, सलक्षणा सा का नाम वेला, यस्यामिदमिन्दुदर्शनेनेय कुमुद-मस्मच्चक्षुस्तदालोकेनेन कमप्यानन्दमनुभविष्यति, इति चिन्तयन्ती काम्यपि दिनानि कयाप्यवस्थया व्यनैपीत् ॥

उसके चले जाने पर दमयन्ती, ‘वह कौन सा स्पृहणीय समय होगा, वह कौन सा धन्य दिन होगा, वह कौन सी शुभ शकुन की वेला होगी, जब वह प्रदर्शन से कुमुद की तरह मेरी आँखों उनके दर्शन से आनन्द का अनुभव करगी।’ इस तरह सोचती हुई कुछ दिनों को किसी किसी तरह व्यतीत किया।

अथ नलोऽप्यामन्त्रितस्तेन ग्राहणेन रणरणकेन च, प्रेरितो मन्त्रिणा मदनेन च, परिवृत सेनयोत्कण्ठया च, तत्कालमेव विदर्भ-मण्डलाभिमुखमुदचलत् ॥

नल भी उस ग्राहण और मनोगत उत्सुकता से आमन्त्रित होकर, मन्त्री और कामदेव द्वारा प्रेरित होकर सेना और उत्कण्ठा से परिवेष्टित होकर शीघ्र ही विदर्भ देश की ओर चत्र दिया ॥

चलिते च चतुरङ्गवलचलनचूर्णिनशिलोच्चयचक्रवाले चक्रि-
चक्रचट्क्रमणचोत्कारयधिरितिकुम्भिविषमवैरिवृन्दवनवैद्युतानले नले,
चलन्तश्चटुलतरचरणप्रहारणितधरणिमण्डलाः कान्तकाञ्चनरचना-
रोचिष्ययश्चकासांचक्रयत्तिवाहोचिताः साश्चर्यमपर्यन्तपर्यायाः
पर्यापितामनुरङ्गाः शृङ्गारिताश्चलच्चारवानरावधूलनालंकृतकपोल-
मितिभागसंलग्नभृङ्गसंगीतमुखरितमुखमण्डलाः कथमप्याधोर-
रणनिरुन्धमानशौर्यविकारान्धुरणाः स्फुरत्कुम्भमिचित्सिन्दूरा दूरापसा-
रितम्यन्दनाः म्यन्दमानामन्दमदर्शमितमेदिनाका कम्पयावमूर्धुर्मुं
भूरिभारभुग्राहपन्नगशि शिथिलघट्टम्भामिमैन्त्रा ॥

उदृष्ट शत्रु वर्ग रूपवन के लिये जल सहच नल की चतुरङ्गिणी सेना के
जाने पर शत्रु समूह चूर्णित हो गए। सर्पमण्डल के चोत्कार से शत्रुओं
बधिर हो उठी। चमकन हुए स्वर्णचक्रों से मुगोभित चक्रवर्ती राजा की
सवारी के लिए उपद्रुक्त, सर्वथा अद्वितीय, सबे हुए घोड़े उद्भासित हो रहे थे।
जगते हुए मुन्दर बैर के कम्पन से गजेन्द्रों के कपोल भाग मण्डित हो गये थे।
बहाँ लगे हुए भ्रमरो के संगीत से उनका मुखमण्डल शब्दामित हो उठा था।
वीरता के कारण उन्नत वे हाथी हस्तिपाशों द्वारा किसी-किसी तरह रोके जा
रहे थे। वे रथों को दूर हटा दिये थे। उनकी चूती हुई मदधारा से पृथ्वी पट्ट-
पुक्त हो गई थी। उनके पर्याप्त भार से संकुचित झड़वाले सर्पों ने अपनी
शिरःकपालों को टेक कर सिद्धि कर दिया था। पृथ्वी कांप उठी थी।

किञ्चिद्गुणः । तत्राद्यसरे—

पूर्वापरपयोराशिसीमासंक्रान्तसैनिके ।

तस्मिन्तस्मिन् भूर्भाराद्वराहवपुषो हरेः ॥ ३० ॥

पूर्वेति ॥ पूर्वापरसामाराधितसाम्राज्यमूचरे तस्मिन्तस्मिन् भूर्भाराद्वराहवपुषो हरेः
तस्मात् । 'अर्धागर्व'—इति सूत्रेण कर्मणि पठ्यते ॥ ३० ॥

अधिक क्या कहें—

उस समय जब पूर्व और पश्चिम समुद्र तक उसके सैनिक फैले तो पृथ्वी
भार के कारण बराह शरीरधारी भगवान् का स्मरण करने लगी ॥ ३० ॥

[बराह अवतार धारण कर पृथ्वी का भार धारण एक बार भगवान्
किये थे। इसीलिये नल की सेना के असह्य भार से व्यथित होकर पृथ्वी पुनः
भगवान् का स्मरण की ॥ ३० ॥]

अपि च—

आसीत्पिण्डितपाण्डुपङ्कजवनं श्वेतातपत्रैः क्वचि-

न्मायूरातपवारणैः क्वचिदमृदुचालनीलोत्पलम् ।

उन्मेघं कचिदूर्ध्वधूलिपटलैस्तस्य प्रयाणेऽभय-
त्प्रोद्वीचि हचिदम्बरं सर इव प्रेक्ष्यताकापटैः ॥ ३१ ॥

आसीदिति ॥ सितच्छट्टैः पिण्डितपुण्डरीकवर्ण, श्रीकरीमि सनीलोत्पल, रेणु-
पटलैरक्षतमेघ, कचिच्चलध्वजाञ्चलैः प्रवृद्धोर्ध्वरङ्ग, तदागमिवाग्न्यरमाकाश तस्य
याणेऽभूत् । प्राप्यदेगे महासरसु मेघा अग्नौ ग्रहीतुमुद्यमन्त इति प्रसिद्धयो
न्मेघस्वसुक्तम् ॥ ३१ ॥

उसकी यात्रा के अवसर पर आकाश में कहीं धुम्र छत्रों से मुकुलित श्वेत
कमलों का वन बन गया था । कहीं मयूरपल से बने हुए छत्रों से ऊपर की ओर
मालदण्ड दिये हुए नीलकमलों का वन बन गया था । ऊपर की ओर उठी
हुई धूलि से उन्नत मेघ बन गये थे । फड़फड़ाते हुए ध्वजवज्रों से लहरियाँ
बन गयी थीं । जल आकाश सरोवर जैसा प्रवीत होता था ॥ ३१ ॥

[राजा के सैनिक प्रयाण के अवसर पर आकाश एक महान् सरोसर
बन गया था । श्वेत छत्रों का समूह धुम्र कमलवन की शोभा सम्पन्न कर रहे
थे । दण्डसहित मयूर पक्ष के छत्र नीलकमलवन की शोभा सम्पन्न कर
रहे थे । उठी हुई धूलि मेघ का दृश्य सम्पादित कर रही थी । ध्वजवज्र
सरोवर-लहरी को दृश्यपूर्ण कर रहे थे । यह जनसामान्य में प्रसिद्धि है कि
मेघ बड़े सरोवरी, झीलों और सागरों में पानी लेने ॥ रिये आते हैं । इसी
प्रसिद्ध के आधार पर कवि ने आकाश को सरोवर बनाकर वहाँ मेघ दिखाने
का प्रयास किया है ॥ ३१ ॥]

जाताश्च जहाजघनस्पृशो, वक्षस्थलीलोलनलम्पटा, ग्रीवाग्रहणा
ग्रहिण्यः, प्रसभं लगन्त्यो घस्नेषु, निक्षपाः क्षिप्य इव, नक्षपदाभि-
घातोघता घुम्यन्त्यश्विषुककपोलाधरचक्षुषि सैनिकानाम्, अति-
प्रसरेण शिरोऽयलग्ना, प्रथला धूलयो वियदाधरणाश्च चक्रुरुच्चैरति-
प्रसङ्गमासन्नयननिहुञ्जेषु ॥

जाताक्षेति ॥ धूलयो निर्लज्जाः क्षिप्य इव । जंघेत्वादीन्युभयत्र समानानि । गत्वा
अश्वादीनां सुरा, पद पादविन्यासस्तेषामभिघातादुत्थिता पक्षे जलक्षतपद्मयो-
न्नाभिघाते उद्यता मोघमा । बलात्सैन्यात्प्रबुद्धा, पक्षे प्रवृद्धधीया । वियदा-
धरणा नभरद्वादिभ्यो विगण्डद्वाद्याश्च । वियन्नम्र । विपूर्वदेण शतरि च
वियदिति । अतिप्रसङ्गमतिव्याप्ति, पक्षे रतिप्रमर्गं मुरतप्रबन्धम् ॥

जघा और जघन को छूती हुई, वक्ष स्थल के मर्दन के लिये लोटप, गलवाही
देने के लिये आग्रह करने वाली, हठात् वज्रों में त्रिपटवी हुई निर्लज्ज स्त्रियों
की तरह घुर के विषात से उठकर पदस्पर्श करने में उद्यत, अधिक प्रसार से
सकेंद धूलिया सैनिकों के शिर में लगती हुई उनके विषुक, कपोल, ओष्ठ तथा

नेत्रों को चूमती हुई, समीप के वरष्यकुञ्जों को आकाश का आवरण बन कर छा ली ॥

[यहाँ धृति और निर्लज्ज स्त्रियों में पूर्ण समानता बतायी गयी है ।]

कूजन्तश्च कोटिशः क्षोदण्डमण्डलाग्रव्यग्रपाणयः, पाणिनीया
इयाधिकरणकर्मकुशलाः समुल्लसन्तो विचेलुर्जलानपटवो लाम्पटवो-
ल्लुण्ठितरिपुपुरः पुरः पदानयः ॥

कूजन्तश्चेति ॥ पदानयो विचेलुः । किं कुर्वन् । कोटिशोऽनेकधा कूजन्तः
शाब्दापमानाः । तथा क्षोदण्डेन धनुषा मण्डलाग्रेण चासिना व्याकुला पाणयो
येषां ते । तथाधिक रङ्गकर्मणि कुशलाः । पाणिनीयपञ्चेऽधिकरणकर्मणी कारके ।
लाम्पटवेनोत्प्लुष्टिता भरिपुरोऽग्निगवो ये । पुरोऽग्रम् ॥

हल्ला करत हुए, बार बार धनुष तथा सजवार पर हाथों को खचलता से
फेरते हुए पाणिनि के अनुयायियों की तरह अधिकरण कर्मकुशल (अधिक + रण
कार्य में निपुण) थे । धृष्टता से नारियों को लूटकर बड़े उल्लास के साथ
पैदल चप्पे बाते सैनिक आगे बढ़े ।

[अधिकरण और कर्म कारक व विचार में जैसे पाणिनी के अनुयायी कुशल
होते हैं वैसे वे सैनिक अधिक+रण+कर्म (कार्य) में कुशल 'निपुण' थे ।]

तत्र च व्यतिकरे—

मन्दं मन्दरमन्दिरेषु दायितानुभिद्रयन्किनरान्-

मेरोमस्तकमन्दरे प्रतिरयानुत्थापयन्नुत्थणः ।

आध्य घातत यात मुञ्चत पुनः पन्थानमेवंपिध-

स्त्रैलोन्यं बधिरीचकार बहलः सैन्यस्य कोलाहलः ॥ ३२ ॥

तब समय—

मन्दराक्षस के भवनों में सीधे हुए किन्नरों को धीरे से जवात हुए, मेघ की
उज्ज्वलतर कन्दराओं में उड़ट प्रतिध्वनि करत हुए, 'बैठो, दोड़ो, छोड़ो फिर
इस रास्ते को ।' सैनिकों का इस तरह का कोलाहल तीनों ओकों की बधिर
बना रहा था ॥ ३२ ॥

पथमसौ क्रीडितानेकपामरान् गिरीन् ग्रामांश्च बहुतरङ्गोपशोभिताः
सरितः सम्यग् व्यूढपत्तरथान् पथः पादपांश्च लङ्घयन्, सल्लसहिताः
पुरीनारीश्च सेवमानः, पच्यमानगोधूमश्यामलाः क्षेत्रमुचो मित्तपल्लीश्च
परिहरन्, विधवाः शत्रुसमीपनिनीरटवीश्चातिक्रामन्, परिघाटीणि
यन्धुकुलानि सर्पसिंघ बहुमानयन्, नाति चिरेण खिरयतुरंगपरिहृत-
विषमशिरःशिखरसहस्रमज्जममरणगन्धर्वसिद्धरुद्धस्कन्धमध्यं
चिन्ध्याचलमनुससार ॥

एवमिति ॥ अमुना प्रकारेणासौ नल इदमिदं कुर्वन्तरणिरथाभयत्वाधिराका-
मम्यं विन्ध्याद्रिमनु लक्ष्मीकृत्य समार । किं कुर्वन् । लहयन् । कान् । गिरीन्द्रान्
ग्रामाश्च । संप्रत्युभयानपि विशिनष्टि । क्रीडिता अनेकषा राजा अमराश्च देवा येषु ।
पक्षे पामरा ग्राम्याः । सरितो बहुमिस्तरैरलकृता । सीमानश्च बहुतरं यथाभव-
त्येव गोपैर्गोपालैः शोभिता । विशेषेणोदानि पत्राणि वाहनानि रथाश्च यै । पक्षे
पत्ररथः पक्षी । सालेन प्राकारेण सहिताः । नार्यं सालसा हिताश्च । अलसशब्दो
भावप्रधानो लक्षणादिबन्धः । पक्षेऽलिर्गोधूमैः सस्यविशेष श्यामला । पक्षी तु
गोधूमैर्धूमो गोधूमः । ततः पच्यमानः परिपाक गच्छन् बहुलीभवन्गोऽसौ गोधूम-
स्तेन श्यामला । न तु पच्यमाना आसी गौश्चेति । टक्प्रसङ्गात् । कृप्यावनी हि
वृथा समभिक फलतीति । तथा च (रघुवरो नवमे सर्गे) कृप्या दहन्नपि खलु
क्षितिमिच्छनेऽहो बीजप्ररोहजननी उवलनः करोति । गौशब्दो भूगर्धो न घेऽर्थोऽ-
नौचित्यात् । विशिष्टे विगमे च । धर्मा अर्ता तद्विशेषश्च । परिवृण्यन्ति परिवारी-
भवन्ति परिवारीणि । अभ्यन्न परि सम्पन्नाद्वारि अल येषु ॥

इस तरह अनेक हाथियों और देवताओं से युक्त गाँवों और पर्वतों में
क्रीडाकर, बहुत तरङ्गों से सुशोभित नदियों तथा अधिकांश गोपों से अलंकृत
पर्वतीय सीमाओं, विशेषरूप से पत्र (अवध) और रथ से युक्त मार्गों तथा
पत्ररथ (पक्षियों) से युक्त पेड़ों को लाधने हुए, साल (चारदीवारी) से युक्त
नगरियों और अलसाई स्त्रियों का सेवन करता हुआ, पकने की स्थितियों में
आये हुए समृद्ध गेहूँ के पीछे कारण श्यामल रंग की क्षेत्रभूमियों और जलती
हुई आग के धूम से श्यामल भीनों के गाँवों को छोड़ता हुआ, धव
(पति) हीन शत्रुपत्नियों तथा विशिष्ट ढग के धव नामक वृक्षों से युक्त जगलों
को लाधता हुआ, चारों तरफ से घेरकर रहने वाले बन्धुजनों को सम्मानित
करता हुआ, चारों तरफ से जल से भरे हुए सरोवरों की प्रशंसा करता हुआ,
शीघ्र ही, भगवान् सूर्य के रथों के पीछे से वञ्चित, हजारों उच्च शिखर रूप
शिखरों को धारण करने वाले, निरन्तर देवों, गन्धर्वों और सिद्धों द्वारा घिरे हुए
मध्यभाग वाले विन्ध्याचल को लक्ष्य कर चला ।

ततश्च—

दिशि दिशि किमिमानि प्रच्यवन्तेऽन्तरिक्षा-

दधिरतमुत देवी मृतधात्री प्रसूते ।

इति शवरवधमिस्त्नर्यमाणान्यवापुः

सपदि विपुलविन्ध्यस्थन्धमध्यं चलानि ॥ ३३ ॥

इसके बाद—

“सभी दिशाओं में आकाश से यह क्या चूर रहा है, अथवा समस्त प्राणियों
को धारण करने वाली देवी पृथ्वी निरन्तर यह सब क्या उत्पन्न कर रही

हैं ?' इस तरह की उद्भावना करती हुई खबर युवतिया विनाल विन्ध्यावल की चोटियों के बीच खीन हो इस सेना को प्राप्त कीं (देखीं) ॥ ३३ ॥

श्रुतशीलस्तु तुङ्गशृङ्गरद्वत्सारङ्गाङ्गनासु नक्षत्रासन्नाकाशावकाश-
मिश्रदंशजालजटिलासु चलच्चित्रचित्ररुकरिकलमरुदम्बरकसंवारशर-
लासु हारिहरिताङ्कुररमणीयासु घनस्थलीषु निक्षिप्तचक्षुषमघलोन्मय
राजानमिदमवादीत् ॥

ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखरों पर मृगवधुए घूम रही थीं। तारों के समीप
रिल आकाश में प्रवेश करते हुए बाँधों के कारण वह भूमि घनीभूत प्रतीत हो
रही थी। चलते हुए मारचर्यजनक रङ्ग-विरङ्ग के हाथियों के बच्चों में विविध
रङ्गों से बिभ्रित हो गयी थी। सुन्दर हरे जङ्गलों के कारण रमणीय थी।
ऐसी उस वनस्थली पर हटि देकर धृतिशील ने रात्रा से कहा ॥

‘देव’—

माघहन्तिरूपोलपालिविगलशानाम्बुसिकद्रुमा
कीडत्कोडकुलार्धचर्वितपतन्मुस्तारसामोदिताः ।
अन्तःसुस्मिन्नपान्यमन्यरमदस्तोलस्ततामण्डपाः
कस्यैता न हपन्ति हन्त हृदय विन्ध्यस्थलीभूमयः ॥ ३४ ॥

माघदिति ॥ मुलगायाः अद्भुतशेषस्य रसेन त्रिषांसेनामोदिताः । अन्तर्मध्ये
सुस्मिता पान्या यासु । तथा मन्यरमरुता अग्निनिलेन लोहन्तज्जलन्तो लता-
मण्डपा यासु । पञ्चाङ्गमधारय ॥ ३४ ॥

देव, क्या ही सुन्दर वह विन्ध्याचल की भूमि है जहाँ मत्तमाले हाथियों के
रूपोलस्यक से बहने हुए मदजल से पेड़ सीव उठे हैं, खेलते हुए मूकरो के
आधे बचाये हुए मुस्ता के रस से जो सुगन्धित हो गयी है, भीतर की मोर
पवित्रजन मने में बैठे हुए हैं, मन्द-मन्द हवा से लतामण्डप डोल रहा है,
किस का मन नहीं हर लेती ॥ ३४ ॥

इतन्ध पश्यतु देवः—

यथा सा विन्ध्यमध्यस्थलविपुलशिलोत्सङ्गरङ्गतरङ्गा
सम्भोगधान्ततीराथयशवरयचक्षुर्मदा नर्मदा च ।
यस्याः सान्द्रद्रुमालीललिततलमिलत्सुन्दरांसनिष्ठैः
सिद्धैः सेव्यन्त एते सृगसृदिनदत्तकन्दलाः कूलकच्छा ॥ ३५ ॥

इधर देखें धीमान्—

विन्ध्याचल के बीच की बड़ी-बड़ी चित्तार्थों की गोद में पिरकती हुई
रुहरियों वाली, तीरभूमि पर स्थित, सम्भोग क्षय से धान्त खबर युवतियों

को आराम देने वाली यह वह नर्मदा नदी है जिसकी घनी मूल-शक्तियों की मधुर छाया से सुन्दरियो से लिपटे हुए सिद्ध लोग मृगों द्वारा रँदि गये अक्षुरों वाले तटप्रदेश का उपभोग कर रहे हैं ॥ ३५ ॥

अपि च । अन्तरेऽप्यस्याः—

मज्जत्कुञ्जरकुम्भमण्डलगलद्धानाम्बुनः सौरमाद्-
भ्राम्यद्भृङ्गकुलावलीः कुचलयश्रेणीः समाविभ्रतः ।
कल्लोलः कलिकालकस्मपमुपः प्रोल्लीललीलाकृतः
स्वःसोपानपरम्परा इव वियद्वीथीमलंकुर्वते ॥ ३६ ॥

मज्जदिति ॥ भृङ्गकुलानां कुचलयान्युपमानम् । विभ्रत इति कल्लोलविशेषं जसन्तम् । 'नाभ्यस्ताद्'-इति शुभभावः ॥ ३६ ॥

स्नान करते हुए हाथियों के कुम्भस्थल से चूते हुए मद्द जल की सुगन्ध के कारण गूँजते हुए भ्रमर वगैरों और कमलश्रेणियों को धारण करने वाली, उत्कृष्ट विलास सम्पन्न, कलिके पापों को नष्ट करने वाली नर्मदा की तरङ्गों स्वर्ग सीढ़ियों (सोपान) की पङ्क्ति की तरह आकाश मार्ग को अलङ्कृत कर रहीं हैं ॥ ३६ ॥

इतथास्यास्तीरे—

अंससंसिजलार्द्रजर्जरजटाजूटैर्मनाङ्गमन्थरा-
स्तिभ्यस्तारघतन्तुनिर्मितकुथत्कौपीनमाश्रच्छदाः ।
शीतोत्कण्टकितास्थिशेषतनयः स्नात्योत्तरन्तः शनै-
रेते पश्य पतन्ति पिच्छिलशिलाजाले जरत्तापसाः ॥ ३७ ॥

असेति ॥ तक्षु जातास्तारवाः । ते च ते तन्तवश्च । पिच्छिलं मसृणं कर्द-
मिलम् ॥ ३७ ॥

देखिये जल से भीगी हुई शिबिल जटायों कन्धे तक लटक रहीं हैं, भार्द्र वल्कल तन्तुओं से निर्मित अत्यन्त पुराना कौपीनमात्र वस्त्र धारण किये हुए हैं, ठंडी के कारण रोगटे खड़े हो गये हैं, शरीर में हड्डी ही अवशिष्ट रह गयी है, देखिये, ऐसे बृद्ध सपस्वी स्नान कर धीरे-धीरे पिच्छिल (फिसलने वाले) शिला समूह पर उतर रहे हैं ॥ ३७ ॥

इतोऽपि—

पश्येताः करिकुम्भसंनिभकुचद्वन्द्वोत्तसद्वीचयः
क्रीडन्त्यब्जविकासमासि पयसि स्वैरं पुलिन्दस्त्रिय ।
उन्मीलन्नवनीलनीरजधिया पद्मान्तरेः नेत्रयो-

१८ १८ 'यासां' इस्तलतादता यपि परिभ्राम्यन्ति भृङ्गाक्षनाः ॥ ३८ ॥

इधर भी—

देखो, हाथियों के कुम्भस्थान सदृश स्तनयुग्म से जब तरङ्ग को सुशोभित करती हुई, कमलों के विकास के कारण इस मनोहर जल में शबर मुवतियाँ खेज रही हैं, जिनके नेत्र भाग के पत्रकों को विकसित हो रहे कमल समझ कर (आयी हुई) अनुर बहुएं हस्तकला से मयायी जाने पर भी चक्कर काट रही हैं ॥ ३८ ॥

[उबर मुवतियाँ स्नान कर रही हैं। उनके उग्रत स्तनों के होके से पानी तरङ्गित हो उठा है। उनके पत्रकों को कमल समझ कर अनुरियाँ उनके सामने भनभना रही हैं। मुवतियाँ अपने हाथों में उन्हें किसी-किसी तरह हटा पायी हैं ॥ ३८ ॥

इतोऽप्यधलोकयतु देवः—

यालोन्मीलत्कुवलययनं विस्तरद्गन्धरुद्ध-

आन्यदृष्टैरनुकृतपयःपूर्णमेघान्वकारम् ।

हर्षात्पदयत्ययमतितरां वीरवारो मयूरो

मुग्धः पादवै भ्रमति च मयाश्चक्रवच्चक्रवाकः ॥ ३९ ॥

वालेति ॥ विस्तरता प्रसरता गन्धेन रुद्धाः। अत एव आगमन्तो मृगारस्तैर-
मुकृताः पयःपूर्णमेघोऽन्धकारश्च देनेति अतविशेषणम् । मेघादि मयूरस्य हर्षः ।
अन्धकाराश्च रात्रिहाङ्गवा चक्रवाकस्य मयम् ॥ ३९ ॥

नदीन, विकसित हो रहे, कमलवन की फैली हुई पंख में बसे हुए और चक्कर काटने हुए अनुरों के प्रतिबिम्ब से सरोवर का जब पूर्ण मेघ की तरह अन्धकारान्ध दीखता है। अतः तटप्रदेश पर घूमने वाले मयूर उसे प्रसन्नता के साथ देख रहे हैं किन्तु भोग-भासा चक्रवाक डरता हुआ उसके पास चक्र की तरह घूम रहा है ॥ ३९ ॥

[अनुरों का प्रतिबिम्ब काले मेघ और रात्रि दोनों तरह की भ्रान्तियों को उत्पन्न कर रहा है। मयूर तो उसे मेघ समझ कर आनन्द मानते हैं किन्तु चक्रवाक उसे रात्रि समझ बैठता है। रात्रि में वह खरनी प्रियतमा से विदुक्त हो जाता है। अतः रात्रि से वह खूब डरता है। इस प्रतिबिम्ब को रात्रि समझ कर दुःख के मारे चक्र जैसा नाच रहा है। वन्दित सामन्ती से जब की अतिशय सौरभसम्पन्नता व्यक्त हो रही है ॥ ३९ ॥]

- इदं च -

कुरुरभरसहंसहंसमालं मुदितमयूरचक्रोरचक्रवाकम् ।

क इह सुखचिरं विलोभ्य प्रवरमते रमते नरो न रोधः ॥ ४० ॥

कुरुरेति ॥ प्रवरा मतिर्यस्य तत्संबोधनम् । इह रोघस्तटं विलोभय को नरो न
रमते स्त्रीद्वयेव सर्वे । कथंभूतम् । कुरुराणा भद्रमतिशय सहते । तथा सह
हंसमालया तथा मुदिता भयूराश्चकोराश्चक्रवाकाश्च यत्र । यतः सप्तु रुचिरम् ॥४०॥

ओ प्रजासम्पन्न महाराज, जहाँ कुरुर भरे हैं, हंसों की षड्विक्त है, प्रसन्न
मयूर और चक्रवाक हैं ऐसे इस रमणीय तट की चिरकाल तक देख कर
किस आदमी का मन यहाँ नहीं लगता ॥ ४० ॥

इतश्च—

यककृतनिन्दं नदं न दम्भात्कृतसवनं सवनं भजन्ते एते ।

निरुपमविभयं भय स्मरन्त प्रशमधना मुनयो नयोपपन्नाः ॥ ४१ ॥

वकेति ॥ प्रशम एव धनं येना ते मुनयो नययुक्ता । अनुपमसामर्थ्यं भवभीश्वरं
स्मरन्ती बर्के कृतशब्दम् । तथा न दम्भात्कृतपटादपि तु धर्मवासनया कृत सवनं
इनाम यत्र तम् । तथा सह वने सवनं धनयुक्तम् । नद अलाधारविशेषम् । एते
भजन्ते ॥ ४१ ॥

इधर—

शान्ति सम्पत्ति को रखने वाले नीतिसम्पन्न ये मुनि इस नदी तट पर
जहाँ कपटपूर्वक स्नान करने वाले बगुले बोल रहे हैं, अनुपम ऐश्वर्य को
धारण करने वाले भव (भगवान्, शंकर) को स्मरण करते हुए आश्चर्य-
पूर्ण यज्ञ कर रहे हैं ॥ ४१ ॥

[बगुले पानी में गोता इसलिये नहीं लगाते कि उन्हें पवित्र होना है ।
उनका उद्देश्य होता है पानी में कपटपूर्ण ढंग से शोध दबाकर मछलियों
को पकड़ना ॥ ४१ ॥]

विधूतपाप्मानः खल्वमी महानुभावाः ॥

तथाहि—

मुहुरधिवसतां सतां मुनीनामपविपदां विपदाङ्कपङ्कभाजि ।

तटनिकटयनानि नर्मदायाः कथमिभवन्ति भयन्ति कल्मषाणि ॥४२॥

मुहुरिति ॥ इभवन्ति गजवन्ति तथा घनीं पृथिव्या पदमष्टे यत्र तथोक्तं पङ्क
भजन्ते तानि नर्मदायास्तटसमीपवनानि कर्मभूतानि अधिवसता सतां विदुषाम् ।
अपगता विपद्येभ्यस्तदृशां मुनीनां कथं कल्मषाणि पापानि भवन्ति । भवन्त्ये-
वेत्यर्थः ॥ ४२ ॥

निश्चित ही ये लोग सर्वथा निष्पाप हैं, क्योंकि—

पक्षियों के चरणों से चिह्नित पङ्क वाले तथा हाथियों से भरे हुए नर्मदा
नदी के समीपवर्ती वनों में निवास करने वाले सज्जनों एवं मुनियों को पाप
कैसे छू सकते हैं ॥ ४२ ॥

[वि + पद + अद्भु—पक्षियों के पैरों से चिह्नित । इभवन्ति—हाथियों से युक्त । नर्मदा नदी के पवित्र जल में समीपवर्ती बन भूमि पङ्क्ति हो हो गयी है । रेंगते हुए पक्षियों के पैरों ने चिह्न उस पर पड़ गये हैं । जगत् इतने बने हैं कि हाथी आदि महान् एव हिम जानवर वहा मजे में रह सकते हैं । भयकर जगत् तथा कठिन परिस्थितियों में रहने के कारण मुनियों का तपस्यात्मक महत्त्व और बढ़ गया है ॥ ४२ ॥]

इनश्च—

अचिरप्रधरगैरिकासमसमुल्लसत्पल्लवं
लवङ्गलवलीलनातलचलच्चकोरं अचित् ।
अचिद्गिरिसरित्तटोत्तणविस्फुरत्कन्दलं
दलमिचुलमञ्जरीमधुनिरुद्धमृगं अचित् ॥ ४३ ॥
अचिच्चटुलकोकिलाकुलितनूतचूताङ्कुरं
कूरङ्गनुलसेयितप्रयत्नसालमूलं अचित् ।
अचिरप्रधरसञ्चरत्सुरयधूपदैः पायनं
धनं नपति विक्रियामिह मनो मुनीनामपि ॥ ४४ ॥ युग्यम् ॥

अचिदिति ॥ प्रधरं गैरिकं यत्र । तथा असममप्रतिमम् । सर्वोत्कृष्टमिति पाठः । तथा समुल्लसन् पञ्चवा यत्र । पञ्चाद्यधुनिक कर्मधारयः । गैरिकशब्दो नपुंसकः । 'प्रधरगैरिकोपम' इति वा पाठः ॥ ४३-४४ ॥

कहीं साल रम के अनुपम ढंग से चमकते हुए पत्तियों वाली लवङ्ग और लवली लताओं के बीच चकोर घूम रहे हैं । कहीं पर्वतीय नदियों के तट पर होनहार चमकते हुए अदुरी वाले बेंत की सिन्धी हुई मञ्जरियों के पराग में भीरे मंटके हुए हैं ॥ ४३ ॥

कहीं आम का नवीन कलिकादूर चंचल बीयलों से भरा हुआ है । कहीं विशाल साल वृक्षों की छाया मृगसमूह से सेवित हो रही है । कहीं उत्तमकोटि की देवाङ्गनाओं के चरणों से पवित्रित यह अरण्य मुनियों के चित्त में भी विचार सा देता है ॥ ४४ ॥

तदिदमघतनं दिवसमभ्य सैन्यस्याध्वधमापद्येदापनुत्तिनिमित्त-
मधियसतु देयः ॥

तदिति ॥ श्रेयापनुत्तिः श्रेयापनोद् ॥

अतः ऐनिकों के मार्गक्रम की निवृत्ति के लिये आप आज के दिन यहाँ निवास करें ।

यत्र—

वायुस्कन्धमवष्टभ्य स्फारितैः पुष्पलोचनैः ।

वियद्विस्तारमेते हि वीक्षन्त इव पादपाः ॥ ४५ ॥

वायुस्कन्धमिति ॥ स्कन्ध संदृश्योऽस्यार्थश्च । कुतोऽत्रावास । हि यस्मात् तुक्ता-
पुष्पितारचात्र पादपाः सन्ति ॥ ४५ ॥

जहा हवा के कन्धे पर चढ़कर पुष्परूप नेत्रों को खोल कर ये पेड़ मानों
आकाश का विस्तार देख रहे हैं ॥ ४५ ॥

अपि च येपाम्—

स्कन्धशाखान्तरालेषु पश्य जीमूतपङ्क्तयः ।

लम्बमाना विलोक्यन्ते चलद्बल्युलिका इव ॥ ४६ ॥

और जिनकी मुख्य शाखाओं के बीच लटकती हुई बादलों की पंक्तियाँ
रेगती हुई बल्युलिका की तरह दीख रही हैं ॥ ४६ ॥

येपां च—

उच्चैः शाखाप्रसंलग्ना मन्ये नूनं धनौकसाम् ।

कुर्वन्ति पुष्पसंदेहं निशि नक्षत्रपङ्क्तयः ॥ ४७ ॥

उच्चतर शाखाओं से समुक्त ये नक्षत्र पंक्तियाँ रात में निश्चित ही वन-
वासियों की फूल का सम्येह उत्पन्न कर देती हैं ॥ ४७ ॥

[पेड़ इतने ऊँचे हैं कि रात को ऐसा प्रतीत होता है कि इनकी शाखायें
तारों की छू रही हैं । शाखाओं से सम्बद्ध प्रतीत होने वाले तारे फूल की तरह
लग रहे हैं । वनवासी अचानक उन्हें फूल समझ बैठते हैं ॥ ४७ ॥]

इतश्च—

पतेषु प्रचण्डपवनाहततद्वतलगलितसुगन्धिविविधविकचकुसुम-
प्रकरमकरन्दमापीय पुन शिखरशाखाभिमुखमुत्पतन्त्यो विभांश्चि
दुरारोहतया कृताः केनापि निःश्रेणय इव श्रेणयो मधुलिहाम् ॥

इधर—

प्रचण्ड वायु के झोंके से पेड़ों के नीचे गिरे हुए तरह-तरह के खिले हुए
फूलों का मधु पीकर पुन मेड़ों की ऊँची शाखाओं की ओर उड़ती हुई भ्रमर
पङ्क्तिर्मा मानों किसी के द्वारा निष्पत्तिवद्ध की तरह कर दी गयी हैं, क्योंकि
पेड़ इतने ऊँचे हैं कि भ्रमर उन पर चढ़ नहीं पाते ॥

। इतश्च—

निश्चलानां सैन्यमयेन तुङ्गतकशिखरपञ्चरपुञ्जितगोलाङ्गूल-

मण्डलानां निर्यन्त्रप्ररोहाङ्कुराकाराः कुर्वन्ति वनदेवतानां क्रीडान्दोलन-
दोलाज्जराङ्कामधोविलम्बिताङ्गूललतिकाः ॥

सैनिकों के मय से चुपचाप बहे बहे पेडा की ऊँची डालियों की छाया में झटके हुए लंगूर वन्दरों की, निकलते हुए नवीन अङ्कुर के बाकारवाली नीचे लटकती हुई पूछे वनदेवताओं के खेलने के लिए झुका की रस्सी की बाधा का उत्पन्न कर दे रही है ।

[वन्दरों की लम्बी-लम्बी पूछे रस्सी की तरह लटकी हुई हैं । ऐसा लगता है कि वनदेवता लोगों की झुने की रस्सी लटकी है ।]

इतथ—

अकासत्युद्गमयमानास्तरुशिरःशिखरशाखाप्रस्त्रलनधिलम्नप्रहृगण-
विमानपङ्क्तिपताका इव विहगाधलयो निश्चलम् ॥

इधर उड़ती हुई पक्षिपक्षियों पेडा की ऊँची डालियों से टकरा कर अँटके हुए तारों के विमानसमूह की पताका की तरह सुशोभित हो रही हैं ।

[पेड इतने ऊँचे हैं कि ग्रहणा (तारकन) उनसे चिपके हुए-से प्रतीत होते हैं । पेडों की शाखाओं के अप्रभाव में उड़ती हुई पक्षियों की मगनी उन तारक विमानों की पताका की तरह प्रतीत होती है] ।

इतथ—

धिजृम्भमाणमञ्जरीजालेषु सर्वतुर्पिकासिस्तद्वकारवनेषु वनदेवताभि-
रुद्दामद्वन्द्वमप्रनीकारार्थमनागनमेव संगृहीतधारिगर्भान्मोदपटलमि-
धालोन्यते कोकिलाङ्गुलकदम्बकम् ॥

इधर—

सभी ऋतुओं में विकसित होने वाले आम के बगीचों में खिलती हुई मञ्जरिया पर कोयलों के धने समूह को वनदेवताएं जंगल की विधान भग्नि को बुझाने वाले वन भरे मेघ की तरह देख रही हैं ।

इतथ—

विकसितसितपुष्पपिण्डपाण्डुरशिराः सुधाधवलितोर्ध्वमूमयो
विल्लासप्रसादा इव कुसुमसायकस्य जरावयलमौलयः कञ्चुकिन इव
वनदेवतानाम्, उन्मादयन्ति मनोऽमन्दमुचुकुन्दपादपाः ॥

इत्येते ॥ गोलाङ्गूलानां कृष्णसुखमर्कटानां लाङ्गुललतिका पुष्पवत्स्य ।
अतिलोमतावाग्रियन्त्रप्ररोहाङ्कुर आकारो यासाम् ॥

खिन्ने हुए सफेद पुष्पों के कारण खेत शिखरवाले मुकुन्द के पेड चुन्ने

से पुते हुए बिलास भवन की छत की तरह तथा कामदेव के पके बाल वाले कञ्चुकी की तरह वनदेवताओं के मानस को उन्मत्त बना देने है ।

तदेवंविधेषून्मुकुलविगलितबहलमकरन्दसीरूपसारसुरभितभूत-
लेपु मुखमृगपरिहृतदावानलज्वालायमानोन्मदशबरसीमन्तिनीचरणप्र-
हारविकशिताशोककाननेषु नवजलधरनिकुरम्बकान्तितमालतरुशिरः-
स्थितशब्दानुमेयमाद्यन्मयूरमण्डलेषु मदनालसपुलिन्दराजमुन्दरी-
शिक्ष्यमाणवनरूपोत्कुम्भकुटकुम्भकुलकुहरितेषु कूजत्कुररपरि-
घारितसरःपरिसरेषु चलच्चकोरसारसरचरमणीयेषु विहरतु देवः सद्यः
सैन्येन नर्मदोर्मिमन्दानिलान्दोलितलतापल्लवेषु वनेषु ॥

तदेवमिति ॥ मुखमृगोऽद्यादि वनविशेषणम् । लौहित्यान्मुखमृगैर्दावानलभ्रान्त्या
कुसुमिताशोककाननानि परिहृतानीति भावः ॥

इस तरह के जंगल में आप ससैन्य विहार करें । यहाँ की पृष्ठी खिलती हुई कलियों के गाँठे पराग बिन्दुओं की वर्षा से सुगन्धित हो गई है । अशोकवन शबर युवतियों के पद प्रहार से खिल उठे हैं । इनके इस विकास को बनागिनी की ज्वाला समझ कर भोले मृग (जंगल) छोड़ दिये हैं । नवीन मेघसदृश कान्ति धारण किये हुए तमाल वृक्ष के ऊपर बैठे हुए मतवाले यदूर केवल शब्दमात्र से पहचाने जाते हैं । कामातुर, तद्ग्रायुक्त शबरपतियों की युवतियों द्वारा सिखाये जाते हुए कुम्भकुटो और कुम्भकुटो की ध्वनि से गुञ्जित हो उठा है । शरीर का तट झूजने लगे कुररो से घिरा हुआ है और भ्रमणमग्न सारसी की ध्वनि से रमणीय प्रतीत हो रहा है । नर्मदा की लहरियों के कारण बोझिल बने लगे मन्द पवन से लता पल्लव कम्पित हो रहे हैं ।

राजापि भुतशीलेन दर्शितास्तान्ताम्देशानवलोक्य चिन्तितवान् ॥

राजा भी श्रुतिशील द्वारा दिखाये हुये उन-उन स्थानों को देखकर सोचने लगा ।

‘कृतकीडाः क्रीडेर्मदकलकुरङ्गीहृतमृगाः

परिभ्राम्यदृष्ट्वाः परभूतकुलाकान्ततरवः ।

यनोद्देशाः पौष्पैः सुरभितदिगन्ताः परिमलै-

र्म चेतः कम्प्यन्ते विलसितविकारं विदधति ॥ ४८ ॥

सूकर खेल चुके हैं, मद के कारण मनोहर मृगियाँ मृगों को अपनी ओर आकृष्ट कर ली हैं भँरि भूम रहे हैं, कोयल से वृक्ष भरे हुये हैं, पुष्पों के पराग से दिशायें सुरभित हो गयी हैं, ऐसा यह वनप्रदेश किसके चित्त में विकार का बिलास नहीं उत्पन्न कर देता ॥ ४८ ॥

इतश्च—

यार्चानां निवया मृशान्ति जलदानुग्रन्धिसौगन्धिन
नृत्पत्केकिङ्कम्यकानि विकसद्वाद्यन्धि रोधासि च ।

धत्ते सैकतमुन्नदन्मद्रलज्जौञ्चारलीसारसा-

नन्याः पद्मपरागापिङ्गपयस संन्यं च सिन्धोर्न किम् ॥४९॥

यार्चानां निवया मृशान्तिमैरन्धिका वीचिनिचया जलदानु स्मृशान्ति । रोधासि च । मृशान्ति । तद्वय दम्पा मिश्रो, किं वा म मेष्यम् । चकारो वार्धे ॥ ४९ ॥

तत्पृष्ठे गन्ध वाजे जन्यो म पूर्व तरङ्गो क सन्तु नद्यो का झ रहा है, तटप्रदेश पर मधुरवा नाव रहा है, लतायें पल्लवित हो रही हैं, बाष्पकामयी धूमि धोतु हुए सुन्दर युवक कौन्वा क समुद्र तथा सारस पक्षियों का धारण कर रही है, जन्यों क परा से पीके जल वाणी इस नदी की कौन सी चीज प्रहा करन योग्य नहीं है ॥ ४९ ॥

तदुचिनिमिहाद्य दिवसमावासं कर्तुम्' इति विचिन्त्य अङ्गोऽसं
संज्ञापितसंज्ञासन्निवेशस्तत्कालमेव 'विरचयत तुल्यममन्दुतः
सरसदीर्घदृष्टानलनिलनिम्नस्यलापु, कुरुत कायमानानि सरित्सेव्य-
सैकतेषु, उन्नमयत पटकुट्टी, कूलनानेषु, आलानयन मद्रमचमतङ्क-
जान् मदकण्डूकपोलकापसङ्केषु सरलसालसहकांसर्जार्जुनस्कन्धेषु,
दूरमुत्सारयत शैषलशिलाजालकाष्ठकूटकण्टकपटलानि, समीकुरुत
विषमभूभागान्' इति सेनापतिप्रमुखमुखरलोककलकलमुत्तालमुत्थियत
मसहमानस्तद्विरामासरं प्रतिपालयन्नेकास्तेऽन्यतमप्रदेशे तस्याः
सरितः सूक्ष्ममुक्ताफलमोदवधलालुकापुलिनपृष्ठ एवास्यानगोष्ठा
धरन्त्य ॥

तदुचिन्त ॥ मन्दुरा वाजिराला ॥ कायो माप्यत्र नि कायमान लोकप्रमिदया
रोहिपादित्मयावामविशेष । मद्रमचमतङ्कजानिति । मदेव धीर्यविराकेन मया
मन्वैषादिप्रयोगान् । आलानि मर्कटिकाव्यवृत्तिमिदृशगृहाणि । कूट वप्रम् ॥

अतः आज यहीं पर ठहर जाना पड़ता है । यह सोचकर कट्यपनात्र क
सकत से मेना क विग्राम की सूचना दिया । "अतः तत्काल ही लम्बी-लम्बी
दूब और नल घासों वाली हरी बाह पर घोड़ों के रहन की जगह बनाओ ।
निवास क जिए बाहुकामन तट पर कुटीर बनाओ । नील पत्थरों वाले जगहों
म तम्बू तानो । अधिक छुदगाहट बल करन वाले वनों के धर्या को सह
सकने में समर्थ सीढ़े-सीढ़े इन सान, सन्तकी, चर्च और अर्जुन वृक्ष = तनों में
मदमत हाथियों को बांध दो । शैवानों, पथरों, काष्ठों तथा कटो को दूर

हटाओ । ऊँची नीची जमीनो को बराबर करो ।” इस तरह सेनापति आदि मुख्य लोगों के बोलने पर जनसामान्य से उठी हुई जोरों की कलकल ध्वनि को न सहता हुआ उस कोलाहल बन्द होने के अवसर की प्रतीक्षा में उस नदी का एक एकान्त स्थान पर जहाँ बालुकामयी भूमि मुक्तामणि के चूर्णित सूक्ष्म कणों के कारण धवल हो गयी थी, अपनी निवास गोष्ठी की रचना किया ।

अथ नातिदूरे पुरोऽस्य शीतशैवलचक्रवाले चरतश्चक्रवाककदम्ब-
कस्य मध्ये कोऽप्युत्क्षिप्य रक्षपुटम्, उद्धमय्य ग्रीवाग्रम्, अनङ्ग-
परवशो दूरादुपसर्पच्चनुराणिणीं काञ्चिच्चक्रवाकीं, दर्शितच्चाटुचातुर्य-
श्चक्रवाकयुधा इष्टिपथमवानरत् ॥

इनके समीप ही शीतल शैवालपुञ्ज में चरते हुए चक्रवाक वर्ग के बीच से अपने पक्षों को फड़फड़ा कर, गर्दन को ऊपर उठाकर, कामवशीभूत कुशल, चाटुकारिता दिखाता हुआ, किसी अनुराणिणी चक्रवाकी की ओर आता हुआ कोई चक्रवाक युवक उन्हें दीख गया ।

अपरे च अस्थारो राजहंसास्तामेव चक्रवाकीं कामयमानास्तमा-
पतन्तमन्तरान्तरा निपस्य स्वल्पयाम्बभूवुः ॥

और भी चार राजहंस उसी चक्रवाकी को चाहते थे । अत आते हुए उस चक्रवाक युवक को बीच-बीच में हमला कर रोक दिये ।

तांश्चावलोक्य राजा विहसन्नासन्नवर्तिनं श्रुतशीलमायभाषे ॥

‘वयस्य, विलोक्यतामिदमसमञ्जसम् ॥

उन्हें देख कर हसते हुए राजा ने श्रुतिशील से कहा—

मित्र, यह विषमता देखा ।

अमी राजहंसाः सतीष्वपि स्थजात्युचितानुचरीषु कथमन्यासका-
मपीमां चक्रवाककामिनीं कामयन्ते ॥

॥ खल्वेपामियमनङ्गभूमिः ॥

न खल्विति ॥ यथा चक्रवाकी चक्रवाकस्य सजातीया, एव मनुष्यजातेर्नरस्य मानुषी वमयन्नुचिता । यथा हसनां सानुचिता, एवं लोकपालानामपि वमयन्तीति ॥

इन्हीं की जाति वाली, इनके पीछे चलने वाली राजहंसियों के रहने पर भी ये राजहंस दूसरे में अनुरक्त इस चक्रवाक युवती को क्यों ब्याह रहे हैं ?

इन लोगों के काम का पात्र यह नहीं है ।

अथवा—

किमु कुवलयनेत्राः सन्ति नो नाकनार्य-

स्त्रिदिषपतिरद्वय यांतापसीं यत्सिपेवे ।

हृदयवृणकुटीरे दीप्यमानेस्मरान्ना-

शुचितमनुचितं वा वेत्ति कः पण्डितोऽपि ॥ ५० ॥

किन्तु इति ॥ इत्था कुटी कुटीर । 'इत्थे' इत्यधिकारे 'कुटीराम'-इति सूत्रेण
रम्यय ॥ ५० ॥

या—यना नीयकमल सदृश नेत्र बानी स्वर्ग की रमणियां नहीं थी कि
स्वर्ग के स्वामी इन्द्र तपस्विनी बहम्या के साथ रमण किये ? जब हृदयहृष
हृण मन्दिर में काम की आग धधक उठती है तो विद्वान् भी रुचित अनुचित
पर विचार नहीं करता है ॥ ५० ॥

एवंधादिनि राजनि, अकस्मात्कोमलकण्ठकुहरेहोलनालंकार-
सुन्दरोऽमन्दमूर्च्छनायच्छिन्नसरसस्वरस्वरूपः प्रसन्नप्रयुज्यमानतान-
विशेषामिष्यस्तिस्पृष्टश्रुतिसुमनो गगने गान्धारप्राप्तगामी गीतध्वनि-
रुदधरत् ॥

राजा इस तरह कह ही रहे थे कि अचानक कोमल कण्ठनली से निकलने
कारण अलङ्कार सदृश, सुन्दर वृत्तगामी मूर्च्छनावर्णों से युक्त मधुर स्वर विशिष्ट,
बहुत अच्छी तरह प्रयुक्त तान के माध्यम से प्रकट, स्पष्टरूप से कानों को
मधुर लगने वाली, गान्धारपद्धति की गीतध्वनि आकाश में गूँज उठी ।

अथाहीच्च चलदतिपटलपीयमानापूवंपरिमलोद्गारिपारिजात-
मञ्जरीमकरन्दयिन्दुषर्पधाही धायुः ॥

भनभनाने हुए भ्रमर वर्ग द्वारा पीये जाते हुए अपूर्व पराग बरसने वाले
परिभाट पुष्पों की मञ्जरी के परागकणों की वर्षा होने वाली हवा बही ।

अथ कौतुकौत्तानिताननेन नरपतिनाप्यहृदयतः शतकुम्भमङ्ग-
पिशाङ्गममण्डलमध्यवर्तिनः प्रधानपुरुषस्याग्रे गृहीतजात्यजाम्बूनद-
दीर्घदण्डः कुण्डलालंकारवानुन्मिषन्मन्दारमुकुलमालामण्डितमौलिर-
धनरन्मयैरान्निर्निमेषः सुवेशः पुरुषः ॥

स्वर्णस्रण्ड की तरह पीत कान्ति राशि के बीच किसी प्रमुख पुरुष के
आगे उत्तम स्वर्ण का दण्ड लगे हुए, कुण्डल पहने, शिखरी हुई मन्दार
कलियों की माला से शिर को अलङ्कृत किये, पलङ्गहीन, मुन्दर वेप से मण्डित,
आकाश से उतरते हुए किसी पुरुष को उत्सुकता से ऊपर की ओर मुँह ठाकर
राजा ने देखा ।

अवतीर्य च सोऽतिविस्मयविस्फारितविलोचनमवनिपालमवादीत्
निपद्येव, त्वरितमुत्तिष्ठ । अर्घाय सज्जो मय ॥ किं न पश्यसि—

उतरकर उसने अत्यन्त आश्चर्य के कारण खुनी हुई आँखों वाले उस पृथ्वी-पाल से कहा—“निपधपति, शीघ्र उठिये। पूजन के लिये तैयार हो जाइये। क्या देखते नहीं ?

अवतरति धृताचीरुन्धविन्यस्तद्वस्तः

श्रुतिसुखकृतगीते किनरे दत्तकर्णः।

किमपि सपग्निरम्भं रम्भयारम्भमाण-

व्यजनविधिरधीशः स्वर्गिणामेव देवः ॥ ५१ ॥

यह देवताओं के स्वामी इन्द्र है। धृताची नामक अम्बरा के कंधे पर हाथ रखे हैं। कानों को सुन्न देने वाली गीतियों को गाने वाले किन्नरों की ओर कान लगाये हैं। अपूर्व आलिङ्गनपूर्वक रम्भा (अम्बरा) पंखा सेल रही है ॥५१॥

अपि च—

धिरचितपरिवेषाः स्वाभिरङ्गप्रभाभि-

भुर्धनवहनमारोद्धारधुर्यासपीठा।

उरसि परिविलोलद्दीर्घदामान एते

यमवरुणकुबेरा स्यामिनो लोरुपालाः ॥ ५२ ॥

और—ससार का भार धारण करने में समर्थ उत्कृष्ट कन्धों वाले, अपनी अङ्गकान्ति से छटा मण्डल बनाये हुए, वक्षःस्थल पर हिलखी हुई लम्बी मालायें पहने हुए, ये लोकपाल स्वामी यम, वरुण और कुबेर हैं ॥ ५२ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य ससंभ्रमोत्थानवशयस्मितोत्तरीयाञ्चलस्थल-
स्फुल्लकफकणरणत्कारमुखरितमाधाय मूर्ध्नि संपुटितपाणिपल्लवपुगल-
माश्चर्यरसरमवशमुच्छ्वास्यमानसर्वाङ्गपुलक कनिपयपदाव्यभिमुखं
सह परिजनेनोच्चलितयान् ॥

राजा तो यह सुनकर बबझाहट के साथ उठने के कारण कड़कड़ाते हुए पुपट्टे के अठ्ठल के सस्पर्श से सोने के कंकण जिनमें मुखरित हो उठे थे ऐसे करपल्लव पुगल को जोड़कर शिर से लगाया। आश्चर्य रस के आवेश में लम्बी साँसे भर रहा था। पूरे अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था (हृष्ट तरह की मुद्रा में) अपने नौकरों के साथ कुछ कदम सामने की ओर बढ़ा।

अथ सकलसुरशिरःशेखरायमाणचरणरेणुरनेकनारुकामिनीकुच-
कुम्भकुङ्कुममञ्जरीमुद्राङ्कितविपुलवक्षः स्थलीदृढयमानमहानीलमणि-
मण्डननिभमव्यवृत्रशस्त्रवणः, अथवा शिखरारोपितप्रत्ययप्रपारिजातमञ्ज-
रोगलद्रुषदलकिञ्जल्ककणानुपान्ते गायतस्तुम्बुरोः साक्षादमृतायमान-

गातरस्मनुवारानिव परिपूर्णकुण्डोद्गोणान् रूपोलपालिलग्नानुद्वहन्,
अनरतशचाशुमनसकान्ततामूललान् उनायमानाच्छाच्छरिचन्दन
निद्वन्द्वानुरस्मन्धसधि, अथक इय हारयष्ट्यास्फालितयक्षस्यत,
विन्ध्यगिरिरिखसदृश्राक्ष, पन्नगेन्द्रइय कण्डलापातालमुन्नासमानध,
*रत्निलालसापावनीर्णसरस्वतागातप्रवाह इय मत्तमातङ्गगामा दिशि
दिशि विरुर्णन्नकनपिदशुस्सुमानिजाविहृतपञ्चरागाद्यप्रभामण्डल
मण्डन, सह लाकपालैर्मगजम्पुरदर पूर्वादिभागाभ्यरादजातरत् ॥

अथ नन्देन अघानन्तर पृथङ्गमागम्योन्म पुरन्दरोऽवातरत् । हारयष्टि-
मुन्नायता । नन्देन हरस्य हारी यष्टि शूललवणा । अथको दयविशेष । सहस्र
मन्त्राणि यस्य । बहुधाहौ इति ममामात पथ । विन्ध्यपर्व सहस्रशब्द प्रानुर्य
वचन । अथा विभातका । कुण्डल कर्णालकार मद्भान् । तथा पाता रचिता
अन्मयर्ष राचमानश्च । पद्यगेन्द्रसु कण्डलाद्या । तथा पाताले मुखातालमुत्तया
भाममान । मत्तमातङ्ग अथि याद्वैराज्य जीवन्वाद्याश्च । पञ्चरागस्य मन्त्रैर्द्व
ह्य लङ्घित प्रभामण्डल नन्दमन्दनमस्य । अशुमान् अविहृत पञ्चानां रागोऽ
हस्य प्रभामण्डल विन्दम् । पुनानि मण्डन यस्य च

* कलिका— पुरागाथी किल ध्वजत—पुरा मरस्वतीदधीष्पादैवविषये
सबाह आयमान क्रुद्धन दधाविना क्षता सनी मरस्वती कलिकाय चाण्डालकल्ले-
षतनार । अतएव कलिकाल चाण्डाला एव मर गायत्रीति विद्वन्निनामकटीका ॥

इसके बाद अपनी चरणधूलि में देवताओं के शिर का अङ्कन करने वाले
महाराज का लोफाण क साथ पूर्व दिशा की ओर से उठे ।
उनका विशाल वन स्थल अनेक रमणियों के मन्दिरों पर बन हुए
कुटुम्ब के मञ्जरी चिह्न में चिह्नित था और उस पर बुनासुर के शास्त्रा
के चिह्न विशाल नीलमणि के अङ्कुर की तरह सुन्दर लग रहे थे । वनों
पर अमृत नवीन पारिजात की मञ्जरी खसी हुई थी । सबसे निकट हुए
गात्र पराग बिंदु कपोलभाग पर अंकन हुए थे । ऐसा प्रतीत होता था कि
समीप में गान हुए तन्त्रुम्रो के साक्षात् अवृत्तमहर्ष गावरस के वन जब
काना में नरों की ओर उनके ठहरने के लिए स्थान न रहा तो बाहर निकल
आये थे । सदा शची (राक्षसी) के घुम्बन से ला हुए ताम्बू चिह्न पट्ट
नन्द हरिचन्दन के रेश में नीचनीच कर्मों के जोड़ सुन्दर लग रहे थे ।
अथकासुर के वन स्थल पर हारयष्टि (शकर जी का त्रिशूल) लगी हुई थी
वैश इनके वन स्थल पर भी हारयष्टि (पुष्पा की माता) लगी हुई थी । विन्ध्या
चल लैन सहस्रान्न (बट्ट से छटाप के पौधा से युक्त) है जैसे वे भी सहस्रान्न
(हजार नेत्रों का) थे । उपराज जैसे कुण्डली (पटा बनाम रहत) हैं और
पाताण्लोक का उद्भासित करत हैं जैसे य भी कुण्डली (कुण्डल धारण किय

हुए) ये और पातालमुद्भासमान. (अल पाता, पूर्णरक्षक तथा भय कान्ति वाले) ये। कलि के समय में शाप के कारण अवतार ली हुई सरस्वती का गीतप्रवाह जैसे मत्तमातङ्गगामी (मतवाले चाण्डाल में सगत रहता) है वैसे वे भी मत्तमातङ्गगामी (मतवाले हाथी पर चढ़कर चलने वाले) ये। विभिन्न दिशाओं में स्वर्ण की तरह पीतकान्ति बिखेर रहे थे। विशुद्ध पद्म-रागमणि की अरुण कान्ति से अलंकृत होकर सूर्य सदृश प्रतीत होते थे।

[इन्द्र-पक्ष में पातालम् शब्द का विच्छेद अल पाता है। (पाता + अलम्)। अर्थात् इन्द्र पर्याप्त रक्षक हैं। उद्भासमान — भयकान्तियुक्त हैं। सर्पराज-पक्ष में पाताल शब्द लोक का वाचक है। पाताल लोक अधेरे से भरा रहता है। सर्पराज के मणि से ही यह उद्भासित होता है।

मत्तमातङ्गगामी—एक बार दधीचि और सरस्वती में विवाद हो गया। दधीचि के शाप के फलस्वरूप सरस्वती को कलिपुत्र में चाण्डाल के घर अवतार लेना पड़ा। तभी से कहा जाता है कि कलि में मधुर गीत प्रवाह चाण्डालों में ही पाया जाता है। इसी बात को ध्यान में रखकर गीतप्रवाह को मत्तमातङ्गगामी कहा गया है ॥]

अवतीर्य चक्षुषां सहस्रेणोन्मीलनीजवनानुकारिणा निरूप्य पादयोः पुरः पतितमष्टाङ्गाश्लिष्टभूतलमिमम्, ऐरावतकुम्भकूटास्फालनकर्कशाकुलिना, दुर्दान्तदैत्यदानववधूवैधव्यदानशालामूलस्तम्भेन, शचीकुचकलशसंस्पर्शसंकान्तकुङ्कुमपत्रयल्लीकेन, दक्षिणपाणिना, सहैलमुन्नमय्य भूर्ध्नि पस्पर्श ॥

उन्होंने उतर कर खिलते हुए कमलवन सदृश अपने हजारों नेत्रों से, पैरों के सामने साष्टाङ्ग पृथ्वी पर पड़े हुए उस (राजा) को देखकर शीघ्र ही उठाकर उनके धार पर दाहिना हाथ फेरा। उनके हाथ की अंगुलिया ऐरावत के किण्ट कुम्भस्थल के स्पर्श से कर्कश हो गयी थीं। उनका हाथ बड़ी कठिनाई से दमन किये जाने वाले दानवों की पत्नियों के लिये वैधव्य दान रूप भवन का आधार-स्तम्भ या और उनमें शची के स्तन कलश के स्पर्श से कुङ्कुम की बनी हुई पत्र-रचना मुद्रित हो गयी थी।

कृत्वा च कुशलप्रक्षाल्यपथ्यवहारानुच्चैः काञ्चनासनं समुल्लसन्मणिमयूखमञ्जरीजालजटिलमवनिभुजास्वभुजोपनीतमध्यतिष्ठत् ॥

कुशलप्रक्षालनविषयक ध्यावहारिक बातों के बाद वे राजा द्वारा अपने हाथों से लाये हुए खिलती हुई मञ्जरी सदृश मणिकिरणपुञ्जबाल स्वर्ण के ऊँचे सिंहासन पर बैठे।

उपविष्टेषु यथोचितासन्नमासनेषु यमवरुणकुबेरप्रमुखेषु देवेषु
क्रमेण कृतोचिताचारः पुरः पृथ्वापृष्ठ एव विनयाग्निपथ निपथेश्वर-
पुरंदरमवादीत ॥

समीप में ही यम, वरुण, कुबेर आदि गन्धमुख देवताओं के उपयुक्त
आसन पर बैठ जाने पर क्रम से उचित सत्कार कर नम्रतापूर्वक पृथ्वी पर ही
उनके सामने बैठकर निपथ-मन्त्राट् इन्द्र में बोले—

दिष्टया दिवौकसा नाथ जातो युष्मत्समागमात् ।

भाकरूपं कीर्तनीयानां श्रेयसामस्मि भाजनम् ॥ ५३ ॥

देवताओं के स्वामी । भाग्य की उन्मृष्टता के कारण आपके आगमन से
सर्वदा के लिये मैं प्रसन्ननीय मङ्गलों का पात्र बन गया हूँ ॥ ५३ ॥

अपि च—

इष्ट्या कृत्युगशतानि तपश्चरित्वा

वाञ्छन्नि संगममुष्टं मुनयोऽपि येषाम् ।

तेषामनुप्रवृत्तानां स्वयमेत्य मेऽद्य

युष्माकमादिशत किं प्रियमाचरामि ॥ ५४ ॥

और—

यज्ञ कर और सैकड़ों मुणों तक तपस्या कर, मुनि लोग जिनके मित्रने की
आकाङ्क्षा करते हैं वह आप हुआकर स्वयं ही आ गये हैं । अतः आज्ञा
दीजिये, मैं आपका क्या प्रिय कहूँ ॥ ५४ ॥

इति प्रकाशितप्रभयालापे पार्थिवपुंगवे पुरंदरो दरदलितकुन्द-
कलिकान्तदन्तधृतिद्योतिताधरदलमोपद्विहस्य लीलावलितकंधरः
कुबेरमुपममल्लोकयाञ्चकार ॥

इति प्रकाशितेति ॥ दरदलितेभ्यश्च दरेभ्यश्चमयीपदर्थे ॥

इस तरह राजा के नम्रतापूर्ण सत्कार व्यक्त करने पर इन्द्र बोरी निनी
हुई कुमुद की कनी सरस चमकते हुए दांतों की कान्ति से अधरदल को
प्रकाशित करते हुए मुँकुरा कर लीलापूर्वक कन्धे को धुमाकर कुबेर का मुख
देखने लगे ।

सोऽपि 'निपथेश्वर. श्रयतामस्मदागमनकारणम् ॥

वे भी, 'निपथेश्वर, मुनिवे हम लोगों के आगमन का प्रयोजन ।

'अस्ति चिदर्माधिपतेर्ममभूमिपालस्य सुता सुतारनयननिर्जितेन्द्री-
यरा वरार्थिना निजकान्तिविरस्कनत्रिदिनारौरूपसंपत्तिः कुन्ददन्ती
दमयन्ती नाम ॥

विदर्भ देश के राजा भीम अपनी लड़की—जिखने अपनी सुन्दर कनीनिका वाली आखी से नीलकमलों को भी जीन लिया है, अपनी कान्ति से स्वर्ग की रमणियों को भी तिरस्कृत कर दिया है, के लिये वर की खोज में है ।

तस्याश्च चम्पकदलाचदातदेहाया किल भव्यंवरमहोत्सवः सांप्रतं प्रस्तुतः' इति नारदादधिगम्य वयमपि विदर्भाविपतिपुरं प्रस्थिताः ॥

चम्पक दल सहस्र स्वच्छ देहवाली उस (दमयन्ती) का स्वयंवर महोत्सव होने वाला है । नारद द्वारा यह बात जानकर हम लोगों ने विदर्भ-नरेंद्र की नगरी के लिये प्रस्थान किया है ।

किंतु लघयति पुरुषं स्वमुखेनार्थिमाद्यो यतस्तत्र गत्यापि दमयन्ती किं प्रमो वयमिन्द्राद्यो लोकपालास्तद्यामर्थयामह इत्यसदृशं महिम्नोऽस्मद्विधेषु, स्पृहणीयरूपासि कं नोत्सुक्यसीत्यनुचितमपरिचितेषु चाटुष्वातुर्यम्, अजरसः स्रस्वमरा वयमिति ग्राम्य. स्थप्रशंसोपक्रम, प्राप्नुहि त्रयाणामपि लोकानामाधिपत्यमस्मत्सङ्गमादिति महत्प्रागल्भ्य-प्रलोभनम्, अल्पायुषो मनुष्यास्तदस्माकं देवानां मध्ये कश्चिद्वृणी-ष्वेति पापीयः परवोषोदाहरणद्वारेणाभ्यर्थनम् ॥

किन्तु अपने ही मुख में अपनी याचना का वर्णन करना व्यक्ति को हल्का घना देता है । वहाँ जाकर भी हमलोग दमयन्ती से क्या कहें । यदि यह कहे कि "हम इन्द्र आदि लोकपाल तुम्हारी याचना करते हैं", तो यह हम जैसे लोगों की भयाँदा के प्रतिकूल है । "तुम्हारा रूप बड़ा ही आकाङ्क्षणीय है अतः किसे नहीं उत्कण्ठित कर देती हो" इस तरह की चाटुकारितामूक कुशलता किसी अपरिचित व्यक्ति पर दिखाना अनुचित है । "हम देवजन कभी बूढ़ नहीं होते" यह असंभ्य ढंग की अपनी प्रशंसा होगी । "हम लोगों के साथ से तीनों लोकों का साम्राज्य प्राप्त करो" यह अत्यन्त धृष्टतापूर्ण प्रलोभन होगा । "मनुष्य अल्पायु होते हैं अतः हम देवताओं में से ही किसी को चुनो" इस तरह दूसरों में दोष दिखाकर याचना करना पापपूर्ण कार्य है ।

अथो देशकालकार्योक्तिरुशलस्त्वमुच्यते । गच्छामि, भव दूतो देवानामशेषदैर्गध्यविशेषोक्तिकोविद, किमन्यदिह शिष्यसे, तैस्तै-रुपायै. तामिस्तामि कलाभिः, तैस्ते प्रलोभनप्रकारं, क्रियतां देव-कार्यम्, आर्याणां प्रायः परोपकारकरणाद्यमेव जन्म च जीवितं च, न च भवन्तमस्मदनुमाद्यादन्य. कोऽपि कन्यान्तःपुरे रहस्यपि वर्त्तमानां विदर्भेश्वरसुतामुपसर्पन्तमुपलक्षिष्यते' इत्यभिधाय व्यरंस्तौ ॥

तुम देश, काल, कार्य तथा बोलने में अत्यन्त निपुण हो । अतः तुम से कहा जाता है, "आगे बलो । देवताओं का दूत बनो । समस्त सहृदयोचित

विशेष उक्तियों के विद्वान्, तुम्हें क्या सिजाना है। उन उन उगायों से, उन उन कान्गों से, उन उन प्रनोम्न-प्रकारों से, देवताओं का कार्य करो। आयों को प्रायः परोपकार ही करने के लिये जीवन और जन्म मित्र है। हम लोगों के प्रभाव से कन्यान्तःपुर के एकान्त में भी बैठी हुई विद्वन्मौराव की लड़की के पास जाते हुए तुम्हें कोई भी दूसरा आदमी नहीं देख सकेगा। यह कहकर रुक गये।

नन्तोऽप्येतदाकर्ण्य तदिदं सङ्कटम् 'इतो व्याघ्र इतस्तटी, इतो दधामिनिरितो दम्यवः, इतो दुष्टदन्द्गूक इतोऽप्यन्वकूपः' इति न्यायात्। इतः कर्णान्तकृष्टशरस्रनो मर्मप्रहारो प्रहरति मकरध्वज इतश्चायमेत-
पामलङ्घनीय आदेशः। तत्र जानीमः किमशोत्तरम्। एतन्नाथेऽस्मान्न भवता च प्रवृत्तिरिति प्रणयप्रार्थनामहकारिणां विह्वलधिनया प्रति-
कृतांतिः, धनमित्रोऽस्मि इतोक्तीनामिति शाठ्यम्, असमर्थोऽस्मि संदिग्धक्रियाकारिनायामित्याहालङ्घनम्, आवालङ्घनं च सेतुवन्धन-
मिव स्त्रन्धयनि श्रेय स्रोतः, पण्डनुषदर्शनमिव वर्धयत्यलङ्घनीम्, रजस्वलाभिगमनमिव हरत्यायुः, इत्यनेकविधमवधार्य 'न नाम दुरधि-
गता केऽपि पदार्थान्तर्भवतामशेषजगदीश्वराणाम्, न च न जानीय ममापि प्रसिद्धमध्यवसायम्, एवं स्थितेऽप्येव करोम्यादेशम्, आदिष्टपरामर्शो न श्रेयानादेशकारिणः, किंतु बलीयान्परतो विधि-
प्रमाणम्' इत्यभिधाय मन्त्रस्या भयेन च देवानां दौत्यदेशांसमर्पितवान्॥

नल ने भी मुनकर, "बहु बड़ा संकट है। 'एक ओर व्याघ्र है तो दूसरी ओर खाई का किनारा। एक ओर जगल की आग है तो दूसरी ओर छुट्टे। इधर दुष्ट सर्प है तो उधर मन्धकूर (विशाल गड्ढा)' इस ग्याव के अनुसार एक ओर तो कानो तक बाणों को खींच कर हृदय पर छोट पहुँचाने बाण कामदेव प्रहार कर रहा है और दूसरी ओर इन लोगों की अलङ्घनीय आत्मा है। मालूम नहीं होता यहाँ क्या उत्तर है।

"एक ही वस्तु के लिये हमारी ओर आप लोगों की प्रवृत्ति है" यह स्नेहपूर्ण प्रार्थना को नष्ट कर देने वाली विनयहीन प्रतिक्रिया उक्ति होती। 'मैं डूब की तरह दीवना नहीं बनता' यह उठता होगी। "सुनिश्च कायों को करते मैं मैं असमर्थ हूँ" यह आज्ञा का उल्लङ्घन करना होगा। जाना का लङ्घन कन्यान्तःपुर की धारा को सेतुवन्ध की तरह रोक देता है। नपुंसक के मुख-
दर्शन की तरह अमङ्गल को बटाटा है। रजस्वला से मिल्न की तरह आप को नष्ट करता है। इस तरह बहुत बार विचार कर, समस्तलोकों के स्वामी, आप लोगों के लिये कोई भीव अप्राप्य नहीं है। हमारे प्रविष्ट उद्यम को आप लोग नहीं जानते हैं ऐसी बात नहीं। ऐसा होने पर भी यह आप लोगों

की आज्ञा का पालन करता हूँ। दी हुई आज्ञा के ऊपर विचार करना आज्ञा-कारियों के लिये उचित नहीं होता। बजे की आज्ञा ही प्रमाण होती है” यह कह कर भक्ति तथा भय से देवताओं की आज्ञा का पालन किया।

स्थित्या च कश्चित्क्षणमुचितालापलीलया कृत्वा च कांश्चिदन्यो-
भ्यप्रस्तुतप्रियव्यवहारान्, आपृच्छथ, यथागतं गतेष्वथ तेषु देवेषु
निपद्येभ्यश्चिरं चिन्तयाञ्चकार ॥

उचित वार्ताक्रम में कुछ देर तक ठहर कर, प्रसङ्गप्राप्त कुछ प्रिय व्यवहारों का सम्पादन कर, अतीत के सम्बन्ध में कुछ पूछ जाँच कर देवताओं के चले जाने पर निवधपति देर तक सोचना रहा।

तदिदम्, अनुच्छासविरामं मरणम्, अमोहं मूर्च्छनम्, अरोग-
मङ्गव्यथनम्, अशक्यप्रवेशमन्तःशूलम्, अदारिद्र्यो निद्राविघातः ॥

‘यह तो स्वास के रहते ही मरण है। बिना मोह की ही मूर्च्छा है। बिना रोग के ही अङ्गों की पीड़ा है। बिना शक्य-प्रवेश के ही आन्तरिक उप वेदना है। बिना दरिद्रता के आये ही निद्रा का अभाव है।

किमन्यत्—

तस्यामाकर्णितानुरागायां यन्ममाद्य दीर्घदौर्जन्यदोदधिना दैवेना-
कस्मिकमौत्सुक्यानुरागव्यवसाय बन्ध्यमध्यवसित कर्तुम् ॥

और क्या—

मुन लेने मात्र से उसमें मैं अनुरक्त हो गया हूँ। आज मेरे उत्कण्ठापूर्ण प्रेमविषयक यत्न को नष्ट कर देने के लिये अपनी विशाल दुर्जनता से कष्ट देने वाले भाग्य ने ठान लिया है।

इदानीं किमत्र श्रेयो यस्माद्, अनुपयोगं गमनम्, दलाध्यं
निवर्तनम्, अपार्यकमासनम्, असाधीयानध्यवसायः ॥

इस समय यहाँ क्या मङ्गलमय खरब होगा जिससे गमन अनुपयोगी हो, लौटना प्रशस्त हो, वहाँ बैठना व्यर्थ हो और यत्न निरर्थक हो।

इति चिन्ताकुले नले भयान्मूकीभूतेप्यासन्नवर्तिषु परिजनेषु प्रण-
यात्प्राचरणप्रान्तप्राच्छादितवदनभागं किमप्यासन्नमुपसृत्य शनैस्त-
त्कालयोग्यालापैरनुशीलयन्शीलक्षः क्षुतशीलो नलमायभाषे ॥

नल के चिन्ताकुल हो जाने पर सभी समीपवर्ती मौन थे। प्रेम-बीज के कारण उसने अपनी खादर से मुख ढक लिया। ऐसी स्थिति में कुछ समीप आकर

विचारवाद् धृतगील तत्काल प्रसङ्गानुकूल बातों से अनुरञ्जन करता हुआ नल से बोला—

देव, जानामि देवस्य देहं दहति दहन इव दारु दारुणो दौत्य-
चिन्तामारः । को नाम सामान्योऽपि म्ययमभिलषितेऽर्थे दूतत्वदास-
भावमङ्गो कुर्यात् । विशेषतोऽनुरागिण्यङ्गनाजने । तथापि किं न जानाति
देवो, यथा याचको ब्राह्मण इव निर्बेदः कस्य संतोषाय, विपवैद्य इव
विषादः संदेहकारी शरीरस्य, भीमामिमन्युनिरुद्धं कुरयलमिव मनो
महान्नं संतापमनुभवति ॥

वेदति ॥ निर्बेदं खेदो वेदरहितम् । विषादोऽपीव रोषनम् । यश्च विषं काल-
कूटमाश्नयति । भीमो रौद्रोऽभिमानो मन्सुर्दैन्येन निरुद्धम् । कुरयलं तु भीमेन
मध्यमपाण्डवेनाभिमान्युना चार्जुनसुतेन निरुद्धम् ॥

‘देव, जानता हूँ कि यह कठिन दूत-कार्य की चिन्ता का भार आप के
शरीर को काष्ठ की तरह जला रहा है । कौन साधारण आदमी भी अपने
अभिनिविष्ट सत्त्व के सामने दूत जैसे दास कार्य को स्वीकार करेगा और उसने
भी प्रेमपूर्ण अङ्गनाओं के विषय में ? फिर भी क्या आप नहीं जानते कि निर्बेद
(वेदज्ञान विहीन) भिक्षुक ब्राह्मण की तरह निर्बेद (खेद) जिसके लिये संतोष
कर होता है ! विषाद (विषखाने वाले) विपवैद्य की तरह विषाद (पदचात्ताप)
जिसके शरीर को सन्देह में नहीं डाल देता ? भीम और अभिमन्यु से घिरी हुई
कुह सेना की तरह भीम (रौद्र) तथा अभिमन्यु (उत्कृष्ट श्रेष्ठ) से घिरा
हुआ मन आत्यधिक वेदना का अनुभव करता है ।

तदलमनेन घातूलीश्रमेणेव मीलयता चक्षुरुद्वेगेन ॥

तदन्विति ॥ चक्षुःश्रोत्रं दुःखम् । घातूलीश्रमस्तु उद्वेगं वेगम् ॥

ऊपर की ओर उठने वाली हवा के चक्कर की तरह उद्वेग के मारे इन
आँखों को निमीलित करना व्यर्थ है ।

किं देवेन न श्रतम्, अमृतमयनावसरे सुरासुरकरपरिचर्त्यमान-
मन्दरमन्याननिर्योपवधिरितसमस्त्रोदःकंदरादिवापि दूरोच्छलित-
दुग्धनुशारासारतारकितनमसः, समुत्पन्नानेककौस्तुभादियस्तुविस्ता-
रादुद्वगच्छदुप्सरोमुल्लमण्डलैः क्षणमिव विहितविकचनलिनस्रण्ड-
शोभाद्, अनेकादवर्षकुशेः शीरसागरादजनि जनि तजगद्विस्मया स्मर-
जननी हस्तस्थिततरुणारविन्दा देवी देदीप्यमानपुण्यलक्ष्मा लक्ष्मीः ॥

क्या आपने नहीं सुना है ? अमृत के लिये समुद्र-मन्थन के अवसर पर
देव और दानव अपने हाथों से मन्दराक्षर रूप मन्थन दण्ड चला रहे थे ।

उसकी आवाज से सम्पूर्ण क्षितिज गुफाएँ वधिर हो गयी थीं। दूर से ऊपर की ओर छलके हुए दुग्ध कणों की घनघोर वर्षा से गगनमण्डल ताराङ्कित जैसा हो गया था। कौस्तुभमणि आदि पदार्थ बिखरे हुए थे। ऊपर की ओर आती हुई अप्सराओं के मुखमण्डल से खिले हुए कमल समूह सदृश शोभा हो रही थी। इस तरह के अनेक आश्चर्यों वाले क्षीर सागर से विश्व को आश्चर्य में डाल देने वाली काम की उत्पन्न करने वाली, हाथ में खिला हुआ कमल ली हुई, स्पष्ट पवित्र लक्षणों में युक्त देवी लक्ष्मी उत्पन्न हुई।

यस्याः सर्वाङ्गलाघण्यमधु विकचलोचनचपकैरापीय पीयूषजुषो मदनमदपरवशाः परम्परमेवेष्ट्यन्तश्चन्द्रकपाणिना समं सङ्गरम् ॥

उसके सर्वाङ्ग सौन्दर्य मधु को खिले हुए लोचन-चपक (नेत्र रूप व्याले) से पीकर अमृत से स्नेह रखने वाले इन बेबों ने कामोन्मत्त होकर आपस में ही एक दूसरे से ईर्ष्या करते हुए चक्रपाणि (विष्णु) से लड़ाई छेड़ दी।

अथ सा सर्वानप्यन्तरान्तरापतसस्तानुल्लङ्घ्य मन्दरगिरिशिखर-
शातकुम्भनिकपोपलायितयाहोर्भगघतश्चिक्षेप क्षेपीयः कण्ठे वैकुण्ठस्य
स्ययंधरकुसुममालाम् ॥

अथ सेति ॥ अतिशयेन चित्रं चेपीयः । 'स्थूलदूर'-इत्यादिना सिद्धम् ॥

इसके बाद उस (लक्ष्मी) ने बीच बीच में पड़े हुए उन सभी देवताओं को छोड़कर मन्दराचल पर्वत के स्वर्णमय शिखरों के लिये कसीटी के परपर सदृश (नीली) भुजाओं वाले भगवान् (विष्णु) के कण्ठ में वैकुण्ठ की स्वयंवर माला घीघ्र ही पहना दी।

एवं साऽपि कदाचिच्चम्पककलिकाकलापगौराङ्गी रागिणी त्वयि
यञ्जयिष्यति दयान् । यश्चितो यतः पूर्णमात्ममुखमण्डलधिया दाशी,
तिरस्कृतो मदनः सौभाग्येन । सदृत्प्रनृत्तायाश्च किमधगुण्ठनेन ।
धिधेरिव धामभुवामचिन्त्यानि चरितानि भवन्ति ॥

एव मापीति ॥ सकृत्प्रनृत्ताया स्तोत्रमपि वर्तितुमाहव्यवस्था किं नीरङ्गया ॥

इसी तरह चम्पे की कलियों के समूह सदृश गौर अङ्गावाली, तुम में अनुरक्त वह भी सम्भवतः देवताओं की वञ्चित कर देगी। क्योंकि पहले उसने अपने मुखमण्डल की शोभा में चन्द्रमा को वञ्चित किया है। सौन्दर्य में कामदेव को अपहसित किया है। [अतः देवताओं की अवहेलना करने की उसकी आदत पड़ गयी है। एकबार चन्द्रदेव तथा कामदेव का तिरस्कार कर चुकी है तो अब इन्द्र आदि लोकपालों के तिरस्कार में उसे कोई कठिनाई नहीं है।]

क्योंकि एक बार जो नाव चुकी है उसे धूँधट लगाने से क्या लाभ । ब्रह्मा की तरह स्त्रियों का चरित भी विचारगम्य नहीं होता ।

किमु न स्मरति देवो दिवि विश्रुतमर्थसारं स्वर्लोकादवतीर्य पुरा
गोनं गन्धर्वगायनैर्गीतगोष्ठोस्थितस्याग्रे युगलमिदमार्ययोर्देवस्य ॥

क्या आपको स्मरण नहीं है ? गोष्ठी में बैठे हुए आपके आगे स्वर्गलोक में भी प्रसिद्ध अर्थतत्त्वों वाले दो आर्यों छन्दों के गीत गन्धर्व गायकों ने गाये थे ।

क्वचिदपि कार्यारम्भेऽरूपः कल्याणमाजन मयति ।

न तु पुनरधिकविषादात्मन्दाकृतपौरुषः पुरुषः ॥ ५५ ॥

कविदिग्गज ॥ कल्पोऽनिविग्नम् । तु पुनरिति शब्दो ममूषवाचकश्चापुनरर्थमेव
योनयनम् । यथापि चेति ममुषय ॥ ५५ ॥

असमर्थ आदमी भी कार्य = अनुकूल बन करने रहते हैं तो वहीं भी कल्याण का पान बन जान है । शक्तियाँ भी अधिक विषाद के कारण अपना पुद्गल यदि मग्न कर देता है तो वह कल्याण का पान नहीं बनता ॥ ५५ ॥

अपहृष्टितान्तरायानर्यानुररीकृतान्प्रसाधयतः ।

विधिरपि विमेति तस्मान्निरतिशयं साहसं यस्य ॥ ५६ ॥

समस्त विन्नों को दूर कर स्वीकृत कार्यों को करने हुए अत्यन्त साहसी आदमी में ब्रह्मा भी डरते हैं ॥ ५६ ॥

एवमनेकधा प्रस्तुतपुराणपुरुषाण्यानप्रपञ्चप्रक्रमेणातिक्रान्ते भूमि
दिवसे मङ्गलोद्धार इव बान्धितार्थसिद्धेः, तर्जनहुकार इषान्तराया-
णाम्, ओंकार इषोत्साहस्मृतेः, पुण्याहध्वनिरिष इष्यप्रसादप्रासा-
दस्य, पुनर्नवीकृतानुरागस्नम्भोत्तम्भनस्य तस्य नरपतेः शिध्वाय
धुर्नि ध्रुनशोलेन आचिनमिमनेवार्य समर्थयश्चिष मध्याह्नशह्वचनि ॥

इस तरह अनेक प्रकार से प्रसङ्ग प्राप्त भगवान् विष्णु के चरित कहने कहने दिन के एक विज्ञेय भाग = व्यतीत हो जाने पर ईप्सित पदार्थ की सिद्धि के निम्ने मङ्गल द्योतक उद्धार की तरह, विन्नों को डटने वाले हुकार की तरह, उत्साहस्मृति की लटकार की तरह हृदय की प्रसन्नत्वारूप नवन की पुनराद्भवति की तरह मध्याह्नकाल की शुभ ध्वनि श्रुतिशील द्वारा मुद्राये हुए व्यर्थों को मानो समर्पण करती हुई पुनः नये विवे गये अनुरागस्वप्न से उठे हुए राजा के कानों तक पहुँची ।

यज्ञा तु तमाकर्ण्य विसर्जितपरिजनस्तत्रैव पुलितमध्ये मध्याह्न-
समयसमुचितव्यापारमकरोत् ॥

राजा ने तो उसे सुन कर अपने परिजनो को छोड़ कर उठी तट पर मध्याह्न-
कालिक सन्ध्या आदि समयोचित कार्यों की किया ।

अनन्तरमतिक्रान्तेषु केषुचिन्मुहूर्तेषु गगनमध्यतलाद्विलम्बमाने
मनाडमार्तण्डमण्डले चण्डवात्याहतशुष्कपत्रमिव दण्डप्रान्त-
प्रचलितकुलालचक्रमिव तेन पुरंदरादेशभ्रमेण भ्रान्तमात्मनो मनः
ह्याप्येकान्तरुमनीयनर्मदाप्रदेशदर्शनविनोदेन स्वस्वीकर्तुमिच्छन्नि-
च्छानुकूलकृतिपयासपरिजनपरिवृत धृतशीलस्कन्धाघट्टम्भविहारो
विहाय दूरमिव शिविरसंनिवेशम्, इतस्ततस्मरुणतमालमण्डपमण्ड-
लिनमयूरहारिणा चलच्चक्रोरचक्रवाकचक्रवालवलयितेन स्नानागत-
तापसपदपंक्तिप्रधितदूर्वाङ्कुरेणापसरस्पथ पूरतरङ्गितवालुकेन पु-
ल्लिनप्रान्तेन प्रार्ची दिशमयासीन् ॥

इसके बाद कुछ समय व्यतीत होने पर आकाश के मध्य भाग से सूर्य-
मण्डल के लटक जाने पर प्रचण्ड वायु के ओके से शुष्क पत्र सदृश, दण्ड के
अग्रभाग से बलाये हुए कुम्भकार के चक्र सदृश उस इन्द्र की आज्ञा रूप चमकर
में घूमते हुए मन के अनुरञ्जन द्वारा कही नर्मदा के एकाग्र और मनोहर
स्नान की देखकर अपने आप को स्वस्थ करना चाहता था । कुछ आप्त
अनुचरों के बीच श्रुतशील के कंधे पर हाथ रखकर शिविर से कुछ दूर पर
घूम रहा था । इधर उधर प्रौढ़ तमाल छाया के नीचे इकट्ठे हुए मयूरों के
कारण मनोहर, चलने हुए चक्रोरो, चक्रवाको और चक्रवालो से घिरे हुए,
स्नानार्थ भाये हुए सपत्नियों की पदपंक्ति से ढूँढ़ी हुई दूर्वा भास वाले, लिप्तकते
हुए जल के नीचे गई हुई कम्पित बालुका वाले तट से होता हुआ पश्चिम
दिशा की ओर गया ।

[यहाँ तट का वर्णन किया गया है । पानी की साधारण लहरों से निकटतम
तट की बालुकायें कभी पानी के नीचे जाती हैं, कभी पानी के लिप्तक जाने पर
ऊपर आ जाती हैं । पानी के आने जाने के कारण उनमें कम्पन भी बना
रहता है ।]

तत्र च चटुलचञ्चरीककुलाकुलितविविधग्रीवार्था तलेषु विचरतो-
ऽस्य रसातलविनिर्गताः पद्मगाङ्गना इव नागमदहारिण्यस्तमाल-
कन्दलीमोमलाङ्गयष्टयः श्रोणीभरालसगमनास्त्रिवलीतरङ्गिततनुमध्य-
लतिकाः, काश्चित्कण्टकन्दलावलम्बितमातङ्गमौक्तिकलताः स्फुरन्-
क्षत्रवल्याः कृष्णपक्षरात्रय इव कृतकीडाशरीरपरिग्रहाः, काश्चिदु-
मपथ्रवणावसक्तदन्तिदन्तपत्रप्रमाधवलितमुखण्डला सुरसरिस्स-
लिलसंवलितकालिन्दीजलदेवता इव नर्मद्यामन्त्रिताः, काश्चित्परि-

धानीकृततरक्तपलवास्नद्विल्लतालेखामेखलाश्चलदम्बुबाह्वपदन्तय इव
विन्ध्यस्कन्धानुरन्धिन्यः, काश्चिन्मातङ्गमदमण्डलमिलन्मधुकरकरा
लिता सकलनीलोत्पलवनलक्ष्म्य इवान्यजलशयेभ्यो महानदामन
रन्त्य, काश्चिहोहिताशोककुसुमस्तवककृतकर्णावतसोर्त्तसास्त्रिपुरपुर
न्धय इव हरशरानलालाकुलितशिरमो धूमध्यामला सलिलमनु
सरन्त्य काश्चिल्ललितलीलामृगैरनुगम्यमाना शरारवत्योऽञ्जनशल
न्यन्त्राधिदेवता इव तीर्याविगाहनानुरागिण्य, काश्चिज्जराजर्जरशबर
कञ्चुकिकरायलम्यलीलागामिन्य स्फुरद्विन्द्वनीलशिलापुत्रिका इवेन्द्र
जालिकै सचार्यमाणा कृष्णाञ्जलिकाकुसुमकान्तय काश्चिच्चिपिट
मासा कुन्दकान्दिन्तपद्वयो मायूरपिच्छमुच्छाजनद्वैकुरुरकवरीक
लापाश्चल्ललयमूसरकरनलोत्तालनालिकारम्भमणायरसिकरासक
क्रोडानिर्मला कादम्यमधुपानपूणितदृशो दर्पिण्यमवतेहरपयद्वमज-
नागनास्नदणकिरातकामिन्य ॥

न्य वेत्ति । चट्टालिङ्गलङ्घितनीलमूलेषु विचरता नृनतर्ह्यिषमवनीनां
किरातकामिन्यश्चिरचिञ्चिद्विरिणि मन्त्रयः । अयमूना । नागमदन राजमदनञ्जन
हारिण्यस्तत्रालङ्कृतावाह । पद्मगाङ्गनाम्तु नागाना वासुकिप्रभृतीना मद गर्भं
हरति मुष्मन्ति कृतक्रीडाधरमपरिमहा मूनां रात्रय सनचक्रा इव । मुष्मन्ता
नचत्रणि स्त्रीणा रात्रय उपमानम् । दन्तपत्रप्रसागा सुरमरिच स्त्रीणा काङ्क्षिण्युप
मानम् । रत्नपद्मवाता नदिवल्लभा स्त्राणामम्बुबह्वर्हद्विन्द्वरना । लोहिताशोककुसु
माना हरशरामनगवाला स्त्रीणा च इषामन धूम उपमा । कृष्णाञ्जलिका तापि
चल्लता ॥

वहा दोपहर के बाद स्नान करन के लिये जाया हुई किरातों की उदा
रमन्त्या अथवा प्रमदा से व्याप्त विभिन्न कुशों के बीच घूमते हुए राजा की
दृष्टि न पड़ी । व पाताल लोक से आयी हुई नागमदहारिणी (सर्पों के मद का
हरन करने वाली) सर्प शक्तियों की तरह नागमदहारिणी (हाथी के मद को
अङ्गराग रूप में त्याग से नुगोभित) थी । उनका अङ्ग तमाल के
अङ्कुर सदृश कोमल था । कुछ ने अपन नवीन अङ्कुर सदृश कण्ठ में लता सदृश
गजमुन्ध की मालाएं लगा ली थीं । अतः ऐसा प्रतीत होता था मानो घमस्त्र
हूए नपशों से मुक्त कृष्ण एवं लो रानिया ज़ीदा शरीर धारण की हुई हो ।

[रात जैसी काली थी और तारकमण्डल की तरह मुत्तामाला
पहन थी ।]

दोनों कानों में ला हुए हाथी दाँत निर्मित कर्णभूषणों की कान्ति ने
कुछ के मुखमण्डल ध्वस्त हो गये थे । ऐसा प्रतीत होता था कि देवदरी गग

के जल से घिरी हुई यमुना जल की अधिष्ठात्री देविषा नर्मदा के आमन्त्रण पर आयी हुई थी।

[हाथी दाँत से बने कर्णभूषणों की कान्ति गंगा का दृश्य उपस्थित करती है और उनके शरीर की नीलिमा यमुना के स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती है।]

कुछ रक्त पञ्चव तथा विद्युच्छता सहस्र करधनी पहने हुई थी। अतः विन्ध्याचल की चोटियों पर मंडराती हुई मेघमाला सहस्र लग रही थी। हाथियों के मदपुञ्ज (से बने हुए अङ्गराग में लिप्त शरीर) पर भनभनाने हुए भ्रमरो द्वारा और काली बना दी गयी थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि सभी नीलकमल-वनो की लक्ष्मियाँ विभिन्न जलाशयों से आकर उस महानदी नर्मदा में उतर रही थी। कुछ लाल अशोक कुमुदों के गुच्छों को कानों पर रखने हुई थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि शिवजी की वाणाग्नि की ज्वाला से श्यम वृद्धि वाली, धूम के कारण नीली, त्रिपुरासुर की रमणियाँ पान में उतर रही थीं।

[अशोक के लाल फूलों के गुच्छे कानों में आग की तरह लगते थे और उनकी शरीरगत नीलिमा धूम की नीलिमा की याद दिलाती थी।]

कुछ के पीछे सुन्दर मृग दौड़ रहे थे। अतः स्त्रियों के स्नान में अमुराग रखने वाली अञ्जन पर्वत की शरीरधारिणी अधिष्ठात्री देवियों की तरह लगती थीं।

[अत्यन्त कालिमा के कारण अञ्जन पर्वत की अधिष्ठात्री देवी से सन्तुलित की गयी हैं। सभ्य लोग अपने साथ कोई पालित जानवर लेकर चलते थे। जैसे इस शताब्दी के लोग कुत्ता लेकर चलते हैं। देविषा भी मृग लेकर चलती थी। इसीलिये मृगों से अनुगत सब तरुणियों को अञ्जनशिला की अधिष्ठात्री देवियों से सन्तुलित किया गया है।]

कृष्णाञ्जन पुष्प की कान्ति सदृश कान्ति वाली कुछ तो अत्यन्त वृद्ध किरात वञ्चुकियों के हाथ पर अवलम्ब देकर घूम रही थीं। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि इन्द्रनीलमणि की पुतलिकायें इन्द्रजाल खेलने वाले लोगों द्वारा चढ़ायी जा रही थीं। कुछ की नाक चिपटी थी। दाँत कुन्द पुष्प की तरह सुन्दर थे। बंधे हुए मयूतपखा के गुच्छों से वेणियाँ चितकवरी हो गयी थीं। वृद्धों के कारण अधिक ध्वज करने वाले बरतलों द्वारा अधिक जोर में तालियाँ बजाती हुई रमणीय एवं सुन्दर राक्ष-जीवाँ में मस्त थीं। कदम्ब का मद्य पीने के कारण उनकी आँखें गुर्रायी हुई थीं।

ततश्च ता सुक्ष्ममुक्ताफलधवलवालुकापुलिनपृष्ठे लब्धपदभागाः
स्वैरं म्यैरमनुचचरणचलनकमालकारितनूपुरवाकृष्टकलहंसकुल-
मनाकुलकलगीतनरङ्गासन्नरङ्गितकुरङ्गमनङ्गभावमूयिष्ठमनुभूय तौर-
विहारसुखम् . अनन्तरमकुरजलचरमवेगनदत्तलिलमुत्कुलदिविध-
विरसितान्बुजजातिजोषितजीवजीवकमुत्कूजिनकुरमारसितसारसमु-
न्मददासिहंसावर्तसमुरःप्रमत्ताच्छोदकमतिरमणीयं हृदयवातरन् ॥

उत्तरवेने ॥ अमुजजातिमिश्रीविता जीवजीवाः पक्षिविशेषा यत्र । दोषद्विभाषा,
इति कप । अमुजजातिरेव जीविन येयामिति वा । अतिप्रियावात् । उर प्रमाण वक्षो-
द्गममुदकं यत्र । सगाधे हि परमि न जगज्जीवा ॥

इसके बाद मुक्तामणियों के चूर्ण में धवन बानुका वाले तटप्रदेश पर
पैर रख कर (इच्छानुसार बिना बहुत पैर उठाये ही बगने के कारा लुपुओं
की मधुर ध्वनि से मनोहर हवों को आहूट कर लेती थीं । धीरे गीतनहरी
से समीपवर्ती मृगा के मानस को तरङ्गित कर दे रही थीं । कामभाव से
सम्पन्न तट-विहार-मुख का अनुभव कर रही थीं ।

इसके बाद छाती भर निर्मल पानी वाले अत्यस्त रमणीय सरोवर में
उठतीं । वहाँ कूर जलचर नहीं थे । पानी में बहुत वेगवान् प्रवाह नहीं था ।
विविध रंग के सिले हुए कमल वर्ग से जीवजीव नामक पक्षी प्रसन्नतापूर्वक
जीवन व्यतीत कर रहे थे । कुरर बोल रहे थे । सारस मधुर ध्वनि कर रहे
थे । पूर्ण प्रसन्न हृद ही उसके अच्छा रहे ।

अथतीर्य च ताः काश्चित्पद्मगपतिपुरन्ध्रय इषोद्गीर्णविषगण्डूपाः॥
काश्चिद्राससप्रमदा इष रक्तोत्पलाकृष्टिष्यसनिन्यः, काश्चिद्गोपाला-
ङ्गना इष गृहीतपुण्डरीकाङ्गाः, काश्चित्कार्तिकेयशरपङ्क्य इष विशले-
पितकौञ्चा, काश्चित्कुरुसेना इष धातैराष्ट्रशकुनिमार्गेणानुयायमाना,
काश्चिद्राश्रय इष विघटितचक्रवाकमियुताः, काश्चिच्छकोराङ्गना इष
चञ्चूकृतदीर्घकमलनालैः शशधरकरनिर्मलजलमास्थान्प्रन्यः, काश्चि-
त्वरिण्य इष सरसविसाग्राणि प्रसमानाः काश्चिज्जलयन्त्रपुत्रिका
इष संपुटितमुखपाणिपल्लवयुगलाग्ररन्ध्रेन्मुक्तसूक्ष्मवारिधाराः,
काश्चिद्नीरुनार्य इष प्रियवारितरणाः, अनगण्डशैलशिखरास्फालनो-
ल्ललत्तरङ्गान्तरतरत्तरुणताम्रसरमसुरमिसालिलभवगाहमानादिधरं
चिक्रीडुः ॥

अथतीर्य ॥ विपं जलं, गररच । रक्तोत्पलं रक्षाजं, रक्षेणोत्पलं पलं मासं च ।
गृहीतपुण्डरीकं अवलोकितसिताम्बुजे अचिरी यासाम् । चक्षुषो हि ग्रहणमव-
लोकनमेव । यथा श्रोत्रानामाकर्णनम् । अथवा शैथान्येनैवत्यस्ताङ्गा । अथवा पुण्ड-

रीकासः कृष्णः कौञ्चः पक्षी गिरिश्च । एतराष्ट्रो दुष्योधनस्य पिता, शकुनिर्मातुलः । पक्षे एतराष्ट्रो हंसः । यद्विधः—'एतराष्ट्रं सुराजि स्यात्पक्षिचप्रियभेदयोः' । शकुनिः पक्षी । अधश्चूनि चञ्चूनि कृताति चञ्चूकृतानि । अन्यत्र चञ्चवो कृतानि एतानि यानि दीर्घकमलनालानि तैः सदाधरकरनिक्खवलिर्मल जलम् । अन्यत्र किरण-
निकर एव निर्मलजलम् । चकोर्यो हि चन्द्रकरान्पिबन्ति । प्रिय वारिणो जलस्य तरणं यासाम् । अन्यत्र वारितो निपिदो रणो यवाभिः । ता वारितरणाः, प्रियाणा वारितरणा प्रियवारितरणा ॥

सर्वराज की पत्नियाँ जैसे बिप (जहर) का कुछा चक्ती हैं वैसे उनमे से भी कुछ पानी में डल कर बिप (जल) का कुछा कर रही थीं ।

राक्षसपत्नियाँ जैसे रक्तोत्पलाकृष्टिब्यसनिनी (अधिरपूर्ण उत्कृष्ट पल (मांस) खींचने की आदत वाली) होती हैं वैसे ही कुछ रक्तोत्पलाकृष्टिब्यसनिनी (लाल कमल तोड़ने की अभ्यासी) थीं । गोपपत्नियाँ जैसे गृहीतपुण्डरीकाक्ष (कृष्ण की (आदर से) ग्रहण करती) हैं वैसे वे भी गृहीतपुण्डरीकाक्ष (कमल महश नेत्र धारण कर रही) थीं । कार्तिकेय के बाण जैसे विरलेपित कौञ्च (कौञ्च पर्वत को छिन्न कर देने वाले) हैं वैसे वे भी विरलेपितकौञ्च (पक्षियों को अलग करने वाली) थी ।

कोरवो की सेना जैसे भार्तराष्ट्र (दुष्योधन) और शकुनि के बताए हुए मार्ग से चलती थी वैसे वे भी भार्तराष्ट्र शकुनि मार्ग (भार्तराष्ट्र (हंस) नामक शकुनि (पक्षी) के मार्ग) से दौड़ रही थीं । जैसे राजा के कारण चक्रवाक का जोड़ा बिलग हो जाता है वैसे उन्हें भी देग कर बिलग हो जाता था ।

[अत्यन्त काली होने के कारण इन्हें भी रात ही समझता था ।]

चकोरपत्नियाँ जैसे चन्द्राकिरण रूप निर्मल जल का आस्वादन बाँच से करती हैं वैसे वे भी लम्बे कमल दण्ड को बाँच बना कर चन्द्रकिरण सहस्र निर्मल जल पी रही थी । कुछ हयिनिधियों की तरह कमलतन्तु के अग्रभाग को खा रही थीं । कुछ जलयन्त्रपुत्तलिका की तरह करपल्लव युगल की बन्द अञ्जलि बनाकर उसमे पानी की थोड़ी-थोड़ी धारा गिरा रही थीं । शायर नारियाँ जैसे प्रियवारित + रणा (अपने प्रिय को लड़ाई में जाने से रोकती) हैं वैसे वे भी प्रिय + वारि + तरणा (वारितरण) (जल में तैरना पसन्द करती) थी । स्तनशिला की चोटियों में टकराने के कारण उत्पन्न होने वाली तरङ्गों के बीच पूर्ण विवक्षित कमलों के मधु से सुगन्धित जल में स्नान करती हुई वे देर तक खेलती रहीं ।

[रक्तोत्पलाकृष्टिब्यसनिनी — राक्षसपत्नीपक्ष में उत्पल दण्ड का अर्थ उत्कृष्ट मांस है । राक्षसपत्नियाँ जैसे अधिरपूर्ण मांस खींचने में अनुरक्त रहती

हैं वैसे वे शहर सन्निधौ रक्त (रक्त) अल्प (कमल) तोड़ने की अभ्यासी थीं । मनोविनोद के लिये फूलों को तोड़ लेती थीं ।

गृहीतपुण्डरीकाक्ष—गोपवधुएं पुण्डरीकाक्ष (कमल सहस्र नेत्र वाले) भावान् हृद्य को आदरपूर्वक पकड़ती हैं । वे शहर सुवर्तिषा भी पुण्डरीक सहस्र नेत्र धारण करती हैं । इस पक्ष में गृहीत शब्द धारण जय में प्रयुक्त हुआ है ।

विरलेपितश्रीञ्च—काविकेय जी ने अपने बान से श्रीञ्च पर्वत का भेदन कर दिया था । शहर सुवर्तिषों ने भी श्रीञ्च पर्वतों को अभ्यर्च कर दिया है ।

श्रीञ्च शब्द यदि यहाँ पञ्चामास्य का वाचक माना जाय तो भी सगति बैठ जाती है क्योंकि सब पक्षी रात को करने करने चोंचने में चले जाते हैं । वे मायिकायें इसी काशी हैं कि उन्हें देख कर पक्षियों को रात्रि का भाव हो जाता है अतः वे भाग जाते हैं । श्रीञ्च शब्द का ही एक भेद है । जल के समीप रहने वाली यह एक विहग जाति है । विनोदप्रिय शहराङ्गनायें सरोवर तट पर इधर उधर दौड़ती घूमती हैं अतः पक्षी वहाँ से भाग गये हैं । इस प्रकार भी विरलेपितश्रीञ्चः का उपपादन किया जा सकता है ।

धार्तराष्ट्रशकुनिमार्गः—शुतराष्ट्र का पुत्र होने के कारण कुयोधन को धार्तराष्ट्र कहा जाता है । कुसेना कुयोधन और शकुनि के द्वारा हुए मार्ग के आधार पर चन्द्रा भी । तबनिमा भी धार्तराष्ट्रशकुनि मार्ग से दौड़ रही हैं । धार्तराष्ट्र शब्द इस का भी वाचक है । शकुनि का अर्थ पक्षी है । अर्थात् इस पक्षी के रास्ते से दौड़ रही हैं । विनोद के लिये हवों को पकड़ना चाहती हैं अथवा सरोवर तट का रास्ता हवों का ही मुख्य मार्ग है । इस समय वे सुवर्तिषा भी वहाँ के रास्ते में चल् रही हैं ।

अबुहृददीनकमन्त्रालैः—अक्षोरपत्निषा अक्षरिण को ही अपनी बाँधों से पीड़ी है । अक्षोरपत्नी पक्ष में राक्षसपत्निर्मज्जरन् में रूपक है । अर्थात् अक्षरिणस्य निर्मल जल को अक्षोरवधुएं पीती हैं । शहर सुवर्तिषा कमन्त्राल को बाँध बनाकर अक्षरिण सहस्र निर्मल जल पीती हैं । इस पक्ष में उपमा है । कमन्त्राल का मध्य भाग फोड़ होता है । उसके एक भाग को पानी में लगा दिया जाय और दूसरे भाग को मुँह में लगा कर ऊपर की ओर हवा खींची जाय तो कमन्त्राल के मध्य से मुँह में पानी आ जाना, शहरसुवर्तिषा इसी विनोदबद्ध्य हव से जल का आस्वादन कर रही हैं ।

अभ्यन्त्रपुत्रिका—मुँह में पानी भर कर दोनों हाथों में मुँह को दब कर के दोनों हाथों के बीच साधारण छिद्र बनाकर धीरे धीरे पानी गिरा रही हैं । ऐसी स्थिति में वे अभ्यन्त्रपुत्रिका की तरह लगती हैं । पानी का प्रवाह बनाते समय लोग कहीं सर्प का मुख बना देते हैं कहीं गैड़े का

मुख बना देते हैं। उन्हीं मुखों से पानी की धारा निकलती है। कही-कहीं आदमी का भी आधार बना कर मुख से पानी बहाने का शौक देखा जाता है। इसी आकृति को ध्यान में रख कर यह तुलना यहाँ निदिष्ट की गयी है।

प्रियवारितरणा—कायर नारियाँ अपने प्रिय को रण में जाने से मना कर देती हैं। इस पक्ष में प्रिय + वारित + रणा यह विच्छेद है। अर्थात् प्रिय को वारित (निवारित) कर दिया है रण में जिसने। सबर युवति पक्ष में—प्रिय (पसन्द) है वारि (जल में) तरण (सैरना) जिनको। अर्थात् कुछ युवतियाँ जल में सैर रही हैं। सैरना उनकी मनपसन्द क्रीडा है।]

अचनिपतिरपि विस्मययिस्मृतनिमेषोन्मेषनयनस्नाश्चिरमवलोक्य चिन्तयाञ्चकार ॥

राजा भी आश्चर्य के मारे निनिमेष दृष्टि से उन्हें देर तक देख कर सोचने लगा—

जातिर्यत्र न तत्र रूपरचना नेत्रोत्सवारम्भिणी

रूपधीरपि यत्र तत्र सुलभ- इत्याद्यो न जन्मोदयः ।

इत्येकस्थानमस्तसुन्दरगुणप्रद्वेषमभ्यस्यतो

धातस्तात वृथाश्रमस्य भवतः सृष्टिक्रमो दृष्टताम् ॥ ५७ ॥

जहाँ सुन्दर जाति है वहाँ आँखों की आनन्द देने वाली रूप रचना नहीं, और जहाँ सौन्दर्यलक्ष्मी है वहाँ प्रसन्ननीय कुल नहीं उपलब्ध होता। 'एक ही जगह सभी अच्छे गुण रहें' इस बात में द्वेष का अभ्यास रखने वाले और व्यर्थ परिश्रम करने वाले, हे तात ब्रह्मन् ! आप का यह सृष्टि-क्रम नष्ट हो जाय ॥ ५७ ॥

तथा हि—

प्रीयालम्बितपद्मनाललनिकाः कर्णावतंसीकृत

प्रत्यप्रोन्मिपतासितोत्पलदलैः सन्दिग्धनेत्रद्वयाः ।

कस्यैता जलदेवता इव कुचप्राग्भारमुन्मोर्मयः

स्नानासक्तपुलिन्दराजवनिता- कुर्धन्ति नोत्कं मनः ॥ ५८ ॥

कपोकि—

स्नान में लगी हुई जलदेवता की तरह ये कियतर्पायियों की रमणियाँ— जो गले में मृणाळ की माला पहनी हुई हैं, नयन विकसित नीलकमलों के दलों की, जो दो नेत्रों की भ्रान्ति उत्पन्न कर दे रहे हैं, कानों में पहनी हुई हैं, स्तनों के प्रथम प्रहार से लहरियों को झुणित कर दे रही हैं—किसके मन को उत्कण्ठित नहीं कर देती ॥ ५८ ॥

अपि च—

एनस्याः करिकुम्भसंनिभकुचप्राग्भारपृष्ठे लुठद्-
गुह्यागर्भगजेन्द्रमौक्तिकसरश्रेणीमनोहारिणि ।
दूरादेत्य तरङ्ग एष पतितो वेगाद्विलीनः कथं
को धान्योऽपि विलीयते न सरसः सोमन्वितासंगमे ॥ ५९ ॥

एतस्या इति ॥ मौक्तिकमरो मुक्तादाम ॥ ५९ ॥

बीच-बीच में गुह्ये से मुक्त गजमुक्ता की माण की लट्टियों के कारण
मनोहर इसके करिकुम्भ कहस स्त्रियों के प्रथम जंग में दूर से आकर टकराता
हुआ यह प्रवाह विचिन हो गया । दूरा भी कीन ऐसा सरस आदमी है
जो जो सङ्गम की स्थिति में विचिन नहीं हो जाता ॥ ५९ ॥

इयं तु—

निजप्रियमुखभ्रान्त्या हर्षेणाचुम्यदम्बुजम् ।
वदधरा तु मृद्वेण सौत्कारमकरोन्मृदु ॥ ६० ॥

अपने प्रिय के मुख की भ्रान्ति ने प्रसन्नता के कारण इसने कमल का
चुम्बन किया । भरनर ने इसके अरारु को काट लिया । अत्र रोमन्तापूर्वक
सौन्दी कर रही है ॥ ६० ॥

अनयापि—

अविरतमिदमम्भ स्वेच्छयोच्छालयमस्या
विकचकमलकान्तोत्तानहस्तद्वयेन ।
परिकलित इवार्थः कामवाणातिथिम्यः
सलिलमिष वितीर्ण बाल्यलीलासुखाय ॥ ६१ ॥

जिसे हुए कमल सहस्र हाथों को उठाकर स्वेच्छया निरन्तर इस जल को
उछालती हुई ऐसी का रही है, मानों कामवास के अतिथिया (कामियो) को
वर्ष दे रही है और शैशवभुजग मुक्तों को तिलाञ्जलि दे रही है ॥ ६१ ॥

[बाल्यकाल की परिस्रान्ति तथा जीवन के प्रारम्भ का संकेत इस पद्य
में किया गया है ॥ ६१ ॥]

अस्याश्च—

कर्णमूलविषये नृदु गुह्यन्गणिपल्लवहनोऽपि हठेन ।
एष पट्पदयुवा हरिणाश्यादचुम्यति प्रिय इवाम्यसरोजम् ॥ ६२ ॥
करपन्त्र से मना किये जाने पर भी यह अनर-युवक कानों के समीप कुछ
मधुर गुञ्जार का ॥ हुआ बगलकार प्रिय की तरह इस हरिसदृश नेत्रों वाली
नायिका के मुख कमल का चुम्बन करता है ॥ ६२ ॥

इतोप्येया—

भ्रमकरं मकरं मकरन्दिनीं कमलिनीमलिनीमलीनीकृताम् ।

तरलयन्तमवेक्ष्य महामयादुदतरत्सरितस्त्वरितैः पदैः ॥६३॥

भ्रमकरमिति ॥ मकरन्दोऽस्यस्यां मकरन्दिनीम् । तथा अलिनीभिर्भुङ्गीभिर्मलिनीकृता कललिनीं तरलयन्तं चिपन्तं भ्रमकरमावर्तकरं मकरं यादोविशेषं विलोभ्य यदुत्पन्नं महामयं तस्माच्चरितैरुत्ताले. पादक्रमैरसौ शयरसुन्दरी सरित उत्तीर्णा ॥

इधर यह भी—

अलिनी (भ्रमरिया) द्वारा मलिन बनायी हुई कमलिनी को उद्वेलित करते हुए और (पानी में) चक्कर उत्पन्न करते हुए घड़ियाल को देखकर उर के मारे जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाकर नदी से बाहर निकल गयी ॥ ६३ ॥

एताश्च—

मन्दायते दिनमिदं मदनोऽपि सज्ज-

स्तत्किं न गच्छत गृहानिति पद्मिनीभिः ।

मीलत्सरोजगतभृङ्गरुनैरिषोक्ताः

स्नात्वा शनैरनुरसन्ति तटं तदप्ययः ॥ ६४ ॥

“अब दिन समाप्त हो रहा है । कामदेव ने भी अपनी तैयारी कर ली है । तुम लोग घर क्यों नहीं जा रही हो ?” मानो इस तरह, मुकुलित होने हुए कमलो के बीच भ्रमरो की गुनगुनाहट रूप खरदो के माध्यम से कमलिनियों द्वारा कही गयी तरुणिया स्नान कर तट की ओर आ रही हैं ॥ ६४ ॥

[भ्रमरो के शब्द के बहाने कमलिनियों ने मानो तरुणियों से घर जाने के लिये कहा, क्योंकि सन्ध्या हो चली थी और काम ने अपनी तैयारी कर ली थी ॥ ६४ ॥]

एवमनेकविधविलासासकशयरसुन्दरीदर्शनाद्वादपुलकिते विविध-
वितर्ककारिणि पङ्कनिमग्नजरत्करेणुकायमाननिःस्पन्ददृशि तत्काल-
मुत्पन्नया मनाङ्गमन्मथव्यथया धीरतया च स्पृहया च विचिकित्सया
च जिघृक्षया च जिह्वासया च समकालमाकुलिते हृदये संकीर्णभाव-
माजि राजनि, राजीववनविराजिते तस्मिन्मर्मदाह्ने खलिलक्रीडा-
सुषमतिचिरमनुभूय तीरभुवि सेव्यसितसैकतस्थलीमलंकुर्घाणासु
च तासु शयरराजसुन्दरीषु श्रुतशीलश्चिन्तितधान्—

इस तरह विविध विलासा म लयी हुई किरात युवतियों को देखकर आनन्द के मारे उते रोमान्च हो गया । कई तरह के तर्क मन में उठने लगे । कीचर में पड़ी हुई बुढ़िया हडिनी की तरह आँसें विभिन्नमेव हो गयी । तत्काल उत्पन्न

जान की पीड़ा की स्थिति में एक ही समय धैर्य, आकर्षण, संयम, ग्रहा और त्याग की विभिन्न भावनाएँ इच्छा जा में राजा का हृदय भर गयीं। कमलवन में सुशोभित नर्मदा नदी के उस सरोवर में देर तक बलविहार कर किरात पतियों की मुद्रादिवा इन्त बाहुनामकी रमणीय तटभूमि पर आ गयीं। श्रुतशील मोचने लगा—

‘उन्मादि यौवनमिदं शयराङ्गनानां
वेधोऽप्ययं नयययाः कमनीयकाम्निः ।
रेवानदं चलच्चकोरमयूरहारि
किं स्यान्न वेदि जयिनी च मनोमवासा ॥ ६५ ॥

“शवर युवतियों का यह उन्मादक यौवन है। महाराज भी अत्यन्त सुन्दर कामिनीवाले स्वयुवक हैं। चलचच्चकोर और मयूरों के कारण यह रेवा का तट अत्यन्त मनोहर हो गया है। कामदेव की विजयशील भासा का बाटाबरा प्रभूत है। ऐसी स्थिति में क्या होगा, यह समझ में नहीं आता ॥ ६५ ॥

[शृङ्गार = आम्बन शवर युवतियों और नल तथा चकोर, मयूर, रेवा-तट आदि उद्दीप्त कामिनी का उचित प्रयोग यहाँ हुआ है ॥ ६५ ॥]

तथाहि—

विकल्पति कलाकुशलं, हसति शुचिं, पण्डितं विदम्बयति ।
अधरयति धीरपुरुषं, क्षणेन मरुस्वजो देवः ॥ ६६ ॥

विकल्पतीति ॥ अधरयति विपुलयनीत्यर्थः ॥ ६६ ॥

क्योंकि—

महाराज कामदेव एक साथ में कलाकुशलों को भी विकल्प कर देते हैं। पवित्रों को भी हास्यास्पद बना देने हैं। विद्वान् को भी धोने में डाल देने हैं और धीर पुरुष को भी नीचा दिखा देते हैं ॥ ६६ ॥

अपि च—

मध्ये त्रिवन्त्रीत्रिपथे पाँचरकुचचत्वरे च चपलदृशाम् ।
छन्दयति मदनपिशाचः पुरुषं हि मनागपि स्खलितम् ॥ ६७ ॥

चंचल मनवाली रमणियों के ऊपर, त्रिवन्त्री (उदर की पेटो) रूप निमार्ग तथा स्थूल स्तनरूप चौराह पर पाडा भी विचञ्चित पुरुष को कामपिशाच परेशान कर डालता है ॥ ६७ ॥

[यह लोचनमान्य में प्रसिद्ध है कि चौराहे पर पिशाच रहते हैं। यदि कोई जगद्विष आदमी उस रास्ते से जाता है तो उसे पकड़ लेते हैं। त्रिपथ की

त्रिवली को त्रिमार्ग और स्तनो को चोराहा कहा गया है । इन पर विचलित होने पर कामपिशाच बहुत परेशान करता है ॥ ६७ ॥]

तदस्तु प्रस्तुतरसानुनयेनैव प्रभूणां मतयो निवर्त्यन्ते निषिद्ध-
निषेवणात्, न प्रतिकूलतया' इत्यवधारयश्रवनिपतिमरादोत् ॥

तदस्तिवति ॥ निषिद्धस्य निषेवण मेवनमाप्रदस्तस्मात्सकाशात् प्रभूणां मतयः
प्रकृतरसानुमस्यैव व्यावर्त्यन्ते, न प्रतिकूलतया हठात् निषिद्धस्थानभिजातसङ्गमा
देराप्रद कुर्वाणः प्रभुः सहाभसंपदामुजीविना निवार्य । पर तदभिमर्तं प्राक् पुर
दृश्य दोष च दर्शयिष्या । सहसा निवार्यमाणो हि पराभवमिव मन्येत ॥

अच्छा, स्वामियो की बुद्धि को निषिद्ध पदार्थ के सबन की ओर से प्रासंगिक
वातावरण न अनुकूल चचा द्वारा ही निवर्तित किया जा सकता है, प्रतिकूल
चर्चा द्वारा नहीं ।" यह विचार करता हुआ राजा से बोला—

‘देव’ रमणीयः सत्त्वयं प्रदेशः ॥

महाराज, निश्चित ही यह रमणीय स्थान है ।

तथाष्टात्र—

आह्लादयन्ति मृदयो मृदितारविन्द-

निष्यन्दिमन्दमकरन्दकणाग्निरन्तः ।

एते किरातचनितास्तनशैलगण्ड-

संघट्टजर्जरद्वयः सरित समीपः ॥ ६८ ॥

बोकि यहाँ—

आमर्दनप्राप्त कमलो से चूने वाले मधुबिन्दुओं को बिखेरती हुई, किरात-
परिनियों के स्तनशैल के तट से टकराने के कारण जर्जर कान्तिवाली नदी की
कोमल (मन्द) हवा आनन्द दे रही है ॥ ६८ ॥

एताश्च—

उपनदि पुलिने पुलिन्दवध्वः स्तनपरिणाहविनिर्जितेभकुम्भाः ।

शिथिलितसलिलाद्द्रुक्शयन्धाः किमपि मनभोयवैभवं चदन्ति ॥ ६९ ॥

और इन—

छावर परिनियों ने भी स्तन की त्रिशालना से हाथियों के कुम्भस्थल को जीत
लिया है, जल से आर्द्र वेणीबन्धन को शिथिल कर दिया है और नदी के समीप-
वर्ती तट पर कामदेव के अपूर्व ऐश्वर्य को धारण कर रही हैं ॥ ६९ ॥

इतथाचलोऽयतु देवः—

सरसिजमकरन्दामोदमत्तालिर्गोत-

धयणसुधनिमीलच्चक्षुषः किंचिदेते ।

अपि दिवसमशेषं निश्चलाद्वाः कुरङ्गाः
पुलिनमुषि विद्वाराद्वारवन्ध्या वसन्ति ॥ ७० ॥

मरिचेति ॥ अग्निमिष्टकमे तनोऽशेषमपि दिवसमनिर्ययं ॥ ७० ॥

इधर भी देवें धीमान्—

निरवय अंगों वाले ये मृग कमल की मधुमय गन्ध में मस्त भ्रमरो का
गान सुनकर मुख के मारे आँखों को कुछ बन्द कर भ्रमन और भोजन दोनों को
छोड़कर इस मृदु गर सारा दिन व्यतीत कर देन हैं ॥ ७० ॥

इतोऽपि—

पद्मान्यानपचारणानि नल्लिनीपत्राणि पर्यङ्किता
द्रोन्ताम्बोलनदोहदोऽपि च चन्द्रदीर्घाचर्यैः पूर्यते ।
आहारो विसपल्लवं पुलिनमूर्त्तिलाविहारस्पदं
रेखाचारिणि राजहंसशिखरिस्तिष्ठन्ति धम्याः सुखम् ॥ ७१ ॥

पद्मानो दे ॥ अत्रापपद्माप्रभृतयो राजवर्मा राजहंसशिखरिस्तिष्ठन्ति धम्याः सुखम् ॥ ७१ ॥

और इधर—

जहाँ धूप निवारण करने वाले छाते का काम कमल करने हैं, कमलिनी-
पत्र पत्रग का कार्य कर रहे हैं; चम्बल तरङ्गसमूह झूझ झूझने की इच्छा पूर्ण
कर दे रहे हैं; भोजन का काम मृगान्पल्लव में चरता है; लीलापूर्वक विहार
करने का स्थान यह तटीय प्रदेश है, ऐसे रेखा के जन में भाग्यवान् राजहंसों
के बच्चे मुखपूर्वक निवास करने हैं ॥ ७१ ॥

इहापि—

चिरधिरचितचाटुश्चन्द्ररेखायमाणः
प्रथमरसधिसाप्रग्रासलीलार्पणेन ।
इह रमयति हंसी राजहंसो रिरंसुः
पुलकयति च चञ्चुकोटिकट्टयनेन ॥ ७२ ॥

महाँ—

रमन की इच्छावाला यह राजहंस बहुत देर में चाटुशरित्त करता है, चन्द्र की
तरह अपनी जाहृति बनाना है । प्रथम रस (उच्छृष्ट प्रेम) से मृगाल के अग्रभाग
का स्पर्शन करता है । चौथे के अग्रभाग में मुँजआकर हंसों को पुनरित और
अनुरक्त करता है ॥ ७२ ॥

अपि च—

इह चरति चकोरः कोरकं पङ्कजाना-
मिह चलदलिचक्राचक्रवाको विभेति ।

इह रमयति जीवजीवको जीवितेशा-

मिह वहति विकारं हारि हर्षितकोऽपि ॥ ७३ ॥

इह चरतीति ॥ प्रतिष्ठमानमृद्वृन्दाधकवाको विभेतीति तपस्विनीभ्रातृवेति शेष । जीवजीवक पक्षी जीवितेशा रमयतीति सम्बन्ध ॥ ७३ ॥

और इधर देखिये—

यहा चकोर कमल की कलियों को चर रहा है । बड्कल घमर वर्ग से चक्रवाट डरता है । जीवजीवक पक्षी अपनी प्राणप्रिया के साथ खेल रहा है । मनोहर हारीतक (ताता) भी (काम) विकृति का अनुभव कर रहा है ॥ ७३ ॥

एयमसौ निपथेभ्वर, श्रुतशीलेन प्रज्ञापूर्वमपरमणीयप्रदेशान्तर-
दर्शनव्याजेनान्तरितशायरसुन्दरीदिदृश्याग्रहो गृहान्प्रति प्रत्यावृत्तः ॥

इस तरह श्रुतशील ने सुदिमानी क साथ दूसरे रमणीय प्रदेश को दिखाने के बहाने किरात कामिनियों को देखने की इच्छा को भोडकर निवाम-
स्यान की ओर नल को लौटा लिया ।

चिन्तितयांश्च—

‘कथं नु सा दमयन्ती पुरंदरप्रमुखेषु लोकावालेष्वर्थिषु मया
मनुष्यजन्मना लब्धव्येति । निवारयिष्यन्ति च ता पल्लु दिव्य
सम्बन्धार्थिनो यान्धवाः । नत्किमिह शरणम्’ इति विमुक्तदीर्घनिः-
सहनिःश्वासमसकृच्चिन्तयति राजनि ‘राजन्, रामाजन, पद्म इव
धारित सुतरां प्रवर्तते । नाललस्य दीर्घमनुरक्तस्य जायतेऽपरागो
नाप्यलीकामिनिवेशोऽस्य ह्रीयते । किंचान्यदन्यपरिग्रहवर्तिनीनामपि
स्त्रीणामन्यत्रापि रागाग्रहो भवति । यतः पद्म वरुणप्रतिग्रहेऽपि
प्रतीचीर्य मयि रागिणी भविष्यति’ इत्येवमिममाश्वासयन्निध भग-
यान्भानुस्तुङ्गतस्तुङ्गतरुशिखराणि करे, पतनभयादिवाचलम्बमानः शनैः
गंगतलादवनोर्यं प्रतीचीं दिशमयासीत् ॥

कथं नु हेति ॥ इन्द्रादिवरेषु सारमु मयि विषये कीदृगनुराग, यन्धवोऽप्येना
दिग्दसयन्धार्थिवाक्तेष्वेव प्रोमाहयिष्यन्ति, इति चिन्तयति राजनि क्रमेणाव-
रादवतीर्य भगवान्भानु पश्चिमागतात् । किं कुर्वन् । इमं नृपमियमुना प्रकारेणा-
श्वासयन्निध । तमेव प्रकारमाह—अहो राजराजना येनसि नैतच्छि-तनीयम् ।
यदिभ्यसम्बन्धार्थिनो यन्धव पृता निवारयिष्यन्तीति तदवास्मत्तो विरुचयतीति ।
यतो रामाजनो धारितो निषिद्धोऽनीव प्रवर्तते । तथाऽस्य स्त्रीजनस्य दीर्घमनु-
रक्तस्य बहुकाल सानुशास्य सतोऽलम्ब्यर्थं न रामापाय स्यात् । तथास्यालीकोऽ-
प्यभिनिवेशो न ह्रीयते । किं पुनर्यादृशव्यभिनिवेश । यथा यत्रोऽज धारितो

अलापप्रवर्तते । तथास्य रक्तस्य मतो नालं काण्डं दीर्घमनु सह परागो भकरन्दः स्यात् । तथास्त्री मृद्धो कं जल तथोरभिनिवेश प्रवेशः सोऽप्यस्य न हीयते न हीनः स्यात् । किं चान्यदुच्यते । स्वीकृतानामपि स्त्रीणां पुरुषान्तरे रागानुबन्धः । यस्मात्सप्रयदि परस्य त्वं बहुरस्वीकृतापि पश्चिमाशा ममापि विषये रागिणी भविष्यतीति । पञ्चशब्द उभयपक्षिन् ॥

इन्द्र आदि प्रमुख लोकपाल जिसके वाचक हैं उस दमयन्ती को मनुष्य योनि में उत्पन्न मैं क्यों न प्राप्त करूँ ? देवताओं से सम्बन्ध रखने की कामना-वाले उसका बान्धव उसे रोकेंगे भी । ऐसी स्थिति में क्या उपाय है ? इस तरह लम्बे-लम्बे असह्य स्वासों को भरता हुआ राजा सोच रहा था तब तक, “राज्ञन्, स्त्रीजन कमल की तरह बारिह होने पर और प्रवृत्त होने हैं । पूर्ण अनुरक्त हो जाने पर इनका अनुराग का अपराग (अभाव) नहीं किया जा सकता । इनकी मूठी प्रवृत्ति भी निवारित नहीं की जा सकती । अधिक क्या कह ? विवाहित स्त्रियों का भी दूसरे लोगों में हठपूर्वक प्रेम देखा जाता है । क्योंकि, देखो, पश्चिम दिशा का विवाह करा में हुआ है, फिर भी यह मुझमें अनुरक्त होगी ।” मानो इस तरह का आश्वासन देने हुए भगवान् दूर्य मानो गिरने के भय में ऊँचे पेड़ों के अग्रभाग से करों (किरणों) की टेंक लेकर धीरे धीरे आकाश से उतर कर पश्चिम की ओर चले गये ।

[स्त्रियों को कमल की तरह बताया गया है । कमल बारिह में उत्पन्न होते हैं । यहाँ बारिह छद्म से तसिल् प्रत्यय हुआ है । स्त्रीजन में बारिह रामाजन. का विशेषण है । इसका अर्थ है—निवारित करने पर भी । बारिह एक ऐसा साधारण धर्म है जो स्त्रीजन और कमल दोनों में लगता है । कमल बारिहः (अन्त में) उत्पन्न होता है और स्त्रीजन बारिह (निवारित) होने पर भी प्रवृत्त होता है ।

रक्तस्य अस्त्रं नालम् दीर्घम्—नाल कमल का नालदण्ड बड़ा होता है और उसमें पराग भी होता है । जायनेअपराग इस योग में कमलपक्ष में क्षण्डाकार (S) नहीं माना जायगा । अतः इसका तात्पर्य होगा “जायने पराग.” अर्थात् लम्बे नालदण्ड वाला लाल कमल परागपूर्ण होता है । नाप्यश्रीकोऽभिनिवेशोऽप्य हीयते—अश्री (भ्रमर) और क (जल) इन दोनों में इसका अभिनिवेश (प्रवेश) बन्द नहीं होता । अर्थात् भ्रमर और जल से इसका सम्बन्ध रहता ही है ।

स्त्री भी यदि किसी में अनुरक्त हो जाती है तो निवारित करने पर भी नहीं मानती । दीर्घम् अनुरक्तस्य स्त्रीजनस्य न अल्पम् अपरागः जायते—स्त्रीजन जब पूर्णरूप से अनुरक्त हो जाता है तो उसके प्रेम का अभाव पूर्णतः

नहीं होता। अलीकोऽपि अभिनिवेशोऽस्य न हीयने—इसकी झूठी भी प्रवृत्ति घटती नहीं। परिणीत स्त्रीया भी दूसरे में अनुरक्त हो जाती हैं। इसी बात के समर्थन के लिये कहा गया कि पश्चिम दिग्बधू का परिणय वरुण के साथ हुआ है, किन्तु वह कान्तिशील भगवान् सूर्य को देखकर रोगान्वित हो रही है। उसके आकर्षण में जल्दी गिर न जाय, मानो इस भय से पेड़ों का सहारा अपने करो (किरणों) से ॥ रहे हैं। सन्ध्या का समय है। अस्त होते हुए भगवान् सूर्य की किरणों पेड़ों की डालियों पर दील रही हैं। सन्ध्या राग से पश्चिम की दिशा अलग हो गयी है।]

अम्बरान्तःप्रसारितकरे रागिणि रक्तया परियुक्ते तु पश्चिम-
ककुभाऽम्भोजिनीजीवितेश्वरे ॥

अम्बरान्तरिति ॥ मयोन्त प्रसारितास्तौ इक्षतान्विते रक्तया पश्चिमया दिशा युक्ते
सायम्भोजिनीजीवितेश्वरे श्वौ प्राप्या चिन्तितम् ॥

अम्बर (आकाश वस्त्र) में कर (किरण पाणि) फैलाकर रागपूर्ण होकर रागिणी पश्चिम दिशा के साथ कमलिनी के प्राणप्रिय (सूर्य) के चले जाने पर—

[भगवान् सूर्य पर नायक और पश्चिम दिशा पर नायिका व्यवहार का आरोप किया गया है। अम्बर शब्द आकाश और वस्त्ररूप अर्थ का उपास्थापन करता है। कर शब्द किरण और पाणि का वाचक है। राग शब्द से लाल रंग और अनुराग दोनों अर्थ समझे जाते हैं। कमलिनी के प्राणप्रिय सूर्य अनुराग प्रदर्शन करते हुए रागिणी पश्चिम दिग्बधू के साथ चले गये।]

पूर्वाहं विहितोदयाहमसकृच्छ्रमां विहायाधुना

यस्यामस्तमुपैति तां कथमयं रागी जघन्यामगात् ।

इत्येयं दलयितांशुके दिनपतौ याते दिशं पश्चिमा-

मीर्ष्यारोपविपादिभीष तमसा प्राची ककुब्धयते ॥ ७४ ॥

तदाह—पूर्वति ॥ आद्याहम् । तथासकृद्विहितोदयाहं तस्माद्यस्यामस्तमेति जघन्या च निरृष्टा तामिमां रागी आरुह्य सन् रविमां विहाय कथमगात् । पश्चिमां दिश गते सिधिलाशावशुमति विषये य ईर्ष्यारोपोऽसूयाकोपस्तस्माद्विपादिनी च सती पूर्वा दिक् तमसाग्नकारेण लक्ष्यते । अन्यामपि प्रयमो कृतोदयां विहाय अस्तकारिणी निरृष्टा च यदा रागी बिलासयानि, तदा तस्मिन्निग्राधिलितवाससि पूर्वा स्त्रीर्ष्याविपादिनी तमसा तमोभावेन प्राप्यते ॥ ७४ ॥

“पहली मैं हूँ। अनेको बार मैंने उसका उदय किया है। फिर भी इस समय मुझे छोड़कर बड़े प्रेम से कैसे उस पापिनी के साथ चला गया जहाँ सदा उमका हास ही होता है।” इस तरह ईर्ष्या, क्रोध और विपाद से भरी हुई पूर्व दिशा

वंसुक (किरण वस्त्र) को स्थिति कर दिनपति (सूर्य) के पश्चिम दिशा में नाय चले जाने पर जन्वहारयुक्त दिनाई पड़ती है ॥ ७४ ॥

[पूर्वा शब्द पूर्व दिशा और प्रथम, दोनों अर्थ का वाचक है । प्रगाढ़ अनुराग उत्पत्ति और अवनति की प्रतीक्षा नहीं करना, भगवान् सूर्य की सदा उत्पत्ति हुई है पूर्व दिग्बधु के साथ । पश्चिम क सम्पर्क में वे जब भी गये हैं, उनकी अवनति हुई है । उनका उदय पूर्व के साथ होता है और अस्त पश्चिम के साथ । फिर भी रागिणी पश्चिमा के साथ राग होने पर उदयदायिनी पूर्वा की उम्हने छोड़ ही दिया । पूर्व की ओर जो अंधेरा छा गया है वह है पूर्व दिग्बधु का ईर्ष्या, क्रोध और विषाद से मग्नि हुआ मुख ॥ ७४ ॥]

विद्वेष्टपाकुलचक्रयाकमिथुनैरुत्पीडमाक्रन्दिते

कारुण्यादिषु मौलिनासु नलिनीष्वस्त्रं च मिथे गते ।

शोकेनेषु दिगङ्गनामिरभितः श्यामायमानैर्मुख-

निःश्वासानलधूमधनंय इवोदुर्गोर्णास्तमोराजयः ॥ ७५ ॥

विद्वेष्टेति ॥ उत्कृष्टा पीडा यत्रेभ्युदीडमिष्याक्रन्दिक्रियाविशेषणम् ॥ ७५ ॥

विद्योग के भय में चक्रवाक का जोड़ा जोर से क्रन्दन करने लगा । मानो कहाँ के मारे कमलिनियाँ बन्द हो गयीं । सूर्य अस्त हो गये । मानो शोक के मारे दिगङ्गनाओं का मुख काला जैसा हो गया । उनके निःश्वासरूप अल की धूमपङ्क्ति सहस्र अन्धकार जेलियाँ फैल गयीं ॥ ७५ ॥

[चक्रवाक रात को अपनी प्रिया से विपुक्त हो जाता है । विद्योग भय के कारण कहाँ क्रन्दन कर रहा है । उसकी सहानुभूति में कमलिनियाँ बन्द हो गयी हैं । दिग्बधुओं का मुख काला हो गया है । निःश्वास उत्पन्न की धूम-झेली ने धूमण्डल को आक्रान्त कर लिया है ॥ ७५ ॥]

तथाविधे च वेलाध्यनिकरे राज्ञः संध्यावसरमावेक्षितुमस्या-
सन्नविहारि हारि लीलाकिनरमिथुनमिदमगायत्—

ऐसे ही समय सन्धि के अदसर पर सन्ध्या बिधि की सूचना देने के लिये समीप में बिहार करता हुआ मनोहर किन्नर सुन्दर गान करने लगा—

‘रक्तेनाक्तं विनिहितमधोवक्त्रमेतत्कपालं

तारामुद्राः किमु कलयता कालकापालिकेन ।

संध्यावध्वाः किमु विलुडिता कौकुंभी शुक्तिरेवं

शङ्कां कुर्वन्नयति जलधावर्चमग्नार्कविम्बम्’ ॥ ७६ ॥

रक्तेनेति ॥ अधस्ताद्वक्त्रं यस्य तदधोवक्त्रमधोमुखम् । तथा रक्तेन रुधिरैर्नाक्तं लिप्तम् । तत्तयामृत कपालं काल एव कापालिकस्तेन तारा बध्वाप्येव मुद्रा दृच-

कारयानि हस्तपादादीनामस्याभरणानि कलयता युञ्जानेन किमुपन्यस्तम् ।
किमिविति वितर्कं । किंवा सध्यायै वा वधूस्तस्या सम्बन्धिनी कौकुमी शुक्तिर्विपरीत-
मधोमुखी लुटिता । एवमिथ गङ्गामुत्पादयत्समुद्रेऽर्धमग्नार्कविम्ब जययधुना ॥७६॥

“काल कापालिक बधिर भरे कपाल का मुख नीचा कर तारक मुद्राओं को धारण कर रहा है क्या ? सन्ध्या वधू की कुङ्कुमभरी सुक्ति उलट गयी है क्या ?” समुद्र में आधा डूबा हुआ सूर्य का विम्ब इन विभिन्न शकाओं को उत्पन्न कर रहा है” ॥ ७३ ॥

[अवषट् पथ क लोग कपाल हाथ में लिये रहते हैं । भस्म आदि के विभिन्न चिह्नो में अपने को चित्रित किये रहते हैं । रक्त, मदिरा आदि पदार्थों को पीत रहते हैं । भगवान् सूर्य वा सन्ध्या के समय आधा अश अस्त हो गया है और आधा बाकी है । वह लाल विम्ब ऐसा लगता है जैसे कापालिक (अवषट्) ने अपने कपाल में रक्त भरकर उसे उड़ेल दिया हो या उल्ट दिया हो । जाकाश के छिटकने हुए तारे उनके घरीर के विभिन्न चिह्नो की तरह लग रहे हैं । काल (समय) को ही यहाँ कापालिक बनाया गया है । समय ही तो व्यापारयिता है जैसे कपाल आदि उड़ेलन का व्यापारयिता कापालिक है । दूसरी उद्भावना है शक्ति के साथ । सूर्य का विम्ब ऐसा लगता है मानो सन्ध्या वधू की कुङ्कुम रखने वाली रंग की चिन्तुही उल्ट गयी है ॥ ७६ ॥]

अथ क्रमेण गगनमन्दाकिनीतीरतापसैर्विकीर्यमाणेषु संध्यार्धाञ्जलि जलचिन्दुवुदुदेप्विष किंचिदुन्मोलत्तु धिरलतरतारास्तयकेषु, वासरविरामघादितघाघेप्यमरसदनेषु, दह्यमानयहलधूपधूममज्जरी प्विष विषति विहरस्तांषु तनुतिमिरवल्लरीषु, स्वपत्पतत्रिकुलकोला-
हलेन वासार्धिधान्तागताध्यगस्वागतालापमिव कुर्वाणास्तु यन-
राजिषु, गन्धत्र परिभ्रमणपरिहारार्थमिव पद्मिनीना कोशपानमा-
चरत्सु चञ्चलचञ्चरीकेषु, रत्नयुग्मवोत्साहावेशमहामन्त्राक्षरेप्त्रिय श्रूय-
माणेषु महासरित्कूलकुलायनिलीनजलकुन्कुहकुहरितेषु, रामायण-
व्यनिकरेप्विष मन्दोदरीप्रहस्तप्रबोधितोत्सिक्तदशाननेषु संध्याप्रदीपेषु
जते जरत्कुम्भकारकुन्कुटकुटुम्बपक्षपिच्छविच्छाये मनाकमोनुविद्धे
संध्यारागे राजा विषादविस्मृतसंध्याद्विक परिजनानुबन्धात्संध्या
चयन्दे ॥

अर्थ ॥ कोश कणिका शपथविशेषश्च । वषमन्वयश्च न वास्याम हाथमें पद्मि-
नीना समीपे कोशपानम् कुर्वाणु मृद्विलामिषु । वासादरीप्रहृष्टपानिञ्जलिततैल
मिन्वर्निमुखेषु दीपेषु । रामायणसर्पेषु तु मन्दोदरीनाम्न्या पश्यता प्रहस्तेन
सेनान्या प्रकर्षेण बोधित उत्सिक्त उद्विक्त सन् दशाननो रावणो येषु तथाभूतषु ।
कुम्भकार कुन्कुट पक्षिविशेषश्च ॥

इसके बाद ऋषि से आकाशमन्त्रा के दृष्टदेव के तपस्विनी द्वारा दी गयी सूर्योपनिषद् की अथर्ववेदिक विचित्र दृष्टि विन्दुओं के बुद्धिबल की तरह कहीं कहीं तारा के गुच्छे निकल रहे थे। दिन की समाप्ति के तबसुर पर देव-भक्तों में दावे दवा रहे थे। जल हुए पर्याप्त धूप की धून मञ्जरी की तरह आकाश में पतली त्रिनिश (अन्धकार) स्त्राय फैल रही थी। सोन हुए पञ्चिमा के कन्दर्प के बहने, निवास की कामना में आनन्द हुए आनन्द पक्षियों के पक्षि वनपक्षि स्वातन्त्र्यवादी बोल रही थी। अथर्व छन्दः कनकविनिर्मो के दृष्टि कान्तपान (कपटपान) कर रहे थे कि पक्ष व किसी दूधरी जगह अना करन नहीं आये। महानदी की उठान गुरुजों में पुनः हुए जल की ध्वनिवाँ कान्तेश्वर विषयक उत्प्रेक्षा व महानन्दावर की तरह मुतासा पड़ रही थी। रामायण के प्रसङ्ग में जैन मन्दादरी जीर प्रहस्त नामक मन्दापति द्वारा प्रदानित धमडी राना पाना जाना है वैश्व ही मन्दादरी मन्द, वृद्ध उदर वाली। रमणीयों के प्रहस्त (उदृष्ट) हाथों में मन्दापति (जान) पक्ष सम्मिलित (तैल में भर हुए) दीप दिखायी पड़ रहे थे। छोटे अन्धकार में मिश्रित सन्ध्या का रंग बूड़ कुम्भकार सज्ज कुक्कुट समुदाय के पक्ष के गुच्छे की तरह हो गया था। रागा विषय के कारण दैनिक मृच्छा कार्य चल गया था। अतः परिवर्तनों द्वारा निवेदनपूर्वक याद दिलाये जाने पर उसने सन्ध्या-वन्दन किया ॥

[रागापन में उचित पद का जय धमडी है और दीनपक्ष में "तैल-पूर्ण" अर्थ है। कुक्कुटों (मुँ) की एक कुम्भकार जाति होती है। पक्ष बनाने वाले कुम्भकार में यह तात्पर्य नहीं है। अथर्व कुम्भकार जाति वाले बूड़ मुँ के पक्ष समुदाय का वैसा रंग होता है वैसा ही रंग उस समय अल्प अन्धकार मिश्रित सन्ध्या का भी हो गया था ॥]

ततश्च क्रमेण—

रजनिमयनिनाय सांख्यकर्मावसाने

हरचरणसरोजद्वन्द्वसेवां विधाय ।

मृदुकलितविपञ्चीपञ्चनप्रायगीत—

भयमनुसृजितोद्देश्यं स तस्मिन्ननैरीत् ॥ ७७ ॥

इति र्थान्वितिकममद्विवरचितायां द्वायन्तीत्यायां हरचरण-
सरोजाङ्गायां पञ्चम उच्छ्वासः समाप्तः ॥

इति विषमपदप्रकाशमेतं दमयन्त्यास्तनुते स्म चण्डपाल ।
 दिशुमतिलतिकाविकासचैत्र चतुरमतिस्फुटमिच्छिचारचित्रम् ॥

इति चण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे पञ्चम उच्छ्वासः समाप्तः ॥

इसके अनन्तर कम से—

सन्ध्या विधि के समाप्त हो जाने पर भगवान् राक्षस के चरणारविन्द का अर्घन कर उस राजा ने मधुर वीणा के प्रायः पञ्चम स्वर से अनुगत गीत के श्रवणसुख ने साथ बही पर उस रात को बिताया ॥ ७७ ॥

पञ्चम उच्छ्वास समाप्त ।

षष्ठ उच्छ्वासः

अथ द्वित्रेति ॥ अथ निशानिवाहनानन्तरम् । अन्तरं व्योम वक्ष्ये ॥ व्योमं
मलता यनति विमिरमलितेऽम्बरे, मालाकारेण प्रभातप्रमोददेना
यचीयमानेषु गगनपुष्पाटिकाकुसुमेष्विय नक्षत्रेषु निद्रापद्म
हृद्गार इजोरिधिते प्रभातमेरोधनी नरपते प्रयोजनार्थमदूरे वृतालित
पपाड ॥

अथ द्वित्रेति ॥ अथ निशानिवाहनानन्तरम् । अन्तरं व्योम वक्ष्ये ॥ व्योमं
मलता यनति विमिरमलितेऽम्बरे, मालाकारेण प्रभातप्रमोददेना
यचीयमानेषु गगनपुष्पाटिकाकुसुमेष्विय नक्षत्रेषु निद्रापद्म
हृद्गार इजोरिधिते प्रभातमेरोधनी नरपते प्रयोजनार्थमदूरे वृतालित
पपाड ॥

इसके बाद, द्वित्राति का सध्या कार्य के निमित्त सूर्यार्च की व्यवस्था हो
रहा था । अधिकार से मान्य आकाश मानो रज (व्यवस्थित) से धीमे चान
क कारण कुछ निमल हो रहा था । माँझ में प्रातःकालीन कात्तिक
विकास द्वारा आकाश पुष्पाटिका के पुष्पवत् तार जुड़े जा रहे थे । निद्रा
की दुरा लैन वाले हृद्गारवत् नगाड़े की ध्वनि उठ रही थी । ऐसे समय में
राजा का चान के नीचे घाने दूर पर वैतालिक ने (एक श्लोक) पढ़ा—

उदयगिरिगताया प्राक्प्रभापाण्डुताया
मनुस्यपि निशीथे शृङ्गमस्ताचलस्य ।
अयति किमपि तेजः सप्रत व्योममध्ये
सलिलमिव विमिरं जाड्यं यामुन च ॥ १ ॥

इत्येति ॥ उदयगिरिगताया प्राक्प्रभापाण्डुताया निशीथे चापकारेऽस्ताचलस्य
मनु प्रवृत्ते किमपि सर्वोत्कृष्ट तेजा अपि । तत्र कविरुपेव ते—प्राक्प्रभापाण्डुताया
नमोभये जाड्यं गाड्यं, यामुन च काळिन्दीय, सलिल विमिरं गगनमित्यर्थः ।
व्याप्ति बाह्येवामीत् । यमुनायाः समेद सप्रतमेव । अत एवामिन्दुते 'यमुना-
त्रिविक्रम' इति नाम कविरुपेव । तथा च—'प्राच्याद्विष्णुरदीप्तोत्प्लाव्य
त्रिविक्रम । निर्मम विमलव्योम्ब यत्तद् यमुनामपि' । प्रमया पाण्डुता प्रभात
वद्योन प्रकाश इति यावत् । न तु प्रभाया । पाण्डुतात समान । उदय प्रभाया
आरक्षयात् । प्रकाशस्तु इन्द्रनीलदीपामपि पाण्डुरेव । जाड्यो देवताधिष्ठात्रा
यस्यनि द्रवतायम् । अन्यथा शैशिकम् स्यात् ॥ १ ॥

प्रातःकालीन कान्ति से उदयगिरि प्रकाशित हो रहा है । रात्रि अस्तावत्
की चोटियों की ओर खिंच रही है । इस समय गंगा और यमुना जल के
सन्मिश्रण की तरह कोई बौद्धिक तज सुगोभित हो रहा है ॥ १ ॥

[आकाश में गङ्गा का ही रहना प्रसिद्ध है । गंगा और यमुना का संगम पृथ्वी में ही प्रसिद्ध है । अस्ताचल की ओर अधकार की उत्पत्ति बताकर और उदयाचल की ओर प्रकाश की स्थिति बताकर आकाश में भी गंगा और यमुना का संगम कवि ने करा दिया है । महाकवि धीत्रिविश्वम्भट्ट की इस मनोवी कल्पना पर सद्दयो न इहे यमुना त्रिविक्रम की उपाधि दी है । प्रकाश गंगा की धवल धारा का प्रतिनिधित्व करता है और अन्धकार यमुना की नील धारा का ॥ १ ॥]

अपि च—

यात्यस्ताचलमन्धकारपटले जातेऽरुणस्योदये

तापिच्छच्छदपद्मरागमहसोर्मध्यं ककुम्भागयो ।

अन्तरिष्णुविरञ्चयोरिव मनाग्लिङ्गोद्भवभ्रान्तिकृत्

तेजः पाण्डुरपिञ्जरं च किमपि श्यामं च तद्वोऽप्यतात् ॥२॥

यातीति ॥ अस्तगिरिं गच्छति तम समूहे पश्चिमाया कृष्णाया, सपद्माहणो द्याया पूर्वस्याश्च लोहिताया दिशोर्मध्ये पाण्डु पिञ्जर श्याम वा किमपि दुर्लभ ममाक स्तोकोदय तेजोऽर्थात्प्रकाशामक वा युष्मान्पातु । प्रकाशारुणोदयतम शेष समुदायरूपत्वात् पाण्डु पिञ्जर श्याम चेत्युक्तम् । तद्विरचनेन सिन्धु यच्छब्दवाच्यं सुप्रमानमाह—अन्तरित्यादि ॥ द्विभागयोर्विष्णुविरञ्जौ, प्रकाशामनस्य तेजसो लिङ्गोद्भव उपमानम् । अथवा सत्य पाण्डु तदैव विष्णु, रज पिञ्जर तदैव व्रष्टा, तम श्याम तदैव च हर, पद्मश्रीमयश्च रविरिस्वागमिकसमय । तदुक्तम्—‘साधु शुभ्र स हरिर्लोहितपीत रजः ॥ जगकर्ता । कृष्णं तु तमः स भवो भानुश्चेत्तरत्रयी मूर्ति’ । अभिधानकारोऽप्याह—‘द्वादशात्मा प्रयीतनु’ । एतेन पाण्डु तेज इत्युक्ते सत्यस्य, पिञ्जरमित्युक्ते रजस्य, श्याममित्युक्ते तमस्य प्रतीतिरिति । ततश्च तमो-
न्विताया अपाया अद्भुतगतितायाश्च प्राप्या मध्ये मनागीपल्लवप किमप्यद्भुत दैमव तद्वत्कृष्टं पाण्डु पिञ्जर श्याम च तेजोऽर्थात् सत्वरजस्तमस्यपीमय प्रयीतनु-
लक्षणं चो युष्मानवतु । अमुमेवार्थं सत्वरजस्तमसो सज्ञा-तरेण विष्णुविरञ्जलिङ्गो-
द्भवलक्षणेन द्वादशप्राह—अन्तरित्यादि । ‘पुरा स्वमाहात्म्यार्थं विवदमानयोद्बुद्धि-
गनारायणयो शिवेन स्वस्य लिङ्गोद्भवस्योर्ध्वासोमानविज्ञानं महत्त्वदेतु पण उच’
इत्यागम ॥ २ ॥

अधकार समूह के अस्ताचल की ओर चले जाने पर और सूर्य के उदित हो जाने पर दोनों दिग्गाओं के बीच तापिच्छ तथा पद्मरागमपि जैसी कान्ति हो गयी थी । विष्णु और ब्रह्मा के बीच त्रिङ्गोत्पत्ति विषयक भ्रम फैला देने-
वाले स्वप्न की तरह सफेद रेसरिया जोर श्याम रंग का तत्कालीन तेज आपकी रक्षा करे ॥ २ ॥

[भगवान् सूर्य को त्रयी तनु कहा गया है । उनमें ब्रह्मा विष्णु और शिव तीनों के रंग का होना आवश्यक है । उदय के समय सूर्य का समीपतर स्थान

गुप्त दीवता है। प्रकाश जोर अन्धकार के सम्मिश्रण वाला स्थान पिञ्जर (कमरिया) रंग का दीवता है। जहाँ प्रकाश का पूर्ण प्रभाव नहीं पहुँच सका है वहाँ काँचिना बनी ही है। उदयकाल में सूर्य का बालनेत्र इन तीनों ही तत्त्वों का दशन करेता है। सत्त्वगुणप्रधान होने के कारण विष्णु को गुह्य, रजोगुणप्रधान होने के कारण ब्रह्मा को पिञ्जर, तमोगुणप्रधान होने के कारण शिव को कृष्ण (कान्हा) कहा गया है। इन तीनों ही रंगों के संवर्धन रूप को धारण करने वाले भगवान् सूर्य आपकी रक्षा करें।

एक बार ब्रह्मा और विष्णु के बीच हाडलग गयी कि दोनों में कौन बड़ा माना जाय। बड़े विवाद के बाद यही निश्चय किया गया कि श्री शिवजी के जिह्व के जन्तिम छोर का ओ पता लगा लेना उसी को बड़ा समझा जायगा। ब्रह्मा ऊपरी भाग का पता लगाने के लिये गये और विष्णु निचले भाग का। विष्णु नीचे जा-जाने पक गये किन्तु उस जिह्व की सीमा का पता न लगा। उन्होंने अपनी असमर्पता स्वीकार कर ली। ब्रह्मा को भी ऊपरी भाग का पता न लगा किन्तु उन्होंने बताया कि उन्हें ऊपरी सीमा का पता लग गया। उनके इस निर्या भाषण पर शिवजी नाराज हो गये और विष्णु की महत्ता स्वीकार कर ली गयी। इसी बात का महा निर्दोष किया गया है। विवाद के समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों उपस्थित हुए थे। उस समय बैसा रंग या मा हरण या बैसा ही हरण सूर्योदय के समय में हुआ है ॥ २ ॥]

अनन्तरमुत्तिष्ठतोत्तिष्ठनानयत गजत्राजिवेगसरीः संयोजयत शकटानि, घेष्टयत पटकुटीः, मुकुलयत मण्डपिकाः, संवृणुत काण्डपटान्, उन्मूलयत कीलकान्, उद्धृत वेगाद्द्वितीयभाण्डम्, मारयत करभक्तमान्, उत्क्षिपत क्षीणोन्नकान्, उत्तरत सरितम्, अपसरत पुरतः, कुरुत संचारसहं मार्गम्, इत्यनेकविधप्रयाणाकुललोककोल्हाहले समुच्छन्ति, नदत्सु प्रस्थानवादित्रेषु, समुत्थाय नरपतिरावश्यकशौचायसाने नर्मदाम्भोमियेकपूततनुरनुबन्ध सांध्यविधिम्, अधिष्ठत्य भगवन्तमुदयगिरिशिरशिखरमाजं भास्करम्, इमं श्लोकं मपठत् ॥

अनन्तरनिनि ॥ वेगसरी वेसरी । काण्डपटो गुणलयनी ॥

इनके बाद, "उठो, उठो। हाथी, घोड़े और ऊँटनिर्दों को लोको। गजदों को जोड़ो। पटकुटीरों को लोको। तम्बुओं को समेटो। तम्बुओं के किनारे वाले पदों को बटोरो। छूटियों को उखाड़ो। ले चन्ने लयक वर्तनों को जर्दों के चको। ऊँटों और हाथियों के बच्चों को लाओ। क्षीण (दूटे हुए) वर्तनों को फेंको। नदी में उतरते। सामने की ओर बढ़ो। रास्ते को चन्ने लयक

बनाओ ।" इस तरह प्रस्थान कार्य में व्यग्र लोगों को अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उठ रही थीं । प्रस्थानसूचक बाजे बज रहे थे । राजा ने उठकर शौच आदि कार्य के बाद नर्मदा जल के स्नान से पवित्र होकर, सन्ध्या आदि कार्य कर, उदयाचल के शृङ्ग पर ठहरे हुए भगवान् सूर्य को प्रणाम कर यह श्लोक पढ़ा :—

‘जयस्यम्भोजिनीयन्धुर्नन्धूकाक्षरश्मिः ।

धैट्रमो घासरारम्भकुम्भः पल्लवचानिय’ ॥ ३ ॥

बन्धूक (अड्डल) पुष्पसदृश अक्षर कान्ति वाले, कमलनिघो के प्रिय भगवान् सूर्य दिन के प्रारम्भ में विद्रुम मणि निर्मित, किसलय पल्लव से मण्डित पद्मे की तरह सुषोभित हो रहे हैं ॥ ३ ॥

[उदय के समय जो पूर्ण पिण्ड का लाल गोलक दिखाई पड़ता है उससे कुम्भ की और उस गोलक से निष्पूरित होने वाली किरणों की किसलय से तुलना की गयी है ॥ ३ ॥]

अभ्यर्च्य च पञ्चोपचारैः सुरासुरगुहं गौरीपतिं तत्प्रियस्य भग-
धतो नारायणस्यापि घाईल्लितार्थसिद्धये स्तुतिमकरोत् ॥

राजा ने देवों और दानवों के पूज्य, पार्वतीपति, भगवान् शंकर का पञ्चो-
पचार पूजन कर आकाङ्क्षित अर्थ की सिद्धि के लिये, उनके प्रिय भगवान् नारायण की भी स्तुति की ।

‘जयत्युदधिनिर्गतस्मरविलोललक्ष्मीलस-

द्विलासरसमन्धरस्फुटकटाक्षलक्षीकृत ।

अमन्दरयमन्दरधमणघृष्टहेमाङ्गद-

सुरारिवधनाटकप्रथमसूत्रधारो हरिः ॥ ४ ॥

जयत्युदेति ॥ सुरारिवधनाटकस्य लक्ष्मी प्रस्तावनायां सूत्रधार ॥ ४ ॥

समुद्र से निकली हुई काम चञ्चल लक्ष्मी के रमणीय विलास रस के मन्द एवं विकसित कटाक्षों द्वारा लक्षित, मन्दराचल की बड़ी तेजी से धुमाने के कारण घिसे हुए स्वर्ण वक्त्र वाले, देवद्रोहिणियों के वधरूप नाटक के प्रथम सूत्रधार श्री हरि का मञ्जल हो ॥ ४ ॥

जयत्यमलसौस्तुभयुतिविराजितोरःस्थल

सद्वेलहृतदानवो नयतमालनीलयुतिः ।

विनम्रसुरमस्तकच्युतविकासिपुष्पावली-

विकीर्णमधुसीकरस्नपितपादपीठो हरिः ॥ ५ ॥

कौस्तुभमणि की निर्मल कान्ति से जिनका वस्त्र मय्य सुशोभित है, बिना किसी विशेष यत्न के जिन्होंने दानवों को समाप्त कर दिया है, नवीन तमाल की तरह जिनके शरीर की कान्ति नीची है, नम्र देवताओं के मन्दरु से गिरी हुई पुनःपन्थि के दिखरे हुए मयुक्तों से जिनका पादपीठ (सटाऊँ) सिक्त हो गया है ऐसे भगवान् सर्वोद्भूत हैं ॥ १ ॥

जयत्युदरनिःसरद्वरसरोजपीठीपट-

स्वतुर्मुखमुखावलीयिहितरम्यसामस्तुतिः ।

अलम्बमहिमायधिर्मधुवधूविलासान्तरु-

ज्जगतिरतयसम्भवो मन्मथापहारी हरि ॥ ६ ॥

जयत्यसुरस्तुन्दरीनयनवारिसंघर्षित-

प्रतापतददलसत्तदणकेकिकण्ठच्छविः ।

दलत्कनककेतकीकुसुमपत्रपीताम्बरः

सुराधिपनमस्कृतः सकललोकनाथो हरिः ॥ ७ ॥

जिनके उदर से निकले हुए कमल के आसन पर बैठकर ब्रह्मा चारों मुक्तों ने रत्नोप सामवेद की स्तुति पढ़ने रहते हैं, जिनकी महिमा की सीमा नहीं पानी गयी है, जिन्होंने मधु दैत्य की परनी के विनाश का अन्त कर दिया है, जिनके हुए स्वर्गेश्वरी के फूल की तरह पीत जिनके वस्त्र हैं, देवेन्द्र जिन्हें प्रणाम करते हैं ऐसे समस्त लोकों के स्वामी भगवान् सर्वोद्भूत हैं ॥६-७॥

जयत्यखिललोकजिह्वरककालकेतुर्मो-

मदान्धदशकन्धर्षिददुष्टप्रज्ञाननः ।

हिरण्यकशिपुमियानुस्रसरोजचन्द्रोदयः

सुरेन्द्ररिपुसिंहिकासुतशिरकुटारो हरिः ॥ ८ ॥

इति । हरिको मीमांसुर ॥ ८ ॥

समस्त लोकों पर विजय करने वाले, नरकानुर के विनाश के लिये पुच्छर तारे के उदय की प्रतिमूर्ति, हिरण्यकशिपु की रमणियों के मुखरमण के लिये चन्द्रोदय, मदान्ध रावण के लिये भयङ्कर सिंह; देवेन्द्रजन्तु सिंहिका-पुत्र राहु के शिर के लिये कुत्तर भगवान् हरि सर्वोद्भूत हैं ॥ ८ ॥

[घुमन्तु का उदय किसी अनीतिक आपत्ति का सूचक होता है । नरकानुर के लिये भगवान् घनकेतु के उदय की ही तरह थे । क्योंकि उन्होंने उनका विनाश किया था । हिरण्यकशिपु की पत्नियों का मुख यदि कमल है तो भगवान् उनके लिये चन्द्रोदय हैं । चन्द्र के उदित होने पर कनक मुकुटित हो जाते हैं । भगवान् ने हिरण्यकशिपु का वध कर उसकी कान्ताओं को म्थन

बना दिया । विहिका के लहने का नाम राहु था । वह इन्द्र का विरोधी था ।
भगवान् उसका शिर काट लिये थे ॥ ८ ॥]

जयत्यमरसारथिर्मदनतप्तलक्ष्मीलसत्-

पयोधरयुगमथलीसरसचन्दनमथासरुः ।

अचिन्त्यगुणविस्तरः सकलकेशिकसाह्वना-

कपोलफलकोलसत्तिभकमङ्गहारी हरिः ॥ ९ ॥

जयतीति ॥ अमराणां सारथिर्मेता अग्रणीरिति यावत् ॥ ९ ॥

देवताओं के अग्रणी, कामसन्तप्त लक्ष्मी के स्तनयुगलरूप भूमि पर आर्द्र
चादन के स्पासक, अवर्ण्य गुण विस्तार वाले, केशी और कस की समस्त स्थियों
के कपोलस्थल पर सुशोभित होने वाली तिलक रचना को समाप्त करने वाले
भगवान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ९ ॥

[किसी आर्द्र पदार्थ को हाथ में लेव कर किसी भित्ति या स्थान पर
पापा मारते हैं । उस पर हाथ की आकृति उभड़ जाती है । उसी उभड़ी
हई हाथ की आकृति को स्पासक कहते हैं । सरस चन्दन का स्पासक उष्ण
स्थल को शीतल और गुणन्धित बनाने के लिये लगाया जाता है । काम-
सन्तप्त लक्ष्मी के लिये भगवान् स्पासक हैं । शैत्योत्पादक हैं । सीमाग्नवती
क्रिया तिलक आदि से अपने का प्रसाधित करती हैं । विधवाएं अपना
प्रसाधन नहीं करती । भगवान् ने केशी और कस का बंध कर उनकी पत्नियों के
शृङ्गार का प्रसङ्ग ही समाप्त कर दिया है ॥ ९ ॥]

जयत्यसमसाहसः सललोकाशोकान्तहृत्

सहस्रकरमासुररुक्मिरिचार्चकप्रायुधः ।

विहङ्गपतिवाहनः कलुषकन्दनिर्मूलनः-

समस्तभुवनावलीभवनशिल्पधारी हरिः ॥ १० ॥

समस्त भूवनमण्डलरूप भवन के शिल्पी भगवान् जिनका साहस
अनुपम है, जो ममस्त जनों के दुःख का निवारण करने के, मूर्ख की तरह
थमकी बाधा, चंचल एवं मनोहर अस्त्र जिनका चक्र है, पक्षिगज गण्ड
जिनके वाहन हैं, पाप के अन्ननिहित मूलों को जो समाप्त कर डालने हैं,
सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ १० ॥

जयत्यमलभावनावनतलोककृतपद्मः

पुरन्दरपुरुःसरविदशतृन्दचूडामणिः ।

अशानिकुलकन्दलधनविनाशदापानलः

समस्तमुनिमानसप्रवरपञ्चसो हरिः ॥ ११ ॥

निर्मल भावना से विनम्र बने लोगों के लिये कल्पद्रुम, इन्द्रप्रमुख समस्त देवदर्म में शिरोमणि, शत्रुघ्नरूप होनहार वन के लिये वनाग्नि और समस्त मुनिव्रतों के मानस के मुख्य राजहंस भावान् सर्वोत्कृष्ट हैं ॥ ११ ॥

[मुनिजनों का हृदय मानसरोवर है । भगवान् उसके शुद्ध राजहंस हैं । राजहंस के लिये जैसे मानसरोवर बड़ा प्रिय है वैसे भगवान् के लिये मुनिजनों का हृदय बड़ा प्रिय है ॥ ११ ॥]

एषमभिगन्ध देवदेवम्, समाख्या विजयिवारणेन्द्रस्त्वम्, अग्रतः
प्रधाविनानेककरितुरगपरिजनः, पुरः पुरोधसा नियर्चिते महानदीयागे,
युगमहद्वरिवत्तन्तुत्तान्तमाक्षिणाम्, अनवरततपस्यद्विषहृषिप्रतिष्ठित-
शिवलिङ्गद्वरोधमम्, अनेकसुरमुन्दरोसेविततारसंकेतलतामण्डपाम्,
अनवरतमज्जह्ननागजमद्रामोदम्पुमिनतरङ्गाम्, अपरगङ्गाम्, अपरसागर-
राजमहिषाम्, अपरमार्कण्डेयतप सिद्धिसर्षाम्, समुत्तीर्य मगधतां
नेकलक्ष्म्याम्, उन्कुलपल्लविनाङ्गोहसल्लकीसरलसान्द्रसर्जं जुननिग्न-
कदम्बजम्बून्योदुम्बरखदिरकरञ्जाञ्जनाशोकनोभाञ्जनकरायेस्तदभिग-
कोणम्, अभिमनं मनङ्गजानाम्, अनुभूतसारं सारङ्गैः, शिशिरतरं
तरङ्गानिलैः म्यर्गवनसमं सनञ्जरीकैर्नानालकैरुल्लङ्घ्य दक्षिणं नर्मदा-
र्तागुण्यारण्यम्, अग्रतो, गगनवीथिमिव सिंहाराजिराजिनामुत्पतङ्गा-
मुन्थितवृक्षिकामाभिर्मूननार्द्ररोहिणीमूलां च, छन्दोजातिमिव शार्ङ्गल-
विक्रीडितमनोहरां हार्दिहरिणीमन्दाक्रान्तामनवरतवसन्तनिलकोट्या-
सितामतिविचित्रचम्पकमालां च, भीतामिव यदुकोटराद्यपवृतामुत्पल-
कुशलशां च, लङ्कामिव संवरद्विगुणपञ्चाननविभीषणां चारुपुष्प-
कामनीण्डाडम्बरिनमेवनादां च, गीतबियामिव तनाग्रनद्धघनसुपिर-
वंशस्वनमनोहरामनेकनाट्यमेदां निगदकपभनस्यमश्रामयुक्तां च,
चित्रविद्यामिवानेककण्टकपत्रलतास्थानकविपमानृग्वाननापसा च,
कलियुगशिवशासनम्यतिमिव महावतिकान्तशान्तिभिः कालनुस्रै-
र्वानरैः संकुलामनेकधाभिन्नन्नोनसं च, कापालिकखट्वाङ्गयष्टिमिव
समुद्रोपकण्ठलानाम्, मायामिव शम्बरविप्रिताम्, मरुभूमिमिव
करारैः केसरिप्रस्रैरसंचाराम्, अतिचारुचन्दनैः कृत्तगैरोच्चना-
विरोचकैरसनदृशांवाहिमिरारब्धमङ्गलाचारैरिव तृणस्थलेरन्ध्रकृताम्,
विविधव्याधां विन्ध्याटवीमवगाहमानो मेषवृषमिथुनयुजः सधनुषः
सकुम्भकन्यानेकत्र राशीमृतान् गिरिश्रामपारलोकानालोकयन्, 'इयं
गगनशीर्षां च चित्रशिवण्डिमण्डिना सरित्तोरभूमिः, इयं सरिदिव

वहुतरङ्गोपशोभिता गोष्ठवसतिः, इयं च नक्षत्र मध्यगतापि न विशाखा
 तरुपट्क्ति, इयं पुष्पवत्यपि न दूषितस्पर्शा वीर्यत्, इयं सनिहित-
 मधुदानयापि हरिमिया वंशजालि, इयं वृत्तमातङ्गसङ्गापि न परिहृता
 द्विजैः सल्लकीसंतति, इमे च केचित्सशिखण्डिनो महाद्रुपदा, केऽपि
 विच्छिन्नकीचकवंशा वृकोदरा, केचित्सपुण्डरीकाक्षा पाण्डुसंतानका-
 केऽप्युद्धृतभुवो महावराहा, केप्युत्कृष्टसुरभिथीट्मावलिहरिकरा-
 कृष्टपन्नगनेत्राः स्फुरन्मणिभिन्नयोः मन्दरागाः केऽपि सस्थाणवो
 दुर्गाधया धूयमाणगजवदनघ्नीत्कारा सगुहा कैलासकूटायमाना-
 सेव्या खरुमी विन्ध्यास्कन्धसंधिसानव इति मन्त्रिसन्तुना धृत-
 शीलेन सह विहितविदग्धात्माप, कयापि वेलया कमप्यध्यानमतिक्रम्य
 काप्यपरिमितपतन्निर्जरजलतुषारस्पर्शमञ्जरितपादपुष्पपरिमलमि-
 लन्मधुकरसङ्कारहारिणि रममाणशयरमिधुनसंमर्दमृदितामन्दमृदु
 शाद्वले जलस्थलीप्रदेशे धान्तसैनिकानुकम्पया प्रयाणविच्छेद
 मकरोत् ॥

एवमिति ॥ समुत्तीर्य भगवती मेकलकन्याम् । उत्पुल्लेखादौ लकारानुग्राहा-
 श्लोको केचिन् 'भङ्गोष्ठ' इति पठन्ति, तच्च ग्राह्यते । सरङ्गते खङ्गोष्ठ इति । तथा
 उल्लङ्घय दक्षिणभागस्थित मत्तङ्गजानां गन्तानामभिमत नर्मदातीर पुष्पारण्यम्,
 अग्रतो विविधविष्पाटवीमवगाहमान इति सम्बन्धः । कथभूता विन्ध्याटवीम् ।
 सिंहराशिर्मृगेन्द्ररुन्द उग्रोतिषोक्त पञ्चमो राशिशः । तेन राजिताम् । तथा पञ्च
 रात्रि सूर्यश्च । दृष्टिकोऽष्टौ भङ्गमराशित्रि । पुन किमुनाम् । आविर्भूता सह
 आर्द्राश्चन्द्रधरेण, रोहिणी नोषधिविशेषो, मूला मूलकश्च यस्याम् । पक्षे आर्द्रा
 रोहिणी मूलानि तारा । शार्दूलविक्रीडितेन सिंहविटसितेन मनोहरा । तथा
 हारिणीभिश्चाहमिर्हरिणीभिर्मन्दमात्राण्यम् । सर्वदा यन्मन्त्रैरितलकैश्च तरविशेषैर्भू-
 पितम् । तथा अतिविचित्रा चण्डकानां माला श्रेणी यस्याम् । पक्षे शार्दूलविक्री-
 डित हरिणी भन्दाका-ता वसन्तनिलका चण्डकमाला च दृग्भासि । तथा बहुभि-
 कोटरावगैर्बृतां छद्मम् । कोटराणां वनमिति कृत्वा 'वनविष्यो सञ्जाया—' इति
 सूत्रेण पूर्वपदस्य दीर्घः । 'वनपुराणा—' इति सूत्रेण णत्वम् । कुशो दर्भः । लवो
 लेहा । सीतां ॥ बहुकोटेन प्राज्यकौटिल्येन रावणेन रणसा धार्यिताम् । तथा उपवी
 कुशलवौ स्वसुतो यस्या । तथा सचरद्भिविगुणैर्विरगुभिः पद्माननैः सिंहैर्विशेषेण
 भीषणाम् । तथा चारुपुष्पमर्यात् मनोहरमरोत्र क नल यस्याम् । अत एवानवसरे-
 ऽपि आहवर्तितो विस्तृतो मेघनादस्तण्डुलीयको यस्याम् । लङ्का तु द्वी गुणौ येषां
 पद्मानां ते द्विगुणा दशोत्तर्य । तत्सख्यायाननानि यस्य स दशमुखो, विभीषणश्च
 तद्भ्राता सचरन्-यस्याम् । पुष्पक विमानम् । मेघनादो रावणात्मजः । शीतविद्या
 मिश्रति । तता विस्तीर्णा अवनद्याः मुरिलिष्टा घनमुपिता बहुविवरा वंसा येनवस्तेषां
 रवनेन रम्याम् । तालास्तहविशेषा । निषादा दावराः । मण्डे मयो मप्यमः ।

प्राप्तं खेटकम् । पदे ततः तन्नीयतेन अवनयेन पौक्रेण च घनेन कायकृतेन
 सुषिरमल्लङ्घयत्स्वनेन च मनोज्ञम् । यद्यपि 'तत्र तन्नीयतेन शेषमवनद्धं तु प' पृ
 रम् । घनं कायकृत् प्रोक्तं सुषिरं वारयमेव च' इति भरतः । तथाप्यत्रानेकविषय-
 स्वाद्वान्तरनेराशान्तसदृशार्थमुच्यते । अनेकनालमेदाश्च पुटादपो यस्याम् ।
 तथा निपादेन स्वरो मन्दममलकग्रामेण युक्तम् । चित्रविद्यामिवेति । कटके
 सूत्रे पदे पदे, एतामिदं ह्येति शान्तानिर्वा स्थानकैश्चालवैरियमात् । तथा
 श्रुत्वाऽपुष्टिना अगता स्वार्थं प्राप्तवान्मा सुनया यस्याम् । चित्रविद्यायै
 कलिदासक-साव-त्रिमि-सप्तमिश्चत्वार पत्रावयवा । एतैर्मितिः शिषु-
 मन्त्र-स्वमिदं दर्शमान-मर्धनामद्रात्याणि पञ्च पत्राणि निरघने । तद्वत्
 शास्त्रायां दानाद्वत् । तथा स्थानकानि पाशान्तर-श्रुत्वा श्रुत्वागन-द्वयश्च-
 मर्धश्च-नामगोष्ठ-वर्तित-त्रिमि-मन्त्रानि । तैर्वियमात् । स्थानक-इत्येव
 श्रुत्वागन गतायमपि व्यापकश्च दृश्यते । प्रया हि चित्र श्रुत्वागनमेव
 लिखत । तस्मिन्मन्त्रे तारमानि । मयूरामन-पुमान्दीनि करगानि तापमा
 र्यानि । तत्र श्रुत्वा तारमानि यस्याम् । यद्वा श्रुत्वागन तार स्पतीति
 केचित् । श्रुत्वागनेन पुष्पारहारिणीमिदं । कश्चिदुगेति । अम्बु रतिरति ।
 महती अप्रतिपत्ता ते महाप्रतिका कृष्णस्तेषामन्तर्मण्य पनरम-वा ते कृष्ण
 सुवर्मकंठैरुद्यमात् । तथा एतुमिदं प्रवृत्तम् । पदे महाप्रतिका कापाडिका ।
 तद्वत्पातिमिस्तद्वन्मूने कालमुत्तैर्वा ईश्वरान्विशिष्टैर्नाराचित्रम् । बहुधा
 मिश्रमवाहम् । अतः श्रुत्वा प्रवृत्तम् । अन्त्या इति यावत् । कृष्णगोष्ठे
 मेव शिवशामनममूत्, कलौ तु बह्मनायमिति जाव । श्लेषचित्रमिदं वषपे-
 रैवम् । गथादि 'मन्त्रानुलङ्घ्यै श्विकचैरापोजिता विजयी, वस्त्रेणामदहि
 पातमुमोहोहारयन्ती स्मरम् । काञ्चीदामनितम्बमहि दधती श्यालम्विना वाममा,
 मूर्ति कामरिपो मिलाद्युच्छरा पायादुन्नापा जगत्' । अस्यायं — 'कामरिपो
 दिवस्य मूर्ति पायात् । कीदृशी । विगतकेशैश्चान्तरलक्षितोदरैरापोजिता मन्त्रा
 विजयी । तथा त्रियमदृष्टिगतमुमोह वस्त्रेण स्मर दहन्ती । तथा नितम्बमहि
 क-बीजान्नाय श्याल सर्वं दधती । तथा वाममा वस्त्रेण विना व्यनिरिक्ता । तर्प
 सितायुक्त चन्द्र धरतीति । एतन्मन्त्रः । कमिदं पय शिरोऽर्पम् । उमारवे श्याल-
 म्विना लग्नमानेन । ईष सुगमम् । यन्मुद्रस्याम्बोरेरदृष्टे कृते लाभम् । यद्विलु
 सन्मुद्र मुद्रान्वित यदुपकटगलमपीपत्रलम्बान् । मुद्रा मूषगास्यप्रमिष । शम्भ
 श्वारद्विपो दानवविदेवथ । स्वरो हि विनिर्मिता माना । अत्र एव शम्भरी-पु-
 च्चत । मन्त्रमिति । न यचरो गतिर्यस्याम् । केमरिगा मिहाना प्रमवै पेत ।
 कीदृशम् । करिन्नीरयन्ति ते । पञ्च करोरेरदृष्टेपे । तथा केमरिग किन्नरपो
 पेत्रा प्रमवा पुष्पाणि यत्र तयविषे । अनिदेति । चन्दनस्तद्वत्प्रमथ । कृन्तो
 गवा रोचनाविषेऽमिडागतिनाया यै । पञ्च गोरोचना गन्धद्रव्यविरेण । सा
 चानीव मङ्गला तस्या विमलमिदम् । अन्त्यामल्लता दूर्वा बहन्यमीदम् ।
 पदेऽप्युत्तङ्गुलादि । दूर्वेन समानम् । तथा एकस्मिन्स्थाने समूहीकृतानाना
 प्राणशकृन्तानावलाकपन् । कादसान् । मेधाः कृष्णा मिथुनानि युज्जन्ति
 धारयन्ति । तथा सह घनुषा कोदनेन सघनुष । तथा सङ्गमा मङ्गलार्थं मस्तक-

न्यस्तकलशा कुमार्यो येपु । गणिसमूहो ज्यौतिषोक्तो मेवादिष्व मेयवृषमिथुन
 कुम्भकन्याराशिर्विशेषसज्ञा । मन्त्रिसूनुना श्रुतशीलेन सह 'इयं च गगनवीर्यादि'
 'इमे च केचिरसशिष्यगिडन' इत्यादि च विहितविदग्धालाप प्रमाणविच्छेदम्
 करोत् । यदुक्तं तद्वशास्वायते । तद्यथा । चित्राश्वित्रजर्णा शिष्यगिडनो मयूरा ।
 पक्षे चित्रशिष्यगिडन मसर्पय । बहुतरमिति क्रियाविशेषणम् । गोपैर्वक्ष्ये
 शोभिता । सरिषु बहुभिरस्तरङ्गैर्यशोभिता । योष्ठशोक्लम् । नक्षत्रमप्य गता ।
 न विगतशाखा च । पतन तरुणामुच्चता सामोगता चोक्ता । विशाखा हि नक्षत्र
 मप्य न गति विरोधसूचकोऽपिशब्द । पुष्पवती हसुमिता रजस्वला च ।
 नदपितस्पर्शा मृदुत्वात् । रजस्वला श्वश्रूयेति विरोध । सनिहितभ्यो मधुदा
 चौद्रपद । नवा भविष्याया । हरि सिंह । या च हरद्विष्णु । प्रिया वरहभासा
 कथमापद्यमधुसूक्तकदेत्येति विरोध । मानद्वा गता श्वपचारश्च । द्विजा पक्षिणो
 विप्राश्च । इमे चेति । महद् द्रुपद् वृषस्यान ययु तथाक्ता । तथा सह शिष्यगिडभि
 र्मयूरै अथ च महाद्रुपदा चित्रविशया । द्रुपदनयश्च शिष्यगिड । चित्र
 शिष्यगिडमगिडतेऽयनेन पूषमन् यो मयूरसज्जाय उक्त । इदानीं विध्यस्त्वये
 द्विति न पौनरुक्त्यम् । चिच्छिन्ना पृथग्भूता कीचरा सन्निद्धा वशाश्च
 निरिद्धा येपु । वृका अरण्यध्यान उदरे मध्ये येपु । वृकोदरो भीमोऽपि । स
 विरोधेण क्षिप्तकीचकावपराज्ञाचय । पाण्डु सत नरुस्तरुविशेषो यपु । तथा
 पुण्डरीकै सितारम्भोजैश्चैरश्च विभीतर्क सह । पाण्डो सताना एव सतानका
 सुता पाण्डुवारेण तु पुण्डरीकाक्षेण विष्णुता सह महा तो वराहा येपु ।
 तथा उरुक्षेण हता विश्वारेण रुद्धा भूर्ये । महावराहो विष्णु । स चोरिष्ठ
 पृथ्वीक । अमन्वो रागो यन्धस्तस्म दरागा । तथा उरुष्टा मनोज्ञा मरभयश्च
 भयका भीतुमारश्च विष्णुलास्यवामावलिस्तत्र हरय कवयस्तैराकृष्टानि प गगनत्रागि
 येपु । इयम वरागावे हेतु । पक्षे म दराद्योऽगोऽद्रि । तयो हृदोपधृता सुरभि
 श्रीलक्ष्मीद्रुम पारिजातश्च ये । दरण हि सुरभिप्रभृती यशभोधेरुद्धतानि ।
 सुरभिषु । इह तु प्रस्तावारकामधनुः । वद्विथप्रकाश — रश्मिरश्चपक स्वर्ग
 जातीफलवत्तयो । सधौ पक्षे मौरभक्ष्याम् इति । तथा पक्षेर्द्वैतश्च हरे
 विष्णोश्च करैराकृष्ट भ्रामित प तयो वामकिल्लण नेत्र मे धानम कपणरगुह्यं ।
 कैलासश्च इवाचरन्त । स्थानु स्थिरपद य शिखरश्च । दुर्गा विष्णुवातिनी देवी
 गौरी च । दुर्ग आश्रयो ययामिति वा । तथा आश्रयमाना गजानां वदनचोकारा
 मृद्धानि येपु । कैलासे च । गजवदनो हरश्च । गुहा पापाणसधि । गुह
 कानिकेय ॥

इस तरह भगवान विष्णु की प्रणाम किया । विजयी गजेन्द्र पर आरुढ़
 हुआ । अनेक हाथियो और घोडो पर आरुढ़ परिजनो को आगे दीठा दिया ।
 पुरोहितो के सम्मुख महानदी याग सम्पन्न किया । इसक बाद सहस्रो युगों के
 परिवर्तनविषयक वृत्तान्ता की सांगो, निरंतर तपस्या मे लगे हुए ब्रह्मर्षिया
 द्वारा पूजित शिवलिंगो से चिरी हुई अनेक देवरमणियो द्वारा सेवित तटीय
 लतामण्डपा वाली, अवगाहन करते हुए बनेले हाथियो की मददगथ से गुग्गुधित

तरङ्गो वागी, अभिनव रंगा, समुद्र की दूसरी राखली, मार्कण्डेय ऋषि की तपस्या की दूसरी सासी, मेकल नामक पर्वत की पृथ्वी नर्मदा नदी को पार किया। रत्न वाद विकसित एवं पल्लवित अद्भुत, चन्द्रावी, सीने सीधे सात, सर्व, अन्त, नीम, कश्मक, जानुनसुह, मुल्हर, बैर, वरज्ज, अञ्जन, अशोक तथा सोनामयनक आदि वृक्षों में व्याप्त, हाथियों का आकाङ्क्षित, मृगा का प्रिय स्थान, शरङ्ग-सृष्ट वायु के कारण अतिशय शीतल, मञ्जरीयुक्त लता-शाल के कारण स्वर्ण-सदृश, नर्मदा-तट के दक्षिणभागीय पवित्र अरण्य को पार किया और विन्ध्याटवी का भ्रमण किया।

जकाश-वीथियों (यमन-मार्ग) जैसे सिंह राशि (सिंह नामक राशि) से सुशोभित रहती है, उत्पलज (उत्पल पुष्प) से युक्त रहती है, वृत्तिक-सप्त राशि तथा आर्द्रा, रोहिणी और मूल नक्षत्रों से युक्त होती है वैसे वह विन्ध्याटवी भी सिंहराशि (सिंहसमुह) से सुशोभित थी। उत्पलज (उत्पल पत्तियों) में युक्त थी। डंक ऊपर किने हुए वृत्तिकों (विन्धुवृक्षों), आर्द्र (शृङ्गवेर), रोहिणी और मूल नामक पौधों में मण्डित थी। छन्दवर्ग जैसे शार्ङ्गविक्रीडित, हरिणी, मन्दाक्रान्ता वसन्ततिन्त्रा और चम्पकमाषा छन्दों के कारण मनोहर है वैसे वह विन्ध्याटवी भी शार्ङ्गविक्रीडित, (सिंहों के विशाल) में युक्त थी। हरिहरिणीमन्दाक्रान्ता (मनोहर हरिणियों द्वारा मन्दशार्ङ्ग आक्रान्त) थी। निरन्तर वसन्त एवं तिलक (वृक्ष) से प्रसूक्त थी। अत्यन्त विविध चम्पकमाषा (चम्पे की पङ्क्तियों) से मण्डित थी। संज्ञा जैसे बहुकोट रावण (अत्यन्त कुटिल रावण) द्वारा पिर गयी थी और कुण्ड तथा लव की उत्पत्ति की थी वैसे ही वह विन्ध्याटवी बहु + कोटरावण (बहुत से खोखलों से पूर्ण जगत्) से पिरि हुई थी और कुण्ड के लव (अंश) की उत्पत्ति की हुई थी।

[विन्ध्याटवी-पञ्च में बहुकोटरावण पद का विच्छेद बहु + कोटर + वन है। 'कोटरावण वनम्' इस विग्रह में समास होने पर 'वनमित्यर्थः' संज्ञाया कोटरादिमुत्पत्तिनाम्" (पा० सूत्र) से वन के पूर्ववर्ती 'र' के अ को दीर्घ हो गया और 'वन' पुराणमिश्रकासिप्रसक्तोच्चारितकोटरावणम्" (पा० सूत्र) से उत्तरनदवर्ती वन के व को प हो गया। ऐसे पदों के अंगत वहाँ ये त्रिनमें बहुत से खोखले हैं।]

रत्ना जैसे सचरद् + शिष्टापञ्चानन + विभीषण (धूमते हुए पाव के धूमने (दह) मुँह वाले रावण और विभीषण से युक्त थी, चारु + पुष्पका (सुन्दर पुष्पक विमान से सम्पन्न) थी, अरुणहम्बरित + मेघनादा (असमय में भी मेघनाद (रावणपुत्र) के गर्जन से व्याप्त रहती) थी वैसे वह (विन्ध्याटवी)

भी सञ्चरद् + वि + गुण + पञ्चानन + विभीषणा (घूमते हुए वन्धन-विहीन पञ्चानन (सिद्धो) के कारण विभीषण (भयङ्कर) थी । वासुपुत्रा (सुन्दर पूजो से मण्डित) थी । अकाण्डाढम्बरितवेपनादा (असमय में भी दादलो के गर्जन से व्याप्त) थी ।

[विन्ध्याटवी पक्ष में विगुण + पञ्चानन + विभीषणा पद में विगुण का अर्थ वन्धन हीन है । गुण शब्द का अर्थ रस्सी है । वि का अर्थ विगन है । अर्थात् रस्सी से रहित वे सिंह हैं । वन्धनहीनता के ही कारण वे विभीषण (बड़े भयङ्कर) हैं ।]

गीत विद्या जैसे तत (वीणाध्वनि), अवनट (पोकरध्वनि), घम (छाल की ध्वनि), सुपिर (वेणु की ध्वनि), अनेक ताउ (चञ्चत् पुट आदि) और निषाद, मध्यम ग्राम आदि स्वर से युक्त होती है वैसे वह (विन्ध्याटवी) भी तत (फैले हुए), अवनट (बाँधी घने, एक दूसरे में सटे हुए), घन सुपिर (बहुत छिद्रों से युक्त), वदस्वन (वेणुओं की ध्वनि) के कारण मनोहर, अनेक ताल वृत्तों से युक्त, निषादो (किरातों) और मध्यम ग्राम (मध्यवर्ती ग्रामो) से मण्डित थी ।

[गीत विद्या और विन्ध्याटवी दोनों ही पक्षों में स्वन दास का अर्थ ध्वनि है । वद के पूर्ववर्ती तत, अवनट आदि सभी विवेक विभिन्न धातों की ध्वनि के ही वाचक हैं । फिर भी यहाँ वद स्वन का उपादान स्पष्टार्थक है । आचार्य भरत ने कहा है—“तत तन्वीगत सेवम्, अवनट तु पोकरम् । घमं कास्पटुत प्रोक्त सुपिर वाद्यमेव च ॥” वीणा की आवाज को तत कहते हैं । मृदङ्ग की आवाज अवनट, छाल की आवाज घन और बसी की आवाज को सुपिर कहते हैं ।]

चित्र विद्या की तरह वह विन्ध्याटवी अनेक कण्टक (काटे), पत्र (पत्ते), लता, स्थानक (आलवाल, थाले) के वारण ऊँधो, और शृङ्ग तापस (सीधे सादे तपस्वियों) के आगमन से युक्त थी ।

[चित्र विद्या में कलिका, कण्टक, पाखा और चित्रङ्गी नामक चार परभावयव प्रसिद्ध हैं । इन्हीं के मिश्रण से शिशु, मरुत, स्वस्तिक, वर्धमान और सर्वतोभद्र नामक पाँच पत्र विद्यमान होने हैं । यहाँ पाखा शब्द लता का पर्याय है । शार्ङ्गान, शृङ्ग शृङ्गागत, द्रव्यान्त, अर्धशृङ्ग, गमनालीढ, त्वरित और चित्रङ्गी नामक स्थानक होने हैं । स्थान शब्द के कह देने से ही शृङ्गागत भी मतार्थ हो जाता किन्तु चित्र में शृङ्गागत का अधिकांश प्रयोग होता है, इसलिये उसका पूरक प्रयोग हुआ है । मयूरासन, उट्टासन आदि को

तापस संज्ञा दी गयी है। श्रेयवाग्त नामक स्थानक की सुन्दरता में चित्र दिवा ताप का हटा करती है।]

कल्पिमा की शिवशासन स्थिति की तरह महाव्रतिक (जल से प्रेम करने वाले बड़े-बड़े पेशों) के बीच कालमुख (काले मुँह वाले) शानरो (दण्डरा) से संकीर्ण हो गयी थी और वहाँ विविध क्षरने बह रहे थे।

[विष्णुदेवी पद्म म वृक्षों का महाव्रतिक कहा गया है। कल्पिमा पद्म है जल। कल्प (जल) से त्रिनकी रति (प्रेम) हो उन्हें अव्रतिक (अप-रतिक) कहा गया है। महत् पद्म के साथ अनुरतिक के चुहन पर महाव्रतिक बन गया। कर्पात् जल से स्नेह रखन वाले बड़े-बड़े पेड़ों के बीच-बीच में काले मुख वाले बन्दर भरे थे। जगह-जगह पर क्षरने गिर रहे थे।

कल्पिमा + शिवशासन + स्थिति—कल्पिमा म शिवोपासना की पद्धति से विष्णुदेवी की समानता बतायी गयी है। कल्पिमा की शिवोपासना पद्धति महाव्रतिकान्त पाती (कापालिक लोगों के समीप रहने वाले) लोग तथा काल-मुख-नर (शिव की उपासना करने वाले मनुष्यों) से व्याप्त रहती है। महाव्रतिक कापालिक को कहते हैं। काल + मुख शिवोपासक को कहते हैं। बानर पद्म में "वा" का अक्षरा अर्थ है और नर का मनुष्य। शिवोपासना की पद्धति में कापालिक समीपवर्ती लोग तथा शिवोपासक अधिक पाये जाते हैं। यह पद्धति निम्न श्रोतस् (विविध धाराओं (सम्प्रदायों) बाणी हो गयी है। संपद्म में इस उपासना की एक ही धारा थी अब इसकी अनेक धाराएँ हो गयी हैं।]

कापालिक की खट्वाङ्गपट्टि जैसे समुद्रोपकण्ठान्ता होती है वैसे वह (विष्णुदेवी) भी समुद्रोपकण्ठान्ता (समुद्र के तट तक फैली हुई) थी।

[कापालिक खट्वाङ्गपट्टि धारण करते हैं। खट्वाङ्ग नवान् शिव का एक अस्त्र है। शिवोपासकों का एक वर्ग कापालिक है। ये लोग वृत्र मनुष्य की खोपड़ी हाथ में लिये रहते हैं। भोजन वसी में करते हैं और पानी भी लगी से पीते हैं। शकर ली के अनुकरण में बनते अस्त्र खट्वाङ्ग को भी धारण करते हैं। खट्वाङ्ग (टेंडी-मेडी छडी) की मुठिया के पास मुद्रा लगी रहती है। अत्र उस पट्टि के उपरान्त को समुद्र (मुद्रा सहित) कहा गया है। उस छडी की मुठिया के पास अङ्कार के रूप में रहती लक्ष्मी लगी रहती है उसे मुद्रा कहते हैं। समुद्रोपकण्ठान्त रूप साधारण धर्म विष्णुदेवी और खट्वाङ्गपट्टि दोनों में है।]

नामा की तरह सम्बराधिष्ठि थी।

[शम्बर नाम का एक दैत्य था । माया का निर्माण उसी ने किया था । इसी लिये माया को शम्बरी कहते हैं । माया जैसे शम्बर नामक दैत्य से अधिष्ठित है वैसे ही वह विन्ध्याटवी शम्बर (हिसक जन्तुओं) से अधिष्ठित थी ।]

मरुभूमि जैसे करीर नामक वृक्ष के केशरिप्रसव (पराग पूर्ण फूलों) के कारण असंचरणीय (अगम्य) होती है वैसे वह विन्ध्याटवी भी करीरकेशरि-प्रसव (हाथियों को चोत्वार करा देने वाले सिंहा के बच्चों) के कारण असंचरणीय (अगमनीय) है ।

[मरुभूमि में करीर (करीर) के पेड़ अधिक होते हैं । इन कटौले पीधों के कारण वह भूमि अगम्य होती है । केशरिप्रसव करीर का विशेषण है । प्रसव का अर्थ यहाँ पुत्र है । केशर से युक्त पदार्थ को केशरी कहा जा सकता है अतः केशरिप्रसव का अर्थ हुआ पराग पूर्ण पुत्र । विन्ध्याटवी पक्ष में करीर शब्द का अर्थ है हाथी को चोत्वार करा देने वाला । करी (हाथी) को जो ईरण (चीवार) करावे वह करीर है । केशरिप्रसव तो सिंह-शिशु अर्थ में प्रयुक्त हुआ ही है । अर्थात् वह विन्ध्याटवी हाथिया की चोत्वार करा देने वाले सिंहा के बच्चों के कारण अगम्य थी । सिंह शिशुओं के डर से चलना असम्भव था ।]

मङ्गलकार्यस्थल की तरह अत्यन्त सुन्दर चन्दन, गोरोचन-अक्षत दूर्वा (अक्षतित दूर्वा), वाली तृण-स्थली से अलङ्कृत थी । विभिन्न व्याधो से रक्षित थी ।

मङ्गल कार्य के अवसर पर भी चन्दन, गोरोचन, अक्षत (तण्डुल), दूर्वा आदि पदार्थों का सघट्ट किया जाता है । पूजन के स्थल पर इनकी थोड़ी-थोड़ी मात्रा मगूहीन की जाती है । विन्ध्याटवी में तो इन सभी पदार्थों के विशाल वन हैं । इसमें उसकी पूजनीय स्थानता और बढ़ी हुई है ।]

(विन्ध्याटवी में ही घूमता हुआ वह) इकट्ठे हुए बहुत से पर्वतीय गाँवा व ग्रामवासियों को देखा । कुछ लोग मेघ (भेड़) और वृष (बैल) के मिथुन (जोड़े) को लिये हुए थे । कुछ लोग सधनुष (धनुष के साथ) थे । कन्याएँ मनुष्म (घसा ली हुई) थीं ।

[मेघ, वृष, मिथुन, धन, कुम्भ, कन्या, ये विभिन्न राशियों के नाम हैं । इन्हीं व माध्यम से इनका भी यहाँ स्मरण दिखाया गया है । अगले वाक्यांश में विन्ध्याटवी के विभिन्न पदार्थों का वर्णन है ।]

'मह नदी तट की भूमि आकाश मार्ग की तरह चित्र शिखरियों (चित्र वर्ण के मयूरी) से अलङ्कृत है ।'

[आकाश-मार्ग चित्रशिल्पिभिः (सप्तपि तारो) ॥ अन्वृत्त है ।]

नदी जैसे बहुतरङ्गीपशोभित (बहुत जलहरियों से सुशोभित होती है)
वैसे जल दोधमनि (पशु बहुत यव) भी बहुतरम् + गोप + शोभिन्
(जलित्वा खाने से सुशोभित) है ।

यह उक्त पक्ति नक्षत्रों के मध्य तक पहुँची हुई है और विशाखा (शाखा)
में विहृत) नहीं है ।

[विभिन्न नक्षत्रों की गाना में विशाखा भी एक नक्षत्र है । नक्षत्र
मध्यगत होने हुए भी विशाखा (नक्षत्र) में हीन ब्रह्मा विरोध का मूल है ।
क्योंकि जो नक्षत्र मध्यगत होगा वह विशाखा से भी संयुक्त रहेगा ही । विशाखा
एक वा शाखा-विहीन अर्ध पर विरोध का परिहार किया जाता है]

यह उक्त पुष्पवती (फूलों से लदी) है और इसका स्वर्ण दोषजनक
नहीं है ।

[पुष्पवती (रजस्वला) का स्वर्ण दोषजनक माना जाता है । उक्त
पुष्पवती है फिर भी उसका स्वर्ण दोषमूलक नहीं है । पुष्पवती होती हुई भी
दोषजनक नहीं है । यही विरोध है । पुष्पवती शब्द का पुष्पपूर्ण अर्थ कर
लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है ।]

यह मधुदा (मधु देने वाले छत्तों से युक्त) नवीन बासों की पक्षि हरि-
त्रिमा (सिंहों को प्रिय) है ।

[जो सन्निहित + मधुदानवा (मधुदानव के पास रहने वाली नायिका)
होगी वह हरिप्रिया (भावान् विष्णु की प्रिया) कैसे होगी । विरोध । मधुदा
और नवा को वंशान्ति का विशेषण बना देने पर विरोध का परिहार हो
जाता है । मधु देने वाली नवीन बासों की पक्षि । मधु के छत्तों से युक्त वंश-
जानि को मधुदा कहा गया है ।]

यह सन्की वृक्ष की पक्षि मातङ्गो (हाथियों) से सृष्ट है और द्विजो
(पक्षियों) में छुटी नहीं है ।

[मातङ्ग (चाण्डाल) में सृष्ट है फिर भी द्विज (ब्राह्मण) से छुटी
नहीं है । यह विरोध है ।]

[उनके बाद विन्ध्यावत की तटीय चोटियों का वर्णन है ।]

ये शिवर महाद्वपद (बड़े-बड़े पेशों की मुख) हैं और सशिवण्डी
(मत्तों में युक्त) हैं । अतः द्वन्द्वपद शिवण्डी से युक्त महाद्वपद (सशिव
वण्डी) की तरह हैं । वृकोदर (भोम) जैसे विच्छिन्न कीचक वंश (कीचक
राज के वंश को समाप्त कर दिये) ये जैसे ये कोई शिवर भी वृकोदर
(मेरियों को अपने उदर (गुफाओं) में लिये हुए) हैं और विच्छिन्न कीचक

वक्ष (सन्धिष्ठ तथा निशिष्ठ_दोनों तरह के वास यहाँ से काटे गये) है । पाण्डु सन्तानक (पाण्डु की सन्तान युधिष्ठिर आदि) जैसे पुण्डरीकाक्ष (विष्णु) के साथ थे वैसे ही कुछ (शिखर) पाण्डु सन्तानक (शीत रंग के सन्तानक नाम के वृक्ष से युक्त) हैं और पुण्डरीक (कमल) तथा अम्भ (दशाक्ष आदि के पोषी) से युक्त हैं । महाबराह (भगवान् विष्णु) जैसे उद्भ्रम-भू (पृथ्वी का उद्धार करने) ये जैसे ये भी महाबराह (बड़े बड़े सूकरों से युक्त) हैं और उत्त + हत + भू (पृथ्वी के पर्याप्त भाग को अपने विशालता से छेक हुए) है । कुछ गिरों पर उत्तम कोटि के सुरभि (चम्पा) और श्रीद्रुम (विष्णु) की लक्ष्मियों में (शिव) हरिकर (बदरी व हाथी) ने पन्नग नग (सर्प नगरी) का आकृष्ट कर लिया है मणिभित्तियाँ चपक रही हैं । अतः अन्न दत्तग (पर्याप्त आकर्षण वाले) हैं ।

[इन विशेषणों के कारण व शिखर समुद्र की तरह हैं । समुद्र भी उत्कृष्ट सुरभि श्रीद्रुमादि हरिकरादि पन्नग नग है और स्फुर-मणिभिन्न तथा मन्दराग है । उत्कृष्ट (उत्तम) सुरभि (कामधेनु) श्रीद्रुम (पारिजात) आदि पदार्थों के समूह को प्राप्त करने के लिये हरिकर (भगवान् विष्णु के हाथी) द्वारा पन्नग (कामकिनाग रूप) नेत्र (मन्थन-रस्ती) आकृष्ट / लीची गयी) थी । मणि की भित्तियाँ वही स्फुरित हो रही थीं । मन्दर नाम का झर (पर्वत) वही रत्ना गण था । मन्थन की रस्ती को नेत्र कहते हैं । भगवान् विष्णु ने अपने हाथों ने मन्दराक्षल को मन्थन दण्ड बनाकर और वासुकि नाग को मन्थन रस्ती बना कर समुद्र का मन्थन किया था । विध्य स्वयं पक्ष में अमन्द-राग मन्थन करता है और समुद्र पक्ष में मन्दर + अन्न ।

विध्य के शिखर पर्याप्त आकर्षण वाले हैं । बन्दरों के हाथों ने सर्पों की आँखों को आकृष्ट कर लिया है । चम्पे का फूल अधिक सुगन्धित होता है और विष्णु के पक्ष में अधिक शोभते हैं । गन्ध और खोखले दोनों ही मरों को अधिक प्रिय हैं । बन्दरों के हाथों को बड़े गौर से देखते हैं कि वे किधर जाते हैं । बन्दर भी सर्पों के विरोधी होते हैं । आकृष्ट शब्द के अर्थ लैव लाना और अपनी आर आकृष्ट कर लेना दोनों हो सकते हैं । लैव लेना जर्म से सगन है क्योंकि बन्दर सर्प के मुँह को हाथ में पकड़ लेते हैं और उसे पद मया जमीन में रगड़ते लगाते हैं । रगड़ते रगड़ते उसके मुँह और आँखों को समाप्त कर डालते हैं । अतः लैव लेना या समाप्त करना अर्थ नी यहाँ उचित ही है ।]

कोई (शिखर) सस्यानु (युवा से युक्त) है और दुर्गाक्षय (दुर्ग (भगवत्) आश्रय (स्थान) वाले) हैं ।

[सन्धातु (शिवजी की मूर्तियों से युक्त) हैं और दुर्गा के भी आश्रय (गन्धर्व) वही बने हैं उन दिग्धरो पर कुछ सन्धातु (शिवोपासक) हैं और कुछ दुर्गा (विन्ध्यवासिनी) को ही आश्रय (शरण) मानने वाले शक्त जन हैं ।]

कुछ संह (गुप्ताओं से युक्त) हैं । ध्रुवमातागवदनचोत्कार (कुछ पर हाथियों के चोत्कार मुने जा रहे) हैं । अत्र कैलास के शृङ्गों की तरह हैं ।

[कैलास की चोटी भी संह (काजिरेय से युक्त) है और वहाँ गन्धर्वन (गणेश) जी का चोत्कार सुनायी पड़ता है ।]

इसलिये ये विन्ध्याचल की तटीय चोटियाँ सर्वथा सेवनीय हैं ।" इस तरह मन्त्रिपुत्र द्रुतशील के साथ वैदुष्यपूर्ण बातें कर कुछ ही समय में मनोहर मार्ग को पार कर पके हुए सैनिकों पर कृपा कर एक अत्यन्त सुन्दर स्थान पर यात्रा स्थगित किया जो पर्याप्त रूप से गिरते हुए झरनों के स्पर्श से ठगे हुए वृक्ष पुष्पों के पराग के लिए झुपके हुए जमरों के कारण मनोहर हो गया था ।

नैस्तैश्चिरस्तनवासरव्यापारैरहःशेषसहितमतिवाह्य तामपि निशा-
मनन्तरमुन्मिषत्पङ्कमपञ्चि रत्नाचधूनिनपचनैरिषापनीयमानेषु गगन-
चत्वरच्चर्चाप्रकरपाण्डुपुष्पपुञ्जकेषु नल्लशेषेषु, म्बविग्धोत्पन्नतमःकलङ्क-
कलुषितानि मन्नाङ्कुमगङ्गपिञ्जरैः क्रूरैः परानृश्य प्रसादयति दिननाथे
दिदनुत्तानि, पुनः पूर्वक्रमेण प्रमथाननकरोन् ॥

उन उन पुरातन दैनिक कार्यों के सान उर्वसिष्ट दिन और रात को भी बिनाकर नाउ कान जब अन्धई लेते हुए पक्षी अपने फटफटाने हुए पंखों की टना में आकाश मार्ग में दौड़े हुए श्वेत पुनः-राशि सदन नक्षत्रों को मानों बहार रहे थे, अपने विरह में दलित अन्धकार इन रत्नरूप से कटुपित दिशाओं के मुख को भगवान् सूर्य कुङ्कुमश्लेष से जित्त अपने करो से प्रगल्भ कर रहे थे, पुनः पक्षों की तरह यात्रा शुरू किया ।

[प्रातः काल में स्वामादिक दंग से तारे तिरोहित हो जाते हैं । कवि कल्पना करता है कि पक्षी अपने पंख की हवा से इन तारों को बटोर रहे थे । भगवान् सूर्य के तिरोहित हो जाने के कारण दिग्बधुएँ विरहवेदना से उदास थीं उनका मुख म्लान हो गया था । अन्धकार को ही म्लानता के रूप में लिया गया है । प्रातःकाल सूर्य अपने हाथों में कुङ्कुम लगाकर दिग्बधुओं के मुह को उज्ज्वल बना रहे थे । किराँतों से दिशाओं को उद्भासित कर रहे थे ।]

एवमपसरन्मार्गान्मार्गाञ्जीवारीणि चारीणि सहस्रनिगदान् नवान्
सकरेणुरेणुमथलमाच्छादितदिशि खराणि शिखराणि लङ्घयन् सुनी-
रागान् गिरिगहनश्रामस्तपस्विनश्च मानयन्नेकदा नातिदूरं द्योत्कं-
कादभ्यकदम्बचुम्ब्यमानाम्बुजराजिरजोरञ्जिताम्भसि सरिर्त्तारे-तठ-
तलोपविष्टमेकमध्वधान्तमध्वनीनभिदं चारुश्लोकयुगलमतिमधुरगीत-
तरङ्गरञ्जिताक्षरं गायन्ममद्राक्षीत् ॥

एवमिति ॥ मार्गादीनां लङ्घनादिकं कुर्वन् । अप्पातमलगाभी इत्यध्वनीनस्त
चातुरलोकयुगं गायन्तमद्राक्षीत् । अपसरत्सैन्यमयाश्रितमानं मार्गं मृगासमूहो
वेत्यस्तास्तथोक्तान् । नीवारोऽभ्येच्छति । सह हसनिनदैः । मशो जलाधारः । मह
कौण्ठभित्तैः । आच्छादिता दिशो चैशान्याच्छादितदिशि । खराणि तीक्ष्णानि ।
मुधुनीरं जलमगाश्च तरवो वेष्मिनि । पष्ठे सुष्टु निरांतरागान् । मानयन्निति
मानिरुपभोगार्थं पूजार्थम् । उपभोगे यथा 'मानयिष्यन्ति सिद्धा', सौख्यानि
विषमहृषरीसंभ्रमालिङ्गितानि ॥

भागने हुए मार्ग (मृग समूह) वाले रास्ते को, नीवारि (नीवार धान से
सम्पन्न) चारि (जल) को, हस ध्वनि युक्त नदी को, करेणु (हृदिनिधो) से
युक्त रेणु स्थली (धूलिबहुल स्थानों) को और दिशाओं को घेरे हुए तीक्ष्ण
पर्वतों को पार किया । सुनीर (सुन्दर जल) और अग (बुद्ध) वाले पर्वतीय
घने गड्ढों और सुनीराग (पूर्ण वैराग्य-सम्पन्न) तपस्वियों को सम्मानित
किया । समीप में ही उत्कण्ठित हृषो का समूह कमलों को चूम रहा था । उनके
पराग से नदी तट पर जल रञ्जित हो गया था । वहीं पर पेड़ की छाया के
नीचे मार्ग के पक्षे हुए एक राही को देखा जो माधुर्य की तरङ्गों में तैरते हुए
इन दो सुन्दर स्त्रियों को गाया ।

तय सुहृदुपभुक्कर्मफलः कामकेलिं

जनयति यनितानां कुङ्कुमालोहितानाम् ।

अथति स च समूहो मेरालाभूषितः सन्

जनयति यनितानां कुङ्कुमालोऽहितानाम् ॥ १० ॥

तरेति ॥ तत्र सम्यन्धी सुहृन्मित्रजनो मुक्तलक्ष्मीकृत् कुङ्कुमेन आ रूपाभू-
हितानां यनितानां जनिताथर्धरागाणां योयितां मन्मथलीलां जनयति । 'यनिता
जनिताथर्धरागयोयिति' इति विश्वप्रकाशः । तथा अहितानां समूहो मेरालाभूषि-
गिरिमन्मथुवि अपि च कुमाल कुसितमलम् सन् वैराग्यमहसंयततायाः प्रह्लादपदि-
योगाद्यतिताया बर्हिःप्रवसनादिसम्पन्नाहितताया शबरमन्त्रस्य कुं भूमिरो अयति ।
म चेति चकारात् सुहृद्दिवसमूहयोरन्वीन्यमयमकितपादरिपनविरोपणार्थां
शब्दश्लेषद्वारेण सम्बन्धः । तद्यथा, मेरालया कटिषट्टिकया भूषितः सुहृत् अहित-
समूहोऽपि अनुभुविषयः । अत्र प्रथमतोयपादौ विशेषणपदत्रयेणालङ्कनी
द्वितीयचतुर्थौ तु सम्पूर्णमेवेति ॥ ११ ॥

मित्र पक्ष — तुम्हारा मित्र-मण्डल लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है । कुङ्कुमराग-रञ्जित प्रेमपूर्ण कान्ताओं की कामनीय को उत्पन्न कर रहा है । (कभी कभी) मेखला (करधनी) से भूषित होकर वनिता (स्त्री की कु (भूमिका) को धारण करता है । कु (पृथ्वी रूप) माया को धारण करता है ।

शत्रु पक्षः— बापके अहितो (शत्रुओं) का समूह पर्वत की तटीय भूमि पर बसता है । कुमाल (कुत्सित मायाओं को धारण करता) है । अन्न सञ्जन, यति (संन्यासी) और वनी (वनवासी) के धर्म का धर्म धारण करता है । और श्रीरत्न (विन्व फल) का भोजन करता है ॥ १७ ॥

[मित्र पक्ष — उपशुक्त + श्रीरत्न — मित्र वर्ग लक्ष्मी के फल का अनुभव कर रहा है । कुङ्कुम रंग से रञ्जित पूर्ण प्रभावित स्त्रियों में भी अपने प्रति राग उत्पन्न कर देता है । अधिक ऐश्वर्य सम्पन्न होने के कारण उच्च वर्ग की रागपूर्ण स्त्रियों को आकृष्ट कर लेता है । रागवरी स्त्री को वनिता करने दे । मेखला + भूषित — करधनी से अलङ्कृत है । कुमाल — कु (पृथ्वी) ही इनकी माया है । पृथ्वी के लोगों को वे माया की तरह हृदय से लगाते हैं । कु शब्द पृथ्वी का वाचक है किन्तु यहाँ पृथ्वीस्य लोगों के वर्ग में प्रयुक्त हुआ है । वनीताना कुम् श्रयति—आपका मित्र मण्डल इनका रक्षक है कि करधनी आदि पहन कर स्वयम् स्त्री की भूमिका में उतर जाता है । नृत्य आदि कार्य में भाग लेता है ।

शत्रुपक्ष—आपके अहित लोगों का समूह उपशुक्त + श्रीरत्न (विन्व फल खाता) है । अन्न में रहने के कारण उसे दूसरा कोई भोजन नहीं मिलता । कुमाल (कुत्सित मायाओं को धारण करता) है । मेखला + भू + उषित—(पर्वत की तराई वाली भूमि में रह रहा) है । सन् + जनयति वनीताना कुम् श्रयति । (सन् + जन + यति + वनीताना कुम् + श्रयति) । सन् और जन को मिलाकर सञ्जन बनाने हैं जिसका जर्प होता है शिट्ठ व्यक्ति । सञ्जन, यति (संन्यासी) और वनी (वनवासी) का द्वन्द्व समास हुआ है । वनी के आगे जो एक प्रत्यय दीवता है उसका सञ्जन, और यति शब्द से भी अन्वय होता, क्योंकि द्वन्द्व के अन्त में आनेवाले अक्षर का प्रत्येक के साथ अन्वय होता है । द्वन्द्वान्ते ध्रुवशास्त्र प्रत्येकमपि सम्बन्धते । अर्थात् आपके शत्रु सञ्जनता, यतिता और वनीता (वनवासिता) की भूमिका में है । पर्वत के बीच वनीत पर सेते हैं । किसी से सम्पर्क न होने के कारण रागद्वेष विमुक्त हैं । अन्न सञ्जनता की भूमिका में हैं । पत्नियों से वियुक्त हैं । अन्न म मारे मारे फिरते हैं । अन्न ब्रह्मचर्य आदि नियमों का पालन हो जाता है । इससे संन्यासी का धर्म यतिता भी उनमें है । बाहर रहते हैं पास बल्कल आदि पहनते-पोशते हैं अन्न वनिता (वनवासी का धर्म) भी उनमें प्राप्त है ॥ १८ ॥

अपि च—

त्वत्तो भयेन नृप पश्य जनो वनेषु

कान्त्या जितस्मर तिरोहितवानरीणाम् ।

शाखामृगश्चपल एव गिरेरुपत्य-

कां त्याजितः स्मरति रोहितवानरीणाम् ॥ १३ ॥

त्वत्त इति ॥ नृपेति मशोधम् । कान्त्या मौन्दुर्येण जितस्मरेति तद्विरोपणम् । पश्येत्याभिमुख्यकरणे । अरीणां जनस्वद्वयेन वनेषु तिरोहितवान् । जितस्मरोत्यनेन 'स्मरोऽपि किल त्वया भिन इति तिरोहितोऽभूत्' इति प्रतीयते स्मृतिगोचर एव न तु दृश्यते हास्यवर्थात् । तथा एव प्रायश्चर्त्ता शाखामृगो वानरश्चपलो लोलः । अनेनैव वनवासिना शिशुजनेन गिरेरुपत्यकामधोभूमिर्कां त्याजितो रोहित-वानरीणां मकंदीनां स्मरति । वानरीणामिति 'अधीगर्ध—' इति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी ॥ १३ ॥

जितस्मर, (अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लेने वाले महाराज) देखिये, आप के भय से वानरों के आदमी जंगलों में छिप गये हैं । यह चपल शाखा मृग (बन्दर) पहाड़ की चोटी को छोड़ कर रोहितवानरी (लाल मुह वाली बन्दरी) का स्मरण कर रहा है ॥ १६ ॥

[द्वितीय श्लोक चतुर्थ चरण में समक है । द्वितीय चरण के तिरोहित-वान् + वरीणाम् विग्रहवाले पद का कर्ता जन है । अर्थात् अरीणाम्+जनः+तिरो-हितवन् । शिशुओं के आदमी छिप गये हैं । चतुर्थ चरण के तिरोहितवानरी-णाम् एक समस्त पद है । अर्थात् लाल मुह वाली वानरियों को बन्दर याद कर रहा है । 'अधीगर्धदेवेता कर्मणि' इस नियम से यहाँ कर्म में षष्ठी हुई है । यही राजा को जितस्मर कहा गया है । उसने अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लिया है । जीता तो प्रनिदग्दी को ही जाता है । अतः काम भी उसका प्रनिदग्दी (शत्रु) हुआ । वह भी हार कर छिप गया है । इसीलिए तो दिखाई नहीं पड़ना । यह भी कहा जा सकता है कि वह जंगल में ही छिप गया है । इसीलिए वरुण का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोहर हो गया है । उसकी नीरव भूमि उद्दीप्त बन गयी है ॥ १३ ॥

'अहो नु सख्ययमनल्पशास्त्रीयसंस्कारामृतसंपर्कपल्लवितमज्ञादुरः फोऽपि कुशल काव्यश्लोक्तिषु पथिकयुवा योग्याः, सम्भाषणस्य' इत्यन्वयः सति राजनि ससंभ्रममुत्थाय स्थित्वा च पुरः स पश्यः सप्रणाममिमं श्लोकमपाठोत् ॥

अहा, यह तो निश्चित ही काव्य श्लोक्ति में अत्यन्त कुशल पथिक युवक है । इसका प्रज्ञादुर (बुद्धि रूप अदुर) पर्याप्त शास्त्रीय संस्कार सुधा से सींच

कर पलटवित किया गया है। अतः इससे बात करनी चाहिए।" राजा यह सोच ही रहा था कि वह पणिक जल्दी से दड़ा और खड़ा होकर प्रणाम करता हुआ दस श्लोक की पदा—

‘वेद्या वेदनयाद्दिन्द्रो गोविन्दश्च गदाधरः।

संयुः शूलो विषादी च देव केनोपमीयसे’ ॥ १४ ॥

वेद्या इति ॥ वेदनया पीडया आश्लिष्ट सम्प्रदायः । गदेन रोगेन अधरो विधुरः । शूलं रणिवरोपोऽस्य । अत एव विषादान्वितः । तस्माद् देव केनोपमीयमे त्वमिति वादोऽर्थः । सख्यस्तु वेदानां नयेन ममेवाश्लिष्टः । गदा कौमोदकी । अथवा गदो ज्ञाता मोऽधरोऽनुग्रो यस्य । शूलमायुधम् । विषमशीति विषादी नीलकण्ठ-त्वात् ॥ १४ ॥

‘देव ब्रह्मा वेदना (व्यथा) से युक्त हैं, गोविन्द गद (रोग) से (अधर) पीड़ित हैं, शम्भु शूल (रोग) और विषाद से भरे हैं। आपको उपमा हन जिससे हैं ॥ १४ ॥

[संसार के दड़े लोगो के उपमान इन्हीं तीनों देवों में से कोई बनने हैं। इन तीनों में कुछ न कुछ कमी है अतः आपकी तुलना मैं किससे करूँ ?

ब्रह्मा ‘वेदनया’ युक्त है। वेदना शब्द के तृतीया का एकवचन है। गद (रोग) से गोविन्द अधर (पीड़ित) है। शम्भु शूली (शूल) रोग सम्पन्न और विषादी (विषाद) सम्पन्न है। वास्तव पक्ष—ब्रह्मा वेद + नय + आश्लिष्ट (वैदिकज्ञान से संयुक्त) हैं। यहाँ वेदनय शब्द के साथ आश्लिष्ट शब्द समस्त हुआ है। गोविन्द कौमोदकी नामक गदा को धारण करते हैं। शम्भु शूली (शूल अस्त्र धारण करने वाले) हैं और विषादी (विषभक्षण करने वाले) हैं। इसमें किसी एक से आपकी तुलना कैसे की जाय। आप में सबों की विशेषताएँ भरी हुई हैं। ब्रह्मा की तरह आप ज्ञान सम्पन्न हैं। गोविन्द की तरह प्रसिद्ध अन्न-धारी हैं। शिव की तरह सहिष्णु हैं। भगवान् शिव जैसे विष घटय मसृज्य पदार्थ को -पचाकर दिव्य का मङ्गल चाहते हैं वैसे आप भी स्वयं विविध परेशानियों को दठाकर भी संसार का मङ्गल चाहते हैं ॥ १४ ॥]

राजा तु तदाकर्ण्य क्षणमाग्रहोपरोधविस्मयद्वयैरसैः समकाल-मान्द्राचितमना-प्रथममुन्फुल्लया दशा, तना मुग्धस्मिताध्यैण, तदनु सर्वोद्गोष्मभयप्रदानेन, तमम्यर्च्य ‘पान्य, कथय केयमुत्तुङ्गकल्पोल-दोन्नायिरुदालुच्चवञ्चुस्त्रितमृगालवलयान्कूजतः कलहंसानस्रसृत्रिण-प्रवर्त्तितव्रज्यहोद्गारमुखरमुखांस्तोरतापसानिव दिवमायेपयितुमुद-हन्ती सरित्, तद्वणतकृतलमलंकुर्वाणः प्रसन्नतरस्वतीकः कश्च भगान्’ इति सप्रणयमपृच्छत् ॥

राजा तिवति ॥ मृणालवल्लयानामसूत्रम्, उत्पूजनस्य ब्रह्मयज्ञोद्धारः राजहंसानां तापता उपमानम् । ब्रह्मयज्ञो वेदाध्ययनम् ॥

यह सुन कर एक क्षण तक आपह, बन्धन, जाश्चर्म और हर्ष रस से एक ही समय राजा का मन तरङ्गित हो उठा । पहले तो प्रफुल्लित नेत्रों से, फिर मधुर मुस्कान से, इसके बाद सम्पूर्ण अंगों के भूषण दान से उसका सम्मान कर नम्रता से पूछा—“पयिक, कहो, इन उच्चतर तरङ्गरूप झालियों पर बैठे हुए अपने उन्नत षष्ठुओं से कोमल कमल-तन्तुओं को ऊपर की धोर फेंक कर कूजने हुए, अक्षसूत्र को धारण किये हुए, ब्रह्मयज्ञ में मन्त्रोच्चारण की ध्वनि में मुलरित मुख वाले तट के तपस्वियों की तरह इन राजहंसों को स्वर्ग तक पहुँचाने के लिए बहती हुई यह कौन सी नदी है ? और इस घने वृक्ष की छाया में अरपण्त मधुर बोलने वाले आप कौन हैं ? ॥

[राजहंसों के उपमान तीर के तपस्वी हैं । तपस्वी जैसे पवित्र जल में स्नान करते हैं वैसे ये हंस भी उसमें गोता लगा रहे हैं । तापसजन अक्ष-सूत्र धारण करते हैं तो हंस मृणाल-सूत्र धारण कर रहे हैं । तापस लोग ब्रह्मयज्ञ वैदिक मन्त्रों की ध्वनि करते हैं तो ये हंस भी कूजन कर रहे हैं । इन सब कारणों से हंसों की पर्याप्त सम्मानता मुनियों से हो गयी है ॥]

सोऽपि ‘सध्रमरया धूलकीचकवेणुलतया सहशी नावातरण-योग्या किमियमप्रसिद्धा महापदी देवस्य’ इत्यभिधाय कथयितुमा रब्धवान् ॥

मोक्षीति ॥ किमिय सतिरोवस्य न विदिता, यासी नावा देव्या तरणयोग्या । शब्दायमानकीचकवशवक्ष्या । सध्रमरया सभृहया । सहशी । ‘वशवक्ष्यपि भधाते वाताभावे रणस्य शब्दस्य योग्या न भवति । सतिदपि सध्रम-सावर्तो रयो जयो यस्या इति सध्रमरया ।

यह भी, “तट के छिद्र-बहुल बाँसों की तरह नावातरण योग्य (मीका से पार करने योग्य), ध्रम (आवर्त) और रय (वेग) युक्त यह महानदी श्रीमान् के उद्ये अप्रसिद्ध है ?” यह कहकर (विवरण देना) शुरू किया ॥

[छिद्र बहुल वाँस (कीचक) पक्ष—सध्रमरया—ध्रमरो से युक्त, नावातरणयोग्या न + अवात + रण + योग्या । अवात (हवा के न रहने पर) रण (ध्वनि) के अर्थ नहीं । छिद्रबहुल वाँस तब तक आवाज नहीं करन जबतक हवा नहीं बहती । हवा बहने पर ही उनमें से ध्वनि निकलती है । नदी सध्रमरया (आवर्त और वेग से युक्त) है और लता भी सध्रमरया है । सध्रमरा शब्द के तृतीया के एकवचन सध्रमरया है । नावातरण योग्या भी दोनों ही हैं ॥]

‘मानोः सुता संवरणस्य भार्या नापी सरित्सेयमघस्य हन्त्री ।

यस्याः कुरुः सूनुरभूत्स यम्य नान्ना कुक्षेत्रमुदाहरन्ति ॥ १५ ॥

मन्दोरिदि ॥ संवरणं चित्रविशेष ॥ १५ ॥

“दूर्य की लडकी, राजा संवरण की पत्नी, पापी की विनाशिका, यह वही यमुना नदी है जिसके पुत्र कुरु हुए। उन्हीं के नाम पर कुक्षेत्र कहा जाता है ॥ १५ ॥

[तापी, यमुना और यमी ये पदांश-वाचक शब्द हैं ॥ १५ ॥]

एतस्याः सलिलान्वावगाहसमये कुर्यन्ति नित्यं नृणां

भौरन्ध्रोभ्रतकर्कशस्तननटीसंघट्टपिष्टोर्मयः ।

आभ्यवभृङ्गनिमालकैः क्षणमिष व्यालालनेत्रैर्मुलै-

रत्कुलोत्पलगर्मपङ्कजघनभ्रान्ति महाराष्ट्रिकाः ॥ १६ ॥

एतस्या इति ॥ शत्रुश्लोत्पलानि गर्भे मध्ये यस्य पङ्कजघनस्य । महाराष्ट्रिका-
स्त्रियः ॥ १६ ॥

स्नान के समय घने जंघे एवं कर्कश स्तनतट से इनकी लहरियों को छूँति करती हुई महाराष्ट्र की नायिकायें अपने चंचल भ्रमर-सदृश बालों तथा चंचल मुखों और नेत्रों से यमुन्यों की पानी के बीच सदा कमल वन की भ्रान्ति उत्पन्न करती हैं ॥ १६ ॥

[नेत्र और मुख कमल की तरह हैं और बाल भ्रमर की तरह हैं । अचानक देखकर लोगों को भ्रान्ति हो जाती है कि पानी में आश्मी के मुख नेत्र और नेत्र नहीं हैं अपितु कमलों के ऊपर भ्रमर मंडरा रहे हैं ॥ १६ ॥]

अपि च—

पद्येतस्याः सहृदपि मरुभर्तिताम्भोजरात्रि-

म्रेह्रुत्पद्यजनविधुतं धारि नीहारहारि ।

रोधोभाजां पिबन्ति कुसुमैर्वासितं पादपानां

पीयूषाय स्पृहयति ततः किं वचिन्नाकिलोकः ॥ १७ ॥

तट के पुत्रों से मुग्धपुत्र, वायु द्वारा नवाये गये कमल-समूह के चंचल पत्ररूप पंखों में कम्पित इस नदी के मनोहर जलका को यदि स्वर्ग के लोग एक बार भी पीनें तो क्या वे अमृत की इच्छा करेंगे ? ॥ १७ ॥

मामपि पुष्कराक्षनामानं धार्मिकमद्यगच्छन्तु देवः ॥

मामिति ॥ धार्मिकों नियुक्तों धार्मिकः ।

मुझे भी आप पुष्कराक्ष नामक धार्मिक समजें ॥

[सन्देश-वाहक या किसी बात-विशेष की जानकारी के लिये नियुक्त व्यक्ति को दार्तिक कहते हैं ॥]

तथाहि—

स्थित्या स्वदागमनमार्गमुन्वे गवाक्षे

वार्ताविशेषमधिगन्तुमिहायतादया ।

संप्रेषितो निषधनाथ तथास्मि यस्याः

क्रीडागिरिस्त्वमसि मुग्धमनोमृगस्य ॥ १८ ॥

स्थिति ॥ गवाक्षे दिखवा तथा आपताचका बोधदशा वार्तान्तरं तातुमिह प्रेषितोऽहम् । यस्या मुग्धमनोमृगस्य एव क्रीडागिरि । मृगो हि गिरौ मनस्यवि रमते ॥ १८ ॥

निषधराज, तुम्हारे आगमनमार्ग की सामने वाली खिडकी पर बैठ कर वार्ता-विशेष को जानने के लिये उस विशालाक्षी दमयन्ती द्वारा भेजा गया हूँ जिसके भीले मनरूप मृग के लिये आप ही क्रीडा गैल हैं ॥ १८ ॥

[जिस ओर से आप का आगमन होगा उसी के सामने वाली खिडकी पर बैठ कर आप के सन्देश या समाचार की प्रतीक्षा कर रही है । मृग का मन जैसे पर्वत पर रमता है वैसे उम दमयन्ती का मन आप में रमता है ॥ १८ ॥]

एष्यति च भवस्तनेऽहनि मार्गध्रमङ्गान्नमिनो नानिदूरधोन्मृ-
सरत्सालसर्जार्जुननिचुलनिचयान्तरचलच्चटुलचकोरमयूरहारीतहंस-
कुलकोलाहलानि पयाङ्गापुलिनपरिसरे स्थितं तथा प्रहितमाप्तं
क्रीडाकिन्तरमिधुनम् ॥

मार्गध्रम से बना हुआ, यहाँ से थोड़े दूर पर ऊँचे ओर लोथे पाल, सर्ज, अर्जुन और निचुल वृक्षों के नीचे घूमने हुए चञ्चल चकोर, मयूर, हारीत और हंसों के कोलाहल से मनोहर पयाङ्गी नदी के तट पर ठहरा हुआ, उम (दमयन्ती) के द्वारा भेजा हुआ जोड़ा किन्नर का जोड़ा कल आप से मिलेगा ।

‘इय च वाच्यतां तथा स्वदम्नकिसलयलिखिताक्षरगमां भूर्ज-
पत्रिका’ इत्यभिधाय पुरोऽस्य लेखपत्रिकां व्यष्टज्ज् ॥

यह वाच्ये, उसके विषय्य महत्त कर द्वारा लिखे गये अक्षरों से गभित भूर्ज पत्रिका । यह कह कर उनके सामने चिट्ठी रख दिया ॥

राजापि पार्श्वपरिजनेनोत्क्रिप्यार्पिनां तामतिरदत्तपुलकाङ्कुरकण्ट-
कितप्रकोष्ठकाण्डेन पाणिना स्वयमुन्मुच्य सादरमवाचयत् ॥

समीक्षकों परिचय द्वारा राजकर दी जाने पर राजा भी पर्याप्त रोमाञ्च के कारण वस्यन्तित्र वस्यन्ति दाने हाथों से स्वयं खींचकर बादर के साथ चले पड़ा।

‘नलोऽपि मां ग्रन्यनलोऽसि यत्तद्भवाद्दशां नैव नैव धर्मः ।

तथावल्लानां बन्धुर्द् ग्रहीतुं न मानसं मानसमुद्रयुक्तम् ॥ १९ ॥

न इति । नैव इत्यभिज्ञानान्मन्त्रेण कुलीनबोद्धिद्वयम् । मानसमुद्वेपनेन च मण्डलामेव परानयो नावलानाम् । मा शनि र्थं नलाप्योऽपि सखनलो बहि-
रुक्तमनकृतेन मनायक इत्यर्थः । न नलोऽनल इति विरोधः । परिहारस्तु नागेव
इत्याचारः । न चैव भवदशा धर्मो यस्माद्वहनयता तस्मात्तवावलाना दुर्बलाना
मानस चेवो ग्रहीतुं न युक्तम् । यल्लङ्घिनि शिवाविशेषतः हठादिष्वर्थोऽप्ययम् ॥१७॥

“नैषध । तब होकर भी तुम मेरे निचे बनल हा । मानहूय सागर मे मुल अवकाओ के मानस इस तरह ग्रहण करना तुम नैसो का धर्म नहो है ॥ १९ ॥

[नैपथ्य इस सम्बोधन से उसकी उच्च परम्परा की ओर सँकेत किया गया है। अर्थात् इतनी उच्च परम्परा में तुम्हारा चद्भव है फिर भी जवन (निर्वज) को तुम इस तरह सता रहे हो। तुम्हारे जैसे आदमी के बिने यह व्यवहार निःशान्त अनुचित है ॥ १९ ॥]

अपि च—

निपननि किल दुर्बलेषु दैर्घं तद्वितथं ननु येन कारणेन ।

यत्त्वनि न यथा तथाबलानां प्रभवति कृपशक्तस्य मनोभू ॥२०॥

निदग्धीने ॥ अथऽत्र त्रियोऽसृष्टयः ॥ २० ॥

दैव भी दुर्बलों को ही सताता है, यह एक निश्चित सत्य है। इसीलिए तो कामदेव अपने धनुष को निम्न तरह निर्दला और अबलाओं पर सजाता है वन तरह बन्धुओं पर नहीं ॥ २० ॥

[तुझे जितना काम सम्पन्न कर रहा है उतना आपसी नहीं। यह एक सामान्य नियम है कि दुर्वच जादमी सर्वाधिक कामुक होते हैं ॥ २० ॥]

अपि च—

अथा विदुः प्रविशन्ति कण्डिनोद्यानप्रमयः ।

उत्पुल्लन्धनपद्मामभयचरणमूषिता ॥ २६ ॥

बतु: यह जिज्ञासु है—

बद यह कुगिडन नगर के उपवन की भूमि पूर्ण विकसित स्थल-कमल सटप (जापके) चरणों से अलङ्कृत होगी ?" ॥ २१ ॥

इति लेखल्लिखितप्रणयसुभाषितामृतसप्लवेनाप्लावितहृदय,
 'विधे, विधेहि मे पक्षिण इव पक्षयुगलमुद्गोय येन तां पश्यामि' इति
 चिन्तयन्तरपति पुरतः स्थितं तं प्रियावार्तिकमाश्लिष्यन्निवोच्चरोमाञ्च
 निचयेन पित्रन्निवाभिलाषलुपितया दृशा, स्रपयन्निज मधुरस्मितामृत
 रसेन, पुन पुन सादरमभाषत ॥

लेख के प्रणय-पूर्ण सुभाषित सुधा की धारा से राजा का मानस भर गया।
 "भगवन् पक्षियों की तरह मुझ में भी दो पंख बना दो कि उड़ कर उगे देखू।"
 इस तरह सोचता हुआ राजा सामने बैठ हुए प्रिया के सन्देश वाहक से अपने
 रोमाञ्च समूह द्वारा मानो आलङ्कृत करना हुआ, अभिलाष पूर्ण प्यासी जीवा
 ने मानो पीना हुआ, मधुर मुरकान के अमृत रस में नहलना हुआ बड़े
 स्नेह से बार बार बात किया।

'पुष्कराक्ष, सा सत्यथा विजयते राजपुत्री। यस्या प्रसन्नमुदार-
 सत्कान्तिरिष्टं सुकुमारमनेकालकारभाजनं ययो वचनं च, सप्रश्रय-
 प्रगल्भो विवेकवान्विदग्धबुद्धिर्भयद्विध परिजनश्च ॥

पुष्करेण ॥ प्रसन्नं निर्मलम् । उद्गार रम्यम् । सत्कान्तिं तेजस्वि । रिष्टं सुष-
 टिसर्वविषयम् । सुकुमारं मृदु । अनेकालकारभाजनं बहुभूषणपात्रम् । यय हा-
 र्देन तदाधारभूत शरीरमुच्यते । यये प्रसन्नः सतिपर्यप्रर्णानिकृत् । महार्थमुदारम् ।
 औशवश्य कान्ति । मधुगाव रक्षेत् । अग्रदूत सुकुमारम् । अनुप्राप्तोपमा
 ह्योजलकारा ॥

'पुष्कराक्ष, वह राजपुत्री सब तरह से उत्कृष्ट है, जिसका शरीर निर्मल,
 रमणीय, तेजस्वी, सुशील, एवं कोमल है और विविध भूषणों से मण्डित है,
 वाणी स्फुट अर्थ से सम्पन्न, गम्भीर, उज्ज्वल, ममृण एवं सुकुमार है और
 अनुप्रास, इष्टेय आदि अलंकारों से युक्त है, नम्र निर्भीक, विवेकयुक्त तथा
 परिपक्व बुद्धि के आप जैसे लोग जिसके परिजन है।

तत्कथय 'कथनीयकीर्तिं कास्ते कथमास्ते कं विनोदमनुतिष्ठति
 येन ध्यापरोक्षे परिणामयति धासरं वाऽसौ भजस्त्वामिमुना इत्येष
 मुक्तः स पुन पल्लवयन् अनुरागकन्दलं नलमलपत् ॥

तो, कहिये प्रशंसनीय यश वाणी, आपके स्वामी की पुत्री कहां रहती है ?
 कैसे रहती है ? किस वस्तु में मनो विनोद करती है ? किस कार्य में अपना
 दिन बिताती है ?" ऐसा बहने जाने पर उनके अनुराग की पुन पुन पल्लवित
 करता हुआ उनसे (पुष्कराक्ष) बोला—

त्वदेशागतचायसाय ददती दध्योदनं पिण्डितं

त्वश्राम्न सहशो दृशं निदयती चन्येऽपि मुग्धा नले ।

त्वत्संदेशकथार्थिनी मृगयते तान् राजहंसान् पुनः

क्रोडोद्याननरङ्गिणीतरुनलच्छायासु वापीषु च ॥ २२ ॥

त्वरेणेति । तव नामापि दुर्लभं मनोऽस्य सदसो समुचिते । 'नाम्ना त्व' सदसो
इति पाठः । स तु स्पष्ट एव ॥ २२ ॥

‘आपके देश की ओर से आये हुए कौनों को दही-भात का कवल देती
है । तुम्हारे नाम से समानता रखने वाले जङ्गली मत्त नामक घास पर भी
अँख लगायी रहती है । तुम्हारी सन्देश-कथा की इच्छुक वह विनोदवर्ती,
नदियों और पेड़ों की छाया तथा जलाशयों पर उन राजहंसों को खोजती
बैठती है ॥ २२ ॥

अपिच । सांप्रतं तथा—

त्यद्रवेशागतमाद्यतेन मृदुना संजातरोमाञ्चया

त्यद्रूपाञ्चित्राचित्रफलके निर्वापयन्त्या दशम् ।

त्यन्नामामृतसिक्तकर्णपुटया त्यन्मार्गवातायने

नीचैः पञ्चमगोनिगर्मितगिरा नक्तंदिनं स्थीयते ॥ २३ ॥

स्वरेणानन्दे ॥ नीचैरिति निमृगम् । प्रपञ्चवरागवात् ॥ २३ ॥

इस समय वह—

आपके देश की ओर से आई हुई कोमल हवा से रोमाञ्चित हो उठती
है । आपके सौन्दर्य की प्रतिवृत्ति वाले सब सुन्दर चित्रपट्ट पर अपनी माँखों
की छाप करती है । आपके नामामृत से अपने कानों को सींचती है । एकान्त में
पञ्चम स्वर भरे गीतों को गाती हुई आपके मार्ग के सम्मुख वाले गवाक्ष के
पास दिन रात बैठी रहती है ।” ॥ २३ ॥

पथमनुगुणमनुरागस्य, सदृशं शृङ्गारस्य, सहोदरमादरस्य, प्रियं
प्रेमप्रपञ्चस्य, प्रोत्साहनमनङ्गस्य, अनुकूलमुत्कण्ठायाः, समुचितम-
भिनिवेशस्य, कौतुकजननं जल्पति पुष्कराक्षे, ध्रुवणकुतूहलानि
विस्मृतान्यव्यापारे तन्मयतामिवानुभवति भ्रूमुजि, जलतीमघटसु
पूर्वाह्ण्येलाबेषु, गगनमध्यासन्नवर्तिनि व्रजति तीव्रतां घन्तमण्डले,
स्खलयति पथि पथिकानसहोर्मिणि घर्मजाले, जलाशयाननुसरत्सु
पिपासाकूनतरलितारकेषु श्वासिषु श्वापदैषु, पङ्क्तिरुलकदर्मधिम-
दाद्यतेषु सरित्परिसरवनविहारिकरिवराहमहिषमण्डलेषु, चिटपि-
कोटरकुटीरनोडनिलयनिलीयमानेषु संपुटितपक्षेषु पक्षिषु, कूलकुलाय-
कोणरूषितकोरूयमानकुक्कुडेषु गिरिसरित्सुरङ्गाङ्गणेषु रत्नरङ्गचरि-
तवर्चस्मानलनीलनिम्नशाद्वलस्थलस्थितये हिण्डमानासु कारणवशि-

खण्डिमण्डलीषु, शिशिरनिवासवाञ्छया कूजत्सु करञ्जनिकुञ्जपुञ्जिन-
कपिञ्जलकपोतपोतकेषु, वहति मनाङ्ग्लानकोमलकुसुमकोशकोष्णा-
मन्दमकरन्दधिन्दूद्वारिणि तापीतीरतरङ्गस्पर्शसेव्ये मध्याद्रमरुति,
ध्रुमवशयिलोलमीलजयननीलोत्पलासु वहलतरुतलच्छायामाश्र-
यन्तीषु सीदत्सैनिकनितम्बिनीषु प्रस्तावपाठकः पपाठ ॥

पर्यायिनि ॥ एवं प्रथममण्डलादिष्वीदृशेषु सरसु प्रस्तावपाठकः पपाठ । पिपासाया
भाक्तेनाभिप्रायेण तरलिता तारा कनीनिका यैः । श्रामान्धिनधापदैः । गिरिवरिता
सुरताः सधयस्तद्वक्त्रेषु ॥

इस तरह पुष्कराक्ष प्रेम के अनुकूल, शृङ्गार के सदृश, आदर के समगुण,
प्रेम-प्रपञ्च के प्रिय, काम के उद्दीपक, उरफुल्ल के अनुगुण, प्रवृत्ति के उचि-
त सभाषण कर रहा था । मुनने की उरफुल्ल में राजा भी समस्त धर्म कार्यों
की भूत कर तन्मय जैसा हो गया था । असह्य धूप पक्षियों की मार्ग से स्वलि-
न कर रही थी । प्यास की व्याकुलता से चञ्चल-कनीनिका वाले जगली जानवर
हाफते हुए जलाशय की ओर जा रहे थे । नदी के तट तथा वन में विहार
करने वाले हाथी, सूकर और भैंसों का समूह पशुपूर्ण नदी-तट के कोचर के
मर्दन में व्यस्त था । पक्षी अपनी पक्षों को समेट कर पेड़ों के खोखले एवं
कटी के घोसले में छिप रहे थे । तट-गत घोसलों के एक देश में कुक्कुट पक्षी
कुक्कुट कर रहे थे । मयूरो और चक्रवाकों का समूह पर्वतों, नदियों और सुरङ्गों
के बीच घूमते हुए मृगों द्वारा चरे गये दूर्वादिल तथा नल नामक नीले तृण
वाली तलहटी की भूमि खोजी जा रही थी । कपिञ्जल और कपोत के चञ्चे
करञ्ज वृक्ष के नीचे इगड्ठे होकर ठण्डी जगह पर निवास की आकाङ्क्षा से
कूज रहे थे । दोपहर की धूप के कारण कुछ भ्रान्त कोमल फूलों के कोश में
रहने वाले (दोपहर की धूप के कारण) कुछ उष्ण पराग बिन्दुओं की पर्याप्त
वर्षा करने वाली, तापी (यमुना) नदी के तीर्थ तरङ्गों के सम्पर्क के कारण
मध्य, दोपहर की हवा बह रही थी । सैनिकों की चकी हुई कान्ताएँ ध्रुम के
कारण अपने चञ्चल नयन कमल को मुवृलित करती हुई घने पेड़ों की छाया
का आश्रय ले रही थीं । ऐम अवसर पर प्रस्ताव पाठक ने पढ़ा — ।

‘विचित्राः पत्रालोर्दलयति गलत्स्वेदमल्लिलं-

रमन्दं सृद्नाति प्रमदरुतिरुम्भस्तनटी’ ।

प्रदन्धेनाक्राम जनजघनजघोरुयुगलं

ध्रुम सेनाङ्गेषु प्रसरति शनैः फामुक इव ॥ २४ ॥

विचित्रा इति ॥ अने विचित्र पत्रालीर्वाहनधेनीर्विलेपनपत्रजल्लीध्रुमदलयति । तथा
मत्तहरिकुम्भानेव स्तनतटीरमन्द रोक्षति । प्रदन्धेन सातायेन प्रदृष्टयन्धेन च ।

करजविशेषेण । प्रणानाहटवाक्कन्दर्पभाषाच्च । जयन च जह्ये चोह्युगलं च
प्राग्द्वयाममाडार । ततः कर्मधारयः । तदाक्रमन्काशीव भ्रमः सेनायाः । अत्रेयु
हमन्त्रवादिषु प्रसरति ॥ २४ ॥

सेना के विभिन्न जङ्गलों में भ्रम (पकावट) कामुक की तरह धीरे धीरे
जैज रहा है । विविध पथानियों (सवारियों) को बहने हुए पसीने के झर
में डूबपिश कर रहा है । मतवाले हाथियों के कुम्भस्थल रूप स्तनतट को
स्नान कर रहा है । वैदक सैनिकों के जघा, जघन ऊध-शुण्ठ पर आक्रमण
कर रहा है ॥ २४ ॥

[कामुक पक्ष—कामुक भी अपने पसीने के जल से कामिनी के जङ्गलों
पर की गयी पथ रचना को विदग्ध कर देता है । मतवाले हाथी के कुम्भस्थल
स्तन तट का ओरो से मर्दन करता है । कामिनी जन के जनन,
जन्मा और ऊधस्थ पर गाठ बन्ध के साथ आक्रमण करता है । झूठा यही
है कि सेना के थोड़े हाथी पसीने से लय-पथ हो गये हैं और सैनिक दिक्कुर
धक गये हैं ॥ २४ ॥]

अपि च—

कूजतक्रौञ्चं चटुलकुरुरद्वन्द्वमुग्रादिहंसं
श्रीदत्तक्रोडं निपतितलतापुष्पकिञ्चलकहारि ।

मस्याः साम्प्रतमवनतलभ्रान्तसुताध्वनीनं

रोधः सिन्धोः स्यगयति भवत्सैनिकानां प्रयाणम् ॥ २५ ॥

द्वन्द्वेति ॥ कौञ्चकूजनादीनि विशेषगति रोधसो रम्यतादेहात्मैक्यप्रयण-
कचलनमाद्यमानि ॥ २५ ॥

जहा कौञ्च पक्षी कूज रहे है, चक्र कुरुरों का बोझ (विशासमान)
है, हंसों का उत्तम कण्ठव हो रहा है, सूकर खेज रहे हैं, पके हुए पक्षि पड़े
वृक्ष-वन की सामा में सो रहे हैं, और गिरे हुए लता-पुत्रों के परग से जो
मशोहर बन गया है, ऐसे इस नदी तट को आपके सैनिकों का अभियान
जानन कर रहा है ॥ २५ ॥

राजा तु तदाकर्ण्य 'वाहक, वाहनां बहुमतो बाहूत्यादिहंसं बालः,
नद्वद सैनिकान्, जयतरन तापीतीरतस्तलभ्रान्, आश्रयत भ्रम-
च्छिदच्छायाः, कुरुर पटकूटों, कारयत कायमानानि, मुञ्चतामन्द-
सुदुशाद्वलेभ्यस्तलान्वर्त्तावर्दकान्, कर्दयत कर्दमे महिपान्, खाद्यन
चेत्तरीभिर्नशकरीराङ्गुरान्, प्रचारयत क्रमेण क्रमेत्तकान्, अवगाहा-
चसाने पृष्ठावकीर्णपुलिनपट्टपांसवो विहरन्तु स्वयशं वंशस्तम्बेषु
मन्मथेस्माः, तरुवृक्षेषु ध्वनीत तीव्रवेगान्वेगसरान्, अवतरन्तु

तार्पातीरतरङ्गेषु तुरंगाः, शिशिरतरङ्गानिलान्दोलितविधिधविकच-
मञ्जरीजालजटिलेष्टफुल्ललताखण्डमण्डपेषु मध्याह्नसमयमतिवाहयन्तु
किन्नरमिथुनानि' इति सेनापतिमादिदेश ॥

राजा त्विति ॥ कायमानानि नृगमयगृहाणि । वशानां करीरागामङ्कुरा ॥

राजा तो यह सुन कर, "बाहुक ! अधिकांश लोगो को यही का वास
अभिमत है । अतः सैनिको को कहो । तापी नदी के तटगत वृक्षों की छाया
के नीचे उतरे । यकावट को नष्ट कर देने वाली छाया में ठहरे । भैंसों को
कीचड़ में उछावें । गदहों को बाँध और करीर के कपोलों को लिलावें । उँटों
को क्रम से घुमावें । स्नान कर लेने के बाद तट के कीचड़ कणों को पीठ पर
फेकने हुए हाथी अपनी इच्छा के अनुसार बाँध के जङ्गलों में विहार करे ।
जोड़ से भागने वाले खच्चरों को पेड़ों के मूल में बाँध दें । यमुना के तटीय
तरङ्गों में घोड़े उतरें । किन्नर-मिथुन ठण्डी लहरियों से स्पष्ट वायु द्वारा कम्पित,
विषय लिली हुई मञ्जरियों से व्याप्त विकसित लता समूह के मण्डपों में दो
पहर का समय बितावें ।" ऐसी सेनापति की आज्ञा दिया ।

स्थयमपि पुष्कराक्षसूचितार्थपथभ्रमपिन्नकिन्नरमिथुनविदक्षया
कृन्मृगयाविनोदध्यपदेशी दिशि दक्षिणस्यामातस्तोरुपरिवारपरि-
वृतो अरश्निर्गन्गात्कारिवारिरमणीयासु रममाणपुल्लिन्दनितम्बिनी-
घदनचन्द्रयिम्बितासु सान्द्रद्रुमद्रोणीषु विचरितुमारभत ॥

स्वयं भी पुष्कराक्ष द्वारा सूचित, आधे रास्ते में ही भ्रम के कारण धके
हुए किन्नर-मिथुनो को देखने की इच्छा से शिकार द्वारा मनो विनोद के बहाने
कुछ प्रामाणिक परिजनो के साथ दक्षिण दिशा की ओर विहार करने के लिये
चल पड़ा । वहाँ घने वृक्षों की छाँचने वाली नहरे गिरते हुए झरनों की आवाज
ध्वनि से मनोहर थी । रमण करती हुई किरात-कान्ताओं का घदनचन्द्र उनमें
प्रतिबिम्बित था ।

पुरः स्थितश्चास्य वर्त्म दर्शयन् जात्यतरतुरंगमारोपितः पुष्करा-
क्षोऽप्यमायत ॥

एक उत्तम कोटि के घोड़े पर पुष्कराक्ष आगे आगे रास्ता दिखाता हुआ
बोझ ।

'देव, मार्कण्डेयप्रमुग्धमहामुनिनिवासपवित्रिताः पुण्याः खल्विमाः
पयोष्णीपरिसरवनभूमयः ॥

श्रीमान्, पयोष्णीतट के ये वन स्थल मार्कण्डेय जैसे बड़े-बड़े मुनियों
के निवास के कारण पवित्र एवं पुण्य हो गये हैं ।

तथाहि—

श्रूयते किन्नास्मादुद्देशात्पूर्वदिग्भागे भगवतः पुराणपुण्याच-
तारम्य परमुरामस्य जनयितुर्जमदग्नेराधमः । ततोऽपि नातिदूरेण
सुरासुरमौलिमालानुकुलमुक्तमकरन्दविन्दुस्नपितपादारविन्दस्य भग-
वनः स्वम्बेदप्रमत्तप्रवर्तितपयोष्णीप्रवाहस्य महावराहस्यायतनम् ॥

व्योक्ति—

हम लोग जहाँ हैं इसने पूर्व दिशा में भगवान् विन्दु के अवतार परमुराम
के पिता जमदग्नि का आयम था, ऐसा सुना जाता है । उस स्थान से दौड़ी
ही दूर पर देवा और दानवों के शिर में सुगी हुई माला की कण्डियों के पराग
से स्नान किये हुए चरण कमल वाले भगवान् महावराह, जिनके अरुने पर्वतों की
धारा से पयोष्णी नदी का प्रवाह निकलता है, की कुरी है ।

इतोऽप्यवलोकयतु देवः—

सैषा चलच्चन्द्रकिचक्राकचञ्चलचकोराकुलकुलकच्छा ।

स्व.सीमसोपानपटकरङ्गा गङ्गाप्रतिस्पर्धिपयाः पयोष्णी ॥ २६ ॥

नैति ॥ चन्द्रकी मयूर । कच्छा कोटादिवैभ्रप्रदेशा । स्व.सीमेषत्र स्वतिन
व्यत्र स्वर्गार्थम् ॥ २६ ॥

महाराज, इसमें भी देखें—

जहाँ मयूर और चक्राक घूम रहे हैं, चञ्चल घबि करत हुए चकोरो
से तट व्याप्त है, स्वर्ग की सीमा तक पर्वतों पार्श्वों सीढ़ियों की तरह
तरङ्गे हैं, जब जिसका गंगा के साथ प्रतिस्पर्धा करता है ऐसी यह पयोष्णी
नदी है ॥ २६ ॥

यस्याः पश्यैते—

मुक्ताब्जैः श्रूयमाणां सिकतिलपुलिनप्रान्तविभ्रान्तपान्थै-

रन्धानं मञ्जुगानप्रियहरिणकुलान्यम्बुपानागतानि ।

सांश्रयध्यानावसाने क्षणमिव मुनयः संनिधौ पङ्कजाना-

मोक्षारोच्चाररस्यं मधुकरमधुरश्चानमाकर्णयन्ति ॥ २७ ॥

नुत्तेति ॥ सिकतास्यास्तीत्यर्थे हन्च् । मधुकरश्चानस्योत्कृष्टाज्जनकत्वापान्थाना
मुक्ताब्जम् । गानप्रियवादरिणानां रोषो मुनीनां च देवत्रयीवेदत्रयीवाविम्वोकारे
हीनात्वात् तत्प्रतिनिधौ मधुकरश्चाने बहुमानः । तथा च 'त्रयी तिस्रो वृत्तास्त्रिभुवन-
मयो श्रीनपि सुरा नकाराद्यैर्वर्गैस्त्रिभिरभिद्वयस्तीर्णविकृति । तुरीयं ते धाम ध्वनि-
निवदश्चानमगुमि' समस्तं व्यस्तं र्थां तराद् गृह्याथोमिति पदम् ॥ २७ ॥

देखिये जिसने—

यहो की मधुर मधुकर ध्वनियो कमलो के समीप पानी पीने के लिये भाये हुए मधुर पीत से अधिक स्नेह रखनेवाले हरिणो की रोक रही है, बाजू भरे तट के एक देश में विधाम करने वाले आंसू टपकाने हुए पथिको द्वारा सुनी जा रही है, सायंकाल ध्यान की समाप्ति के अवसर पर मुनि लोग (उन ध्वनियो को) ओकार सहस्र रमणीय समझ कर सुन रहे हैं ॥ २७ ॥

[विपुल पथिको के लिए नदी का बाजुवा-बहुल ऐकान्तिक तट ही उद्दीपन के लिए पर्याप्त था, तबतक मधुकरो की मधुर ध्वनि भी मिल गयी जो उन्हें बिना हलाये नहीं छोटी। हरिण सभी सुखो की अपेक्षा वर्ण सुख को अधिक महत्त्व देने हैं। इसी लिए मधुकरो की ध्वनि उन्हें रोक रही है। मुनियो के लिए भी वह आकर्षण की चीज हो गयी है, क्योंकि उनकी प्रियतर ध्वनि ओकार की उसमे पर्याप्त समानता है ॥ २७ ॥

राजा तु 'नमस्याः खट्वमी महानुभावाः ॥

राजा तो, 'ये महानुभाव प्रणम्य हैं।

तथाहि—

मृगेषु मैत्री मुदितात्मदृष्टौ कृपा मुहुः प्राणिषु दुःखितेषु ।

येषां न ते कस्य भवन्ति घम्याः कौशेयकौपीनभृतो मुनीन्द्राः ॥ २८ ॥

शुश्रूषि ॥ मैत्री मुदिता करुणा इति तिस्रोऽपि चेत् प्रसादिभ्यो भावनाः ।

कौशेयकौपीनभृत इति नि मङ्गलबोक्त्वा वापकारिषूपेक्षाभ्यभिहिता ॥ २८ ॥

क्योकि—

मृगों के साथ जिनकी मित्रता है, आरमदर्शन में ही जिनकी प्रसन्नता है, दुःखी प्राणियों पर जिनकी कृपा है ऐसे कौशेय रत्न के कौपीन पहनने वाले मुनि किसके लिये कटनीय नहीं है ।”

इत्ययधारयैस्तान्भवन्ते ॥

यह सोधता हुआ प्रणाम किया ।

मुनयोऽपि 'सोऽयं सोमपीथी निषधनाथ' इत्यनुध्यानाद्वगम्य प्रयुक्तब्रह्मोक्तादिभिः, अनुगृह्यन्त इवादर्शद्वैर्दृष्टिपतैः, आभ्यासयन्त इव प्रियम्बदागतप्रयत्नात्तापेन, स्नपयन्त इव दूरद्वस्तिदन्तज्योत्स्नामृत-प्लवेन, आह्लादयन्त इवादरेण, दूरप्रार्थ्यमनन्तरमिदमवोचन् ॥

मुनयोऽपीति ॥ दूर अर्थं यद्वसितं तेन दन्तज्योत्स्ना सैवागृह्यन्तधरतेन । दूरेऽप्यमीपदर्थं ॥

मुनि भी, “यह वही सोमपात्र-कर्ता, निषध देश का राजा है ।” ध्यान शक्ति द्वारा यह जानकर, वेदोक्त आशीर्वाद देकर स्नेहार्द्र-दृष्टि से मानो अनु-

पूहीत कर रहे थे। मयूर स्वागत-प्रशमविषयक बातों से आरवाधन सा दे रहे थे। मुस्तुराते हुए दाँतों की कान्ति से मुग की धारा से नहला सा रहे थे। आदर द्वारा प्रमुदित सा कर रहे थे। (इन भावाभिव्यञ्जनों के द्वारा) अर्थ देकर बोले—

‘आयुष्मन्, अस्मदीयमिह धर्मोपदेशप्रदानमेव प्रथममातिथेयम
निथिजनेष्वनोऽभिधीयसे। पुण्यं पयोऽस्याः सरित तदेतदवगाह्य
कुरु पुण्यमयमान्मानम् ॥

“आयुष्मन्, अतिथि लोगों के लिये हन लोगों का यहाँ पहला आतिथेय धर्मोपदेश ही है। अतः तुम से यही कहा जाता है कि इस नदी का जल पुण्य है। इसने स्नान कर अपने आपको पुण्यमय बना लो।

तथाहि—

पर्वतभेदिपवित्रं जैत्रं नरकस्य बहुमतङ्गहनम्।

हरिमित्र हरिमित्र हरिमित्र वहति पयः पश्यन् पयोष्णी’ ॥ २९ ॥

पर्वते ॥ राजन् । परयत् धूममलोकयत् । पर्वतविदारकं पावनं नरकस्य
दुर्गतिजत्रं परामविष्णु । अत एव बहुमत बहुमाननीयम् । गहनमगाधम् । पयः
पायः । कर्ममूलम् । पयोष्णी वहति धारयति । उपमानं हरिशब्दत्रयमित्द्रविष्णु-
मिहार्यम् । तत्क्रमेण विनिश्चयते । सद्यः पर्वतभेदो गिरिविदारको यः पवित्रं त
प्रापते धारयति चत्रगरम् । नरकस्य भौमामुरस्य जैत्रमभिप्रायकं विष्णुम् ।
मनद्वाप्नुनिविशेवादीयदूना बहुमतङ्गा गङ्गा मतङ्गादुत्पद्यमान् । तान् हन्तीत्यच् ।
ह्रिवा । अथवा बहुमतङ्गान् हन्तीति मिहम् ॥ २९ ॥

क्यों कि देखो—

यह पयोष्णी नदी इन्द्र, विष्णु तथा सिंह की तरह पर्वत तोड़कर निकलने
वाले, पवित्र, नरक की जीत देने वाले (दुर्गति से बचाने वाले), अत्यन्त
माननीय एवम् अगाध जल ला रही हैं” ॥ २९ ॥

[विष्णुपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् (गोवर्धन पर्वत उठाने वाले और पवित्र)
नरकस्य जैत्रम् (नरकामुर की जीतने वाले) बहुमतम् (बहुश्री के द्वारा सम्मानित)
गहनम् (दुर्गम्) भगवान् विष्णु हैं ।

इन्द्रपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् (पर्वतों के पत्तों को काट लेने वाले
और पवि (वज्र) की धारण करने वाले या वज्र से लोभों को रझ करने
वाले) जैत्रम् (विजयी) नरकस्य बहुमतम् (मनुष्यों द्वारा सम्मानित)
गहनम् (अविज्ञेय) ।

सिंहपक्ष —पर्वतभेदिपवित्रम् (पर्वतभेदि (कन्दराया) में रहने वाला
और वृषिह भगवान् के आशिक स्वर्ण की धारण करने के कारण या

भगवती का राहन होने के कारण पवित्र) नरकस्य जैत्रम् (मनुष्य को जीत लेने वाला) बहु + मसज्ज + हनम् (बहुत से हाथियों को मार गिराने वाला) ।

पयोनीजलपटा —

पर्वतभेदिपवित्रम्—(पर्वतीय चट्टानों को तोड़कर निकलन वाला, अत्यन्त निर्मल) नरकस्य जैत्रम् (दुर्गति से बचाने वाला) बहुमतम् (सर्व पूजित) राहनम् (अगाध) ।

प्रथम एवं द्वितीय चरण के विशेषणों के चार अर्थ हैं । पयोनी नदी भगवान् बराह के स्वेद-बिन्दु के प्रवाह से निकलती है अतः उसका पवित्र होना स्वाभाविक है । श्लेष द्वारा कवि ने इसे बहुविध अवतार के देवा के समान सिद्ध किया है । पयोनी का जल पापों को नष्ट करने में सिंह, विष्णु और इन्द्र जैसा शौर्य-सम्पन्न है । यहाँ और रस की ध्वनि है । श्लेष से अनु-प्राणित उपमा अठक्कार है ॥ २९ ॥]

राजापि 'एवमेतन्—

महावराहाङ्गविनिर्गताया किमन्यवस्या. परतः पवित्रम् ।

यदीयमालोचनमप्यघानि निदन्ति पुसां चिरसंचितानि ॥ ३० ॥

महावेति ॥ आदिबराहाङ्गविनिर्गताया अमुन्या परत परत परम-वदपर किं पवित्र न किमपीत्यर्थः ॥ ३० ॥

राजा भी, "यह ठीक ही है—

महावराह के अङ्गों से निकली हुई इस नदी से पवित्र और क्या हो सकता है जिसका दर्शन भी मनुष्यों के चिर संचित पापों को नष्ट कर देता है ॥ ३० ॥

तदेव करोमि भवतामादेशम्' इत्यभिधाय यथाविधि स्नानाय सरिन्मध्यमघातरत् ॥

अतः लीजिये, आप लोगों की आज्ञा का पालन कर ही देता हूँ ।" यह कह कर विधिपूर्वक स्नान करने के लिये नदी में उतरा ।

अवतीर्य च मन्त्रमार्जनप्राणसंयमसंध्यासूक्तजपपितृतर्पणादिसमु-
चिताह्निकायसाने रक्तकमलगर्ममर्घ्याञ्जलिमुत्क्षिप्य भगवतो भास्करस्य
स्तुतिमकरोत् ॥

अवतीर्येति ॥ मन्त्रमार्जनं मन्त्रस्नानम् । प्राणसंयम आत्मब्रह्मासरोधन कर-
न्यासोऽङ्गन्यासश्च विधते यत्र तत् संध्यासूक्तम् ।

उत्तर कर मन्त्र द्वारा स्नान, प्राणायाम, मन्त्रा, पुष्पमाला आदि का पाठ जन, पितृवर्षा आदि दैनिक कार्यों के अन्त में लाल कमल से अन्न देकर भगवान् सूर्य की मूर्ति किया ।

जयति जगदेकचक्षुर्विन्वात्मा वेदमन्त्रमयमूर्तिः ।

तरपिम्नरपनरण्डकमघपटलपयोनिधौ पुंसाम् ॥ ३१ ॥

सद्यः के एकमात्र भेष, सम्पूर्ण विश्व के हृदय, मनुष्यों के पाप पुनः रूप सागर को पार करने के लिये तरण्डक (नौका) भगवान् तरणि (सूर्य) सर्व-प्रसन्न हैं ॥ ३१ ॥

[भगवान् सूर्य को "वपी तनु" वेद मूर्ति कहा गया है ॥ ३१ ॥]

तदनु च चटुलवञ्चरीककुलाकुलिनकमलकुङ्कुमलगलहलमकरन्द-
सुमित्रतरङ्गनुरपनक्तपिञ्जलं जलमवगाद्य विरमुर्त्तीर्य तीरमापृच्छय
मुनिजनमभिवाद्य च पुनः पुलिनपालिपर्यटनाय प्रस्थितः प्रणयादनु-
यजनो मुनीश्वरतपप्रिदमवादीत् ॥

तदनन्तरं चञ्चल भ्रमरो मे व्याप्त कमल-कलियों से गिरते हुए पर्याप्त पराग से सुगन्धित तरङ्ग तथा उछले हुए कपिञ्जला से अलङ्कृत जल में स्नान करने के बाद तट पर आकर देर तक मुनियों का पूजन और प्रणाम कर 'तटपल्लि पर घूमने के लिये चल पड़ा । स्नेह से पीड़े पीड़े चले हुए मुनिया को लौटाता हुआ कहा—

'चक्रधरं विप्रमाश्रं कृद्मदकलराजहंससंचारम् ।

हरिहरविरज्जिसदृशं भजन पयोष्णीतटं मुनयः' ॥ ३२ ॥

चक्रेति ॥ चक्रवाकधरम् । विप्रमभिधीनकम् । तथा कृत्वा मदकलराजहंसाना
संचारो येन तयाविधम् । पयोष्णीतटं धूर्त्वं भजत । मुनय इति सम्बोधनम् । हरि-
हरविज्जिसादृश्य वितोषगत्रयेण । तदा चक्रं मुदर्शनं धारयति विष्णु विप्रमाश्रय
धीनस्य त्रिनेत्रवाक्षर । कृत्वा मदकलराजहमेन कृत्वा सञ्चारो येन स मया, हस-
वाहनवात् ॥ ३२ ॥

चक्रवाक को धारण करने वाले, बड़े-बड़े स्तंभ आदि के वृक्षों से मण्डित और प्रौढ़ एवं सुन्दर राजहंस की गति में शुकुलिल, शिव और कल्प सदृश पयोष्णी तट का मुनि लोग सेवन करें ॥ ३२ ॥

[यहाँ पयोष्णी तट के तीन उल्लेख हैं । हरि (विष्णु), हर (शिव) और विरज्जि (ब्रह्मा) । भगवान् विष्णु जैसे चक्रधर (चक्र धारण करने वाले) हैं वैसे यह भी चक्रधर (चक्रवाक पक्षी को धारण करने वाला) है ।

भगवान् शकर जैसे विषमाक्ष (त्रिनेत्र) हैं वैसे यह भी विषमाक्ष (विभीतक वृक्षो) से युक्त है । भगवान् ब्रह्मा जैसे मन्द-कण्ठ-राजहंस-सप्धार (ग्रीव एव सुन्दर राजहंस की वाहन बनाये हुए) हैं वैसे यह भी ग्रीव तथा सुन्दर राज-हंसों की गति में युक्त है ॥ ३२ ॥]

एवमुक्तास्तेऽप्यार्द्रहृदयाः स्वरूपपरिचयेनाप्युपचितोचितप्रणयाः प्रियंवदतया प्रियमाशिशंसुः ॥

राजा के इस तरह कहने पर स्वल्प परिचय रहने पर भी प्रगाढ़ स्नेह वाले वे आर्द्रचित्त मुनि मधुरभाषिता के साथ सिय आशीर्वाद दिये—

‘सुगमस्तथास्तु पन्था क्षेमा दिग्देवताः शिवा शकुनाः ।

अभिलषितमर्थमचिरात्साधयतु भयानविघ्नेन’ ॥ ३३ ॥

“आप का मार्ग सुगम हो । दिग्देवतायें कल्याणकर हों । मङ्गलमय पशुन हो । शीघ्र ही अपनी आकाङ्क्षित वस्तु को निर्विघ्न प्राप्त करें” ॥ ३३ ॥

इत्यभिधाय व्यावृत्तेषु मुनिषु कौतुकादितस्ततः संवरचवदुल-
पञ्चरणचक्रचुम्बनाकृततरलितपुष्पपरागपटलपांसुलिनतरतलेषु चह-
रसुरभिशिशिरकोमलपवनेषु घनेषु, घनेवरमिथुनमन्मथक्रीडानुकूलेषु
कलेषु, पुतिन्दडिम्भकाध्यासितफलितवदरीषु दरीषु, पुञ्जिनकुञ्जरेषु,
निकुञ्जेषु, दुर्दर्शमानुषु सानुषु, सानुचरधरन्नेकस्मिन्नतिनिषिद्धसंधि-
सनिवेशे शिलान्तरालप्रदेशे, प्रियतममुद्दिष्य पठन्त्याः किनर्याः साध-
र्यमार्पागीतिमिमामशृणोत् ॥

इत्यभिधायेति ॥ पुलिन्दडिम्भैरध्यासितास्तु कास्तु फलवद्दरीषु, न केवल फल-
वद्दरीषु, तथा दरीषु । चक्रादिमन्त्रेणापि समुच्चयः स्यादेव । तद्यथा मार्गे
वृक्षमार्गं,—सावरोपपद्मसमुपेक्षा सस्तमाद्यवयवमाभरणेषु । सन्तुमुनिधनमकार-
णत इमं द्योतयति मद्बिभ्रमममाम् । अध्यासितारिति व्यस्तमेव । न च
फलमयो वदर्यो वास्विनि दरीविशेषमम् । ‘नद्यतश्च’ इति कस्माद्यस्य दुर्निवार
वात् । यादुलकाश्रयणारकप्रणयामाव इति तु न युक्तम् ॥

यह कह कर मुनि लोग चले गये । भनभनाता हुआ चञ्चल धनर-समूह
चूमने की उत्कण्ठा से पुत्रों को कम्पित कर रहा था । बन उनके पराग में
वृक्ष केवल पुलि-धूसरित हो गये थे । वन में सुगन्ध, रीतिल एव मन्द हवा
बह रही थी । तट के स्थान छवर दम्पतिमों की काय क्रीडा के अनुकूल थे ।
बैर फल में युक्त गुफाओं में किरातों के बच्चे बैठे थे । निकुञ्जों में हाथी
इकट्ठे हुए थे । पर्वतों की चोड़ियाँ सूर्य के कारण मुश्किल से देखी जा रही
थीं । परिजनो के साथ इधर-उधर उत्कण्ठापूर्वक घूमता हुआ राजा घने

पर्वत सन्निवाले एक स्थान पर एक शिन्ध के कोने अपने प्रिय को निमित्त कर पड़ी हुई किन्नरी की आर्षा छन्द वाली इस गीति को बड़े आदर्चम से सुना—

‘विपिनोद्देशं सरसं केतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम् ।

ग्राममिमं वा सर संकेतकमकरन्दवासितवियत्ककुभम्’ ॥ ३४ ॥

विपिनेति ॥ सरससज्जलम् तथा केतकमकरन्देन वामित वियवमः ककुभश्च दिशो येन तथामृतम् । विपिनप्रदेशम् । अथवा इमं पुरोवर्तिनं ग्रामं सर वज्र । कीदृशं ग्रामम् । संकेतयति निवासयति अनुकूलत्वमिवास्मिन्नामहेतुर्भवतीति संकेतकम् । तदेवानुद्देश्यमाह—अकरमिति । न विद्यते करो राजप्राज्ञोऽसौ यत्र । पर्वतीपादा-
दकारम् । आयतमामित सद्भावः । द्रवस्थामिताद्विपन्तां विस्त्रियन्तः ककुमास्तरणो यत्र । यदि वा ‘विष्-बन्धने’ आहूय्यंय आसपनमासितम् । आवन्ध इत्यर्थः । यद्वा मिता-सम्बद्धा । द्रवेन असिता असम्बद्धा वयं पक्षिणो यत्र । तथा यद् बहु-
क पयो यस्यां सा चासौ कुञ्च तया आसीति । इगः शतरि बहुइदित्यर्थः ॥ ३४ ॥

जगत् के इस सरस स्थान पर चलो जहाँ का आकाश और दिशाएँ केवड़े के पराग से सुरभिज हैं अथवा इस गाँव में चलो जहाँ के (गृहपाजित) पक्षी जगत् से असम्बद्ध हैं और जहाँ का बहुता हुआ जल और भूतल अत्यन्त भन्म है ॥ ३४ ॥

[इस पद्य में यमक की बड़ी अच्छी योजना है । ग्रामपक्ष—संकेतक—निवासयोग्य । अकरम्—कररहित । पहाड़ी गाँव है । दया के कारण राजा ने कर माफ कर दिया है । दवासितवि—द्रव (जल) से असित (असम्बद्ध) हैं वि (पक्षी) जहाँ के । मनोरञ्जन के लिए लोग घरों में पक्षियों को पाले हैं अतः पिच्छे में बन्द रहने के कारण उन्हें जगत् में जाने का अवसर नहीं मिलता । यद्+क+कु+भ—यत् (बहुता हुआ) क (जगत्) कु (पृथ्वी) भ (भन्म) है । ‘इप् गती धातु के शतृ प्रत्यय का रूप यद् है । बहुते हुए अर्थ में इसका यहाँ प्रयोग हुआ है । दवासितवि और यत्ककुभ इन बहु-सीद्गन्त पदों का कर्मधारय हुआ है । अर्थात् इस सामन वाले गाँव में चलो जो संकेतक, अकर, दवासितवि, यत्ककुभ है ।

वरष्म-स्थान पक्ष में तो मकरन्दवामित-वियत्ककुभम् का सीधा अर्थ है—पराग से सुगन्धित कर दिया है आकाश और दिशाओं को जिसने ॥ ३४ ॥]

नदनु पुनस्तत्प्रतिवादिना किञ्चरेण च पठ्यमानामिमामार्याम-
श्रौषीत् ॥

तदिति ॥ किञ्चिन्नरा किञ्चिपक्ष्यादिरूपमिथा किञ्चरा ॥

तदनन्तर उसके प्रतिवादी किन्नर द्वारा पड़ी जाती हुई इस आर्षा को सुना—

‘अजनि रजनिः किमन्यत्तरणिस्तरतीव पश्चिमपयोधौ ।

घनतरुणि तरुणि विपिने वचिदम्भिन्नेव निवसामः’ ॥ ३५ ॥

अजनीति ॥ घनास्तरवो यस्मिन् तरुमिन्विपिने । तरुणीति सम्बोधनम् ॥ ३५ ॥

ओ तरुणि ! रात हो चली, अधिक क्या कहे, सूर्य पश्चिम सागर में तैरने सा लगा है । हम लोग इसी घने वृक्षों वाले जंगल में निवास कर ले ॥ ३५ ॥

[‘घने है तरु (वृक्ष) जिसमें’ इस विग्रह में घनतरुणि दम्भ विपिने का विशेषण है । अर्थात् सप्तामी का एकवचन है । दूसरा तरुणि पद तरुणी शब्द का सम्बोधन है ॥ ३५ ॥]

एवमभ्योन्याल्लापमारुण्य किन्नरमिथुनस्य विस्मितो नरपतिः अहो माननीयमहिमोद्दामा दमयन्ती यस्याः परिचारिणः पक्षिणोऽपि श्रयणस्पृहणीयामेवंविधसुभाषितामृतमुचं वाचमुच्चारन्ति ॥

किन्नर-मिथुन की इस तरह की आपस की बात सुनकर राजा आश्चर्य में पड़ गया । दमयन्ती अपनी प्रशसनीय महिमा के कारण सर्वथा उत्कृष्ट है, जिसके समीप रहने वाले पक्षी जानों को प्रिय लगने वाली मनोहर उक्ति रूप सुधा बरसती हुई वाणी बोल रहे हैं ।

प्रथममिह तावदाभिजात्यविरक्तविद्याविवेकविमघैरनाकुले कुले जन्म ततोऽप्यनुरूपरूपसंपत्तिस्तदनु श्लाघानुगुणगुणलाभस्ततोऽपि च शुचिविदग्धस्निग्धपरिजनाधातिरिक्ति मद्गती भाग्यपरम्परा’ इति चिन्तयन्नतिदूरवर्त्तिन’ पुष्कराक्षस्य मुखमन्लोरुयांचकार ॥

प्रथममिति ॥ आभिजात्यादीनि ग्रहकारकतयैकल्यस्य कारणानि । कुले श्वेभिरनाकुले । अनुगुणोऽनुरूपः ॥

प्रथमतः तो उत्तम परम्परा, सम्पत्ति, विद्या, विचार और ऐश्वर्य के होने हुए भी ग्रहकार-रहित ऐसे कुल में जन्म, इसके अतिरिक्त वशानुकूल ही मौन्दर्व-सम्पत्ति, उस पर प्रशंसा के ही सहस्र गुणों की प्राप्ति, इसके अतिरिक्त बुद्धिमान् एवं स्नेहपूर्ण परिजनों की उपलब्धि, यह बहुत बड़ी सोभाग्य-शृङ्खला है ।’ यह सोचता हुआ थोड़ी दूर पर स्थित पुष्कराक्ष के मुख की ओर देखा ।

पुष्कराक्षोऽपि पुरःसृत्य न किन्नरमापत ॥

पुष्कराक्ष भी आगे बढ़ कर किन्नर से बोला—

‘सुन्दरक, कान्तामुन्नावलोरुनासक्तः समीपमागतानप्यस्मात् पश्यसि ॥

‘सुन्दरक, अपनी प्रिया का मुह देखने में लगे हो ? समीप में भी आय हुए हम लोगों को नहीं देखन ?

नदिनो दत्तदृष्टिर्भव ॥

इतर जरा देवी -

स एव निपथेश्वरः कुसुमचापवक्रं विना

प्रसादितमहेश्वरः स्मर इवागतो मूर्तिमान् ।

विलोकय विलोचनामृतसमुद्रमेनं नृपं

विधेहि नयनोत्सवं कुरु कृतार्थनामात्मनः ॥ ३६ ॥

न येति । एव निपथेश्वरः नरः कुसुमचापवक्रं विनामूर्तो मूर्तिमान् प्रसादिन-
महेश्वरः स्मरः । एतावता पूर्वस्मगद्वयनिरेकोक्तिः । यत्नः पूर्वः कुसुमचापवक्रं
धनः । नचमूर्तिमान् इत्याह्वयवान् । तथा प्रकोटिमहेश्वरः । यदा तु प्रसाधितेति
पाठः, तदा प्रमथिना बलवृद्धना महान्म ईशान्नागादिना येन तादृग् निपथेश्वरः ।
स्मरस्तु नाधयितुं वशीकृतुं प्रारब्धो मरेश्वरः शिवा येन । कुसुमान्वेषश्च वचक
धनुर्मण्डलम् ॥ ३६ ॥

वह निपथ-नन्नाटू आ गया जो पुष्पबाण मण्डल को धारण किये बिना ही
भावान् शङ्कर को प्रसन्न किया हुआ मूर्तिमान् काम की तरह यह है । आगों के
लिये अमृत-सागर इस राजा को देखा, नेत्रोत्सव मनाओ और अपने आप का
वृत्तार्थ करो ॥ ३६ ॥

[यहाँ कामकी अपेक्षा नर को उत्कृष्ट बनाया गया है । काम फूलों
का बाण धारण करता है । नर बिना फूलों का बाण धारण किये ही काम
है । काम शङ्कर जी को दृष्ट किया था । नर शङ्कर जी को प्रसन्न किया है ।
काम अनङ्ग (अङ्गहीन) है, नर मूर्तिमान् (साङ्ग) है । इन विधिविधानों में
सम्पन्न नर को देखकर अपने आप को वृत्तार्थ करो ॥ ३६ ॥]

त्वमपि विहंगमागुरे परमरहस्यसखी श्रेयसा सा हि त्यज्जहुरा
पश्यति, त्वत्कामाभ्यामाकर्णयति, तदन्मनसा मनुते ॥

पतिमोहिका, तुम भी (देखना), क्या कि देवी की तुम एकान्त सखी
हो । तुम्हारी ही आँखों में वह देवकी है, तुम्हारे कानों से सुनती है और
तुम्हारे ही मन से कुछ निश्चय कर पाती है ।

नदिह दमगन्तोमनोरथान्यपिषामाच्छिदि लाघण्यपुण्यहर्देऽ
म्मिन् राजनि निरपय चक्षुः' इति किन्नरमियुनमभिमुखीकृत्य नरपति-
नवादीति ॥

दमयन्ती के मनोरथ-विविध को शान्त करने वाले, सौन्दर्य के पवित्र सरोवर
इस राजा में अपनी आँखें मूक कर ले ।" इस तरह बोलता हुआ किन्नर-
मियुन को सामने कर राजा से कहा —

‘देव, तदेतत्किंनरमिथुनम्, इदं हि द्वितीयमिव हृदयं देव्या,
प्रिय प्राणेभ्योऽपि प्रेम्णा प्राभृतमेतत्प्रहितं तुहिनाचलचक्रवर्तिना देव-
म्य, देवेन देव्यै दत्तम् । तथा च दमयन्त्या समर्पितं परं पात्रं
मन्त्रगीते ॥

देवेति ॥ तुहिनाचलस्य हिमाचलस्य चक्रवर्तिना नृपेण प्राभृतं प्रहितमेतत् ।
भीमायेति शेषः । मन्त्रा गीयन्तेऽस्यामिति मन्त्रगीति ॥

महाराज यही वह किंनर-मिथुन है । यह देवी का द्वितीय हृदय है ।
हिमालय के चक्रवर्ती राजा ने बड़े प्रेम से महाराज (भीम के लिये इन्हें
उपहार में दिया था । महाराज ने इन्हें देवी को दे दिया और देवी ने दमयन्ती
को समर्पित कर दिया । गुप्त मन्त्रणा के ये उत्तम पात्र हैं ।

तथाहि—जातस्याति जातिषु, गीतयशो गीतकेषु, वर्धितमानं
वर्धमानेषु, सारमासारितकेषु, निपुणं पाणिकासु, धाम सामनाम्,
आचार्यकमृचाम्, आलयः कलादिभेदानाम्, रसगीण्यामपि सुस्वरं
स्वरालापेषु, अयमाम्यं ग्रामरागेषु, विचित्रभाषं भाषासु प्रवर्तकं नतं-
नानाम्, कारणं करणमार्गस्य, वाद्येभ्योऽपि प्रवीणं धीणाद्येषु, लब्ध-
पाटयं पटहेषु, अप्रतिमस्तुं महुरीषु ॥

जातेति ॥ जातयो नन्दयन्तीप्रभृतयः । वर्धमानांवासारितकानि पाणिकाः
सामानि श्रुच कलादिभेदा गीतविषया भरतशास्त्रादयस्या । मध्यमादयः सप्तस्वरा
पञ्चममध्यमगान्धारोऽयो ग्रामा । भाषा पटुप्रियत् । कला गीतवाद्याणां सुहृन्-
भेदाश्च । करणानि तलपुष्पवुटादीभ्योऽसंशतमकणानि ॥

नन्दयन्ती आदि जातियों में इनकी बड़ी क्याति है । गीत के प्रसङ्ग में
इनका बहुवर्चित मग है । वर्धमानों में इनका बड़ा सम्मान है । आधारितको
क ये सार हैं । पाणिकाओं में बड़े निपुण हैं । सामगान में इनका प्रशसनीय
स्थान है । श्रुचाओं के आचार्यरूप हैं । कलाभेदों के मित्र हैं । रसगान के
प्रसङ्ग में स्वरालाप करने में इनका स्वर बड़ा अच्छा है । ग्रामरोगों में भी
निपुण हैं । विभिन्न भाषाओं में भी इन्हें विविध वातृता प्राप्त है । बहुत से
मृत्पे-प्रकारी के ये आविष्कारक हैं । (तल पुष्पवुटी आदि) कारण भागों के
जन्मदाता हैं । बीणा, वेणु आदि वाद्यों में प्रवीण हैं । नगाडा बजाने में भी
इन्हें पाटव प्राप्त है । शाल बजाने में तो अप्रतिम हैं ।

[वर्धमान, आसारितक, पाणिक, साम, श्रुक्, कला आदि गीत के विषय है ।
मध्यम आदि सात स्वर हैं । पञ्च, मध्यम और गान्धार दो ग्राम कहलाते हैं ।
तल पुष्पवुटी आदि एक ही आठ कारण होते हैं । संगीत के ये सब पारि-

भाषिक शब्द हैं। ध्यावहारिक कार्यों के अविरक्त किन्नरो की सबसे अधिक उपयोगिता संगीतमूलक मनोरञ्जन में ही है। अतः इस विषय में इतना अधिक नैपुण्य सर्वथा स्वाभाविक है।]

कियहुना—

कालमिव कलाबहुलं सर्वरसनुप्रवेशि लवणमिव ।

तत्र नृप सेवां कर्तुं किन्नरयुगलं तथा प्रद्वितम् ॥ ३७ ॥

कालमिव ॥ कला संगीतवाद्याद्या मुहूर्तभेदादय विद्वन्वर्धयते वा कला कल विद् । तेषां समूहः कालम् । तद्यथा । काष्ठशास्त्रविषये । बहुलं तद्विष्टमवति । तथेदमपि समग्रकलावर्णनम् । रसा शृङ्गाराद्यास्तिकापारयः । समकार्ये ॥ कालशब्दे पुष्पत्वं स्यात् । यद्वा तु 'काल इव कलाबहुलम्' इति पाठः । तदा काल कलाभि-
निनेयेन्मेगाद्यंशरूपमिर्वहुलो स्यात् । इदं तु कलानिर्गतिनृपादिभिर्प्राप्तम् ।
कालोऽब्रमर आत्मवमर्पणावावसर इव प्रेषित इति भावः ॥ ३७ ॥

अधिक क्या—

काल (मुहूर्त विद्या के विद्वन् समूह) की तरह ये कलाबहुल (विविध कलाओं से पूर्ण) हैं । नमक की तरह सभी शृङ्गारादि रसों में इनकी गति है । राजा, आप की सेवा के लिये इस तरह का किन्नर-युगल उसने भेजा है ॥ ३७ ॥

[काल .—ज्योतिष् शास्त्र में कला, उन्मेष, निमेष, पल आदि शब्द समय के अद्युक्चक हैं । कला का अध्ययन करने वालों और उसके जानकारों के समूह को काल कहते हैं । अर्थात् कला पल आदि का विशुद्धवर्ग जैसे कला-बहुल होता है, दिन, रात, कला, पल का हिमाव लगाना रहता है वैसे वह किन्नर-मियुन भी कलाबहुल (विभिन्न कलाओं का इत्यथ्य जानकार है) ।
लवण :—नमक जैसे तिल, अम्ल, कटु और कषाय सभी रसों में अपनी सत्ता रखता है उसी तरह इन किन्नरों की गति सभी रसों के प्रसङ्ग में व्यापक है ॥ ३७ ॥]

'तदेतदात्मपरिग्रहेषानुगृह्यताम्, इत्यभिधाय विभ्रान्तवाचि तस्मिन्स किन्नरयुवा किमप्युपसृत्य भृगमदमिलन्मलयजसोह्लासि-
लेखालाञ्छितललाटपट्टार्पितकरकमलमुकुलं प्रणतिप्रेक्षितमणिकर्णाद्य
तंसनया सह प्रियया प्रणाममकरोत् ॥

अतः इन्हें आप अपना समझ कर अनुगृहीत करें ।" यह कह कर उस (पुष्करास) के चूप हो जाने पर वह किन्नर युवक कुछ आगे बढ़ कर कस्तूरी-मिश्रित चन्दन रस के मनोहर तिलक से अङ्कित ललाट तक मुकुलित कर-कमलों को पहुँचाता हुआ, नम्र होने के कारण हिलने हुए मणिमय कर्णभूषण से मण्डित अपनी प्रिया के साथ (राजा को) प्रणाम किया ॥

उक्तवांश्च—

लब्धार्धचन्द्र ईश कृतकंसमयं च पोरुपं त्रिणो ।

ब्रह्मापि नाभिजातः केनोपमिमीमहे नृप भवन्तम् ॥ ३८ ॥

तन्वति ॥ अर्धचन्द्रस्य अर्धचन्द्र शशिकला गलापहस्तन च । तत्तु निन्दा भास्ये । तद्यत् ईश्वर । कृतकस्य भय येन तापैरप विष्णोः । निन्दाभासे तु कृतक कृत्रिमम् । सभय भवान्वितम् । वैष्णवो नाभिर्जातो ब्रह्मा । निन्दाभासे तु अभिजात कुलीन पञ्चाभनन्दोत्त ॥ ३८ ॥

बोना भी—

“राजनृ ईश (भगवान् शंकर) अर्धचन्द्र (गलहस्त) प्राप्त किसे हुए हैं । विष्णु का पराक्रम भी कृतक (कृत्रिम) और सभय (भय सहित) है । ब्रह्मा भी न + अभिजात (कुलीन नहीं) हैं । आप की तुलना किससे कहें ? ” ॥ ३८ ॥

[शिव, विष्णु और ब्रह्मा जो तीन महान् देव हैं सबो में कुछ न कुछ दोष है । अतः आप की तुलना किससे कहें । वणिन विरोध भाषातत देवताओं की निन्दा का आभास कराते हैं, किन्तु विरोधों के वास्तविक अर्थ समझ जाने पर देवताओं का स्वाभाविक स्वभाव ही ज्ञात होता है । निन्दा की प्रतीति नहीं होती ।]

प्रशसापद — ईश (शिव) अर्धचन्द्र (खण्ड चन्द्र) को धारण कर रहे हैं । विष्णु का पराक्रम कृतकसभय (कस को भय उत्पन्न कर देने वाला) है । ब्रह्मा नाभिजात (नाभि से उत्पन्न) हैं ।

बलाकार से किसी के गले में हाथ लगाकर निकाल देने की विधि को अर्धचन्द्र कहते हैं । अर्थात् शिव अपमानित हैं और आप सम्मानित हैं, विष्णु का पराक्रम कृत्रिम और सभय है जब कि आपका पराक्रम वास्तविक ऐवम्भिम्भु है । ब्रह्मा न अभिजात हैं और आप अभिजात (कुलीन) हैं । अतः आपकी तुलना किस से कहें ? ॥ ३८ ॥]

इदं च—

अरुणमणिक्किरणरन्जितलिखिताक्षरमङ्गुलीयकामरणम् ।

तस्याः करकिसलयमिव तव करकमले चिरं लगतु ॥ ३९ ॥

अदगेति । अनपाशिषा पाणिग्रहण सूचनम् । अरुणमणि पद्मरागादि । लिखिताम्यचराणि यस्मिन् । करकिसलय इवकमम् । तथा मणिक्किरणभरणरत्न कान्तिमि कलितम् । तथा लिखिताम्यचराणि येन ॥ ३९ ॥

यह—

लालमणि की किरणों से रङ्जित, सुंदे हुए अङ्गुली वाली थगूठी उस

(दमयन्ती) के कर किसलय की तरह आप के कर-कमलों में बिरकाल तक रहे ॥ ३९ ॥

[कर किसलय पद्म—दमयन्ती का हाथ भी अरुणमणि निर्मित भूपरों के रंग से रज्जित है । विद्याभ्यास के समय बहुत से अक्षरों को लिखा भी है । अत्र अरुणमणिरज्जितत्व और लिखितासरत्व दोनों धर्म अंगूठी की तरह हाथ में भी हैं ॥ ३९ ॥]

अनया च—

तद्य सुमग रम्यदृशया तयेव रक्तान्तनेत्रमण्डनया ।

धीनांशुकयुगलिकया क्रियतामङ्गे परिष्वङ्गः ॥ ४० ॥

तवेति ॥ दृशा वक्षान्तसूत्रमवस्था च नेत्र चित्रवस्त्रविशेषोऽपि च ॥ ४० ॥

जीर हसने—

ह सुन्दर ! मनोहर किनारी वाली, लाल रंग तथा विविध बिजों से अलङ्कृत यह शिल्प वस्त्र जो मेरे तुम्हारे अंगों में उस (दमयन्ती) की तरह आलङ्कृत करे ॥ ४० ॥

[यहाँ दमयन्ती उपमान है । रम्यदृशया और रक्तान्तनेत्रया ये दोनों विशेषण धीनांशुकयुगलिका और दमयन्ती दोनों वस्तुओं में लगेंगे । दमयन्ती पद्म :—रम्यदृशया—विविध सौभाग्य सम्पत्ति से पूर्ण होने के कारण रमणीय दृशा वाली है । रक्तान्तनेत्रया—नेत्रों का रक्तान्त भाग लज्जिता से मण्डित है । दृशा वस्त्र की किनारी और अवस्था का वाचक है । नेत्र वस्त्र नयन और विविध बिजों से चित्रित अत्यन्त चमकीले एक वस्त्र विशेष के लिये प्रयुक्त होता है ॥ ४० ॥]

अयं च—

उज्ज्वलसुवर्णपद्कस्तस्याः संदेशकयनदूत इव ।

रुचिरमणिकर्णपूरः श्रयतु श्रवणान्तिकं मधतः ॥ ४१ ॥

उज्ज्वल ॥ उज्ज्वल सुवर्ण पद्क यस्य । एते उज्ज्वलाभ्यामाभ्यानि शोभन वर्णानि पद्मानि वचनानि यत्र ॥ ४१ ॥

और यह—

उज्ज्वल स्वर्ण-निर्मित ये मनोहर मणिबिजित कर्णभूषण सन्देश कहने वाले दूत की तरह आप के कानों के समीपवर्ती बनें ॥ ४१ ॥

[सन्देशवाहक दूत भी कान्ति युक्त विविध सुन्दर पदों से युक्त वाक्यों का प्रयोग कानों के पास जाकर करता है ॥ ४१ ॥]

किंचान्यत्—

आनन्ददायिनस्ने कुण्डिननगरे कदा भविष्यन्ति ।

स्वमुखकमलविलोलजागरिकानयनपट्टपदा दिवसाः ॥ ४२ ॥

दूसरी बात यह बतावें कि—

वे आनन्ददायक दिन कब होंगे जब कुण्डिनपुर में नगरबधुओं के नेत्र-भ्रमर आप के मुखकमल पर चञ्चल बनेंगे ॥ ४२ ॥

एवमाविर्भावितप्रभयमुज्ज्वलितानुरागमुदीरितादरमाध्यायितप्रणय-
मभिधाय स्थितवति किनरे, नरेश्वरो दमयन्तीप्रद्वितप्राभृतानि मय-
मादरेण गृहीत्वा, 'सुन्दरक, तस्याः संदेश एवाम्माकं कर्णपूर, परि-
करोऽयं मणिकर्णवर्तसः । तस्याः सुगृहीतेन नाम्नेव धयं मुद्रिता-
प्रपञ्चोऽयमहुलोमुद्रालंकारः तदनुरागेणैव धयमाच्छादिता पुनश्च-
माच्छादनपुगलमपरं च युवां प्रेयन्त्या तथा किं न 'प्रहितमस्मा-
कम्, किमन्यत्सोऽपि मिय प्राभृतं भविष्यतीति । तद्देहि शिथिर-
मनुसराम्' इत्यभिधाय धनु मानयन्किनरमिधुनमतिचपलकपिकुला-
न्दोलिततलशिखराग्रगलितशिलास्फालनस्फुटत्फलरससुगन्धिता स्रव-
त्कुसुममकरन्दद्रवार्द्रितपांसुपटलेन धर्मना निजायासमुद्वलत् ॥

एवमिति ॥ कर्णपूरोऽवर्तसः कर्णयोः पूरणं च । मुद्रिता अपरस्त्रीमात्रा दुष्टर-
प्रवेशा कृता ॥

इस तरह नम्रता-प्रदर्शनपूर्वक स्वच्छ अनुराग, आदरपूर्ण उक्ति एवं प्रगाढ़ प्रेम के साथ (अपनी बातें) कहकर किन्नर के चुप हो जाने पर नरपति (नल) दमयन्ती द्वारा भेजे गये उपहारों को स्वयम् आदर के साथ लेकर, "सुन्दरक, उनका संदेश ही हमारे लिये कर्णपूर है । यह परिजन मणि कर्ण-भूषण है । उनके नाम से ही हम मुद्रित हैं । यह अगुलि का मुद्रालंकार (नामाङ्कित अगुड़ी) प्रपञ्चमान है । उनके प्रेम से ही हम डँक गये हैं । यह वल्लपुगल पुनश्च जैसा लगता है । आप दोनों को भेजकर उन्होंने क्या नहीं भेज दिया । आप लोगों से बढ़कर और क्या सुन्दर उपहार हो सकता है । अच्छा, आइये डेरे पर चलो ।" यह कहकर किन्नर की बहुत मानता हुआ अपने आवाज की ओर ऐसे रास्ते में चला जो चंचल बन्दरों द्वारा हिनाये गये पेड़ों के अग्रभाग से गिरने और शिलातल की चोट से पटे हुए फला के रस में सुगन्धित हो गया था और धूलि चूने हुए गुन्य मकरन्दों की तरलता से आर्द्र हो गयी थी ॥

[इस अनुच्छेद में कर्णपूर, मुद्रित तथा आच्छादन वरों के प्रयोग महत्त्वपूर्ण हैं—

दमयन्ती का सन्देश ही कर्णपूर है। काना को तृप्त करने में उसके मधुमय सन्देश को निजनी सत्कृता मिल सकती है उसी इन बाह्य अन्तरांगों को नहीं। उसका नाम से ही मैं मुद्रित हो गया हूँ। मेरे भीतर किसी दूसरे कल्पित स्थान नहीं है। मैं उसके नाम से बिल्कुल सीमित हो गया हूँ। यदि वस्त्र आच्छादन का ही कार्य करता है तो उसका कार्य तो उसके स्नान ही पूर्ण कर दिया। अतः किये हुए कार्य को करने का कारण ये पदार्थ पुनरुक्त मात्र हैं।]

उच्चलिते च पश्चिमाभ्योनिषिद्धलिलसालिनपादपल्लवे नासाधि
नीनास्तगिरिगङ्गरं प्रशान्ति वियद्दीर्घापाण्ये विप्रस्वति, क्रमेण तस्या
दिशि दिनकररथचक्रचङ्क्रमणचूर्णनोच्चलभ्रमन्दरागिरिगैरिकाधूलि
पटलोल्मोल इवोल्लास संघारागः ॥

चलित इति ॥ पाण्यो हि सलिलेन चरन्तौ प्रचारय वासात्तार प्रविशति ॥

सम्पूर्ण सप्ताह का भ्रमण कर परिचय समुद्र के जल में अपने पाद (किरण)-
पल्लव को धोकर आकाश मार्ग के पथिक, भगवान् सूर्य निवास की कामना
रत्ने पानी की तरह अस्ताचल की कन्दरा में प्रवेश कर रहे थे। कम से कम
दिशा में सूर्य-रथ के चक्कों के चलने से घूर्णित होकर उठे हुए मन्दराचल का
लाज धूलि-पटल की लालिका (सम्या राग) उमड़ पड़ी थी।

[पथिक दिन भर रास्ता चल्कर सन्ध्या को जब कहीं ठहरता है और
बास निकेतन में प्रवेश करता है तो अपने पैरों को धो लेता है भगवान् सूर्य
भी दिन भर घूमे हैं। शाम को अस्तगिरि की गुहा रूप अपने भवन में जाने के
पहले परिचय समुद्र में अपने किरण रूप पाद पल्लव को धो लेते हैं। रात्रि
को यही नायिका रूप में चित्रित किया गया है। भगवान् सूर्य को अपनी ओर
आते दल उसका राग (प्रेम) उमड़ पड़ा है।]

तेन च संवलितानि विजृम्भितुमारभन्त जम्भनिसुग्मनककुभि
विशीनजरत्नकृन्नाकुर्वन्परोमरोर्चापि तमांसि ॥

न चेत्ते ॥ जम्भनिसुग्मन इन्द्र ॥

जत जम्भनयु (इन्द्र) की दिशा (पूर्व) में जगत् के बृद्ध सप्तर की गर्दन
की रोमपङ्क्ति की तरह अन्वकार फैलन लगा

ततश्च नष्टचर्याकीडशेवादशनमयान्तापु दिक्कन्यमासु, वननुनि-
होमभूमगन्धेन संतर्प्यमाणसु चनदेवतासु, निद्रान्धसिन्धुरयूथेऽपिप्रबो
धनप्रस्थलीषु परिणमन्सु शनैस्तिमिरेषु, आते मनाग्भिन्नाञ्जनपत्र-
स्तरङ्गिते निशामुखे, नरपतिन्तेन किन्नरमिथुनेन सार्धमर्घपथायात

प्रज्जलितदीपिकापाणिपरिजनपरिकरितः शरणागतकपोतमुत्पतितो-
लूककृतशब्दं शिविमिव शिविरसंनिवेशमविशत् ॥

तनच्चेति ॥ नष्टचर्यां शिशुकीडाविशेष । निद्रान्धेत्यादौ परिणाम', परिपाक-
स्तिर्यक्प्रहारदान वा । निद्रासु हि कपोता पारावताः शरणं नीदमागच्छन्ति,
वल्लकारच घृणा उद्गीयन्ते । उपमाने तु 'नारदवृत्तां शिविरप्रशंसामसूयन्तौ कपोतो-
लूकरूपधारिणौ सुरी सत्त्व भिन्नासमानौ शिविनृपमागतौ' इत्यमागम ॥

इसके बाद, नष्टचर्या (एक तरह की बच्चो के खेल) की तरह दिग्गङ्गाएँ
अदृष्ट होती जा रही थी । वन में रहने वाले मुनियों के होम के धूम की गंध से
वनदेवताएँ लुप्त हो रही थी । अगटाइया लेने हुए हाथियों श्री समूह की तरह
ऊँचे स्थानों पर अन्धकार, आक्रमण कर रहा था । स्वरूप विकसित अञ्जन
पर्वत के गुह्ये की तरह रात हो जाने पर राजा उस किन्नर मिथुन के साथ
आधे रास्ते में जलती हुई दीपिका हाथ में लेकर आये हुए परिजनो से समन्वित
होकर शरण में आये हुए कवूतार और उड़ने हुए उलूक की रक्षा के लिये वचन
देने वाले राजा शिवि की तरह अपने शिविर में प्रवेश किया ।

[मारद द्वारा शिवि की प्रशंसा सुनकर अग्नि और इन्द्र क्रमशः कपोत
और बाज बन कर शिवि की परीक्षा करने आये थे । कपोत को बाज लदेइता
हुआ आया । कपोत शिवि के शरण में आया । उन्होंने कपोत की रक्षा के लिये
कपोत बराबर अपने शरीर का मांस बाज को खाने के लिये दिया ।

यहाँ शरणागतकपोतम् और उत्पतितोलूककृतशब्दम् ये दोनों शब्द
शिविम् और शिविरसंनिवेशम् दोनों में पृथक्-पृथक् अव्यक्त होते हैं ।

राजा ऐसे शिविर में प्रवेश किया जिसमें रात होने के कारण कपोत
शरण लिये थे, दिन भर के छिपे हुए उलूक रात को जहाँ से उड़ भागे थे और
सैनिक जहाँ इतलशब्द (वातचीत कर रहे) थे । रात को कवूतार शिविर में
जाकर शरण लिये थे और दिन भर के ठहरे हुए उलूक भाग चुके थे । शाम का
समय था इस लिये सैनिकों की धूम मची थी । उलूक दिन भर छिपे रहते हैं
रात को ही उन्हें दिखाई पड़ता है इसलिये धूमते हैं । कपोत रात में
अपने घोंसले में चले आते हैं ।

शिवि पक्ष - शरणागत + कपोत और उत्पतित + उलूक के लिये (रक्षा का)
जनन देने वाले, शिविर की रक्षा, शिवि से की गयी है ।

तत्र च क्रमेण कृतकरणीयस्त्वरमाणपार्चकवृन्दोपनीतमुत्पतत्पाक-
परिमलस्पृहणीयमत्युष्णमेदुरमांसोपदंशमाज्यमाज्यमुपभुज्य पुष्क-
राक्षकिन्नरमिथुनासन्ननै सह मधुररससारमाहारम्, अनन्तरमाचान्त-

शुचिचन्दनोद्धतितकरः कर्पूरपारीपरिकरितताम्बूलोज्ज्वलवदनार-
विन्दः 'सुन्दरक, कमपि प्रस्तारय विद्याविनोदं त्वयापि विहंगवागुरिके,
गीयतां किमपि मधुरम्' इति मृदुमणिपर्यङ्किकासुखासीनः किन्नर-
मिथुनमादिदेश ॥

तत्र चेति ॥ कर्पूरस्य पाती शकलम् ॥

वही दैनिक कार्य कर देने के बाद पुष्करास, किन्नर-मिथुन, और शिष्ट
जनों के साथ जल्दी जल्दी पावक्वर्ग द्वारा लाये हुए, उड़ती हुई भोग्य-
गन्ध के कारण मनोहर, अत्यन्त गरम गीयक मासों को आस्वादित करना
हुआ भी मे तने हुए रसमय भोग्यों को लाया । आचमन के बाद पवित्र चन्दन मे
हाथ फेर कर कर्पूरखण्ड-मिश्रित ताम्बूल से मुख-कमल को सुशोभित कर,
'सुन्दरक, कुछ विद्या-विनोद का प्रसङ्ग देखो । पति-सुन्दरी, तुम भी कुछ
मधुर गाओ ।' यह मणिमय कोमल पर्यङ्क पर सुखपूर्वक बैठ कर किन्नर मिथुन
को आदेश दिया ।

दर्शिते च यांसिकेन यंशमुखोद्गीर्णगान्धारपञ्चमरागस्थानके
स्थिरीकृतमध्यमश्रुतिप्रसन्नप्रेक्षोलनाप्रयोगमुचिनस्यानकृतकांस्पताल
मकठोरतारस्वरम्, आकर्षदिव हृदयम्, अभिपिञ्चदिचामृतेन श्रवणे-
न्द्रियम्, अस्तं नयदियान्वयिपयसंधानम्, अनुच्चप्रपञ्चितपञ्चमं
विपञ्चास्वरसंदर्भितमभूत्तत्किमपि गीतम् ॥

वही बगाने वाले वृक्षों के मुख में निकले हुए गान्धार और पञ्चम राग
के स्थानक दिखाये । कहीं मध्यम स्वर, कहीं उचित स्वन पर झाल द्वारा ताल
देने के कारण कोमल उच्च स्वर वाली वीणा के स्वर से मिश्रित सामान्य
पञ्चम स्वर का वह अत्यन्त मनोहर गीत हृदय को मानो सींच सा रहा था ।
अमृत से श्रोत्रेन्द्रिय को सींच सा रहा था । अन्य विषय के चिन्तन को समाप्त
सा कर रहा था ।

यत्र—

प्रसरति रणरणस्वरसः कुण्डयति हठेन चित्तमुत्कण्ठा ।

स्मरति स्मरोऽपि धनुषः प्रगुणीकृतनिश्चितयाणस्य ॥३३॥

त्रिसरे—

ऐसे मनोहर संगीत के कारण जब रणरणक (उत्कण्ठा) रस फैल रहा
था और चित्त को हठात् चित्त बनाता चला जा रहा था । काय भी अपनी
खी हुई प्रत्यङ्गा एवं तीखे बाण वाले धनुष का स्मरण करने लगा ॥ ४३ ॥

पंचविधे च व्यतिकरे वैतालिकः पपाठ—

‘सकलविषयवृत्तीर्मद्रयस्त्रिन्द्रियाणां
हृदि विदधदवस्थां कांचिदुन्मादिनीं च ।
ध्वनिरनुगतवीणानिकषः कोमलोऽयं
जयति मदनबाणः पञ्चमः पञ्चमस्य ॥ ४३ ॥

२. सङ्गति ॥ पञ्चमस्य रागस्य ध्वनिर्जयति कथंभूतः । पञ्चम पञ्चानां पूरणो मदनबाण ॥ ४३ ॥

ऐसे अवसर पर वैतालिक ने पढ़ा—समस्त इन्द्रियो की विषय-प्रवृत्ति को रोकती हुई, हृदय में कोई उन्मादक स्थिति उत्पन्न करती हुई वीणा के स्वर से मिश्रित कामदेव के पञ्चम बाण स्वरूप पञ्चम स्वर की यह कोमल ध्वनि अपूर्व है ॥ ४४ ॥

अपि च—

प्रियधिरहविषादस्यौषधं प्रोपितानां
विविधविधुरचिन्ताभ्रान्तियिथ्रान्तिहेतु ।
अयममृततरङ्गः कर्णयोः केन सृष्टो
मधुररसनिधानं निःस्वनः पञ्चमस्य ॥ ४५ ॥

प्रियेति ॥ अत्र पञ्चमस्येवावस्था । न तु पञ्चानां पूरणस्येति श्रुतपर्ययः ॥ ४५ ॥

जिनके पति परदेश चले गये हैं ऐसी विमुक्त कान्ताओं के प्रिय वियोग से होने वाले क्लेश की दवा, वियोगत्रय विभिन्न चिन्ताओं और भ्रान्तियों की स्थिति में आराम देने वाली, कानों के लिये अमृत-लहरी, मधुर रसा का निक्षेप, पञ्चम स्वर की इस ध्वनि का निर्माण किसने किया ॥ ४६ ॥

अपि च—

अयं हि प्रथमो रागः समस्तजनरञ्जने ।
यस्य नास्ति द्वितीयोऽपि स कथं पञ्चमोऽभवत् ॥ ४६ ॥

अयमिति ॥ प्रथम प्रधानभूत आद्य । द्वितीयः समानो द्वयोः पूरणश्च । स कथं पञ्चानां च पूरणोऽयं च पञ्चम इति सञ्ज्ञा ॥ ४६ ॥

समस्त लोगों का मनोरञ्जन करने वाला यह पहला राग जिसका दूसरा कोई भी नहीं है पाँचवा कैसे हो गया ? ॥ ४६ ॥

[जो अपनी उत्कृष्टता के कारण इतना महान् है कि उसके बाद की दूसरी यैणी में रखने के लिये भी कोई राग नहीं है वह पञ्चम कैसे हो जायगा ? विरोध । पञ्चम स्वर इतना सुन्दर राग है कि उसने किसी दूसरे की

तुलना ही नहीं है इसीलिये वह अद्वितीय है । पञ्चम का अर्थ योग्यता-जन से पञ्चम धेनी नहीं है । परिहार ॥ ८६ ॥

इति विधिधमुदञ्चत्पञ्चमोद्गारगर्भ-
पटति मधुरकण्ठे घाम्नि वैतालिकेऽस्मिन् ।
अपहरति च चित्त किन्नरद्वन्द्वगीते
सुखमय इव निद्रानि स्पृष्टो लोक आसीत् ॥ ४७ ॥

इति । परमहालोकात्ममयसमुद्भाविनसान्द्रानन्दमय इव । रहस्य हि तत्र परमहात्वाद्भोदाव पूर्वाचार्यैर्व्याचर्यत । सुखमय इव निद्रानिमोलित इवेत्युभयवाचीवशाज्जो योग्य । अपवा सुखमयः मन्त्रिद्रानिमीलित इवेतीवशज्जो निद्राज्जो ॥ ४७ ॥

इस प्रकार कई तरह से पञ्चम स्वर के प्रति उद्गार प्रकट करता हुआ मधुर स्वर में वैतालिक बोल रहा था । किन्नर-मुगल का गीत लोगो का चित्त आकृष्ट कर रहा था । सुखमयता के कारण साथ निद्रा के प्रति निःस्पृह हो गये थे ॥ ४७ ॥

पथमनरनमारोहायरोहमूर्च्छनामङ्गिते गीतामृतश्रोतसि
निमग्नमनसि कठोरितोत्कण्ठे स्फरणकारम्ममाञ्जि राजनि 'रञ्जनि' कि
न चित्सि । दिवस, कि नायिर्मयसि । अथन् कि न स्लोकतां
मत्रसि । कुण्डिननगर, कि न नेशोयो भयसि । अथ, किमन्नरायो-
ऽसि । विद्ये, किमुद्रिष्य न मां तत्र नयसि' इत्यनेकधा चिन्तयति
स किन्नरयुवा प्रक्रमोचितश्लेषमिदमवादीत् ॥

उठार-बदाव से पूर्ण मूर्च्छनाओं की लहरी में राजा का मन तरङ्गित हो रहा था, गीत की समृद्धिधारा में गीता लगा रहा था । उत्कण्ठा से कठोर हो गया था और उन्मुक्तता के वेग में भर गया था । "रात, क्यों न समाप्त हो जाती हो ? दिन क्यों न प्रकट हो जाये हो ? रास्ता, क्यों नहीं बन रहा ? दुन्दिन नगर, क्यों नहीं समीप आ जाने ? अथ, क्यों प्रतिवन्दक बनते हो ? दैव, क्यों न मुझे फेंक कर वहाँ पहुँचा देते ?" इस तरह सोच ही रहा था कि किन्नर-युवक प्रसङ्गानुकूल इस स्लोक को बोला—

“वर्धमानोहसद्रागाः सुजातिमृदुपापिका ।

दमयन्तां च गीतिश्च कस्य नो हृदयंगमा ॥ ४८ ॥

वर्धमानेति ॥ वर्धमानो वर्जिष्युः । न तु हीयमानः । उल्लपन् रागोज्जुरागो यस्याम् । सुष्ठु शोभना चित्राख्या यस्याः । पाणि कर ॥ पदे वर्धमाने ताड

विशेषे उल्लसन् राग धीरागादिर्यत्र । जातयो नन्दयन्तीप्रभृतय । पाणय सम-
पाणयादय ॥ ४८ ॥

उन्नतिशील अनुरागबहुल, क्षत्रिय कुल में उत्पन्न कोमन्करों वाली
दमयंती तथा वर्धमान ताल, श्रो आदि राग, नन्दयंती आदि जाति, समपाणि
आदि पाणियों वाली यह गीति किसके लिये हृदयस्पर्शी नहीं है ? ॥ ४८ ॥

[गीतिपक्ष में वर्धमान, राग, जाति एवं पाणिका शब्द पारिभाषिक है ।
संगीत के इन विभिन्न तत्वों से युक्त यह गीति और अनुराग आदि विभिन्न
मृदङ्गीय गुणों में अलङ्कृत दमयंती किसके लिये प्रिय नहीं हो
सकती ? ॥ ४८ ॥]

अपिच—

माध्यमैककलोपेता साप्यलङ्कारधारिणी ।

सापि हृदयप्रसालापा किन्वसाधारणा तव ॥ ४९ ॥

म गीति ॥ कला विज्ञानकीशाला । अलङ्कार आभरणम् । एवम् आदि ।
भालापा मियोभाषणम् । गीतिपक्षे 'यनाकेनावृष्टिश्च विरलाहुलिता च या ।
आवाप इति विज्ञया कलाविद्विज्जितु सा कला' इत्याद्यापादय सप्त कला । अल
कारा उपमाकरुणादय । एवम् पञ्चतादय सप्त । आलाप आलसि । पर किं तु
दमयंती असाधारणा अनन्तविषयवादेकाग्रया । तानिस्तु सागरगा जाति
साधारणा चेति ॥ ४९ ॥

और भी (बहुत सी साधारणतायें (समानतायें) इस गीति में और दमयंती
में हैं । जैसे—)

यह भी अनेक कलाओं से विभूषित है वह भी अनेक अलङ्कारों की धारण
करती है, उसकी भी बात और स्वर हृदयस्पर्शी हैं, कि तु तुम्हारे ही लिये
हान के कारण यह असाधारण है ॥ ४९ ॥

[गीति पक्ष—गीति में आवाप आदि सात कलायें होती हैं । अरमा,
स्वक आदि अलङ्कार होत हैं । आलाप (दीर्घस्वर) होते हैं ।

दमयंती पक्ष—दमयंती में भी चित्र विज्ञान आदि कुशलनामूलक
क्षण्य हैं । कटक कुण्डल आदि अलङ्कारों की वह भी धारण करती है ।
उसमें भी आवाप (सजाव) मधुर है ।

इन्ने अग तक तो दमयंती और गीति में समानता है किन्तु गीति स्वर
साधारण है ।

किसी भी स्वर में गीति का प्रयोग किया जा सकता है । किसी भी जाति
में उसका प्रयोग किया जा सकता है । दमयंती असाधारण है क्योंकि वह
नल मात्र के लिये है, और किसी के लिये नहीं ॥ ४९ ॥]

अपि च—

संगीतका त्वदौत्सुक्यात्त्वां स्मरन्ती समूर्च्छना ।

किं तु तस्यान्त्यपि स्वामिहृदयमहो न दृश्यते ॥ ५० ॥

मदोदेति ॥ स्वयौत्सुक्यं त्वदौत्सुक्यं तस्मादेतो । सम्यग् गीतं 'हरति रस्या' । इति सर्वत्र त्वदुक्ता गीयत इति भावः । नया स्वां स्मरन्ती सह मूर्च्छं नया वर्तते इति समोहा ॥ गीतिस्तु मन्त्रत गीतं स्वरसुगन्धसंग्रामधुनियतिमूर्च्छना-लक्ष्मं दस्याम् । तदा 'स्वर मन्त्रजितो यत्र रागात्वं प्रतिपद्यते । मूर्च्छनामिति तां प्रहसुंतयो ग्राममममवाप्त' । सा चैकविंशतिविधा । यदुक्तम्—'मस्त स्वराश्रयो ग्रामा मूर्च्छनासंवेकविंशतिः' इति यथोक्त्या सह समूर्च्छना । इत्येतावन्ना दमयन्ती गीत्योः साम्यमुच्यते । अत्रुना तु मेघ निरूपयति—किरिति ॥ लयस्तरपरता । इतमभ्यविलम्बितलक्ष्यम् ॥ ५० ॥

प्रसिद्ध कीर्तिवाली (वह दमयन्ती) तुम में उत्सुकता के कारण तुम्हें माद करती करती मूर्च्छित हो जाती है किन्तु स्वामिन्, तुम में उसकी तत्परता नष्ट नहीं होती ॥ ५० ॥

[यहाँ भी दमयन्ती और गीति में कुछ समानता दिखाकर कुछ असमानता भी दिखाई गयी है, जिससे दमयन्ती की उत्कृष्टता ध्यत हो रही है ।

दमयन्ती पक्षः—संगीत का :—सुन्दर गीत (कीर्ति) वाली है । समूर्च्छना—तुम्हें माद करती करती मूर्च्छित हो जाती है ।

गीतिपक्षः—संगीत का स्वर, गुण, रूप, ग्राम आदि लक्षणों से युक्त है । समूर्च्छना २१ मूर्च्छनाओं में विविष्ट है । संगीतकास्व और समूर्च्छनास्व नृत्क समानता दोनों में है । विषमता यही है कि गीति में द्रुत, मध्य, विलम्बित आदि लय का भङ्ग होना है किन्तु दमयन्ती में लय (तत्परता और तत्त्वज्ञान) का अभाव नहीं है ॥ ५० ॥]

एवमुक्तवति किमनेश्वरे किमप्यलीककोपकुटिललोत्तुध्वलया-चलितकंथरमवलोन्य किमर्ता वस्तुमारभत ॥

किन्तर पति के ऐसा कहने पर कुछ पिछा कोप के कारण अप्रशिक्षितों को चंचल बनती हुई गर्दन घुमा कर बोलना शुरू की ।

'सुन्दरक' भा मेवं वार्दाः ॥

'सुन्दरक' ऐसा न कहो ।'

शुकाक्षी घनवार्यद्वयाः सुवाच. कार्कशस्वरा ।

दमयन्त्याः कथं गीतिः सादृश्यमवगाहने ॥ ५१ ॥

शुभ्रेति ॥ शुष्कमेव कृष्टमद्गमययो यस्या । कु ईषत् कलोऽस्यामिति (गौरा-
दिधात्रीषि) काकलि निपादसंज्ञ स्वरो यस्या । विसाधयपसे शुष्कमनाद्रम ।
काकली रलेषमवैशुष्याद् द्विधाभूत स्वरः ॥ ५१ ॥

शुष्काङ्गी (उच्च अङ्गो वाली), सुगठित तथा आकर्षक अवयवों वाली,
मुन्दर वाणी और मधुर स्वर वाली दमयन्ती की समानता गीति कैसे धारण
कर सकती है ? ॥ ५१ ॥

[गीति पद्य—गीति शुष्काङ्गी (नीरस स्वरूप वाली) है । यद्यपि वह
कही सरस भी होती है फिर भी कोई कोई गीति नीरस भी हो जाती है ।

दमयन्ती तो आद्यन्त अशुष्क है । गीति काकलीस्वर (खर-खर स्वर
वाली) है । याने वाले को कफ बगैरह आ गया तो स्वर बिगड़
जायगा अतः उसमें खरखरापन का आना स्वाभाविक है ।

दमयन्ती पक्ष—इस पक्ष में शुष्काङ्गी का शुष्क शब्द कृष्ट अर्थ का
वाचक है । कृष्णाङ्गी होना नाबिका के लिये गुण की बात है । काकलीस्वरा
(मधुर स्वर वाली) ॥ ५१ ॥]

अपि च —

गीतेर्ग्रामाः किल द्वित्राः सा तु ग्रामसद्वस्रभाक् ।

कूटतानघना गीतिः कथं तस्याः समा भवेत् ॥ ५२ ॥

गीतेरिति ॥ पट्प्रम-यमगांधारास्त्रयो ग्रामा । गान्धारस्य स्वर्गाविपयत्वाद्
द्वित्रिवेति द्वित्रा । ग्राम छेदक च । कूटताना-पञ्चविंशत । तैवेना । दमयन्ती तु न
यपरविस्तारयुक्ता ॥ ५२ ॥

गीति के तो दो ही तीन ग्राम होते हैं, उसके तो सहस्र ग्राम
हैं । कूट, तान, और घन वाली गीति उस (दमयन्ती) के समान कैसे हो
सकती है ? ॥ ५२ ॥

(गीति में पट्, मध्यम और गान्धार तीन ग्राम होते हैं । गान्धार को
यदि केवल स्वर्ग में ही प्रयोज्य माना जाय तो दो ही बच जाते हैं । इसी लिये
द्वित्रा शब्द का प्रयोग किया गया है । पैंतिष कूट तान होते हैं । अत एव गीति
कूटतानघना (कूटतान से भरी हुई) है । दमयन्ती कूट (छल) के तान
(विस्तार) के घन (बहुलता) से रहित है । उसमें छल प्रपञ्च की बहुलता
नहीं है । अत दमयन्ती और गीति में कोई तुलना नहीं है ॥ ५२ ॥

विः चान्यत्—

उ्वरितेव बहुलङ्घनप्रयोगप्रकाशितमूर्च्छना बहुलरुम्पा च,
उन्मत्तेव बहुमापा बहुताला च, वेद्येव बहुगा बहुदृष्टाभा च, भटवीय
पहुककुभमेदा बहुलनिपादस्थानका च गीतिरियम् ॥

ज्वरितेत्वादि ॥ लङ्घनमुद्ग्राहितादधिकोच्चारणम् । पञ्चे लङ्घनं शोषणम् । धन-
शनमिति यावत् । प्रयोगे उच्चारणे प्रकाशिता मूर्च्छना उत्तरमन्द्रादिका यस्याम् ।
पञ्चे प्रकृष्टा योगा द्यायादयः । मूर्च्छना मोह । कम्पोऽङ्गुलं स्वरकृन् च चलनम् ।
वन्नतेति । भैरवीप्रमृत्तयः पद्यविशङ्गायाः । तालप्रज्ञत्पुटादिः । उग्नता ॥ बहु
मापने तालिकाश्च दत्ते । वेस्वेनेति । रागः धीरागादि । तथा बहुलपृष्ठनामा रागो
यस्याम् । वेरया तु बहुसु रागोऽस्या इति बद्धासक्तिः । प्रभूतठहरगामिनी च ।
द्वयशब्दोपलब्धता क्रोडया कराहनिः ठहरा । गमे- प्रप्ययर्थाद्दृढः । अर्थाणि ॥ ककुभो
धनिर्विशेष । निषादः स्वरविशेषः । स्थानकं मन्दमध्यमतारलङ्घनम् । अटवीपञ्चे
ककुभोऽङ्गुलवृद्ध । निषादाः शबराः । स्थानकान्तालवालाः शिविरसनिवेशाश्च ।
पूर्वज्वरिताद्युपमानप्रतिपादितदोषा मीतिः कथंकारमिष इत्यप्यन्तीसमा ॥

ज्वरप्रस्त स्त्री की तरह मीति अत्यधिक उच्चारण द्वारा मूर्च्छनाओं को
प्रकाशित करती है, बहुत कम्प व्यक्त करती है । पगनी स्त्री की तरह विविध
ढंग की उक्तिया और तालों से युक्त होती है । वेरया की तरह बहुगा (बहुत
गान वाली) तथा विविध रागों वाली होती है । जगण की तरह बहुत ककुभ
(धनि) युक्त, निषाद (स्वर) और स्थानक (मन्द, मध्यम, तार आदि
स्थानकों वाली) होती है ।

[ज्वरित स्त्री पञ्च :—ज्वर से पीड़ित स्त्री बहु + लङ्घन + प्रकाशित +
मूर्च्छना होती है । बहु (अधिक) लङ्घन (उपवास) प्रयोग (करने) से दुर्बल
होकर प्रकाशित मूर्च्छना (मूर्च्छित हुना करती) है । अत्यधिक उपवास के
कारण मूर्च्छा व्यक्त करती है ।

बहुलकम्पा :—ज्वररोग में जाफर शरीर को कपाती रहती है ।

मीति पञ्च :—बहुलं + धन + प्रयोग + प्रकाशित + मूर्च्छना बहुत अधिक
उच्चारण द्वारा विभिन्न मूर्च्छनाओं को व्यक्त करती है । बहुलकम्पा :—
स्वर तथा आलाप के कारण विविध कम्पनों से युक्त होती है । गाते समय लीन
जोर से उच्चारण करते हैं जिससे विभिन्न मूर्च्छनायें व्यक्त होती हैं और
आलाप ऐसे समय स्वरों में उतार-चढ़ाव के अवसर पर कम्पन भी होता है ।
कम्प एक स्वर भी होता है ।

उग्नता स्त्री पञ्च—पगनी स्त्री बहुभाषा (बहुत कुछ अनावश्यक ढंग से
बड़बड़ाती रहती) है । बहुताला (पागलपन के मारे कभी तालों बजाती है या
ताल गनजाती) है ।

मीति पञ्च :—बहुभाषा :—मीति, भैरवी आदि छत्तिश भाषाओं
से समन्वित होती है । बहुताला—कञ्चत्पुट आदि तालों से मण्डित
होती है ।

वेद्या पक्ष—बहुगा—वेद्या बहुतो के पास जाती है। बहुद्वैरागा—उसका अनुराग बहुतो के प्रति देखा जाता है।

गीति पक्ष—बहुगा—बहुत गान युक्त होती है। बहु + इष्ट + रागा—श्री आदि विविध राग उसमें पाये गये हैं या देखे गये हैं।

अटवी पक्ष—बहु + ककुभभेदा—अङ्गल म विविध प्रकार के ककुभ (अर्जुन वृक्ष) पाये जाते हैं। बहुलनिपादस्थानका = बहुत से निपाद (किरात) और स्थानक (अठमान (घाले) और कुटीर) से जगल भरे रहते हैं।

गीति पक्ष.—बहुककुभभेदा—विविध ककुभ (ध्वनियों) के भेद से युक्त। बहुत + निपाद + स्थानका—बहुत निपाद (स्वर) और मन्द्रमध्यम, तार आदि सांगीतिक तत्त्वों से युक्त। जो उच्चरित स्त्री की तरह क्षीण है, पागल की तरह बुद्धिहीन है, अटवी की तरह अव्यवस्थित है ऐसी गीति स्वस्थ, बुद्धिमती और व्यवस्थित दमयन्ती के समान कैसे हो सकती है ?]

तद्वरमिदमुच्यताम्—

वेदविद्योपमा देवी मनोहरपदक्रमा।

उद्द्योतिता पुराणाङ्गमन्त्रब्राह्मणशिक्षया ॥ ५३ ॥

वेदेति ॥ पदक्रम पदव्यापारः । पुराणं श्रीर्णं वपुर्येषाम् । तथा मन्त्रप्रधानब्राह्मणानां पुरोषः प्रवृत्तीनां च शिक्षयोपदेशोऽन्योद्द्योतिता । वेदविद्या तु पदक्रमव्यापारमभिधीयते । पुराणानां मार्कण्डेयादीनाम् । अङ्गानां सिंहादिकानादीनाम् । मन्त्रब्राह्मणस्य ग्रन्थविशेषस्य शिक्षयाऽप्यामेन भूष्यते । अन्तःपुरे हि पृच्छा पृथग्विप्रियन्ते । यदुक्तम्—‘आशीतिकाश्च पुरुषा पञ्चशाकाश्च योषितः । बुधैरक्षयः शोयानां कौचमागारिकाश्च ये’ ॥ ५३ ॥

अच्छा हो यदि यह कहा जाय—

पुराणे अवयवों वाले, मन्त्र (मन्त्रणा) में प्रधान स्थान रखने वाले वृद्ध ब्राह्मणों की शिक्षा से उद्भासित, मनोहर रूप से पदविभ्यास करने वाली देवी (दमयन्ती) वेदविद्या की तरह है ॥ ५३ ॥

[वेदविद्या पक्ष.—वेदविद्या मनोहर पद-क्रमा होती है । उसका स्वाध्याय पदपाठ और क्रमपाठ के माध्यम से किया जाता है । वेदपाठ के एकादश प्रकार होते हैं—संहितापाठ, पदपाठ, क्रमपाठ, चर्चा, आधिक, चर्चक (क्रमचर्चक) ध्वजोपर, क्रमपर, चट (क्रमचट), जटा (क्रमजटा), दण्ड (क्रमदण्ड) । पुराणाङ्गमन्त्र ब्राह्मणशिक्षया उद्भासित रहती है । मार्कण्डेय, आपस्तम्ब आदि पुराणों, व्याकरण, ज्योतिष, निघण्टु, कल्प आदि अङ्गों और मन्त्र ब्राह्मण ग्रन्थों से उद्भव है । देवी दमयन्ती भी

पुराणाङ्ग मन्त्र ब्राह्मण शिक्षया उद्भासित है। पुराने बज्जो वाले सचिवालय के मुख्य ब्राह्मणों द्वारा प्रशिक्षित, मनोहर-पदक्रमा (सुन्दर पद-विन्यास करने वाली) है। दमयन्ती के शिक्षक वृद्ध ब्राह्मण थे। इन ब्राह्मणों का कार्य मन्त्रों को देना भी था। पुरोहित आदि उच्च कोटि के लोग उनके शिक्षक थे। वेद विद्या की तरह उसका स्वतन्त्र स्थिति है ॥ १३ ॥]

किं त्वियमेकपया, सा तु दृष्टानपया' इत्येवमनेकविचयकोक्ति-
विशेषैरभिनन्दयति दमयन्ती किन्नरमिषुने, भूतभूयिष्ठायां विभावयाम्,
सुरसङ्घ इषादृश्यमानमानुषे निशीथे, स्थगितवति भृङ्गभासि तमसि
मुचनम्, अनन्तरमवसरपाठकः पपाठ ॥

क्रांतिक्रान्तिः। इयं दमयन्ती एकमार्गा। वेदविद्या तु दृष्टान्तपथप्रवर्ध्या।
भूयिष्ठं भूना भगिन्ना, भूतभूयिष्ठा। आदिताग्न्यादिवात्। निशीथे तमोऽतिश-
यान्मानुषादर्शनम्। सुराणां मनूरे च स्वभावात् ॥

किन्तु यह तो एकपथा (एक मार्ग-मार्ग पर चले वाली) है। बहु
(वेदविद्या) तो दृष्टान्तपथा (सैकड़ों मार्ग देखी है या शतपथ ग्रन्थ के अनुसार
देखी गयी) है। इस तरह अनेक प्रकार की वनोक्तियों से दमयन्ती के किन्नर-
मिषुन विनोद कर रहे थे तब तब काफी रात बीत चली। देव-समूह सद्य
रात्रि में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते थे। अमर सद्य कान्ति वाला अन्धकार
ससार को आच्छादित कर चुका था। ऐसे समय में अवसर-पाठक ने पढ़ा—

[यहा देवसङ्घ से रात्रि की तुलना की गयी है। देवसंघ अदृश्यमान
मानुष होता है। देवताओं के समूह में मनुष्य नहीं दिखाई पड़ते। रात्रि
भी अदृश्यमान-मानुष है। अन्धकार की अतिशयता में स्वप्न भी मनुष्य नहीं
दिखाई पड़ते।]

‘उपरम रमणीयात्किन्नरद्वन्द्वगीता-

दमिनवनि निशीथो नाय नेत्राणि पश्य ।

मदन्तवशविलोलहोचनाम्भोरुहाणां

मिलन्तु कुलवधूनां सेवको लोक पयः ॥ ५३ ॥

“महाराज ! देखिये, रात्रि नेत्रों को परास्त कर रही है। किन्नर-सुख
के मनोहर गीत से विराम रहना कीजिये जिसने कि काम के वशीभूत चञ्चल
नेत्र कमलोज्ज्वली कुम्बजुओं का यह सेवक सद्ग (उनसे) मिल सके ॥ १४ ॥

[परिवन अपनी प्रियाओं के साथ दाया कर रहे थे। राजा जब तक
जा रहे थे तब तक उनका आना और उनकी सेवा में रहना आवश्यक था।
रात कान्ति आ चुकी थी परिवनों की कान्ताएँ उनकी प्रतीक्षा में थीं। इसी क्षणे

अवसर-पाठक राजा को विधाम करने के लिये कह रहा है । राजा के विधाम करने पर ही परिजनो को अपनी प्रियाओ से मिलने का अवसर मिलेगा । सेवक शब्द यहाँ शुद्ध प्रेमी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । कुलाङ्गनाओ के साथ मिलन का प्रसङ्ग है । अतः सेवक पद ज्यादा औचित्यपूर्ण है ॥ ५४ ॥

अपि च—

शतगुणपरिपाट्या पर्यटन्नन्तराले
कमलकुचलयानामर्घरात्रेऽपि खिन्नः ।
उपनिदि दयितायाः क्वापि शब्द निशम्य
भ्रमति पुलिनपृष्ठे चक्रवच्चक्रवाकः ॥ ५५ ॥

दुखी चक्रवाक आधी रात में भी नीलकमलों के बीच सैकड़ों तरह से घूमता हुआ नदी के किनारे कहीं प्रिया के शब्द को सुनकर तट पर (बैवैन होकर) चक्र की तरह भाव रहा है ।” ॥ ५५ ॥

अथ यथाप्रियं प्रेषितपरिजनो रत्ननिक्षेपमतिवाहयितुमनुरूपं
निरूप्य किन्नरमिधुनस्य शयनमासन्ननिद्रागृहे हंसपिच्छच्छायाच्छ-
प्रच्छदपटाच्छादितहंसतूलतल्पप्रभजत् ॥

यह सुनकर, परिजनो को अपनी-अपनी आवाङ्मिश्र जगह पर भेजकर रात्रि के अवशिष्ट भाग को विताने के लिये समीपवर्ती निद्रागृह के पास किन्नर-मुगल को अनुकूल राय्या देकर राजा स्वयं हंस पल की कान्ति जैसी कान्ति वाली निर्मल चादर से आच्छादित हंस सहस्र, रुई वाली राय्या पर बैठा ।

तत्र च दमयन्त्यनुरक्तोऽयमित्रीर्ष्ययेयानायान्त्यां निद्रायां द्रोणी-
द्रुमान्तरालसुप्तोत्थितविधिविहगयिरुताति यिनिद्रवनेद्यतापटयमान-
प्रभातिरुपुण्यकीर्तनानीयाकर्णयन्नेरुक्कालप्रणालिरूपर्यायेण पर्य-
स्तेऽस्तगिरिस्तके मुक्तास्तथकितनीलवितानपट इव तारातिमिरपटले,
पट्टांशुकवैजयन्तीप्लव भविष्यति दिनकरोदयोत्सवे नमस्तलमलं-
कुर्वनीषु पूर्वस्यां दिशि प्रभातप्रभावहुरीषु, चल्लकीकान्तरमणीये
थपति ध्रुवणपयमीपदुन्मिषत्कमलमुकुलमुपमुक्ताधुररमन्द्रध्यनी,
ध्यस्तनिद्रेण प्रभातोचितपङ्कजानुबिद्धशुद्धभायामालपतानेन किन्नर-
मिधुनेन गीयमानमिमं श्लोकमशृणोत् ॥

तत्रेति ॥ द्रोण्यां द्रुमास्तेषामन्तराल द्रोणीद्रुमान्तरालम् । मय्ये निद्रा प्रान्तयो-
क्षोभतस्तररात्रिविराजितो नौसहस्रः पर्वनादिभूभागो द्रोणी । षडाहं सुकुटतादितक-
नारके बाण — ‘आशा प्रेषितदिग्गजा इव मुहाः प्रव्वस्तसिद्धा इव, द्रोण्यः वृत्त-

महाजुमा इव मुवः प्रोत्तातशैला इव । विभ्रानाः वृषकालरिक्तमकलत्रैलोक्यकृष्टां
दृशां, ज्ञानाः चीजमहारया' कुहरतेर्देवस्य शून्याः समाः ॥ यया प्रगालिकया
काळ इयानिति ज्ञापते, सा काळप्रगालिका ताम्रमयषटिका । अथवा प्रकृष्टा
नादिकैव ढल्योरैवये प्रगालिका । नादिका कालविशेष । तथा च 'अहोरात्रं च
विद्वद्भिः कल्पते षष्टिनादिकम्' । यया च—'रनात्वा तिष्ठति कुन्तलेष्वरमुता वारोऽ-
होरात्रत्वमुच्यते रात्रिरिय विना कमलया देवी प्रमादाच्च च । इत्यन्त'पुरमुन्दरीः
प्रति मया विज्ञाय विज्ञापिते, देवेनामनिरुत्तिमूतमनया द्वित्राः स्थितं नादिका' ।
अन्यत्रपि प्रगालिकया जलपद्मत्वा परिबिध्यते । तारागां मुक्ता, त्रिनिरपटलस्य
नीलविनामपट इरमा ॥

“मह दमयन्ती न अनुरक्त है ।” मानो उस ईर्ष्या से निद्रा नहीं आ रही थी ।
नीला सद्ग आकृति वाली (ऊँची-नीची) पर्वतीय भूमि के पेटों के बीच से
कर उठे हुए पश्चिमा का कण्ठव जती हुई बनदेवना द्वारा पड़े जा रहे प्रातः -
कालीन पवित्र कीर्तन की तरह मुन रहा था । समय गति के क्रम से तारे और
अन्धकार जन्माचल के मन्त्रक पर मुन्ता के मुन्ता में युक्त नीले तन्मू के वस्त्र
की तरह बिखरे थे । भविष्य में होने वाले मूर्धोदयोत्सव के उपलक्ष्य में आकाश
को अर्द्धव्य करती हुई पूर्व दिशा की प्रातः कालीन कान्तिज्वाले शिन्क वस्त्र
से बनी हुई पञ्जाका की तरह लग रहा थी । थोड़ी-थोड़ी चिटकती हुई कमल
कल्पा के मुख से निकले हुए झमरों की गम्भीर ध्वनि बीजा की सङ्कटि की
तरह लग रही थी । प्रातः काल के अनुकूल वहन ध्वनि युक्त शुद्ध भाषा में कितर-
मुक्त द्वारा गाये जाते हुए इस श्लोक की मुता—

‘धुतरजनिधिरामोन्मीलदम्भोजराजि-
म्वनुतुहिननुपारानुद्गिरन्मग्नधाहः ।
कलितकलमकुम्भभ्रमभ्रान्तिपूदादितेषु
म्वलति निधुवनान्तधान्तकान्ताकुचेपु ॥ ५६ ॥

“वदन ने रात के जग्त में खिन्नी हुई कमल-पंक्ति की हिला दिया है । छोटे-
छोटे झोंप के बिन्दुओं को बरस रहा है और रतिश्रीका के अन्त में पक्षी हुई
कान्ताओं के स्तनों पर वो हाथी के बच्चे के कुम्भस्थल की भ्रान्ति उत्पन्न
कर दे रहे हैं, स्तब्ध हो रहा है” ॥ ५६ ॥

तदनु पुनः प्रमानप्रहृतप्रमाणनेरोरवचिनिद्रितस्यापूरयतः सम-
विपमवनविभागानुक्कल्लोलजतनिवेरिय चलन सैन्यसमूहस्य कल-
कलमाकर्णयन्तुत्याय कृतोचिताचारश्चादचर्चितचन्द्रचूडचरण-
धृष्टलपुश्चारीप्रचारेणाडम्बरितनाण्डवस्य खण्डपरशोः पदलीला-
मिवाम्यस्यता स्फुरद्घुरघुरायमाणघोणाप्रस्खलत्खलीनवशविगलित-

चदललालाजलप्लवेन वनभुवि फेनिलजलनिधिमिवाकारयता जात्यतर-
सुरगसैन्येन परिवृतः पूर्वप्रस्थानस्थित्या प्रतस्थे ॥

इसके बाद पुनः प्रातःकाल वजाये गये प्रस्थानसूचक नगाड़े की आवाज
मे जगे हुए, वन के ऊँचे-नीचे स्थलों को भरते हुए, बल्लोत्पूर्ण समुद्र की
तरह उमड़ते हुए सैन्य समूह के कलकल स्वर को सुनकर जगा और दैनिक
कार्य किया। भगवान् शकर का अच्छी तरह पूजन किया। सुर की विविष्ट
गति से उछलने हुए, मानो वाणवन्धु करने हुए भगवान् शवर की पद-
लीला का अनुकरण करते हुए, फड़फड़ाती हुई तथा धुर-धुर ध्वनि करती
हुई नासिका के अग्रभाग से खिसकते हुए लगातार धारण करने के कारण
गिरते हुए शर की जलधारा से मानो वनस्थली पर फेनिल जलनिधि का
आह्वान करते हुए उत्तम कोटि के घोड़ों वाले सैन्य के साथ पूर्व प्रस्थान के
अनुसार पुनः चल पड़ा।

स्थपुटस्थलीस्थितं स्थूलमेकस्यग्रमग्रे राजा गजप्राप्तपयमधूलोऽप्य
पुष्कराक्षमभापत ॥

राजा सामने की ओर एक ऊँची-नीची अग्यवस्थित जगह पर घुपघाप
वहरे हुए एक मोटे हाथी को देखकर पुष्कराक्ष से कहा—

‘भद्र—

सालानकमनलानमरयुन्मतमनुत्ततम् ।

दन्तघन्तमदन्तं च पश्यीतमयजं गजम् ॥ ५७ ॥

सन्नेति ॥ सलीलां समूह आलं सदेव प्रयावकवापटहस्तेन सह । मद्रविधुर-
गजे भृङ्गाः समीपीभवन्ति । तेन च मघो ज्ञावत इति भावः । तथा अमाडान
घन्यरवाग्निरर्गलस्तम्भम् । तथातीवोग्नतमुच्चम् । तथा नास्ति उन्नता प्रेरणा-
स्येति स्वच्छन्दसरमिष्यर्थ । यद्वा अनुश्लेषामग्नम् । समिति गजविशेषणम् ।
दन्तघन्तं दन्तुरम् । अदन्तं तृणादिकमदन्तं । अगतं विरिजं गजं परयेति
सम्बन्धः । अथवा सालांस्तस्मिन् दन्तम् । तथा अकमकुक्षितम् । सर्वलक्षणपरिपूर्णम् ।
तथा ‘उच्चैः कुम्भम्’ इत्यादिना वदयति । अत्र ‘किम्’ चेदे । शेषं पूर्ववत् ॥ ५७ ॥

‘भद्र, भ्रमरसमूह रूप नगाड़े से युक्त, शृङ्खलारहित, प्रेरणाविहीन,
सदन्त उन्नत, दाँतों से युक्त (शृङ्गादि को) चाते हुए इस पहाड़ी हाथी
को देखो ॥ ५७ ॥

[साग्रानकम् — सह = स + आल + आनक = सालानकम् । अति (भ्रमर)
के समूह को आल कहते हैं । आनक का अर्थ नगाड़ा है । आल (भ्रमर समूह)
और आनक (नगाड़े) से सहित जो होगा वह सालानक कहलायेगा । गजपद का

आत्मादन करने के लिये अकरो का समूह कुम्भस्थल पर भनभना रहा है । वदः अनर ही जानक 'नगाड़े' का काम कर दे रहे हैं । राजकीय हाथियों के कुम्भ पर युद्ध के समय नगाड़ा रखकर बताया जाता है । यह जगनी हाथी है । दस पर नगाड़े का काम अनर ही करने हैं ।

अनालानम्—आचान (गृह्य) रहित । जगनी हाथी है इसलिये उचने गृह्य नहीं है । अत्युन्नतम् (अत्यन्त उच्च) है अनुने । तम् (उसे) देखो । मुन्न का अर्थ है । प्रेरित । अनुन्न का अर्थ है अप्रेरित । अपदा अनुन्नत है । जपां अकड कर नहीं खाता है । साधारण एव स्वाभाविक स्थिति में खाता है । दन्तदन्तम् (दाँतबाने) दन्तम् (खाते हुए) अग + जम् (अग (पर्वत) से उत्पन्न होने वाले) गजम् (हाथी) को देखो । परिहार पक्ष के सभी अर्थ ये ही हैं । आपाततः विरोध की प्रतीति यहाँ होगी है । सानातक है फिर भी अनालान है । अत्युन्नत है फिर भी अनुन्नत है । दन्तबाद् है फिर भी अदन्त है । अगज है फिर भी गज है ॥ ३७ ॥]

अयं हि मम्मथविलासेषु परं वैदग्ध्यमवलम्ब्यते ॥

कामक्रीडा में यह अत्यन्त निपुण है ।

तथाहि—

नृदुकरपरिरम्भारम्भरोमाञ्जितायाः

सरसकिसलयप्राप्तशोषार्पणेन ।

मधमुकुलितचक्षुरचाटुकारी करीन्द्रः

शिथिलयनि रिरंसुः केलिकोपं प्रियायाः ॥ ५८ ॥

बर्बाद—

रसिम्भा से आँखों को निमीलित कर चटुकारिता करने वाला यह गनेन्द्र सरस तथा नवीन पत्तों के अश्रुभाग का कवल देख कर अपने कोमल कर (शुङ्ख) के आलिङ्गन से रोमाञ्चयुक्त प्रिया के शीघ्र की रमण की इच्छा में शिथिल कर रहा है ॥ ५८ ॥

अपिच—

उपनयति करं करेणुकायाः किसलयमङ्गमनद्वसङ्गताङ्गः ।

स्पृशति च चलदक्षिपद्मलेखं मुखमखरेण करेण रेणुदिग्धम् ॥ ५९ ॥

कामयुक्त अङ्गवाण (यह हाथी) हृदिनी के कर (शुङ्ख) में कोमल पत्र खण्ड दे रहा है । चंचल पद्म-पत्तियों से अङ्कुरित नेत्र वाले उसके धृति धृति मुख को अपने कोमल कर (शुङ्ख) से छू रहा है ॥ ५९ ॥

अथवा विवेकपूर्वव्यवहारविचारेष्वमी मानुषेभ्यः स्तोकमेवाव-
हीयन्ते ॥

(ऐसा प्रतीत होता है कि) विवेकपूर्ण व्यवहार और विचार में मनुष्य
की अपेक्षा ये योना ही कम होते हैं ।

तथाहि—

श्रूयते पुरा किल् नारायणनाभ्यम्भोरुद्धकुहरकुटीमधिशयानस्य
वेदविद्यां निगदतो भगवतः पितामहस्य बृहद्रथन्तरविकीर्णभासमा-
नानि सामानि गायतः सामस्तोभरसनिष्यन्दादुदपद्यन्तैरावतसुप्रतीरु-
कुमुदयामनाञ्जनप्रभृन्नयोऽथौ दिग्गजेन्द्राः ॥

* श्रूयत इति ॥ सामस्तोभरसनिष्यन्दादिति । सामानि स्तोम भासस्तिरतस्माद्र-
सस्य स्वेदस्य निष्यन्द स्नावस्तत् इत्यर्थः । स्तोमरसपाठे तु रस भामक्ति ।
निष्यन्द स्वेदः ॥

सुना जाता है कि पुराने जमाने में जब नारायण के बाभिकमल की कुटी
में लेटर ब्रह्मा वेद गा रहे थे । बृहद्रथन्तर के पुटकल सुन्दर सामी की गाते
समय सामस्तोम के रसविन्दु से ऐरावत, सुप्रतीक, कुमुद, वामन, अञ्जन
आदि षाठ दिग्गजेन्द्र उत्पन्न हुए ।

तेभ्योऽभयन्मद्रमन्द्रमृगसंकीर्णजातयो गिरिचरनदीचरोभय-
चारिणः करिणः ॥

उनसे भद्र, मद्र और मृग नामक पर्वत में घूमने वाली, नदी पर चरने
वाली और पर्वत तथा नदी दोनों पर भ्रमण करने वाली क्रमशः संकीर्ण जातिवाँ
उत्पन्न हुए ।

प्रसिद्धं चैतत् । 'सामजा गजाः' इति ॥

यह प्रसिद्ध है कि हाथी साम से उत्पन्न हुए हैं ।

केचित्पुनरन्यथा कथयन्ति—

कुल लोग दूसरी तरह कहने हैं—

किल् सकलसुरासुरकरपरिवर्त्यमानमन्दरमन्धानमधितदुरधा-
म्भोनिधेरजनि जनितजगद्विस्मयो लक्ष्मीमृगाङ्गसुरभिसुरद्रुमधन्यन्तरि-
कौस्तुभोच्चैःधवसां सहभूः शशधरकरकान्तिरैरावत । तत्प्रसूति-
रियमशेषयनान्यलं करोतीति ॥

समस्त देवों और दानवों के हाथों से धुमाये जाते हुए मन्दराचल रूप
मन्दरपर्वत से क्षीर सागर के मयने पर सद्यः की आश्चर्य में डाल देने वाला

चन्द्र की कान्ति सत्य शुभ्र ऐरावत लक्ष्मी, चन्द्रमा, कामधेनु, वन्द्यवृक्ष, धन्वतरि, कोज्जुन तथा उच्चैश्रवा के साथ ही उदयन हुआ । उसी की संगति मनस्त दना को अकृत कर रही है ।

तदेव मद्रजातिर्मिष्यति ।

यह तो मद्रजाति का होगा, क्योंकि—

नयाहि—

उच्चैःकुम्भः नृपिशद्दानो यन्धुरस्त्वन्धसंधिः ।

स्निग्धानात्रद्युतिनखमपिलम्बवृत्तोद्वह्नः ।

धूरः सततउदपरिमलस्पर्शिदानोदरोऽय

मद्र साण्ड्रुमगिरिसरिसरिचारा पराण्डः ॥ ६० ॥

कुम्भम्प= लंबे हैं, बल पीछे हैं, कम्पा = जोर बनाहर हैं, नव नगि की तरह लान जोर चिकन हैं, वसन्धुर मोठ है, गुड दिया है, मदनः सततउद व मकरद की तरह स सर्पा करता है, धन पहा, पहाडा जोर नदिया के तट पर बिहार करने वाला, यह बीर गवैत्र बडा ही नन्द है ॥ ६० ॥

तन्मोदनामयम्, अनुरागिपोर्दन्त्यो. क्रीडारसधिवानं कृतो न ध्येयान् इत्यभिधाय, हृत्तद्वयं, स्वैरं रममाणसृगमियुनत्रिलामै रुद्रासिनपुल्लकं. कुनुमिनकाननानिन्द्रैरुष्कम्भयमान, सपञ्चिर्हपेपान्त-पादपतलवृद्धकेलिकिलकेकिरेकारयंतिनोद्यमानः समीपधरसेवरु सुमापितैश्च, सममसमं च, निम्नगात्रमनिम्नगात्रं च प्रायविषमम-प्रायविषमं च, सन्धापदमन्धापदं च, सपादपमपादपं च, विन्यस्तकम्प-मुल्लङ्घ्य, 'देव, तिलोन्मयतामिह विषमधिराणि पत्रगकुलानि त्रौर्गोणहनं च, इह शरासनकरस्याणि यनानि पापक्षिक्पुलिन्दवृन्दं च, इह यदुसुखानि शयस्त्रन्दानि रत्नाकरस्थलं च, इह सुमधुराणि फलानि कौचकनं च, इहामोदिनत्रिम्बककुम्भि कुलुमानि सरिचारं च, इह सन्प्रभावण्यानि दयदग्धारण्यानि मुनिमण्डलं च' इति त्रिप्रियनप्रदेशान्दर्शयतः पुनरप्यस्य त्रिचित्रवचनोक्तीर्भाषयन् तमेगातिक्रम्य शिखरपरम्परं परैरमहा सह्यवल्लमयनतार ॥

नृदि ३ । उच्चैःकुम्भ इपायमिपन तेनैव करिग हृत्तद्वयो मृन्मियुनत्रिला-मदिमि पुल्लङ्घनेन ईदश विन्यमतिक्रम्य 'देव, वीरयताम् इह विन्यस्तकम्पे इदमिदमिति वनप्रदेशान्दर्शयन् पुल्लङ्घ्य वक्रोक्तीर्भाषयन्तिरन्तशिवरपर-मरा' सद्यमया । केडये किलतीति केडिकिड (इगुपव इति क) क्रीडापात्रम् ।

केलिक्रिडानो केकानुकारप्रवृत्तानां च केकारवैविनोद्यमानः । सह मया धिया समं
 सध्रीकम् । अतम विषमम् । न समोऽस्येति कृत्वा उक्तं यत् । निम्नगा नदीध्यायत
 इति क । तथा अनिम्नमुच्चयात्र मूर्तिर्वस्य । प्रावभिर्दृष्टिर्विषमम् । अग्रे अव-
 विषमसमम् । अवेति नम्रये । आपद् हिंस्रपशु । अथानामपदमभूतिम् । समनिर्जलो
 हि देशोऽधोयः । अयं च प्रावविषयो निम्नगाधारश्च । सह पादपैवृचैः । तथा
 अपादान् गूढपद पानीत्यपादपम् । शृण्वे हि सर्पादिप्राचुर्यम् । धमया अतिवैषम्या-
 रसचरतां पदान् न पातीत्यपादपम् । इह विपेति ॥ विषम विपं येषु पशगकुलेषु ।
 द्रोणीगहनेषु तु विदमा विषाणिनो दन्तिन शङ्किना च । चम्बरादयो यत्र । इह
 शरेति ॥ शरेण मुन्त्रेण असनेन खीजकवृक्षेण च करम्बाणि शबलानि । पुलिन्दवृन्दं
 ॥ दारासन धनुः करे परय । तथा बाणा सन्त्यस्येति बाणि सत्तरम । इह वेति ॥
 बहु सुखे देया ताति बहुसुखाणि । श्वल तु बहुविपुलम् । तथा सुष्ठु पानिराकरो
 यत्र । बहुशब्दं वैपुल्येऽपि । इह सुमेति ॥ सुष्ठु मधुराणि घनं तु सुष्ठु मधु यत्र
 तत्सुमधु । तथा रणन्यवर्यं राणि । सञ्चित्रा हि यथा वायुवशाद्गन्तीति ।
 इदमिति ॥ आमोदिता सुरधिता विद्याः सर्वा ककुभो दिशो यैः । तीरं तु आमो
 दिना हर्षिता यम पक्षिण शक्ता शुन मंशा वृका कुम्भिनश्च गजा यत्र । आमोदो
 हर्षेऽपि । यद्विश्वप्रकाश — 'आमोदो गन्धर्पयो ।' यदा तु विरवा शुण्ठी कुम्भी
 च वल्लीविशेष । तदा बहुमीहो 'शेषात्' — इति कन्दुर्वारः । सादर्यवृत्ते शुनः ।
 सशामतिक्रियो धनूः । इह मेति ॥ सती द्योमना प्रमा कान्तिस्तथा यथापानि
 रहिताम्परयानि मुनिमण्डल तु माप्रभावम् । तथा ध्यानमस्यास्तीति ध्यानि ॥

अच्छा, यह करे आनन्द का अनुभव । अनुरागी दम्पतियों के क्रीडारस
 में विचन डालना अच्छा नहीं ।" यह कह कर बिह्वल हो उठा । स्वच्छन्द बिहार
 करते हुए मृगदम्पतियों के बिलास (दर्शन) में रोमाञ्चित हो गया । पुष्पिन
 बानसों की हवा से काँप उठा । गिरते हुए सरनो के समीप बाले पेड़ों के नीचे
 नीलापात्र, मयूरों की ध्वनियों और समीपवर्ती सेवकों के मुभाषिणों से मनो-
 विनोदकरता हुआ सम (शोभा-सम्पन्न) एक विषम (ऊँचे नीचे) निम्नगात्र
 (नदियों की रक्षा करने वाले) ग्राम-विषम (चट्टानों के कारण विषम)
 और अपवा-विषम (आगे कुछ दूर सम) सरवापद (हिंसक जन्तुओं से युक्त)
 और अरवापद (अश्वों के न चलने योग्य) सपादप (वृक्षों से युक्त) और
 अपादप (पादरहितों (सर्पों) की रक्षा करने वाले) विन्ध्य स्वन्ध को पार
 कर, "देव, देखिये यहाँ मयधुर विषवाले सर्पों व जत्ने हैं और यह पनी पर्वत
 भूमि बड़े-बड़े शृङ्गों वाले मृगों से अलङ्कृत है । यहाँ पर और असन वृक्षों
 से वन चितकवरे रंग का हो गया है और व्याधों का समूह धनुष तथा बाणों
 से युक्त है । यहाँ किरात दम्पतियाँ बहुत सुखी हैं और रत्नाकर का स्थान
 भी बहुत सुन्दर सामि (राजानों से युक्त) है । यहाँ सुन्दर मोठे फल हैं और
 कीचक वन सुन्दर मधु से युक्त है तथा राणि (ध्वनियुक्त) है । ये पूर्य समस्त

दिशाओं को सुगन्धित कर दिये हैं और इस नदी-तट के पक्षी, भेड़िये और हाथी पक्षत हैं। इन की आश से जग हृआ यह ब्रह्मन् मुन्दर वाग्नि से शुभ्य है और यह मुनिमूह कान्तिमान् सया ध्यानमग्न है।" इस तरह इन के विविध भागों को दिखाते हुए पुनराज की श्रेष्ठता बानों पर विचार करता हुआ उन से विविध चोटिया को धार कर शत्रुओं के लिये असक्त सहायता नामके पर्वत पर उतरा।

[विषम विषाणि से लेकर मुनिमण्डल्य तक अधिकांश स्थानों पर लिङ्ग-श्रेष्ठ और वचन श्रेष्ठ दोनों हैं। वही सामान्य श्रेष्ठ भी है।

विषम स्कन्ध सम है और विषम है। विरोध। सम (मा (लक्ष्मी) से युक्त है इस निज सम) है। विषम (ऊँचा-नीचा) है। परिहार।

निम्न गान है और अनिम्न गात्र है। विरोध। निम्नगा (नदियों) का गात्र (रसा) करने वाला है अथ निम्नगा + व है और बहुवचन (अनिम्न) छरीर (गान) वाला है इस लिये अनिम्न + गात्र है। परिहार

प्राय + विषम है फिर भी अगाव + विषम है। विरोध। प्राय + विषम (परधरा के कारण ऊँचा नीचा) है और अगाव + विषम (आगे कुछ दूर पर डाढ़ जमीन है और कुछ ऊँची नीची भी) है। परिहार। सखापद है फिर भी अखापद है। विरोध। खापद (हिसक जन्तुओं) से युक्त है और बहुवचन ऊँचा नीचा होने के कारण अखा के चकने योग्य नहीं है।। परिहार।

• सपादप है फिर भी अपादप है। विरोध। सपादप (पादपों से युक्त) है और अपादप इस लिये है कि अपाद (पदविहीन (सर्पों) की रजा करता है। विषम स्कन्ध की अन्धकारबहुल गुहाओं में सर्प मजे में रह रहे हैं। परिहार।

• विषम, विषाणि से लेकर मुनि-मण्डल्य तक लिङ्ग श्रेष्ठ और वचन श्रेष्ठ हैं।

विषमविषाणि—जब यह पत्रम कुछ का विशेषण है तो इसका विग्रह है—विषम है विष जिनका। अर्थात् पत्रम कुछ अयम्न विषधर हैं। जब यह श्रोती गहनम् का विशेषण है तो एकवचन है और पत्रमकुण्डलि के साथ बहुवचन है।

श्रोती + गहनम्—नीचा की जाहति वाली, चारों तरफ ऊँची जोर बीच में गहरी पयरीची या गहरी जमीन को श्रोती कहा गया है। श्रोती का गहन स्पष्ट विषमविषाणि है। विषम (बड़े-बड़े) विषाणी (शृङ्ग वाले जानवर) जिस श्रोती गहन में रहते वह विषम विषाणि है। विषमविषाणि शब्द के नपुंसक निज प्रथमा का एकवचन है।

शरासनकरम्बाणि—यह पद भी वनानि और पाषाणिक-पुलिन्द-वृन्दम् दोनों पक्षों में लगेगा ।

वन पक्ष वन शर और ससन नामक वृक्षों से करम्ब (कर्त्तरित रंग का) हो गया है ।

पुलिन्द-वृन्द पक्ष—इस पक्ष में शरासनकरम् एक पद है और बाणि एक पद है । दोनों पाषाणिक-पुलिन्द वृन्दम् के विशेषण है । शरासन (धनुम्) जिसके शर में है वह वृन्द शरासनकरम् हुआ । बाणि हैं जिनके पास वे बाणि हुए । बाणिन् शब्द के नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन बाणि है ।

बहु + सुखानि—यह पद शबर-द्वन्द्व और रत्नाकर द्वयन दोनों में लगेगा । शबर द्वन्द्व—बहुत है सुख जिनको वे बहुसुखानि हैं । बहु सुख शब्द का नपुंसक, प्रथमा, बहुवचन । रत्नाकरपक्ष—यहसे से सुन्दर खानि (खजाना) है जिसमें वह बहुसुखानि है । इस पक्ष का बहुसुखानि नपुंसक त्रिग के प्रथमा का एकवचन है ।

सुमधुराणि—एक पक्ष में—पूर्ण मधुर अर्थ है । कीचक वन पक्ष—यहां सुमधु और राणि पृथक्-पृथक् पद है । दोनों ही पद न० प्र० एकवचन है । सुन्दर है मधु जिस में वह सुमधु है । रणन (ध्वनन) कार्य सम्पादिन होता है जिस से वह राणि कहलाता है । राणिन् शब्द का न० प्र० एकवचन । छिद्र युक्त वासों के वन को कीचक वन कहते हैं । वास के वन में मधुमक्खियों मधु का छत्ता लगाती हैं । वास के छिद्रों में जब हवा का आगमन निर्गमन होता है तो उनसे ध्वनि निकलती है ।

आमोदित-विश्वककुम्भि —कृमुम पक्ष—आमोदित (सुगन्धित) कर दिया है विश्व (नमस्त) वकुम् (दियाओं) को दिन कृन्तो ने । आमोदित-विश्वककुम् शब्द के नपुंसक लिङ्ग प्रथमा का बहुवचन रूप है ।

सरित्तीर पक्ष—प्रसन्न हैं वि (पत्नी), श्वक (जंगली कुत्ते = भेड़िये) और कुम्भी (हाथी) जिस नदी तट पर वह वि + श्वक + कुम्भि कहलाता है । यह नपुंसक प्रथमा का एकवचन है ।

सत्प्रभावन्वयानि —शरणपक्ष-सत्प्रभा (सुन्दर कानि) में वर (दूत) जगत् में जिस भाग में आग लग जाती है वह भाग कान्तिहीन हो जाता है । मुनिमण्डल पक्ष में सत्प्रभावन् एक पद है और ध्यानि दूसरा पद है । अर्थात् मुनि लोग सत्प्रभावन् (सुन्दर कानि से युक्त) हैं और ध्यानि (ध्यानमान) हैं ।]

रमणीयतया म्निग्यतया च पुनः परिवर्तितमुखो विलोक्य विन्ध्य-दक्षिणमेखलाशिखरश्रेणीपादपान् पुष्कराक्षमभापत ॥

‘मद्र, दुस्त्यजाः सस्वमी विन्ध्यतटीनरवः ॥

रमणीयता और कीमलता के कारण पुन मुख फेर कर विन्ध्याचल के दक्षिणी तट शिखर समूह के दृशों को देख कर पुनरास से बोध—वत्प्राप्ति, ये विन्ध्याचल के पेड़ बड़ी कठिनार्थ से छोड़े जा सकते हैं ।

तथाहि—

आयासाः कुसुमायुधस्य शयरीसंनेतलीलागृहाः

पुष्पामोदमिलन्मधुवतवधूजङ्काररुद्धाध्वगाः ।

सुस्तिग्धा प्रियवान्धवा इव दृशो दूरीभयस्तश्चिरात्

कस्येते न दहन्ति हन्त हृदयं विन्ध्याचलस्य द्रुमाः ॥ ६१ ॥

क्योंकि—

किरात-बान्ताओं के संकेत वाले विनास गृह काम के घर हैं । पुष्पगन्ध में निचली हुई अनुरवधुओं की शक्ति से पक्षि रुक जा रहे हैं । बिरकाल के लिये आँखों में दूर हो रहे प्रिय वधु की तरह विन्ध्याचल के ये पेड़ किसके हृदय को व्यथित नहीं कर देने ? ॥ ६१ ॥

अपि च—

भ्रान्यदृष्टुमराधनम्रकुसुमदृच्योतन्मधूद्गान्धिषु

रुद्धायाचसु तलेषु पान्यनिचयाधिधन्य गेहेष्विव ।

निर्यन्निर्जरवारिवारितलपन्तृप्यन्ति येषां फलै-

स्ते चन्दन्तु फलन्तु यान्तु च परामभ्युन्नतिं पादपाः ॥ ६२ ॥

और—

भ्रमते हुए अनुरों के भार से नवे हुए फूलों से मधु टपकने वाले, वस्तुतः गन्ध एवं छाया युक्त पेड़ों के नीचे घर की तरह विग्राम करने हुए पक्षियों के समूह बहने हुए झरने के जल से प्यास बुझाकर जिन के फलों से तृप्ति का अनुभव करते हैं वे वृक्ष अनुर हैं, फलें और अत्युन्नत वृत्ति प्राप्त करें ॥ ६२ ॥

अपि च—

यत्र न फलिताम्ररवो विकसिनसरसीरुद्धा- सरस्थो वा ।

न च सज्जनाः स देशो गच्छतु निधनं दमशानसमः ॥ ६३ ॥

यत्र नेत्रे ॥ देशमशानयोः समतायामरनिजनरुचं हेतु ॥ ६३ ॥

और—

जहाँ फले हुए पेड़ नहीं हैं, खिले हुए कमलों की बावलिमें नहीं हैं और जहाँ सज्जन नहीं हैं, वह दमशान सदृश स्थान नष्ट हो जाय ॥ ६३ ॥

तत्कथय कदा पुनरिमां विन्ध्यवनवीथीं विवित्रपत्रलङ्कुचां
दमयन्तीमिव निर्विघ्नमलोकयिष्यामः ॥

तत्कथयेति ॥ विवित्रपत्रा लङ्कुचास्तरबो वक्ष्याम । दमयन्ती तु विविधपत्रवह्नी-
युक्तस्त्री । पत्र टात इति के पत्रलौ ॥ .

तो कहिये, पुन कब विवित्र + पत्रल + कुचा (विविध पत्र रचना युक्त स्त्री
वाली) दमयन्ती की तरह विवित्र + पत्र + लङ्कुचा (सुन्दर पत्रों वाले लङ्कुच
वृक्षों से युक्त) इस विन्ध्याटवी को निर्विघ्नतापूर्वक देख सकेंगे ?

तथाहि—

पीनोन्नमद्धनपयोधरभारभुज-

मध्यप्रदेशरुचिमल्लवलीलनायाः ।

उत्कण्ठितोऽस्मि चलदेणदृशः प्रिया

स्तस्याश्च पर्यतमुयो वनवीथिकायाः ॥ ६३ ॥

पीनोन्नेति ॥ कठिनस्तनभरण भुजने नद्ये उदरे रुचिं मल्लन्ते धारयन्ति ह्ययमि
तपोक्ता वक्ष्य एव लता वक्ष्याः । वली उदरेखा । तथा चलतामेगानामिव दृशौ
वक्ष्या । वनवीथीपथे पयोधरो मेघ । रुचिमती तेजस्विनी लवली नागनी लता
तथा । चलदेगानां दृक् दर्शनं वक्ष्याम ॥ ६३ ॥

स्त्रूल, उच्छ, तथा घने स्तनों के भार से कुछ नबे हुए उदर भाग में काग्नि
लीला वलीलता (पेटी) वाली, पवन हरिण नेत्र सहज नेत्र वाली उस
प्रिया के लिये और इस पर्यंत में उत्पन्न होने वाली वनवीथियों के लिये
उत्कण्ठित है ॥ ६४ ॥

[प्रिया के सभी विशेषण वनवीथिका पक्ष में भी लगते हैं । वनवीथी पक्ष—
जहाँ पीन (बड़े बड़े उमड़ने हुए घने बादलों से युक्त मध्य भाग में कान्तिमयी
लवली की लता हैं और जहाँ चलने हुए हरिण देखे जाते हैं । दमयन्ती पक्ष
अनुवाद भाग में देखें ॥ ६४ ॥]

अपि च—

सानूनां सानूनां विलोप्य रमणीयतां च सानूनाम् ।

सालवने सालवने विहरिष्यति सह मयाऽप्य कदा ॥ ६५ ॥

सानूनामिति ॥ सानूना तटानां सम्बन्धिनो ये सानवो सायास्तेषां रमणीयताम-
नूना परिपूर्णां विलोप्य अलवनेन सह यत् सालानां सर्जनरूपां घनं तरिप्रमया
मम कदा सा विहरिष्यति । अत्र प्राच्य. सामुशब्दस्तटार्थोऽन्यथास्वार्थः ।
यद्विध—'सानु श्रुते पुत्रे पद्यायां फलत्वे घने' । यदि वा 'णु स्तवने' भान-
वनमान् प्रसंसा तथा सह वर्तन्ते इति सानूनि येषां स्तुत्यानामित्यर्थः ॥ ६५ ॥

तट बाजे भागों की अनन्य रमणीयता को देखकर न कटे हुए इन साज-
वन में मेरे साथ वह स्व विहार करेगी ॥ ६१ ॥

[साधुनाम् (तटप्राप्ते) साधुनाम् (भागों की) जन्मनाम् (अनन्य) रमणी-
यताम् (रमणीयता को) देख कर साधुवने (न कटे हुए) साधुवने (सत्र
नामक वृक्षों के वन में) सा (वह) मेरे साथ स्व विहार करेगी ? एव साधु-
वने का अर्थ "न कटा हुआ" है । जन्म का अर्थ है कटना । न जन्म = जन्म
और जन्मन सहित साधुवन । जयान् विष काटा छटा नहीं गया है । प्रपन्न
साधु राज तट प्रा बाधक है और द्वितीय साधु राज भाग प्रा । 'साधु शब्द
शुद्धे भागें पहाया पञ्चमे वन ।' विरह ॥ ६१ ॥]

सखे सखेदा इव वयम्, उत्कलय क्रियद्दुरेऽद्यापि स विद्वन्-
धियय, यत्र ब्रह्माण्डशुक्तिसंपुटमभ्यमुक्ताफलशुलिकया तपालद्वैतं
तन्कुण्डितं नगरम्' इत्यभिधाने निबधनाये तैस्तैरान्तरापरैरुपसि-
तोक्तिः पुष्कराऽशोष्यमापठ ॥

देव, माता ननु वयम् ॥

सख इति ॥ ब्रह्माण्डमेव शुक्तिर्मण्डितम् । सा च तन्मये मुक्ताफलशुलिका साधु-
मुक्ताफलम् । शुक्तिकाकरावात् । एतावता स्पष्टवृत्तम् ॥

मित्र, हम लोग एक से गये हैं । दो बन्धुओं, जहाँ वह विद्वन् देश यह
ब्रह्माण्ड स्व शुक्ति-सन्धुट (चीन) में बृह मुक्तानि सत्र उस वनपत्नी द्वारा
जन्मवत् वह कुण्डित नाम का नगर है, कितनी दूर है ?" ऐसा कहने पर वन-
वन (प्रेमबहुत प्रसङ्गिक) बातों से संबद्ध बातें ब्रजा द्वारा पुष्कराक्ष भी
बोली—“देव हम लोग पहुँच गये ।”

इदं हि—

धीरुदयं तदेतद्वत्पातदनामकं महाराष्ट्रम् ।

दक्षिणसरस्वती सा बहति विदर्भा नदी यत्र ॥ ६६ ॥

वीर पुरुषों से युक्त बरदा के तट पर यह महाराष्ट्र देश है जहाँ दक्षिण
(देश) की सरस्वती विदर्भा नदी बहती है ॥ ६६ ॥

[महाराष्ट्र में बरदा और विदर्भा नाम की दो नदियाँ हैं । दक्षिण पूर्व में
बहती हुई विदर्भा नदी सोदावरी में मिलती है ॥ ६६ ॥

इहाकरमया सिद्धलक्ष्मीपमुवा सदृशी, बहुदया त्यागिजनतया
तुल्या सन्तुदनया भूनिधातकृपपजननिक्षेपकुम्भिकया समाना, प्रजा ॥

इति । न कराराजदेवोऽज्ञानं यस्यां माऽकरमया । मुवा तु न करमा
यस्यामिति करमरहितया तथा बहो दया यस्यां सा बहुदया । त्यागिनां जनतया

तु बहु ददातीति बहुदा तथा बहुदया । जनानां समूहो जनता । 'ग्रामजन इति समूहे तल्' । समूहो नभो यस्या सा समृद्धनया । कुम्भिकाया तु समृत् सत्तिकोपेत्तं धन यस्या तथा समृद्धनया ॥

यहां की प्रजा सिंहल द्वीप की तरह अ+कर+भया (करके भय से मुक्त) है । बहुत देने वाली उदार जनता की तरह बहु+दया (उद्भूत दया से युक्त) है । कृपण लोगो द्वारा पृथ्वी में गाढ़ कर रखी जाने वाली मिट्टी से युक्त और धन से भरी हुई कुम्भिका की तरह समृद्ध + नया (न्यायसम्पन्न) है ।

[प्रजा अकरभया है । उसे कर का भय नहीं है । राजा की ओर से कर की छूट दे दी गयी है । सिंहल द्वीप में करभ (हावी) नहीं होते हैं । जहां करभ नहीं हो वहां की भूमि अकरभा कहलाती है । अकरभा शब्द के तृतीया या एक वचन अकरभया है । बहुदया—प्रजा बहुत दया युक्त है । बह्वी दया यस्या अर्थात् बहुदया प्रजा । बहुत देने वाली जनता बहुदा कहलाती है । बहुदा शब्द की तृतीया या एक वचन बहुदया है ।

समृद्धनया—प्रजा समृद्ध (सम्पन्न) नय (नीति) वाली है । मिट्टी में गड़ी हुई कृपण की धनभरी कुम्भिका भी समृद्धना है । मृत् (मिट्टी) से सहित पदार्थ समृद्ध है । समृद्ध धन है जिसमें वह है समृद्धना । समृद्धना शब्द की तृतीया या एक वचन है समृद्धनया । कृपण लोग अपने धन को मिट्टी के नीचे घड़े में बन्द कर रखते हैं । इस अनुच्छेद में उपमान कोटि के शब्द प्रथमान्त हैं । शब्दों का आहूति-साम्य ही साधारण धर्म है जैसे सिंहल द्वीप की भूमि से भी अकरभया इस आमुषुकीं का सम्बन्ध है और प्रजा से भी । समृद्धनया और बहुदया की भी यही स्थिति है ।]

इह समकरन्दानि कमलवनानि राजराजन्यचक्र च, इह यहु-
धामानि नगराणि लोकहृदयं च, इह सारम्भाणि कृपाणकुलानि दश-
रूपकप्रेक्षणं च, इह यहुकृपाणि जनमनांसि प्रजापालयल च इह मदी-
यिप्राणि ग्रामपुरपत्तनानि मेघगोष्ठं च ॥

इति ॥ सह सकरन्देन वनानि । राजन्यचक्रं तु सम करो राजांशो यस्य । तथा दानमस्यास्तीति दानि । इह नेति ॥ यद्वाणि धामानि गृहाणि येषु । हृदयं च यहुधा अनेकधा मानोऽस्यास्तीति मानि । इह र्हेन ॥ सह भारम्भरूपमै कुलानि । प्रेक्षणकं तु सारमुत्कृष्टम् । तथा भागो रूपकविशेष सोऽस्यास्तीति भाणि । यदाह धनिक 'आणस्तु भूतचरित कृतं स्वेन परेण च । 'यन्मोपवर्णयेदेको निपुणः पण्डितो विद' । इह नेति ॥ यद्वा कृपा येषु तानि । बलं च यहु । तथा कृपाणः सारोऽस्यास्तीति । इह नेति ॥ महान्तो विप्रा येषु । गोष्ठं तु महान्तोऽवयो मेघास्ते पृथ प्राणिनो बलवन्तो यत्र ॥

यहां कमलवन परागपूर्ण है। सामन्त राजाआ का वर्ष समान कर (माद्युजारी) लगाता है और दान देता है। नगर बहुत भवनों से युक्त है और लोगों का हृदय बहुधा मानी है। तत्वारों देनेवा तैयार रहती हैं। नाटक प्रकरण आदि का मण्डल दशव्यक्त दर्शन उत्कृष्ट भाग नामक रूपक से युक्त है। प्रजा की रक्षा करने वाली सेना बहुदृष्टापो से युक्त है और जनता के मन से कृपा भरी है। ग्राम, नगर और राजधानियां महाबाह्यापो से युक्त हैं और मेघ-गोष्ठ (भेड़ों के रहने वाले स्थान) बड़े-बड़े वल्बान् भेड़ों से युक्त हैं।

[समकरन्दानि-कमलवनानि के साथ तो इस का 'परागपूर्ण या मकरन्द सहित' अर्थ है। राजराज्य पक्ष में यहाँ दो पद हो जाते हैं। समकरम् और दानि। राजसमूह अपनी-अपनी प्रजा पर समान ही कर लगाता है। ऐसा नहीं कि कोई क्रूर राजा अपनी सुख-सुविधा के लिये प्रजा पर अधिक कर लगा देता हो। समानः करः यत्नं तन् समानकरम् राजराज्यम्।

दानि—यह भी राजराज्य का विशेष है। राजसमूह दान देने वाला है इस लिये उसे दानि कहा गया है। पुंलिङ्गरूप तो इसका दानी होगा। किन्तु नपुंसकलिङ्गान्त राज्य शब्द का विशेष होने के कारण दानि हो गया। दानिन् शब्द का नपुंसक लिङ्ग प्रथमा एकवचन है।

बहुमानानि—बहुत है धाम (भवन) जिस नगर में उन्हें बहुमानानि मगरानि कहा गया है।

लोकहृदय पक्ष में बहुधा और मानि पृथक्-पृथक् पद हैं। लोगों का हृदय बहुधा मनस्वी है। मानिन् शब्द की नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा का एक-वचन है।

सारम्भानि—कृपाण-कृत पक्ष में यह पद नपुंसक, प्रथमा का बहुवचन है। कृपाणसमूह सदा सारम्भ (सफल या तैयार) रहता है। दशरूपक प्रेक्षा-पक्ष में सारम् और भानि पृथक्-पृथक् पद हैं। रूपक के दश भेद होते हैं—नाटक, प्रकरण, भाग, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अट्ट और ईहामृग। इसी क्रिये इन दशरूपक कहा जाता है। सारम् (उत्कृष्ट) भानि (भाग नामक रूपक से युक्त) दशरूपक दर्शन है। सोन भाग नामक रूपक को बहुत अधिक स्तम्भ करते हैं। प्रादिन् शब्द का न० प्र० एक-वचन है।

बहुदृष्टानि—जब यह जनमनासि का विशेषण है तब तो बहुदृष्ट शब्द का नपुंसकलिङ्गान्त प्रथमा बहुवचन है। जनसामान्य के मन में बहुत कृपा है। जब यह प्रजापालकम् का विशेषण बनता है तो बहुदृष्टानि शब्द का

मनुष्यकलिंगात् प्रथमा एकवचन है । प्रजा की रक्षा करने वाली सेना के पास पर्याप्त कृपाण हैं । उस समय नगरी में पहरा देने वाली पृथिवी तलवार लेकर पहरा देती थी ।

महाप्राणि—बाघ, नगर और बरतन महाबाह्मणों से युक्त है । इस पक्ष में न० प्र० बहुवचन है । बाह्मण शब्द के पूर्व महत् शब्द का प्रयोग बहुत पहले कल्याण माना जाया था । बाघ में बल कर इसके अर्थ की अवगति हो गयी । महाबाह्मण का अनुत्तम बाह्मण अर्थ हो गया । मेघनोष्ठ पक्ष में मह शब्द न० प्र० एकवचन है । महा + अवि + प्राणि (बड़े-बड़े भेद रूप प्राणी जिसमें रहते) हैं, भेदबाला में बड़े बड़े भेद वाले गये हैं ।]

इयं च भगवतीशोच्य पूर्वोत्तराफल्गुनीराशियानुपयुक्ता प्राक्षणा-
प्रहारभूमिः ॥

इयं चेति ॥ पूर्वोत्तराफल्गुनीराश्याः चानुपयुक्तौ नक्षत्रौ च भगवती । तथा शिवः
भगवती । तथा पूर्वोत्तराफल्गुनीराश्याः चानुपयुक्तौ नक्षत्रौ च भगवती । तथा शिवः
भगवती । तथा पूर्वोत्तराफल्गुनीराश्याः चानुपयुक्तौ नक्षत्रौ च भगवती । तथा शिवः

राजा द्वारा बाह्मणों के जिये दी गयी यह भूमि आकाश मार्ग की तरह पूर्व और उत्तर में अपर्यु (पर्याप्त) जल से भरी है । शिव (कल्याणकारिणी) है । सूर्य (मन्त्रस्तम्भो) से युक्त है, आकाशघोषी पूर्वा, उत्तरी, फल्गुनी नक्षत्रों (नेत्र, हृष आदि) राशियों और वायु के उपयोग में लायी जाती है । [पूर्वोत्तरा फल्गुनी राशिबाधुपयुक्तात्वरूप साधारण धर्म आकाशघोषी और अपरभूमि दोनों में है ।]

इत्यर्थ—

आकृष्टता शिखरिसरशास्त्राममध्योऽथकूटा-
नन्योन्यांसप्रविद्धितभुजा संगता कौतुकेन ।
मेशावेशादचिच्छदशो योपित पामराणां
पश्यन्त्यस्त्यां निभृततनयो छेद्यलीलां चरन्ति ॥ ६७ ॥

आकृष्टता ॥ शिखरी निरि । पूरा अवशोकाश प्रेषायामचलोत्तरे आनेस
आमरा । पामरा प्राकृतपना ॥ ६७ ॥

इधर—

गाव के बीच पर्वत सहस्र ऊँचे स्थानों पर चढ़कर आसनों की लिये एक दूसरे के कंधे पर हाथ रखकर कोनूह से झट्टी होकर, देखने की उत्पत्ति उत्पत्ति से निरिधेय दृष्टि से तुम्ह देपनी हुई निश्चय शरीर होकर बिना बना रही हैं ॥ ६७ ॥

नि चान्यन्—

नृप चलसि यथा यथा त्वमस्मिन्नपि वदन्तानि तथा तथा चलन्ति ।
तरलितनयनानि श्यामरीणां पथनाथनर्तितनपङ्कजोपमानि ॥ ६८ ॥

और दूसरी बात यह कि—जैसे जैसे आप इस स्थान की ओर बढ़ते हैं
 जैसे जैसे हवा में कम्बिन कमर बहुत चबलने वाले इन छिपों के मुख
 भी बढ़ते हैं ॥ ६३ ॥

{ राग ज्यों गया उनकी दृष्टि के मनीष राता है यों यों उनकी स्वयं-
राज विशेषताओं के सम्बन्ध में कुछ कहनी मुमकिन, चित्र बनायी सीन्दर्य विशेष
का बीजा पत्थरी हुई गान्धर्वधुआ के नेत्र और मुख क्रियाशील हैं ॥ ६८ ॥ }

अपि च—

उक्तम्रादलितान्शुकेषु गन्नादित्यन्तमुच्छ्वासिषु
 प्रोत्तुहन्मनमण्डलेषु विलुप्तगुञ्जावलीक्षामसु ।
 नासां श्वेदिषु दृश्यते मृगदशां मंशान्तदिन्दो भवा-
 नादिलिखन्निव गोपिकाः हनयन्प्राकाम्यरूपो हरिः ॥ ६९ ॥

इष्टादेर् ॥ अष्टाशुकार्यं स्वेष्टितं च स्तनमन्त्रेण निरावर्णवेन नृप-
प्रतिनिष्ठस्य सकर्मणो हेतुः । प्राकान्य महापिद्विबिधेय । प्राकान्येण रूपानि
प्राकान्यरूपानि । कृत्वाणि कृत्वाणि प्राकान्यरूपानि देव ॥ १९ ॥

स्नान के कारण इनके वस्त्र नीचे गिर गये हैं, वेग के कारण जल्दी जल्दी स्वात्त ले रही हैं, हिलने हुए गुब्बे की भाँसाओं वाले स्वेद बिन्दु मुक्त इनके स्तनमण्डलों पर जापड़ा प्रतिबिम्ब पड़ गया है। (ऐसी स्थिति में) विविध रूप धारण कर शोषियों का जलकृन्तन करने हुए हरि की तरह जाप ला रहे हैं ॥ ६९ ॥

[मित्रनी गौनियां होती थीं हरि अपने शरीर धारा कर उनके साथ विनाश करते थे। सभी नारियों के स्नानस्थल पर राजा का प्रतिबिम्ब दिखामी पड़ता है अतः ऐसा लगता है कि नर भी हरि की तरह कई शरीर धारा कर प्रत्येक अङ्गना में मिल रहा है ॥ ६९ ॥

अहो नु सत्त्वाश्चर्यमिदमनासां तथाविधनेपध्यनिरपेक्षाप्नुन्नाद-
यति यूनो मनो युधर्तानां योवनर्थाः ॥

ॐ नमः ॥ तथाविधनुद्वारं हारुणद्वारादिभ्यः नेपथ्यम् ॥

ओह, यह निश्चय ही आश्चर्य की बात है कि उस तरह के विगिहवज्र और अङ्कुर की प्रज्ञा न करती हुई मुद्रियों की शोभा सुषकों का मन हर ले रही है ।

तथाहि—

माल्यं मूर्धनि कर्णिकारकलिकाः पिष्टातकं चन्दनं
मुक्तादाम गले च काचमणयो लाक्षामयाः कङ्कणाः ।
रागोऽङ्गेषु हरिद्रया नयनयोरत्युत्पणं कज्जलं
वेपोऽयं चिरसस्तथापि हृदयं ग्राम्या हरन्ति स्त्रियः ॥ ७० ॥

माश्वमिति ॥ हरिद्रा तण्डुलचूर्णम् । पिष्टातक विलेपनम् ॥ ७० ॥

वयो किः—

कर्णिकार की बलियाँ ही इनके सिर की माला हैं । घुणित किया हुआ उबटन ही इनका चन्दन है, गले में काच की मणियाँ ही मोती की माला हैं । आँखों में जयादा जयादा काजल है । इनका वेप तो मीरस है फिर भी ये (ग्राम्यवधुएँ) बित्त जो आकृष्ट कर ले रही हैं ॥ ७० ॥

इतश्च—

कन्दलितकन्दविशेषाः कर्कशकर्कटिका विशालकालिङ्गाः
कूष्माण्डमण्डितमण्डपाः सुवृत्तवृन्ताका सुदस्तितहस्तिर्गुणपुनर्नवाः
स्थूलमूलकाः पिण्डितपलाण्डयो वास्तूक्यास्तुभूतभूतलाः संजीवित-
जीवन्तिकाः सर्पपराजिकाराजिराजिताः सरित्सारिणीसारिवारिसेचन-
सुकुमारपल्लवितविविधशाफाः शाकवाटिकाः ॥

कन्दलितेति ॥ शाकवाटिका । इहस्तिमेति ॥ हस्त कन्दलोद्भेदः संज्ञातोऽस्येति ।
सारकादिवाचितम् । हरितकर्ण पुनर्नवा च वल्लीभेदौ । वास्तूकेन शाकविशेषेण
वस्तुभूतं मणनार्द्धं भूतलं वासु । राजिकानां राजसर्पपाणो राज्या राजिता ॥

इधर—

सरकारी की वाटिका में कन्द अङ्कुरित हुए हैं, कर्कश ककड़ी लगी हुई हैं । ये बड़े बड़े कलिङ्ग (Cucumber) के बीधे लगे हुए हैं । कूष्माण्ड की लता से यह मण्डप अलङ्कृत है । ये गोत्र भटे हैं । पुनर्नवा और एरण्ड अङ्कुरित हुए हैं । जब में मोटे मोटे गोल प्याज हैं । वधुआ के साग से यहाँ का भूतल महत्त्वपूर्ण हो गया है । जीवन्तिका (मिनोष) के बीधे हरे भरे हैं । सरसों की ब्यारिया सुन्दर लग रही हैं । नदी की नहरों से उत्तम सिंचाई के कारण विविध प्रकार की तरकारियाँ उगी हुई हैं ।

इतश्च—

विकसन्मुचुकुन्दानन्दिनो मकरन्दस्यन्दिसुन्दरसिन्धुघातः पामरी-
संकेतनिकेतकेतकीयनाः फाम्राघ्रातकाः कुडमलितकङ्कूलफलाः
कोरकितकुरण्टकाः पल्लवितवल्लीका फुल्लगमलिकोलासिनः सुजान-

जातयो विचित्रशतपत्रिकास्ताण्डवितपाण्डुपिण्डितागुरुकरवीर-
वीरयो दृश्यमानसर्वतुपुष्पाः पुष्पायुधावासा आरामा ॥

इधर—

ये बगीचे खिलते हुए मुचुकुन्द के कारण बानन्दप्रद हैं। यहाँ सुन्दर
सिन्दुवार का मकरन्द बू रहा है। यह पापर-सुवर्तियों का संकेत-स्थान,
केवडे का जंगल है। ये सुन्दर आभूषण हैं। कद्दोल्-फूल में कलिया बा गयी
हैं। कुरबक भी फुड्मलित हो गये हैं। सिलो हुई मत्तिका से उत्सास व्यक्त
हो रहा है। यहाँ सुन्दर जाति पुष्प हैं। विचित्र वस्त्रा इत हैं। पीने तथा
मुजोद चीयम जोर करवीर वृक्षों की लताएँ हिल रही हैं। सभी मनुष्यों के
पूज दिखाई पड़ते हैं। ये सद्यान कामदेव के निकेतन हैं।

इतश्च—

नानिदूरे दक्षिणदिशि दृशं निवेशयतु देवः ॥

और इधर—

थोड़ी दूर पर दक्षिण की ओर श्रीमान् अपनी दृष्टि लगावें।

• एतास्ता परिपक्वशालिकलमाः सुस्वादुदीर्घैश्चो
यप्रभ्रान्तहरिणस्थलचलत्पीनाङ्गोमण्डलाः ।
दृश्यन्ते पुरतः सरोरुहवनभ्राजिष्णुनीराशयाः
प्रान्तोन्नादिविचित्रपत्रिनिवयाः सस्यस्थलीभूमयः ॥ ७१ ॥

एता एति ॥ विचित्रपत्रिणो विविधपद्मिनः ॥ ७१ ॥

ये वे वन के छेत हैं जहाँ पके हुए शालिधान लगे हैं, मीठे-मीठे बड़े बड़े
इसुदृष्ट (ईश) हैं। पर्वतीय तराई की हरी घासों के बीच हृष्ट-मुष्ट गावों
का समूह बर रहा है। आगे कमल वनों से सुशोभित जलाशय दिखाई पड़
रहे हैं। किनारे (मेढों) पर विविध पद्मियों का समूह बर रहा है ॥ ७१ ॥

अपिच—

इश.सौन्दर्यविडिम्बि कुण्डिनमिदं सैषा विदर्भा नदी
सा चैयं वरदा स चायमनयो पुण्याम्भसोः सङ्गमः ।
अभ्येयोन्मदहंसहारिणिं तटं नेनास्थिति कल्प्यतां
यस्मिन्मत्तकरीन्द्रकुम्भकयणक्रीडासहा. पादपाः ॥ ७२ ॥

सौन्दर्य में स्वर्ग की विडम्बना करने वाला यह कुण्डिन नगर है। यही
वह वरदा नदी है और यही वह विदर्भा है। यही इन दोनों पवित्र जल
वाले नदियों का संगम है। मद्रकल हंसों से मनोहर इसी के तट पर सेना का

पड़ाव रक्खा जाय जहाँ के पेड़ मतवाले गजेन्द्रो के कुम्भस्थल की खुजलाहट रूप क्रीडा को सह सकने है ॥ ७२ ॥

एवमनेकधा दर्शनीयप्रदेशप्रकाशनव्याजेन चिनोदलीलां परत्तय-
यति पुष्कराक्षे, 'प्राप्ताः कुण्डनपुरम्' इत्युच्छ्वसितहृदयो निगधेश्वरः
परमपरितोषारपारितोषिकप्रदानपूर्वमिदमवादीत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार से दर्शनीय स्थलों की व्याख्या के बहाने पुष्कराक्ष के उत्तम मनोविनोद करने रहने पर "हम लोग कुण्डनपुर पहुँच गये ।" इस वक्ति से प्रसन्न होकर राजा नल बड़े सम्नोष के साथ पारितोषिक देता हुआ बोला—

‘भद्र, भवत सौकुमार्यमाधुर्यमधुविश्रमसंदर्भितभद्रदलेप-
गर्भाभिर्गोभिराक्षिप्तमनसामस्माकमविदितखेद इव, अदृष्टसपिपम-
विभाग इव, अनुत्पादितस्येदलय इव, अर्धगव्यूतिमात्रशेषोऽतिक्लान्त
क्रीडाविहारभूमिसमो महानपि मार्गः । समुचितश्चार्य सेनानिवेशस्य
सरित्सङ्गमोपकण्ठवनविभागः ॥

“कल्याणि ! आपकी कोमल, मधुर एवं मधुमय प्रसव-सहिन भङ्गदलेप-
गर्भित घाणी से हम लोगो का मन आइष्ट था । अतः इतने महान् मार्ग को
जो अब एक ही क्रीडा बाकी है, बिना थकान का अनुभव लिये, ऊँची नीची
जगहों के विभागों को बिना देखे, बिना पसीनो के कणों के उत्पन्न हुए,
पार कर गये । नदी संगम के समीपवर्ती वन का यह स्थान मैना के ठहरने
के लिये उपयुक्त है ।

तथा हि—

इह भवतु निरासः सैनिकानामिहापि
ध्रुमतरलतुरंगमासयोग्या तृणाली ।
इह हि कवल्यन्तः पल्लवान्वारणेन्द्रा
विदधतु तरुलण्डे गण्डरूपद्वयनानि ॥ ७३ ॥

अतः —

सैनिक लोग यहाँ विग्राम करें । यहाँ भी ध्रुम से थके हुए घोड़ों के
छाने लायक घास है । यहाँ वर पक्षियों को खाने हुए गजेन्द्र पेड़ों के तनों
में कपोलों की खुजलाहट मिटावें ॥ ७३ ॥

इतश्चार्यन्तमनोहरतयाम्माकमासनयोग्या. सरित्सङ्गमोत्सङ्गभूमयः ॥

इधर नदी-संगम के मध्यवर्ती स्थान अत्यन्त मनोहर होने के कारण
हम लोगो को बैठने योग्य है ।

तथा हि—

अवसृताभ्युत्तरद्वितसैकता निचुलमण्डपनृत्तशिखण्डिकाः ।

कुररसारसहंसनिवेपिताः पुलकयन्ति न कं पुलिनध्रिय ॥७४॥

वयोकि—

पानी के हट जाने के कारण तरङ्ग की बाहति वाली बाहुला की रेखायें बन गयी हैं । निचुलकुञ्चो में मयूर नाचते हैं । कुरर, सारस और हंसों से सेवित यह तट की शोभा किसीको रोमाञ्चित नहीं कर देती ॥ ७४ ॥

[पानी में जैसे ऊँची नीची लहर आती है । पानी हट जाने पर तरङ्गों की रेखायें कुछ तटमण्डप पर बिरकाल तक दिखायी पड़ती रहती हैं ॥७४॥]

इत्यभिधाय 'भद्र, यथाक्रममृताभ्योभ्यसम्याधकलहम्, अनुप-
द्रुततीर्थायतनम्, अलुण्डितासन्नोद्यानम्, अचिच्छन्नचैत्यद्रुमम्,
अचिच्छन्नक्रमलघनं निवेशय सेनाम्' इति सेनापतिमादिदेश ।

सोऽपि यथादिष्टमनुतिष्ठन्निद्रमवादीत् ॥

अ-ऽन्नचैत्यद्रुमेति ॥ चैपा ग्रामप्रदेशप्रसिद्धत्वा ॥

यह कह कर, 'भद्र, बिना एक दूसरे सपर्य से बलहृषिये, तिना तीर्थ-
गृहों में किसी तरह का उपद्रव किये, समीपवर्ती उद्यान को बिना दृष्टे, पत्त
स्पर्श के पेड़ों को बिना काटे तथा कमल वन को बिना हानि पहुँचाये सेना
को ठहराओ ।' यह सेनापति को आज्ञा दिया ।

'मञ्जत बलसमूहाः सर्वदूर्घास्यलानि

स्यविरशुःशिविशीर्यत्पक्षपिच्छच्छयीनि ।

उपनदि मृदुर्घावायुनाऽन्दोलितानां-

कुसुमितलतिकानामन्तरालेष्वमूनि ॥ ७५ ॥

मञ्जतेति ॥ यद्यपि पक्षिच्छयोरभिधानकृता न भेदः प्रत्यपादि तथापि महद्देवा-
न्तरम् । यन' पक्षमात्रेण पक्षती पुर । पिच्छच्छयोरन्तरालेष्वमूनि ॥ ७५ ॥

दह भी आज्ञानुसार कार्य करता हुआ बोला—

नदी के पास कोमल तरङ्गों की हवा से कम्पित, सिली हुई लताओं के
बीच, वृद्ध गुणों के सखे हुए पंखों के अंश की कान्ति सहस्र कान्ति वाले,
छटी हुई दूर्वानास में युक्त इस स्थान पर सैनिक वर्ग ठहरे ॥ ७५ ॥

अपि च—

स्मरविहरणवेदीं षट्पदापानशालां

तटमनु वनमालां सस्मया मास्म भाङ्क्षुः ।

कमलघनविद्यापनन्तरं यत्र तैस्तै-

मर्दनमदविनोदैरासते राजदंसाः ॥ ७६ ॥

रमरेति ॥ तटबन्निनि ॥ तट लक्ष्मीकृष्य । सस्मया. सगर्वा मन्तो भवन्तो घन-
मालो भा रम भाङ्घु । अन्यस्तकलं भङ्गनिषेधकारणम् । धासते इति बहु-
वचनान्तम् ॥ ७६ ॥

तट के पास की यह घनघेणी कामदेव की बिहरण-भूमि है । भ्रमरों की मधुमाता है । कमल घन में बिहार कर लेने के बाद राजहंस यहाँ काममद के विनोद के साथ ठहरते हैं । अहंकार के मारे आपलोग इसे नष्ट न करें ॥ ७६ ॥

अपि च—

सुरसदननिवासं सैनिका भास्म कुर्यन्-

सरिति मुनिकुटीनां भङ्गमुल्लुण्ठनं वा ।

इह निषधनृपाज्ञा तस्य यः क्वापि कोऽपि

फलममुपि तदखण्डे क्षण्डनं वा करोति' ॥ ७७ ॥

और—

जो कोई कहीं भी पक्कावट मिटाने वाले पेड़ों के तनों को काटता है उन सबके लिये निषधराज की यह आज्ञा है कि देवमन्दिरों में सैनिक निवास न करें और नदी तट पर बने हुए मुनि-कुटीरों को तोड़ने और लूटने का कार्य न करें ॥ ७७ ॥

[तम्बू बघैरह तानने के लिये लकड़ी की आवश्यकता होती है । इसी लिये सैनिक पेड़ों की लकड़ियों को काट रहे हैं । राजा सोचता है कि सैनिक मुनियों के कुटीरों को उड़ा कर वही से लकड़ी आदि सामान लेकर तम्बू न तानने लगे या शिविर बनाने के आलस्य से देवमन्दिरों में जाकर न ठहर जायें । सैनिक जहाँ ठहरते थे वहाँ के आस पास के श्रोतों को बहुत कष्ट देने थे । राजा इसी बाधका से उन्हें मना करता है । प्राचीन भारत में मन्दिर इतने विघाल आकार के होते थे कि उसमें बड़ी बड़ी सेनायें भी विधाम कर सकती थीं ॥ ७७ ॥]

एवममुशासति यत्नानि यद्वनि बहुधा बाह्वुके, तत्क्षणादुत्तमिदैः
प्रेहृत्पताकापटपटवधिराजितैः प्रयाणयोग्ययन्त्रचित्रशालागृदैः
सञ्चारिणि गन्धर्वनगर इव रमणीये, हरिततोरणैरुड्डीनशुकावलीमय
इव, गैरिकारक्तोष्णमितपटकुटीभिस्तत्पुल्लकिशुकमय इव, द्येतांशुक-
मण्डपैश्च ताण्डयितवृद्धपुण्डरीकखण्डमय इव, जाते सरित्सङ्गसङ्गिनि

शिविरसंनिवेशे, क्रमेणाद्यान्तसकलदिङ्मुखेषु निषवेखरागमनवार्ता-
निवेदनदूतेष्विव विदर्भराजधानीधामनिर्गतेषु बहलसैन्यधूलिपटलेषु,
रसनि विपक्षसितिपालकर्णपुटीकटुनि नयजलधरध्वनितगम्भीरे
तत्कालप्रद्वनशङ्खसद्व्यपपञ्चल्लरीश्रांङ्कते, स्वयंवरायातसमस्तराजन्य-
चक्रकर्णकर्तरीषु पथ्यमानासु सानन्दवन्दारुवन्दिवृन्दारकवृन्देनोच्चै-
र्नलनाममालासु, क्षणादेवोत्तमिमतशातकुम्भस्तम्भभवने मृदु
मसृणास्तरणभाजि जात्यवैद्यपर्यन्तपर्यङ्किकायां सुखतिरप्णे राजनि,
स्तुम्यते च परिजने, नातिदूरवर्तिनि कुण्डिने दण्डपाशिकस्योच्चै-
र्वागुदतिष्ठन् ॥

एवमिति ॥ अर्द्धार्धवत्तु बद्धि स्तुत्यर्थं ॥

इस तरह बाहुक (मेनापति) ने सैनिकों को बहुत प्रकार से अनुशासित
किया । नदी-संगम की भूमि पर शिविर बनाया गया । तत्काल खड़ी की
गयी कड़कजती हुई पताका के बल्ल-मल्लबो और अज्जम यग्ननिमित्त चित्रशाला-
गृहों के कारण वह गम्भर्जनार सहस्र सुन्दर लग रहा था । हरे तोरणों के
कारण उड़ती शुक-भक्ति से बना हुआ सा लगता था । गैरिक और लालवर्ण
की उठायी हुई कुटियों से सिला हुआ त्रिशुकमय प्रतीक होता था । दवेत
बन्धो में बनाये हुए मण्डपों से सिला हुआ विशाल कमल-वन सहस्र प्रतीक
होता था ।

क्रम से पर्याप्त सैनिकों के (पैर से सड़ा हुआ) धूलि समूह समस्त दिशाओं
में आक्रमण करता हुआ नय के आगमन की वार्ता की सूचना देने वाले दूतों
की तरह विदर्भ राजधानी के घरे में घुस गया । विपक्ष राजाओं की कर्ण-
कुटी में बहुत लगने वाली नवीन मेघ के गर्जन सदृश गम्भीर, तत्काल
बनाये गये शंख के साथ प्रमाण की सूचना देने वाली झाल की झनकार बज
खड़ी । स्वयम्बर में आये हुए समस्त राजसमूह के काना न बाहु की तरह
प्रतीक होने वाली नल की नाममाला की स्तुति करने वाले बन्धियों का मुख्य
बर्ण पड़ने लगा । शीघ्र ही उठाये गये स्वर्ण-निमित्त सम्भो वाले भवन में कोमल
एव स्निग्ध विस्तर से युक्त, उत्तम वैदूर्य मणि से सज्जित पाटियों वाले पन्ना
पर राजा के बैठ जाने पर, परिजनों के सुस्मिर हो जाने पर कुण्डिन नगर के
घोंसी ही दूर पर दण्डपाशिक की उच्च ध्वनि उठी—

‘सिच्यन्तां राजनार्गाः कलशमुखगलच्चन्दनाम्बुच्छटामि
न्तम्भाः प्रेक्ष्यत्पनाफाः कुसुमपरिकपस्तोरणाङ्काः क्रियन्ताम् ।
स्थाप्यन्ता पूर्णकुम्भाः प्रतिनगरगृहं प्राङ्गणे धाम्यमिधैः
सिद्धार्थः स्वस्तिकालीलिखत नरपतिर्नैपथः प्राप्त एप॥३८॥

“कलश के मुख से गिरते हुए चन्दन जल की धारा से राजमार्ग सींचे जायें । लम्बो पर झण्डे फहरा दिये जाय । प्रत्येक घर के आँगन में धान्यो (जव, यशत, आदि सप्त धान्यो) से युक्त सफेद सरसो से भरे हुए बलश रखे जाय । स्वस्तिक चिह्न लिखे जाय क्योंकि निषध देश के सम्राट् (महाराज नल) आ गये ॥ ७८ ॥

अपिच—

सत्काञ्च्यश्चन्द्रनाट्टं स्तनकलशयुगामुक्तमुक्तावलीकाः
पाप्राण्यादाय दूर्यादलदधिकुसुमोन्मिथसिद्धार्थमाजि ।
सोचंसा हंसपिच्छच्छिविसनभृतो यतिताश्चर्यचर्या
नार्यो निर्यान्तु तूर्यभ्यनिलयललितं गीतमुच्चारयन्त्यः ॥ ७९ ॥

मन्वाञ्च्येति ॥ आयुक्त योजितम् ॥ ७९ ॥

करधनी पहन कर, चन्दन से आर्द्र स्तन-कलश-युगल पर मुक्ता की मालाये लटका कर, दूर्यादल, दही और पुष्प से मिश्रित सफेद सरसो से युक्त पानी को स्नेहर, भूपणो से मण्डित होकर, हंस पक्ष की काम्तिपदृश वस्त्रों को पहन कर, आश्चर्यजनक सजावट के साथ बाल-ध्वनि और लय से ललित गीतों को गाती हुई नारियाँ निकलें ॥ ७९ ॥

अपिच—

अपि मयत कृतार्थाः पौरनार्यश्चिरेण
मजतु निषधनायश्चभ्रुपां गोचरं वः ।
भ्रुमयमवतीर्णः स्वर्गलोकावनहो
हरचरणसरोजद्वन्द्वलब्धप्रसादः ॥ ८० ॥

इति श्रीश्रियिक्रमभट्टविरचितायां दमयन्तीकथायां हरचरण-
सरोजाङ्गार्या पष्ठ उच्छ्वासः ॥ ६ ॥

इति विषमपदप्रकाशमेत दमयन्तीया तनुते स्म चण्डपालः ।
शिशुमतिलनिकाविकानचैत्रं चतुरमतिस्फुटमिति चारुचित्रम् ॥ १ ॥
इति श्रीचण्डपालविरचिते दमयन्तीकथाविवरणे पष्ठ उच्छ्वास समाप्तः ॥

और—

पुराङ्गनाएँ कृपार्थ हो । निषध-मग्न्याट् (नल) आप लोगों की बाँखों के सामने चिरकाल तक रहें । निश्चित ही ये भगवान् शङ्कर के चरण कमल युगल का आशीर्वाद प्राप्त कर कामदेव का अवतार बनकर आये हैं ॥ ८० ॥

[भगवान् शंकर की प्रसन्नता के बिना कामदेव साग नहीं हो सकता, अनङ्ग ही रहेगा । नल शरीरधारी कामदेव का अवतार है । नल रूप में कामदेव तब अवतीर्ण हुआ है तब उसने भगवान् शङ्कर का आशीर्वाद प्राप्त कर लिया है । शरीरधारी काम की उपपत्ति के लिये शिव जी के आशीर्वाद की योजना अत्यन्त मय्य है ॥ ८० ॥]

षष्ठ उच्छ्वास समाप्त ।



सप्तम उच्छ्वासः

एवमविश्रान्तमतितारस्वरेण पुरः पौरपुरंध्रिमण्डलान्युदण्डयतो
दण्डपाशिकस्य कलकलमारुर्णयत्यास्थानस्थिते राजनि, प्रविश्य
प्रणामप्रेक्षोलितगलङ्गमदलाचलम्बितजाम्बूनदस्थूलशृङ्खलास्फालित-
वक्षःस्थलः स्थधिरचयाः सधेयः प्रतीहारः सधिनयमुक्तवान् ॥ -

एवमिति ॥ उदण्डयतो गात्रमुत्साहयतः । दण्डपाशिकस्तलार । दण्डपाशोऽस्य-
इति । 'अत इतिटनौ' इति टन् । जाम्बूनदस्य वनकस्य स्थूला शृङ्खला
आभरणविशेषः ॥

इस तरह निरन्तर उच्च स्वर से मगर के बपूमण्डल को जोर में उत्साहित
करते हुए दण्डपाशिक की कलकल ध्वनि को राजा सुन रहा था, इतने ही में
एक अपने पद के अनुकूल वेध धारण किया हुआ बुद्ध प्रतीहार जिसके प्रणाम
के लिये आगे बढ़े हुए प्रीवाङ्कुर से लटकती हुई सोने की सिकरी वक्ष स्थल
से टकरा रही थी, विनम्रपूर्वक बोला—

वेध, धृतमाङ्गस्यकल्पवेपा पुष्पफलाक्षतपूर्णस्वर्णपात्रपाणयः
पुरःस्थिता अधीयाना ग्राहणाः कुण्डिनपुरपौराः पुरंघ्रयश्च देयदर्श-
नार्थितया द्वारि सेवावसरमनुपालयन्ति ॥

देवेति ॥ एतो माङ्गस्ये कल्पो दक्षो वेपो मण्डन वै ॥

"धीमन् , मङ्गलवेध धारण किये हुए, हाथों में फूल, फल और अक्षत ॥
पूर्ण स्वर्णपात्रों को लिये हुए, सामने की ओर स्थित (मङ्गलगान) पढ़ने हुए
ब्राह्मण, कुण्डिनपुर के नागरिक और नगर वधुएँ अपने दायन के निमित्त द्वार
पर सेवा की प्रतीक्षा कर रही हैं ।

कथयन्ति चैयमदूरे विदर्भभ्वरोऽपि देवं द्रष्टुमायाति ॥

लोग कहते हैं कि विदर्भ-पति भी आप को देखने के लिये समीप में ही आ
रहे हैं ।

लग्न इव ध्रुवते च शङ्खस्वनविदर्भितो विदर्भोपरुण्डे पटङ्गन्दि-
चुन्दकोल्लाहल ॥

विदर्भ के पास शङ्ख ध्वनि से युक्त वन्दीजन समूह कोणहल (एक दूसरे
से मिश्रित सा) सुनायी पड़ रहा है ।

‘तदादिशतु देवो यथाऋर्त्तव्यम्’ इत्यभिधाय स्थिते तस्मिन्
‘भद्रभूते, त्वरितं प्रवेशय विदर्भाधिपस्य परिजनं स्वयमपि तद्व्य-
पथमनुसर’ इति नलो दौवारिकमादिदेश ॥

अने ॥ भद्रभूतिरिति द्वास्थ्यस्य नाम । तस्य चामन्त्रणम् ॥

अनः कर्तव्यमार्ग को धीमान् आदिष्ट करें ।” यह कह कर उसने एक
जाने पर, ‘भद्रभूति, विदर्भपति के परिजनों को शीघ्र लाओ और स्वयं भी
उनके आगे रास्ते में जा कर अगवानों करो ।’ नल ने दौवारिक को यह
आदेश दिया ।

सोऽपि-‘यथाम्नापयति देवः’ इत्यभिधाय यथादिष्टमकरोत् ॥

अनन्तरमनतिचिपदितस्ततो दोधूयमानचादवामरकलापपवन
नर्तितकर्णकुवलयः वल्गुवल्गनोल्ललनलङ्गनलास्यलोल्लापदै पयि प्लव-
मानमिथ तरलतुंगमधिरुदः कनककलशशिखरैरेकदेशस्फुरित-
विद्युत्स्त्वकैरकाण्डाहम्बरितमेमण्डलैरिव मायूरानपत्रक्षण्डैरान्छा-
दितमगनान्नरालः, शम्भोदहनकिष्काङ्कितकठोरकण्डोपकण्डै कटिन-
प्रसोष्ठलुडल्लोहबलयैरुर्ध्वदोष्टटजूटकैरलककपालमौलिमिरधौदक-
परिधानैर्निशानकुन्तपाणिभिरभिनस्त्यरितपातिभिः पत्तिमिरनुगम्यमानः,
मनाङ्गुलुदुग्धध्वनिकरभ्यते कोमलकाम्यतालशालिनि वांशिक-
वाद्यमानग्रंथानिन्वने दत्तकर्णः, कर्णिकारमौलिपङ्क्तोऽङ्गपस्य नातिदूरेऽप्य-
दृश्यत भीमभूमिपालः ॥

अनन्तरमिति ॥ वल्गु यद्भवर्णं विक्रममागता । वल्लभमुत्सवैर्विलमनम् ।
लट्घर्षं फाला । हार्षं नृपभूमिः । तेषु लीलायै प्लवमानं तरन्वमिव । आमन-
स्यैर्यथानुद्धानमुत्सवात् । मायूरानपत्रमूहानां मेघमण्डलानि, मौषण्कलशानां
विद्युत्तप उपमानम् ॥ कटिनेति ॥ राजपुत्रा हि शकोष्ठे मणिकूर्परान्तरे दादृष्य
लोहवलयानि धारयन्ति । जूटकः केशवन्धविशेषः । अलङ्काः कुटिलाः करालाः
सद्यलवाङ्मौल्यः सयनकेशा येनाम् । अर्धे ऊरु प्रमाणमस्य तद्वर्धोदकम् ।
यैव वाममा नटीप्रमृति अर्धोदपर्यन्तमाच्छ्रयने ॥

यह भी, “धीमान् को जैसी आज्ञा” यह कह कर आज्ञानुसार कार्य किया ।

इसके बाद शीघ्र ही आगन के घोड़ी दूर पर कर्णिकार सह्य शरीर
वाले महाराज भीम दिखायी पड़े । इधर उधर पुनः पुनः धुमाये जान हुए
चवरमण्डल की हवा में उनके बानों में लगे हुए कमल नाच उठे थे । एक
चंचल अश्व पर जो अपने अत्यधिक उमग, उछाल एवं छत्रांगों के कारण पिरकते
हुए पैरों से आकाश में तैरता हुआ सा प्रतीत होता था, बैठने थे । स्वर्ण-

कलश के शिखरो के भाग से चमकते हुए विभुद्ध गुच्छो से युक्त असमय म ही मडराते हुए मेघ मण्डक की तरह मयूर-पद्म-निर्मित छातो से आकाश का एक भाग ढक गया था । चारो तरफ से उमड़ते हुए सैनिक जिनके कठोर वन्दो पर शस्त्रों के ढोने के चिह्न बन गये थे, कठोर कलाइयो में लोहे के कड़ुण लगे थे, विशाल जटाजूटों की ऊपर की ओर उठाकर बांधे हुए थे, बालों के कारण उनके शिर बड़े भयङ्कर प्रतीत होने थे, आधे ऊरुभाग तक ही वस्त्र पहने हुए थे, हाथ में तीक्ष्ण भाले लिये हुए थे, खूब जल्दी-जल्दी चल रहे थे, उनका अनुगमन कर रहे थे । मन्द तथा कोमल मृदङ्गध्वनि से मिश्रित झाल के मधुर ताल में मुसोभित बशीवारक द्वारा बजाये जा रहे वैष्णु की ध्वनि में कान लगाये थे ।

ततश्च चामरग्राहिणीहस्नपल्लवमचलम्भमान सहेलमुत्थाय
प्रथममुख्यतेन संभ्रमयशयतिगतध्वस्तस्थन्नाश्लम्बितकुसुमदाम्ना
विसर्पिकर्पूरकुङ्कुममिलन्मृगमशामोदेन त्वरितसंपातपतत्पटयास
पांसुना सामन्तचक्रेण परिकरित कतिपयपदानि निपथेभ्यरन्तदभि-
मुखमगात् ॥

ततश्चेति ॥ पटयामो घास-सुरभीकरणवृष्यम् । परिकरितः परिवारितः ॥

तदन्तर चबरधारिणी सेविना के कर-पल्लव के सहारे उठ कर निपथरति अपने सामन्त राजाओं, जो उससे भी पहले (अपने आसनो से) उठ खड़े हुए थे, शीघ्रता से उठने के कारण जिनके वक्ष स्थल पर लटकती हुई मालायें हिल रही थी, कपूर, और कुङ्कुम से मिश्रित कस्तूरी की बन्ध जिनके शरीर से फैल रही थी, जल्दी जल्दी चलने के कारण पावडर की धूलि झर रही थी, के साथ उनके सम्मुख कुछ कदम आगे बढ़ा ।

सोऽपि सत्परोपसृतस्य ताम्बूलप्रसेविकायाद्दिनः पुरुषस्य
स्कन्धमचष्टम्य दूरादेव तुरंगवृष्टादवातरत् ॥

सोऽपीति ॥ चर्मनिर्मित पर्णपूगाद्यास्पदं प्रसेविका स्थितेति श्रूयति ॥

वह भी शीघ्रतापूर्वक दौड़ कर आये हुए ताम्बूलपात्र ले चढ़ने वाले सेवक के कंधे पर हाथ देकर दूर ही से (इन्हें देखकर) घोड़े की पीठ से उतर गये ।

एवमन्योन्यनयनसंपातस्मिताननौ समकालमीपन्नमितमौलि-
मण्डलौ समसमयप्रसारितभुजौ सरमसमाश्लेषवशविदीर्यमाणद्वारा-
वलीगलन्मुक्ताफलच्छलेनाङ्गेऽप्रमान्तमिय प्रथमप्रेमामृतनिष्पन्दिविन्दु-
विसरमुद्रिरन्तावग्न्योन्यमाशिक्षितपनु ॥

एक दूसरे पर एक दूसरे की दृष्टि पड़ी। मुँह पर मुस्कराहट आयी। एक ही समय दोनों के सिर झुके। एक ही समय हाथों को फैलाकर तीव्रता-पूर्वक आतिङ्गन करने के कारण भग्न हुई हारपतियों के गिरते हुए मुक्तापनों व बहाने अगों में न अटते हुए प्रगाढ़ स्नेह सुधा के चून हुए बिन्दुओं को प्रवाहित करते हुए एक दूसरे का आतिङ्गन किये।

[रत्न की माला दोनों ही राजे पहने हुए थे। मिलन के समय एक दूसरे के वक्ष स्थल की रगड़ से मालाया की लठियाँ भग्न हो गयीं। उनकी एक एक मुक्ताये विसर गयीं। वे विसरी हुई अलग-अलग मुक्तायें ऐसी लग रही थी मानो स्नेह सुधा के प्रवाह से जब दोनों के हृदय भर गये तो मुक्तान्प से बाहर उनकी वृद्धें छिटक रही थीं।]

तथापि च व्यक्तिकरे, प्रपद्ये प्रेक्षकाणां दक्षिणोत्तरदिग्पालयोधर्मं राजघनदयोरिव समागमे महाप्रयनोत्सवो हर्षोत्कर्षकलकलञ्च ॥

उसी समय दक्षिण और उत्तर दिशा के स्वामी धर्मराज और कुत्रर के मिलन की तरह (दक्षिण दिशा के सम्राट् भीम और उत्तर के चक्रवर्ती नल के मिलन में) दर्शकों के नेत्रों को बड़ा आनन्द हुआ और आनन्द के मारे कलकल ध्वनि गूँग उठी।

तदनु पुनः प्रथायितप्रतीहारोपनीतम्, अतिविचित्रत्रिभङ्गिभङ्गो-
त्कीर्णकर्णाटिकारूपरमणीयस्तम्भिकावष्टम्भम्, अज्जम्भमाणमाणिक्य-
मकरमुखमुक्तमोक्तिकसरविराजितम्, अपूर्वकर्मनिर्मितमव्यध्यालावली-
कीर्णमुखालङ्घितम्, उच्चकाञ्चनसिंहासनद्वितयसुभौ भेजतु ॥

पदग्विति ॥ सिंहासनादौ शतम्भनस्तम्भिकासु पश्चिमभागे त्रिभङ्गिभङ्गेन स्थान-
कविरोपै चित्रेण स्त्रीरूपमुत्कीर्यते। मौक्तिकसरो मुक्ताहारः। म्याल सिंहादिद्विज-
सायम्। तदावली काञ्चनादिनिर्मिता शोभायै क्रियते ॥

इसके बाद दौड़कर प्रतीहार द्वारा लाये गये दो ऊँचे स्वर्ण निर्मित सिंहासना पर बैठ गये। उन (सिंहासनो) के उत्तरिभागीय स्तम्भा पर कर्णाटक-सुन्दरिया के आकर्षक एवं अत्यन्त विचित्र त्रिभङ्गी चित्र खुदे हुए थे। जेनाई लेव हुए मकर के मुख से लटकती हुई मोती की माला (के चित्र) से मण्डित थे। अग्रभाग में अपूर्व कलाकारिता के साथ बनायी गयी सुन्दर हिंसक जन्तुओं की सेपी से अलङ्कृत था।

अन्योन्यकुशलप्रदानसुखालापव्यतिकरविरामे च विदर्भेश्वरो निषयनाथमवादीत् ॥

तदनन्तर एक दूसरे के कुशल-प्रश्नविषयक सुखमय शार्तलाप से विराम ले लेने पर विदर्भराज नल से बोले ।

‘अद्यास्मत्कुलसंततिं सुरुतिनी धन्याद्य दिग्दक्षिणा
पुण्यप्राप्यसमागमातिथिजना जाता कृतार्था धिय ।
श्लाघ्यं जन्म च जीवितं च निजमप्यद्यैव मन्यामहे
यथास्मत्सुरुतोदयेन यद्गुणा यूयं गृहानागता ॥ १ ॥

अवेति ॥ पुण्ये प्राप्य समागमो येषां तथोक्ता अतिथिजना यासु । धियां ह्येन
देव फलम् । यदतिथयः सक्रियन्ते ॥ १ ॥

आज हमारे बस की प्रज्ञा पुण्य पूर्ण हो गयी है, दक्षिण दिशा धन्य हो गयी है, पुण्य से प्राप्त होने वाले अतिथि जन का समागम प्राप्त कर राजलक्ष्मी वृत्तकृत्य हो गयी है, हम भी अपने जन्म और जीवन की आज ही प्रशंसनीय समझते हैं जब हमारे महान् पुण्योदय से आप लोग हमारे पर पधारे हैं ॥ १ ॥

इत प्रभृति च—

आ ब्रह्माद्यधिधिस्तरत्कविगिरो शीर्षाणकर्णातिथे
कीर्तेः पूर्णकलेन्दुसुन्दररचो यास्याम्यह पात्रताम् ।
किं चाग्न्यज्जनितफलमोऽप्ययमभूवाकण्ठवृत्तस्य मे
युष्मत्सङ्गसुखामृतेन सफलः संसारचक्रभ्रमः ॥ २ ॥

आश्रयति ॥ कविषण्णाया स्वर्गताया इन्दुशुभाया कीर्तेः पात्रमहम् ॥ १ ॥

आज से—

ब्रह्मलोक तक फैलने वाली कविवाणी का विषय, देवताओं के कानों के अतिथि, पूर्णचन्द्र की सुन्दर कान्ति सहस्र कीर्ति का पात्र बन जाऊँगा दुख देने वाला भी यह संसार चक्र का मेरा भ्रमण आप लोग के मिलन-रूप सुखामृत से मुझे पूर्णतः तृप्त कर सकल हो गया ॥ २ ॥

[मैं आज ऐसी कीर्ति का पात्र बन गया जो ब्रह्मलोक तक फैली रहेगी । कवि लोग उसकी व्यापकता का वर्णन मर्यादालोक तक ही न कर ब्रह्मलोक तक करेंगे । “हमारी कीर्ति ब्रह्मलोक तक फैली है” इस बात को कविलोग सादर स्वीकार करेंगे । देवताओं के कान में हमारी कीर्ति अतिथि की तरह सम्मानित होगी । यह उम्मीद ही शुभ एवं तृप्ति कर होगी जितनी चन्द्रिका । संसार में दुख तो होता है किन्तु अमृत जैसा कोई रसायन मिल जाय तो दुख नष्ट हो जाता है । आप लोगो ॥ अतिथिरूप में मिलन एक तरह का अमृत है । इसे पाकर संसार भ्रमणमूलक बलेश सफल हो गया । यदि इस संसार में नहीं आया होता तो आप लोगो जैसे अतिथि कैसे उपलब्ध होते ॥ २ ॥]

इत्यभिवाय प्रथमं प्रणयस्य, प्रगुणं गुणवान्, अनुकूलं कुलक्रमस्य,
योग्यं भाग्योदयस्य, सदृशं देशकालस्य, समानं मानोत्सवपतन्ते,
सरूपं रूपसंपदाम्, उच्यतेमाचारस्यानियेतिवियेयमगर्भः कुर्वन्, दुर्वा-
र्यैरिवारणान्वारणान्, वायुवेगतुरगान्, समुल्लसितांगुमञ्जरी-
जान्दन्निनेन्द्रयापचक्रभ्रममप्रमाणं माणिन्धम्, एकत्र प्रथिततारा-
प्रकटातुकारान्दारात्. उज्ज्वलभांसि वासांसि सल्लाप्याः पण्यनारीश्च
स्ययमुपढोक्त्यांचकार ॥

इत्यभिवादेति ॥ (अनिये) तस्य राजोऽप्यर्चं सञ्ज्ञानियेयं कुर्वन्मीममूपो वार-
णादिकमुपढोक्त्यांचकार । वारणा नियेयका गम्याश्च ॥

यह कह कर प्रेम के अनुकूल, गुणों के अनुगुण, वरपरम्परा के योग्य,
भाग्योदय के उपगुण, देश-काल सदृश, सम्मान तथा उत्सव परम्परा के समान,
रूपवन्धुति के सद्गुण और आचार-परम्परा के उचित गर्वरहित होकर
अनिये सत्कार कर ब्रह्म धनुओं को निवारित कर देने वाले हाथियों, वायु के
वेग को भी नीचा दिखा देनेवाले घोड़ों, बिज्जुरित हो रही किरणमञ्जरी-
सदृह से इन्द्रधनुष की भ्रान्ति उत्पन्न कर देनेवाली अनुकूल मणिराशि, एक
जाहू पिटोरे पर तारों का यनुकरार करने वाले हार, उज्ज्वल कान्ति
वाले वस्त्र और सुन्दरी वारविज्ञातिनिगों को स्वयम् उपहार में दिये ।

प्रथमसमागमेऽप्यप्रमेयप्रेमादभरमसोत्थासितहृदयः पुनः सौत्कर्ष-
हृषोद्भेदगद्गदाभरमिदमवादीत्—

प्रथम मित्रन मे भी अनुकूल प्रेम-प्रार्थ से प्रसन्न होकर अविद्यमान
मरी बाणी में बोलें—

वासेतोः कपिकीर्तनाद्गृहीतद्वाराश्च विन्ध्यावधे-

रा पूर्वापरसिन्धुसोमविषयस्त्वनुद्रया मुद्रयताम् ।

अद्यास्मद्गृहमागतस्य भवतो ज्ञाना विज्ञेया धर्मं

स्यान्तार क्रियतां किमन्यदपरं प्राप्तेषु चार्थेषु च ॥ ३ ॥

अनेतरेति ॥ कपिकीर्तनाद्वाति शिवरानि यस्येति संशुविशेषणम् । सेतो-
कर्तृभिः कृतं वा ॥ ३ ॥

कपियों की कीर्ति को प्रकट करने वाले शिखरों से युक्त (समुद्र के)
क्षेत्र में लेकर विन्ध्याचल के पास तक और पूर्व एवं पश्चिम के तट-प्रदेश
सुन्दरे शासन में शासित हों । आज हमारे घर आये हुए आपने हम सभी
बाताकारी बन गये । अधिक क्या कहें—मेरे शत्रुओं और अपों पर भी आप
अपना स्वामित्व स्वीकार करें ॥ ३ ॥

[मेनु का विशेषण कवि कीर्तनाङ्गुलिखर दिया गया है । भगवान् राम द्वारा बधवाया गया समुद्र का सेनुमन्थ कवियों (बन्दरों) की कीर्ति का प्रतीक है । नल और नील दो बन्दर थे । उन्हें बर मिला था कि यदि वे अपने हाथ से किसी पत्थर का छू देंगे तो वह पानी पर तैरने लगेगा । इन्हीं दो बन्दरों के हाथ से स्पृष्ट पत्थरों का सेनु बना था । जन यह कहा जा सकता है कि सेनु कवियों की कीर्ति का प्रतीक है ॥ ३ ॥]

एवमुपबृंहयति प्रेम, प्रकाशयति प्रियंवदताम्, उद्योतयत्युदार-
ताम्, दर्शयत्यादरम्, आश्रिमांशयति सर्वमायम् । भीमभृभुजि
नलोऽपि 'सरलस्वभाव. स्वच्छार्द्रहृदयोऽयं महानुभाव' इति
चिन्तयन् "अलमलमपिल्लातमसर्वस्वोपनयनेन, भवदुर्दानमेधाः माक-
मिह सार्णयसुवर्णपूर्णवसुमतील्लामादपि परमो लाभः । नहि प्रियतम-
दर्शनसुखाद्वित्तलाभसुखमतिरिच्यते । नच भयद्विभवेऽप्यस्माकं
परस्वबुद्धिर्नापि भवच्छरीरेऽप्यनात्मभाव । किञ्चान्यदेवविधिसूक्त-
समृतामृतगर्भगीभिरानन्दयतात्मन्मनो महानुभावेन किं कृतमभिहितं
या प्रणयोचितम्" इति द्रुवाणस्तं वदु मानयामास ॥

इस तरह प्रेम को बढ़ाते हुए, मधुर भाषिणा को प्रकट करते हुए,
उदारता प्रकाशित करते हुए, समस्त भावों को प्रकट करते हुए राजा भीम की
देखकर नल भी, ये महानुभाव बड़े सरल स्वभाव तथा स्वच्छन्द एवं सरस
हृदय के हैं ।" यह सोचता हुआ, "उन्हें दिया जाय, सर्वस्व समर्पण की
आवश्यकता नहीं, आप के दर्शन ही समुद्र सहित सुवर्ण भरी वृष्णी लाभ से भी
अधिक लाभप्रद हैं । अतिशय प्रियव्यक्ति के दर्शन सुख की अपेक्षा वित्तलाभ
अधिक सुखप्रद नहीं होता । आप की सम्पत्ति में मुझे परधन की बुद्धि
नहीं है । आप के शरीर में भी मेरी अनात्मभावना नहीं है । इस तरह के
सुभाषितों तथा सरस एवं माधुरी भरी वाणी से हमारे चित्त को आनन्दित
करते हुए आपने प्रेम के अनुकूल क्या नहीं किया और क्या नहीं कहा ?'
यह कहता हुआ उन्हें बहुत सम्मानित किया ।

पर्यविधे च व्यतिषदे वैतालिक. प्रस्तुतमपाठीत् ॥

ऐसे भवसर पर वैतालिक प्रासङ्गिक तत्त्वश्रुत पद्य पदा—

'आपूर्वापरदक्षिणोत्तरककुप्पर्यन्तवेलाघना

दाभां मोलिषु मालिकामिच नृपा कुन्ति दोर्घायुपो ।

यहस्तम्भचिलमित्रीतिलयोर्विस्तारिलक्ष्मीकयो

रन्योन्यस्य दिनानि यान्तु युवयो. स्नेहेन सौत्येन च ॥४॥

आपूर्वेति ॥ ब्रह्मस्त्वय्यो ब्रह्माण्डम् ॥ ४ ॥

पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं की समुद्र तट पर्यन्त भूमि के राने आप दोनों की जाता की माता की तरह चिरोगर्भ करे । सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में आप लोगों की कीर्ति फैले । यज्ञजन्मो व्यापकता प्राप्त करे । परस्पर प्रेम और ऐश्वर्य के साथ आप लोगों के दिन बनीन हों ॥ ४ ॥

एवमुपक्रमाविरुद्धविद्वद्दालापलीलया परस्परमाश्रयाननुहिनशिला-
शकलाकारकपूर्वपारोपरिकरितान्ब्रूताप्यप्रणयेन च परितुष्टपरिजन-
परिहासगोष्ठया च किमप्यमिनवन्, किमपि पुरातनम्, किमप्युत्पा-
द्यम्, किमपि यथावस्थितं जल्पाकञ्जनजल्पितं भावयन्तौ तस्यनु-
न्यवीयसीं वेत्ताम् ॥

• धनमिति । आश्रयानमविवर्धनं यत्तुहिन हिम नस्य शिलाशकलं सदाकारस्य
कर्पूरस्य पद्मी शकल तथा परिचरितमथ सम्बद्धस्य ताम्बूलस्यार्पणप्रणयेन । अति-
शयेन स्थूला स्यवीयसी । स्तूलदूर- इत्यादिना मिदन् ॥

इस तरह प्रसङ्गानुक्त वैदुग्धपूर्ण वाग्विनोद करते हुए एक दूसरे को न गने हुए हिमशिखा-वग्ध स्रष्ट कर्पूर खग्ध निश्चित ताम्बूल समर्पण द्वारा प्रेम प्रदर्शन किये ।

सन्तुष्ट परिवर्तों की परिहास-गोष्ठी में कुछ नवीन, कुछ प्राचीन, कुछ कल्पित, कुछ वास्तविक, कुछ तथाकथित लोगों द्वारा कही हुई बातों की चर्चा में बहुत देर तक बैठे रहे ।

अनन्तरमनुसरति मध्वभागमम्बरस्यांशुमालिनि नलः 'स्वगृहान-
लंकुर्वन्तु मवन्तः' इति प्रथयेण विदुर्मम्बरं विससर्ज ॥

इसके बाद जब भगवान् सूर्य आकाश के मध्य भाग की ओर जा रहे थे नल, "अने आवास को श्रीमान् अलङ्कृत करे ।" इस तरह कहता हुआ बड़ी नम्रता से विदुर्मपति को विदा दिया ।

गते च तस्मिन् 'अहो वात्सल्यम्, अहो परमौदार्यम्, अहो लोकवृत्तकौशलम्, अहो वाग्विमवचैदग्ध्यम्, अहो प्रश्रयोऽस्य विदुर्मराजस्य' इति तद्गुणप्रवणाः कथाः कुर्वन्नातजनपरिजनेन सह मुहूर्तमिवासांचके ॥

उनके चले जाने पर, "ओह विदुर्मपति का कैसा वात्सल्य है, कैसी उदारता है, लोक-वृत्तान्त में कितनी कुशलता है, वाणी और सन्धति की कितनी प्रगाढ़ता है और कैसी नम्रता है ।" इस तरह अपने प्रामाणिक

परिजनों के साथ उन्हीं की गुणसम्बन्धी परिजनो की चर्चा करता हुआ कुछ समय तक बैठा रहा ।

चिन्तितवांश्च—

‘अनुगुणघटनेन यद्यपीयं भवति हि हस्तगतैव कार्यसिद्धिः ।

भयतरलभुजंगवक्रवृत्तेस्तदपि न विश्वसिमो ययं विधातुः ॥ ५ ॥

अन्विति ॥ अनुगुणानामनुकूलानां घटनेन संयोजनेन हि स्फुटं सिद्धिर्हस्तगतैव भवति । भयेन तरलो लोलः । तरलस्य चात्र वक्रनातिशयहेतुः ॥ ५ ॥

अनुकूल घटनाओं के कारण यद्यपि कार्य की सफलता हस्तगत की तरह प्रतीत हो रही है, फिर भी उरे हुए सर्प की तरह टेढ़े झुकदार वाले दैव पर हमें विश्वास नहीं होता ॥ ५ ॥

तथाहि—

धन्याः कङ्ककलिङ्गवङ्गमगधाः रायेंऽप्यमी पार्थिव्या

दिक्पालाश्च मद्यत्पतिप्रभृतयः कन्यार्थिनः संगताः ।

नो विद्यः कथमेप्यतीह घटना कार्य यतस्तत्क्षणा-

घानाभङ्गिभिरिन्द्रजालसदृशं दैवं हि चिन्तयते ॥ ६ ॥

धङ्ग, कङ्ग, कलिङ्ग, वङ्ग और मगध वे ये राजे और इन्द्र आदि दिक्पाल उस कन्या के लिये एकट्ठे हुए हैं । ऐसी स्थिति में पता नहीं यह कार्य कैसे होगा, क्योंकि दैव विभिन्न वक्रताओं से तरकाल ही इन्द्रजाल की तरह आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाता है ॥ ६ ॥

अथवा—

फा नाम तत्र चिन्ता प्रभवति पुरुषस्य पौरुषं यत्र ।

चाट्मनसयोरपि ये विधौ च चिन्तान्तरे किमिह’ ॥ ७ ॥

फा नामेति ॥ यत्र कार्ये पुरुषस्य पौरुषं भवति तत्र फा चिन्ता, नैवेष्ट्यर्थः । विधौ दैवं पुनर्वाट्मनसयोरगोचरे किं चिन्तान्तरम्, तदेव प्रमाणमप्यर्थः । अन्तराश्रयो विशेषार्थः । उभयस्यापि चिन्ता न कार्येति भावः । वाक् च मनश्च वाट्मनसे । ‘अचतुर-’ इति सूत्रेण सिद्धम् ॥ ७ ॥

अथवा—

जहाँ पुरुष का पौरुष कार्य कर सकता है उस विषय में चिन्ता की क्या बात है और बाणी तथा मन व अविषय दैव में क्या चिन्ता करनी है ? ॥ ७ ॥

[जहाँ तक पौरुष कार्य करता है मैं सर्वथा सफुञ्च रहूँगा । पुरुषार्थ-सम्बन्धी सफलता की ओर तो थोड़ी भी चिन्ता नहीं करनी है । भाग्य

मनन होने वाले कार्य की ओर भी विना नहीं करनी है, क्योंकि उसमें पुष्पार्थ का कोई हाथ नहीं रहता । वह अकस्मात् ही मिट्ट होता है । तात्पर्य यह कि किसी भी तरह विना की वान नहीं करनी है ॥ ७ ॥]

एवमनेरयिनर्ममद्वमाजि भूमुजि, भुजवलशालिषु विसर्जितेषु
नैयकसान्मेषु, निरलीकृते परिन परिजने, परिहामपेशलालापात-
जनगोष्ठीप्रक्रमेगानिकान्ते स्नोत्समये, भूरिभव्याभरणावरणरमणीय
रूपाः, काश्चिदार्कनुस्फुल्लदन्ता, काश्चित्कक्षात्रलम्बिताम्बुलीपत्र-
विण्डकरण्डकाः काश्चिरिगदिनपट्टाशुकपटलिकापाजयः, काश्चि-
त्काश्चोत्तररश्मियुक्तस्फुरितमोदासन्दचन्दनभाजि भाजनानिभजमाना,
काश्चिद्वाननान्तिकेरजम्बीरबीजपूररूपरितपार्श्वपाजय काश्चिदन्तर्य-
खण्डसाद्यप्रिदोषाननूल्यमाङ्गल्यनाल्याभरणानि च सकौतुकमादाय
दमयन्त्या प्रदिताः प्रथमप्रबोधितप्रतीक्षासुचिता प्रविधिशुरभ्युज्जा
कुञ्जिका वामनिकाश्च ॥

एवमिति ॥ अवाभानि साङ्गि नात्किरेजम्बीरबीजपूरणि तै पूरिता वा पार्श्वी
मा पाणी यामम् । वान शुष्क फलम् । न्युज्जा अघोमुक्तयः पञ्चाङ्गयोग । दिव्या
रमेतोर्ध्ववदना इति भाव । एतच्च कुञ्जिकादीनां विशेषश्च ॥

इस तरह राजा विविध तर्क-वितर्क में मग्न था । पराक्रमी सेवक सामन्त-
राजे बंले जा चुके थे सब ओर से परिजनों लोग कम हो चुके थे । परिहाम
पूर्ण मधुर वाग्वितोद करने वाले बरिष्ठ जनों की गोष्ठी में कुछ समय बिता
रहा था, जब तक पर्याप्त सुन्दर भूषण एवं वस्त्रों से रमणीय कान्ति वाली,
हाथ में ताजा ठण्डा फल ली हुई, कोई ताम्बूल-पत्र की पोटली से भरा हुआ
डब्बा बगल में लटकायी हुई, कोई हाथ में बन्द जिल्द बख की पोटली ली
हुई, कोई कदमीर की कन्तूगी-मिश्रित पूर्ण गन्धयुक्त चन्दना से भरी हुई
पट्टियाँ ली हुई, कोई ताजा नारियल तथा नारंगी की फाकिपा से भरी हुई
थालियाँ ली हुई, कोई अनेक मधुर नोग्य पदार्थों तथा बहुमूल्य माङ्गलिक
मालात्रा और जाम्बूगो को कोयुक्तपूर्वक ली हुई, दमयन्ती द्वारा भेजी गयी
(टंकटा के मारे) ऊपर की ओर मुंह उठायी हुई कुबड़ी और नाटी इत्यादि
सबसे पहले जाय मय प्रहरी द्वारा (जैन जागमन की सूचना देकर) भीतर
की ओर ले जायी गयी ।

प्रदिद्य च भविष्यताः स्मररूपानिशाघिनं नरपतिमवलोक्य
'नाधु मो' भवामिनि, साधु । म्यानेऽमिनिविष्टासि, योग्ये जाताग्रहासि,
पात्रे जातमृदासि, लप्स्यसे जन्मफलम्, अवाप्स्यसि स्त्रीस्वभावा-

भाग्यम्, अनुभविष्यसि यौवनसुखानि, मानयिष्यसि संसारफलमदो-
 रसवम् । अहो वन्दनीया सा कापि पुरुषरत्नाकरकुक्षिर्जननी, यस्यां
 सरलसंसारनरद्वारावलीमध्यमहानायकोऽयमुत्पन्नः । इत्यवधारयन्त्यो
 मनाङ्गनामितमौलिलोलितसीमन्तमुत्ताफलाः 'स्वामिन्नयमस्मदीय-
 प्रणामः, अन्यापि कापि काचित्प्रणमनि' इत्यभिधाय स्मयमानवदनरु-
 मलाः सलोलमयनिपालं प्रणमु ॥

भीतर आकर काम सौन्दर्य को भी जीत लेने वाले राजा को आश्चर्य के साथ
 देख कर, "वाह ! स्वामिनी वाह ! उचित स्थान में प्रवृत्त हो, योग्य वस्तु
 के लिये आग्रह की हो, पात्र में दिल् लगायी हो, जन्म-पत्र प्राप्त करोगी, स्त्री
 स्वभाव के सौभाग्य को प्राप्त करोगी, यौवन सुख का अनुभव प्राप्त करोगी,
 संसार के सुखमय महोत्सवों को मनाओगी, अहो, वह पुरुषरत्न की निधि-
 रूप उदरवाली, अलौकिकमानव्य माता वन्दनीय है जिसमें समस्त संसार
 की मानव भाषा के मध्य मणि (सुमेरु) सदृश महानायक जन्म लिया है ।"
 यह सोचती हुई, नष्ट होने के कारण फिर के मध्य भाग में लगे हुए कम्पित
 मणियों वाली वे दूतिवां लीलापूर्वक राजा को प्रणाम की ।

अन्योन्यकृतसंशोधनाश्च सहर्षमिदमवोचन् ॥

एक दूसरे को सम्बोधन करती हुई बड़ी प्यारी के साथ बोली—

हृदो हंसि चकोरि चन्द्रवदने चन्द्रप्रभा चन्दने
 चन्द्रे चङ्गि लवङ्गि गौरि कलिके कज्जोलिके मालति ।
 एत प्राप्नुत जन्मजीवितफलं लावण्यलक्ष्मीनिधौ
 सौभाग्यामृतनिर्जरे नरपती निर्वान्तु नैशाणि च ॥ ८ ॥

इहो इति ॥ हृदो इति संबोधने । एत आगरुत ॥ ८ ॥

ओ हसी, चकोरी, चन्द्रवदना, चन्द्रप्रभा, चन्दना, चम्पा, चगी, लवङ्गी,
 गौरी, कलिका, कज्जोलिका, मालती, आओ, जन्म पत्र प्राप्त करो, सौभाग्य
 रूप अमृत के लिये देवता तथा सौन्दर्य के सागर, इस नरपति में आप लोग
 की आज्ञा शान्त हों ॥ ८ ॥

अपि च—

कुन्दे सुन्दरि चन्द्रि नन्दनि हले दिष्टयाद्य वर्धामहे
 देव्याः सोऽयमनङ्गसुन्दरवपु प्राणेश्वरः प्राप्तवान् ।
 तस्याः संप्रति यत्कृते वृक्षतनोः श्रीडावने क्षाणिना
 दीर्घश्वासमर्द्धरग्निपर्यर्पयन्ति ते पट्टवाः ॥ ९ ॥

नन्द इव ॥ चन्द्रगन्ताशहादार्पात्रैरादिवाहोष । वधामह इति हर्षाति-
शोक्ति ॥ ९ ॥

बोर—

आ कुदा सुन्दरी, चंदी, नन्दनी, बाव सोनाम स हमलौ बड रही
है कदाकि कमन्व स ना अधिक सुन्दर वह यह देवी क प्रप्राप्ति प्राप्त हा
य ६ दिनक प्य इस समय दुखल शरीर वाली बस (दायन्ती) के अग्नि
स ना अकि टण लम्बे स्वर्णों की हवा से स पश्य नी मन्ति हा
गत है ॥ ९ ॥

पि च—

य ध्रुत्येन मनोमगलशदशा वेया धृतोन्मादया
नीयन्ते गृहदार्पितावततदुच्छ्वासाः स रासरा ।
प्रातः शोणसरोजपत्रनयनो निशयसामग्निनी
भ्रान्तपत्रपत्रनिद्रिग्रमनसः सोऽयं नला नेपथः ॥ १० ॥

६ लम्बे । नेपथ्यपत्र पत्रि पत्रि स्तया विग्रामन ॥ १० ॥

है—

निद्रिग्रमन कर ही उमादपू कायात्त नत्र वाली देवी पर की बावनी
क उटवनी पत्रों की छाया में दिन व्यतीत कर रही है वही यह लाल कम-
ल सदा नत्र बाँले समस्त सुन्दरियों क घूमते हुए नयन-विहङ्गों क विग्राम
वृष निपथवति नत्र है ॥ १० ॥

[सुन्दरियों क नत्रों का विग्राम स्थल नत्र है जैसे घूमते हुए पत्रियों क
विग्राम रूप पड हुआ करता है । महाराज नत्र समस्त रमणीय विहङ्गा क
विग्राम वृष है ॥ १०]

परमन्योन्यमभिधाय समीपमुपसृतास्ता सितिपतिस्त्वनुराग
तरङ्गतरेचार्कण सादर दूरोत्तिष्ठपक्ष्मणा चक्षुषा सतोषपुञ्जमङ्गुषिका
इव, आनन्दकन्दलीरिव, अमृतपङ्कपुत्रिका इव, मधुमासरिकसितसह-
कारमन्दीरिव, दमयन्तीप्रेषिता सस्पृहमवशोऽस्मिन् 'इत एव कुशलं
तन्ममरतीनाम्, उपविशत, गृहीत ताम्बूलम् आनेदयत मयन्स्थामिनी
संदेशम्,' इति ससंभ्रम समाययामास ॥

६७८ । एव परागमभिधाय समीप उपसृतास्ता प्रेमोर्मिचक्षुःक्षणीनिदेन
सादर दूरोत्तिष्ठपक्ष्मणा चक्षुषा मसृहमवलोकयन् चित्तिशशि सम्प्रमन् 'इत
एव—' इत्याद्यात् ॥ सतोषपुञ्जमङ्गुषिका इत्यादि ताया विशेषाणि ॥

इस तरह एक दूसरे क छाव बाँले कर समीप स आयी हुई, दमयन्ती
छाप प्रेक्षित इन द्वितीयों का राजा प्रेम-तरङ्ग म सैरती हुई कनीनिका बाँले

तथा ऊपर उठे हुए पलको वारे, नेत्रों से सन्तोष राशि की पेदी की तरह, आनन्द के अक्षुर की तरह, अमृत से सनी हुई मिट्टी की पुतलिका की तरह, वयन्त की खिली हुई आम्र मञ्जरी की तरह उत्कण्ठापूर्वक देखता हुआ, “आइये इधर, कुशल हो आप लोगो का, बैठिये, पान लीजिये, अपनी स्वामिनी का सन्देश कहिये ।” इस तरह उत्सुकता के मारे घबड़ाया हुआ सा बातें किया ।

तार्श्च “महानयं प्रसादः” इति श्रुत्वाणां समुपविश्य ‘राजाविराज, राजीवदलदीर्घाक्षा क्षेमवार्त्ता पृच्छति न नाम देवस्यापघने धर्मांशु-घर्मांमिनिर्मितः कोऽपि वेद समपद्यत, न वा समविपममार्गलङ्घन-धमेण कापि परिमाथिनी परिजनस्य ग्लानिरभूत्, यद्वा नि द्वितानि देवनाश्वानि विलम्बितम् । इदं च तथा प्राणेभ्यस्त्वस्य म्रियं प्राप्नुत प्रद्वितम्, इदमुक्तम्, इदमेकान्तसंदिष्टम्, इदं प्रकाशप्रथयाप-लीलापितम्, इति राजानमञ्जसा जजरपुः ।

शार्वेति ॥ ननामेति । देवस्य, अपघने शरीरे न नामोपश्रुपममर्मायां पृच्छा याम् । न वेति पञ्चान्तरगर्भायाम् ॥

वे भी, “बड़ी हृषा है ।” यह कहती हुई बैठ कर, “महाराज, कमलदल सदृश विशाल नेत्रों वाली (दमयन्ती) आप का कुशल-समाचार पूछ रही हैं । क्या भगवान् सूर्य की किरण-लहरी से कोई स्नेह तो नहीं हुआ ? ऊँची नीची जमीन को छापने के परिश्रम से परिजनो को कोई अतिथय कष्ट तो नहीं हुआ ? रास्ते में आप बहुत दिन लगाये । उन्होंने आप के लिये यह ग्रिय उपहार भेजा है । यह उनका गुप्त सन्देश है । यह उनकी प्रशंसा, नम्रतापूर्ण आलाप लीलायें हैं ।” इस तरह राजा के साथ सरलतापूर्वक बातें कीं ।

सोऽपि स्मरव्यापारकोरकिताभि शृङ्गाररससेकपल्लविताभि-मुग्धस्मितांशुमञ्जरिताभिरमृतच्छटाभिरिव धाग्भिः किमपि सरलाभिः, किमपि नर्मोत्तिकुटिलाभिः, किमपि कथयन् किमपि पृच्छन्, किमपि संदिशन्, अनुजल्पमनुजल्पितम्, अनुदासमनुदलितम्, अनु-सुभाषितमनुसुभाषितम्, अनुप्रियमनुप्रीतम्, प्रसादप्रदानोद्दोषि-तोद्दामानुरागास्त कुर्वन्नतिचिरमिव गोष्ठीलोलयाचतस्थे ॥

शोऽपि ॥ नल एवमेव कुर्वन् गोष्ठीविलामेनास्थात् । अल्पितमनुदलीकृत्य जलित कुर्वन् । ता उदीपितानुरागा कुर्वन् इत्येव कुर्वन् इन्द्र उभयप्रापि संशयते । ‘अनुजल्पमनुजलितम्’ इति यदा कचिपाठ, तदा अनुजलितमिति क्रियाविशेषणम् । अनुगतं जलितं यत्रेति । अनु जलरमिषादिषु तु अनुयोगे द्वितीया ॥

वह भी कामआपार से कुहनलित, शृ गार रस के सिञ्चन से पञ्चित, मनोहर मुन्कान की छटा से मञ्जरित, कसूत के छंटे सहस्र बागी से कुछ सीधे एव कुछ नम्रतापूर्ण उक्ति-वज्रता से कुछ पूजता हुआ, कुछ सन्देह देता हुआ, दात में दात मिला हुआ, हँसी पर हँसी करता हुआ, सुभाषित पर सुभाषित कहना हुआ, त्रिषो के अनुवृत्त प्रसन्नता व्यक्त करता हुआ, प्रसन्नता प्रदर्शन द्राष्ट वन नदों की पूर्वातः अनुरक्त करता हुआ देर तक गोष्ठी में मनोविनोद करता रहा ।

‘अहो तु एत्वम्य नरपतेः, अनदलीलं शीलम्, अनाहार्य-
नौदार्यम्, भयञ्जनं घञ्चनम् . दैवैभ्यं दानम् अस्त्वन्यं स्मितम्, अवि-
चारगोचरं गाम्भीर्यम्, इति भाययन्त्यस्ताश्च कांचिदुचिनविनोद-
रतिबाह्य वेलात्, अनुभूय किमपि गोष्ठीसुखम्, दाट्याय च किञ्चि-
द्विद्य दमयन्तीधिनोदभिलास्यतिहरम् ‘आज्ञापयतु देवोऽस्मान्मामनाय,
भवद्वासांनृत्तपानार्थिनी देवा त्वरिताऽस्मत्प्रत्यावृत्तिमपेक्षमाणा
निष्ठिति’ इत्यभिधायानुमत्ता यथागतमगच्छन् ॥

“जोह इस राजा का स्वभाव अजीबता घना है, उदारता अकृत्रिम है, बागी में वञ्चना का नितास्त अभाव है । दान में दैन्य नहीं है, मुन्दुराहट में अहंकार नहीं है, गाम्भीर्य अत्यन्त स्पष्ट है ।” इस तरह सोचती हुई वे भी उचित विनोद के साथ कुछ समय बिता कर, कुछ गोष्ठी सुख का अनुभव कर, कुछ दमयन्ती के विनास प्रसंग की खर्चा कर, “आज्ञा दें श्रीमान् जाने के लिये क्योंकि आप के वातामृत पान के लिये उत्कृष्ट देवी शीनही हम लोगों के लौटने की प्रतीक्षा कर रही हैं ।” यह कह राजा की अनुमति से यथास्थान चली गयीं ।

गतासु च तासु, प्रगल्भं प्रशायाम्, अचरमं वाचि, कुशलं
फलासु, निपुणं नीतौ, सप्रतिभं सभायाम्, आध्वर्यमृतमाहूय पर्वनरु-
नामानं वामनकमुपायनीकृत्य कर्कशकर्कशधूलस्थूलोज्ज्वलमुक्ता-
चलांमुत्थनम्यभूषणांशुकादिसंमानदरपरितोषितेन पुष्कराक्षपुरातनं
किंनरमियुनेन सह दमयन्तीं प्रति प्रेषयामास ॥

उन सबों के चले जाने पर दोन्ने ने प्रवीण, कलाओं में कुशल, नीति में निपुण, सभा में प्रतिभासम्पन्न, आश्चर्यजनक पर्वतक नामक दोने को बुलाकर उसे उपहार रूप में समर्पित कर, कर्कश देर (फर) सदृश बड़े-बड़े चनकदार मोतियों के हार आदि मुख्य एव अन्य भूषणों तथा शिल्प वस्त्रों को सम्मान पूर्वक देकर जादर से उन्हें सन्तुष्ट कर पुष्कराक्षसहित किंनर-मिथुन के साथ दमयन्ती के पास भेज दिया ।

स्वयं च शास्त्रिकमुत्तमवत्पूर्णमाणशङ्खस्वनविभिन्नभांकारिमध्याह्न-
भेरीरवेण निर्यद्वेलाविलासिनोचरच्चरणाभरणरणन्मणिनूपुरसंकारेण
च निवेद्यमाने मध्याह्नसमये माध्याह्निककरणायोदतिष्ठत् ॥

स्वयं भी शसयादक के मुख की हवा से भरे हुए घस की ध्वनि के
अतिरिक्त गम्भीर ध्वनि करने वाले नगाड़े की ध्वनि से और जाती हुई
बाराङ्गनाओं के चरणों के बलझार, नूपुरों की संवृति से मध्याह्नकाल समस्त
एक तरफालीन कृत्य करने के लिये उठा ।

क्रमेण च निःसृजे समस्तसेवकजने, विश्रान्ततूर्यतालगीतासु
निर्यातनर्तकोविरहव्येदादिय मूकोभूतासु, नृत्यशालासु निःशब्दतया
सुप्तास्त्रिषोर्धाधिकारककुटीरु, शून्यतया मध्याह्नतन्त्रीमूर्च्छितेष्विव
समस्तमण्डपेषु, संक्रान्तसेवाविलासिनोचरणकुङ्कुमपदपङ्क्तितया
यिकीर्णविकसितरक्तारविन्द इव प्रकाशमाने राजभयनाङ्गणे, घनं
ध्वनन्तीषु भोजनायसरशङ्खकाहलासु, प्रधावमानेषु प्रत्यास्थादक-
जनेषु परिमृज्यमानाम्बुतिथिसरप्रशालासु, सज्जीक्रियमाणेष्वप्राशन-
प्राङ्गणेषु, प्रवेक्ष्यमानासु भोग्रासयोग्यासु कपिलासु पुष्पगवीषु
प्रक्षाल्यमानेषु घायलघलिस्तम्भशिखरफलकेषु, वहिर्दीयमानेषु,
दीनानाथभिक्षुकभैक्ष्यपिण्डेषु, समुपलिप्यमानासु भोजनस्थानवेदीषु
संचार्यमाणेषु चकोरपञ्जरेषु, निवेद्यमाननैवेद्यासु पूज्यराज्याधिदेवतासु
वैद्यदेवाहुतिगन्धवाहिनि वहति विविधाश्रपाकपरिमलमनोदरे
महानसमवति, निर्वर्तितमज्जनाविक्रियाकलापे भजति भोजनभुग्
भूभुजि, वहिः सूपकारफलकलः समुल्लास ॥

क्रमेणेति ॥ महानस पाकरधानम् ॥

क्रम से सभी सेवक चले गये । बाद्य, ताल और गीत बन्द हो गये ।
नर्तकियाँ चली गयीं । उनकी विरहव्यथा से मानों नृत्यशालाएँ मौन हो गयीं ।
निःशब्दता के कारण ऐसा प्रतीत होता था कि अर्धाधिकारियों के कुटीर छो गये
थे । शून्यता के कारण ऐसा लगता था कि सभी भवन मध्याह्नकालीन निद्रा में
मूर्च्छित हो रहे थे । राज-भवन के प्राङ्गण में सेवा में लगी हुई रमणियों के
चरण कुङ्कुम के चिह्न बिखरे हुए लाल कमल की तरह खमक रहे थे । भोजन
काल के शब्द और काहल जोर से बज रहे थे । विभिन्न स्वादिष्ट सत्त्वों के
वनाने वाले पात्रक इधर उधर दीह रहे थे । अतिथि-भोजनालय धोये जा रहे
थे । सबसे पहले भोजन करने वाले ब्राह्मण तैयार किये जा रहे थे । गोदास देने
योग्य कपिल रंग की पवित्र गायें लायी जा रही थीं । काक्वलि देने के लिये

खान्धो के ऊपर ८ फर्स धोये जा रहे थे । बाहर दीन, यथाय और भिखुका का भोजन पिण्ड दिए जा रहे थे । भोजन स्थान की बर्दियाँ जिनी जा रही थी । चकारो के पित्रदे घुमाय जा रहे थे ।

राज्य की पूज्य अधिदेवताओं को नैवेद्यसर्वापत्र किया जा रहा था । वैश्य दक्षक जिनके ही हुई आहुति के गन्ध को दोन नानी विविध पक्षवाग्ना को गन्धन मनोहर पाचनाम्य की हवा बह रही थी । स्नानादि समस्त श्रियाप्रा से निवृत्त हु कर राजा भोजन-स्थल पर आया त्यों ही पाचकवृन्द की कण्ठ ध्वनि हुई ।

‘राज्यं प्राच्यमभितकुम्भकलिङ्गास्त्वप्य शाल्योदेनो
धूपामोदमनोहरा शिखरिणो स्यादूति शान्तानि च ।
पेयाम्बाद्यकृत्यलेहान्मुलं नानानिधं भुज्यतां
भोयं भोममदानृपस्य सुतया संप्रेषित संनिरा ॥ ११ ॥

अन्वयेति ॥ अमिष्टकुम्भकलिङ्गा कल्पत उपर्मायत इति । पादत् । कल
रदन्तात् ‘अथो यत्’ इति सूत्रेण यत् । अचित्तु पदार्थं यत् पदम् ॥ ११ ॥

सैनिका । महाराज भीम की कन्या द्वारा भेज गये पमान्त्र वृत्त, अधिदेवित
कुम्भ की कणिका सट्ट भोज, धूप की गन्ध से मनोहर, ममाने मुक्त दही,
स्वादपि तृप्कारियो, पीन, धवन, खाने और घाटन नामक विविध भोज्य का
आप लोग खाये ॥ ११ ॥

अहो नु यस्यमो मनस्यमांसंरिंहितमुदोच्यप्रतोच्यप्राच्यजना-
प्रियस्तत्तरो भोक्तुमेत ॥ जगन्नि ॥

दिरल खलु दाक्षिणात्येषु मांमाशनय्यवहाट ॥

तदाकण्यंता भो नैयथा ॥

ओह, मैं उत्तर, पश्चिम और पूर्व के लोग जिन्हें सन्तु बहुत प्रिय है,
मछली और मांस में रहित भोजन ही करना नहीं जानते ।

दमेत के लोगो मैं मांस खान का व्यवहार बहुत कर रहे ।

नियमवागियो, सुनो—

‘राज्यप्राज्यपयनकूरफलेर्मन्दा त्रिधाय श्रुधां
चानुर्जानकर्मस्तुतो नु शनकरिणो रस पीयताम् ।
समास्तृष्टुर्गोयतेमनरसानास्याद्य किञ्चित्तत
स्निग्धस्तज्जधिद्रोण सरस शाल्योदेनो भुज्यताम् ॥ १२ ॥

अन्वयेति ॥ ‘स्निग्धोदायक चैव त्रिगन्ध च त्रिजनकम् । तदेव मरिचै
रुक्तं चानुर्जानकमुच्यते’ तेन मसूत कृष्णान्तराश्वनुर्जानकसाहच । सरस

सुनिष्पन्नदीर्घतण्डुलपाकज । अतिक्लिन्नतादिदोषरहितश्च । दधिद्रवो वस्त्र-
माहित दधि ॥ १२ ॥

पर्याप्त घी में बने हुए अन्न और कूर नामक चावल के भात से भूय
घान्न कर इलायची, नागकेसर और मिर्च से मुक्त ईस का रस पीजिये ।
विविध मसालों से स्वादिष्ट तरकारियों के रस का कुछ आस्वादन कर
बिड़ने तथा गाढ़े श्रीखण्ड से भात को सरस कर खाइये” ॥ १२ ॥

राजा तु प्रतीहार 'विनिश्चीयतां किमयं बहि कलकलव्यतिरुर.'
इत्यभिधाय तत्कालयोग्यपरिजनपरिवृतो मोक्षमुपाविशत् ॥

त्वरितं च गत्यागतश्च स प्रतीहारो विशापयामभूव ॥

'देव, दमयन्ती प्रहिता सूपकाराः सैन्यजनम्, आन्नाह्वणान्यज-
गोपालकम्, अफरितुरगयाहनम्, आसामन्तनियुक्तकम्' आस्याद्यै-
स्नेस्तैरन्नघिशोषैर्मोजयन्ति ॥

राजा तो, "प्रतीहार, देखो यह बाहर क्या कोलाहल हुआ है ?" यह
कह कर स्वयं भोजन करने बैठ गया ।

प्रतीहार धीम्र ही गया और लौट कर बताया ।

"यजन्, दमयन्ती द्वारा भेजे गये पाचक सैनिकों, आह्वणों, अन्नयजों,
गोपालकों, हाथी, घोड़े आदि वाहनों, सामन्तों तथा कर्मचारियों को उन उन
मुन्दर भोग्य पदार्थों से तृप्त कर रहे हैं ।

लघ्न सर्गतो हृद्यन्ते पर्यता' पक्वान्नस्य, राशय शाल्योदनस्य,
स्तूपा सूपस्य, निर्झरा' सर्पिष, सिन्धयो मधुन', निरारा' शकं-
राया, स्रोतांसि दधिदुग्धयो, शैला शाकानाम्, निपानानि पान-
कानाम्, कुट्या फलरसानाम्, कूटा कपायाम्ललवणविक्रमधुरो-
पदंशानाम् ॥ पथमकार्पण्यमिच्छया भोजितं सेन्यम् ॥

ये पक्वान्न के पहाड़ चारों ओर दीख रहे हैं । ये भात की राशिमां
हैं । ये दाल के ढेर हैं । ये घी के झरने हैं । ये मधु के सागर हैं । ये चीनी की
राशिमां हैं । ये दूध और दही की धाराएँ हैं । ये तरकारियों के ढेर हैं । ये
पेय पदार्थों ने स्थान हैं । ये कर-रसों के प्रवाह हैं । ये कसैले, खट्टे, नम-
कीन, तीने तथा मधुर बच्चारों की राशिमां हैं । बड़ी उदारता के साथ सैनिकों
की इच्छानुसार खिला दिया गया ।

अपिच—

मुक्तान्ते घृतदिग्बहस्ततलयोरुद्धर्तनं चन्दनं
पश्चाग्रामरघण्डपाण्डुरदलैस्ताम्बूलदानकम् ।

एकैकस्य मृणालतन्तुमृदनीं दत्ते ततो वाससी

देव्या निचिद्विन्त्यमेव भवतः सैन्यातिथेयं वृतम् ॥ १३ ॥

मुलान् इति । वनवासदेशोद्भवानि नागवल्लीदलानि नागरैर्दिग्धैश्चर्यन्ते
खण्डयन्ते इति नागरखण्डमंशानि ॥ १३ ॥

भोजन के बाद दो से बिकने हाथों पर चन्दन का उबटन देकर नागर-
खण्ड से बने हुए पान दिये गये । प्रत्येक को कमल-तन्तु की तरह एक शीटे
कोनले वस्त्र दिये गये । इस तरह देवी ने सैनिकों का जड़भुज सत्कार
किया । ॥ १३ ॥

इयं च रसवती देवस्य तथा स्वहस्तपल्लवपरिमलनसंस्कृतैः पाक-
विशेषैरलङ्कृत्य स्वमुद्रया मुद्रिता ग्रहिता इत्यभिधाय व्यरंसीत् ॥

१४ चेटे ॥ स्वहस्तान्यां परिमलन यथोचितगन्धद्रव्यैरेव मुरमीकरणम् ॥

इसने अपने ही कर पल्लव से विभिन्न सुगन्धित पदार्थों द्वारा संस्कृत
(सुगन्धित) विभिन्न भोग्यों को सजाकर उसपर अपनी मुहर लगाकर यह
रसोई बाप के जिन्हे प्रेषित किया है ।” यह कह कर छुप हो गया ।

राजा तु मनान्नरलितशिराः सस्मितम्—अहो निरतिशयमुदार-
गम्भीरमुचिन्त्ययद्धारहारिललायितं तस्या स्पृहणीयपरिमलधायन-
पूर्वं इव कोऽपि पाकक्रमः ॥

राजा तो कुछ घिर हिनाता हुआ मुस्कराहट के साथ “ओह, उसकी
चेष्टायें अत्यधिक उदारता के कारण गम्भीर तथा उचित व्यवहार के कारण
मनोहर हैं । हृदयहारी परिमलों से युक्त यह भोज्य तानशी भी अपूर्व ही है ।

तथाहि—

इदमम्लमप्यनम्लात्थादम्, इदमोषरूपायमपि मधुरतां नीतम्,
इदमेतस्समप्यनेकरत्नीकृतम्, इदमतिमृष्टतयाऽमृतमप्यतिशेते, रसध-
त्यामपि रसवती विदर्भराजात्मजा इति विभाषयंस्तान्स्तया ग्रहितान्
पाकविशेषानादरेणास्वादयामास ॥

इदमिति ॥ रसवत्यामपि रसवती रमिका रागिणीति यावत् । ताम्यदनीति च ॥

कथञ्चि—

यह खट्टा होता हुआ भी चखने में खट्टा नहीं लगता, यह थोड़ा कपास
होता हुआ भी मीठापन लिया हुआ है । यह एक रस होता हुआ भी अनेक
रसों से पूर्ण कर दिया गया है । अल्पन्तु मधुरता के कारण यह अमृत भी
भी आगे बढ़ता जा रहा है । वह विदर्भराजि की कन्या रसोई में भी बहुत

प्रवीणा है ।' तब वह विचार करता हुआ उसके द्वारा भेजे हुए विभिन्न भोग्य तत्वों को बड़े जादर में बंधा ।

चिन्तितवांश्च—

पङ्कसा किल वैद्येषु भरतेऽष्टौ नवापि वा ।

तथा तु पद्मपत्राक्ष्या सर्वमेकरसीकृतम् ॥ १४ ॥

वदिति ॥ एकरसीकृतमुत्कृष्टास्वादीकृतम् । अमोहतत्वात् । आत्मविषये पञ्चानुरागीकृतं वा । यद्देनेकरमं तत्कथमेकरसीभवेदिति विशेष पुनरर्थस्तु शब्द उद्भाषयति ॥ १४ ॥

और सोचा भी—

आयुर्वेद में छ रस तथा भरत के नाट्यशास्त्र में आठ रस सुने जाते हैं किन्तु उस पद्मनेत्रा ने तो सब रसों को एक रस कर दिया है । ॥ १४ ॥

तथाहि—

अप्रस्थामिष चेतसः पुर इव न्यालम्बमानां दृशो-

र्ज्जपन्तीमिष रग्धतीमिष मनाङ् भुग्धं हसन्तीमिष ।

निद्रामुद्रितलोचना अपि धर्यं तां विभ्वरूपायितां

पद्मामो यहिरन्तरे निशि दिवा मार्गेषु गेहेषु च ॥ १५ ॥

तथावृत्तिः ॥ अनेनागानुभवसम्भावनाद्वारेणैकरसत्वमेव व्यनक्ति ॥ अप्रस्थमिति ॥ विरत्र रूपमस्येति विधिरूपो हरिः ॥ १५ ॥

क्योंकि—

चित्त के आगे स्थित, आँखों के सामने वर्तमान, कुछ कहती हुई, रोकती हुई, मधुरतापूर्वक शोभा हैवती हुई, सखार के रूपों में व्याप्त उसे हम निद्रा के कारण आँखों के बन्द हो जाने पर भी घर में मार्ग में, दिन में, रात में, बाहर और भीतर सब जगह देखते हैं ॥ १५ ॥

पद्ममवधारयन् अतृप्त इव तथा प्रदितेषु स्वहस्तपत्रपातरस-विशेषेषु, असन्तुष्टतत्कथायाम्, आचम्प्य, चन्दनामुष्पपरिमलेन पाण्डुर-रितपाणिपल्लव, लज्जककोलरुपमितताम्बूलमुत्सर्पिकर्पपरिमल-मादाय, विकीर्णविधिरुसुमप्रकरहारिणां यक्षकर्माम्बुच्छट्टोच्छो-टितपर्यन्तमित्तिमागे लम्बितप्रलम्बजम्बुनदपद्मदाम्नि धूपधूमामो दिशि चूर्णितकूर्परद्वरेष्वाभाजि भोजनान्तरमपरेऽपराह्णचिनोद-मण्डपे मनाग्विध्रम्य रणरणकाक्वन्तद्वदयो दूरदिगन्तालोकनकुतूह-लित सरित्तोरोचम्बिताभ्रंलिहसोधस्कन्धभूमिमावृता च तस्या-

मूर्ध्व एव ध्रियमाणमायूरातपत्रयुगलं सलीलालसपदैरितन्तनः
परित्रामन्, नेत्रीयसि स्मरित्संगनाम्भसि मध्याह्नमपिलमधगाहन-
सुखमनुभूय तीरमुत्तीर्णासु तिमिरशङ्कया कृतदूरचट्न्मपैथक्रगर-
चक्रवालैराकुलमरलोन्मयमानार पुलिनपांसुविहरणविरामे विरुक्षित-
विविधवीरन्धि रोधांसि दन्तीषु दन्तिपंक्तिषु दक्षदृष्टिः, विरलनलिनी-
पत्रान्तरालनुतोत्थितस्य, किञ्चिदवाञ्छितचटुलचञ्चोः चरत. चटुल
चञ्चरीकिणि विकचकमलवने राजहंसकुलमलापस्य परितलमदम्भ
दण्डपाण्डुपित्ताकांढमङ्कटंकारानाकर्णयन्, अपराहमज्जनागतानि
कृडिनपुरपुरमिभिराश्चर्यरसोमिमुपितनिमैदैर्निष्कम्पनीलोत्पलपलाश
लीलापमानेनैवपुटैरापीयमानमुल्लेन्दुघुनिः, दर्शिततरङ्गकूमङ्कया,
दूरोच्छलद्वालशरुरोच्छन्देन विस्फारितविलोचनया, सरित्संगमसलि-
लाधिदैवतयापि जिलोन्मयमानरूपसंपत्तिरिव, क्षणमविरलचलचञ्चरी-
कचक्रचुम्बितामुरुदासु क्रांटाकमलसरसीषु, क्षणमुपान्तपङ्कीभूत
मञ्जरितसहकारराजिषु स्मरवाजिषाद्यालीषु, क्षणमुत्पतत्पनाकापट
पल्लवराजिनासु मीममृपालान्त.पुरप्रासादपङ्क्तिषु, क्षणमधकीर्णकुसुम
रङ्गावलीरम्यासु भगरपीपीषु विश्रान्तविलोचनश्चिरमवतस्थे ॥

रश्मिनि ॥ उक्तमिदमस्य तत्कारणैर्वितरस्य जङ्गमस्य चित्रकूटादयस्याम्निह-
मौषस्य इत्यन्धमूनिमारथ तस्याभितस्तनः परित्रामन्, निकटतरे नदीसमे-
दोदके कृन्त्रलश्रीहासु, समोन्नानवा चक्रेराकुलमालोचयमानासु, कृतपूलीनानासु,
तटीः पाटयन्तीषु न्यस्तदृष्टिः, वने चरतो हंसवृन्दस्य विसमह्वराभ्युत्थन्,
हृषिकेशीमिर्हरयमानमुल्लेन्दुघुनी, उच्छलच्छद्वरीष्वलविलोकिनया जलदैवतया
वीरयमानरूपमग्रादिव जगमेक सरसीषु जग वृतालीषु जग गृहालीषु चमव
रोधमवनपङ्क्तिषु जग पुरपदतिषु विश्रान्तनेत्रो नलश्चिरमस्यात् । सादरेषण नेत्र
पामम् । तच्च पत्रपुटेपुच्छमिति नेत्रपुटैरापीयमानेयुक्तम् । कष्टकादिदोषरहितासु
नदराजिराजितासु च मूमिषु बाहवहना । तथा च—'रम्या ममउला लोष्टकील-
कण्टकवर्जिता । वाद्यालीमूमिरम्बर्णतरराजिविराजिता' इति । एतदेव पङ्क्ती
भूतेषादिनोक्तम् । दिक्कुलहरिताटादिविचित्रवर्णकवचित्रहेतुखातुसुमान्येव रत्ना
यली विचित्रवर्णकुसुममक्षि ॥

इस तरह सोचता हुआ सबके द्वारा भेजे गये और उसी के द्वारा पकाये
गये भोज्य रसो से अतृप्त सा ही रह गया । उसकी चर्चा से पेट नही भर
सका । भावमन किया । चन्दन, अफुस आदि गन्ध द्रव्यों से पल्लव सहस्र
हासो को स्वच्छ कर लवङ्ग और शीतलचीनी मिश्रित पान तथा सुगन्धित
कपूर का चूर्ण ग्रहण किया ।

इसके बाद अपराह्न के समय एक दूसरे विनोद-मण्डप में जिसकी भित्ति टगे हुए विविध पुष्पो से मनोहर थी, सुगन्धित पदार्थों के मिश्रण से बनी हुई धारा से धुली हुई थी, स्वर्ण-कमल की मालाये लटकी हुई थी, धूप व धूम की सुगन्धि गमक रही थी, धूर्ण किये हुए कपूर से सफेद चिह्न बने हुए थे, थोड़ा विग्राम किया।

उस समय उसका हृदय उत्कण्ठा से भर गया था। सुदूर दिशाओं की ओर देखने के लिये मन कुतूहलित हो गया था। अतः नदी तट पर बने हुए गगनचुम्बी प्रसाद पर चढ़ा। वहाँ मयूर पंख के दो छाने लगे हुए थे। नीलापूर्वक धीरे-धीरे इधर-उधर घूम रहा था। समीप में ही नदी सगम के जल में दोपहर के समय समस्त स्नान-मुखों का अनुभव कर तीर पर निकले हुए हाथियों के यूँही को देखा। उन (काले हाथियों) को अन्धकार समझकर दूर से ही चक्कर लगाते हुए चक्रवाक व्याकुलतापूर्वक देख रहे थे। तट की धूलि में बिहार करने के बाद खिन्ने हुए विविध पौधों से युक्त तरस्पत्नी का मर्दन कर रहे थे। कहीं-कहीं पर पाये जाने वाले कमल पत्रों के एकदेश पर खोकर उठे हुए, अपने चञ्चल खोखी की षोडश नीचे किये हुए, चपल भ्रमरों से मण्डित कमलवन में चरते हुए राजहंसों द्वारा तोड़े जाते हुए हाथी के बच्चों के दातों की तरह घुम्र कान्तिवाले कमल पत्रों की ध्वनिमाँ सुना। अपराह्न समय में स्नान के लिये आयी हुई कुण्डिनपुर की बधुएँ आश्चर्य रस की लहरियों में डूबते हुए पलकगुग्म, कम्पनहीन, नील कमलपत्र के विलास को प्रस्तुत करने वाले नेत्रों से उनके मुखचन्द्र की कान्ति को भी रही थी। तरङ्ग रूप भ्रूमङ्गिमा दिखा कर, दूर से उछलती हुई छोटी मछलियों के बहाने आँखों को खोलकर मानो नदी सगम की जलदेवता उनकी रूप-सम्पत्ति को देख रही थी। कुछ समय तक नीला कमल शायतियों को जिनके कमलों की भनभनाने हुए भ्रमरों के अज्ये घूम रहे थे, कुछ क्षणों तक कामदेव के अश्वों के बिहार के उपयुक्त समीपवर्ती भूमि को जिसमें मञ्जरियों से पूर्ण आम के पेड़ों की खेपियाँ विराजित थी, कुछ काल तक खिलने हुए फूलों के कारण मनोहर, वृक्षों और लताओं के कारण रमणीय गृह वाटिकाओं के समूह को, कुछ क्षणों तक फटफटाती हुई पताकाओं के यस्त्र-वल्लवों से सुशोभित महाराज भीम के अन्तपुर के अट्टालिका-समूह को, कुछ क्षण तक बिखरे हुए फूलों के रत्नों से मनोहर, नगर की गलियों को देखता हुआ बहुत समय तक वहीं खड़ा रहा।

चिन्तितवाञ्छ—

‘नोद्याने न तरङ्गिणीपरिसरे नो रम्यहर्म्यं न वा
पुष्पगुच्छरगमं गुञ्जदलितु क्रीडातडागेष्वपि ।
वास्याधूर्णितशोर्णपर्णतरला द्युर्मदीयाधुना
लुभ्यल्लुब्धकमोपितेव हरिणीं श्रान्तापि विश्राम्यति ॥१२॥

नोद्यानेति ॥ विश्राम्यतीति प्रत्येक धोऽयम् ॥ १६ ॥

सोचा भी—

माधी के चकोह न पड़े हुए पत्ते की तरह मेरी दृष्टि यकने पर भी छालची
झाधे से डरी हुई हरिणी की तरह न बगीचे में, न नदी तट पर, न रमणीय
कोठे पर, न उन विनोद की बावलियों में जहाँ के खिलने हुए कमलों के कोमल में
भ्रमर भनभना रहे हैं, विश्राम ले रही है ॥ १६ ॥

[गिरा हुआ पत्ता जैसे चक्करदार हुआ मस्तिष्क नहीं रह पाता वैसे ही उसकी
दृष्टि स्थिर नहीं रह पाती थी । यही हुई हरिणी विश्राम करना चाहती है किन्तु
जब लालची झपाधा पीछा करता है तो विश्रामी कहीं विश्राम नहीं कर पाती ।
राजा की दृष्टि के त्रिमे भी कहीं विश्राम का अवसर नहीं था । उद्यान आदि
पदार्थ मनोरम होने हैं किन्तु बिरह के समय में विनोद के पदार्थ उहीपक बन
जाते हैं ॥ १६ ॥]

अपि च—

न गम्यो मन्थानां न च भ्रमति भ्रमज्यविषयो
न चापि ग्रध्यंसं यजति विहितैः शान्तिकर्तनैः ।
भ्रमापेशाद्वक्त्रे कमपि विदधद्भ्रमस्तमं
स्मरापस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं धूर्णयति च ॥ १७ ॥

न ग-य इति ॥ भ्रम. सन्नेह । स चात्र द्रमयन्तीत्येवविषयः ॥ १७ ॥

यह स्मरापस्मार (कामरूप मियों मामक रोग) न मन्त्रों से जाने लायक
है, न दवा का विषय है, न सैकड़ों शान्ति-पाठों से हट सकता है । चक्कर में
शाल कर अङ्गों में असह्य पीड़ा भर रहा है । शौखों में चक्कर ला देता है
और मूर्च्छित कर दे रहा है ॥ १७ ॥

किञ्चान्यदद्भुतम्—

पौष्पा पञ्चशरा. शरासनमपि ज्याशून्यमिशोर्लता
जेतव्यं जगतां त्रयं प्रतिदिनं जेताप्यनङ्गः किल ।
इत्याश्चर्यपरम्पराघटनया चेतश्चमत्कारयन्
व्यापातः सुतरां विचारपदवीशब्धयो विधेयन्धताम् ॥१८॥

वैष्णो इति ॥ अत्र प्रथमोऽपिन्द्रदः शरासनस्य उवाशून्यस्य शरापेक्षया द्वितीयश्च जेतुरनद्वस्य इतिदिनत्रेनध्यजगात्रयापेक्षया वैषम्यम्यञ्जक ॥ १८ ॥

और भी आश्चर्य की बात यह है कि—पूत्र के बने हुए उसके पाँच ही बाण हैं, धनुष भी प्रत्यञ्चा से दून्य है और ईश्वर से बना है, जीतना सपूर्ण संसार है, जीतने वाला अनङ्ग (अगहीन) है। इन आश्चर्यपूर्ण पदार्थों की सफटना कर चित्त को समरकृत करता हुआ ब्रह्मा का व्यापार अचानक विचार-मार्ग में उतर नहीं रहा है अतः उसे वमस्कार है ॥ १८ ॥

एवमनेकविधवितर्कतरलितहृदये कुण्डिनगरवीथीधिथ्रान्तदृशि शनैरुद्वेहितमल्लिकाक्षपल्लवस्य सृदुनरतरद्वितसरितः कमलवनशायोः समर्पितयपुपि निषधभूभुजि, भुजगनिर्मोकधवले वसानो वाससी, रणम्मणिकङ्कुणैराकूर्यं पूरितप्रकोष्ठं धीमण्डपिण्डपाण्डुरिततनुरपूर्वं इव पर्यंतकः प्रतीहारसूचितः प्रविवेश ॥

परमिति ॥ मल्लिकाक्षो ह्रमविशेषः । चिरदृष्टस्यापि पर्वतकनाम्नो वामनस्या-
पूर्वमभिह पूर्वमभूषितस्य सप्रति धारितोपिभूषणभूषितत्वाद्यितोद्यन्तप्रना-
तास्पदाद्वा ॥

इस तरह विविध प्रकार के तर्क व वितर्क से हृदय तरंगित हो रहा था। कुण्डिनपुर की गलियों में जोखें बिधाम कर रही थी। कमलवन की हवा मल्लिकाक्ष जाति के हंसों के पक्षों की धीरे-धीरे कम्पित कर रही थी और नदी को अतिशय कोमलतापूर्वक तरंगित कर रही थी। निषधपति भी इसी में शरीर समर्पित किये हुए थे, सब तक प्रतीहार द्वारा प्रवेश की अनुमति पाकर पर्वतक राजा के पास आया। वह साँप के केचुल सहस्र बल धारण किया था, बजने हुए मणि-कङ्कुप से केहुँरी से लेकर कलाई तक का भाग भरा हुआ था। चन्दनपिण्ड के लेप से शरीर शुभ्र हो गया था। अब उसकी अपूर्व शोभा बन गई थी।

प्रविश्य च प्रकटितप्रणयप्रणामः प्रभुणा सविस्मयस्मितहंकारेणा-
भिभाषितः स्तोकाजमिनभ्रसंज्ञया विज्ञापयितुमारोभे ॥

भीतर आकर नम्रतापूर्वक प्रणाम किया। विस्मय से मुस्कराने हुए “हूँ” ऐसी ध्वनि करते हुए महाराज द्वारा कुछ कहे जाने पर थोड़ा उठे हुए भीहो के सरेव से बोलना शुरू किया—

‘देव श्रूयताम् । इनो गतवानहम् । अनन्तरमतिशयितस्वर्गान्मा-
र्गानेनेकविधचर्चाचारुणि चत्वरणि विलङ्घ्य, विदितमनः प्रसादान्

प्राप्तादितरत्रोरुयन्, इतमनः सस्मिनस्मरालसचलदेलाविलासिनो-
 विकारकृणितरोपेक्षणाक्षितदृश्यः, सेवाचिरामनिःसरत्सामन्तसंहृतम्,
 अरिरलगलन्मधुमञ्जरीपुञ्जपिञ्जरितसरससदकारवननिकुञ्जपुञ्जित-
 पुंनकोकिलकुलकलरवरमणीयोद्यानमालावलयितम्, उपान्तकृतमणि-
 मन्दुरानन्दिरनि रश्मिन्धपोपगोत्कर्षहर्षहेपितराजवल्लमतुरंगम्, उत्तुङ्ग-
 शृङ्गसंगतमङ्गलध्वजम्, अङ्गणोत्सङ्गरङ्गकोडाकुरङ्गविहंगम्, धमङ्गाङ्ग-
 रक्षिगक्षितरक्षान्तररममाणराजकुमारकम्, अनिसूक्ष्ममुक्ताफलरचित-
 तरङ्गरम्यरङ्गरंखा राजिराजिताजिर राजमबनमविशम् ॥

देव धृष्टानि मार्गाश्च वराणि च विरुद्ध, प्राप्तादितरत्रोरुयन्, ईदृशमवन-
 नविशमिति मन्त्रम् । चर्चा गन्धोदकमंचनपुत्रप्रकारादिवातावशात्प्रस्तावाग्नल-
 प्रवेशाद्विलक्षणा चासुग्राहि । मणिमन्दुराख्यत्र पठ्यसमाप्त ॥

“महाराज, सुनिये—यहाँ स चन्द्र के बाद स्वर्ग से भी अधिक मनोहर
 मार्गों तथा वाग्विनोदों के कारण मनोहर चौराहा को पार कर मन को प्रसन्न
 कर देने वाले राजप्रासादों को देखा । मुन्कुपती हुई वाराणसी के वासना-
 छोटन देते कटाक्षों से मेरा हृदय आकृष्ट हो गया । उस राजभवन में मैंने प्रवेश
 किया, जहाँ सेवा-कार्य की समाप्ति के अवसर पर सामन्त लोग बाहर निकल
 रहे थे । निरन्तर मधु वरसती हुई मञ्जरियों के कारण पीत रंग वाले सरस
 श्यामों के कुञ्जों में बैठ कर गाती हुई कोयल की मधुर कूह के कारण मनोहर
 वद्यानों की श्रेणियाँ से घिरा हुआ था । समीप में ही मणिनिर्मित वाग्विद्याल में
 देखे हुए मनोहर, लालन-पावन की उन्मृष्टता के कारण प्रसन्न, राजप्रिय बोड़े
 हिनहिना रहे थे । ऊँचे शिखरों पर मगलध्वज लगे हुए थे । आंगन में विनोद-
 मृग हटन रहे थे । दूसरे वक्ष में विहार करता हुआ राजकुमार अगरक्षको
 द्वारा सुरक्षित था । छोटे-छोटे मुक्ताफल से बनी हुई तरंगाकृतियाँ के
 कारण रमणीय रंगरेखाना (बन्धनाश्र) की पक्षि स आंगन सुगोभित हो
 रहा था ।

अनिमननोद्धारिणि यत्र सुपुष्करमालानि क्रीडावापीपथांसि नाग-
 श्रूयं च, सारधाणि लीलोलोद्यानसारसमिथुनानि सेवकक्रविवृन्दं च,
 विलम्बितानि काञ्चनकुङ्कुमदामानि गीर्णं च, अनलसङ्घानि लक्षप्रदीप-
 वतिंसुखानि प्रेरणकं च ॥

अत्रादि ॥ यत्र राजभवने । सुपुष्पश्रेणीनि पयासि । श्रूयं च सुपुष्प पुष्कर शुद्धाप्र-
 यस्य तथोक्तम् । आलानमर्गलनस्तन्मोऽस्यास्तीति । तथा सह भारवै सारावाति ।
 वृन्दं च सारोत्कृष्टा वागी यस्य तथाविधम् । विनोदम लम्बायमानीकृतानि ।

गीतं च रघराकृतविलम्बोपेतं तानोपेतं च । जननेन ज्वालात्तपनेन सङ्गो देशम् ।
प्रेक्ष्यकं च नाट्यसमनलसमोज्ज्वलम् । उच्चै रघाने गीयमानवान् । तथा गान
मह्यस्ततीति हनि । छप्पसक्यद्वयपनीना हि देशसु याचकश्च दीपा ज्वालयन्ते
इति श्रूयति ॥

उम अन्यन्त मनोहर (राजभवन) मे विनोदवाचनियो का जल सुन्दर
कमलो की पत्ति से युक्त है और हाथियो का समूह सुन्दर पुष्कर (गुच्छ) और
आलान (बन्धन) से युक्त है । विनोद-वाटिका के सारसों के जोड़े सारव
(आरव (ध्वनि) से युक्त) हैं । मेवज कविया का समूह सारवाणि (तथ्यपूर्ण
वात कहने वाला) है । सुवर्ण और कुङ्कुम की मालाये विलम्बित (विरोध दृष्टि से
लटकाई गई) हैं और गीत विलम्बि (मन्दर स्वर वाला) है तथा तानि (तान
से युक्त) है । लाखो वित्तियो का प्रकाश ज्वालामय है और नाटक ओजस्वी
तथा गान युक्त है ।

[यह सम्पूर्ण अनुच्छेद मिल्ट है । बायीपक्ष-पक्ष मे—सुपुष्करमाल शब्द का
बहुवचन सुपुष्करमालानि है । नागपुष्प-पक्ष मे—सुपुष्करम् और आलानि पृषक्
पद हैं । अर्थात् नागपुष्प (हाथियो का गुच्छ) सुन्दर गुच्छवाला है और आलान
(बन्धन) से युक्त है । सारसमिथुन पक्ष मे—सारवाणि—सारव शब्द के
प्रथमा का बहुवचन है । अर्थात् सारसों के जोड़े सारव (कलरव) से युक्त हैं ।
आरव (आवाज) से युक्त जो होगा उसे सारव कहा जायगा । सेवक कवि
द्वन्द्व-पक्ष मे—सारवाणि-नपुंसक लिंग प्रथमा का एकवचन है । अर्थात् आश्रित
कवियो की घाणी तथ्य से भरी है । काञ्चनकुङ्कुमदामानि का विलम्बितानि
विरोधमे है । राजभवन को सजाने के लिए मालाये बड़ी सुन्दरता से लटकायी
हुई हैं । गीत पक्ष मे—विलम्बि और तानि अलग-अलग पद हैं । दोनों ही गीत
पद के विरोधमे हैं । नपुंसक लिंग मे प्रथमा के एकवचन हैं । अर्थात् वही गाये
जाने वाले गीत दीर्घ आलाप के कारण मन्दर-गति सम्पन्न हैं और तान स्वर से
सयुक्त हैं । प्रदीपो का प्रकाश अनलसम्प (ज्वालापूर्ण) है । वित्तिसुखानि का
अनलसगानि विरोधमे है । ऐसा कहा जाता है कि लक्षपति आदमी के पर एक
लाख वित्तिया जलायी जाती हैं । उन लाख वित्तियो का प्रकाश अनल को साप
तिया हुआ है । अर्थात् अनल से सयुक्त है । प्रेक्षक पक्ष मे—अनलसम् और
गानि पृषक् पृषक् पद हैं । प्रेक्षक (दृश्य) जनलस (ओजस्वी) है और गानि
(गान से युक्त) हैं । जो दृश्य दिखाये जाने है उनका कहा ओजस्वी प्रभाव
लोगों पर पड़ता है । बीच-बीच मे समीप की बोवना से उसे अधिक रोवक बना
दिया जाता है ।]

किं बहूना—

सुम्यन्तेजोराशेर्लक्ष्मीजननस्य रत्ननिलयस्य ।

तस्योपरि प्लवन्ते चारैरिव वर्णकाः सर्वे ॥ १९ ॥

हे पण्डित । तज्जे राशिर्बहवान् लक्ष्मीजननस्य । लक्ष्मीविष्णुपत्नी शोभा च । तस्यानृतस्य तस्य सागर पमस्योपरि वाका न्योता प्लवन्ते तरन्ति । अपरि विदुश्चुत्वाद्गन्तव्यमस्या वाङ्ममेव प्रयन्मीनि भाव । वारो जलानि धायन्ते-
ऽग्निनि चरि ॥ १९ ॥

वर्णक क्या कहें—

वर्णन रत्न वाले लोग उस नन्द , धामावर्द्धक, तथा रत्न-सम्पन्न राजा का वर्णन सागर की तरह ऊपर ही ऊपर करने हैं ॥ १९ ॥

[प्रथम पद द्वितीय चरण की पञ्चवर्णी रिप्ट है । सागरपञ्च—तज्जराशि (बहवान्) म सुक्त लक्ष्मीजनक (लक्ष्मी का पिता), रत्ननिलय (रत्नों का भवन) बाधि सागर , समुद्र को तज्जराशि कहा गया है क्योंकि उसका नीचे एसी बात नहीं रहती है जो निरन्तर जागृत धारणा से मिश्रित नदियों के अपार जल को जल बाली है । राजा भी तज्जराशि, लक्ष्मीजनक तथा रत्ननिलय है । अर्थात् अयन्त नरस्त्री है । शोभा सर्वार्थक या राज्य की अधिक उन्नति कराने वाला है । रत्ननिलय है । अर्थात् रत्ना का खजाना है । वर्णन करने वाले लोग उनके गुणों व ऊपर ही ऊपर के अर्थ का वर्णन करते हैं । उसकी गहराई में पहुँचना बड़ा कठिन है । वारिषि एव समुद्र अर्थ में अधिक प्रसिद्ध है किन्तु वारिषि शब्द भी सागर अर्थ में प्रयुक्त होना है । वारु शब्द जल का वाचक है । वारु (जल) जिसमें रक्ता जाय उसे बाधि कहते हैं ॥ १९ ॥]

तत्र चलत्कञ्चुकिसङ्कुलं पातालमिवान्तःपुरमनन्तालयं प्रविश्य विविधसुमसम्पन्नपुण्यपादपरिकरिताङ्गवापीपरिसरचलच्चक्राके चन्द्रशालाशालिनि, सौन्य इवानेकभूमिकामाजि, धनंजय इव सुनद्रान्विते, कुचमंशाप्यान द्रव्याश्चित्त्रविचित्रमिच्छिमाजि, तुहिनाचलोद्युत्पाद्यमाने सुधाप्रप्लवस्त्रे घाम्नि प्रजारलोपिलसत्सत-
न्तिसर्ता सतमभूमिनायाम् इतो मुद्यन्तानायने निविष्टाम्, इतो गता न्ताः कुञ्जगामनङ्ग्यशस्त्रद्वार्तायनिरुधिनोदारम्भिणी सम्भाप-
यन्तीम्, अनन्तरतरललोचनालोकेनीलोत्पलोपहारमिव त्वद्वि-
ष्टितायै दिशे दिशन्तीम्, उत्तरीयांशुकस्याच्छतया दृश्यमानमदनराग-
वर्णाकिणानुकारिकस्तूरिकागङ्गपत्रलताङ्कितकुचकलशश्रियम्, अष्टमी-

शशाङ्कशकलार्थाशोभामाजि ललाटपट्टे स्मरपरवशत्रिपुररूपेति
 'ममेयं ममेय ममेयम् इति संहर्षात्कृतं स्ववर्णानुषारिणीकारचिह्न-
 मिव कुङ्कुममृगमदमलयजरसरचितत्रिपुण्ड्रवरेखाश्रितपमुद्वहन्तीम्,
 आलोहितेन च त्वद्वार्तामृतपानान्द्रप्रवालप्रणालकेनेन कर्णप्रणयिना
 चान्द्रपल्लवेन विराजितवदनाम्, आसन्नमणिमिस्तिदर्पणसंज्ञान्त
 प्रतिविम्बनया त्वत्सगमवाञ्छावृत्तसत्तापसंविभागर्यमिव बहुन्यात्म
 रूपाणि सृजन्तीम्, आसन्नवर्तिनीभिर्घोणाद्रिविनोदविदुषीभि समान
 धयोवेपाभि सखीभि सरम्बतीमिव सञ्जलविद्याधिदेवताभिरुपास्य
 मानाम् उन्मिषत्कुसुमाभरणरमणायाभिश्चाभरणादिणीमिर्चनदेवता
 भिरिव शरीरिणीं घसन्तमासधियनुपसेष्यमानाम्, अनुलेपनपुष्प
 पाणिभि प्रसाधिकाभिर्भयानां मित्रानेकनाम्नायकनारीमिराराध्यमा
 नाम्, इतस्ततो निपतन्मण्डनमणिमयूखमञ्जरीजालच्छलेनामान्तामिव
 कान्तिरसधिसरमुत्सृजन्तीम्, अशेषाङ्गाययत्रेषु प्रतिविम्बतैरासन
 विभ्रमिस्तिरूपकैर्मायाविभि सुरासुरैरिव विधीयमानादलेषाम्, अत्र
 स्थिते पद्मरागमणिदर्पणे बन्धर्पातुर रागिणि शशिनीव करुणयार्पित
 वञ्छायाम्, अशेषजगद्विजयाल्लशालामिव मन्मथस्य सङ्केतवसति-
 मिन समस्तसौन्दर्यगुणानाम्, अधिदेवतामिव सोभाभवस्य, धिपणि
 मिव लाघव्यस्य, शिल्पसर्वस्यपरिणामरेखामिव विधातु, अनन्त
 संसाररोहणीकररनकन्दली दमयन्तीमद्राक्षम् ॥

नन चेति ॥ कञ्चुकिनो महवृक्षो उरगाश्च । (चट्टनिलय शेषनिलय च ।)
 प्रधिरप ईशविधे चाग्नि गृहे, सप्तममूकिकासप्तमवयव, तत्र रिधते इतोमुख एव
 हस्तादिसङ्केतकल्पिते पुत्र, वातायने गवाक्षे, निविष्टाभानीना, दमयन्तीमद्राक्षमिति
 सप्तमवयव । चन्द्रशाला विरोगृहम् । शैलपो मट । भूमिका गृहचणा वेवपारण च ।
 शोभनानि भद्राणि गृहाययवविशेषास्तद्विवे । एषे सुभद्राङ्गुमपत्नी । चाक
 वित्रेण विचित्रा मिसीर्मज्जते । अग्यत्र चित्रविचित्रौ शा-तनुसुतौ । तौ च कुलधरवा
 ना मिसिमूतौ । तरकलत्राम्यामिवकाङ्गालाग्या पाण्डुघनराष्ट्रपोर्यष्ट-नात् । तथा
 लग्ना सप्तमसौरादित्यस्य सप्तमोऽथा यत्र तस्मिन् । अष्टमी शशाङ्कमरुतेति । मण्ड
 राशिनो हि धिय ललाट क्षयति । त्रयाणां मत्करजस्तममर्मा पुनराश्रितुरथा ।
 यथा—'न याचतेऽहं त्रिगण परमेशम्' इत्यत्र त्रयाणां धर्माहीना गण । प्रधा
 य च चन्द्रमिद्वृते चण्डिकाचरित—प्रियत्रिवर्गश्चक्रम सदाभयम् इति । कम
 धारयस्तु सज्जाममेव । मणिदर्पणलक्षण शक्तिनि काङ्क्षयादर्पितप्रतिवृत्तिमि पर्थ ।
 अवज्ञाता हि राप्ती भ्रियते । संसार रोहणीगिरि, दमयन्ती च रानप्ररोदशलाका ॥

धूमन द्वे कञ्चुकियो से व्याप्त तथा अनन्त परा से युक्त उक्त भवन म
 पाताल की तरह प्रवेश किया ।

[पाताल लोक कञ्चुकि-संकुट (मर्षों में संकीर्ण) रहता है । राजभवन कञ्चुकि-संकुट (कञ्चुकियों में संकीर्ण) है । पाताल जननालय (क्षेपनाग का भवन) है । राजभवन जननालय (अनेक कौटारियों में मग्न) है ।]

विभिन्न पुण्य-सन्निधि में सम्मिल पवित्र वृक्षों से पिराई हुई आंगन की बावनी के तट पर चक्रवाक घूम रहे थे । वह भवन, चन्द्रशाला (सर्वोच्च प्रकोट) में सुशोभित था । नट जैसे अनेक भूमिका (विभिन्न पात्रों का वेष) धारण करता है वैसे वह भवन भी अनेक भूमिका (मन्त्रियों, को धारण करता था । अर्जुन जैसे सुमद्रान्वित, सुमद्रा नाम की पत्नी में युक्त) थे वैसे वह भी सुमद्रान्वित (सुन्दर गृहभागों में युक्त) था ।

कुहवश का आख्यान जैसे चाकचित्र + विचित्र + भित्तिभाक् (सुन्दर चित्र और विचित्र नामक मूत्र म्रोतो को धारण करने वाली) है वैसे वह सुन्दर चित्रों के द्वारा विचित्र भित्तिपों को धारण कर रहा था । हिनालय के ऊंचे छिखरों की तरह उसके विभिन्न उच्छ्वस भाग घूने से धवन किये गये थे । उसके सातवें प्रसाद पर जिसकी ध्वजप्रेतिया धूर्त के घोड़ों के साथ विराज कर रही थी, छिपकी के सामने इधर ही की ओर मुंह कर बैठी हुई कमगन्ती को नैन देखा ।

[शैल्य, धनञ्जय तथा कुहवशाख्यान इन तीनों उपमानों के साथ भवन की वैद्य शाब्दी समागता है । कुहवश की भित्ति (मूत्र पुरष) चित्र और विचित्र थे । इनकी पत्नी का नाम अम्बिका और अम्बाला था । इन्हीं से पान्थु और धृतराष्ट्र उत्पन्न हुए थे ।]

आप के कथा-प्रसङ्ग से विनोद कण्ठी हुई यहां से लौटी हुई कुबड़ी और नाटी बन्पाओ से घातें कर रही थी । निरन्तर अपने चंचल लोचनों से देखती हुई आप के द्वारा सन्नायित दिशा कोमानों नीचे कमजो का बरहार दे रही थी । अचर की अतमन्त निर्मलता के कारण स्तन-बन्ध की घोभा स्पष्ट दिशापी पड़ रही थी । उस पर लगे हुए कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्रों तथा लताओं के चिह्न काम-बाण के आघात-चिह्न की तरह लग रहे थे । उसका कलाट कटुमी क चन्द्र-चन्द्र की तरह घोभा धारण कर रहा था । उस पर कुहूम, कस्तूरी तथा चन्दन के रसों से विपुण्ड्र के चिह्न बने थे । ऐसा प्रतीत होता था कि कामन्धरा सत्व, रज और तम, इन तीनों पुष्टियों ने "यह मेरी है, यह मेरी है" इस तरह की प्रसन्नता व्यक्त करते हुए अपने स्वीकार-चिह्न के रूप में अपने अपने वार्तों को अङ्कित कर दिये थे ।

कानों पर रखे गये लाल रत्न के नवीन पल्लवों से उसका मुहमग्न सुशोभित था । वे बालपल्लव आप के कथामृत पान के जिदे मारों कानों से

स्नेह किये हुए थे। समीप की मणिमय भित्ति रूप दर्पण में दिखाई पड़ रहे उसके प्रतिबिम्बों में ऐसा लग रहा था कि आप के मिलन की इच्छा की अपूर्ति से होने वाली वेदना को बांट देने के लिये कई शरीर धारण की हुई थी। समीप में रहने वाली, बीणा आदि द्वारा मनोरञ्जन कराने में निपुण, तथा दुःख ही अवस्था तथा वेप वाली सखियाँ द्वारा सेवित की जा रही वह समस्त विद्याओं की अधिदेवताओं से सेवित हो रही सरस्वती की तरह प्रतीत हो रही थी। खिलने हुए फूलों के अङ्कुरों से मनोहर, धँवर धारण करने वाली स्त्रियों द्वारा ऐसा लग रहा था कि शरीर धारण की हुई वसन्त काल की लक्ष्मी-मयित हो रही थी। हाथ में अङ्कुराग और फूलों की ली हुई मृदा-धारण करने वाली स्त्रियों से ऐसा प्रतीत होता था कि वह अनेक स्वर्ग-सुन्दरियों द्वारा आराधित होती हुई पार्वती थी। आभूषणों में जड़े हुए मणिवा के छिटकते हुए किरण मञ्जरी समूह के वहाने शरीर में अँटती हुई वान्ति-रस की धारा को छोड़ रही थी। समीप की भित्ति पर के बनाये गये विग्रह उसके निर्मल शरीर पर प्रतिबिम्बित हो रहे थे। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव उसका आलिङ्गन कर रहे थे। पद्मरागमणि के दर्पण पर उसकी छाया दिखाई पड़ रही थी। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि कामवीरिष्ठ चन्द्रमा के ऊपर दयावत् अपनी छाया समर्पित कर दी थी। कामदेव के विश्व विजय के अस्त्रागार की तरह प्रतीत हो रही थी। भगवन्त सौन्दर्य-गुणों की सकेतस्थली की तरह थी। सौभाग्य की देवी की तरह, सौन्दर्य की दुकान की तरह, ब्रह्मा की सम्पूर्ण शिल्पकला की परिपक्वता के ममूने की तरह, अनन्त संसार रूप रोहण नामक पर्वत की रत्नमयी कन्दली दमयन्ती की मूर्ति देखा।

[अनवरत—दमयन्ती की दृष्टि नीलकण्ठ सहस्र थी। नल जिस दिशा में बैठा था उस दिशा की भी उसे सम्मान देना था। अतः अपनी दृष्टि अर्ध कमलावली से उसे सम्मानित कर रही थी। तगरीवासुक उसके वस्त्र का अञ्कुर अग्रगन्त सुन्न तथा महीन था। अतः इसकी हुई भी स्तन-सोभा प्रगट हो जाती थी। स्तनों पर कस्तूरी के लेप से विभिन्न पत्रों तथा लताओं की रचना हुई थी। ऐसा लगता था कि काम अपने वाणों से जो प्रहार किया था उन्हीं के वे चिह्न थे।

स्मरपरवशनिपुणै—दमयन्ती अपने ललाट पर त्रिपुण्ड्र लगायी थी। त्रिपुण्ड्र की तीनों ही रेखायें तीन रङ्ग की थीं। तीन वस्तुओं से बनी भी थी। एक रेखा कुङ्कुम की थी, दूसरी कस्तूरी की और तीसरी चन्दन की। चन्दन

की रेखा शुभ्र थी जतः वह सत्त्व गुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कुङ्कुम की रेखा लाल थी जतः वह रजोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कन्नूरी की रेखा काली थी यतः तमोगुण का प्रतिनिधित्व करती थी। कवि ने कल्पना किया है कि सत्त्व, रज और तम ये तीनों पुरुष हैं। तीनों ही बृह रहे हैं, 'यह हमारी है, यह हमारी है।' तीनों पत्नी रेखाएँ तीना गुण-पुरुषों की स्वोद्भूति रेखाएँ हैं।

जस्यन्तमणि—दमयन्ती जिस भवन में रह रही थी वह मणि का बना था। उसकी भित्ति में दमयन्ती का चित्र प्रतिबिम्बित होता था। भित्ति के चारों तरफ उसके चित्र दिखाई पड़ने थे। उस ऐसा लगता था कि नन्दिमणि के मुख को एक धारी से वह न सह सकती थी। अतः जनेक धारी को धारा कर उस मुख को घाटना चाह रही थी। कुछ थोड़ा-थोड़ा घाट दिया जाय तो कम हो जाता है।

जनेमाङ्गावमवेयु—भवन की भित्ति पर देवों और दानवों का चित्र बने हुए थे। दमयन्ती के अत्यन्त निर्मल शरीर में वे सभी प्रतिबिम्बित होते थे। अतः ऐसा प्रतीत होता था कि मायावी देव और दानव माया द्वारा उसका आशङ्कन कर रहे थे।

कथापारितच्छायाम्—मणिमय दर्पण में उसका रूप प्रतिबिम्बित था। वह दर्पण चन्द्रमा सदृश था। ऐसा प्रतीत होता था कि कामपीडित चन्द्रमा पर दया कर अपनी छायामात्र समर्पित की थी।

इस अनुच्छेद में कल्पना की बहुलता है। इसमें दमयन्ती के स्वर्ण की अनेका उसकी समीप की सामग्री-बाहुल्य का परिचय अधिक मिलता है।]

दंष्ट्रणामृतमालाकामधलोम्य च तामातद्वर्षविस्मयकोतुकोत्थानित-
चक्षुश्चिन्तितवाहनम् ॥

नेत्रों के लिये अमृतमाला सदृश उस दमयन्ती को देख कर प्रसन्नता, आश्चर्य और लज्जा से जीर्ण उठा कर देने सोचा—

इयं हि—

स्मरराजराजधानी मङ्गतवल्लभो विलामविहयानाम् ।

शृङ्गाररङ्गमाला हरति न याला मनः कस्य ॥ २० ॥

“सम्राट् कामदेव की राजधानी, विनाश रूप पक्षियों का मङ्गलमय स्थान और शृङ्गार की रङ्गमाला यह माला किसीके मन का हरा नहीं करती ॥ २० ॥

[राजधानी उन्मूलन स्थान में बनायी जाती है । काम तो ऐसा राज है जिसका शासन पूरे ब्रह्माण्ड में माना जाता है । ब्रह्माण्ड-शासक काम भी अपनी राजधानी दमयन्ती की ही माना है । हाव भाव आदि विलास ही पत्नी है और उन विरास विरगमो का वासस्थान दमयन्ती है । शृङ्गार की तो वह नाट्यशाला है ॥ २० ॥]

अपि च—

दग्धो विधिर्विधत्तं न सर्वगुणसुन्दरं जनं कमपि ।

इत्यप्यादनयादिव हरिणास्त्री वेधसा विहिता ॥ २१ ॥

व-४ इति ॥ दग्धदग्धो निन्दार्थः । दग्धो निग्धो विधि (यत) सर्वगुणपरिपूर्णं कमपि जनं न विधत्ते इति बोद्धव्यपवादः । तद्वयादिव 'तेनास्त्री सुन्दरी विहिता' तेन विधिना अपवादोद्भिन्नेन । असाविति सादादृष्टा । सुन्दरीति समप्रगुणसौन्दर्योपेता । अतस्तस्या मृशयो सप्रपवादो न भविष्यतीति । 'हरिणास्त्री' इति पाठस्तु अस्मिन्नास्त्रीसौन्दर्यार्थो न समप्रगुणसुन्दरतां बलीयुषट्पदपरतया निर्वाहः ॥ २१ ॥

"एतन्मात्र विधाता किसी को भी सभी गुणों से सुन्दर नहीं बनाता है" मानो इसी निन्दा के भय से उसने इस सुन्दरी का निर्माण किया ॥ २१ ॥

[हरिणास्त्री पद वहाँ सुन्दरी इस सामान्य अर्थ का वाचक है, क्योंकि उसके विशेष अर्थ को ही लेने पर दमयन्ती के केवल नेत्रों की ही प्रशंसा सन्देही, कवि तो उसे वहाँ सभी गुणों और सभी अङ्गों से सुन्दर बनाने की चेष्टा कर रहा है ॥ २१ ॥]

किं चान्यत्—

ल्लाघवपुण्यपरमाणुदलं तदन्य-

दन्य. स चापि निपुण. खलु कीऽपि वेधाः ।

येनाद्भुता कृतिरियं विहिता विशिष्ट-

कार्येण कारणविशेषगुणोऽनुमेयः ॥ २२ ॥

व-४ इति ॥ येन विरूपमल्लाघवदलपाटवेन वेधा दमयन्तीं सृष्टवान् । तदलपाटवमन्यम् । उपाधः । दलपाटव वेधाश्च अगद्विर्माद्विलक्षणविलक्षणः । तद्वदप्यपि विशेषपदवाह—मेनेत्यादि ॥ येन दलपाटवेन वेधसा चेति ज्ञेयम् । नानार्थो हेतुमाह—विशिष्टेयादि ॥ २२ ॥

सौन्दर्य के वे परमाणुदल कुछ दूसरे ही है और वह निपुण ब्रह्मा भी कोई दूसरा ही है जिसके द्वारा यह विशेष कृति निर्मित हुई है, क्योंकि विशिष्ट कार्य के ही द्वारा कारण के विशेष गुणों का अनुमान किया जाता है ॥ २२ ॥

[परमाणु पूज्य मे ही सृष्टि होती है। जिन परमाणुओं मे समार के लोग बनाये जाते हैं उनकी अपेक्षा कुछ भिन्न एवं के परमाणुओं से समयन्ती की मूर्ति बृद्ध है। जो सामान्य ब्रह्मा लोगों की सृष्टि करते हैं उनकी अपेक्षा बहुत बड़ी दूसरे ही ब्रह्मा हैं जिन्होंने समयन्ती की सृष्टि की है। समयन्ती सबको अपेक्षा विरूप है अतः उनके कारण भी विरूपण होते ॥ २२ ॥]

एवं विचिंतयन्ते सापि मां पुष्कराक्षम् विननुविनर्त्तनेन मनाम्-
शक्तिरुत्तराकन्दलोकमिन्दुमयमन्त्रलोकाय स्वागतप्रशान्तिरम्
“नमो बहो कालादमृन्मुद्रमानमद्योदयोनिनिमिद मन्त्राण्डपिण्डोक्तं
ह्रीं ह्रीं ह्रीं . अकालादमृन्मुद्रमानमद्योदयोनिनिमिद मन्त्राण्डपिण्डोक्तं
गोपिताय विभागा . शिवाय मन्त्रा सन्ताना दक्षिणा दक्षिणम् .
उग्रिष्ठि इव सहायि, अमृतद्रवादिन इत्येजां विनोऽयं जन इत्यभि
धाय ‘पर्वतक, कश्चित्कुशली परचलद्वन्द्वदायनलो नल’ इति मिन-
मुपनयुरया गिरा सनमापत ॥

प्रमिति ॥ ‘समराज-’ इत्यदिपद्यप्रयेणैवमुद्रमान पुष्कराक्षे विवेदित मा ‘हे
पर्वतक, कश्चित्कुशली परचलद्वन्द्वदायनलो नल’ इति वचनेन समयन्ती सम्रापि-
तवती। दायनलोपमानेनामनेअपि विरहमन्त्रापदेनैव मल्लय अयनकि। मना-
शक्तिनेपायबलोकनकिमाविनोयनम् ॥

इस तरह मैं सोच ही रहा था तब तक वह भी पुष्कराक्ष द्वारा मेरे आगमन की सूचना पाकर यथोचित शीघ्रता से अपनी अङ्गुर सहित बर्तन को धोवा घुमाकर मुझे देनी। बर्तन को घुमाने के कारण उसके काँचों में लगे हुए कर्णदूष्य हिन गये थे। स्वागत के बाद, “बाहू! बहुत समय के बाद आज सुन्दर प्रभाव हो गया है। कन्धकार की राशि मे घिरा हुआ कुम्भिन नगर प्रकाशित मा हो रहा है। नवी-संगम के समीप की वनस्पती असमय मे प्रदुल्लित वसुधोत्साह का उत्सव मना रही है। बहुत दिनों के बाद दक्षिण दिशा शुभ लक्षणा मे पुनः पूर्ण है। सद्यः पर्वत आ सा गया है। माओ अमृत-धारा मे सिक्त होने के कारण मैं पुनः उन्नीविन हो रही हूँ।” यह कह कर, “पर्वतक, सद्यः सैन्य-के लिये दायनल महाराज, नर कुशलपूर्वक तो हैं न ?” इन तरह मुत्तुरावती हुई अल्पल सुन्दर वाणी मे बोली।

अहमपि प्रपन्नः यथोचितमनन्तरमनित्वरितसखीजनोपनीतमास-
ननध्यान्य देवेन प्रद्वितानि ताभ्यामरणोपायनान्मुपायनम् ॥

मैं भी प्रणाम करने के बाद सखियों द्वारा शीघ्रता से लाये हुए उचिन आसन पर बैठ कर बाप के सेवे हुए उन गुरुगोपहारों को प्रस्तुत किया।

आदरेण तया गृहीतेषु तेषु, बहुमते मयि, प्रकान्ते त्वद्गुणग्रहण-
गोष्ठीव्यतिकरे, नर्मसुखात्तापलीलयातिक्रामति स्तोककालकलापे,
पुष्कराक्षोऽप्यभाषत ॥

सम्मान के साथ उन्होंने उन्हें ग्रहण किया। मुझे भी सम्मानित किया।
आप के गुण गान का प्रसङ्ग छिट गया। मधुर सुख संवाद नीच में कुछ
समय व्यतीत हो रहा था, तब तक पुष्कराक्ष बोला—

देवि, विज्ञापयामि यद्यमयम् ॥

‘देवी यदि आप अभय दें तो सूचित करें।

एवमनुश्रुतमस्माभिः ‘किल सकलनाम्निनायकपुरन्दरपुरःसराः
मयंऽपि लोकापालस्यामभिलषन्तोऽन्तःकरणारण्यलम्पमश्नदायानला-
नञ्जमायान्तमभ्यर्थितयन्तो यथा महानुभावा भवन्ति हि भवाद्दशाः
परोपकारव्रतधर्माणः, तद्देव प्रार्थ्यसे न्यग्रयोजननिरपेक्षेण त्वयाऽमदर्थं
दमयन्ती वरणीया, इति ॥

हम लोगो ने यह सुना है कि समस्त स्वर्गवासियों के नेता, इन्द्र
आदि सभी लोकपाल आप को चाह रहे हैं। अपने अन्तःकरण रूप अरण्य
में लगे हुए काम-डावानल (वनाग्नि) से जजने हुए महाराज नल जब सा रहे
थे तो देवताओं ने निवेदन किया—‘आप ही जैसे महानुभाव परोपकारव्रत
धारण करते हैं। अतः यही निवेदन है कि आप अपने प्रयोजन की अपेक्षा न
कर हम लोगो के ही लिये दमयन्ती को चुने।’

तद्देवि, देवदूतकार्येणागतो निपथेश्वरः ॥ पृच्छतु वा देवी पर्वत-
कम् ॥

देवी। अब (आप को विदित हो कि) महाराज निपथेश्वर (नर)
दूतकार्य में यहाँ आये हुए हैं। अबवा आप पर्वतक में ही पूछें ।’

इति श्रुत्वा पुष्कराक्षभाषितम्, ईषद्विषादविलक्षस्मितभ्रमरां दृशं
मयि सावि संचारितयनी ॥

पुष्कराक्ष की इस बात को सुन कर, विषाद के कारण उदास होकर
अत्यन्त स्वल्प धुन्नी हुई आँखों को मेरी ओर घोडा घुमायी।

मयापि सदादिते पुष्कराक्षवचने तस्मिन्, आकस्मिककटोरकाष्ट-
प्रदारव्यथामिवानुभवन्ती, चिन्दतु चोणाकणो मामुर्ध्वमितीव प्रति-
पन्नमीनता, लभेतां कर्णोत्पले परमागमितीव मुकुलितनयना,

प्राप्नोतु शोभां मुक्तावली दीप्तिजालमिनीव मुक्तस्मिता, गच्छतु च्छायां
कण्ठावलम्बिनी चम्पकमालेयमिनीवाङ्गीकृतवैद्यर्या लभतां लीला-
कमलमिदं सौभाग्यमिनीवोच्छ्वसितयदना, सा क्षणमभूत् ॥

जब मैंने भी पुष्करास की उस बात का समर्थन किया तो उसे अचानक
जठोर काष्ठ-प्रहार की तरह वेदना का अनुभव हुआ । “बीजा की ध्वनि अब
माधुरी धारण करे”, मानो इसी चक्षुष ने उसने मौन धारण कर लिया ।
“काना में लगे हर कमल ही अधिक घोना प्राप्त करें”, मानो इसी से उसने
आँख बन्द कर ली । “मुख की माला का किरण-मुक्ता घोना का अनुभव
करे”, मानो इसी लिये मुक्ताम छोड़ दिया । “कण्ठ में जटकी हुई चम्पक की
माला ही घोभासील बनी रहे”, मानो इसी लिये मलिनता धारण कर लिया ।
“लीला-कमल ही सौन्दर्य प्राप्त करें”, इसी लिये मुख की वेदना-व्यग्र कर
लिया । कुछ क्षणों तक उसकी यह स्थिति बनी रही ।

[जब दमयन्ती बोली थी तो बीजा की ध्वनि उसकी ध्वनि के सामने
फीकी लगी थी । जब वह मौन धारण कर लेगी तो बीजा की ही ध्वनि को
सोच अधिक मधुर समझेगी । उसके नेत्रों के समस्त कमलों की घोभा अत्यन्त न्यून
थी । जब उन्हें बन्द कर ली कमल ही घोभाधारी बने । जब वह मुस्कुराती
थी । उसकी मुस्कुराहट की कान्ति के समस्त मणियों की कान्ति फीकी पड़
जाती थी अतः मुस्कुराहट बन्द हो जाने पर मणि ही कान्तिशील रह गये ।
उसके मलिन हो जाने पर ही चम्पक-माला की घोभा-सम्पन्न माना जा
सकता था । वेदना के कारण उसके मुख के विवर्ण हो जाने पर ही लीला
कमल को सुन्दर माना जा सकता था ।

नल के दौर्घ्य-कार्य-निमित्तक आगमन सुन कर वह अवर्णनीय व्यथा का
अनुभव करने लगी । मुख विवर्ण हो गया । आँखें बन्द हो गयीं । कानी बन्द
हो गयी । शरीर हतप्रभ हो गया ।]

तत्र च ग्यनिकरे—

विगलितद्विलासमपरसमाश्मिकजातमङ्गशृङ्गारम् ।

मूर्किनमिव मूर्च्छितमिव मुद्रितमिव भवनमिदमासीत् ॥ २३ ॥

उसकी यह चक्षा होने पर—

विगलितशीलता, रसमूयता तथा अस्मान् शृङ्गार-भङ्ग के कारण वह
भवन मृक की तरह, मूर्च्छित की तरह तथा सङ्कुचित की तरह प्रतीत हो
रहा था ॥ २३ ॥

राजा तु ‘पर्वतक, ततस्ततः’ ॥

राजा—पर्वतक, इसके बाद क्या हुआ ?

पर्वतकोऽपि 'देव, श्रूयताम् ॥

पर्वतक—महाराज, सुनिये—

अतः परम्—

इपन्नि चतुर्द्वन्द्वमलसहस्रदन्तप्रधामञ्जरी-
रोचिष्णुस्मिनमन्यरां मयि दशं सचारयन्तो मनाक् ।
अस्यन्ती करपट्टममृद्धमघरे यन्धूकबुद्धयागतं
घारेधारमरुण्यत्तरलितस्तोकायतंसं शिर ॥ २४ ॥

इसक बाद—

स्वल्प नि चतु कुन्द पुष्प की कान्तिहा सहस्र दाँतों की कान्ति-मञ्जरी से मनोहर प्रतीत होती हुई, मुस्कुराहट से गम्भीर भाँवों को धोखा मेरी ओर फेरती हुई, करकमल के भ्रमर का जो जपाकुसुम (अच्छल का पुष्प) समझकर अघरो पर आ गया था, हटाती हुई, कर्ण-पुष्प के स्वल्प कम्पन के साथ शिर को बार-बार कम्पित की ॥ २४ ॥

[भ्रमर का स्वाभाविक आकर्षण कमल की ओर होता है। दमयन्ती के हाथ को कमल मान कर वह उसके हाथों पर पहुँचे आया था। बाद में जब हाथ से हटाया गया तो होठों की अच्छल का फूल समझ कर उस पर बैठ गया। फिर वहाँ से उसे हटाना पड़ा। अमृ लेपने का घटुप्रयान्त रूप दमयन्ती है ॥ २४ ॥]

ततः परम्। बारितवारविलासिनीचादुयचनरुमम्, आकस्मिक-
विस्मयविस्मृतस्मितविलासम्, अतनुतुहिनाहतनचनलिनद्वलदीन-
दाँदेंक्षणम्, उष्णसरलश्वासारम्भिषिपमविषाद्विच्छादिताननेन्दु-
द्युति, तस्या स्थानकमवलोक्य सखेर्द सखीजनेन 'देवि, मधुप्रि-
श्वासपवनपरम्परया पर्यस्त इवास्ताचलद्वस्ताचलम्भनमयमाश्रयनि
भगवात्मानु, इयं च सौभाग्यशालिनि नले निलोतचित्तायास्तप
लोकपालपार्थिवप्रायनाभ्यतिकरमिममाकर्ष्य लज्जितेय पिहितधवणा
दूरे भवति यातरर्था, इमानि निश्चलनिलोनमधुपनिपीयमानगर्भ-
मधूनि सद्गोचयन्ति लोचनानीव कमलानि, संविभागीकृतविषादा इय
विलासवयस्याः सरसीसरोरुद्विष्य, इमाश्च 'कथमस्मत्पतयो मनुष्य-
, वन्यकां कामयन्ते' इतीर्ण्यशोकवशादिय विशः द्यामायन्ते, तत्प्रेम्य-
तामयं पर्वतक' इत्यभीधीयमाना कथंकथमपि चिन्तान्तरापतिरस्तुता-

नृनालापमीपदुन्नमय्य मुखं समुल्लसदशोऽपल्लवानुकारि करनल-
नुत्तानीकृत्य मामविस्मरणीयसमानदानावत्ताने व्यसर्जयत् ॥

नमः परमिति ॥ तस्या स्थानकमवस्था । लज्जितेव विहितध्वजा । ध्वजं
नयत्रं श्रोत्रं च ॥

इसके बाद बाराङ्गनाओं के चाटुकारिता-पूर्ण दचन-प्रसङ्ग से रोका
ही । अचानक आये हुए विस्मय के कारण हास्यविश्रास को भूल गयी ।
बहुत अधिक हिमसात से मारे गये नवीन कमलदल की तरह उसकी बड़ी-
बड़ी अंग्रे दैर्घ्य प्रदर्शन करने लगीं । गरम तथा तीव्र निःश्वाओं को संचालित
करने वाले क्षयधिक विषाद से मुख की कान्ति मलिन पड़ गयी । उसकी
इस स्थिति को देखकर बड़े वेद के साथ सखियाँ बोलीं—

“देवी आपके श्वास-पवन के साँके से तन्मज्जाते हुए भगवान् मूर्ध
उपने हाथों (किरणों) से वत्साचन का अवलम्बन ले रहे हैं । सीमाय-
शायी नल में अनुरक्त रहने पर भी तुम्हारे सम्बन्ध में शोकपाणों की प्रार्थना
का प्रसङ्ग सुनकर मानो छद्मा का अनुभव करती हुई यह दिन-लक्ष्मी कानों
को बन्द कर दूर चली जा रही है । कम्पहीन, गड़े हुए तथा मधु पीठे हुए
अमरों से युक्त ये कमल मानो अपनी बाँलें बन्द कर रहे हैं । श्रेष्ठ की सायी में
कमलनिधियाँ आपके विषाद में भाग ले रही हैं । (मुकुलित होकर खेद व्यक्त
कर रही हैं ।)

“हमारे पति मनुष्य-कन्या की कामना कर रहे हैं ।” मानो इस
ईर्ष्या और शोक से ये दिशायें कान्ति पड़ती जा रही हैं । अतः इस पर्वतक
को भेज दीजिये ।” इतना कही जाने पर किसी किसी तरह चिन्ता की
व्यवधानता के कारण कामिनोद को छोड़े हुए मुख को कुछ ऊपर उठाकर
वत्सासूत्राँ अशोक पल्लव का अनुहरण करने वाले हाथ को उठाकर न भूत्रं
योग्य प्रतिष्ठा देकर मुझे विदा की ।

विसर्जितश्च तथा तत्कालमाविर्मथद्विपाद्वशसंपन्नमौनया न पुनः
संभाषितोऽस्मि, न वीक्षितोऽस्मि, न पृष्टम्, न संदिष्टं किमपि, केवलं
चलन्नेत्रविभागप्रान्ननरत्तारया दृष्ट्या समवलोन्य समुत्तानित-
करकमलसंशयैव कथमपि संप्रेषितः ‘कष्टम्’ इति चिन्तयन्नलसाल-
नैरसमञ्जसपानिभिः पश्चिममुखैरिव पादैरिहायातवान् ॥

तत्काल उत्पन्न विषाद के कारण मौन हो गयीं । मुझे विदा देते समय
न बोली न देखी, न पूछी और न कुछ सन्देश दी । केवल चञ्चल नेत्रों के एक
भाग में तैरती हुई कनीनिका वाली दृष्टि से देखती हुई अपने करकनकों को

उठाकर सकेत से ही किसी तरह भेजी । “बड़े कष्ट की बात है ।” यह सोचता हुआ अन्धसाये दूधे तथा अस्मज्जस में पड़े हुए पीछे ही की ओर उन्मुख पैरों से यहाँ आया है ।

[यद्यपि मैं इधर की ओर आ रहा था लेकिन वहाँ के दुःख की स्मरण कर मेरे पैर उधर की ही ओर उन्मुख थे ।]

तद्देव दमयन्ती देवदूतकार्याङ्गीकरण-यत्तिकरमिममाकर्ण्य परं विपादमापद्यत ॥

श्रीमान्, “आप देवताओं के दीर्घ कार्य को स्वीकार कर लिये हैं”, इस प्रसङ्ग को सुनकर दमयन्ती बहुत दुःखी हो गयी है ।

अन्यच्च । मन्ये च—

परिज्ञानच्छायाविरहितसनिद्रदुमवनं
पनस्पङ्कोभूतध्वनितशकुनोन्नादितनमः ।
वियोगव्याकृतादुपनधि रत्नचक्रमिथुनं
विपीडन्त्यां देव्यामिदमपि विपण्णं जगदभूत् ॥ २५ ॥

और मैं समझता हूँ—

दुःख में पड़ी हुई देवी के छाया पुरा ससार ही दुःखी हो गया है । छायाहीन एव भक्ति वृत्तों का वन निद्रित सा हो गया है । नीचे की ओर आते तथा विरकाते हुए पक्षिबद्ध पक्षियों की आवाज से आकाश गुञ्जित हो उठा है । वियोग की व्याकुलता से नदीतटपर चक्रवाकों का जोड़ रो रहा है ॥२५॥

इत्यभिधाय स्थिते पर्वतके तत्कालोचितमिममेवार्थसमर्थयन्न-
बसस्रपाठकः पपाठ ॥

यह कह कर पर्वतक के मीन हो जाने पर तत्कालोचित इसी अर्थ को समर्थित करता हुआ अबस्रपाठक ने पढ़ा—

‘कन्यामन्यानुत्कर्त्ता कथममृतभुजो मानुषी वामयन्ते
तन्यङ्गीः सस्मितास्थाः स्मरविषयदृशो नारुनारीर्निद्राय ।
वक्तुं पेदादिवैतद्दिनवतिरधिकं श्रोत्रयेवाधनम्रः
कोपेनेवाधनांशुः प्रविशति वरुणस्याक्षयं पश्चिमाग्निम् ॥२६॥

कन्यामन्येति ॥ वक्तुं श्रेयाश्च इत्यस्योपयोगं ‘वरुणस्याक्षयम्’ इति । वाचो हि श्रोतारमपेक्षन्ते ॥ २६ ॥

“कृप क्षीर तथा कामाक्ष नेत्रों वाली मुस्कुराती हुई स्वर्ग की रमणियों को छोड़कर अमृत पान करने वाले देव दूसरे में अनुरक्त मनुष्य-देहाधारिणी

कन्या के लिये क्यों लगानिष्ठ हैं ?" वेद के कारण मानों इस बात को कहने के लिये अधिक सज्जा के कारण भद्र तथा शोध के कारण लाल तिरणों को धरा दिये हुए भगवान् मूर्ध्न्य वस्त्र के घर पश्चिम समुद्र में प्रवेश कर रहे हैं ॥ २६ ॥

[देवताओं की अनुचित कामना से भगवान् मूर्ध्न्य को अत्यधिक बन्ध हुआ है । बन्ध की बात किसी ने कह देने पर कुछ झुका हो जाता है । इसीलिये वस्त्र के घर भगवान् सूर्य जा रहे हैं । वस्त्र भी एक लोकपात्र हैं । उन्हें भी सम्माना है जिससे वे इस अनुचित कार्य से अपना मुख मोड़ लें ॥ २६ ॥]

राजा तु तदाकर्णयन्, अयनीर्य सांघशिखरनलालीलापद्मचारेण
संध्याचमूनधिधिधिरामोपविष्टजपद्विजजनसनायसैरुते सरित्सङ्गमे
सन्ध्यादिकमकरोत् ॥

राजा ने तो यह सुनते ही प्रासाद के ऊपरी भाग से उतर कर धीरे-धीरे पैदल ही चलकर सन्ध्यावन्दन करने के बाद बैठ कर जप करने हुए ब्राह्मणों से सन्ध्यायुक्त उस बाणुकामयी भूमिवाले नदी-संगम पर सन्ध्याकालीन दैनिक कृत किया ।

ततश्च पश्चिमायां दिशि स्फुरति सन्ध्यारागे, अधिरासवपिपा-
सया कालवेतालमण्डलीव प्रधावमाना, त्रिभिः स्रोतोभिः प्रवृत्तया
गङ्गाया सह संहर्षादिवानकैः स्रोतसां स्वर्णैर्गगननलमिव प्लाव-
यन्तो कालिन्द्रोव, व्यजृम्भत तिमिरपटलपङ्क्तिः ॥

इसके बाद पश्चिम की ओर सन्ध्या की लालिमा के लौने रहने पर रत्नुरा की प्वाय से बीजती हुई काल रूप वेताल-मण्डली की तरह दोड़ती हुई, तीन धाराओं से बहने वाली गङ्गा के साथ मानी प्रतिद्वन्द्विता के कारण मनेक सङ्घर्ष धाराओं से आकाश को निमग्न करती हुई यमुना की तरह अन्धकार राशि दम्भित हुई ।

[अन्धकार राशि की दो धीबों से सन्तुलित किया गया है । एक है काल वेताल-मण्डली और दूसरी है यमुना । सन्ध्या के समय आकाश लाल हो गया है । अन्धकार-राशि उस लालिमा को पीती जा रही है । अब वह रुधिर की मुरा पीती हुई काल वेताल-मण्डली की तरह ला रही है । वेताल-मण्डली भी काली है और लाल रुधिर आठव को पीती है ।

यमुना की धारा नीचे होती है । गङ्गा के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता की कल्पना कवि ने की है । गङ्गा यदि मर्त्यलोक, पाताल तथा आकाश

की तीन धाराओं से अपनी महिमा व्यक्त करती है तो यमुना अपनी धाराओं से सम्पूर्ण गगनमण्डल को ही निभान कर अपना प्रभाव दिखा रही है । अङ्कार-गति रूप यमुना आकाश को आच्छादित कर रही है ।]

अनन्तरं च चन्द्रमसा गर्भिणी पौरुन्दरी दिक्केनकीपुष्पपत्र-
पाण्डमानममत् ॥

अनन्तरमिति ॥ गर्भिणी हि केनकपत्रवरपाण्डुनां धत्ते ॥

और उसके बाद चन्द्रमा में गर्भित इन्द्र (पूर्व) की दिशा केबड़े के फूल के पत्ते की तरह पीली पड़ गयी ।

[संस्कृत साहित्य में इन्द्र को भी बहुधा बार की तरह वर्णित किया गया है । उसकी पूर्व दिशा को भी व्यक्तिचारीणी के रूप में बहुधा चित्रित किया गया है । कभी वह सूर्य को देखकर रागपूर्ण हो जाती है और कभी चन्द्रमा से गर्भित होकर गर्भिणी वायिका की तरह केतकी-पत्र सदृश रंग धारण कर लेती है । यहाँ तात्पर्य यही है कि चन्द्रमा उदित हो गया है । अङ्कार कुछ मलिन हो गया है । पूर्व की ओर कुछ प्रकाश की आभा लक्षित होने लगी है ।]

उल्लास च चण्डतरमावतान्दोलितोव्याद्रिद्रुमकुसुमकिन्तक-
रेणुराजिरिष कपिशा शशाङ्गयति ॥

प्रचण्ड वायु के झोंकें से कम्पित उदयाचल के वृक्षों के पुष्पराग के धूलि-
समूह की तरह चन्द्रमा की कपिश रंग वाली कान्ति उल्लसित हुई ।

अथ क्रमेण पूर्वपयोधिपुलिनाद्राजहंस इव गगनमन्दाकिनीमुख-
लितः केसरिकिशोर इवोदयगिरिगुहागङ्गराक्षिमिरकरियूथपृष्ठलग्नः,
स्फटिकमयः पूर्णकुम्भ इव जगद्विजयप्रस्थानस्थितस्य मङ्गलाय मकर-
केतोः केनापि सज्जीकृतः, श्रीचण्डपिण्ड इव मण्डनाय मदेन्द्रदिशा-
हस्तदन्तेषोपलालिनः, शक्तिकापुष्पस्तवक इव गगनधिया ध्वजो
संयोजितः, कुम्भ इवैकः प्राचीवनविहारिसुरकरीन्द्रस्य भ्रष्टता गतः,
वासवविरामवल्लीमुल्लूय कन्द इवोद्भूतो निशाशपरिकया, पाण्डु-
पुष्पाक्षतगुञ्जापुञ्ज इव सिद्धवधूमिहृदपाचलचतुष्पथे विरचितः,
गण्डशैल इव कैलासशिखरास्तुठित्वागतः, सीमन्तमौक्तिकमिव पूर्व-
दिङ्मुखस्य, सितातपत्रमिव पूर्वाशाधिपतेः पुरन्दरस्य, श्रीहामौक्तिक-
कन्दुक इव कालकुमारस्य क्षीरदिण्डीरपिण्डसदृशो दृष्टिपथमव-
ततार तापपतिः ॥

अत्रैव वनगहने हि विचरतः कसिणः प्रायेणैक एव हृन्मश्वरविभागो
उपपद्यते । पाण्डुगुञ्जा हि मङ्गलाय स्युः । उदयाचलदाहसुश्रुते सोमागमनसूचना ।
श्रोत्राय मौक्तिकवस्तुतः ॥

इसके बाद प्रथम में पूर्वे समुद्र के तट से आकाश गंगा की ओर प्रस्थित
राजहंस की तरह उदयाचल की गुफाओं से निकल कर अन्धकार रूप हापियों
के मूष के पीछे सने हुए सिंह के शब्दों की तरह सम्पूर्ण विश्व की विजय के
निमित्त प्रस्थित कामदेव के मञ्जुष के लिये किसी के द्वारा सहाये गये स्फटिक
गोल के बने हुए पूर्णचन्द्र की तरह, इन्द्र दिशा (पूर्व) के दायी के आलिङ्गन
से सम्मानित मन्दार के लिये चिरे गये वन्दन के गोलों की तरह, आकाश-
स्वामी द्वारा पहने गये शङ्खनामक पून के गुच्छों की तरह, पूर्व दिशा
रूप प्रथम में बिहार करने वाले देव रवेन्द्र ऐरावत के एक कुम्भस्थान की
तरह मन्द, दिवावसान रूप लज्जा की दाह कर रात्रि रूप किरातिनी द्वारा
निकाले गये कन्द की तरह, मिड वस्तुओं द्वारा उदयाचल के नीचाह पर रखने
गये पीछे पुष्प, अक्षत तथा गुच्छों की राशि की तरह, कैलास की चोटी से
हल कर आये हुए गन्धर्वों की तरह, पूर्वदिशा के मुख के सीमन्त मौक्तिक
(धिरोमूयन) की तरह, दूध के फेन गोलों की तरह चन्द्रमा दृष्टि-स्थ में उतरे ।

[यहाँ उदयाचलीन चन्द्रमा के बहुत से उदाहरण दिये गये हैं । चन्द्रमा
भरती सत्तरी के कारण राजहंस की तरह लज्जा था । पूर्व दिशा में उदित
होकर शुभ आकाश की ओर बढ़ रहा है अतः पूर्व समुद्र से चलेकर आकाश
गंगा की ओर सम्मुख राजहंस की तरह लगता है । सिंह का वक्त्रा जैसे
काले हापियों को खदेड़ता है वैसे मन्दोदित चन्द्र अन्धकार को खदेड़ रहा है ।]

तदनु च—

मदनमिति युवानं यौवराज्येऽभिपिञ्चन्

कृतकुमुदविकासो भासयन्दिङ्मुखाणि ।

श्मममृततरङ्गैः प्लावयन्नोद्यल्लोकं

गगनमव्रजगाहे मन्दमन्दं मृगाङ्गः ॥ २७ ॥

मदनमिति ॥ यौवराज्याभिव्यक्त्यापनेककार्यव्यग्रगया मन्दमन्दावगाहः ॥ २७ ॥

और इसके बाद—

मदन सुख की सुवर्ण-पद पर अभिषिक्त करता हुआ, कुमुदों को
विकसित कर दिशाओं को उद्भाषित करता हुआ, सम्पूर्ण जीवजगत् को
जम्बू त्तरों में नहाता हुआ चन्द्रमा धीरे-धीरे आकाश का अवगाहन कर
रहा था ॥ २७ ॥

तदनन्तरम् , आप्लावितमिव मुक्तमर्यादेन दुग्धवाधिना, सिक्तभू-
भागाङ्गणमिवामन्दचन्दमाम्बुच्छटाभि, विलिप्तदिग्भित्तिकमिव सान्द्र-
सुधापङ्कपिण्डितैः, पुरितमिवोत्सर्पिकर्पूरपांसुवृष्ट्या, प्रविष्टमिव स्फा-
टिकमणिमहामन्दिरोदरदरीम् , उत्प्लवमानमिव द्रवीभूततुहिनाचल-
मद्वाप्लवेन, भुवनमासीत् ॥

तत्पदचात् अपनी सीमा से बाहर तक उमड़ने हुए दुग्ध सागर द्वारा
हुवाये गये की तरह, पर्याप्त चन्दन मिश्रित जल के छोटे से सींचे गये
भूभागवाले आँगन की तरह, गाढ़े चूने के पङ्क के लोने से लेपी गयी
दिग्भित्तियों की तरह, सुगन्धित कर्पूर धूलि की दृष्टि में भरे गये की तरह,
स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन के मध्यभाग की तरह, पिघले हुए
हिमालय की विशाल बाढ़ से सूबते हुए की तरह संसार हो गया था ।

[चन्द्रोदय होने पर पूरा संसार सफेद-सफेद दिखायी पड़ रहा था ।
ऐसा प्रतीत होता था कि दुग्ध सागर अपनी सीमा से बाहर आकर समूचे
संसार को निगल कर रहा था । इसीलिये तो सारी चीजें सफेद दिखायी पड़ती
थीं । ऐसा लगता था कि गाढ़े चन्दन के लोने बनाकर समस्त दिशाओं की
भित्तियों को सींच (लेप) दिया गया था । साधारण चूने के पानी से उतनी
शुभ्रता नहीं आ सकती थी । अतः चूने के पङ्किल गोले से लेप लगाने की
बात कही गयी है । ऐसा प्रतीत होता था कि संसार कर्पूर की धूलि की दृष्टि
से भर दिया गया था । स्फटिक मणि के बने हुए विशाल भवन से तारपर्य्य है
आधुनिक सभागृह (Hall) से । केवल स्फटिक से ही बने हुए विशाल भवन
का भीतरी भाग जैसा शुभ्र दीखता है उसी तरह समार दीखता था । संसार
की शुभ्रता को देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि हिमालय के बर्फ के गलने
से बाढ़ आ गयी हो । हिमालय जैसा शुभ्र दीखता है वैसा ही हृदय पूर्ण
संसार का हो गया था ।]

ततश्च —

कैलासायितमद्रिमिचिष्टपिभि. श्वेनानपत्रायितं
मृतपङ्केन दधीयितं जलनिधौ दुग्धायितं चारिभि. ।
मुक्ताहारलतायितं व्रततिभि. शङ्खायितं धीफलैः
श्वेतद्वीपजनायितं जनपदैर्जात शशाङ्कोदये ॥ २८ ॥

पोढ़ी देर के बाद—

चन्द्रमा के पूर्णतः उदित हो जाने पर सभी पर्वत कैलाश पिरि की तरह
लगने लगे । कुछ श्वेत छाते की तरह लग रहे थे । मिट्टी के पङ्क दही की तरह

लगने लगे । समुद्र का जल दूध की तरह प्रतीत होने लगा । लतायें मुक्ता की भाँसा की तरह दीखने लगीं । बेर के फल शङ्ख की तरह लगने लगे । ग्राम और नगर श्वेत द्वीप सट्टा प्रतीत होने लगे ॥ २८ ॥

[चन्द्र किरणों की अतिशय शुभ्रता से पूरा का पूरा सारा शुभ्र दीखना था ॥ २८ ॥]

अपिच—

नर्वेऽपि पक्षिणो हंताः सर्वेऽप्यैरावता गजाः ।

जानाधन्वांशुभिः सर्वे रौप्यपुञ्जा शिलोच्चयाः ॥ २९ ॥

और भी विचित्र दृश्य हुए थे—

चन्द्रमा की किरणों से सभी पक्षी हरा हो गये थे । सभी हाथी ऐरावत हो गये थे । सभी घट्टानों की सड़ियाँ चंदी की राशि बन गयी थीं ॥ २९ ॥

अपिच—

सुधापद्मोपलिप्तेष्वथ देवैस्फटिकोपलैः ।

विलीनहिमदिग्धेष्वमेदिनी ज्योत्स्नया कृता ॥ ३० ॥

और भी आश्चर्य बढ हुआ कि—

चन्द्र रश्मियों के कारण ऐसा लगता था कि पृथ्वी चूने के पट्ट से लेप दी गयी थी, स्फटिक पत्थर में उठ दी गयी थी मक्का जमे हुए बर्फ से व्याप्त हो गई थी ॥ ३० ॥

अपिच—

मौघस्कन्धतलानि दीपपटलैश्चम्पेन पाण्डुध्वजा-

हंताः पञ्चविधूननेन मृदुना निद्रान्तनात्रेन च ।

लक्ष्यन्ते कुमुदानि पट्पद्मैरुत्सर्पिगन्धेन च

क्षुन्यत्क्षीरपयोधिपूरसदृशं जाते शशाङ्गोदये ॥ ३१ ॥

[जो पदार्थ स्वभावतः श्वेत थे उन्हें तो पहचानना कठिन हो गया । उनके रंग से तो उन्हें नहीं पहचाना जा सकता था । उनके भीतर कुछ विशेष गुण थे जिनके कारण वे किसी किसी तरह पहचाने जा सकते थे—]

उमड़ते हुए क्षीरसागर की तरह चन्द्रमा के उदित हो जाने पर जट्टालिङ्गयं द्वीप समूह के कारण, सफेद पताकारों चम्पन के कारण, हरा पंखों की फड़-फड़ाहट तथा निद्रा के अन्त में की गयी कोमल ध्वनि के कारण, भ्रमरो की गुनगुनाहट तथा फैलने वाली शम्भ के कारण कुमुद पहचाने जा रहे थे ॥ ३१ ॥

[चन्द्रमा की शुभ्र किरणों में समस्त श्वेत पदार्थ विलीन हो गये थे । चूने से पुते हुए मरानों पर यदि टिमटिमाने दीपक नहीं होने तो उन्हें समझना

कठिन था । सफेद पताकाये यदि फटफडाती नहीं तो उनका ज्ञान करना मुश्किल था । इस यदि पक्ष नहीं पडफडाते और बोलने नहीं तो उन्हें भी समझना असम्भव था । गुन-गुनाते हुए भ्रमरो ओर फैलती हुई गन्ध के कारण कुमुद पहचाने जाते थे ॥ ३१ ॥]

तथाविधे च चन्द्रोदयप्रपञ्चे दृडादुत्कण्ठयाभिभूयमानो निषध-
नायश्चिन्तयांचकार ॥

चन्द्रोदय द्वारा ऐसा प्रपञ्च सखा कर देने पर बलात् उत्पन्ना से पराजित होते हुए निषध सम्राट् ने सोचा—

‘इतश्चन्द्रः सान्द्रान्किरति किरणानग्निपट्टपान्
इतोऽपि प्रोन्मीलकुमुदधनयायुर्गिलसति ।
इतः कादम्बानां ध्वनितमपि निद्रालसदृशा-
मसह्यः सघोऽयं मनसिजमहिम्नः परिकर ॥ ३२ ॥

इधर से चन्द्रमा अपनी अग्नि सदृश तीव्र तथा घनी किरणों फेंक रहा है । इधर से खिलने हुए कुमुद वन की मन्द-मन्द हवा भी बह रही है । इधर निद्रा से अलसाई हुई आँखों वाले हंसों की ध्वनि असह्य हो रही है । ये सब महाराज काम की महिमा बताने वाली सामर्थियाँ हैं ॥ ३२ ॥

अपि च—

इतो मकरकेतनः किरति दुर्निवारः शरा-
नितोऽपि धयमाकुलाः कुलिशपाणिदत्ताक्षया ।
तदेतदतिसङ्कटं यदिह कैश्चिदुक्तं जनै-
रितो विषमदुस्तटी भयमितो महाव्याघ्रतः ॥ ३३ ॥

इधर से दुर्बार कामदेव बाणों को फेंक रहा है और इधर से वज्रपाणि इन्द्र द्वारा दी गयी आज्ञा के कारण व्याकुलता छायी हुई है । यह अत्यन्त सकट की स्थिति है । मेरी वही स्थिति है जैसी लोग कहने हैं—इधर भयङ्कर किनारा और उधर महाव्याघ्र से भय ॥ ३३ ॥

तदिदानीं किमिदं कर्तव्यम्, कथं वा हास्येनाप्यचन्ध्यवचसाम-
लह्वनीयः खट्वादेशो लोकपालानाम्’ इति चिन्तयन्नेकाकी पद्मधामेव
विनिर्गत्य निजनिकेतनात्समन्तादापतद्भिः शशाङ्ककिरणजालैः परि-
जनैरियं परिदर्शितवर्त्मा कैश्चित्स्थललवैः कैलासकूटायमानाट्टालका-
भोगमव्यं भीमभूपालमवनमयाप्य कन्यान्तःपुरं पुरंदरचरप्रदानादहदय-
मानरूपः प्रासादपालकैः प्रविवेश ॥

तो इस समय क्या करना चाहिये, अव्यर्थ बापी वाले लोकपालो की आज्ञाओ का उल्लंघन हँसी में भी नहीं करना चाहिये । यह सोचना हुआ अकेला पैदल ही अपने घर से निकल कर चारों तरफ बिखरने हुए चन्द्रमा के रश्मिपुञ्ज द्वारा नौकरो की तरह मार्ग-निर्देशन पाता हुआ थोड़े ही क्षण में कैलास पर्वत के शिखरो की तरह ऊँचे प्रासादो के विस्तार में मनोहर राजा भीम के भवन को पाकर इन्द्र ने घर प्रधान की महिमा से प्रामाद रखने (प्रहरियो) द्वारा न देखा जाता हुआ कन्या-निवास गृह में प्रविष्ट हुआ ।

[परिणत जैसे स्वामी को चारों तरफ में घेरे रहने हैं, उनकी सुरक्षा का प्यान रखने हैं और गन्तव्य मार्ग निर्देशन भी करने हैं वैसे ही चारा ओर से विकीर्ण होय वाली चन्द्र-किरणें रात में नल का मार्ग-निर्देशन सा कर रही थीं ।

अधिरथ च दूराद्भिमुजागतेनानधरतद्वहमानकृष्णागुरुधूपधूमयस्ति-
ननंकेन घट्टलपक्षकदंभाम्बुसिक्तसौधस्कन्धसन्धिसंचारिणा गन्धपाहेन
कृताभ्युत्थान इय, परिक्रम्य स्तोममन्तरम् 'इत इतो देयी वर्त्तते' इति
गीतगोष्ठीस्थितसखीगीतसंकारेणाह्वयमान इव, यथास्ते दमयन्ती
तत्सौधपृष्ठमाकटवान् ॥

अधिरथ केति ॥ कर्पूरकस्तूरिकादीनां चोदो पञ्चकदंभ ॥

जब वह वहाँ प्रविष्ट हुआ तो निरन्तर जाती हुई अगर बत्ती को नचाता हुआ पर्याप्त कस्तूरी तथा कर्पूर आदि के गूर्ण से मिश्रित जल से सींधि गये नहनों पर भ्रमण करता हुआ, दूर से सामने की ओर आता हुआ पवन मानो ठठ कर स्वागत कर रहा था । घूमता हुआ योद्धा और भीतर की ओर गया तो गीत गोष्ठी में बैठी हुई सखियों की गीत ध्वनियाँ "इधर देवी हैं, इधर देवी हैं" मानो यह कह कर उन्हें बुला रही थीं । (अनुमान लगाता हुआ) उस महल पर गया वहाँ दमयन्ती रहती थी ।

आरुह्य च मनान्वयघटितोऽनुपलक्ष्यमाण इय, वेणुधीणाकणानुसारिणा कोमलकाकलीशयेण किनरोप्रमुखसखीनां गीतेन विनोद्यमानाम्,
अलकवल्लरीमध्यनिवेशिततापनुकारिमौक्तिकेन कज्जलरुलङ्घितनय-
नोत्पलपद्मपालिना मुखेन सचन्द्रगगनस्पर्धया भूतलमपि पूर्णोदिते-
न्दुमण्डलमिवापादयन्तीम्, उच्चकुचमण्डलविलोलया सस्मरसतपि-
प्रहणपङ्कज्येष्वहारलतया कृतकण्ठकन्दलास्लेषाम्, ईपत्कपोल-
पालि परामृशना चाटुकारेण वसन्तसमयप्रहितदूतेनैव कर्णलनेन
कुसुममञ्जरीद्विनीयेन बालपल्लवेन विपत्रितवदनाम्, अञ्जलालै-

कस्तूरिकापङ्कजमद्वैर्भुजैरिव लावण्यामृतरक्षामनैरलंकृतभव्यभुज-
शिखराम्, आसन्नभुवि विकीर्णः पाण्डुपुष्पप्रकरैर्गङ्गादवतीर्य रूपा-
लोकनकुतूहलभिर्नक्षत्रैरिव परिचृणाम्,

आरुह्य चेति ॥ ईषत्कलोऽस्यास्तीति काशली । 'निषाद काशलीसरो दिशुःपु-
नर्षण' इत्येतत् । कञ्जलेन कलङ्किता कलङ्क हवाचरितवनी नयनोरपलपद्मपालि-
यंत्र । कलङ्क हवाचरति स्मेत्याचरे किञ्चिन्पठे ॥ अष्टेति ॥ अमृतं हि भुजगै रक्ष्यते ।

वहाँ जाकर थोड़ी ओट में खड़ा हुआ जिससे कोई देख न सके । मृध कान्ति
से मण्डित, स्फटिक मणि से निर्मित, एक पर्यङ्क पर सोयी हुई दमयन्ती को
देखा । किन्नर कुल में उत्पन्न प्रमुख सखियों की वशी तथा वीणा की ध्वनि का
अनुसरण करने वाले प्रायः मधुर कालीन स्वर वाले गीतों से उसका मनोविनोद
किया जा रहा था । वेशजता के बीच रखा गया मौक्तिक तारा का अनुकरण
कर रहा था । नेत्र कमल में अञ्जन लगा हुआ था । अतः अपने मुख द्वारा चन्द्र
सहित आकाश की प्रतिद्वन्द्विता में भूतल को भी मानो पूर्णचन्द्र मण्डल से युक्त
कर रही थी । सकाम सप्तपि ग्रहों की पङ्क्ति की तरह उच्च स्तन-मण्डल पर
(लोटती हुई) चञ्चल हारलता उसके गले में लिपटी हुई थी । कपोल स्पल को
थोड़ा छूने हुए वसन्त समय द्वारा भेजे गये चाटुकार दूत की तरह कानों में
लगी हुई पुष्पमञ्जरी से नवीन पल्लव से उसका मुख सुशोभित था ।
कस्तूरी के लेप से निर्मित पत्र-रचनाओं से अलङ्कृत उसकी सुन्दर भुजाओं के
अप्रभाग ऐसे लगते थे मानो वे सौन्दर्यरूप अमृत की रक्षा करने के लिये आये
हुए सर्पों से मण्डित हों । समीप की भूमि पर बिखरे हुए सफेद पुष्पों के समूह
में ऐसा लगता था कि सौन्दर्य की छटा देखने की उत्कण्ठा से आकाश में आये
हुए तारों द्वारा घिरी हुई थी ।

[आकाश चन्द्रमा से युक्त होता है । नीलिमा से व्याप्त होता है । तारे उभे
हुए होते हैं । दमयन्ती के बालों के बीच में रखने मोती तारे सहसा लगते हैं ।
उसके बाल आकाश लक्ष्मी की नीलिमा को सम्पादित कर रहे हैं । मुख चन्द्र का
कार्य कर रहा है । आँखों के अञ्जन चन्द्रमण कलङ्क का कार्य कर रहे हैं ।
अतः दमयन्ती जैसी नायिका को पाकर भूतल भी आकाश की तरह सचन्द्र हो
गया है ।

हारलता—मोती का हार पहने हुई थी । वह गले से लटकता हुआ स्तन
मण्डल तक आया था । ऐसा प्रतीत होता था कि कामव्यथा से पीडित सप्तपि
ग्रहों की पङ्क्ति ही उसके स्तनों पर लोटती हुई गले से लिपटी थी ।

वसन्तसमयप्रहितदूतेन—वह कानों में पुष्पमञ्जरी युक्त नवीन पल्लव
पहने थी अतः ऐसा प्रतीत होता था कि वसन्त द्वारा भेजा गया चाटुकार

हूँ ही उनके कानों के पास जा कर मन्त्रज्ञ करता था जोर उसके कपोलों का स्पर्श भी कर रहा था ।

परमहन्तुजनेः—वस्तुतः के रूप से वह सुन्दर-सुन्दर टेरे-मेटे पत्तों की जादुसिरी उसकी मुखाशो पर बनी थी, अतः ऐसा प्रतीत होता था कि सौन्दर्य मृग की रक्षा करने के लिये पत्र-रचना के रूप में सर्प ही आगे हुर द । सौन्दर्य मृग का पान कोई दूसरा म कर ले उसलिये सर्पों को बहा देता दिया गया था ।

नसत्रै—वह जहाँ बैठी थी वहाँ कुछ सत्रे पुन दिग्गरे हुए थे उनमें ऐसा प्रतीत होता था कि उसल सौन्दर्य की देखने के लिये आकाश में तारे ही उड़ते हुए थे ।]

ऊरुनितम्बमण्डलस्पर्शगुल्ललम्पटतया मीचीप्राम्नपुञ्जिनरहं क्षीरोद्गमिन् वस्त्राणां गतमच्छपाण्डु नेत्रपट्टं परिदधानाम्, सहमेव त्रयया न्ययंचरे वरणीयः इत्यर्थितया पाञ्चलान्तेन दोषोरगेणैव सौप्यनूपुरत्वतयेन विराजितधामचरणपल्लवाम्,

निर्गन्तु, गुल्ल तथा चमकीला ऐसी बन्ध पहने हुई थी । ऐसा लगता था कि जहाँ और निम्न-मण्डल के गुल्ल स्पर्श के लोभ में नीची के चारों तरफ चमकी तरङ्गों को समेटे हुए दुग्ध-सागर का जल ही बन्ध रूप में परिणत हो गया था । "मैं ही स्वयंवर में तुम्हारे द्वारा चुना चाले," इस तरह प्रार्थना करने हुए पैर में लगे शेष नाग की तरह ज़ाँडी के झुर में उस का पल्लव सागर बायाँ पैर सुग्रीभित था ।

[एक तरह के जलमय चमकीले बन्ध की 'नेत्र' कहते हैं । दमपन्त्री स्त्री कौटिक का एक बन्ध पहने हुई थी । चारों तरफ में चुन देकर उसने नीची के पास उस चमकीले बन्ध का एक गुच्छा जैसा बना लिया था । वह बन्ध क्षीर सागर के जल की तरह था और नीची बाग सिक्कड़ा हुआ बन्ध पंन की तरह था । क्षीर सागर का जल ही मानो ऊरु तथा निम्न मण्डल के सुमनस्य स्पर्श के निमित्त बन्ध का रूप धारण कर आया हुआ था ।

वह अपने बायाँ पैर में झुर पहने हुई थी । उसने कुछ झुर ध्वनि अभिन्वित होती थी । ऐसा प्रतीत होता था कि झुर के बहाने शेष नाग ही उसके पैरों में पड कर प्रार्थना कर रहे थे कि स्वयंवर में वह उन्हें ही चुने ।]

विधिवधिलासवर्तिकाभिरिवारिताम्, अमृतद्रव्यवर्णैरिव चित्रितावयवाम्, आनन्दरुन्दलैरिव वटिनाम्, मोहनमणिशिलायामिरोत्कीर्णाम्, शृङ्गारदासुधीवोत्कुट्टिनाम्, वशीकरणपरस्माणुभिरिव

विनिर्मिताम्, मदनमृत्पिण्डेनेव निष्पादिताम्, वज्रलेपपुत्रिकामिव
दृशोः, आकर्षणमणिशलाकामिव हृदयस्य, जोधनौषधिमिवानुसगस्य,
जयपताकामिव मदनस्य, वदलधन्वनाम्बुच्छटाद्रितभुवि विकीर्ण-
सुरभिपरिमलमिलन्मधुकररवानुमेयपाण्डुरपुष्पप्रकरे मखणसितसुधा-
यन्धपिच्छले सौधस्कन्धेज्योत्स्नामृतस्पर्शसुखमनुभवन्तीम्, अच्छांशु-
स्फटिकमणिपर्यङ्किकाङ्गभाजं दमयन्तीमलम्बनिद्रामद्राक्षीत् ॥

विचित्रविलासप्रसक्तिकाश्चिन्नचूर्चिकास्तामिसाकारितामालिखिताम् । आनन्दशब्द-
वाचारविचिन्ताश्रिष्टायाः सिद्धम् ॥

यह विलासमय भावो को खोजनेवाली कूचियो से बनाये गये चित्र की तरह
प्रणीत होती थी । अमृत रस के बिन्दुओं से मानों उसके जग बने थे । आनन्द क
बङ्कुरो से उसकी रचना की गयी थी । मोहन-मणि की चट्टान पर खुदी हुई
सी प्रणीत होती थी । शृङ्गार-काष्ठ पर मढ़ी हुई सी लगती थी । वश करने
वाले परमाणुओं से मानो निर्मित थी । काम मृत्तिका के पिण्ड से निर्मित की
गयी सी लगती थी । आँखों के लिये वज्र की बनी पुतलिका थी । हृदय के
लिये आकर्षण मणि से बनी हुई शलाका थी । प्रेम को अनुप्राणित करने वाली
जोषधि थी । कामदेव की विजय-श्वजा थी । उसके यहाँ की भूमि पर्याप्त
चन्दन मिश्रित जल से सिक्त थी । चिकने एवं सफेद चूने के लेप से पिच्छल
बने हुए महल पर जहाँ बिखरे हुए सफेद फूलों का समूह पराग के
लिये गुनगुनाते हुए भ्रमरों के ही द्वारा पहचाना जा सकता था, किरण-
सुधा के स्पर्श सुख का अनुभव कर रही थी ।

तां चावल्लोक्य विचिन्तितवान् ॥

उने देख कर सोचा—

‘अहो स्थानेऽभिनिवेशो लोकपालानाम् । अशेषसुखनिधानाय को
न स्पृहयति ॥

उचित स्थल पर लोकपालों की प्रवृत्ति हुई है । समस्त सुखों के मूल को
कोन नहीं चाहता ।

अन्ये च ।

विस्फारिततारैश्चणैरिमामेव पश्यन्नयमाकाशः सप्रहोऽभूत् ॥

विस्फारीति ॥ तारा नक्षत्राणि कनीनिका च । अहा सूर्यादयो भूतादिभि-
निवेशाश्च ॥

और मादूम होता है कि—

कैलाशी गयी कनीनिका वाली आँखों से इसी को देखता हुआ यह आकाश
सप्रह हो गया है ।

[त्रिषे ग्रह (गुरु श्रेत) पकट लेते हैं उसकी गन स्थिति ठीक नहीं रहती । हममन्त्री के मादक रूप की बाँधें खींच कर देखता हुआ आकाश चन्द्र हो गया है । उसको ग्रह ने पकट लिया है । आकाश में प्रान्तिष आरोपित कर चन्द्रगत समानता के आधार पर उसके पागन्धन का आभास कराया गया है । वस्तुतः आकाश इस जगत् में चन्द्र है कि वह सूर्य-चन्द्र यदि ग्रहों से युक्त है । सूर्यादि ग्रह से सहित होने के कारण सग्रह ब्रह्मात्मा है । महा का तार शुद्ध तारा और कर्मीनिष्ठा दोनों अर्थों का उपस्थापक है ।]

अयं च चन्द्रश्चन्द्रनपाण्डुभिः करैरिमानेष् परामृशन्मदमानतदाह-
मयी घणलेखां कलङ्ककल्लेन हृदयेनोद्धति ॥

बाह ! यह चन्द्रमा भी अपनी चन्दन सदृश सफेद किरणों से इसी को लुत्ता हुआ काम की आग से जल कर भाव के चिह्न की कलङ्क के बहाने हृदय में धारण करता है ।

अयमपि समीपोद्यानमारुतोऽस्याः समर्पितकुसुमगन्धः शनै-
रुत्तरीपोद्गुफमाक्षिपन्मदनातुरस्तिर्यग् पतति ॥

मदनतीति ॥ अग्योऽपि हमरागुर कुसुमगन्धं कस्तूरिकादि चार्पयन्मन्याभा-
कर्षणवदस्तिर्यग्यतति ॥

समीपवर्ती उपवन का यह पवन भी कुनों की गन्ध लेकर धीरे से इसकी मन्थन की उठाता हुआ काम-भीषित होकर टेढ़े-टेढ़े गिर रहा है ।

सर्पथा जितं मनुष्यलोकेन, यश्चैयं विषमचिन्त्यम्, अनालोचन-
गोचरम्, अप्रतिमरूपम्, अद्भुतम्, अमूल्यमुदपद्यत स्त्रीरत्नम् ॥

सब प्रकार से विद्ययी है यह मनुष्य लोक अहाँ दस तरह का अचिन्त्य,
जटुत, अदृष्ट, अनुपम, अद्भुत तथा अमूल्य स्त्रीरत्न उत्पन्न हुआ है ।

धाः प्रजापते, परिणमशित्योऽसि । संसार, सनायीऽसि । मदन,
महोत्सववानसि । चन्द्रः, कृतार्थमसि । हृदय, पूर्णमनोरथमसि । दूरा-
गमनधन, सफलोऽसि ॥

अ. प्रतीति ॥ 'संसार' इत्यादीनि शब्देकं संशोधयानि ॥

ग्रहण ! तुम्हारी क्या निखरें गयी है । संसार । सनाय हो गये हो ।
काम ! महोत्सव सम्पन्न हो गये । नैव । सफल हो गये हो । हृदय । तुम्हारा
मनोरथ पूर्ण हो चुका है । दूर से आने के कारण होने वाले धन । तुम भी
सफल हो गये ।

सकलयुधजनमनोमधुररारुष्टिकुसुमितलतिरे निजनयननिर्जित-
राजीवे जीव चिरम् ॥

ओ समस्त युवकों के चित्त भ्रमर को खींच लेने वाली पुष्पलता ! अपने
नयनों से कमलों को भी खींच लेने वाली ! तुम बिरबाल तक जीवो ।

तथाहि—

लक्ष्मीं विभ्राजयोः कांचिच्चञ्चद्भूमद्भभागयो ।

वलिं यामो ययं तन्वि तत्राञ्जसदृशोदृशो. ॥ ३३ ॥

लक्ष्मीमिति ॥ हे तन्वि, तव जेष्ठयोर्वयं वलिं याम उपहारीभवाम इति परमप्री-
तिमामो लोकोक्तिः । भस्त्रानि लक्ष्मीं विभ्रति । तथा भूरेव भद्रस्तरङ्गः स भाग
एकदेशे ययोः । यद्वा तु 'यञ्चद्भूमद्भसङ्गयो' इति पाठः तदा भूवावेव भृङ्गो तयो-
र्मङ्गो यत्र ॥ ३३ ॥

क्याकि—

क्याङ्गी । तुम्हारे भौतिक शोभा धारण किये हुए षड्चक्र एव
वक्र भौंहो वाले कमल सदृश नेत्रों पर हम अपने आपको ग्योछावर
करते हैं ॥ ३४ ॥

अपि च—

किनरवदनविनिर्गतपञ्चमगीतामृतं ध्रुतिं श्रयति ।

हरति हरिणीदृशो दृक् सालसवलितः च लुलिता च ॥ ३५ ॥

किनरेति ॥ अत एव हरिणीदृक्, अत एव गीतानुराणउच्छ्रय इति गीतं देवाक-
मनुसरति ॥ ३५ ॥

किन्नरों के मुख से निकले हुए पञ्चम स्वर वाले गीतामृत के कानों में
जाने रहते पर हरिणाक्षी की आलस्य पूर्वक ध्रुमायी गयी षड्चक्र आल मन
को आकृष्ट कर ले रही है ॥ ३५ ॥

इत्यनेन विधानि चिन्तयन्मृदुलीलापदैरागत्य गीतगोष्ठीस्थितस्य
'कोऽयम्' इति विस्मयविस्फारितलोचनस्य संभ्रमयतः सखीरुदम्भकस्य
मध्यमविशत् ॥

इस तरह अनेक प्रकार की बातें सोचता हुआ कोमल बिनास पूर्ण गति में
चञ्चल गति-गोष्ठी में बैठे हुए 'यह कौन है' इस आश्चर्य के मारे खुले हुए
नेत्रों वाले, पद्महाट में पड़े हुए सखी समूह के बीच प्रवेश किया ।

प्रविष्टे च तस्मिन्, आस्मिकविस्मयेन विस्फारितानि, भयेन
भ्रमितानि, कौतुकेनोत्तानितानि, घ्रीडया वलितानि, मुदा मिलदरास-

पद्मानि, स्मराकृतेन विलुलितानि, दिव्यशरसेनानिमिषाणि, दृष्टि-
संघट्टनेन मुकुतितानि, विलासेन मिलितानि. चिरं चक्षुर्वपि विश्राणाः
किमपि चलिनासनम्, उत्कम्भितहृदयम्, अपसरद्ध्येयम्, अश-
गलत्स्वेदसलिलम्, उत्पुलकिताङ्गम्, अनङ्गमङ्गुरम्, अवलोकिता-
न्योन्यमुग्रमवतस्थिरे तदभिमुखं सरयः ॥

उसके प्रवेश करने पर अपत्याश्रित आश्चर्य से विकसित, भय है घात, रक्त-
शङ्का से उत्थित, लज्जा से मुकुण्डित, प्रमत्तता से मिलते हुए पक्षों वाली,
कामोन्मुक्तता में चञ्चल, दर्शनोत्प्रेक्षा के आवेश में निविनेष, दृष्टि-संघर्ष से
हैपी हुई और विलास से मिली हुई आँखों को चिरकाल तक धारण करती हुई
कामज्यम ससिपा एक दूसरे का मुख देखती हुई उसके सामने स्थित थीं। आसन
से हिल चुकी थीं। हृदय काँप गया था। धैर्य भाग चला था। पसीने का जल
बह निकला था। अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था।

दमयन्त्यपि 'देवी, वर्धयामो वर्धयानः कोऽपि कस्याश्चिज्जीविते-
श्वरोऽयमन्नवागनो दृश्यते' इति द्वापौत्कर्षगद्गमिरां, गीतमुत्सृज्य
ससंभ्रमोत्थितकुञ्जवामनकन्यकानां मृदुकरतलतालिकाकलितकल-
कलेन मनाग्मिलासवलितमुखी तदभिमुखमवलोक्य शय्यातला-
दुदचलत् ॥

‘देवी, हम लोग सकल है, सकल हैं। किसी सुन्दरी का कोई प्राणेश्वर
यहाँ आया हुआ दीखता है’ इस प्रसन्नता की चेतकृष्टता से गद्गदवाणी बोझी
हुई, गीत छोड़ कर सीप्यता से उठी हुई कुबड़ी तथा नाटी कन्याओं की कौमल
एव मधुर करतल ध्वनि से दमयन्ती भी विलास के साथ मुखमण्डल को घोटा
नम्र करती हुई उन्ह सामने देखकर शय्यातल से उठ चली।

‘आ. कुतोऽस्यानेकप्राकाररक्षकपक्षिते पक्षिणामपि दुष्प्रवेशे
विशेषतो रजन्थां कन्यान्तःपुरे प्रवेशः’ इत्यद्भुतरसावेशस्तिमितेन
किञ्चित्संचारितेन सञ्जुषा पुनः पुनर्नलमवलोक्य चिन्तयञ्चकार ॥

“आह ! अनेक बहारदिवारियों तथा रक्षकों से रक्षित पक्षियों के निवे भी
दुष्प्रवेश, विशेषतः कन्याओं के इस निवास गृह में रात को कैसे दृष्टका प्रवेश
हूँगा” इस अद्भुत रस के आवेश में स्तब्ध एवं स्वल्प संचारित आँखों से नल
को बार-बार देखकर सोची—

धन्या काप्युपराधिताद्रितनया यस्यास्त्वमाह्लादयन्
मुक्ताहार इव प्रसारितभुजः कण्ठे विलोडिष्यसि ।

धानस्तात तयापि धन्यममुना सृष्टेन मन्ये श्रमं
मातर्मैदिनि धन्यसे किमपरं यम्यास्नवायं पतिः” ॥ ३६ ॥

ध-या वेति ॥ मानृशब्दं जननीपर्यायमपि स्त्रियः सपान्यादिष्वपि प्रणयसंबोधने प्रयुज्यते इति नले भूपतावर्षसिन्ध्या दमयन्त्या ‘मातर्मैदिनि’ इति सम्बोधन न दुष्टम् । धन्यया सन्नी प्रति मानरित्यामग्रणमनुचिन्तम् ॥ ३६ ॥

पर्वत-पुत्री पार्वती की आराधना की हुई वह युवती भाग्यशालिनी है जिसके गले में मुक्ता की माला सदृश अपनी भुजाओं को फैला कर प्रसन्न होने हुए तुम आलिंगन करोगे । तात ब्रह्मा, इसे बनाने के कारण आप के परिश्रम को मैं धन्य मानती हूँ । अधिक क्या कहूँ, माता पृथ्वी, तुम भी बन्दनीय हो जिसका यह पति है ॥ ३६ ॥

एवं चिन्तयन्त्येव तत्कालमाकूतकौतुकहर्षमयाद्यनेकरसपरम्प-
रापरायतिनयनोत्पला लज्जावनमितमुखी विधेयविवेकयैकस्यम-
भजत ॥

इस तरह सोचती हुई एक ही समय अभिप्राय, उत्तुङ्गता, हर्ष, भय, आदि अनेक रसों की धारा में नेत्रों को फेरती हुई लज्जा के मारे मुख नीचे की ओर कर कर्तव्य विषय के विचार में विवश हो गयी ।

नलोऽपि ‘विहङ्गवागुरिके, भयस्यामिन्या. किमेवंविधः समाचारः, यदभ्यागतजनेन सह स्वागतालापमात्रेणापि न क्रियते व्यवहारः’ इति तस्याः समीपवर्तिनीं पूर्वपरिचितां किनरीमभाषत ॥

नल भी, “विहङ्गवागुरिका, तुम्हारी स्वामिनी का ऐसा आचार है कि प्रतिविजन के साथ स्वागत-भाषण से भी व्यवहार नहीं करती” इस तरह दमयन्ती के समीप रहने वाली विहङ्गवागुरिता नामक किन्नरी ने बोला ।

सापि ससंभ्रमप्रणामपूर्वमिदमवादीत्—

वह भी शीघ्र ही प्रणाम-पूर्वक बोली—

‘क्रिञ्चित्कम्पितपाणिकटुणरसैः पृष्टं ननु स्वागतं
ग्रीडानम्रमुष्मान्जया चरणयोन्यन्ते च नेत्रोत्पले ।
द्वारस्थस्तनयुग्ममङ्गलघटे दत्तः प्रवेशो हृदि
म्यामिन्कि न तयातिथे. समचिन्तं सत्याः नयाऽनुष्ठितम् ॥३७॥

स्वामिन्, धीरे से हिले हुए हाथ के कटुण की ध्वनि से स्वागत प्रश्न पूछों । लज्जा से मुख कमंडल की नल की हुई चरणों पर नेत्र-पुण्य रखें । उस हृदय में स्थान दें जिसके द्वार पर मङ्गल-वलय के रूप में स्तन-युगल

न्यित है। जतः आप जैने अतिथि के बिने मेरी इस सन्नी ने क्या नहीं किया ? ॥ ३३ ॥

तद्वितः ससंभ्रमोत्थितयानया समर्पितमिदमुल्लसन्नमणिपर्यट्टिका
पृष्ठमधिनिष्ठनु देवः ॥

अच्छा, यहाँ मे घबड़ाहट के साथ उड़ी हुई इस के द्वारा समर्पित इस मणिमय उल्लसन्न वासन पर आप बैठें ।

'त्वमपि देवि, विद्रुममणिपर्यट्टिकामिमामदूरवर्तिनीमध्यात्स्य ॥

देवी, आप भी इस सन्नी स्थित विद्रुम मणि निमित्त पञ्च पर बैठें ।

मयानु च मयानो परमुखेन धुताम्योम्यस्वरूपयोरिदानीमान्मानु-
मवेन नयननिर्गुणि, फलन्तु मनोरथाः चर्खीनाम्' इति ॥

इसके के ही मुख से एक दूसरे के स्वरूप के सम्बन्ध में आप लोग सुने हैं । इस समय आनानुभव से आप दोनों को अर्ध आनन्द का अनुभव प्राप्त करें और वस्तियों का मनोरम चरण हो ।

तथाभिहितौ तौ सर्वसत्त्वरसस्वीकरपरामृष्टयोः स्फटिकप्रवाल-
पर्यट्टिकयोस्तत्तद्गमार्गं भेजतुः ॥

अब कहने पर सभी उद्विग्नों द्वारा दीप्तता से पोंदि गये स्फटिक एवं विद्रुम मणि निमित्त जासनों के बीच बैठ गये ।

ततश्च तौ—

हर्याद्वाग्धिते, भगात्तपलिते, विस्कारिते विस्मया-
वैतुमुक्यात्स्त्रमिते, स्मर्याद्विलुलिते, संकोषिते लज्जया ।

रुपालोकितकौतुकेन रमसादन्योन्यवचनान्मुजे
किंचित्साधि च संमुखं च नयने संधारयामासतु ॥ ३८ ॥

इसके बाद दोनों—

सीधर्मच्छटा की देखने की उत्तुङ्गता से शीघ्रतापूर्वक एक दूसरे के मुख कनक पर आनन्दानुधु से व्याप्त, मर से चञ्चल, आनन्द से विकसित, काम से तरल, उत्तुङ्गता से स्तब्ध तथा लज्जा से सङ्कुचित नेत्रों को कुछ सम्मुख और कुछ नीचे की ओर सञ्चालित किये ॥ ३८ ॥

[देखने की उत्तुङ्गता से सामने की ओर देखते हैं किन्तु प्रथम परिचय की स्थिति में लज्जा के कारण दृष्टि नीचे की ओर मुड़ जाती है ॥ ३८ ॥]

तत्र च व्यतिकरे—

अन्तः केवलमुल्लसन्ति न पुनर्याचां तु ये गोचरा
येषां नो भरतादयोऽपि कवयः कर्तुं विवेकं क्षमा ।

लज्जामन्धरयो परस्परमिलदृष्टिप्रपाते तयो-

स्ते सर्वे समकालमेव हृदये केऽप्याविगसन्स्ताः ॥ ३९ ॥

लज्जा से शिथिल उन दोनों का एक दूसरे पर दृष्टिपात होने पर वे सभी
रस एक ही बार हृदय में उमड़ पड़े जो केवल भीतर सरङ्गित ही होने हैं
बाणी के बिषय नहीं बनने और जिन्हें भरत आदि महान् कवि भी वर्णित
करने में असमर्थ रहने हैं ॥ ३९ ॥

अपि च । तत्र च व्यतिकरे—

कर्णान्तफुल्लमयीकृतचापचक्र-

अश्रद्धगुणस्पलनजर्जरितप्रसोषः ।

लक्षद्वयेऽपि युगपद्विशिखान्विमुञ्चन्

संधामसत्वरकरः श्रमधान् स्मरोऽभूत् ॥ ४० ॥

कामदेव ने कानों तक खींचने के कारण धनुष को गोल बना दिया था ।
कड़ी प्रत्यङ्घा के सवर्पण से मणिबन्ध जीर्ण हो गया था । प्रत्यङ्घा पर
बाणों को आरोपित करने में उसके हाथ बड़ी धीघ्रता कर रहे थे । अतः वह
उम समय बड़ा श्रमशील हो गया था ॥ ४० ॥

अनन्तरमातसखीघचनेन स्वयमर्घदानोद्यतां ताम् “भलंमलमु
त्पलाक्षि, प्रयासेन । न खल्वसि पात्रं परिजातमञ्जरी जरदपवनप्रेहो
ल्लनायासं सहते” इति दमयन्तीमभिधाय तस्याः स्वादुदुर्लभसूक्ति-
मुधासेककोमलालापपण्डिताभिः सखीभिः सह परिमितपरिहासेन,
किमपि जल्पन्, किमपि हसन्, किमपि हासयन्, मुहूर्त्तमिधा-
सांचक्रे ॥

इसके बाद शिष्ट सखियों ने कहने पर स्वयं अर्घ्य देने के लिये तत्पर उस
(दमयन्ती) से “कमल नेत्रे, रहने दें, प्रयास न करें, आप परिधम की पात्र
नहीं हैं । परिजात की मञ्जरी बाँधी के झोके को नहीं सहती ।” यह कहकर
स्वादु एवं दुर्लभ सूक्ति मुधा से शिक्त मधुमय वाक्विनोद की विदुषी उन
सखियों के साथ कुछ कहता हुआ, हँसता हुआ, हँसाता हुआ कुछ समय तक
बैठा ।

चिन्तितवाश्च—

लीलाताण्डवितभ्रुवोः स्मरभरभ्रान्तोल्लसत्तारयो-

रन्तमौक्तिकमालिकाधवलधयोर्मुग्धस्मितस्मेरयोः ।

किंचित्साचिदशोः कृतानिलचलघोषोत्पलस्पर्शयो-
रल्लोलेरिव याति पद्मलहटाः कान्तिर्मदीयं मुखं ॥ ४१ ॥

रातेति ॥ उर्ध्वलेखाति तरङ्गे स्फुरति ॥ ४१ ॥

और सोचा भी—

पद्मन नेत्रवाली दमयन्ती के विकास से नाचती हुई भीही वाले, कान-भार के कारण नञ्चल स्थासुरा कनीनिकाओं से अञ्जित, भीतर गोपी की लाली की तरह बदन, मुख मुकुटाहट से विकसित, पवन-कान्ति नील कमलों से स्पर्श करने वाले नम्रता भरे नयनों की रागिनि मेरे मुख पर तरङ्गित हो रही है ॥ ४१ ॥

अपि च—

दरमुकुलिननेश्रयान्तपर्यस्तनारं
तथ तरुणि सलज्जं सस्मिन्नं सम्मरं च ।
क्षणमभिमुखचञ्चले विस्मयस्नेरदृष्टौ
मयि चलन्ति चलनं वीक्षितं मा निरीरसीः ॥ ४२ ॥

दरीति ॥ तथामिमुखचञ्चले मयि एवं गुणविनिष्ट वीक्षित वल्लभं यवत् म निरीरसीः ॥ ४२ ॥

तरी, सामने की ओर मुझ किये हुए आरच्य से विकसित दृष्टि वाले, मुख पर स्नय संकुचित नेत्रों के एक भाग में कनीनिकाओं को पेंचती हुई, लज्जायुक्त, सदाय एवं मुकुटाहट मरी आती हुई अपनी दृष्टि को मत रोको ॥ ४२ ॥

[मैं तुम्हारे सामने स्थित हूँ । तुम्हारा सौन्दर्य देख कर आरच्य के मारे मेरी जानें विकसित हो उठी हैं । प्रथम परिचय की स्थिति में मेरे सम्मुख यद्यपि तू एक साफ तथा स्पष्ट नहीं बेल पाती हो फिर भी जिस किसी तरह तुम्हारी जो दृष्टि मेरी ओर आ रही है उसे रोको नहीं ॥ ४२ ॥]

निबान्यदपरमिदमाशास्महे—

लायण्यामृतदीर्घिका कुलगृहं सौभाग्यसौन्दर्ययो-
स्त्रैलोक्यामररत्नकन्दलिरियं जौन्यात्सदृशं समाः ।
लोकालोकनकौतुकाय बहुना शिल्पधमेणादा-
नन्त्ये यां विविना विधाय विहितं सृष्टेर्ध्वजरोपगम् ॥ ४३ ॥

लायणेति ॥ आलोकनाय कौतुकमालोकनकौतुकम् । लोकस्यालोकनकौतुकम् । तेन परपतु लोको, द्रष्टव्यदर्शनार्थं दृष्टिपदमाप्नोति अर्थः ॥ ४३ ॥

२६ न० ५०

अधिक क्या, बेरी यही शुभ कामना है कि—यह सौन्दर्य-मुग्धा की बावली, सोभाग्य और सुन्दरता का कुलभवन तथा त्रैलोक्य समुद्र की रत्नलता सहस्रो वर्ष की आयु प्राप्त करे। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रह्मा ने लोगों के दृष्टि-कीर्तुहल के लिये कलात्मक श्रम से आदरपूर्वक इसे बना कर अपने रचना-कीशल का ध्वजारोपण किया है ॥ ४३ ॥

[विजयी जिस सीमा तक पहुँचना है वहाँ अपनी ध्वजा आरोपित कर देता है। लोगों की आँखों को तृप्त करने वाली दमयन्ती का निर्माण कर ब्रह्मा ने अपनी कला या चित्त-कीशल का सर्वोत्कृष्ट नमूना प्रस्तुत कर ध्वजारोपण किया है अर्थात् उसने यह चिह्न किया है कि उसके भीतर दमयन्ती जैसी अलोक सामाग्य-सुन्दरी के निर्माण की क्षमता है ॥ ४३ ॥]

अहो आश्चर्यम्—

रक्षस्यङ्गे कुरङ्गाक्ष्याश्चक्षुर्मै यत्र यत्र तु।

हृदयते तत्र तत्रैव धलाद्वाणरुरः स्मरः ॥ ४४ ॥

रक्षेति ॥ तु पुनरर्थे । किं पुन यत्र यत्राङ्गे चक्षुरङ्गति तस्य साधिष्ठानत्वात् ।
स्मरवाणवाचा प्राप्यते ॥ ४४ ॥

ओह ! आश्चर्य है—

इस हरिणाक्षी की आँखें मेरे अङ्गों पर जहाँ-जहाँ जाती हैं वहाँ-वहाँ बलारकार कामदेव हाथों में बाण लिये हुए दिखाई पड़ता है ॥ ४४ ॥

तत्कथमियमन्यार्थे प्रार्थ्यते तद्दृष्टतामयं परम्रेष्यभावः ॥

तत्कथमिति ॥ अन्येषामिन्द्रादीनामर्थेऽन्यार्थे ॥

तो क्यों इसे दूसरों के लिये माँगूँ ? दूर जाय दूसरों का दौत्य-कार्य ।

यतः । तिरयति स्वातन्त्र्यसुखम्, अभिमुखयति पारघट्यफलेशम्, आमन्त्रयति तिरस्कारम्, आदरयति दैन्यम्, आक्षयति लघिमानम्, आवाहयति हास्यवादम्, समानयत्यौचित्यभङ्गम्, अङ्गीकारयति कार्पण्यम्, अपहस्तयति घस्तुभावम्, पुरुषस्य ॥

यन इति ॥ आद्यपूर्वस्य बहतेः करोत्यर्थेत्वादावाहयति कारयतीत्यर्थः ॥

यह मनुष्य के स्वातन्त्र्य-सुख को ओझल कर देता है। परतन्त्रतामूलक दुःख को सामने ला देता है। तिरस्कार को आमन्त्रण देता है। दीनता को आदर देता है। लघुता को बुलाता है। उपहास कराता है। औचित्यभङ्ग को सम्मानित कराता है। कायरता को अङ्गीकार कराता है और वास्तविक भाव को छुड़ा देता है।

तथाहि—

सोच्छ्रासं मरणं निष्प्रिदहनं निष्कुलं बन्धनं
निष्पङ्कं मलिनं विनैव नरकं सैषा महापातना ।
सेवासंजनितं जनस्य सुधियो धिम्पावदयं यतः
पञ्चानां मविशेषमेतदपरं पण्डं महापातकम् ॥ ४५ ॥

अतः—

बुद्धिमान् आदमी की सेवामूलक परतन्त्रता को धिक्कार है, क्योंकि यह
स्वास् रहने ही मरण है, अग्नि के बिना ही जन्म है, बिना वेदियों का
बन्धन है, बिना कीचड़ का मल है, बिना नरक की महापातना है, पाँच
महापातकों के अनिरिक्त यह एक विशेष तरह का छठा महापातक है ॥ ४५ ॥

[पराधीनता और मृत्यु में यही अन्तर है कि मृत्यु हो जाने पर स्वास्
नहीं चलती और पराधीनता में स्वास् बचती है। जन्म आग से होती है
किन्तु पराधीनता की स्थिति में बिना आग के ही जन्म होने लगती है।
शुद्धात्मा से बन्धन लगाये जाने हैं किन्तु पराधीनता में बिना शुद्धात्मा
लगाये ही बन्धन लगा रहता है। कीचड़ से मलिनता उत्पन्न होती है किन्तु
यह बिना कीचड़ के ही मलिनता उत्पन्न कर देता है।

अत्युत्कृष्ट पाप के कारण आदमी नरक की महत्तर यातनायें सहता है।
परतन्त्रता भी एक उसी तरह की यातना है जैसी नरको में सही जाती है।
बहुहत्या, मदिरापान, चोरी, गुप्तलीपमन तथा इन कार्यों के करने वाले
शौर्षों के साथ सम्पर्क, ये महापातक कहलाते हैं। इन कार्यों को करने वाले
शौर्षों की महायातनायें सहनी पड़ती हैं। मृत (नर) की महायातना सहनी
पड़ रही है और मैं इन प्रसिद्ध महापातकों में से कोई एक भी नहीं किया
हूँ। इस से यह सात होता है कि परतन्त्रता भी एक महापातक ही है जिसके
कारण मैं इनका कष्ट सेक रहा हूँ ॥ ४५ ॥]

किं चान्यत्—

प्रस्तुतस्य विरोधेन ग्राम्यः सर्वोऽप्युपक्रमः ।

वीणायां वाद्यमानायां वेदोद्धारो न रोचते ॥ ४६ ॥

प्रस्तुतेने ॥ उक्तानुरागौघिन्यादुर्मास्य प्रस्तुतत्वम् ॥ ४६ ॥

दूसरी बात यह है कि—

प्रसङ्गप्राप्त वस्तु से प्रतिबल होने के कारण ये सब यत्न अनुचित हैं,
क्योंकि वीणा के बजने रहने पर वेदध्वनि अच्छी नहीं लगती ॥ ४६ ॥

[लोकपालो की आज्ञा के अनुसार दीत्यकार्य करना एक पुण्यात्मक कार्य है । यह उतना ही पवित्र है जितना वेदोदगार विन्नु दमयन्ती के मधुमय अनुराग के समक्ष दीत्यकार्य अच्छा नहीं लगता । वीणा की मधुर ध्वनि के सामने पवित्र होता हुआ भी वेदोदगार अच्छा नहीं लगता ॥ ४६ ॥]

तत्किमिदानीमिदमुच्यते । लोलाक्षि, लोकपालाम्त्वामममनुबिन्दुष्यन्ति इति प्रस्तुतानुरागमङ्ग, तदादेशोऽपह्नयते स्वामिन्यम्यथा कथ्यते श्रेयःस्खलनम्, यथावृत्तमेवारयायते म्यार्थहानि, तद्वरमस्तु स्वार्थविघातो न तु विश्वस्तदेयतावञ्चनापातकम्' इति चिन्तयन्नशेषमपि तस्यै पुरन्दरादेशं सप्रयञ्जमावचक्षे ॥

अच्छा तो, इस समय क्या यह कहें, यदि कहता हूँ कि 'हे भवत्तनयने, लोकपाल हमारे माध्यम से तुम्हें धुनते हैं ॥' तो इससे प्रेम में अंतर पड़ेगा । यदि उनकी आज्ञा को छिपाता हूँ या इन्द्र आदि के सम्बन्ध में कुछ दूसरे ढंग से कहता हूँ तो कस्याप-भार्य से गिरना होगा । जो स्थिति है यदि वैसा ही कहता हूँ तो स्वार्थ की हानि होगी । ऐसी स्थिति में स्वार्थ का बिनाश ही अच्छा है, विश्वास किये हुए देवों को वञ्चित कर पाप लेना अच्छा नहीं ।" यह सोचता हुआ इन्द्र की अशेष आज्ञा को सप्रयज्ञ सुना दिया ।

सापि स्तोरुस्मितस्निग्धनम्रमुखी 'हं हे प्रियंवदिके, प्रियास्मज्जी-वितयाम्यथा तातेन च मध्याद्रे समाह्वय किमुक्तासि किं शिभिताऽसि । न नाम घालेयम्, अधिनीतेयम्, आग्रहग्रहग्रस्तेयम्, इति केनापि कर्णेजपेन तातस्य हृदयाद् दूरीकृताहम् । चन्द्यः खलु गुरवो देवाश्च विभेमि तेभ्योऽहम्' इति प्रियंवदिकाप्यथा सत्यया सार्वमन्यालापम-करोत् ॥

सापीति ॥ स्तोकेत्यादिना अधिमोऽपि लोकपालाम्प्रत्यवज्ञा, नलं प्रायनुरागामह वाम्यालापम्याजेन दमयन्ती प्रतिपादितवती । न नामेति वितर्कः । 'किं दूरीकृताहम्' इति वितर्कः ।

कुछ मुस्कुराहट, स्नेह एवं नम्रतापूर्ण मुख वाली वह (दमयन्ती) भी, "अजी प्रियम्बदिका, मेरे प्रिय एवं आणखम्प माता तथा पिता जी ने दोषहर को बुलाकर तुम से क्या कहा है ? क्या सिखाया है ? "यह लड़की नहीं है, उर्ध्व है, आग्रह के कारण हठी है ।" यह कह कर किसी निन्दक द्वारा पिता जी के हृदय में क्या दूर की गयी हूँ ? गुरुजन तथा देव वन्दनीय हैं । मैं उनसे डरती हूँ ।" इस तरह प्रियम्बदिका नामक सखी के साथ दूसरी बातें करने लगी ।

[सम्भव है, देवों ने वैभव तथा सहिष्णुता पर आदृष्ट होकर गुद्वन (नाटा पिता) पही अनुनति दे कि वह देवों ने मे ही किसी को पति चुने। इस विरुद्ध अनुनति की सम्भावना से कुशलों से डरती है। देव लोग तो उसके अनुराग के बीच कष्ट ही बन रहे हैं। अतः उन लोगों में डरना तो स्वभाविक ही है।]

नलोऽपि 'मदिराशि, मध्यनि मदिरा, तरलयनि तारुण्यम्, अन्धयनि धनम्, उत्पयनि मन्मथः, विरुपयति क्यामिनाम्, सूर्ययनि गर्व'। सूर्यजनकप्रसिद्धमेतत्। किंतु त्वमिदमसन्त्यतामानसी। व्यभिचरन्तु तथाङ्गे सर्वमेतत्। महि शशिनि धनिः, अनृते च विषा-
ट्कुरः संमयनि। नदिमं देवादेशं माधवासी। सर्वाया प्रमदन्ति प्राणि-
नानमी लोकपाला। तत्रापि विशेषतः सरलत्रिदशाधिपतिरमोप-
सुरकिरोटमणिमयूखमालार्चिनचरणारविन्दपुष्पदरो देवः। तद् वृष्ण
कमन्यमीषाममृतभृतां मध्ये। मानस्य स्वर्गसुखानि। अभूमिरसि
मन्यलोकमनांसुखानाम्' इति पुनस्तामभ्यधात् ॥

नम भी, "मादकनमने, मदिरा उन्धन कर देती है। यौवन बचल बना देता है। धन जन्मा बना देता है। काम पयप्रष्ट कर देता है। सीन्दर्य का अभिमान मर्यादा बदल देता है। अहंकार उद्दण्ड बना देता है। यह बात सब लोगों में प्रसिद्ध है, विन्तु भाव इसे सत्य न होने दें। आपके अज्ञो न यह सब व्यभिचरित हो जाय। चन्द्रमा में आग नहीं होती। अमृत में विष के बहुर की सम्भावना नहीं आती। अतः आप देवों की आज्ञा की अवहेलना नहीं करें। ये लोकपाल सब तरह से प्राणियों के प्रभु बने रहने हैं। उसमें भी विशेषतः समस्त देवताओं के स्वामी महाराज इन्द्र जिसका चरणकमल सभी देवताओं की मुकुटमणि की किरामाला से पूजित होता है। अतः इन अमृतभोत्री देवताओं में से किसी को चुनिये। स्वर्ग-सुख न छोड़िये। मृत्युनेत्र के सीमित सुखों की आप पान नहीं है।" इस तरह पुनः चले कहा।

एतद्विद्ये च व्यभिचरे दमयन्त्या पुनरुक्तमिमं उत्पमरण्यकरिण्ये-
वाद्यनुदमङ्कुशमसद्विमानया मनाकरलिते शिरसि, स्तोत्रोक्तने
मनसि, मुक्ते नि सहनिश्वासमद्यति, पर्यर्चिते चक्षुषि, विवर्णतामा-
नोते बदनारविन्दे, प्रस्तावपण्डिता प्रियंवदिका प्राह ॥

ऐने प्रसङ्ग में पुनः कही हुई इस बात को अत्यन्त कष्ट देने वाले बहुर को न सहती हुई जानकी हयिनी की तरह दमयन्ती धिर की कुछ कम्पित

की, मन को म्लान की, असहनीयता व्यक्त करनेवाले नि स्वासो को छोड़ने लगी, आँसो को तरेरने लगी, मुसकमल पर मलिनता छा' गयी, तब विचारनिपुण प्रियम्बदिका बोली—

‘देव, श्रुतं श्रोतव्यम्, अवधारितो देवादेशः। किं तु न स्वतन्त्रेयम्, ईश्वरेच्छया प्रवृत्तिनिवृत्तयो यत प्राणिनाम्, अनालोचनगोचरश्चाय-
मनुरागोऽङ्गनाजनस्य ॥

“महाराज, सुन लिया ओ सुनना या । देवों का आदेश समझ लिया, किन्तु यह स्वतन्त्र नहीं है । प्राणियों की प्रवृत्ति और निवृत्ति ईश्वर की इच्छा से होती है । रमणी जनों का अनुराग विचारपूर्वक नहीं चलता ।

तथाहि—

सौम्यतपनतापप्रियाम्भोजिनी न सहते स्तोकमप्यमृतमुचो रुध-
श्चन्द्रस्य, परिम्लायति मालतीमालिका सलिलसेकेन ॥

कथोकि—

सूर्य के तीव्र ताप से स्नेह रखने वाली कमलिनी अमृतवर्षी चन्द्रमा की कान्तियों को थोडा भी नहीं सहती और मालती की माला जल का सिञ्चन प्राप्त कर म्लान हो जाती है ।

प्रसिद्धं चैतत्—

भवति हृदयहारी कापि कस्यापि कश्चिन्न
न सल्लु गुणविशेषः प्रेमबन्धप्रयोगे ।

— किसल्लयति वनान्ते कोकिलःलापरम्ये

विकसति न वसन्ते मालती कोऽथ हेतुः ॥ ४७ ॥

यह प्रसिद्ध भी है—

अनुराग विषयक व्यवहार में कोई गुणविशेष कारण नहीं होता । कहीं भी कोई किसी के चित्त का हरण करने वाला बन जाता है । कोकिल ध्वनि से रमणीय वसन्त काल में सम्पूर्ण वन जब नवीन पत्र धारण करता है तब मालती नहीं विकसित होती । इसमें क्या कारण है ? ॥ ४७ ॥

[यद्यपि वसन्त बड़ा मनोहर होता है फिर भी वह मालती को नहीं अच्छा लगता है । लोकपाल बहुत वैभवशाली है फिर भी मेरी सखी को वे अच्छे नहीं लगते ॥ ४७ ॥]

एकमनैकविधोपायाननिपुणया तत्कालोचितम्, अनुच्चस्मित-
सुधास्निग्धम्, अविकन्दम्, परिमितपरिहाससुन्दरम्, अनुवृद्धिता-

नुरागम्, उचितचाटुचटुलम्, अशाठ्यम्, अरुडोरम्, अनुज्झित-
प्रियम्, प्रियंवदिकया सहात्पात्पं अल्पम् 'अयुक्तमिह कम्यान्तःपुरे
विरं स्यातुम्' इति चिन्तयन्नापृच्छथ दमयन्ती नलः पर्यङ्किकापृष्ठादु-
दतिष्ठत् ॥

इस तरह अनेक रंग के दृष्टान्तपूर्ण प्रवचन में निपुण प्रियम्बदिका के
साथ समयोचित, हास्य-मुखा से स्निग्ध, संगत, परिमित परिहास से मनोहर,
बटे हुए अनुराग के अनुकूल, उचित चाटुकारिता ॥ सुन्दर, घठ्ठा से शून्य,
कठोरता से विहीन, मिमता से अहीन, थोड़ी बातें करता हुआ, "कम्यामों के
निवासगृह में विरहाल तक ठहरना अच्छा नहीं है।" यह सोचता हुआ
दमयन्ती का सादर कुशल प्रश्न पूछ कर नल बासन से उठ खड़ा हुआ।

प्रथमोत्थितया च तया लज्जावनम्रवदनार्पवन्द्या सह सखी-
कदम्बकेन द्विधाणि पदाम्बुगम्यमानो विद्वसन् 'अलमलमायासेन,
स्थीयतां सुखम्' इत्यभिधाय स्थगृहानयासीत् ।

पहले उठी हुई, लज्जा के कारण नम्र मुसवाली उस (दमयन्ती) तथा
सखीकदम्ब के साथ दो-तीन कदम चल कर बैठता हुआ, "रहने दीजिये,
मैं वृत्ति न करूँ, ठहरें यहीं सुखपूर्वक।" यह कह कर अपने आवास की
ओर चला आया।

गत्या च शिरीषकुसुमदाममृदुनि शय्यातले निदण्णश्चिन्तया-
ञ्चकार ।

जाकर शिरीषगुल की माता सहस्र कोमल शय्या पर बैठकर चिन्ता-
यन् स्थिति में सोचने लगा—

हर्षादुरपुलकं विकासि रमसादुत्तानितं कौतुका-
च्छृङ्गारादलसं, भयात्तरलदृढं नम्रं च लज्जामरात् ।
तस्यास्तनवसंगमे मृगदशो दृश्येत मूयोऽपि किं
किञ्चित्काञ्चनगौरागण्डगालिनस्वेदाम्बुरम्यं सुखम् ॥ ४८ ॥

मृगाक्षी का उस नवीन मिलन के अवसर पर प्रसन्नता से रोमाञ्चित,
शीतला से विकसित, कौतुक से उत्थित, मृङ्गार-भाव से सालस, भय से
चञ्चल नेत्रों वाला, लज्जा के भार में नम्र, सुवर्ण सहस्र गोरे कपोल ॥ निकले
हुए स्वेद-बिन्दुओं के कारण रमणीय मुख क्या फिर दिखाई पड़ेगा ? ॥ ४८ ॥

अपि च—

अपसरति न चक्षुषो मृगाक्षी
रज्जनिरियं च न याति नैति निद्रा ।

प्रहरति मदनीऽपि दुःखितानां

यत बहुशोऽभिमुखीभवन्त्यपायाः ॥ ४९ ॥

वह मृगशी जाँखो से दूर नहीं होती है, नींद भी नहीं आ रही है और यह रात भी नहीं बीत रही है। यह कामदेव भी प्रहार करने लगा है। सेद की बात है कि दुखियों के विनाश की बहुत सी सामग्रियाँ सामने आती जा रही हैं ॥ ४९ ॥

इति विविचचित्तर्ज्वेशविध्वस्तनिद्रः

सज्जलजडिम मौलत्पक्ष्म चक्षुर्दधान् ।

हरचरणसरोजद्वन्द्वमाधाय चित्ते

नृपतिरपि विदग्धः स त्रियामामनैषीत् ॥ ५० ॥

इति धीश्रिविक्रमभट्टचिरचित्तायां दमयन्तीकथायां हरचरण-

सरोजाङ्गायां सप्तम उच्छ्वासः ॥ ७ ॥

इति विषमपद्मकाशमेत दमयन्त्यारतनुते स्म चण्डपालः ।

शिष्टमलितिकाविकासचैत्र चतुरमतिःफुटभित्तिवारचित्रम् ॥

धीमाग्वादकुलाब्जवृद्धिशमनृच्छीमान् यशोराज इत्यार्षो

परम पिता प्रबन्धमुखि धीचण्डसिंहोऽमज्ज ।

धीसारश्चतसिदये गुरुरपि धीलूणिगः शुद्धधी

मोऽकार्षद्दमयन्नुदारविकृति धीचण्डपालः कृती ॥

इति धीचण्डपालचिरचित्ते दमयन्तीकथाविवरणे सप्तम उच्छ्वासः समाप्तः ॥-

इस तरह विभिन्न वितर्कों के आवेग में निद्रा भग हो गयी। जाँखें जड़ जैसी होकर आँखों से भर गयीं। पलक बन्द हो गये।—ऐसी स्थिति में भगवान् राहु के चरणकमल युगल में चित्त लगाकर उस सहृदय सम्राट् ने रात व्यतीत की ॥ ५० ॥

सप्तम उच्छ्वास समाप्त

समाप्तश्चाऽयं ग्रन्थः ।

श्लोकानुक्रमणिका

श्लो	श्लो	श्लो	श्लो
४ मूढानि	३०	५ अवतरति घृताची	५१
५ असमस्तित्वा	३१	५ अविरतमिदममम	६१
१ अचानानवृत्तिना	३२	४ लघुष्टिनष्टधूलिक	१३
२ अचानानवृत्तिना	३३	५ अममहरितनार	९
३ अचानानवृत्तिना	३४	१ अस्ति स्वर्गसम	५४
४ अचानानवृत्तिना	३५	१ अस्तु स्वस्ति समस्त	५५
५ अचानानवृत्तिना	३६	४ अहीना मालिका	२९
६ अचानानवृत्तिना	३७	१ आकर्ष्य स्मरपौवरा	४०
७ अचानानवृत्तिना	३८	१ आकार स मनोहर	५८
८ अचानानवृत्तिना	३९	७ आय प्रायममिष्ट	११
९ अचानानवृत्तिना	४०	७ आयप्रायपराध	१२
१० अचानानवृत्तिना	४१	६ आनन्ददायिनस्ते	४२
११ अचानानवृत्तिना	४२	५ आनन्दमुदर	१२
१२ अचानानवृत्तिना	४३	७ आ पूवापर	४
१३ अचानानवृत्तिना	४४	३ आबन्धनपरिवष	३२
१४ अचानानवृत्तिना	४५	७ आ मन्त्रावधि	२
१५ अचानानवृत्तिना	४६	६ आरक्ष्यता शिखरि	६३
१६ अचानानवृत्तिना	४७	६ आवासा कुनुमा	६१
१७ अचानानवृत्तिना	४८	५ आविर्भूतविषा	१६
१८ अचानानवृत्तिना	४९	५ आसीपिण्डित	३१
१९ अचानानवृत्तिना	५०	७ आसेतो कपिकी	३
२० अचानानवृत्तिना	५१	४ आस्पृशी यमिमे	१६
२१ अचानानवृत्तिना	५२	५ आहूतोदीपमूपेन	२४
२२ अचानानवृत्तिना	५३	५ आहूतदयन्ति मुदबो	६८
२३ अचानानवृत्तिना	५४	२ आहूतदयन्ति सौर्याम्भ	७४
२४ अचानानवृत्तिना	५५	७ हतशब्द सान्द्रा	३२
२५ अचानानवृत्तिना	५६	२ इति जनितमुदिन्दो	३९
२६ अचानानवृत्तिना	५७	६ इति विविधमुदञ्च	६०
२७ अचानानवृत्तिना	५८	७ इति विविधवितर्क	५०
२८ अचानानवृत्तिना	५९	७ इतो मकरजनन	३३
२९ अचानानवृत्तिना	६०	१ इय काव्यज्या	१५
३० अचानानवृत्तिना	६१	४ इद गोदावरी	२५
३१ अचानानवृत्तिना	६२	४ इद मन्दाकिनी	४२

उ.	मूलानि	स्रो.	उ	मूलानि	रलो.
३	इह राज्ञमिष	१३	५	कर्णमूलविषये	६२
१	इन्दो. सौन्दर्य-	५७	७	कर्णान्तकृष्टबलधी-	४०
५	इष्ट्वा कृत्युग-	५४	१	कर्णान्तविघ्नमभ्रात-	१३
२	इह कथलितकन्दं	११	५	कर्पूराम्बुनिपेक.	२१
५	इह चरति चकोर	७३	७	का नाम तत्र चिन्ता	७
२	इह पुनरतिशो	१२	६	कालमिव कलाबहुलं	३७
६	इह भवतु निवासः	७३	१	काम्यस्याम्रफलस्येव	१७
७	ईषधि मृतकुन्द-	२४	२	किं कर्पूरकणा	३८
४	उचितमुचित-	२९	१	किं कथेस्तेन कायेन	५
६	उच्चै. ह्रस्व कपित-	६०	७	किंचिरकम्पितपाणि	३०
७	उच्चै. शाखाप्रसंज्ञा	४६	४	किं तेन जातु जातेन	१९
६	उज्ज्वलसुवर्णपदक	४१	७	किं नरवदनचिनि.	३५
५	उद्धृष्ट बाष्पित	४	१	किं लक्ष्मी स्वयमागता-	५६
६	उत्कण्ठपादगतिता-	६९	१	किं स्यादञ्जनपर्वतः	४४
१	उत्कुण्ठपादलै-	२३	४	किमपि परिजनेन	३२
६	उद्यममिरितायां	१	१	किमथः पारवेषु	४९
१	उदात्तनामकोपेता	२५	५	किमु कुवलयनेत्राः	५०
५	उग्मादिमी मद-	१०	७	कुन्दे सुन्दरि	९
५	उग्मादि यौवन-	६५	५	कुररभरसहं	४०
३	उपकतु मियं उक्तं	१७	५	कुरते मालकद-	६
॥	उपनदि पुलिने	६९	६	कृज्जलौघं चटुल-	२५
६	उपनयति करे	५९	५	कृतधीदा. क्रोहै-	४८
६	उपरम रमणीया-	५७	३	कृतवातिष्पक्रिया	१०
४	उपरि परिमलागधै	२३	५	केनापि व्यवहारेण	२३
२	पुक्कान्ते सेवते योगं	१८	७	कैलासायितमद्रिभि.	२८
५	पुतस्याः करिङ्गभ-	५९	४	कोप्यां किं नु निषिष्यते	९
६	पुतस्या सलिलाद्य	१६	५	क्षितिष्वुदुल-	४४
४	पुता प्राप्य परोपकार-	२१	५	क्षचित्प्रवरगौरिका	४३
४	पुता साग्दुमतल-	४	५	क्षचित्पि कार्यारम्भे	५५
६	पुतास्ता परिपक्व	७१	२	पुण्यत्पीरसमुद-	३४
२	पुता मे हृदय जीव	२१	६	गीतेर्गामा किल द्वित्रा	५२
५	पुता सा विन्ध्यमध्य-	३५	२	गौरवं गौरवेणस्य	१०
४	कंदर्पैर्य जगज्जैत्र	६	५	ग्रीवालम्बित-	५८
५	क. करोति गुणवा-	१४	६	क्षकधर विषमाद्य	३२
६	कदाकिल भविष्य,	२१	१	चार्थो सदा सदादर	३३
७	कन्यामन्यानुदर्यां	२६	५	चिरविदितचाटु-	७२

श्लो.	मूलानि	श्लो.	मूलानि	श्लो.
१	वननीनि मुदित-	३०	६ खत्तो मयेन	१३
२	वनपति जलबुद्धि	९	६ खद्देशागतमारुतेन	२३
१	जयति गिरिसुतायाः	१	६ खद्देशागतवायसाय	२२
६	जयति जगदे-श्चक्षु	३१	७ दग्धो विधिर्विषते	२१
१	जयति मधुसहायः	२	३ दृष्टार्थमर्हणीयाय	९
६	जयायबिल्लोक-	८	७ दामुकुलितमेव-	४२
६	जयायमरसारधि-	९	४ दिशः प्रसेदुः	२८
६	जयायमलकौस्तुभ-	५	५ दिशि दिशि किमि-	३३
६	जयायमलभावना-	११	५ दिष्ट्या दिवौकसां	५३
६	जयायमोजिनीखण्ड-	५	३ दूराभोगमरेण	३४
६	जयायमोजिनीवन्धु-	३	२ देवो दक्षिणदिङ्मुतस्य	२९
६	जयायसमसाहस	१०	१ देशः पुण्यतमोद्देश	२८
६	जयायसुरसुन्दरी-	७	२ देशानां दक्षिणो देश-	२८
६	जयायुदधिनिर्गत-	४	२ देशो भवेत्कस्य न	२७
६	जयायुद्धरनि-सर-	६	२ धन्या शरदि सेवन्ते	१
१	जाताकरिमकविस्मयैः	४८	७ धन्या काप्युपराधिना-	३९
५	जातिर्धनं न तत्र	५७	१ धन्यास्ते दिवसाः	३४
१	जानन्ति हि गुणा-	१८	५ धीरं रज्ज्वन्त-	२९
३	तत्तथा कवनी-	३१	१ धुतकदम्ब-	४३
४	तत्तातस्य कृताहरस्य	३१	६ धुतरजनि-	५६
४	तथा भव यथा सात	१०	१ नद्यग्रमू- यत्र-	३७
४	तद्देशपुण्यानां	२६	७ न दग्धो सम्भ्रागां	१०
४	तद्द्वार्तामृतपानार्धि-	२	३ न तत्कार्यं न तच्छाट्यं	९८
५	नया दत्त मया नीता	१३	५ नद्यास्तीरे विदमार्था	२०
६	तव सुभग रश्मिदशया	४०	२ नमिता फलमारेण	२
६	तव सुहृदुपमुक्त-	१२	६ नलोऽपि मां	१९
१	तस्मिन्निमतमुखे	५९	१ नास्ति सा नगरी यत्र	२६
१	तस्य विषयस्य मध्ये	२९	५ निजप्रियमुखमन्या	६०
२	तस्या. कान्तिनिरद्ध-	३०	२ निष्यमुद्गते	३३
२	ता एव निर्बुधिरुपान-	२६	६ निपतति किल	२०
५	ताव तावन्ममा	३	१ निर्मासं मुखम-	४७
६	तास्तास्तं खपयामासु-	२०	४ निर्माय स्वयमेव	७
३	हृष्य नमो नमस्त्र्येक	१	१ निश्चित समुद्रः	१०
१	तेषां वंते विशद-	१९	१ नीरं नीरजनिमुक्तं	४२
१	तैस्तैरामगुणै-	२०	२ नीरजनपदे	२९
१	विदिवपुरसमृद्धि-	३१	६ नृप चलसि	६८

उ. मूलानि	श्लोक.	उ. मूलानि	श्लो
७ नोद्याने न तरङ्गिणी	१६	१ भिन्दन्मन्द	४५
१ नो नेत्राङ्गलिना	१२	७ भुक्तान्ते घृन-	१३
२ पटलमलिङ्गलाना-	४	५ भूपाखामन्त्रणे	२२
५ पद्मान्यातपवारणानि	७२	१ भूमयो वदिरन्त-	३१
७ परिरुणन्स्रग्धावा	७५	३ भोगान्नो याद्विधी-	२२
३ परिहरति धपो	२९	५ अमकर	६३
१ पर्ण कर्णपुटायितै-	४१	२ अम्यद्विरेफाणि	५
६ पर्वतभेदि पवित्रं	२९	६ अम्यद्विरेफाणि	६२
५ पश्यैता. करिङ्गम	३८	५ अम्यद्विरेफाणि	६६
२ पाण्डुपङ्कजसलीन-	१४	४ अम्यद्विरेफाणि	३
६ पीनोत्तमदन	६४	७ अम्यद्विरेफाणि	२७
१ पुनरपि तदभिज्ञा	६४	५ अम्यद्विरेफाणि	६७
५ पूर्वापरपयोराशि-	२०	५ अम्यद्विरेफाणि	३२
५ पूर्वाह विहितोदया	७४	५ अम्यद्विरेफाणि	६४
७ पीप्सा पञ्चशरा	१८	६ महावराहाङ्गविनि-	३५
३ प्रभासयोगिविदयात-	२४	५ माघहन्तिफोले	३४
१ प्रमत्ता काङ्क्षितहारिण्यो	४	५ माघान्मासलतुङ्ग-	२५
६ प्रसरति रणरञ्जकस-	४३	६ माघे मूर्धनि	७०
५ प्रसूतकमलगन्ध	८	१ मित्र च मन्त्री च	२८
७ प्रस्तुतस्य विरोधेन	४६	२ मुक्तावाममवोरधेन	१०
४ प्राप सैव भवे-	१	६ मुक्तावाममवोरधेन	२७
२ प्रादुर्प शरद	३	३ मुग्धस्निग्ध-	६
६ प्रियविरहविषा-	४५	२ मुग्धा दुग्धधिया	३६
५ प्रेममपञ्च	११	३ मुग्धगन्धाः शिशुना	३०
५ यककृतनिनद	४१	५ मुहुरधिवसता	४२
२ चाणकरवीरदमनक-	१७	६ मृगेषु मैत्री	१८
५ बालोन्मील	३९	६ मृदुकपरिरम्भा-	५८
४ विमर्शि यो ह्यङ्गन-	१८	७ य श्रुत्वा मनोभवा-	१०
२ विमर्शते हरिणी	३२	६ यत्र न फलिता-	६३
१ व्रजण्योऽपि	४९	३ यथा चित्त तथा	१५
१ भद्ररत्नेष्वप्यवन्ध	२२	५ यथेयमाकृति-	२६
६ मत्तन घटसमूहा	७५	३ यथावत्तादृशं	१७
५ भवति यदि सदृश	१	६ यथेतस्याः सवृदपि	१७
७ भवति हृदयहारी	४७	४ या मृन्दस्य जगद्	३७
१ भवति फावगुते	२७	६ यारवस्तावत्तमन्ध-	२
६ भानोः सुता	१५	१ ये वृन्दयन्त-	३५

व	मूलानि	श्लो	व	मूलानि	श्लो
५	रक्तान्त विनि	७६	५	वाचीना विचया	४९
७	रक्तयज्ञे कुर्याद्विना	४५	६	वर्षरूपतदन-	६३
५	रक्तनिमग्नविनाय	७७	६	वेदविद्योपमा तवी	५३
४	रक्त रक्तयज्ञे	१४	६	वेद्या वेदव्यापितष्टे	१४
२	राजते रापतेनाय	८	१	व्यास इमानृता	१२
२	रावन्नात्र वपत्रच	२६	१	वन्गुपरिपाटया	५५
२	रूपमवन्नमत्राय	२२	१	वाचदा द्वितीयन	१४
१	रह्य सुकरताना	८	५	विबिलितमकला	१५
७	लक्ष्मी विद्यायो	३४	६	शुष्याग्नी घनचार्वद्धा	५१
६	लक्ष्मार्थचन्द्र इह	३८	२	शुद्धरममृद्गार	२५
३	ललाटद्विन्दन	११	२	उद्योतवदनचन्द्र	३५
७	लाक्ष्यपुष्पपरमपु	८२	५	रथातचन्द्रमणि	१७
३	लावण्यानिशय	३३	७	वड्मा किल वैद्येयु	१८
७	लावणामृत	४३	१	सगता मुरमयेन	२४
५	लास्य पानुक्तान्त	२०	६	सर्गिका वक्षोस्तुपदा	५७
५	लिसेवामृतपट्ट	१९	४	सप्तह नाकुटीनस्य	२७
४	लीलाया नदलीकृत	३०	५	ममारामुनिधौ	२
७	लीलाया विविधभुज	४१	६	स प्य निपदेका	८६
३	सररजन करकात	१९	६	सकलविषयदृष्टा	४४
२	सामन्तरकरवक	१६	६	सकलान्वयद्वन्द्वनात्र	७९
६	सर्दम नोद्धमज्जा	४८	१	सदृहसाकुल	३६
१	वल्लीवक्त्रपिन्द	५२	१	सदृशपि निवन्धा	११
२	वहति नवविकामो	१३	२	सरलद्विप गुणद्वय	१५
१	वच काश्चित्समन्वि	१६	५	सरमित्रमकरम्दा	४०
५	यपुरकन्यनयन्दन	७५	३	सर्गव्यापारचित्तस्य	२६
३	वामरशीमहावल्ली	४	७	सर्वेऽपि पवित्रे हमा	२९
५	विक्लवनि कला	६६	४	सर्वद्वन्द्वाला काले	११
७	विगलितशिलाय	२३	४	सर्गव्यापारचित्तस्य	१०
६	विबिम्बा पत्रार्त्ता	७४	१	मा र्व मन्त्रयन वरी	६०
६	विपिन देश मरम	३४	६	मानुना सानून	६५
६	विमो विमृत्तिमरम	२	६	सम्पन्नककलपता	५९
३	विपनि विन्द	१८	६	मादानककलपता	५७
५	विचित्तपरिदेश	५२	३	सा मर्ज रक्षितपदा	२३
३	विवेक सह सप्तदा	१६	६	मिरयन्ता राजमाना	७८
५	विप्रान्वयिनि न	५	३	सिन्दूरपट्टहया	७
५	विरलेपाकुलपुत्र	७५	६	सुगमस्तवस्तु	३३

उ. मूलानि	श्लो.	उ. मूलानि	श्लो.
७ सुधापद्मोपलिसेव	३०	१ स्त्रीमाणिक्यमहाकरः	६१
६ सुरसदननिवासं	७७	६ रिधरवा रवदागमन	१८
७ सुस्थिततेजोराशे-	१९	७ रमरशमराजधानी-	२०
६ सैषा चलच्चन्द्रकि-	२६	६ रमर विहरणवेदी	७६
७ सोऽप्यास मरणं	४५	६ रष सौन्दर्यविदग्धिष	७२
२ सोऽयं ग्रीवाचलो	७	७ हंसो हसि चक्रोति	८
४ सोऽयं धरतेन पान्थेन	८	३ हरचरणसरोजा-	३५
४ सोऽणीवमूर्धा	१५	२ हरिति हरिणमूय	६
१ सोऽहं हंसायितु	२१	७ हर्षादुरपुलक	४८
७ सौघरकन्धतलानि	३१	७ हर्षाद्वाष्पचिते	३८
५ रक्तन्धवापान्तराले	४६	१ हृद्योद्याममह	६३
		५ हृद्योद्यानसर-	१८